इतिहास

एक अध्ययन

रायल इन्स्टिट्यूट आव इण्टरनेशनल अफेयर्स गैर-सरकारी तथा अराजनीतिक संस्था है। यह संस्था १९२० में अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्नों के वैज्ञानिक अध्ययन को सुविधाजनक बनाने तथा प्रोत्साहित करने के लिए स्थापित की गयी थी।

ऐसा होने के कारण इन्स्टिट्यूट किसी अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्न पर नियमतः अपना मत नहीं दे सकता। इस पुस्तक में जो मत व्यक्त किये गये हैं वे व्यक्तिगत हैं।

हिन्दी समिति ग्रन्थमाला—१३८

इतिहास एक अध्ययन

(मूल ए स्टडी आफ हिस्ट्री)

[द्वितीय खण्ड भाग ६-१३]

लेखक
आनल्ड जे० ट्वायनबी

सक्षेपकर्ता
डी० सी० सोमरवेल

अनुवादक
श्री रामनाथ सुमन

हिन्दी समिति
सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश

प्रस्तावना

हिन्दी और प्रादेशिक भाषाओं को शिक्षा के माध्यम के रूप में अपनाने के लिए यह आवश्यक है कि इनमें उच्चकोटि के प्रामाणिक ग्रन्थ अधिक-से अधिक संख्या में तैयार किये जायें। भारत सरकार ने यह कार्य वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग के हाथ में सौंपा है और उसने इसे बड़े पैमाने पर करने की योजना बनायी है। इस योजना के अन्तर्गत अंग्रेजी और अन्य भाषाओं के प्रामाणिक ग्रन्थों का अनुवाद किया जा रहा है तथा मौलिक ग्रन्थ भी लिखाये जा रहे हैं। यह काम अधिकतर राज्य सरकारों, विश्वविद्यालयों तथा प्रकाशकों की सहायता से प्रारम्भ किया गया है। कुछ अनुवाद और प्रकाशन कार्य आयोग स्वयं अपने अधीन भी करवा रहा है। प्रसिद्ध विद्वान और अध्यापक हमें इस योजना में सहयोग दे रहे हैं। अनूदित और नये साहित्य में भारत सरकार द्वारा स्वीकृत शब्दावली का ही प्रयोग किया जा रहा है, ताकि भारत की सभी शिक्षा संस्थाओं में एक ही पारिभाषिक शब्दावली के आधार पर शिक्षा का आयोजन किया जा सके।

इतिहास : एक अध्ययन नामक पुस्तक हिन्दी समिति, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश शासन, लखनऊ द्वारा प्रस्तुत की जा रही है। इसके मूल लेखक आर्नल्ड ज० टवायनबी, डी० लिट० और प्रस्तुत द्वितीय खण्ड के अनुवादक श्री रामनाथ सुमन, प्रसिद्ध गांधीवादी चिन्तक एवं लेखक, प्रयाग हैं। आशा है कि भारत सरकार द्वारा मानक ग्रन्थों के प्रकाशन सम्बन्धी इस प्रयास का सभी क्षेत्रों में स्वागत किया जायगा।

निहालकरण सेठी

अध्यक्ष, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग

प्रकाशकीय

उत्थान पतन, विकास और ह्रास का चक्र प्रकृति म सदव चलता रहता है। मानव जगत भी उमस अलग नहीं है। सभ्यताए बनती और बिगडती है। पुरानी सभ्यता का कोई गुण जब किसी नयी सभ्यता म प्रकट होता है, तो उसे इतिहास की पुनरावृत्ति कहा जाता है। नाना सभ्यताओ की इसी पृष्ठभूमि को लेकर सुप्रसिद्ध विद्वान प्रो० टवायनबी न ऐतिहासिक तथ्यो का अनुसधान किया है। प्रस्तुत ग्रथ उनक गम्भीर एव विवेकपूर्ण अध्ययन का परिणाम है।

अग्रेजी म इस महान ग्रथ का सक्षिप्तीकरण श्री सोमरवल द्वारा दो खण्डा म किया गया है जिनको भारत सरकार न अपनी मानक ग्रथ योजना म लेकर हिंदी समिति म राष्ट्रभाषा मे प्रकाशित करन का अनुरोध किया था। अतएव इसके प्रथम खण्ड का हिंदी रूपातर वाराणसी क सुप्रसिद्ध कवि एव लेखक श्री कृष्णदेव प्रसाद गौड से और दूसर खण्ड का हिंदी अनुवाद प्रयाग के प्रतिष्ठित विद्वान श्री रामनाथ सुमन द्वारा सम्पन्न कराया गया है। हिंदी समिति इन दोना विद्वानो के प्रति आभारी है जिनके सतप्रयास से अन्तर्राष्ट्रीय विषयो के ममज्ञ टवायनबी-जैसे इतिहासकार की कृति की अवतारणा हिंदी म सुलभ हुई। हमे विश्वास है, विश्वविद्यालयो की उच्च कक्षाओ के विद्यार्थियो और जिज्ञासुओ का इस प्रकाशन से यथेष्ट लाभ होगा।

रमेशचन्द्र पत
सचिव, हिंदी समिति

१९६६

भूमिका

मैं भाग्यवान हूँ कि श्री सामरवेल दो बार मुझे अपने सहभागी के रूप में प्राप्त हुए। पहिले उन्होंने भाग १ से ६ तक 'इतिहास एक अध्ययन' (ए स्टडी आफ हिस्ट्री) का संक्षेप किया, अब उन्होंने ७ से १० (१२?) तक के भागों के सम्बन्ध में वैसा ही कुशल कार्य किया है। इस प्रकार अब पाठक के सामने सम्पूर्ण ग्रन्थ का संक्षिप्त संस्करण उपस्थित है—संस्करण जो एक ऐसे स्वच्छ बुद्धि वाले व्यक्ति द्वारा किया गया है जिसने न केवल ग्रन्थ के विषयों को अधिकृत कर लिया है वरन् जिसने लेखक के दृष्टिकोण एवं तात्पर्य के अन्दर भी प्रवेश किया है।

संक्षिप्त संस्करण की इस दूसरी किस्त की तैयारी में मैंने एवं श्री सोमरवेल ने पहिले की ही तरह साथ-साथ काम किया है। ऐसे स्थान बहुत ही कम हैं जहाँ प्रकाशन के पूर्व ग्रन्थ का अवलोकन करते समय मैंने अपने लिखे उन अंशों को पुनः सम्मिलित कर देने की आवश्यकता का अनुभव किया हो जिन्हें उन्होंने छोड़ दिया था। अपनी ही कृति में से किस अंश को काटना सर्वोत्तम होगा, इसका खुद अच्छा निर्णायक लेखक नहीं होता। श्री सामरवेल को इस विषय में आश्चर्यजनक सूक्ष्म दृष्टि प्राप्त है, जैसा कि उनके संक्षेप के प्रथम भाग का मेरी मूल पुस्तक से तुलना करने वाले किसी भी व्यक्ति के सामने स्पष्ट हो गया होगा। पहिले की भाँति इस बार भी मैंने उनके साथ केवल उन्हीं अंशों पर काम किया है जिन्हें उन्होंने संक्षिप्त संस्करण में रखा है। इस प्रकार वे अंश समान रूप से उनके भी हैं और मेरे भी। इसमें कोई विशेष कठिनाई नहीं हुई क्योंकि उन्होंने मेरे आशय का साराश देने में भी प्राय मेरे ही शब्दों का प्रयोग किया है। जहाँ उन्होंने अपनी ओर से कोई दृष्टिबिन्दु उपस्थित किया है या उदाहरण दिये हैं—कहीं कहीं उन्होंने ऐसा किया है—वहाँ मुझे यह देखकर प्रसन्नता हुई कि वे मेरे भावों से एकीभूत हो गये हैं।

इस व्यस्त युग में मेरे जैसे महाग्रन्थ का प्रथमकोटि का संक्षेपीकरण जैसा कि श्री सोमरवेल ने किया है, एक वरदान है। इसके कारण ग्रन्थ उन लोगों के लिए भी सुलभ हो गया है जिनके पास मूल ग्रन्थ पढ़ने का धैर्य या समय नहीं है। मेरे विचार में तो मूल एवं संक्षिप्त दोनों परस्पर पूरक हैं। इस संक्षिप्त संस्करण के द्वितीय भाग के कुछ पाठक भी यदि मूल ग्रन्थ का पूरा पारायण न करेंगे तो कम से कम उसमें एकाध डुबकी जरूर लगायेंगे, जैसा कि मैं जानता हूँ संक्षिप्त संस्करण के प्रथम भाग के भी कुछ पाठकों ने किया है। इसी प्रकार मूल के कुछ साहसी पाठकों के लिए भी पुस्तक की संरचना के सामान्य नक्शे को फिर से याद दिलाने में यह संक्षिप्त संस्करण सहायक होगा। अन्त में श्री सामरवेल ने सम्पूर्ण भागों का जो साराश ग्रन्थ-संक्षेप के रूप में दिया है, उसे कई दृष्टियों से मैं उनके कार्य का प्रवीणतम अंश मानता हूँ।

संक्षिप्त संस्करण के दोनों भागों में हमारा जो सहयोग रहा है, वह मेरे लिए अत्यन्त सुखद अनुभव है।

१ दिसम्बर १९५५ —आर्नल्ड टायनबी

टिप्पणी

(मक्षिप्त सस्करण के रचयिता द्वारा)

यह तथ्य कि इस खण्ड का आरम्भ भाग ६ अध्याय २३ से हुआ है, स्मरण दिलाता है कि यह सम्पूण ग्र थ नही है बल्कि ग्रन्थ का उत्तर भाग है, और जो पाठक इसके पूव क्या लिखा जा चुका है उसका कुछ भी ज्ञान प्राप्त किये बिना इसम प्रवेश करेंगे उन्हें प्राय वसी ही कठिनाई का सामना करना पडेगा जसी कि विक्टोरियायुगीन किसी तीन भागो वाले उपन्यास का तीसरा भाग पहिले ही आरम्भ कर देन पर होती है। इस भाग के अन्त म सम्पूण ग्रन्थ का सक्षेप दिया गया है। यह उन लोगो के लिए उपयोगी होगा जो श्री टवायनबी के अध्ययन का आरम्भिक भाग मूल अथवा सक्षिप्त रूप म पढ तो चुके हैं किन्तु अशत भूल गये हैं।

इस पुस्तक की अनुक्रमणिका तयार कर दन के लिए मैं कुमारी ओ० पी० सल्फ का अत्यन्त आभार मानता हू।

१६५५ डी० सी० ऐस०

विषय-सूची

(श्री आनल्ड टवायनवी के
सक्षिप्त सस्करण के रचियता के अनुसार)

[६]
सावभौम राज्य

[७]
सार्वभौम चर्च (धमसघ)

टिप्पणी

(सक्षिप्त सस्करण के रचयिता द्वारा)

यह तथ्य कि इस खण्ड का आरम्भ भाग ६, अध्याय २३ से हुआ है स्मरण दिलाता है कि यह सम्पूण ग्रथ नही है बल्कि ग्रथ का उत्तर भाग है और जो पाठक इसके पूव क्या लिखा जा चुका है उसका कुछ भी ज्ञान प्राप्त किये बिना इसम प्रवश करेंगे उन्हे प्राय वसी ही कठिनाई का सामना करना पडेगा जसी कि विक्टोरियायुगीन किसी तीन भागो वाले उपन्यास का तीसरा भाग पहिले ही आरम्भ कर दन पर हाती है। इस भाग के अत म सम्पूण ग्रथ का सक्षेप दिया गया है। यह उन लागा के लिए उपयोगी होगा जो श्री टवायनबी के अध्ययन का आरम्भिक भाग मूल अथवा सक्षिप्त रूप मे पढ तो चुके हैं किन्तु अशत भूल गये हैं।

इस पुस्तक की अनुक्रमणिका तयार कर दने के लिए मैं कुमारी ओ० पी० सल्फ का अत्यन्त आभार मानता हू।

१९५५ डी० सी० ऐस०

विषय-सूची

(श्री आनल्ड ट्वायनबी के
सक्षिप्त सस्करण के रचियता के अनुसार)

[६]
सावभौम राज्य

[७]
सार्वभौम चच (धमसघ)

[८]

वीर-युग

[९]

दिगन्तर सभ्यताओ के बीच समागम

[१०]

कालान्तर्गत सभ्यताओ के बीच सम्पर्क

[११]

इतिहास मे विधि (कानून) और स्वतन्त्रता

[१२]

पाश्चात्य सभ्यता की सम्भावनाएँ

[१३]

निष्कर्ष

इतिहास : एक अध्ययन

द्वितीय खण्ड

६. सार्वभौम राज्य

फिर सार्वभौम राज्यो, सार्वभौम धर्ममठो एव वीर युगो के तुलनात्मक अध्ययन से सभ्यताओ के जिन पारस्परिक सम्बन्धो पर प्रकाश पडता है उनमे काल-आयाम की यह शृखला ही नही अगमसामयिक या भिन्न युगो की इन सभ्यताओ के बीच का एक मात्र सम्बन्ध नही है। विघटन के बाद सभ्यताए जिन लघु खण्डो म विभाजित हो जाती हैं वे दूसरी समकालिक सभ्यताओ से निःसृत विरोधी तत्वो के साथ सामाजिक एव सांस्कृतिक सम्बन्ध स्थापित करने म स्वतन्त्र हो उठते हैं। कुछ सार्वभौम राज्य विजातीय साम्राज्य निर्माताओ द्वारा निर्मित हुए, कुछ उच्च धर्म विजातीय प्रेरणा से अनुप्राणित हुए और कतिपय बर्बर युद्धपिपासु दल विदेशी सस्कृति के रग म रग गये।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सार्वभौम राज्य, सार्वभौम धर्ममठ एव वीर युग न केवल समकालिक बल्कि असमकालिक सभ्यताओ को भी परस्पर सबद्ध करते हैं। इसलिए इससे यह सवाल उठ खडा होता है कि हमने उन्हें जो किसी एक ही सभ्यता के विघटन से उपनिर्मित मान लिया है क्या वह ठीक है ? क्या अब हमे उनका अध्ययन उन्ही के गुणो के आधार पर नही करना चाहिए ? जबतक हम इन तीन प्रकार की सस्थाओ म हर एक के दावे का खुद उन्ही के क्षेत्रो म अध्ययन न कर ल और इस बात की सभावना पर भी विचार न कर लें कि वे अपनी एव दूसरी सभ्यताओ को अपनी गोद म समेटने वाली एक बृहत्तर पूर्णता के अश भी हो सकती हैं तबतक हम निश्चित रूप से नही कह सकते कि हमने प्रारम्भिक स्तर के ऊपर के समस्त मानव इतिहास का समुचित निरीक्षण कर लिया है। इसलिए इस अध्ययन के पचम खण्ड के अन्त मे हमने अपने शोधकार्य मे और आगे जाने का निश्चय किया है और छठे, सातवें और आठवें खण्ड मे हम अपने इसी उद्देश्य के सपादन का प्रयत्न करेंगे।

फिलहाल हमारा सम्बन्ध सार्वभौम राज्यो से है। हम इस जिज्ञासा के साथ इन पर विचार का आरम्भ कर सकते हैं कि ये खुद अपने अन्दर साध्य हैं अथवा अपने से परे किसी वस्तु के साधन मात्र हैं ? सबसे अच्छा मार्ग तो यह होगा कि हम इन सार्वभौम राज्यो की उन कतिपय विशिष्टताओ को पुन याद कर लें जिनका पता हम पहिले ही लगा चुके हैं। पहिली बात तो यह है कि ये राज्य सभ्यताओ के विघटन के बाद न कि उनसे पहिले पैदा होते हैं वे इन सभ्यताओ के सामाजिक विग्रह म राजनीतिक ऐक्य का प्रादुर्भाव करते हैं। वे भारतीय ग्रीष्म ऋतु की भांति हैं जो खिजा पर पर्दा डालती और शिशिर के आगमन की पूर्व-सूचना देती है। दूसरी बात यह है कि वे प्रभावशाली अल्पमत की उपज होते हैं—मतलब ऐसे अल्पमत की उपज, जो किसी समय सृजनशील था किन्तु अब अपनी रचनात्मक शक्ति खो चुका है।

यह निषेधात्मकता एव ऋणात्मकता ही उनके प्रणयन का प्रधान चिह्न है और यही उनके प्रस्थापन एव रक्षण का अनिवार्य तत्त्व है। परन्तु यह भी सम्पूर्ण चित्र नही है क्योकि सामाजिक विशृखलता तथा प्रभावशाली अल्पमत की उपज होने के साथ ही सार्वभौम राज्य एक तीसरी विशेषता भी प्रकट करते हैं—वे समाज की विच्छिन्नता के बाद म एक उभयपक्ष या समाहरण (रैली) की अभिव्यक्ति होते हैं जो बार बार

बिखरता और बिखरकर बार-बार अपने को सघटित करना चलता है तथा स्खलन, यूहन एव पुनरावत्तन की अनुवर्तिनी धडकनो मे अपने उस विघटन क्रम को व्यक्त करता है। यह अन्तिम विशेषता ही उस पीढ़ी की कल्पना को प्रभावित करती एव उसमे कृतज्ञता की भावना जगाता है जो सावभौम राज्य की सफल स्थापना देख सकने के लिए बच रहती है और जो सकट युग की अवधि की समाप्ति देख लती है—उस युग की जो एक के बाद दूसरी असफलता तथा उस असफलता की बाढ रोकने के बार बार के प्रयत्नो स किसी समय प्रवृत्त हो उठा था।

इन्हे एक साथ मिलाकर देखने से ये विशेषताए सावभौम राज्यो का ऐसा चित्र सामने रखती हैं जो पहिली दृष्टि म अस्पष्ट प्रतीत होता है। ये राज्य सामाजिक विघटन के लक्षण हैं पर साथ ही इस विघटन का रोकन और उस पर विजय पाने के प्रयत्न भी हैं। एक बार स्थापित हो जाने के बाद सावभौम राज्य जीवन को जिस दृढता से ग्रहण करते हैं, वह उनकी एक बडी उल्लेखनीय विशेषता है। किन्तु इसे सच्ची जीवनशक्ति समझकर भ्रमित भी न होना चाहिए यह उन बूढ़ो की दीर्घायु के समान है जो मरने से इनकार करते हैं। यह तथ्य है कि सावभौम राज्यो मे एसा आचरण करने की प्रबल प्रवृत्ति पायी जाती है मानो वे स्वय ही कोई साध्य हो, जबकि सच्चाई यह है कि वे सामाजिक विघटन के क्रम म एक अवस्था विशेष के द्योतक मात्र हैं। यदि उनमे इसके अतिरिक्त भी कोई विशेषता है, तो वह यही कि अपने बाहर और अपने परे किसी साध्य के वे साधन मात्र हैं।

अमरता की मृग-मरीचिका

यदि हम इन सार्वभौम राज्यों पर विजातीय दर्शक की भाँति नहीं बल्कि उन्हीं के एक नागरिक की भाँति दृष्टि डालें तो मालूम होगा कि हम अपने इन पार्थिव राष्ट्रमण्डलों को सदा जीवित रखने की इच्छा ही नहीं करते बल्कि यह विश्वास भी रखते हैं कि इन मानवी संस्थाओं की अमरता निश्चित है। मजा तो यह है कि यह विश्वास उस समय भी बना रहता है जब काल अथवा अवकाश (Time or Space) की एक दूसरी स्थिति में रहने वाले दर्शक के सामने समकालिक घटनाएँ स्पष्ट घोषणा कर रही होती हैं कि यह सार्वभौम राज्य विगत दौर उसी समय मृत्यु यन्त्रणा से तड़प रहा है। ऐसा दर्शक सहज ही यह प्रश्न कर सकता है कि इस सार्वभौम राज्य के नागरिक इन वाह्यतः सरल तथ्यों की उपेक्षा कर उसे जीवन के वियावान में रैनबसेरा न समझ, समस्त मानवीय यत्नों का लक्ष्य—अमरावती—क्या समझ बैठे हैं? यहाँ यह बात भी कह देनी चाहिए कि इस प्रकार की भावना स्वदेशी साम्राज्य निर्माताओं द्वारा स्थापित सार्वभौम राज्यों तक ही सीमित है। उदाहरण के लिए भारतीय ने ब्रिटिश राज की अमरता की कभी इच्छा न की न इसके लिए भविष्यवाणी ही की।

यूनानी सभ्यता के सार्वभौम राज्य रोमीय साम्राज्य के इतिहास में हम देखते हैं कि जिस पीढ़ी में महत् धर्मप्रतीक (पवन आगस्टा)[1] की स्थापना हुई उसने सच्ची निष्ठा के साथ यह दावा किया कि 'साम्राज्य एवं उसे बनाने वाले नगर दोनों को ही अमरता का वरदान प्राप्त है। टिबुलस[2] (५४-१८ ईसा पूर्व) ने अमरपुरी की दीवारों के गीत गाये हैं और वर्जिल[3] (७०-१९ ईसा-पूर्व) ने अपने एक पात्र से एनियास जाति के वंशधरों के प्रति कहलाया है—"मैं उन्हें एक साम्राज्य दे रहा हूँ *जिसका कभी अन्त न होगा। लिवी[4] भी उसी निश्चितता के साथ शाश्वत नगर की*

[1] महत् धर्मप्रतीक, जिसकी पूजा सनातन ईसाई धर्म में प्रचलित थी।

[2] (५४-१८ ईसा पूर्व) लटिन कवि। दलिया (वास्तविक नाम प्लनिया) के प्रेम में विह्वल। शोक-गीत लिखे हैं।

[3] पब्लियस वर्जिलियस मरो (७०-१९ ईसा पूर्व)। जन्म १५ अक्तूबर, ७० ईसा पूर्व। विख्यात रोमन कवि। ईलियड का रचयिता।

[4] टीटस लिटवियस लिवी (५९ ईसा पूर्व से १७ सन् ई)। रोमन इतिहासकार।

बात करता है। होरेस[1] यद्यपि अपने गीतों की अमरता के प्रति सन्यालु था किन्तु उसने भी रोमन नगर राज्य मे होने वाले वार्षिक समारोहो एव उत्सवो को अमर मान लिया। उसके गीत तो आज भी मानव कण्ठ म जी रहे हैं। कब तक उनकी अमरता चलगी कोई नहीं जानता, क्योंकि आधुनिक समय म शिक्षा की अभिरुचि और सज्जा मे, फदान म जो परिवतन हो गये हैं उनके कारण उन लोगो की सख्या बराबर घटती गयी है जो इन गीतो को सुना सकते थे, फिर भी इतना तो सत्य है ही कि वह वार्षिक रोमीय उत्सव जितने दिन चला उससे चौगुने-पँचगुन समय तक ये गीत जीवित रहे हैं। होरेस एव वर्जिल के युग के चार सौ वर्षो बाद एलारिक-द्वारा रोम की लूट ने जब उसके अन्त की घोषणा कर दी थी, तब भी हम गलिक[2] कवि रूटीलियस नमातियनस को बडी शान के साथ रोम की अमरता की घोषणा करते पाते हैं। यहा तक कि सत जेरोम[3] ने भी, जेरुसलेम के अपने अध्ययन-कक्ष से अपने धार्मिक चिन्तन मे बाधा उपस्थित करके रूटीलियस जैसी भाषा म ही अपनी वदना प्रकट की थी। अधश्विासी राज्याधिकारी एव ईसाई धमपिता दोनो पर एक ही घटना की भावनात्मक प्रतिक्रिया भी समान दिखायी पडती है और यह स्थिति पीढियो तक बनी रही है।

जब ४१० ई म रोम का पतन हुआ तो एक अनित्य सावभौम राज्य के नागरिको को, जिन्होंने उसे अपना अमर आश्रय-स्थान समझ रखा था, वही आघात लगा जो अरबी खिलाफत की प्रजाओ को १२५८ ई म लगा था, जबकि बगदाद पर मगोलो ने कब्जा कर लिया। रोमीय जगत् मे जसे वह आघात फिलिस्तीन से गाल तक के विस्तृत भूभाग म अनुभव हुआ वसे ही अरब जगत् मे फरगाना से ऐंदलूशिया तक उसकी अनुभूति हुई, बल्कि इस क्षेत्र म रोम वाले मामले से भी अधिक गहरा मानसिक प्रभाव दिखायी पडा, क्योंकि हलाकू[4] के कारण अब्बासी खिलाफत मे जो क्रांति हुई उसके तीन या चार सदी पहले से ही विशाल साम्राज्य के अधिकाश भागो मे उसकी सावभौम सत्ता का लोप हो चुका था और लोग नाममात्र के लिए ही उसके अधीन थ। मरणोन्मुख सावभौम राज्यो ने ऐसी आभासिक अमरता का जो प्रकाश-वलय धारण कर रखा था उसके कारण ही ज्यादा बुद्धिमान और बबर नेताओ ने आपस मे राज्य क्षेत्रो का बटवारा करते समय एक वसी ही आभासिक या कल्पित दासता स्वीकार कर ली। एरियन आस्त्रोगोथ के अमलुग एव शियाए देलामी के बुएहीद सरदारो ने जिन प्रदेशो पर कब्जा कर लिया था उन पर सरकारी विधान की दृष्टि

[1] (६५-८ ईसा पूव)। रोमन कवियों मे वर्जिल के बाद सबसे प्रसिद्ध। ८ दिसम्बर ६५ ईसा पूव जन्म। बहुत अच्छे गीत लिखे हैं। उसने लिखा है—"दन्य एव अभाव ही मेरी प्रेरणा के स्रोत हैं।"

[2] एक पुरानी भाषा।

[3] (३४०-४२०)। स्त्रियान (आधुनिक स्त्रोदोवा) मे जन्म। बडा जबदस्त विद्वान हुआ है।

[4] मध्य एशिया का प्रसिद्ध विजेता एव साम्राज्य निर्माता।

से अपने को क्रमश कुस्तुनतुनिया के सम्राट और बगदाद के खलीफा का राज प्रतिनिधि घोषित करके शासन किया। यद्यपि एक जीर्ण सार्वभौम राज्य के प्रति इस प्रकार के कौशलपूर्ण व्यवहारों से वे सेना युद्धपिपासु फिरके अपने को विनाश से न बचा सके, क्योकि विशिष्ट धर्म परम्पराओं से जुड़कर उन्होंने अपने को पहिले ही विनाश के मार्ग पर डाल रखा था किन्तु यही राजनीतिक चाल दूसरी जगह खूब सफल रही जब साथी बर्बरों ने अपने धर्म विश्वास में उसका निर्दोष रूप में आचरण किया। उदाहरण लें तो रोम साम्राज्य के विघटन के बाद जो बर्बर राज्य उसके वारिसों में कायम हुए उनके संस्थापकों में क्लोविस फ्रैंक सबसे सफल हुआ है। उसने कैथोलिक धर्म अंगीकार कर सुदूर कुस्तुनतुनिया में बैठे हुए सम्राट अनस्तेसियस से अपने को उसका प्रतिनिधि एवं राजदूत घोषित करा लिया और उससे राजचिह्न भी प्राप्त कर लिये। उसकी सफलता इसी एक बात से प्रमाणित हो जाती है कि उसके द्वारा पराजित भूखण्ड में शासन करने वाले १८ राजाओं ने घटा-बढ़ाकर उसका ही नाम धारण किया।

इस ऐतिहासिक अध्ययन के पिछले एक भाग में हम देख चुके हैं कि बजंतीय या पूर्वरोमीय (बजंताइन) सभ्यता में जो तुर्की साम्राज्य सार्वभौम राज्य बन गया था वह उस समय भी अपनी काल्पनिक अमरता में विश्वास रखता था जब वह यूरोप का बीमार आदमी' (सिक्मन आव यूरोप) बन चुका था और जब महत्त्वाकांक्षी युद्ध नायक अपने लिए उत्तराधिकारी राज्यों के निर्माण में लगे हुए थे—मिस्र और सीरिया मे मुहम्मद अली अल्बानिया एवं यूनान में यानिना का अली और रूमेलिया के उत्तर पश्चिम कोण पर स्थित विद्दीन का पासवानोगलू अपने निजी हितों के लिए बादशाह के नाम पर सब कुछ कर रहे थे। जब पाश्चात्य शक्तियों ने उनका पदानुसरण किया तो उन्होंने भी इसी कल्पना को ग्रहण कर लिया। उदाहरण के लिए ग्रेट ब्रिटेन ने कुस्तुनतुनिया के सुलतान के नाम पर १८७८ ई से साइप्रस का और १८८२ ई से मिस्र का शासन भार ग्रहण कर लिया। यह क्रम तबतक चलता रहा जबतक कि १९१४ ई मे तुर्की से उसकी लड़ाई नहीं हो गयी।

हिन्दू सभ्यता प्रधान मुगल सार्वभौम राज्य में भी यही बात पायी जाती है। १७०७ ई मे औरंगजेब की मृत्यु हुई। उसके बाद आधी सदी के अन्दर ही वह साम्राज्य जिसने कभी भारतीय भूखण्ड के अधिकांश भागों पर प्रभावशाली सार्वभौमिकता का विस्तार कर रखा था केवल २५० मील लम्बे और १०० मील चौड़े टुकड़े मे ही सिमटकर रह गया। अगली आधी सदी के अन्दर वह घटते घटते दिल्ली के लाल किले की दीवारों तक बच रहा। फिर भी १७०७ ई के डेढ़ सौ वर्ष बाद अकबर एवं औरंगजेब का एक वंशधर उनके तख्त पर आसन जमाये ही रहा और बहुत पहिले से विलुप्त होते जिस मुगल साम्राज्य का वह अब भी प्रतीक था, उस पर शासनहीनता के एक युग के बाद यदि एक विदेशी राज्य ने अधिकार न कर लिया होता और उस विदेशी राज्य के विरुद्ध १८५७ ई के विद्रोहियों ने बादशाह का अनिच्छापूर्ण आशीर्वाद न प्राप्त कर लिया होता तो वह आगे भी बना ही रहता।

सावभौम राज्यो की अमरता के विश्वास से विजडित रहन का इससे भी वडा प्रमाण तो वह परपरा है जिसके द्वारा मिटकर नाशवान् सिद्ध हो जाने के बाद भी ये साम्राज्य अपनी प्रेतात्माओ को जीवित रखत है। इसी तरह बगदाद की अब्बासी खिलाफत काहिरा की अब्बासी खिलाफत के रूप मे, राम साम्राज्य पश्चिमी पवित्र रोमीय साम्राज्य और सनातन ईसाई धम के पूव रोमीय साम्राज्य के रूप म, त्सइग एव हान राजवश सुदूरपूर्वीय सभ्यता के सुई एव ताग साम्राज्य के रूप मे पुनर्जीवित हा उठे। रोमीय साम्राज्य के सस्थापक का वशनाम कसर एव्र जार की उपाधियो क रूप म फिर से चल पडा और खलीफा की उपाधि, जिसका मूल अथ मुहम्मद का उत्तराधिकारी था, काहिरा को अभिशप्त करन के बाद इस्तबोल पहुच गयी और तबतक वहा बनी रही जबतक कि बीसवी सदी के पश्चिमीकरण के भक्त क्रातिवादियो द्वारा खत्म नही कर दी गयी।

ऐतिहासिक उदाहरणो के कोश म से य कुछ चुनी हुई चीजें ही आपके सामने रखी गयी हैं जो इस तथ्य को प्रदर्शित करती हैं कि सावभौम राज्यो की अमरता का विश्वास महज तथ्यो द्वारा गलत सिद्ध हो जाने के बाद भी शताब्दियो तक जीवित रहता है। तब इस प्रत्यक्ष विपय के कारण क्या हो सकते है ?

इसका एक प्रकट कारण तो सावभौम राज्यो के सस्थापको एव महान शासको द्वारा डाले गय प्रभाव की क्षमता है—प्रभाव जो ग्रहणशील पीढियो को ऐसी प्रबलता के साथ हस्तान्तरित किया जाता है कि एक आकपक सत्य बढकर दुदम्य उपाख्यान मे बदल जाता है। दूसरा कारण इसके महत्तम शासको द्वारा प्रदर्शित प्रतिभा के अलावा खुद इस सस्था की अपनी प्रभविष्णुता है। एक सावभौम राज्य लोगो के मस्तिष्क एव हृदय को वशीभूत कर लेता है, क्योकि वह सकटकाल के लम्बे यात्रा माग पर एक रली (जमघट या समाहरण) का प्रतीक है और रोम साम्राज्य अपने इसी पहलू के कारण ही अन्त मे मूलत विरोधी यूनानी मनीषियो एव साहित्यकारो का श्रद्धाभाजन बन गया जैसा कि उस अन्तोनिनी युग की रचनाओ मे प्रकट है जिसका गिबन ने बहुत दिनो बाद, ऐसी कालावधि के रूप म अभिनदन किया जब मानव जाति उल्लास की पराकाष्ठा पर पहुच गयी थी।

"शक्तिरहित प्रभुता के आचरण म कोई भी मुक्ति नही है। अपने से उच्च लोगो के प्रभुत्व म अपने को पाना केवल 'द्वितीय सर्वोत्तम' विकल्प है। किन्तु रोम साम्राज्य के हमारे वतमान अनुभवो मे यह द्वितीय सर्वोपरि ही 'सर्वोत्तम' सिद्ध हुआ है। इस सुखद अनुभव न समस्त जगत् को रास्ता तय कर अपनी शक्ति एव सामर्थ्य के साथ रोम के पास जाने के लिए बाध्य किया है। रोम को छोडने की कल्पना ससार उसी प्रकार नही कर सकता जसे जहाज के मांझी अपन कणधार से अलग होने की कल्पना नही कर सकते। तुमने देखा होगा कि गुफा म चट्टान से चमगादड लटकी रहती है और उसे पकडकर एक-दूसरे के सहारे और बहुतेरी चमगादडें लटकी रहती हैं। रोम पर समस्त ससार की निभरता की यह एक मुनासिब तस्वीर है। हर एक हृदय म आज चिन्ता का विषय यही भय है कि कही वह छत्ते

से अलग न हो जाय। रोम द्वारा त्याग किये जाने का विचार ही इतना भयावना है कि चंचलतापूर्वक उससे अलग होने की भावना हृदय में आ ही नहीं पाती।

सार्वभौमिकता एवं सम्मान के लिए होने वाले उन झगड़ों का अंत हो गया है जो अतीत काल में युद्ध छिड़ने का कारण होते थे, और यद्यपि कुछ राष्ट्र नीरव बहने वाले पानी की भांति सुन्दर रूप से मौन हैं, श्रम एवं शांति से मुदित प्रकार प्रसन्न हो रहे हैं और अंत में इस निष्कर्ष पर पहुंच गये हैं कि उनके पुराने संघर्ष निरर्थक थे, वहां ऐसे भी राष्ट्र हैं जिन्हें इतना भी ज्ञान या स्मृति नहीं रह गयी है कि वे कभी शक्तिपीठ पर आसीन थे। सचमुच हम पमफीलियन कथा का एक नया संस्करण देख रहे हैं। एक ऐसे क्षण में जब संसार के राज्य, अपनी ही भ्रातृघाती लड़ाइयों एवं संघर्षों के शिकार होकर चिताग्नि पर सो रहे थे तब रोम की सप्रभुता की छाया तले आते ही उनमें तुरन्त फिर से जीवन की धारा दौड़ गयी। वे यह कहने में असमर्थ हैं कि ऐसी स्थिति में वे कैसे आये। वे इसके विषय में कुछ नहीं जानते बस अपनी वर्तमान खुशहाली पर आश्चर्यचकित हैं। वे उन सोने वालों के समान हैं जो जगकर होश में आ गये हैं और क्षणभर पहिले जिन सपनों से पीड़ित एवं बाधित थे उन्हें अपने दिमाग से दूर कर दिया है। वे इस बात पर भी विश्वास नहीं करना चाहते कि पहिले कभी युद्ध-जैसी चीज भी उनके बीच थी। सम्पूर्ण बसी हुई दुनिया एक स्थायी छुट्टी और मौज की स्थिति में है। इसलिए केवल वे ही लोग जीवन की अच्छी वस्तुओं से रहित होने के कारण दया के पात्र हैं जो तुम्हारे साम्राज्य के बाहर है—बशर्ते कि आज ऐसे कुछ लोग उसके बाहर रह गये हों।[1]

यह विलक्षण संशय कि रोम-साम्राज्य के बाहर भी कुछ उल्लेखनीय राष्ट्र थे, स्वभाव दर्शक है और ऐसी संस्थाओं को सार्वभौम राज्य कहने का औचित्य सिद्ध करता है। वे राज्य भौगोलिक दृष्टि से नहीं वरन मनोवैज्ञानिक दृष्टि से सार्वभौम थे। उदाहरणस्वरूप होरेस अपने एक गीत में हमसे कहता है कि उसे निरीदेतस की घुड़कियों की परवाह नहीं। इसमें सन्देह नहीं कि पार्थिया का बादशाह मौजूद था परन्तु उसकी कोई वकअत नहीं थी। इसी तरह सुदूर पूर्व के सार्वभौम राज्य के मांचू सम्राटों ने भी अपने कूटनीतिक व्यवहारों में यह मान लिया कि पश्चिमी जगत की सरकारों सहित सभी सरकारें अतीत की किसी अनिश्चित अवधि में चीनी अधिकारियों द्वारा कायम रहने की अनुज्ञा प्राप्त कर चुकी हैं।

इतने पर भी इन सार्वभौम राज्यों की वास्तविक स्थिति उस प्रकाशमान सतह से बिलकुल ही भिन्न थी जो एलियस अरिस्तेदेस तथा विविध युगों और विविध देशों में हुए उसके साथी चारणों को दीख पड़ती थी।

मिस्री सार्वभौम राज्य में जो नवाई मात्राएं हुई उनकी धूमिल दविकता यूनानी पौराणिकता की प्रतिमा के सहारे हुई जिसके एक नाशवान राजा के रूप में बदल गयी—जिस अभाग्यवश इयास या अमर उषा देवी प्यार करती थी। इस देवी ने अपने

[1] अरस्तीदस, प. एलियस (११७-८९ ई. पू.) 'इन रोमम'।

साथ ओलिम्पियनो से अनुरोध किया कि वे उसके मानव प्रेमी को भी वह अमरता प्रदान कर जो उस तथा उसके समकक्ष औरो को प्राप्त है। यद्यपि वे सब अपने दैवी विशेषाधिकारो के विषय म बडे सजग थे किन्तु देवी ने स्त्रियोचित आग्रह से उन्हे अपनी बात मानने को विवश कर दिया। फिर भी इस ढंग से दिये गये वरदान मे एक साघातिक त्रुटि रह ही गयी, क्योकि उत्सुक देवी यह भूल ही गयी थी कि ओलिम्पियनो म अमरता के साथ अक्षय यौवन का भी समावेश है। दूसरे अमरो ने वरदान देते समय, ईर्ष्यापूर्वक इसका ध्यान रखा था कि देवी ने जितना अनुरोध किया है, बस, उतना ही उन्हे दिया जाय। परिणाम दुर्भाग्यपूर्ण एव दुखद हुआ। सोहागरात तो ओलिम्पियनो के पलक झपकते भर मे खत्म हो गयी और श्याम तथा उसका अमर किन्तु तेजी से बूढा हो रहा प्रेमी, दोनो सदा के लिए एक साथ रोने को बच गये—ऐसा बुढापा जिसका मृत्यु के दयालु हाथो से कभी अन्त नही। यह ऐसा कष्ट था जो किसी दूसरे नाशवान् व्यक्ति को नही दिया जा सकता—शाश्वत शोक का एक ऐसा भूत जिसके विषय म किसी और विचार या भावना की गुजाइश ही नही थी।

कोई भी मानवीय संस्था या मानव प्राणी यदि इस दुनिया म अमरता प्राप्त करने का चेष्टा करेगा, तो केवल शहीद होकर रह जायगे, भले उनम कोई शारीरिक असमर्थता अथवा मानसिक जीर्णता न हो। तत्त्वज्ञानी सम्राट मार्क्स आर्लियस (८०–१६१ ई) ने लिखा था "इस अर्थ म यह कहना ठीक होगा कि सामान्य विवेक से युक्त ४० वर्ष की आयु का कोई भी आदमी प्रकृति की एकरूपता के प्रकाश म, सम्पूर्ण अतीत एव भविष्य को देख चुका होता है।' यदि पाठक को अनुभव के लिए, मानवात्माओ की क्षमता का यह अनुमान बहुत कम प्रतीत हो, तो वह इसका कारण उस युग म खोज सकता है जिसमे मार्कस का रहना पडा था क्योकि 'भारतीय ग्रीष्म एक उबाने वाला युग है। रोम ने जो शान्ति दी, उसकी कीमत चुकाने म यूनानी स्वतन्त्रता चली गयी। भले वह स्वतन्त्रता सदा एक अल्पसख्यक वर्ग तक ही सीमित रही हो और वह विशेषाधिकारप्राप्त अल्पमत भले ही अनुत्तरदायी एव उत्पीडक रहा हो किन्तु सिंहावलोकन से यह स्पष्ट हो जाता है कि यूनानी सकटकाल की सिसरोनियन पराकाष्ठा म रोमीय सार्वजनिक वक्ताओ का अनेक उत्तेजक एव प्रेरणादायक विषयवस्तुओ का दान करने की क्षमता थी, जिसे तस्करवृत्तिप्रधान ट्रोजन युग की उनकी सतति बीभत्स कहकर निदित कर सकती थी, परन्तु यह सब होते हुए भी आग्रही जीवन को प्रेरणा देने वाले कल्पनाप्रधान मनुष्य के स्थान पर वह दूसरा कोई विकल्प देने के अपने श्रमपूर्ण प्रयत्नो म सर्वथा असफल रही। इसलिए उनका उसके प्रति गुप्त ईर्ष्या रखना अनिवार्य था।

यूनानी—हेलनिक—समाज के विघटन के तुरन्त बाद ही अफलातून (प्लेटो) ने और अधिक पतन से बचाने और चिंतापूर्वक उसकी रक्षा करने के विचार से उस एक लोचहीन अंगविन्यास म विजडित कर दिया। उसने मिस्री सस्कृति के सापेक्ष टिकाऊपन को आदर्श बताया। एक हजार वर्ष बाद भी जब यह मिस्री सस्कृति जीवित थी और यूनानी सभ्यता अन्तिम सासें ले रही थी, अन्तिम नव-अफलातूनवादियो

न अपने विख्यात गुरु की भावना को धीरे धीरे अधिकाधिक पराकाष्ठा तक पहुचा दिया था।

मिस्री सार्वभौम राज्य की दृढ़ता का धन्यवाद करना चाहिए क्योंकि यही दृढ़ता थी जिसके कारण जब जब उसका शरीर नियमपूर्वक चिता पर रखा गया है तब-तब उसने पुन जीवन म लौट आने की क्षमता का प्रदर्शन किया है। इसलिए मिस्री सभ्यता बराबर जीवित रही और उसके सामने ही उसकी समकालिक मिनान सुमेर तथा सिन्धु संस्कृतिया सब एक एक करके समाप्त हो गयी और अपने बाद तरुण पीढ़ी के उत्तराधिकारियो को अपना स्थान देनी गयी और इन तरुण सभ्यताओ म से भी कई मिट गयी जबकि मिस्री समाज बराबर जीता रहा। इतिहास के मिस्री छात्रो ने देखा ही होगा कि सुमेर सभ्यता की प्रथम सीरियाई, हित्ताई एव बबिलोनी सताने जन्मी बढ़ी और मर गयी इसी प्रकार मिनान सभ्यता की यूनानी एव सीरियाई सतति का उत्थान और पतन हो गया। यह सब होते हुए भी विखण्डित मिस्री समाज की प्राकृतिक जीवनावधि के विषय म जो अत्युक्तिपूर्ण प्रलंबित उपसहार मिलता है, वह शतानी क्षमता के उन्मत्त प्रदर्शन के साथ उबाने वाले उन लम्बे एकान्तर विस्तारो के सिवा और कुछ नही है जिनके कारण इस निद्रालस समाज पर विजातीय सामाजिक सस्थाओ के ससर्ग से एक मुलम्मा-सा चढ़ गया था।

चीन की सुदूरपूर्वीय सभ्यता के उपसहार भाग मे भी वही समाधि-जसी तद्रिलता की लय मिलती है जिसके बीच बीच विदेशियो के प्रति घृणाजन्य धर्मोन्माद के दृश्य भी दिखायी पड़ते हैं। जिन मगोलो ने चीन पर एक विजातीय सार्वभौम राज्य को थोपा उन पर सुदूरपूर्वीय ईसाई संस्कृति का रग चढ़ते ही एक प्रतिक्रिया हुई मगोल निकाल बाहर किये गये और उनके प्रभुत्व का स्थान मिंगो के देशी सार्वभौम राज्य ने ले लिया। मिंगो के पतन के बाद राजनीति म जो खोखलापन आ गया था उसी म मचू बबरो का प्रवेश हुआ। इन पर सुदूर पूर्वीय ईसाई संस्कृति का रग अपेक्षाकृत कम दिखायी देता था और चीनी जीवन विधि को अपनाने की उनकी तयारी अधिक उल्लेखनीय थी। फिर भी जनता म उनका बड़ा विरोध उठ खड़ा हुआ और यह विरोध कम से कम दक्षिण चीन म गुप्त आन्दोलन के रूप म बराबर बना रहा और १८५२–६४ ई के तएपिङ विद्रोह के रूप म पुन बाहर आ गया। सोलहवी-सत्रहवी शताब्दियो म आरम्भ की आधुनिक पाश्चात्य सभ्यता ने जब कथोलिक ईसाई वेश म प्रवेश किया तो अठारहवी शती के प्रथम चतुर्थांश म कथोलिक सम्प्रदाय को गर-कानूनी करार दिया गया और जब १८३९ ई और १८६१ ई के बीच चीन के समुद्री द्वार पाश्चात्य व्यापार के लिए खुल गये तो उसके खिलाफ १९०० ई म पाश्चात्य विरोधी बक्सर विद्रोह उठ खड़ा हुआ। १९११ ई मे इस दोहरे अपराध म मचू वश का खात्मा कर दिया गया कि एक तो वह स्वय ही अभेद्यरूप से विजातीय था उस पर पाश्चात्य सभ्यता के वेश म आने वाली और भी अधिक भयकर विदेशी शक्ति को देश से दूर रख सकने म असमर्थ सिद्ध हुआ।

हम की बात इतनी ही है कि जीवन मिथ्या उपाख्यान की अपेक्षा अधिक

दयालु है और पौराणिकता ने अमरता का जो दण्ड टिथोनस को दिया था वह इतिहास के सार्वभौम राज्यों के लाभ के लिए ऐसी दीर्घायु में बदल दिया गया जो सर्वथा अक्षय नहीं थी। मार्क्स वाले ४० साल के आदमी को अन्त में मरना तो है ही—भले वह जीवन के आस्वाद की सीमा पचास या साठ साल तक बढ़ा ले। यदि कोई सार्वभौम राज्य मृत्यु के दूतों को बार-बार लात मारकर दूर कर देता है, तो वह काल के अंतराल में उस लवण स्तंभ की भांति विलीन हो जायगा जिसे पौराणिक कथा में किसी समय जीवित नारी का अश्मीकृत रूप बताया गया था।

परोपकाराय सता विभूतय

लातीनी (लटिन) भाषा म एक उक्ति है—सिक वोस नान वोबिस मेलिफिकेटिस एप्स—जिसका अथ यह है कि मधुमक्खिया तुम मधु का निर्माण करती हो पर अपन लिए नही। एक मार्मिक-सी उपमा-द्वारा यह बहूक्त उद्धरण इतिहास की योजना म सावभौम राज्यो की विरोधाभासपूण स्थिति को प्रकट करता है। ये प्रभावशाली राज्य मृतप्राय सभ्यताओ के विघटनशील सामाजिक निकायो के प्रभुतासपन्न अल्पसख्यक वग की अतिम कृतिया है। उनका नात अभिप्राय समाज की क्षयशील शक्तियो के परिरक्षण-द्वारा स्वय अपनी रक्षा करना है क्योकि उनका भाग्य भी उन्ही के साथ बधा हुआ है। किन्तु काल की लम्बी दौड मे उनका अभिप्राय कभी सिद्ध नही होता। फिर भी इतना तो सत्य है कि सामाजिक विघटन के य गौण फल सजना की नवीन क्रियाओ म कुछ न कुछ भाग लेते ही हैं। जब वे अपनी रक्षा करन म असमथ हो जाते हैं तब भी वे दूसरो की कुछ न कुछ सेवा तो करते ही हैं।

यदि हम मान लें कि एक सावभौम राज्य सेवा काय के साधन रूप म अपना महत्व रखता है तो प्रश्न उठता है कि उसका लाभ उठाने वाले कौन होते हैं? वे इन तीन सभावित उम्मीदवारो म से कोई न कोई हो सकते हैं—स्वय मृतप्राय समाज का आन्तरिक श्रमजीवी वग बाह्य श्रमजीवी वग या फिर समकालिक कोई विजातीय सभ्यता। अपन आन्तरिक श्रमजीवी वग की सेवा करने के सिलसिले म सावभौम राज्य उनको उच्चतर धर्मों की दीक्षा देते हैं और य धम आन्तरिक श्रमजीवी वग के हृदय म अपना अवतार चिह्न स्थापित कर जाते हैं। बासुए के शब्दो म हमने धरती पर जितने भी महान साम्राज्यो का देखा है उन सबने विविध साधनो द्वारा धम एव ईश्वर के गौरव की स्थापना म सहायता की है जसा कि ईश्वर ने स्वय अपने प्रवक्ताओ-द्वारा घोषित किया है।

(१) सावभौम राज्यो की सवाहकता

हमारा दूसरा काय उन सब सेवाओ का आनुभविक सर्वेक्षण करना है जो सावभौम राज्यो-द्वारा न चाहते हुए भी हो जाता है। साथ ही हम यह भी देखना है कि आन्तरिक एव बाह्य श्रमजीवी वर्गों तथा विजातीय सभ्यताओ-द्वारा इन सुविधाओ

का क्या-क्या उपयोग होता है। किन्तु इसके पहिले हमे इस आरभिक प्रश्न का उत्तर खोज निकालना है कि एक सस्था, जो निष्क्रिय, रूढ़िवादी, पुरातनपथी और प्रत्येक अथ मे ऋणात्मक है, कस किसी की कोई सेवा कर सकती है? कसे एक अनुदीयमान यीन राज्य 'याग कमनीलता के नवीन विस्फोट को जन्म दे सकता है? यह देख-समझ लेना तो बहुत सरल है कि यदि किसी सावभौम राज्य के आश्रय म सजनात्मक ऊर्जा की एक चिनगारी एक बार जल चुकी है तो वह कर निष्कप ज्योतिशिखा क रूप म उसके परिवर्तित हो जाने का सयोग है, किन्तु वही यदि सकटकाल (Time of Troubles) के मारक प्रहार मे झुलस जाय तो वैसा अवसर उसके जीवन मे कभी न आयगा। किन्तु ऐसी सेवा बहुमूल्य होने पर भी निषेधात्मक है। तब किसी सावभौम राज्य क आश्रय मे पैदा होने वाली सामाजिक स्थिति का वह कौनसा लक्षण है जो सजना की नवीन सामथ्य का निश्चित स्रोत है—उस सजन शक्ति का जो अपने उपयोगकर्ताओ के प्रति सावभौम राज्य की सर्वोत्कृष्ट देन या लाभ है, यद्यपि वह खुद अपने तई उससे लाभ नही उठा सकता। इसका एक सकेत या चिह्न तो इसम मिल सकता है कि पुरातनवाद (Archaism) चीजो को चलाने का चेष्टा म निर्माणलुब्ध होकर अपनी ही पराजयवृत्ति का शिकार होता है।

उदाहरण लीजिए विनष्ट समाज के बचे हुए ताने-बाने को सावभौम राज्य के राजनीतिक ढाचे के अन्दर सम्मिलित कर लेने से न तो उसी की रक्षा की जा सकती है जो नष्ट हो चुका है न तो बचे हुए को ही क्रमश ध्वस होने से बचाया जा सकता है। इस विशाल एव निरन्तर बढती हुई सामाजिक शून्यता का अभिशाप सरकार को स्वय अपनी ही इच्छाओ के विरुद्ध काय करने और शून्यता की पूर्ति के लिए कामचलाऊ सस्थाए बनाने को विवश करता है। इस निरन्तर वृद्धिमती खाई म पठने जाने का एक सन्त उदाहरण रोम-साम्राज्य के शासकीय इतिहास मे उसकी स्थापना के बाद की दो शताब्दियो की अवधि मे देखा जा सकता है। रोम राज्य का रहस्य उसके अप्रत्यक्ष शासन के सिद्धान्त म निहित था। यूनानी सावभौम राज्य की जो परिकल्पना उसके रोमन सस्थापको ने की थी उसम उसका रूप 'स्वशासित नगरो का एक ऐसा सघ था जिसम यत्र-तत्र उन प्रदेशा म स्वायत्त शासनयुक्त मण्डलो की रेखा दिखायी पडती थी जहा यूनानी सभ्यता की राजनीतिक जडें मजबूत नही हो सकी थी। इन स्थानीय शासको पर ही शासन का भार था। जान बूझकर कभी इस नीति म सशोधन नही किया गया, फिर भी यदि हम रोमीय शान्ति की दो शतियो के अन्त म उस साम्राज्य का पुनर्निरीक्षण कर तो हम देखेंगे कि शासन का ढाचा बहुत कुछ बदल चुका है। जो अगभूत सामन्ती राज्य थे वे अब राज्य के प्रान्तो या सूबो मे बदल चुके थे और ये सूबे खुद भी प्रत्यक्ष एव केंद्रित शासन के अग बन गये थे। स्थानीय शासन का चलाने वाले मानवीय स्रोत धीरे धीरे सूख गये और स्थानीय शासनपटु लोगो की दिन दिन कमी होती गयी जिसके कारण केंद्रीय शासन को सामन्तो एव राजाओ के स्थान पर शाही गवनरो की ही नियुक्ति करके चुप नही रह जाना पडा वर नगर राज्यो के शासन प्रबन्ध के लिए भी व्यवस्थापको की नियुक्ति करनी

पडी। अंतिम काल म तो साम्राज्य का सम्पूर्ण शासन प्रबन्ध एक गठित सार्वाधि नौकरशाही के हाथ म चला गया था।

इन परिवर्तनो को योपने म जिन न तो केंद्रीय अधिकारीगण ही बहुत उत्सुक थे न उन्हे अपनाने के लिए स्थानीय अधिकारियो म ही कोई उत्कण्ठा थी, दोनो ही समान रूप स एक अनिवार्य शक्ति (Force Majeure) के शिकार थ। यह सब होते हुए भी परिणाम क्रान्तिकारी हुए क्योंकि य नयी सस्थाए अत्यधिक सवाहिता (Conductive) थी। किसी विघटन सभ्यता म हम देख चुके हैं कि सामाजिक विघटन के युग की दो मुख्य विशेषताए होती हैं १ सकरता की भावना (Sense of Promiscuity) और २ एकत्व की भावना। यद्यपि आत्मनिष्ठ दृष्टिकोण स य दोनो मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तिया परस्पर विरोधी प्रतीत होती हैं किन्तु वे समान वस्तुनिष्ठ परिणाम पैदा करने के षडयन्त्र म शामिल हो जाती हैं। युग की यह प्रबल भावना सार्वभौम राज्य द्वारा उत्पादित कामचलाऊ सस्थाओ को ऐसी सवाहकता म समर्पित कर देती है जिसकी तुलना सागर एव स्टेपीज (परती मदान) द्वारा अपने मानवीय मनोवैज्ञानिक वातावरण से नही वर अपनी ही भौतिक प्रकृति से ग्रहण की जाने वाली सवाहकता के साथ की जा सकती है।

एलियस अरस्तीदस का जिक्र हम पहिले कर चुके हैं। उसने लिखा है जैसे धरित्री अपनी सतह पर समस्त मानव जाति को धारण करती है और सागर अपने हृदय म समस्त नदियो को अपना लेता है वैसे रोम अपनी गोद म पृथिवी के समस्त मनुष्यो को स्थान देता है। अरस्तीदस की कृतियो से परिचित होने के पूर्व इस अध्ययन के लेखक ने स्वय भी इस उपमा का प्रयोग किया था।

> "साम्राज्य के विषय में अपनी निजी भावना को लेकर एक दृष्टान्त कथा या अन्योक्ति के रूप मे ही सबसे अच्छी तरह प्रकट कर सकता है। वह उस सागर के समान है जिसके तटों के चतुर्दिक नगर राज्यों का जाल-सा फसा हुआ हो। प्रथम दर्शन मे भूमध्यसागर (मेडीटेरैनियन) उन नदियों का एक तुच्छ प्रतिरूप या अनुकल्प प्रतीत होता है जो अपने जलदान द्वारा उसका निर्माण करती हैं क्योंकि ये नदियां चाहे स्वच्छ रूप मे बहती हों या कदममयी हों पर वे जीवनमय जलप्रवाह का रूप थीं, जब समुद्र केवल लवण रूप है, शान्त है मृत है। किन्तु जब हम सागर का अध्ययन करते हैं तो उसमे भी गति एव जीवन दिखायी पडने लगता है। समुद्र के एक भाग से दूसरे भाग मे मौन धाराए बराबर आती जाती रहती हैं और स्तर का जल जो भाप बनकर नष्ट हो गया प्रतीत होता है वस्तुत नष्ट नहीं होता बल्कि अपना खारीपन दूर करके, छनकर दूर दूर के स्थानो एव ऋतुओं मे जीवनप्रद वर्षा के रूप मे फिर नीचे आता है। और चूकि वह स्तरीय जल बादलों के रूप मे ऊपर उठता रहता है उसका स्थान लेने के लिए उसके नीचे के स्तर का जल निरन्तर गहराई से ऊपर उठता रहता है। इस प्रकार सागर स्वय निरन्तर सजनात्मक रूप से गतिमान है और इस महती जलराशि का प्रभाव उसके तटों से बहुत दूर दूर पहुचता है। हम देखते हैं कि

कहीं वह जलवायु की उग्रता को अपने स्पर्श से मृदुल बना देता है, कहीं हरीतिमा की वद्धि मे शीघ्रता ला देता है, मनुष्यो एव पशुओं के जीवन को समृद्ध करता है और यह सब वह सुदूर महाद्वीपों के हृदय मे तथा उन लोगों के बीच करता है जिन्होंने कभी उसका नाम भी नही सुना।"[1]

सावभौम राज्य के सवाहक माध्यम-द्वारा जो सामाजिक गतिशीलता अपना माग प्रशस्त करती है वह वस्तुत क्षतिज (Horizontal) एव अनुलम्ब (Vertical), पडी और खडी, दोना प्रकार की होती है। हिस्तोरिया नेचुरालिस' नामक अपने ग्रन्थ म एल्डर प्लिनी ने जो प्रमाण दिये हैं उनके अनुसार रामन साम्राज्य मे औषध वनस्पतियो के प्रचार का तथा इसी भाति अरब खिलाफत के पूव छोर से पश्चिमी छोर तक फले कागद के उपयोग को, क्षतिज गतिशीलता के उदाहरण रूप मे उपस्थित किया जा सकता है। कागद चीन से ७५१ ई मे समरकन्द पहुचा और ७९३ ई तक बगदाद में ६०० ई तक काहिरा मे ११०० ई तक अतलान्त महासागर के निकट फेज मे, और ११५० ई तक आइबेरीय प्रायद्वीप के जतीव में उसका प्रयोग होने लगा था।

अनुलम्बिनी गतिशीलताए कभी-कभी अधिक छलनापूण होती हैं किन्तु वे प्राय अपने सामाजिक प्रभावो मे अधिक महत्त्वपूण भी होती हैं, जसा कि तोकूगावा शासन के इतिहास से प्रकट होता है। यह जपान मे सुदूरपूर्वीय समाज का सावभौम राज्य था। तोकूगावा शासन ने जपान को शेष ससार से पृथक रखने की चेष्टा की और इस राजनीतिक कौशल को दो शतियो तक बनाये रखने मे सफलता प्राप्त की। किन्तु इतना सब होते हुए भी तथा अपने पूव सकटकाल से विरासत म प्राप्त सामन्तशाही को स्थायी प्रबन्ध क रूप मे प्रस्तरित करने की चेष्टा के बावजूद भी पृथक्कृत जपानी साम्राज्य म सामाजिक परिवतन की गति को रोकने म उसने अपने को असमथ पाया।

"जपान मे मुद्राव्यवस्था के प्रवतन ने एक मन्दगामी किन्तु दुर्निवार क्रान्ति को जन्म दिया जिसका अन्त सामती शासन के पतन और दो सौ वर्षो से भी अधिक काल तक के पृथक्करण के पश्चात विदेशों से सम्बन्ध स्थापित करने के रूप मे जाकर हुआ। जिस शक्ति ने द्वार उन्मुक्त कर दिये वह बाहर से नहीं आयी थी, यह अन्दर से ही होने वाला एक विस्फोट था (नयी आर्थिक शक्तियों का) एक प्रभाव तो यह पडा कि समुराई तथा किसानों की क्षति हुई और नगर वासियों के धन मे वद्धि होती गयी। देम्यो एव उनके परिचारक कलाकारों-द्वारा निर्मित एव व्यापारियों-द्वारा बेची जाने वाली विलास-सामग्रियों पर अपना धन व्यय करते रह यहा तक कि १७०० ई तक उनका सब चादी-सोना नगरवासियों के हाथ मे चला गया। इसके बाद उन्होंने उधार माल लेना शुरू कर दिया और बहुत जल्द वे व्यापारी वग के कज मे डूब गये और उन्हें अपना अन्नभाण्डार गिरवी रखना पडा या विवश होकर बेचना भी पडा। झगडे और सकट तेजी से

[1] टायनबी ए जे 'लिगेसी आव ग्रीस' पुस्तक (आक्सफड क्लेरेंडन प्रेस, १९२२ सस्करण) पृष्ठ ३२०

शुरू हो गये। व्यापारियों ने चावल की दलाली शुरू कर दी, फिर सट्टा शुरू हुआ। किन्तु इस स्थिति का लाभ केवल एक वर्ग के सदस्यों को हुआ, सबको नहीं। यह वर्ग था व्यापारियों, विशेषत दलालों एव महाजनों का उन नगर वासियों का जिनका अभी तक तिरस्कार किया जाता था और जिन्हें अनादरपूर्ण भाषा मे बोलने पर समुराई या जमींदारों द्वारा मार डालने तक को क्षम्य समझा जाता था। उनकी सामाजिक मर्यादा अब भी निम्नकोटि की मानी जाती रही किन्तु उनके हाथ में थैली थी और वे ऊपर उठते जा रहे थे। १७०० ई तक वे राष्ट्र की सुदृढ़तम एव सबसे अधिक साहसी शक्तियां म हो गये। दूसरी ओर सैनिक जाति धीरे धीरे अपना प्रभाव खोने लगी।"[1]

हिदेयोशी के अधिनायकत्व के अंतिम प्रतिरोध का अन्त १६६० ई म हो गया। यदि हम इस तिथि को जापानी सार्वभौम राज्य की स्थापना की तिथि मान लें तो हम दिखायी पड़ता है कि जिस समाज को हिदेयोशी के वारिसो ने बिलकुल स्थिर बना देना चाहा उसमे रक्तहीन सामाजिक क्रान्ति करने, आलस्य का जन्म तन पर जाने म एक शती से अधिक समय लग गया। परन्तु परिणाम इस कारण और भी प्रभावशाली हुआ कि तोकूगावा का सार्वभौम राज्य असामान्य एव बहुत अधिक मात्रा म सांस्कृतिक दृष्टि से सजातीय (homogeneous) बन गया।

सार्वभौम राज्यो की सर्वान्तरता के चिह्न उन सभी क्षेत्रों म देखे जा सकते हैं जिनका हमे पर्याप्त ऐतिहासिक ज्ञान है।

(२) शान्ति का मनोविज्ञान

सार्वभौम राज्य अपने संस्थापकों द्वारा लोगो पर थोपा जाता और प्रजाओं द्वारा सकटकाल की बुराइयो के रामबाण उपाय के रूप म स्वीकार कर लिया जाता है। मनोविज्ञान की शब्दावली म यह ऐक्य या सामजस्य स्थापित करने एव उसे बनाये रखने वाली एक सस्था [illegible] निदानप्राप्त बीमारी [illegible] सच्ची औषध है। बीमारी है—एक [illegible] के विरुद्ध विभाजन [illegible]। यह फूट लोधारी

एक ही क्षण म बन्द करके नही रखा जा सकता। इसलिए एक प्रभुताशाली अल्पमत अपने ही घरेलू सम्बन्धो म जिस ऐक्य एव सामजस्य की स्थापना के लिए प्रयत्नशील होता है उसे इस प्रभुत्वशाली अल्पमत के आन्तरिक एव बाह्य श्रमजीवियो तथा उन विजातीय सभ्यताओ के प्रति अपने सम्बन्ध तक भी प्रसारित करना पडता है जिनसे विघटित होती हुई सभ्यता का सपर्क होता है।

यह सर्वदेशिक मत्री अपने विभिन्न लाभानुयोगियो को विविध मात्रा मे लाभान्वित करती है। जब वह प्रभुत्वशाली अल्पमत को एक सीमा तक अपनी क्षति की पूर्ति करने मे समर्थ बनाती है तब वह श्रमजीवियो को अपेक्षाकृत कहीं अधिक शक्ति सपादन करने का अवसर देती है, क्योकि प्रभुत्वशाली अल्पमत के हाथ से जीवन की बागडोर निकल चुकी होती है और बायरन के शब्दो मे, जो उसने सम्राट ज्याज तृतीय के शव पर अश्रद्धाव्यजक टिप्पणी करते हुए कहे थे, "मत्री के सम्पूर्ण मसाले केवल विनाश को लम्बा कर सकते हैं।" किन्तु यही मसाले श्रमजीवी वग के लिए खाद का काम दते हैं। इस प्रकार सावभौम राज्य-द्वारा स्थापित युद्ध विराम के बीच श्रमजीवी वग की वृद्धि और प्रभुताशाली अल्पमत का ह्रास अवश्य होता है। अपने बीच के झगडे दूर करने के ऋणात्मक अभिप्राय से सावभौम राज्य के सस्थापक जिस सहिष्णुता का आचरण करते हैं उसके कारण आ तरिक श्रमजीवियो को सावभौम धममत स्थापित करने का अवसर मिल जाता है। किन्तु सावभौम राज्य की प्रजा म सनिक भावना का क्षय हो जाने के कारण बबरो के बाह्य श्रमजीवी वग अथवा किसी पडोसी विजातीय सभ्यता को घुस आने और उस आन्तरिक श्रमजीवी वग के ऊपर प्रभुता स्थापित कर लेने का अवसर मिल जाता है जो धमक्षेत्र म चाहे जितना क्रियाशील हो पर राजनीतिक स्तर पर निष्क्रिय हो चुका होता है।

प्रभुताशाली अल्पमत की सापेक्षिक असमथता अपने ही द्वारा प्रवर्तित स्थिति का लाभ कैसे उठा लेती है इसका उदाहरण हमे इस बात मे दिखायी देता है कि वह किस प्रकार एक ओर अपना तत्त्वज्ञान या काल्पनिक धम ऊपर से नीचे तक प्रचारित करने मे असफल रहता है जबकि दूसरी ओर यह उल्लेखनीय दृश्य दिखायी देता है कि किसी सावभौम राज्य के शान्तिमय वातावरण का कसा प्रभावपूर्ण उपयोग *आन्तरिक श्रमजीवी वग नीचे से ऊपर की ओर एक महत् धम का प्रचार करने और अन्त मे एक सावभौम धममत की स्थापना करने म कर लेता है।*

उदाहरणस्वरूप मिस्र के मध्य साम्राज्य का, जो मूल मिस्री सावभौम राज्य था, ओसीरी धमसघ (चच) द्वारा इसी प्रकार उपयोग कर लिया गया। नववैबिलोनीय साम्राज्य *जो बबिलोनीय सावभौम राज्य था तथा उसके बाद आने वाले विजातीय* उत्तराधिकारी राज्य अर्थात् एकेमीनियाइ (एकेमीनियन फारसी) साम्राज्य एव सेल्यूसीद बादशाहत का भी जडाइज्म (यहूदी धम) और उसके भ्रातृधम जरथुस्त्र मत-द्वारा इसी प्रकार उपयोग कर लिया गया। रोमीय शान्ति के कारण जो अवसर एव सुविधाए प्राप्त हुइ उनका अच्छा उपयोग बहुतेरे—प्रतिस्पर्द्धी श्रमजीवी धर्मों ने—साइबील एव ईसिस की पूजा और मिथ्र मत एव ईसाइयत के रूप म—कर लिया। इसी प्रकार

शुरू हो गये। व्यापारियों ने चावल की दलाली शुरू कर दी, फिर सट्टा शुरू हुआ। किन्तु इस स्थिति का लाभ केवल एक वर्ग के सदस्यों को हुआ, सबको नहीं। यह वर्ग था व्यापारियों, विशेषत दलालों एव महाजनों का, उन नगर वासियों का जिनका अभी तक तिरस्कार किया जाता था और जिन्हें अनादरपूर्ण भाषा मे बोलने पर समुराई या जमींदारो द्वारा मार डालने तक को क्षम्य समझा जाता था। उनकी सामाजिक मर्यादा अब भी निम्नकोटि की मानी जाती रही किन्तु उनके हाथ मे थली थी और वे ऊपर उठते जा रहे थे। १७०० ई तक वे राष्ट्र की सुदृढतम एव सबसे अधिक साहसी शक्तियों मे हो गये। दूसरी ओर सैनिक जाति धीरे धीरे अपना प्रभाव खोने लगी।"[1]

हिदेयोशी के अधिनायकत्व के अन्तिम प्रतिरोध का अन्त १५६० ई मे हो गया। यदि हम इस तिथि को जपानी सार्वभौम राज्य की स्थापना की तिथि मान लें, तो हम दिखायी पडता है कि जिस समाज को हिदेयोशी के वारिसो ने बिलकुल स्थिर बना देना चाहा उसमे रक्तहीन सामाजिक क्रान्ति करने अतल का जल तल पर आने मे एक शती से अधिक समय लग गया। परन्तु परिणाम इस कारण और भी प्रभावशाली हुआ कि तोकूगावा का सार्वभौम राज्य असामान्य एव बहुत अधिक मात्रा मे सास्कृतिक दृष्टि से सजातीय (homogeneous) बन गया।

सार्वभौम राज्यो की सर्वाहकता के चिह्न उन सभी क्षेत्रो मे देखे जा सकते हैं जिनका हम पर्याप्त ऐतिहासिक ज्ञान है।

(२) शान्ति का मनोविज्ञान

सार्वभौम राज्य अपने सस्थापको द्वारा लोगो पर थोपा जाता और प्रजाओ द्वारा सकटकाल की बुराइयो के रामबाण उपाय के रूप मे स्वीकार कर लिया जाता है। मनोविज्ञान की शब्दावली मे यह ऐक्य या सामजस्य स्थापित करने एव उसे बनाये रखने वाली एक सस्था है। ठीक निदानप्राप्त बीमारी की यह सच्ची औषध है। बीमारी है—एक ही घर का अपने ही विरुद्ध विभाजित हो जाना। यह फूट दोधारी तलवार की तरह दोनो तरफ काम करती है। प्रतिस्पर्द्धी सामाजिक वर्गों के बीच की क्षैतिज फूट और युद्धरत राज्यो के बीच अनुलब फूट—ऐसे इसके दो रूप हो जाते हैं। अपने पूर्ववर्ती युग के सकुचित राज्यो के बीच होने वाली लडाइयो से उनके एकमात्र उत्तराधिकारी के रूप मे जो शक्ति रह जाती है उसके सहारे सार्वभौम राज्य का निर्माण करने मे साम्राज्यनिर्माताओ का प्रमुख उद्देश्य यही रहता है कि जिन ग्राम्य राज्यो (Parochial States) को उन्होने पराजित किया है उनके प्रभुत्वशाली अल्पवर्गों के साथ सम्पर्क स्थापित कर सकें और सामजस्य स्थापित कर सकें। परन्तु अहिंसा मन की एक स्थिति है और वह आचरण का ऐसा सिद्धान्त है जो सामाजिक जीवन के किसी

[1] मसन जी बी जपान—ए शार्ट कल्चरल हिस्ट्री (लन्दन, १६३२ क्रेसेट प्रेस) पृष्ठ ४६० ६२

एक ही कक्ष मे बन्द करके नही रखा जा सकता। इसलिए एक प्रभुताशाली अल्पमत अपने ही घरेलू सम्बन्धो म जिस ऐक्य एव सामजस्य की स्थापना के लिए प्रयत्नशील होता है उसे इस प्रभुत्वशाली अल्पमत के आन्तरिक एव बाह्य श्रमजीविया तथा उन विजातीय सभ्यताओ के प्रति अपने सम्बन्ध तक भी प्रसारित करना पडता है जिनसे विघटित होती हुई सभ्यता का सपर्क होता है।

यह सार्वदेशिक मैत्री अपने विभिन्न लाभानुयोगियो को विविध मात्रा मे लाभान्वित करती है। जब वह प्रभुत्वशाली अल्पमत को एक सीमा तक अपनी क्षति की पूर्ति करने मे समर्थ बनाती है तब वह श्रमजीवियो को अपेक्षाकृत कही अधिक शक्ति सपादन करने का अवसर देती है, क्योकि प्रभुत्वशाली अल्पमत के हाथ से जीवन की बागडोर निकल चुकी होती है और बायरन के शब्दो मे, जो उसने सम्राट ज्याज तृतीय के शव पर अश्रद्धाव्यजक टिप्पणी करते हुए कहे थे "मैत्री के सम्पूर्ण मसाले केवल विनाश को लम्बा कर सकते हैं।" किन्तु यही मसाले श्रमजीवी वग के लिए खाद का काम देते हैं। इस प्रकार सावभौम राज्य द्वारा स्थापित युद्ध विराम के बीच श्रमजीवी वग की वृद्धि और प्रभुताशाली अल्पमत का ह्रास अवश्य होना है। अपने बीच के झगडे दूर करने के ऋणात्मक अभिप्राय से सावभौम राज्य के सस्थापक जिस सहिष्णुता का आचरण करते हैं उसके कारण आन्तरिक श्रमजीविया को सावभौम धममत स्थापित करने का अवसर मिल जाता है। किन्तु सावभौम राज्य की प्रजा म सनिक भावना का क्षय हो जाने के कारण बबरो के बाह्य श्रमजीवी वग अथवा किसी पडोसी विजातीय सभ्यता को घुस आने और उस आन्तरिक श्रमजीवी वग के ऊपर प्रभुता *स्थापित कर लेने का अवसर मिल जाता है, जो धमक्षेत्र मे चाहे जितना क्रियाशील* हो पर राजनीतिक स्तर पर निष्क्रिय हो चुका होता है।

प्रभुताशाली अल्पमत की सापेक्षिक असमर्थता अपने ही द्वारा प्रवर्तित स्थिति का लाभ कैसे उठा लेती है इसका उदाहरण हमे इस बात मे दिखायी देता है कि वह किस प्रकार एक ओर अपना तत्त्वज्ञान या काल्पनिक धम ऊपर से नीचे तक प्रचारित करने म असफल रहता है, जबकि दूसरी ओर यह उल्लेखनीय दृश्य दिखायी देता है कि किसी सावभौम राज्य के शान्तिमय वातावरण का कसा प्रभावपूण उपयोग आन्तरिक श्रमजीवी वग नीचे से ऊपर की ओर एक महत् धम का प्रचार करने और अन्त मे एक सावभौम धममत की स्थापना करने म कर लेता है।

उदाहरणस्वरूप मिस्र के मध्य साम्राज्य का, जो मूल मिस्री सावभौम राज्य था, ओसीरी धमसघ (चच) द्वारा इसी प्रकार उपयोग कर लिया गया। नवबेबिलोनीय साम्राज्य जो बबिलानीय सावभौम राज्य था तथा उसके बाद आने वाले विजातीय उत्तराधिकारी राज्य अर्थात् एकेमीनियाई (एकेमीनियन फारसी) साम्राज्य एव सेल्यूसीद बादशाहत का भी, जडाइज्म (यहूदी धम) और उसके भ्रातृधम जरथुस्त्र मत द्वारा इसी प्रकार उपयोग कर लिया गया। रोमीय शान्ति के कारण जो अवसर एव सुविधाए प्राप्त हुइ *उनका अच्छा उपयोग* बहुतेरे—प्रतिस्पर्द्धी श्रमजीवी धर्मों ने—साइबील एव ईसिस की पूजा और मिथ्र मत एव ईसाइयत के रूप म—कर लिया। इसी प्रकार

सिनाई (सनिक चीनी) जगत् मे 'पक्स हानिका' (ट्रान शासन) ने जो सुअवसर प्रदान किये उसकी प्रतिस्पर्द्धा मे एक भारतीय श्रमजीवी धम महायान तथा एक स्वदेशी सिनाई श्रमजीवी धम तावबाद उठ खडा हुआ। इसी तरह की सुविधा इस्लाम को अरब खिलाफत न और हिन्दू धम को गुप्त राज्य ने प्रदान की। कुछ समय तक मगोल साम्राज्य ने जिसन पसिफिक (प्रशात) सागर के पश्चिमी तट स लेकर बाल्टिक के पूर्वी तट तक और साइबेरियाई टुड्रा के दक्षिणी छोर से अरब मरुस्थल के उत्तरी छोर तथा बर्मी जगलो तक अपने खानाबदोशी प्रभाव का विस्तार कर लिया था, कितने ही प्रति स्पर्द्धी धर्मों के धमप्रचारको की कल्पना को अपनी सुविधाओ से प्रभावित किया। और जब हम इसका ख्याल करते हैं कि उसकी यह अवधि कितनी छोटी थी तो यह देखकर आश्चय होता है कि ईसाइया के नेस्तोरियन तथा पश्चिमी कथलिक धमसघो ने, इस्लाम ने तथा महायान बुद्धमत क लामावादी तत्र सप्रदाया ने किस सफलता के साथ उसका उपयोग किया।

सावभौम राज्य के अनुकूल सामाजिक एव मनोवनानिक वातावरण का प्राय लाभ उठाने वाले महन् धर्मों न कभी-कभी इस वरदान का अनुभव भी किया और एक ऐसे सत्य-सर्वेश्वर की कृपा के रूप म उसका वणन किया जिसके नाम पर वे उपदेश देते आ रहे थे। दयूतेरोईसाया इजरा एव नेहेमिया के धमग्रन्थो के प्रणेताओ की दृष्टि मे एकेमीनियाई साम्राज्य यहूदी धम के प्रचार के लिए यहवा के हाथ म एक साधन रूप था। इसी प्रकार महान् पोप लियो (४४०-६१ ई) ने मत प्रकट किया कि रोमन साम्राज्य ईसाई धम के प्रचार के लिए ईश्वर-द्वारा ही निर्मित हुआ है। अपने बयासीवें प्रवचन म उन्होंने लिखा अनुग्रह के इस अनिवचनीय काय (अवतार) के परिणाम का प्रचार सम्पूण विश्व म करने के लिए ही पहिले स ईश्वर ने रोमन साम्राज्य का निर्माण कर दिया।'

बाद म तो यह धारणा ईसाई विचारधारा की एक सामान्य बात हो गयी और मिल्टन के काव्य म भी प्रस्फुटित हुई।[1]

ऐसा महन् सयोग ईश्वर प्रेरित लगता होगा फिर भी एक सफल धमप्रचारक मठ और जिस सावभौम राज्य के अन्तगत वह काम करता है उसके बीच के सम्बन्धो को देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि सहिष्णुता के जिस वातावरण के कारण उस एक अनुकूल समारभ का अवसर प्राप्त होता है वह सदा कहानी के अत तक कायम नहीं

[1] No war or battle s sound
Was heard the world around
The idle spear and shield were high uphung
The hooked chariot s ood
Uns ain d by hostile blood
The trumpet spake not to the armed throng
And kings sat s ill with awful eye
And if they surely knew their sorran Lord was by
—Ode on the Morning of Christ s Nativety

रह पाता वल्कि कभी-कभी बिलकुल विपरीत रूप धारण कर लेता है। निश्चय ही ऐसे भी उदाहरण हैं जिनसे इस तरह का कोई अशुभ परिणाम नही निकला। ओसीरियाई धमसघ (चच) को कभी उत्पीडन बर्दाश्त नही करना पडा और अन्त मे वह मिस्री प्रभुताशील अल्पमत के धम म निमग्न हो गया। इसी तरह चीनी जगत् मे एक ओर महायान एव ताव धममतो तथा दूसरी ओर हान साम्राज्य के बीच तब तक शान्ति बनी रही जब तक दूसरी शती ईसवी के अन्तिम भाग मे सिनाई (चीनी) सावभौम राज्य का विघटन नही हो गया।

जब हम यहूदी धम एव जरथुस्त्र मत तक पहुचते हैं तब हमारे लिए यह कहना मुश्किल हो जाता है कि उनका अन्तिम सम्बन्ध नवबविलोनियाई या एकेमीनियाई साम्राज्य क साथ कैसा रहता क्योकि इतिहास की बडी ही प्रारभिक अवस्था म इन सावभौम राज्यो का अन्त हो गया। हम केवल इतना ही जानते हैं कि जब एकेमीनियाई शासन का स्थान सहसा सेलुसीद ने ले लिया और फलत फुरात (यूफ्रेतिस) के पश्चिम म रोमी शासन स्थापित हो गया तब एक विजातीय यूनानी सस्कृति (सेलूसाद तथा रोमीय शक्तिया जिसके क्रमागत राजनीतिक अस्त्र थे) की टक्कर ने यहूदी एव जरथुस्त्र दोना मतो को सम्पूण मानव जाति के लिए मुक्ति माग का उपदेश देने के उनके अपने मूल उद्देश्य से विरत कर दिया और यूनानी समाज के आक्रमण का सीरियाई समाज ने जो तुर्की बतुर्की जवाब दिया उसके सिलसिले मे उन्हे सास्कृतिक युद्ध का एक अस्त्र बना दिया गया। यदि एकेमीनियाई साम्राज्य अपने पर-यूनानी अवतार अरब खिलाफत की भाति पूरी आयु तक रहा होता तब हम एक सहिष्णु एकेमीनियाई शाही शासन के नीचे जरथुस्त्र मत या यहूदी मत द्वारा भी उस इस्लाम की सफलताए प्राप्त करने की कल्पना कर सकते जो एक ओर उम्मीयदा की उदासीनता और दूसरी ओर अब्बासाइया द्वारा गर मुस्लिमो के लिए निर्धारित सहिष्णुता के हार्दिक आचरण से लाभ उठाकर, किसी असनिक बल की कुण्ठापूण सहायता से विकृत हुए बिना ही, धीरे धीरे तबतक अपना विस्तार करता गया जबतक कि अब्बासाई शासन का अन्त हो जाने के बाद, आती हुई राजनीतिक शून्यता के तूफान से भयभीत लोगो ने मस्जिद के प्रागण मे शरण पाने के लिए स्वेच्छा से सामूहिक धमपरिवतन कराना नही शुरू कर दिया।

इसी प्रकार गुप्त साम्राज्य के नीचे जो मूल भारतीय मौय सावभौम राज्य का पुनगठित रूपमात्र था, बुद्ध परवर्ती महत्तर हिन्दू धम द्वारा बौद्धधम-दशन का जब निष्कासन हो रहा था तो राजवश न बौद्धजीवन के प्रति न केवल अविरोध भाव रखा वर किसी प्रकार के सरकारी उत्पीडन से उसमे बाधा भी नही डाली, क्याकि वसा करना भारतीय सभ्यता के सहिष्णु एव सहतिवादी (Syncretistic) धार्मिक वैशिष्ट्य के लिए विजातीय होता।

सावभौम राज्य की शान्ति स लाभ उठाने वाले महत्तर धर्मों के प्रति शुरू से अन्त तक शासन द्वारा सहिष्णुता रखन के इन उदाहरणो के विपरीत ऐसे भी उदाहरण हैं जिनमे सरकारी उत्पीडन के कारण धम के शान्तिमय विकास को बाधा पहुची है

और उसे या तो मुकुलित होते ही विनष्ट कर दिया गया है या उसे फिर राजनीति में जाने अथवा शस्त्र ग्रहण करने को विवश करके अस्वाभाविक बना दिया गया है। उदाहरणस्वरूप सत्रहवीं सदी में जपान तथा अठारहवीं सदी में चीन में पाश्चात्य कैथोलिक ईसाई मत का पूर्णत मूलोच्छेद कर दिया गया। मंगोलों की अधीनता तले चीन में इस्लाम केवल दो प्रान्तों में जड़ जमा सका और कभी उसकी स्थिति एक विजातीय अल्पमत से अधिक दृढ़ नहीं हो सकी। अपनी साम्प्रदायिक स्थिति के कारण ही उसमें बार-बार सैनिक विस्फोट होते रहे।

रोमी सम्राटों के शासन में ईसाई धर्म के साथ जो बदसलूकी होती रही और जो उस शासन पर ईसाई धर्म की विजय की एक भूमिका मात्र थी उपयुक्त उदाहरणों की तुलना में बहुत मामूली थी। जिन तीन शक्तियों का अन्त कान्स्टैंटाइन के धर्म परिवर्तन के साथ हुआ उनमें रोमीय नीति के विपरीत जाने का खतरा चर्च के लिए बराबर बना रहा क्योंकि शाही युग में राज्य को सब प्रकार के निजी सम्पर्कों के सन्देह का भूत तो निरन्तर लगा ही रहा किन्तु उससे भी पुरानी एवं चित्र पर गहरी खचित एक रोमी परंपरा और थी—विदेशी धर्मों के प्रचार एवं आचरण के लिए निर्मित निजी संस्थाओं के प्रति विशेष विरोध भावना। और यद्यपि रोम सरकार ने इस *कठोरतम नीति को दो उल्लेखनीय मामलों में शिथिल कर दिया था* (हनीबाली युद्ध के संकट के समय सरकारी स्वागत में साइबील की पूजा के मामले में तथा यहूदी सिद्धान्त को धर्म के रूप में निरन्तर सहिष्णुता के साथ उस समय भी बर्दाश्त करने में जब यहूदी धर्मोन्मादियों द्वारा रोम को यहूदी राज्य का उन्मूलन कर देने के लिए उत्तेजित किया गया) फिर भी ईसा पूर्व दूसरी शती में बक्खानलों का दमन आगे आने वाली तीसरी शती खृष्टाब्द में ईसाइयों के पीड़न का पूर्वाभासमात्र था। किन्तु ईसाई धर्मसंघ (चर्च) ने अपने को एक राजनीतिप्रधान सैनिक संघ में बदलकर सरकारी दमन का जवाब देने के प्रलोभन का विरोध किया और इसके पुरस्कार स्वरूप सार्वभौम धर्मसंघ एवं भविष्य का वारिस बनने में उसने सफलता भी पायी।

फिर भी खृष्टीय धर्मसंघ (क्रिश्चियन चर्च) इस परीक्षा में अक्षत नहीं रह सका। रोमी पशुबल पर ईसाई उदारता एवं सज्जनता की विजय के पाठ को हृदयगम करने की जगह जिस पाप ने उनको असफल कर रखा था उसी को अपनी छाती पर लेकर अपने पराभूत उत्पीडकों को उसने सेंत में ही एक दोष प्रक्षालन एवं मरणान्तर नैतिक प्रतिशोध का अवसर प्रदान कर दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि वह स्वयं उत्पीड़क बन गया और बहुत दिनों तक वैसा बना रहा। इस प्रकार सार्वभौम राज्यों का निर्माण करने एवं उन्हें कायम रखने की शक्तिशाली अल्पमत की सफलता के आध्यात्मिक स्तर पर जहां आन्तरिक श्रमजीवी वर्ग उच्चतर धर्मों के स्रष्टा के रूप में प्रधान लाभभागी होता है वहां राजनीतिक स्तर का लाभ दूसरे लोग भोगते हैं। सार्वभौम राज्य के तत्त्व [illegible] शक्ति का मनोविज्ञान शासकों को अपना राजनीतिक [illegible] रूपान्तर [illegible] ता है। इस तरह मनोवश [illegible] नम्यीकरण होता है न शासित [illegible]

अल्पमत को होता है न आन्तरिक श्रमजीवी वर्ग को। लाभ उठाने वाले तो साम्राज्य-सीमा के बाहर से घुस आने वाले होते हैं और वे या तो विघटनशील समाज के बाह्य श्रमजीवी वर्ग के सदस्य होते हैं या फिर किसी विजातीय सभ्यता के प्रतिनिधि होते हैं।

इस अध्ययन के किसी पिछले प्रसग म हम प्रदर्शित कर चुके हैं कि जो घटना किसी सभ्यता के विलोप या पजीयन करती है—यह बात इसके पूर्वगामी अवरोध एव विघटन से भिन्न है—प्राय मृत समाज के सार्वभौम राज्य के अधिकार क्षेत्र पर या तो बाहर से आने वाले बर्बर युद्ध नेताओं अथवा एक भिन्न संस्कृति को लेकर किसी दूसरे समाज से आने वाले विजेताओं द्वारा कब्जा कर लिये जाने के रूप मे प्रकट होती है। कभी-कभी यह कार्य एक के बाद एक उपयुक्त दोनों श्रेणियों द्वारा भी होता है। लूटपाट के अभिप्राय से आने वाले बर्बर अथवा विजातीय आक्रमणकारी, सार्वभौम राज्य द्वारा प्रचारित एव प्रस्तुत मनोवैज्ञानिक जलवायु का दुरुपयोग कर जो लाभ उठा लेते हैं वह प्रत्यक्ष है और क्षणकालिक दृष्टि से आकर्षक भी दिखायी पडता है। इस विषय मे भी हम पहिले ही प्रकट कर चुके है कि एक टूक टूक होकर गिरते हुए सार्वभौम राज्य के परित्यक्त क्षेत्र के बर्बर आक्रमणकर्ता ऐसे वीर नायक है जिनका कोई भविष्य नहीं है और आगामी पीढ़िया निश्चित रूप से उन्हे बेमरत दुस्साहसिया के रूप मे ही पहचानती किन्तु महत काव्य की भाषा मे अपने समाधि-लेख लिखने की उनकी प्रतिभा के कारण उनके कुत्सित दुराचरण पर जो अनुदर्शी इन्द्रजाल छा जाता है उसके कारण उनका यह रूप छिप जाता है। इलियड द्वारा एक एकिलिस भी नायक के रूप मे परिवर्तित किया जा सकता है। जहा तक किसी विजातीय सभ्यता के लडाकू धर्मोपदेशकों की सफलताओं का सवाल है धर्मसघो (चर्चों) की ऐतिहासिक उपलब्धियो की तुलना मे वे भी प्रवचनापूर्ण और निराशाजनक मालूम पडती हैं।

दो ऐसे मामलो मे जिनकी पूरी कथा हमे मालूम है हम देख चुके हैं कि एक सभ्यता जिसका सार्वभौम राज्य विजातीय विजेताओं द्वारा अकाल मे ही समाप्त कर दिया गया है, पृथिवी पर जाकर वहा शताब्दियों तक निष्क्रिय व सुप्त पडी रहती और उपयुक्त अवसर की बाट देखती रहती है तथा अन्ततोगत्वा अनुकूल अवसर पाकर आक्रामक सभ्यता को निकाल बाहर करती है और अपने इतिहास की सार्वभौम राज्य वाली अवस्था का उसी बिन्दु पर पुन आरम्भ कर देती है जहा से उसमे विच्छेद आया था। भारतीय सभ्यता ने लगभग छ सौ वर्षों बाद इस कौशल में सफलता प्राप्त की और सीरियाई सभ्यता ने लगभग एक हजार वर्ष तक यूनानी तूफान मे डूबे रहने के बाद इस कौशल का सफल प्रदर्शन किया। गुप्त साम्राज्य और अरब खिलाफत उनकी सफलताओं के स्मारक थे जिनके रूप मे उन्होने मौर्य साम्राज्य तथा एकेमीनियाई साम्राज्य मे मूलभूत रूप से निहित सार्वभौम राज्यों को क्रमश फिर से स्थापित किया। दूसरी ओर देखते हैं कि यद्यपि बबिलोनियाई समाज ने अपनी सांस्कृतिक अभिता नबुचदनजर के नवबबिलोनियाई साम्राज्य के साइरस द्वारा नष्ट कर दिये जाने के लगभग ६०० वर्षों बाद तक भी कायम रखी और जब मिस्री समाज

थे 'मध्यराज्य' के विनाश के समय उसके नष्ट हो जाने की आशा की जा रही थी तब भी दो हजार साल तक वह बना रहा। फिर भी सीरियाई समाज पिण्ड में अन्ततोगत्वा बबिलोनियाई और मिस्री समाज विलीन हो गये।

इस प्रकार इतिहास की गवाही के अनुसार एक सभ्यता द्वारा दूसरी को बलपूर्वक निगल जाने और पचा लेने के प्रयत्न के दो विभिन्न उपसंहार दिखायी पड़ते हैं किन्तु इस गवाही से यह भी पता चलता है कि प्रयत्न के अन्त में सफल हो जाने पर भी परिणाम के निश्चित होने के पूर्व सदियाँ लगा, कभी कभी तो हजार वर्ष का, युग बीत जाता है। इसलिए पाश्चात्य सभ्यता ने पिछले दिनों अपनी समकालिक सभ्यताओं को निगल जाने का जो प्रयास किया है उसके परिणाम के विषय में कोई भविष्यवाणी करने में बीसवीं शताब्दी के इतिहास लेखकों को संकोच होगा है क्योंकि इन पुराने से पुराने प्रयत्नों का आरम्भ हुए अभी दिन ही कितने गुजरे हैं और इस कहानी के उद्घाटन का कितना थोड़ा अंश अभी हमारे सामने आया है।

उदाहरण के लिए मध्य अमरीकी जगत पर स्पेन की विजय के मामले को ले सकते हैं। कल्पना की जा सकती है कि जब नूतन स्पेन की स्पेनी वायसराय प्रथा वाला विजातीय विररप समाप्त कर दिया गया तथा मक्सिको के प्रजातन्त्र ने उसका स्थान ले लिया और पाश्चात्य राष्ट्रमण्डल में उसे प्रवेश भी मिल गया तब पश्चिमी समाज व्यवस्था में मध्य अमरीकी समाज का विलीन हो जाना एक अकाट्य तथ्य ही होगा। पर इतना होते हुए भी १८२१ ई० की मेक्सिको क्रान्ति के बाद १९१० ई० की क्रान्ति आ गयी जिसमें दफनाये हुए निष्क्रिय स्वदेशी समाज में सहसा गति दिखायी पड़ी उसने अपना सिर उठाया और संस्कृति की उन परतों को तोड़कर बाहर निकल आया जिन्हें कविन्मय हाथों ने समाधि पर लगा रखा था—उस समाधि पर जिसमें स्पेनी विजेताओं ने यह समझकर उसका शरीर डाल दिया था कि वह मर चुका है। मध्य अमरीका के इस अपशकुन ने सवाल खड़ा कर दिया है कि उस ऊंची नयी दुनिया में तथा अन्यत्र भी पाश्चात्य ईसाइयत की प्रतीयमान सांस्कृतिक विजयों ने जो सफलता प्राप्त की है वह इसी तरह आगे चलकर कहीं केवल आभासिक और क्षणजीवी न सिद्ध हो।

चीन कोरिया एवं जपान की सुदूरपूर्वीय सभ्यता जो पिछली सदी में हमारे यह लिखन के पूर्व पश्चिम के प्रभाव से विजड़ित हो गयी निश्चय ही उससे कहीं ज्यादा शक्तिमती थी जितनी मध्य-अमरीका सभ्यता किसी भी युग में हो सकती थी और यदि मक्सिको की यह स्वदेशी संस्कृति चार सौ वर्षों के सुप्रास के बाद भी अपना सिर फिर उठा सका तो इसके कारण यह मान लेना जल्दबाजी होगी कि सुदूरपूर्वीय संस्कृति के भाग्य में पश्चिम अथवा रूस द्वारा आत्मसात्करण कर लिया जाना पचा लिया जाना लिखा है। जहाँ तक हिन्दू जगत का सवाल है १९४७ ई० में ब्रिटिश राज्य के स्थान में स्वदेश में जो राज्यों की जो स्थापना हुई उसे १८२१ ई० में हुई मक्सिको की क्रान्ति का समानुरूप पश्चिम प्रतिरूप कहा जा सकता है। जब मैं लिख रहा हूँ तब यह भविष्यवाणी की जा सकती है कि इस मामले में राजनीतिक दासता से मुक्ति के

जिस काय ने इन मुक्त राष्ट्रो को पाश्चात्य राष्ट्रमण्डल मे ले आकर पश्चिमीकरण के उपक्रम पर ऊपरी तौर से ही सही मुहर लगा दी, वह पाश्चात्य धारा के ज्वार मे क्षणिक रूप से डूबे समाज की सास्कृतिक मुक्ति की ओर पहला कदम था।

और देखें तो जिन अरब देशो को हाल मे ही पाश्चात्य राष्ट्रमण्डल म प्रवश प्राप्त हुआ है वे अपनी इस महत्त्वाकाक्षा की पूर्ति इसीलिए कर सके कि वे एक ओर उस्मानी तुर्की राजनीतिक प्रभुता की शृखला तोड फेंकने म तथा दूसरी ओर चार शतियो से अधिक काल के पुते हुए ईरानी सस्कृति के लेप को धो बहाने मे सफल हुए। तब इस बात मे शका करने का क्या कारण हो सकता है कि अरबी सस्कृति की प्रच्छन्न जीवनी शक्ति जल्दी या देर से उससे कही अधिक विजातीय पश्चिमी सस्कृति के प्रभाव से अपने को मुक्त करने मे सक्षम नही होगी।

सास्कृतिक मत-परिवतन के अतिम परिणाम के सर्वेक्षण के सामान्य प्रभाव स हमारे इस निष्कष की पुष्टि हो गयी कि सावभौम राज्य द्वारा जो भी सेवाए सभव हैं उनका निश्चित लाभ एकमात्र आन्तरिक श्रमजीवी वग ही उठाता है। बाह्य श्रमजीवी वग को जो भी लाभ मिलते हैं वे सदा ही आभासिक होते है। इसी प्रकार विजातीय सस्कृति को प्राप्त होने वाले लाभ के भी अत मे अस्थायी सिद्ध होने की ही सभावना रहती है।

(३) शाही सस्थाओ की सेवाक्षमता

सावभौम राज्यो की दो सामान्य विशिष्टताओ—उनकी सवाहकता और उनकी शान्ति के—प्रभावो का परीक्षण कर लेन के बाद हम उन सेवाओ का सर्वेक्षण आरम्भ कर सकते हैं जो सावभौम राज्यो द्वारा जान-बूझकर निर्मित एव सचालित की गयी विशेष ठोस सस्थाओ के जरिये उनके लाभानुयोगिया को प्राप्त होती है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि इन सस्थाओ को अपने ऐतिहासिक लक्ष्य (मिशन) की प्राप्ति ऐसे कार्यों द्वारा करनी पडती है जिनके लिए उनके कर्त्ताओ ने कभी सोचा भी न था। जरा व्यापक अथ म सस्था शब्द के उपयोग के अन्तगत हम निम्नलिखित विषया को ले सकते हैं—सचार-साधन (communications), गढसेना और बस्तिया, प्रान्त, प्रमुख नगर, सरकारी भाषाए एव लिपिया, विधि-व्यवस्था, पचाग नाप-तौल के पैमाने और बाट, मुद्रा, सेनाए, असनिक सेवाए, नागरिकता। अब हम इनमे से प्रत्येक का सिंहावलोकन करेंगे।

सचार-साधन

सचार-साधनो का नाम इस सूची के शीषस्थान पर आता है, क्योंकि वे एक ऐसी प्रमुख सस्था है जिन पर सावभौम राज्य का अस्तित्व ही निभर करता है। अपने उपनिवेशो पर सनिक अधिकार रखने के लिए ही नही वर राजनीतिक नियत्रण रखने के लिए भी व अस्त्र का काम देते हैं। मनुष्यकृत इन शाही जीवन रेखाओ के अतगत मनुष्य द्वारा बनायी सडको के अलावा और बातें भी आती हैं क्योंकि नदिया,

से 'मध्यराज्य' के विनाश के समय उसके नष्ट हो जाने की आशा की जा रही थी तब भी दो हजार साल तक वह बना रहा। फिर भी सीरियाई समाज पिण्ड में अन्ततोगत्वा बबिलोनियाई और मिस्री समाज विलीन हो गये।

इस प्रकार इतिहास की गवाही के अनुसार एक सभ्यता द्वारा दूसरी को बलपूर्वक निगल जाने और पचा लेने के प्रयत्न के दो विभिन्न उपसंहार दिखायी पड़ते हैं किन्तु इस गवाही से यह भी पता चलता है कि प्रयत्न के अन्त में सफल हो जाने पर भी परिणाम के निश्चित होने के पूर्व सदियों लंबा कभी-कभी तो हजार वर्ष का, युग बीत जाता है। इसलिए पाश्चात्य सभ्यता ने पिछले दिनों अपनी समकालिक सभ्यताओं को निगल जाने का जो प्रयास किया है उसके परिणाम के विषय में कोई भविष्यवाणी करने में बीसवीं शताब्दी के इतिहास लेखकों को संकोच होता है क्योंकि इन पुराने से पुराने प्रयत्नों का आरम्भ हुए अभी दिन ही कितने गुजरे हैं और इस कहानी के उद्घाटन का कितना थोड़ा अंश अभी हमारे सामने आया है।

उदाहरण के लिए मध्य अमरीकी जगत पर स्पेन की विजय के मामले को ले सकते हैं। कल्पना की जा सकती है कि जब नूतन स्पेन की स्पेनी वायसराय प्रथा वाला विजातीय विकल्प समाप्त कर दिया गया तथा मक्सिको के प्रजातन्त्र ने उसका स्थान ले लिया और पाश्चात्य राष्ट्रमण्डल में उसे प्रवेश भी मिल गया तब पश्चिमी समाज व्यवस्था में मध्य अमरीकी समाज का विलीन हो जाना एक अकाट्य तथ्य ही होगा। पर इतना होते हुए भी १८२१ ई० की मेक्सिको क्रांति के बाद १९१० ई० की क्रांति आ गयी जिसमें दफनाये हुए निष्क्रिय स्वदेशी समाज में सहसा गति दिखायी पड़ी उसने अपना सिर उठाया और संस्कृति की उन परतों को तोड़कर बाहर निकल आया जिन्हें वर्णसंकरमय हाथों ने समाधि पर लगा रखा था—उस समाधि पर जिसमें स्पेनी विजेताओं ने यह समझकर उसका शरीर डाल दिया था कि वह मर चुका है। मध्य अमरीका के इस अपशकुन ने सवाल खड़ा कर दिया है कि उस ऊंची नयी दुनिया में, तथा अन्यत्र भी पाश्चात्य ईसाइयत की प्रतीयमान सांस्कृतिक विजयों ने जो सफलता प्राप्त की है वह इसी तरह आगे चलकर कहीं केवल आभासिक और क्षणजीवी न सिद्ध हो।

चीन कोरिया एवं जापान की सुदूरपूर्वीय सभ्यता जो पिछली सदी में हमारे सहनिगलन के पूर्व पश्चिम के प्रभाव से विजड़ित हो गया निश्चय ही उससे कहीं ज्यादा शक्तिमती थी जितनी मध्य-अमरीकी सभ्यता किसी भी युग में हो सकती थी और यदि मक्सिको की यह स्वदेशी संस्कृति चार सौ वर्षों के प्रयास के बाद भी अपना सिर फिर उठा सकी तो इसके कारण यह मान लेना जल्दबाजी होगी कि सुदूरपूर्वीय संस्कृति के भाग्य में पश्चिम अथवा रूस द्वारा आत्मसात्करण कर लिया जाना पचा लिया जाना लिखा है। जहाँ तक हिन्दू जगत का सवाल है १९४७ ई० में ब्रिटिश राज्य के शासन के अन्त में राज्यों की जो स्थापना हुई उसे १८२१ ई० में हुई मक्सिको की [illegible] कहा जा सकता है। जब मैं लिख रहा हूँ तब यह भविष्यवाणी की जा सकती है कि इस मामले में राजनीतिक स्वतन्त्रता से मुक्ति के

जिस काय ने इन मुक्त राष्ट्रो को पाश्चात्य राष्ट्रमण्डल मे ले आकर पश्चिमीकरण के उपक्रम पर ऊपरी तौर से ही सही मुहर लगा दी, वह पाश्चात्य धारा के ज्वार मे क्षणिक रूप से डूबे समाज की सास्कृतिक मुक्ति की ओर पहला कदम था।

और देखें तो जिन अरब देशो को हाल मे ही पाश्चात्य राष्ट्रमण्डल मे प्रवेश प्राप्त हुआ है वे अपनी इस महत्त्वाकाक्षा की पूर्ति इसीलिए कर सके कि व एक ओर उस्मानी तुर्की राजनीतिक प्रभुता की शृखला तोड फेंकन म तथा दूसरी ओर चार शतियो से अधिक काल के पुते हुए ईरानी सस्कृति के लेप को धो बहाने मे सफल हुए। तब इस बात म शका करने का क्या कारण हो सकता है कि अरबी सस्कृति की प्रच्छन्न जीवनी शक्ति जल्दी या देर से उससे कही अधिक विजातीय पश्चिमी सस्कृति के प्रभाव से अपने को मुक्त करने मे सक्षम नही होगी।

सास्कृतिक मत परिवतन के अतिम परिणाम के सर्वेक्षण के सामान्य प्रभाव स हमारे इस निष्कप की पुष्टि हो गयी कि सावभौम राज्य द्वारा जो भी सेवाए सभव हैं उनका निश्चित लाभ एकमात्र आतरिक श्रमजीवी वग ही उठाता है। बाह्य श्रमजीवी वग को जो भी लाभ मिलते हैं वे सदा ही आभासिक होत है। इसी प्रकार विजातीय सस्कृति का प्राप्त होन वाले लाभ के भी अत मे अस्थायी सिद्ध होने की ही सभावना रहती है।

(३) शाही सस्थाओ की सेवाक्षमता

सावभौम राज्यो की दो सामान्य विशिष्टताओ—उनकी सवाह्कता और उनकी शाति के—प्रभावो का परीक्षण कर लेने के बाद हम उन सेवाओ का सर्वेक्षण आरम्भ कर सकते हैं जा सावभौम राज्यो द्वारा जान-बूझकर निर्मित एव सचालित की गयी विशेष ठोस सस्थाआ के जरिये उनके लाभानुयोगिया को प्राप्त होती है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि इन सस्थाआ को अपने ऐतिहासिक लक्ष्य (मिशन) की प्राप्ति ऐसे कार्यों द्वारा करनी पडती है जिनके लिए उनके कर्त्ताओ ने कभी सोचा भी न था। जरा व्यापक अथ म सस्था शब्द के उपयोग के अन्तगत हम निम्नलिखित विषयो को ले सकते हैं—सचार-साघन (communications), गढसेना और बस्तिया, प्रान्त, प्रमुख नगर, सरकारी भाषाए एव लिपिया, विधि-व्यवस्था, पचाग नाप-तौल के पमाने और बाट, मुद्रा, सेनाए, असनिक सेवाए, नागरिकता। अब हम इनम से प्रत्येक का सिंहावलोकन करेंगे।

सचार-साधन

सचार-साधनो का नाम इस सूची के शीषस्थान पर आता है, क्योकि वे एक ऐसी प्रमुख सस्था है जिन पर सावभौम राज्य का अस्तित्व ही निभर करता है। अपने उपनिवेशा पर सनिक अधिकार रखने के लिए ही नही वर राजनीतिक नियत्रण रखने के लिए भी वे अस्त्र का काम देते हैं। मनुष्यकृत इन शाही जीवन रेखाआ मे अतगत मनुष्य द्वारा बनायी सडका के अलावा और बातें भी आती हैं क्योकि नदिया,

समुद्रा एव रेगिस्ताना वाले प्राईति राजमाग तवतर सचार क व्यावहारिक साधन नही उपस्थित करते जवतर कि प्रभावोत्पादक रूप म उनकी समुचित रक्षा एव देखभाल न की जाय। फिर सचार क लिए विविध प्रकार क साधना की भी जरूरत पडती है। इतिहास को अभी तक जितने सावभौम राज्या का पता लग सका है उनम से अधिकाश म इन साधना न शाही डाकसेवा का रूप ग्रहण कर लिया था और यदि हम उसी सेवा के अधिकारियो को परिचित दृष्टि से अभिहित करना चाहे तो कह सकते हैं कि— डाकिया या पोस्टमैन ही प्राय पुलिसमैन भी होते थे। ईसा-पूर्व की तीसरी सहस्राब्दी म सुमेर एव अक्काद म जो साम्राज्य स्थापित हुए थे उनम सावभौम डाकसेवा राज्य शासन-यन्त्र का एक अग थी। विश्व क उसी भाग म दो हजार वष बाद जो एकमीनियाई साम्राज्य स्थापित हुआ उसम हम देखते हैं कि यही सस्था और भी उच्च स्तर पर सघटित एव कुशल हो गयी है। सूबो पर केन्द्रीय शासन का नियत्रण स्थापित करन म डाक सचार-व्यवस्था क उपयोग की एकमीनियाई नीति क दशन हमे आगे चलकर रोम साम्राज्य एव अरब खिलाफत म भी होत हैं।

इसम आश्चय की कोई बात नही है कि इसी प्रकार की सस्थाए चीन से पेरू तक प्राय सभी सावभौम राज्यो म पायी जाती थी। सिनाई सावभौम राज्या के सस्थापक सस्थापक सिन शी ह्वाग-ती न अपनी राजधानी से निकलने वाली कितनी ही सडकें बनवायी थी और उनकी देखरेख के लिए व्यापक रूप म सघटित निरीक्षका की नियुक्ति की थी। इसी प्रकार इकाओ न अपन द्वारा विजित भूमि का मार्गों क निर्माण द्वारा ही सघटित किया था। कुजको से क्वीतो तक की दूरी यो एक हजार मील से अधिक थी पर सडक-द्वारा वह पाच सौ मील क लगभग पडती थी और आवश्यकता पडने पर १० दिन की छोटी-सी अवधि म दोनो क बीच सन्देश पहुचाया जा सकता था।

स्पष्ट है कि सावभौम राज्यो की सरकारो द्वारा निर्मित एव अनुरक्षित सडको का उपयोग हर तरह क ऐसे कामो क लिए भी किया जाता था जिनके लिए उनका निर्माण नही हुआ था। रोम साम्राज्य के उत्तरकाल म आक्रामक बाह्य श्रमजीवी वग के युद्धपिपासु दल शायद अपनी विनाशक कारवाइयो को इतनी तेजी के साथ न बढा सकते यदि साम्राज्य ने अजाने ही उनके पहुचने क लिए इतने अच्छे साधन न प्रस्तुत कर दिये होते। किन्तु इससे कहीं अधिक रोचक व्यक्तियो का इन सडको पर दशन किया जा सकता है। जब आगस्टस न पिसीडिया पर रोमी शान्ति लाद दी तो वह अनजाने ही सत पाल की प्रथम प्रवचनयात्रा के लिए उनके पम्फीलिया म प्रवेश करने और पिसीडिया स्थित एतिओक ऐकोनियम लाइस्ट्रा एव डर्ब इत्यादि स्थाना म उनके निर्विघ्न भ्रमण क लिए माग तयार कर रहा था। और फिलिस्तीन के कैसारिया से इतालीय पुतेवली तक पाल को अपनी अन्तिम यात्रा म तूफान एव पोतभग की नैसर्गिक विपत्तियो के अतिरिक्त किसी मानवकृत कठिनाई का सामना न करना पडे इसलिए पाम्पे न जलदस्युओ को समुद्र से मार भगाया था।

पाल क उत्तराधिकारियो क लिए भी रोमीय शान्ति कभी ही सहायकारी

सामाजिक परिस्थिति की सृष्टि करती रही। रोमन साम्राज्य के अस्तित्व की दूसरी शती के उत्तर भाग मे लिया के सत आयरनेइयस ने जब समस्त यूनानी जगत म क्योलिक चच की एकता की सराहना करते हुए लिखा—"इस धमसिद्धान्त एव विश्वास को प्राप्त करने के बाद समस्त विश्व म फल जान पर भी चच उतनी ही सावधानी से इन खजानो की रक्षा करता है जसा वह एक ही छत के नीचे रह रहा हो'—तब वह साम्राज्य की सरल यातायात-व्यवस्था की ही प्रशसा कर रहे थे। दो सौ साल बाद फिर एक असन्तुष्ट नास्तिक इतिहासकार एम्मियानस मर्सेलिनस ने शिकायत करते हुए लिखा है—"धर्माध्यक्षो के झुण्ड इन धमपरिषदो के काय को एक स्थान से दूसर स्थान तक शीघ्रता से ल जाने मे डाक के सरकारी घोडो का प्रयोग करते थे।

हमारे सर्वेक्षण[1] से ऐसे कितने ही मामले प्रकाश म आये हैं जिनमे सचार व्यवस्था का अजाने लाभानुयायियो द्वारा उपयोग किया गया है, यहा तक कि हम इस प्रवृत्ति को एक ऐतिहासिक 'कानून' का चित्रण करने वाली मान सकते हैं। १६५२ ई मे इस निष्कष न, पश्चिमी सस्कृति के रग मे डूबती हुई उस दुनिया के भविष्य के विषय म बडा ही गुरु प्रश्न खडा कर दिया है जिसम इस अध्ययन का लेखक और उसके साथी रह रहे हैं।

१६५२ ई मे हम देख रह हैं कि पश्चिमी मानव का उपक्रम और कौशल साढे चार सदिया से पृथिवी मण्डल की सम्पूण निवास-योग्य एव पारगम्य भूमि को ऐसी सचार-व्यवस्था द्वारा एक-दूसर से सबद्ध करने मे लगा रहा है जो गति एव वेग म निरन्तर बढती गयी है। काठ के बने करावेल[2]—तथा गलियन पोत[3] जो पाल द्वारा चलाये जाने के कारण वायुदेव की कृपाकोर के भिखारी थे और जिनक कारण आधुनिक पश्चिमी यूरोप के अग्रज जलपोत-चालक सम्पूण सागरो के स्वामी बन गये थे, का स्थान उनकी अपेक्षा विशाल ऐसे लौहपोता ने ले लिया जा यन्त्र-द्वारा अपन आप प्रवर्तित हाते थे। पहले जिन धूलभरी राहा पर छ-छ घोडो की गाडिया चला करती थी उनका स्थान गिट्टी ककर की सडको तथा सीमेंट के बने राजमार्गों ने ले लिया और उन पर मोटरगाडिया दौडने लगी। फिर सडको की प्रतियोगिता म रेलें आ गयी और उसके भी बाद हवाई जहाजो ने सब जमीन एव जल पर चलन वाले साधना को पीछे छाड दिया। साथ ही साथ सम्पक-साधना मे भी निरन्तर उन्नति होती गयी जिसके कारण मनुष्य को स्वय सवाद लेकर एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाने की आवश्यकता न रह गयी। पूव व्यवस्था का स्थान तार, टेलीफोन एव बेतार के तार ने ल लिया और अब तो श्रवण के साथ दशन कराने वाले यन्त्र भी बन चुके हैं।

[1] जिस मूल ग्रन्थ का यह सक्षेप है उसमे श्री टायनबी ने कितने ही सावभौम राज्यों की सचार-व्यवस्था के उपयोग का सर्वेक्षण किया है।

[2] करावेल—१५ से १७वीं शताब्दी तक चलने वाले स्पेन-पुतगाल के द्रुतगामी लघु पोत।

[3] गलियन—बडे स्पेनी सनिक पोत।

इसके पूर्व कभी इतना विशाल क्षेत्र मानव-ससर्ग के प्रत्येक प्रकार के लिए इतने तीव्र रूप से 'सवाह्क' नही बन पाया था।

इन प्रगतियो ने उस समाज मे राजनीतिक स्तर पर ऐक्य-स्थापन की भविष्य वाणी की जिसम ये प्रौद्योगिक लक्षण प्रकट हो चुके थे। किन्तु य पक्तियाँ लिखने के समय तक पाश्चात्य जगत का राजनीतिक भाग्य अस्पष्ट ही है, यद्यपि एक प्रेक्षक निश्चित रूप से अनुभव कर सकता है कि देर-सबेर किसी न किसी रूप म राजनीतिक ऐक्य का आविर्भाव होगा ही किन्तु अब भी उसकी निश्चित तिथि एव रूप के विषय म कुछ नही कहा जा सकता। एक ऐसी दुनिया मे, जो अब भी राजनीतिक दृष्टि से साठ-सत्तर आत्मदृढ सवप्रभुतासम्पन्न सकीर्ण राज्यो म बटी हुई है, किन्तु जो अणुबम की सृष्टि कर चुकी है इतना तो स्पष्ट है कि राजनीतिक ऐक्य जबरदस्ती के प्रहार या आघात की परिचित प्रणाली द्वारा ही थोपा जा सकता है। यदि अन्य मामलो की तरह इस मामले म भी किसी जीवित महाशक्ति (महाराष्ट्र) द्वारा शान्ति जबरदस्ती थोपी जाय तो सभव है कि इस बलात् एकीकरण का मूल्य नैतिक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक एव राजनीतिक (भौतिक को छोड दें) विनाश के रूप मे उससे भी ज्यादा चुकाना पडे जितना इस तरह के अन्य मामलो म चुकाना पडा है। इसी के साथ इसकी भी तो सभावना की जा सकती है कि यह राजनीतिक एकीकरण स्वेच्छाकृत सह कारिता के विकल्प से ही सिद्ध हो जाय। किन्तु इस समस्या के लिए जो भी समाधान ढूढ निकालना सभव हो इतनी भविष्यवाणी तो विश्वासपूर्वक की ही जा सकती है कि सचार-साधनो का यह विश्वव्यापी जाल, अजाने लाभानुयोगियो-द्वारा परिचित व्यग्य पूर्ण रूप म उपयोग किया जाकर अपनी ऐतिहासिक सार्थकता को प्राप्त कर लेगा।

इस मामले म सबसे ज्यादा लाभ कौन उठावेगा ? बाह्य श्रमजीवी वर्ग के बबर तो मुश्किल मे ही ऐसा कर सकते हैं। यद्यपि हम आज भी अपने बीच विकृत सभ्यता के भगोड नव बबर अटिलाओ को हिटलर तथा उसके साथियो के रूप मे विकसित कर चुके हैं और आगे भी विकसित कर सकते हैं, किन्तु हमारी विश्वव्यापी व्यवस्था की सीमा के बाहर के करुणाजनक यथार्थ बबर अवशेषो से कोई खतरा नही है।[1] दूसरी ओर प्रचलित मन्तर धर्म जिनके कमक्षेत्र एक-दूसरे से मिल चुके थे अधविश्वासी पुरातन मानव की जागीर के निरन्तर कम होते जाने के कारण, अवसर का लाभ उठाने लग थे। एक दिन जिस सत पाल ने ओरोंते से टाइबर तक के भ्रमण का साहस किया था, उन्हें हम भूमध्यसागर से कही बड़े-बड़े समुद्रो म भ्रमण करते देखते हैं। भारत की अपनी द्वितीय यात्रा म[2] हम उन्ह एक पुर्तगाली जहाज पर उत्त

[1] १९५४ ई में, जब हम यह पुस्तक लिख रहे हैं केनिया के माऊ-माऊ आन्दोलन को हम इसके विरुद्ध एक प्रबल विरोध मान सकते हैं।

[2] ट्रावनकोर (त्रिवांकुर) में नेस्तोरियन सम्प्रदाय के आगमन एव आवास को भारत के ईसाई धर्म में दाखिल करने का प्रथम और अकबर के राजदरबार में जेसुइट मिशन के आगमन को दूसरा प्रयत्न मानकर यह बात लिखी गयी है।

माशा अन्तरीप को पार करते और फिर चीन की तीसरी यात्रा मे[1] मलक्का जलसन्धि होकर आगे जाते देखते हैं। एक दूसरे स्पेनी जहाज म सवार होकर अक्लान्त धर्मोपदेशक ने कान्जि से वेराक्रूज जाकर अतलान्त महासागर को तथा एकापुलको से फिलीपाइन जाकर प्रशान्त महासागर को पार किया। फिर जीवित धर्मों मे इन पाश्चात्य सचार साधनो का लाभ उठाने वाला केवल पाश्चात्य ईसाई धम ही नही था पाश्चात्य आग्नेयास्त्रो से लस कज़ाक अग्रगामियों के पीछे-पीछे आने वाले प्राच्य सनातन ईसाई धम (ईस्टन आर्थोडाक्स क्रिश्चियनिटी) ने भी वामनद से ओरवोत्स्क सागर तक का लम्बा रास्ता पार किया था। उन्नीसवी शती के अफीका म देखिए जब सत पाल, स्काटलण्ड के चिकित्सक धमप्रचारक डविड लिविंगस्टोन के छद्मवेश मे ईसा के सिद्धान्तो का उपदेश करते हुए बीमारो को नीरोग कर रहे थे, झीलो एव प्रपातो की खोज कर रहे थे तब इस्लाम भी बैठा न था, वह भी गतिमान था। यह बात कल्पना से परे नही है कि एक दिन महायान को अपनी उस अदभुत यात्रा की याद आ जाये जब उसने मगध से लोयाग तक विविध शाही मार्गों को पार किया था और अपनी यात्रा की इस उल्लासपूण स्मृति से शक्ति ग्रहण करके वह वायुयान एव रेडिया-जसे पाश्चात्य आविष्कार का उपयोग अपने मुक्ति के उपदेश-सम्बन्धी काय मे ठीक उसी प्रकार करने लगे जिस प्रकार कभी उसन मुद्रण यत्र के चीनी आविष्कार का उपयोग कर लिया था।

विश्व विस्तृत क्षेत्र पर धमप्रचार काय के इस उद्घाटन से जो समस्याए उठ खडी हुइ वे धार्मिक भूराजनीति (geopolitics) की समस्याए नही थी। धमप्रचार के नवीन क्षेत्रो मे स्थापित महत्तर धर्मों के प्रवेश ने यह सवाल खडा कर दिया कि किसी धम के शाश्वत तत्त्व को क्या उसकी पार्थिव घटनाओ स अलग किया जा सकता है? एक-दूसरे के साथ धर्मों का जो सघष हुआ, उसके कारण यह प्रश्न भी उठ खडा हुआ कि क्या आगे चलकर वे एक दूसरे के साथ जीवित रहेगे और दूसरो को जीवित रहने देंगे? अथवा इनम से कोई एक अन्य सबके ऊपर छा जायगा?

सावभौम राज्यो के कुछ शासको—जसे सिकन्दर, सीवेरस और अकबर—को धार्मिक उदारता का आदश बहुत प्रिय था। इनमे एक कुतर्की मस्तिष्क और मृदुल हृदय का समन्वय हो गया और उनके प्रयोग बिलकुल निष्फल सिद्ध हुए। प्रथम जेसुइट धमप्रचारको—जसे फ्रांसिस जेवियर या मेतियोरिक्की—को एक दूसरे ही आदश ने अनुप्राणित किया था। समुद्रो पर आधुनिक पाश्चात्य शिल्पियो ने जो विजय प्राप्त की थी तथा इस विजय के कारण उन्हे जो सुयोग प्राप्त हुए थे, उन्हे समझकर उनका उपयोग करने वाले किसी भी धम के सन्देशवाहको म वे प्रथम थे। साहसी आध्यात्मिक

[1] सातवीं शती में सीनगान में नेस्तोरियन सप्रदाय का प्रवेश हुआ था। इसे चीन को ईसाई धम में दीक्षित करने का प्रथम प्रयत्न माना गया है। फिर तेरहवीं-चौदहवीं शतियों मे, जो पाश्चात्य ईसाई धमप्रचारक जमीन के रास्ते आये उनके प्रयत्न का दूसरा और समुद्र माग से आने वाले सोलहवीं शती के पाश्चात्य ईसाई धम प्रचारक दल को चीन को ईसाई बनाने का तीसरा प्रयत्न माना गया है।

पथान्वेषक हिन्दू एव सुदूरपूव की दुनिया का ठीक उसी प्रकार ईसाई धम म आवर्धित करने का स्वप्न देखते थ जसे सत पाल एव उनके उत्तराधिकारियो ने अपने समय मे यूनानी दुनिया को मुग्ध कर रखा था किन्तु साहसिक धमनिष्ठा के साथ ही उनमे जो बौद्धिक अन्तदृष्टि थी उसके कारण वे यह भी देख-समझ गये कि एक कठोर शत को पूरा किये बिना उनका प्रयत्न सफल नही हो सकता। इसलिए उसके परिणामो को स्वीकार करने से वे पीछे नहा हटे। उन्होने समझ लिया कि धमप्रचारक को अपना धमसन्देश ऐसी बौद्धिक सौन्दर्यानुभूतिमूलक एव भावनामय भाषा मे प्रचारित करना चाहिए जो उसके भावी धर्मानुयायियो को प्रिय तथा अनुकूल लगे। अपने सारतत्त्व रूप मे सन्देश जितना ही क्रान्तिकारी हो उसे परिचित एव अनुकूल रूप मे उपस्थित करना उतना ही आवश्यक है। जिस असगत परिवेश मे वह धमसन्देश स्वय उन धम-प्रचारको (मिशनरियो) को अपनी सास्कृतिक परपरा द्वारा प्राप्त हुआ है उससे उन्हें रहित करना होगा और मिशनरियो को खुद ही यह निश्चित करने का उत्तरदायित्व अपने सिर उठाना होगा कि उनके धम को पारम्परिक रूप मे उपस्थित करने में कितना तत्त्व है और कितना घटनावश उसमे आ गया है।

इस नीति से एक दूसरी कठिनाई भी पैदा हो गयी। गैर ईसाई समाजो के रास्ते मे एक बाधक प्रस्तर खण्ड यह पडा था कि वे समझते थे कि मिशनरी उनका धम बदलने जा रहा है। इस बाधा को तो मिशनरी ने दूर कर दिया किन्तु ऐसा करके उसने अपने सहधर्मियो के परो के सामने एक चट्टान खडी कर दी। और हम देखते हैं कि इसी चट्टान से टकराकर भारत एव चीन के प्रारम्भ वाले, आधुनिक जेसुइट मिशन के धमप्रचार रूपी जलयान डूब गये। वे प्रतिद्वन्द्वी धम प्रचारको के पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष एव वटिकन (पोप) की अनुदारवादिनी नीति के शिकार हो गये। किन्तु यही इस कहानी का अन्त नही है।

जब पलेस्टाइन मे ईसाई धम का जन्म हुआ तो उसे जिन स्थानीय बाल वस्त्रो (swaddling cloths) मे लपेटा गया था वे तासुस के पाल तथा केताकुम्ब (रोम) के ईसाई कलाकारो द्वारा कुशलतापूवक हटाये नही गये। सिकन्दरिया के दवी (डिवाइनिटी) परपरा वाले ईसाई दार्शनिको को यूनानी दृष्टि एव विचारधारा के अनुसार ईसाई धमतत्त्व को लोगो के सामने पेश करने तथा यूनानी जगत के धम परिवतन का माग पाटने का कभी मौका ही न मिला। और यदि अपनी ऐतिहासिक यात्रा म चलते हुए ओरिजेन एव आगस्टाइन का ईसाई मत रास्ते की सीरियाई यूनानी एव पाश्चात्य मजिलो म क्षणभर ठहरने के समय प्राप्त वस्त्राभूषणा को इस बीसवी शताब्दी मे भी अपने स दूर नहा कर सका तो वह हमारे लिखने के समय प्रत्यक्ष जीवित महत् धम को जो विश्वव्यापी सुयोग प्राप्त है उसका कोई लाभ नही उठा सकेगा। जो भी महत् धम एक ही रग म रग जाने और अस्थायी सास्कृतिक परिस्थिति की छाप अपने पर लगा दिये जाने का मौका देता है वह खुद अपने को स्थिर गतिहीन एव भूविशृंखलित बना लेता है।

किन्तु यदि इतने पर भी ईसाई धम दूसरा माग ग्रहण करता है तो उसने एक

दिन रोम साम्राज्य म जो उपलब्धि की थी उसे फिर स प्राप्त कर सकता है। रोमन सचार-साधना से सेवित आध्यात्मिक वाणिज्य म ईसाई धम न अपने सपक मे आने वाले दूसरे महत्तर धर्मों एव दशना से वह सब ग्रहण किया जो उनका हृदय रूप था और उनम सर्वोत्तम तत्त्व था। आधुनिक पाश्चात्य प्रविधि या तक्नीक (technique) द्वारा दिय हुए अनक आविष्कारा से जब आज की दुनिया भौतिक रूप म एक दूसरे मे बहुत अधिक सबद्ध हो गयी है तब हिन्दू धम और महायान की भी उसके प्रति वैसी ही सफल देन हो सकती है जसी एक दिन ईसिस-पूजा एव नव-अफलातूनवाद की ईसाई अन्तद ष्टि एव आचरण के प्रति थी। और यदि इस पाश्चात्य जगत् म भी सीजर के साम्राज्य का उत्थान और पतन होना है—जसा कि सदा ही उसका साम्राज्य कुछ सौ वर्षों के बाद विनष्ट या क्षीण होता रहा है—तो १६८२ ई मे भविष्य के पर्दे के अन्दर भाकने वाला इतिहासकार खलदून से हगेल तक के समस्त दशनो और उन सब महत्तर धर्मों के उत्तराधिकारी क रूप म ईसाई धम की कल्पना करेगा जिन्होने पुरान समय मे माता एव उसके पुत्र की मत्य प्रच्छन्न पूजा से आरम्भ किया था और ईश्तर एव तम्मुज के नाम से राजमाग पर अपनी यात्रा शुरु कर दी थी।

गढ-सेना (गरिजन) और बस्तियाँ

सम्राट-सरकार के निष्ठावान् समयको—जो सक्रिय सेवा म लगे सनिक नगर रक्षक सेवामुक्त योद्धा या नागरिक मे स किसी वग के हो सकते हैं—की बस्तिया किसी भी साम्राज्य सचार-व्यवस्था का अविच्छेद्य अग होती है। इन मानवी पहरुओ की उपस्थिति पराक्रम एव सजगता के कारण एक अपरिहाय सुरक्षा प्राप्त होती है—सुरक्षा जिसके बिना सडके पुल और इस तरह की दूसरी चीजें सम्राट के पदाधिकारियो के लिए निरथक हो जाती। सीमा की चौकिया भी इसी प्रणाली का अग है, क्योकि सीमा रेखाए भी सदा बगली सडको का काम देती हैं। किन्तु चौकसी और सुरक्षा के लिए गैरिजन (गढ-सनाए) रखन के अलावा सावभौम राज्य सक्टकाल मे शक्ति के लिए होन वाले विनाशकारी सघर्षों मे क्षतिग्रस्त चीजो की मरम्मत के ज्यादा रचनात्मक कायक्रम की दृष्टि से भी बस्तिया बसा सकता है।

जब सीजर ने कपुआ कार्थेज एव कोरिन्थ के उजडे स्थानो पर रोमन नागरिको की स्वायत्त शासनप्राप्त बस्तियाँ बसायी थी, तो उनके मन मे कुछ ऐसी ही बात थी। यूनानी जगत के ग्रामराज्यो के बीच परस्पर जीवन रक्षा के लिए जो पूर्वोक्त सघष हुए उनम तात्कालिक रोम सरकार ने, धोखे के साथ हनीबाल से जा मिलन वाले कैपुआ और रोम को लगभग पराजित कर देन वाले कार्थेज स स्वेच्छापूर्वक उदाहरणीय व्यवहार किया। इसी प्रकार एकेइयन सघ के सदस्यो मे स एक कोरिन्थ का छाट लिया गया और उसके साथ सद्व्यवहार किया गया। प्राक्-सीजरीय गणतत्र शासन मे अनुदार दल इन तीन प्रसिद्ध नगरो को पुन अधिकार देने का भयवश नही बल्कि प्रतिहिंसावश धोर विरोध करता रहा था। इनके साथ इस व्यवहार की बात को लेकर लम्बे काल तक बराबर विवाद एव खाचातानी चलती रही और वही बाद में

समय आने पर, एक बडे सवाल के रूप मे बदल गयी —रोमी शासन का मुख्य अभिप्राय क्या है—एक राज्य विशेष का स्वार्थमूलक हित, जिसके लिए उसकी स्थापना हुई अथवा सम्पूर्ण यूनानी जगत का सयुक्त हित जिसका कि साम्राज्य एक राजनीतिक मूर्तिमान् रूप है ? सीनेट के ऊपर सीजर की विजय अधिक उदार, मानवीय एव कल्पनापूर्ण विचार की विजय थी।

सीजर ने जिस शासन का शुभारभ किया और जिस शासन का उसने अन्त किया, उन दोनो के बीच यह एक महत्त्वपूर्ण नैतिक अन्तर था। परन्तु यह कोई यूनानी इतिहास की ही विचित्रता न थी दूसरी सभ्यताओ के इतिहास मे भी सकटकाल से सार्वभौम राज्य के निर्माण तक के सक्रान्तिकाल मे शक्ति के सदुपयोग एव दुरुपयोग सम्बन्धी आचरण परिवर्तन की ऐसी ही घटनाए मिलती है। किन्तु इस ऐतिहासिक कानून के दृष्टिगत होते हुए भी उसमे अनेक अपवाद हैं। एक ओर तो हम देखते हैं कि सकटकाल केवल उन्मूलित एव क्रुद्ध श्रमजीवी वर्ग का ही निर्माण नही कर रहा है बल्कि बहुत बडे पैमाने पर उपनिवेश एव बस्तिया बसाने के साहसिक प्रयत्नो को भी बढावा दे रहा है (जैसा कि सिकन्दर महान द्वारा एकेमीनियाई साम्राज्य के पूर्व शासन-क्षेत्र मे दूर दूर तक बसाये गये यूनानी नगर राज्यो के रूप मे देखा जा सकता है)। परन्तु इसके विपरीत हम यह भी देखते हैं कि प्रभुतासपन्न अल्पमत का हृदय परिवर्तन, जो किसी सार्वभौम राज्य की स्थापना का मनोवैज्ञानिक अग होता है बहुत ही कम अवस्थाओ में इतना दृढ होता है कि बीच-बीच मे पूर्वोक्त सकटकाल के पाशविक आचरण मे प्रत्यावर्तित न हो जाय। सब मिलाकर नव-बबिलोनियाई साम्राज्य ने अपने असीरियाई विजेताओ की पाशविकता के विरुद्ध बबिलोनियायी जगत के भीतर एक नैतिक विद्रोह का प्रवर्तन किया था, किन्तु वही आगे चलकर ठीक वैसे ही विनाशकारी एव मूलोच्छेदक जुडा के रूप मे बदल गया जैसे असीरिया ने इसराइल का मूलोच्छेद किया था। बबिलोन ने अपने यहूदी निवासियो को तबतक जीने दिया जबतक बबिलोन के एकेमीनियाई उत्तराधिकारी ने उन्हें उनके देश वापिस नही भेज दिया। इसके विरुद्ध निनवा के पीडिता—दस खोये कबीला—को सदा के लिए नष्ट कर दिया गया और वे केवल अग्रेज इसराइलियो की कल्पना मे ही जीवित रह गये। इस बिना पर बबिलोन निनवा पर अपनी नैतिक श्रेष्ठता का जो दावा करता है उसे आप भले ही उसकी सनक समझ सकते हैं।

इन अपवादो के होते हुए भी यह बात मोटे तौर पर सही है कि उपनिवेशीकरण के मामले मे सार्वभौम राज्य अपेक्षाकृत अधिक रचनात्मक एव मानवीय नीति का पालन करते हैं।

सैनिक दृष्टि या चौकीगरी के उद्देश्य से गैरिजनो की स्थापना और सामाजिक एव सास्कृतिक दृष्टि से बस्तियो या उपनिवेशो की स्थापना के बीच हमने अन्तर रखा है। किन्तु कालान्तर मे यह अन्तर केवल उद्देश्य मे ही रह जाता है परिणाम मे नही। किसी सार्वभौम राज्य की सीमाओ पर और अन्तर्भाग मे साम्राज्य निर्माताओ द्वारा सैनिक छावनियो एव चौकियो के निर्माण के साथ-साथ नागरिक बस्तियो का निर्माण

अपने आप होने लगना है। अपनी सक्रिय सेवा की अवधि मे रोमन सिपाहियो के लिए वध विवाह वर्जित था किन्तु उन्हे रखैलो के साथ स्थायी रूप से दाम्पत्य सम्बन्ध रखने और बच्चे पैदा करने की छूट थी और सिपाही सैनिक सेवा से मुक्ति पाने पर रखल से वध रूप मे विवाह करके अपनी सतति को वध बना लेने का अधिकार रखता था। अरब सैनिक मुहाजिर को तो अपनी छावनियो मे अपने साथ अपने बीवी बच्चो को भी रखने की छूट थी। इस प्रकार रोमी और अरब गरिजन असनिक या नागरिक बस्तियो के लिए बीज रूप हो गये। यह बात सभी युगो और सभी साम्राज्यो के राजकीय गरिजनो के सम्बन्ध मे ठीक उतरेगी।

किन्तु असनिक या नागरिक बस्तिया जहा सैनिक छावनियो की अनभिप्रेत आनुषगिक उपज के रूप मे उठ खडी होती हैं वहा वे स्वतन्त्र रूप से स्वय ही अपने लक्ष्य के रूप म भी बसायी जा सकती हैं। उदाहरण के लिए अनातोलिया के जो पूर्वोत्तर जिले आकेमेनिदाई ने फारसी नवाबो को राजदेय (appanages) के लिए दे दिये थे उनमे उस्मानलियो ने इस्लाम ग्रहण करने वाले अलबनियाई लोगो की बस्तिया बसा दी। अपने उपनिवेशो के हृदय देश मे स्थित व्यावसायिक केन्द्रो मे उस्मानलिया ने स्पेन तथा पुर्तगाल से आने वाले शरणार्थी सेपहार्डी यहूदियो की नागरिक जातियो का बसाया। रोम के सम्राटो ने अपने साम्राज्य के पिछडे हुए भागो म सभ्यता केन्द्रो के रूप मे, जो बस्तिया बसायी उनकी एक लम्बी सूची प्रस्तुत की जा सकती है। एड्रियानोपुल नाम सुनते ही आज भी एक ऐसे महान सम्राट की याद आ जाती है जिसने दूसरी शती मे पुश्तनी बबर थ्रेस वाला को उनकी बबरता से मुक्त करने का प्रयत्न किया था। इसी नीति का अनुसरण मध्य एव दक्षिण अमरीका मे स्पेनी साम्राज्य निर्माताओ ने किया। ये स्पेनी औपनिवेशिक नगर राज्य एक धृष्ट विजातीय राज्य के प्रशासनिक एव न्यायिक सघटन के शक्ति घटक का काम देते थ और अपने यूनानी प्रतिरूपो की भाति ही वे आर्थिक दृष्टि से पगु भी थे।

"आंग्ल-अमरीकी बस्तियों में नगरों का जन्म देशवासियों की आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए हुआ। स्पेनी बस्तियों मे देशवासियों की वृद्धि नगरों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए हुई। आग्ल उपनिवेश निर्माता का मुख्य उद्देश्य सामान्यतया धरती के सहारे जीना और खेती करके अपनी जीविका प्राप्त करना था, स्पेनी की मुख्य योजना नगर मे रहने और बागों या खानों मे काम करने वाले इण्डियन व नीग्रो लोगों द्वारा जीविका प्राप्त करने की थी। खेतों और खानों मे काम करने के लिए आदिवासी मजदूरों की उपस्थिति के कारण गांवों की आबादी लगभग पूर्णत इण्डियन ही बनी रही है।"[1]

एक ऐसा आन्तरिक उपनिवेश भी होता है जो किसी सार्वभौम राज्य के

[1] हेरिंग, सी एच 'दि स्पेनिश एम्पायर इन अमेरिका' (न्यूयार्क, १९४७, आक्सफर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस) पृ १६० एव १५६।

इतिहास की अन्तिम अवस्था मे प्रमुखता प्राप्त कर लेता है। वह बर्बर सेतिहरों का उपनिवेश होता है। ये लोग ऐसी भूमि पर बस जाते हैं जो युद्ध की लूटपाट या आक्रमण के कारण वीरान हो चुकी होती है अथवा हुसमान साम्राज्य की प्रकृति में हो व्याप्त किसी सामाजिक रोग के कारण उजड जाती है। 'नोतीशिया डिग्नीटेटम' नामक रचना मे डायोक्लेटियन[*] के बाद के रोम साम्राज्य का जो चित्रण पाया जाता है वह इसका एक महत उदाहरण है। इस रचना मे अनेक जमन एव सर्मेतीय (सर्मेशियन) सघबद्ध बस्तियो का उल्लेख है जो गाल इटली और डन्यूबी सूबो म रोमी धरती पर बस गयी। इन बबर उपनिवेशवासियो को 'लाएती (Laeti) के नाम से पुकारा जाता था। यह एक पश्चिमी जमन भाषा के शब्द से निकला है जिसका अथ अद्ध दास अधिवासी विदेशी' है। इससे हम यह निष्कष निकाल सकते हैं कि व उन पराजित बबर शत्रुओ की सन्तानें होगी जो आक्रमण के पिछले कार्यों के लिए पुरस्कृत या दण्डित किये गये थे। इन्हे जबरदस्ती या समझा-बुझाकर इस स्वप्नभूमि पर शान्तिमय कृषको के रूप मे बस जाने को बाध्य किया गया होगा जिसे पहिले वे आक्रमणकारी के रूप म बबाद कर चुके थ। बडी सावधानी के साथ उन्हे सीमावर्ती भागो म नहीं बल्कि देश के अतरग भाग मे बसाया गया।

सावभौम राज्यो के शासकों-द्वारा स्थापित गरिजना एव बस्तियों के सर्वेक्षण और उनके कारण हुए आबादी के मनमाने स्थानान्तरण के विवेचन स पता चला है कि इन सस्थाओ का किन्ही अन्य सन्दर्भों में जो भी महत्त्व हो किन्तु उन्होने श्रमजीवीकरण (proletarianization) और अन्तर्मिश्रण (Pammixia) क उपक्रम को तीव्र अवश्य बनाया होगा। हम पहिले ही देख चुके हैं कि यही समान रूप से सकटकाल और सावभौम राज्यो की भी विशेषता होती है। सीमा पर जो स्थायी सनिक गरिजन होते हैं वही द्रवणपात्र या मूषा (melting pot=मेल्टिंग पाट) बन जाते हैं जिनमे प्रभुत्वशाली अल्पमत बाह्य एव आन्तरिक दोनो प्रकार के श्रमजीवी वग के साथ घुल मिलकर एक हो जाता है। युद्धयात्रा के नायक तथा उनका विरोध करने वाले बबर युद्धपिपासु दल समय के प्रवाह म पहिले सनिक कौशल फिर सस्कृति म भी, एक दूसरे के साथ घुल मिल जाते हैं। सीमा पर प्रभुत्वशाली अल्पमत का बाह्य श्रमजीवियो से जो सपक स्थापित होता है उसके कारण वह (अल्पमत) भी बबर हो उठता है। किन्तु सच पूछिए तो इसके बहुत पहिले ही वह आन्तरिक श्रमजीवी वग के मेलजोल मे विकृत हो चुका होता है क्योंकि साम्राज्य निर्माता शायद ही कभी इतनी मानव शक्ति अथवा राज्य के प्रति इतना काफी उत्साह सुरक्षित रखते हैं कि बिना किसी की सहायता के अपने साम्राज्यो पर नियत्रण रखने और उनकी

[*] डायोक्लेटियन (२४५ ३१३ ई) २८४ ई से ३०५ ई तक रोम का सम्राट था। डालमेशिया क डायोक्लिया नामक स्थान मे जन्म लेने के कारण इसका यह नाम पड़ा, वास्तविक नाम डायोक्लीज था। मामूली वग में जन्म लेकर भी अपनी सनिक सफलताओं के कारण इसने बडी उन्नति की। —अनुवादक

रक्षा करने की बात सोच सकें। उनका प्रथम अवलम्ब होता है उन पराधीन प्रजाओं से रगरूट भरती करके अपनी सेनाओं को सुदृढ करना जिनमें से उनके सामरिक गुणों का लोप नहीं हुआ है। बाद में एक ऐसी अवस्था भी आती है जब वे निर्धारित सीमा के बाहर बवरों में से भी सैनिकों की भरती करने लगते है।

अन्तर्मिश्रण और श्रमजीवीकरण का यह उपक्रम मुख्यत किसके लाभ के लिए काय करता है ? सबसे प्रमुख लाभानुभोगी स्पष्टत बाह्य श्रमजीवी वग होता है। क्योंकि किसी सभ्यता की सनिक चौकियों से बवर जो शिक्षा प्राप्त करते हैं—पहिले शत्रु या प्रतिस्पर्द्धी के रूप में और फिर बाद का भाडे के टटटुओं के रूप में—वह साम्राज्य के विध्वस के समय उन्हे गिरी सीमाओं के पार टूट पडने और अपने लिए उत्तराधिकारी राज्यों का निर्माण करने के योग्य बनाती है। परन्तु हम इन वीर युग की सफलताओं की क्षणभगुर प्रकृति के विषय में पहिले ही लिख चुके हैं। रोम तथा अरब साम्राज्यों में आबादी के सघटित पुर्नविभाजन एव अन्तर्मिश्रण से अन्तिम लाभ उठाने वाले थे—क्रमश ईसाई धम और इस्लाम।

उम्मायद खिलाफत की सनिक छावनियों एव सीमावर्ती गैरिजनों ने उन प्रच्छन्न आध्यात्मिक शक्तियों के असामान्य प्रसार म परेड के मदानों (points d' appui) के समान इस्लाम की सेवा की जिनके कारण इस्लाम ने स्वय अपने को रूपान्तरित कर लिया और छ सौ वर्षों म अपना मिशन (जीवन लक्ष्य) ही बदल दिया। ईसवी सन का सातवी सदी में जो बबर युद्धप्रिय दल रोम-साम्राज्य के सूबा म खुद अपने लिए उत्तराधिकारी राज्यों का निर्माण करने में लगे हुए थे उन्ही में से एक दल से इस्लाम अरब म एक विशिष्ट साम्प्रदायिक धम के रूप में, तूफान की तरह फट पडा और तेरहवी सदी तक वह एक सार्वदेशिक धमसघ (चच) के रूप म बदल गया तथा सीरियाई सभ्यता के विघटन से जब अब्बासाई खिलाफत का अन्त हो गया तो परिचित गडरियों से हीन भेडो (परिचित धमनेताओं से रहित अनुयायियों) के लिए इस्लाम एक आश्रय-स्थान बन गया।

इस्लाम की जो शक्ति उसके सस्थापक की मृत्यु के बाद भी बनी रही, जो प्राथमिक अरब साम्राज्य निर्माताओं के पतन के बाद भी बनी रही जो अरबों के ईरानी उच्छेदकों (supplanters) के ह्रास के बाद भी बनी रही, जो अब्बासाई खिलाफत के समाप्त हो जाने पर भी जारी रही और उस खिलाफत के ध्वसावशेष पर स्थापित क्षणकालिक बबर उत्तराधिकारी राज्यों के पतन के बाद भी कायम रही उसका रहस्य क्या था ? उम्मायद युग म खिलाफत की अरबेतर (Non Arabic) प्रजाओं में से जिन्होंने इस्लाम ग्रहण कर लिया उनके आध्यात्मिक अनुभव म इस रहस्य की व्याख्या ढूढी जा सकती है। जिस इस्लाम को उन्होंने मूलत अपने सामाजिक स्वार्थों की दृष्टि से अपनाया था उसकी जडें उनके दिलों म फल गयी और उन्होंने अरबों से भी अधिक गभीरता के साथ उसे अपना लिया। जिस धम ने अपनी आन्तरिक विशेषता के गुण के कारण उनकी निष्ठा और वफादारी पर विजय प्राप्त की उसका उत्थान-पतन उन राजनीतिक शासनों के ऊपर कसे निभर करता जो

इतिहास की अन्तिम अवस्था म प्रमुखता प्राप्त कर लेता है। वह बबर मेतिहरा का उपनिवेश होता है। ये लोग ऐसी भूमि पर बस जाते हैं जो यु" उन्ही की लूटपाट या आक्रमण के कारण वीरान हो चुकी होती है अथवा हसमान साम्राज्य की प्रकृति म ही व्याप्त किसी सामाजिक रोग के कारण उजड जाती है। नोतीनिया डिग्नीटेटम नामक रचना म डायोक्लटियन¹ के बाद के रोम साम्राज्य का जो चित्रण पाया जाता है वह इसका एक महत्त्व उदाहरण है। इस रचना म अनेक जमन एव सर्मेनीय (सर्मेशियन) सघबद्ध बस्तिया का उल्लेख है जो गाल इटली और डैन्यूबी सूबा म रोमी धरती पर बस गयी। इन बबर उपनिवेशवासिया को लाएती (Laeti) के नाम से पुकारा जाता था। यह एक पश्चिमी जमन भाषा के शब्द से निकला है जिसका अथ अद्ध दास अधिवासी विदेशी है। इससे हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि व उन पराजित बबर शत्रुओं की स तानें होंगी जो आक्रमण के पिछले कार्यों के लिए पुरस्कृत या दण्डित किये गये थे। इन्ह जबरदस्ती या समझा बुझाकर इस स्वगभूमि पर शान्तिमय कृषकों के रूप मे बस जाने को बाध्य किया गया होगा जिसे पहिले वे आक्रमणकारी के रूप मे बर्बाद कर चुके थे। बडी सावधानी के साथ उन्ह सीमावर्ती भागो म नही बल्कि देश के अन्तरग भाग मे बसाया गया।

सावभौम राज्यो के शासको द्वारा स्थापित गरिजनो एव बस्तियो के सर्वेक्षण और उनके कारण हुए आबादी के मनमाने स्थानान्तरण के विवेचन से पता चला है कि इन सस्थाओं का किन्ही अन्य सन्दर्भों म जो भी महत्त्व हो किन्तु उन्होंने श्रमजीवीकरण (proletarianization) और अन्तर्मिश्रण (Pammixia) के उपक्रम को तीव्र अवश्य बनाया होगा। हम पहिले ही देख चुके हैं कि यही समान रूप से सकटकाल और सावभौम राज्यो की भी विशेषता होती है। सीमा पर जो स्थायी सनिक गरिजन होते हैं वहीं द्रवणपात्र या मूषा (melting pot=मेल्टिंग पाट) बन जाते हैं जिनमे प्रभुत्वशाली अल्पमत बाह्य एव आतरिक दोनो प्रकार के श्रमजीवी वग के साथ घुल मिलकर एक हो जाता है। युद्धयात्रा के नायक तथा उनका विरोध करने वाले बबर युद्धपिपासु दल समय के प्रवाह मे पहिले सनिक कौशल फिर सस्कृति म भी एक दूसरे के साथ घुल मिल जाते हैं। सीमा पर प्रभुत्वशाली अल्पमत का बाह्य श्रमजीवियो मे जो सपक स्थापित होता है उसके कारण वह (अल्पमत) भी बबर हो उठता है। किन्तु सच पूछिय तो इसके बहुत पहिले ही वह आतरिक श्रमजीवी वग के मलजोल से विकृत हो चुका होता है क्योंकि साम्राज्य निर्माता शायद ही कभी इतनी मानव शक्ति अथवा शस्त्र के पैने के प्रति इतना काफी उत्साह सुरक्षित रखते हैं कि बिना किसी की सहायता के अपने साम्राज्यो पर नियत्रण रखने और उनकी

¹ डायोक्लटियन (२४५ ३१३ ई) २८४ ई से ३०५ ई तक रोम का सम्राट था। डालमेशिया के डायोक्लिया नामक स्थान म जन्म लेने के कारण इसका यह नाम पडा वास्तविक नाम डायोक्लीज था। मामूली वश में जन्म लेकर भी अपनी सनिक सफलताओं के कारण इसने बडी उन्नति की। —अनुवादक

रक्षा करने की बात सोच सकें। उनका प्रथम अवलम्ब होता है उन पराधीन प्रजाओ से रंगरूट भरती करके अपनी सेनाओ का सुदृढ करना जिनम से उनके सामरिक गुणो का लोप नही हुआ है। बाद म एक एसी अवस्था भा आती है जब वे निर्धारित सीमा के बाहर बबरो मे से भी सनिको की भरती करने लगते है।

अ तर्मिश्रण और श्रमजीवीकरण का यह उपक्रम मुख्यत किसके लाभ के लिए काय करता है ? सबसे प्रमुख लाभानुभोगी स्पष्टत बाह्य श्रमजीवी वग होता है। क्योकि किसी सभ्यता की सनिक चौकियो से बबर जो शिक्षा प्राप्त करते हैं—पहिले शत्रु वा प्रतिस्पर्द्धी के रूप म और फिर बाद का भाडे के टट्टुआ के रूप म—वह साम्राज्य के विध्वस के समय उन गिरी सीमाओ के पार टूट पडने और अपन लिए उत्तराधिकारी राज्यो का निर्माण करने के योग्य बनाती है। परतु हम इन बीर युग की सफलताओ की क्षणभगुर प्रकृति के विषय मे पहिले ही लिख चुके हैं। रोम तथा अरब साम्राज्यो मे आबादी के सघटित पुर्नविभाजन एव अ तर्मिश्रण से अ तिम लाभ उठाने वाले थे---क्रमश ईसाई धम और इस्लाम।

उम्मायद खिलाफत की सनिक छावनियो एव सीमावर्ती गैरिजनो ने उन प्रच्छन्न आध्यात्मिक शक्तियो के असामान्य प्रसार म परेड के मदानो (points d' appui) के समान इस्लाम की सेवा की जिनके कारण इस्लाम ने स्वय अपने को रूपान्तरित कर लिया और छ सौ वर्षों म अपना मिशन (जीवन लक्ष्य) ही बदल दिया। ईसवी सन की सातवी सदी म जो बबर युद्धप्रिय दल रोम साम्राज्य के सूबो मे खुद अपने लिए उत्तराधिकारी राज्यो का निर्माण करने मे लगे हुए थे उन्ही मे से एक दल से इस्लाम अरब म एक विशिष्ट साम्प्रदायिक धम के रूप मे, तूफान की तरह फट पडा और तेरहवी सदी तक वह एक सावदेशिक धमसघ (चच) के रूप म बदल गया तथा सीरियाई सभ्यता के विघटन से जब अब्बासाई खिलाफत का अन्त हो गया तो परिचित गडरियो से हीन भेडो (परिचित धमनेताओ से रहित अनुयायियो) के लिए इस्लाम एक आश्रय-स्थान बन गया।

इस्लाम की जो शक्ति उसके सस्थापक की मृत्यु के बाद भी बनी रहा जो प्राथमिक अरब साम्राज्य निर्माताओ के पतन के बाद भी बना रही जो अरबो के ईरानी उच्छेदको (supplanters) के ह्रास के बाद भी बनी रही जो अब्बासाई खिलाफत के समाप्त हो जाने पर भी जारी रही और उस खिलाफत के ध्वसावशेष पर स्थापित क्षणकालिक बबर उत्तराधिकारी राज्यो के पतन के बाद भी कायम रही उसका रहस्य क्या था ? उम्मायद युग मे खिलाफत की अरबेतर (Non Arabic) प्रजाओ मे से जिन्होने इस्लाम ग्रहण कर लिया उनके आध्यात्मिक अनुभव म इस रहस्य की व्याख्या ढूढी जा सकती है। जिस इस्लाम को उन्होने मूलत अपने सामाजिक स्वार्थों की दृष्टि स अपनाया था उसकी जडें उनके दिलो म फल गयी और उन्होने अरबो से भी अधिक गभीरता के साथ उस अपना लिया। जिस धम ने अपनी आन्तरिक विशेषता व गुण के कारण उनकी निष्ठा और वफादारी पर विजय प्राप्त की उसका उत्थान-पतन उन राजनीतिक शासना के ऊपर कसे निभर करता जो

निरन्तर धर्मेतर उद्देश्यो के लिए उसका दुरुपयोग कर रहे थे। जब हम देखते हैं कि राजनीतिक साध्य की पूर्ति के लिए इस प्रकार के दुरुपयोग ने कितने ही दूसरे महत् धर्मों को मिट्टी म मिला दिया और इस्लाम को न केवल उसके सस्थापक के उत्तराधिकारियो ने वर खुद मुहम्मद ने भी उस समय खतर म डाल दिया जब वह मक्का से मदीना का हिजरत कर गये थे और स्पष्टत एक अगफल पगम्बर बने रहने की जगह एक अत्यधिक सफल राजममज्ञ बनना उन्होंने पस द किया, तब इस आध्यात्मिक विजय को और भी उल्लेखनीय मानना पडता है। इतिहास के व्यग्य रूप म अपने ही सस्थापक-द्वारा ढाये गये सकट के बीच भी जीवित रहने की अपनी कुशलता (tour de force) से इस्लाम ने युगो-युगो तक के लिए मुहम्मद-द्वारा मानव जाति के सामने उपस्थित धार्मिक सदेश के आध्यात्मिक मूल्यो का प्रत्यक्ष कर दिया है।

इस प्रकार खिलाफत के इतिहास मे, गरिजन एव बस्तिया स्थापित करने और आबादियो के स्थानान्तरण तथा अन्तर्मिश्रण का नियत्रित करने की साम्राज्य निर्माताओ की जो सुविचारित नीति थी उसका यह अनिच्छित एव अप्रत्याशित प्रभाव पडा कि एक उच्च धर्म की जीवनयात्रा मे गति आ गयी और उसी कारण ने रोम-साम्राज्य के इतिहास म तदनुकूल प्रभाव डाला।

रोम साम्राज्य की प्रथम तीन शताब्दियो मे सीमावर्ती गैरिजन ही धार्मिक प्रभाव के सवाहको म सबसे अधिक सक्रिय थे और इन स्रोतो से जिन धर्मों का बडी तेजी के साथ प्रचार हुआ वे थे डोलिशे के यूपितर की यूनानी सस्करण वाली हित्तायती (हलेनाइज्ड हिट्टाइट)[१] पूजा तथा मूलत ईरानी मिथ्रस[२] की यूनानी सस्कार वाली सीरियाई पूजा। युफ्रेटीज (फुरात) के तटो पर स्थापित रोमी गरिजना से निकल कर डान्यूब के तटो पर स्थापित गरिजना तक फिर जमन लाइम पर फिर राइन के किनारे फिर ब्रिटेन मे वाल के आसपास हम इन दोना धर्मों को फलते देखते हैं। यह दृश्य हमे महायान की उस समकालिक यात्रा का स्मरण दिला देता है जो उसने हिन्दुस्तान से निकलकर तिब्बत के पश्चिमी पठार स होते हुए अपनी लबी मजिल की अन्तिम अवस्था मे तारिम अपवाह द्रोणी (Basin बेसिन) के तटो से प्रशान्त सागर के तटो तक की थी। इस सम्पूर्ण माग मे सीमा की रक्षा के लिए सिनाई सावभौम राज्य के गरीजनो की एक शृखला थी जो यूरेशिया के मरुस्थलो से आने वाल यायावरो (खानाबदोशो) स रक्षा पाने के लिए स्थापित किये गये थे। कहानी के अगले अध्याय म महायान ने पश्चिमोत्तर माग स सिनाई जगत् के अन्तरग भाग म

१ हित्ताइत (हिट्टाइट) २००० से १२०० वष ईसा पूव एशिया माइनर के अधिकाश भाग एव सीरिया पर राज्य करने वाला प्राचीन प्राच्य राष्ट्र। इन लोगो मे ऊची सभ्यता का विकास हुआ था। इनकी भाषा आधुनिक यूरोपीय कुल से ही सबद्ध थी।

२ मिस्र-फारस के सूयदेव। यह शब्द वस्तुत वदिक देवता 'मित्र' का ही रूप है।
—अनुवादक

प्रवेश पाने मे सफलता पायी और गिनाई आन्तरिक श्रमजीवी वर्ग के लिए सार्वदेशिक धर्मसंघ (चर्च) बन गया। इतना ही नहीं, अन्त में चलकर वह पाश्चात्य प्रभावपूरित जगत् के चार प्रधान बड़े धर्मों में से एक बन गया। मिथ्रवाद एवं यूप्पितर डोलीचेनस की पूजा का भाग्य उतना महत् नहीं रह सका। रोम की साम्राज्य-सेना के भाग्य के साथ बंध जाने के कारण ये दोनों सैनिक धर्म उस आघात से फिर न उठ सके जो ईसवी सन् की तीसरी शती के मध्य सेना के अस्थायी पतन के कारण उन्हें लगा था। जहां तक उनके स्थायी एतिहासिक महत्त्व का सम्बन्ध है वह उनके ईसाई धर्म के अग्रगामी होने मे निहित है। एक दूसरे स्रोत से रोमन साम्राज्य पर गिरती ईसाइयत की धारा ने जो तल अपने लिए बनाया उसमें अनेक जलस्रोतों का संगम हो गया और इस संगम से धार्मिक परंपरा की निरन्तर वृद्धिमती जो धारा निकली उसमें उपर्युक्त दोनों ने सहायक नदियों का काम किया, यह उनका दूसरा ऐतिहासिक महत्त्व है।

जहां यूप्पितर चेनस तथा मिथ्रस ने युफ्रेटीज (फरात) से टाइन तक के अपने पश्चिमोत्तर प्रवास में सीमावर्ती गैरिजनों को अपनी सीढ़ियों की भांति इस्तेमाल किया, वहां सन्त पाल ने भी सीजर एवं आगस्टस द्वारा साम्राज्य के अन्तरंग भाग में स्थापित बस्तियों का लगभग वैसा ही उपयोग कर लिया। अपनी प्रथम धर्मोपदेश यात्रा में उन्होंने पीसीडिया अन्तर्गत एन्तिओक तथा लाइस्ट्रा नाम की तथा अपनी दूसरी यात्रा में ट्रास, फिलिप्पी तथा कोरिंथ नाम की रोमी बस्तियों में ईसाई धर्म के बीज बोये। यह ठीक है कि उन्होंने अपने को इन बस्तियों तक ही सीमित नहीं रखा। उदाहरणस्वरूप वह ईफेसस नामक पुरातन हेलनी (यूनानी) नगर में दो वर्ष तक जमे रहे। कोरिंथ ने, जहां वह अठारह महीने तक रहे अपास्टोलिक युग के बाद वाले काल में चर्च के जीवन में बहुत महत्वपूर्ण भाग लिया और हम इसका अनुमान कर सकते हैं कि वहां ईसाई समाज की जो प्रमुखता थी वह आंशिक रूप से रोम के मुक्त दासों (freedmen, फ्रीडमन) की बस्ती की सार्वभौम प्रकृति पर निर्भर करती थी।

किन्तु रोमी बस्ती के ईसाई रूप में बदल जाने का सर्वप्रधान उदाहरण कोरिंथ नहीं वरन् लियों (Lyons) है, क्योंकि महानगरी तक पहुंचकर एक बस्ती से दूसरी बस्ती तक फैलते जाने वाले ईसाई धर्म की वृद्धि रुक नहीं गयी, न सन्त पाल की मृत्यु के साथ ही उस उपक्रम का अन्त हुआ। लुगदूनम नामक रोमन बस्ती रोन एवं साओन नामक नदियों के संगम से बने कोण पर बड़े ही सुन्दर स्थान का चुनाव कर ४३ वर्ष ईसा-पूर्व बसायी गयी थी। वह नाम के लिए ही नहीं, यथार्थ में एक रोमी बस्ती थी। सीजर ने विजय करके जो विशाल गलिक क्षेत्र अपने राज्य में मिला लिया था उसकी देहली पर वास्तविक इटालीय नस्ल के रोमी नागरिकों की यह बस्ती इस ढंग से बसायी गयी थी कि गलिया कोमाता नामक प्रदेश मे वह रोमी संस्कृति का प्रकाश ठीक उसी तरह फैलाये जैसे वह पुरानी रोमी बस्ती नारबोन द्वारा गलिया तोगाता मे फैला चुकी थी। लुगदूनम मे खास रोम एवं टाइन के बीच एकमात्र रोमी गैरिजन स्थित था। फिर गलिया कोमाता को जिन तीन सूबों में विभाजित किया गया था उनमें से एक सूबे का यह केवल प्रशासकीय केन्द्र ही नहीं था, वरन 'गालत्रय की

निरन्तर धर्मेतर उद्देश्यो के लिए उसका दुरुपयोग कर रहे थे। जब हम देखते हैं कि राजनीतिक साध्य की पूर्ति के लिए इस प्रकार के दुरुपयोग ने कितने ही दूसरे महत् धर्मों को मिट्टी म मिला दिया और इस्लाम को न केवल उसके सस्थापक के उत्तराधिकारियो ने वर खुद मुहम्मद ने भी उस समय खतर मे डाल दिया जब वह मक्का स मदीना को हिजरत कर गये थे और स्पष्टत एक असफल पैगम्बर बने रहने की जगह एक अत्यधिक सफल राजममन बनना उन्होंने पस द किया, तब इस आध्यात्मिक विजय को और भी उल्लेखनीय मानना पडता है। इतिहास के व्यग्य रूप म अपने ही सस्थापक-द्वारा ढाये गये सकट के बीच भी जीवित रहने की अपनी कुशलता (tour de force) से इस्लाम ने युगा-युगा तक के लिए मुहम्मद द्वारा मानव जाति के सामने उपस्थित धार्मिक सन्देश के आध्यात्मिक मूल्यो का प्रत्यक्ष कर दिया है।

इस प्रकार खिलाफत के इतिहास मे, गरिजन एव बस्तिया स्थापित करने और आबादियो के स्थानान्तरण तथा अन्तर्मिश्रण को नियन्त्रित करने की साम्राज्य निर्माताओ की जो सुविचारित नीति थी उसका यह अनिच्छित एव अप्रत्याशित प्रभाव पडा कि एक उच्च धम की जीवनयात्रा मे गति आ गयी और उसी कारण ने रोम साम्राज्य के इतिहास मे तदनुकूल प्रभाव डाला।

रोम-साम्राज्य की प्रथम तीन शताब्दियो मे सीमावर्ती गैरिजन ही धार्मिक प्रभाव के सवाहको म सबसे अधिक सक्रिय थे और इन स्रोतो से जिन धर्मों का बडी तेजी के साथ प्रचार हुआ वे थे डोलिशे के यूपिटर की यूनानी सस्करण वाली हित्तायती (हेलेनाइज्ड हिट्टाइट)[1] पूजा तथा मूलत ईरानी मिथ्रस[2] की यूनानी सस्कार वाली सीरियाई पूजा। युफ्रेटीज (फुरात) के तटो पर स्थापित रोमी गरिजनो से निकल कर डन्यूब के तटा पर स्थापित गरिजना तक फिर जमन लाइम पर, फिर राइन के किनारे फिर ब्रिटेन म वाल के आसपास हम इन दोना धर्मों को फलते देखते हैं। यह दृश्य हम महायान की उस समकालिक यात्रा का स्मरण दिला देता है जो उसने हिन्दुस्तान स निकलकर तिब्बत के पश्चिमी पठार स होते हुए अपनी लबी मजिल की अतिम अवस्था म तारिम अपवाह द्रोणी (Basin, बेसिन) के तटा से प्रशान्त सागर के तटो तक की थी। इस सम्पूर्ण भाग म सीमा की रक्षा के लिए सिनाई सार्वभौम राज्य के गरीजनो की एक शृखला थी जो यूरेशिया के मरुस्थला स आने वाले यायावरा (खानाबदोशा) स रक्षा पाने के लिए स्थापित किये गये थे। कहानी के अगले अध्याय म महायान ने पश्चिमोत्तर भाग स सिनाई जगत् के अन्तरग भाग म

[1] हित्ताइत (हिट्टाइट) २००० स १२०० वर्ष ईसा पूर्व एशिया माइनर के अधिकाश भाग एव सीरिया पर राज्य करने वाला प्राचीन प्राच्य राष्ट्र। इन लोगो मे ऊची सभ्यता का विकास हुआ था। इनकी भाषा आधुनिक यूरोपीय कुल से ही सम्बद्ध थी।

[2] मित्र-फारस के सूर्यदेव। यह शब्द वस्तुत वैदिक देवता मित्र का ही रूप है।

—अनुवादक

प्रवेश पाने मे सफलता पायी और सिनाई आन्तरिक श्रमजीवी वग के लिए सावदेशिक धमसघ (चच) बन गया। इतना ही नही अन्त म चलकर वह पाश्चात्य प्रभावपूरित जगत् के चार प्रधान बडे धर्मों मे से एक बन गया। मिथ्रवाद एव यूप्पितर डोलीचेनस की पूजा का भाग्य उतना महत् नही रह सका। रोम की साम्राज्य-सेना के भाग्य के साथ बध जाने के कारण ये दोनो सनिक धम उस आघात से फिर न उठ सके जो ईसवी सन की तीसरी शती के मध्य सना के अस्थायी पतन के कारण उन्ह लगा था। जहा तक उनके स्थायी एतिहासिक महत्त्व का सम्बन्ध है वह उनके ईसाई धम के अग्रगामी होने म निहित है। एक दूसरे स्रोत से रोमन साम्राज्य पर गिरती ईसाइयत की धारा न जो तल अपने लिए बनाया उसम अनेक जलस्रोता का सगम हो गया और इस सगम से धार्मिक परपरा की निरन्तर वृद्धिमती जो धारा निकली उसम उपयुक्त दोनो न सहायक नदियो का काम किया, यह उनका दूसरा ऐतिहासिक महत्त्व है।

जहा यूप्पितर चेनस तथा मिथ्रस ने युफ्रेटीज (फरात) से टाइन तक के अपन पश्चिमोत्तर प्रवास मे सामावर्ती गैरिजनो का अपनी सीढ़िया की भाति इस्तेमाल किया, वहा सन्त पाल ने भी सीजर एव आगस्टस द्वारा साम्राज्य क अन्तरग भाग म स्थापित बस्तिया का लगभग वैसा ही उपयाग कर लिया। अपनी प्रथम धर्मोपदेश यात्रा म उन्होने पीसीडिया अन्तगत एन्तिओक तथा लाइस्त्रा नाम की तथा अपनी दूसरी यात्रा म त्राम, फिलिप्पी तथा कारिंथ नाम की रोमी बस्तिया म ईसाई धम के बीज बोये। यह ठीक है कि उन्होंने अपन का इन बस्तिया तक ही सीमित नही रखा। उदाहरणस्वरूप वह ईफेसस नामक पुरातन हेलेनी (यूनानी) नगर म दो वष तक जमे रहे। कारिंथ न जहा वह अठारह महीन तक रहे अपास्टोलिक युग के बाद वाले काल म चच के जीवन म बहुत महत्त्वपूण भाग लिया और हम इसका अनुमान कर सकते हैं कि वहा ईसाई समाज की जो प्रमुखता थी वह आशिक रूप से रोम के मुक्त दासा (freedmen फ्रीडमेन) की बस्ती की सावभौम प्रकृति पर निर्भर करती थी।

किन्तु रोमी बस्ती के ईसाई रूप म बदल जान का सवप्रधान उदाहरण कोरिंथ नही वरन लियो (Lyons) है, क्योकि महानगरी तक पहुचकर एक बस्ती से दूसरी बस्ती तक फलते जाने वाले ईसाई धम की वृद्धि रुक नहीं गयी, न सन्त पाल की मृत्यु के साथ ही उस उपक्रम का अन्त हुआ। लुगदूनम नामक रोमन बस्ती रोन एव साओन नामक नदिया के सगम से बने कोण पर बड़े ही सुन्दर स्थान का चुनाव कर ४३ वष ईसा-पूव बसायी गयी थी। वह नाम के लिए ही नही यथाथ म एक रोमी बस्ती थी। सीजर ने विजय करके जो विशाल गलिक क्षेत्र अपने राज्य म मिला लिया था उसकी दहली पर वास्तविक इटालीय नस्ल के रोमी नागरिको की यह बस्ती इस ढग से बसायी गयी थी कि गलिया कोमाता नामक प्रदेश म वह रोमी सस्कृति का प्रकाश ठीक उसी तरह फलाये जस वह पुरानी रोमी बस्ती नारबोन द्वारा गलिया तोगाता मे फला चुकी थी। लुगदूनम मे खास रोम एव टाइन के बीच एकमात्र रोमी गरिजन स्थित था। फिर गलिया कोमाता को जिन तीन सूबा मे विभाजित किया गया था उनमे से एक सूबे का यह केवल प्रशासकीय केन्द्र ही नही था वरन गालत्रय की

निरन्तर धर्मेतर उद्देश्यो के लिए उसका दुरुपयोग कर रहे थे। जब हम देखते हैं कि राजनीतिक साध्य की पूर्ति के लिए इस प्रकार के दुरुपयोग ने कितने ही दूसरे महत् धर्मों को मिट्टी म मिला दिया और इस्लाम को न केवल उसके संस्थापक के उत्तराधिकारियो ने वर खुद मुहम्मद न भी उस समय खतर मे डाल दिया जब वह मक्का से मदीना को हिजरत कर गये थे और स्पष्टत एक असफल पैगम्बर बने रहने की जगह एक अत्यधिक सफल राजममज्ञ बनना उन्होने पसन्द किया, तब इस आध्यात्मिक विजय को और भी उल्लेखनीय मानना पडता है। इतिहास के व्यग्य रूप म अपने ही संस्थापक-द्वारा ढाये गये सकट के बीच भी जीवित रहने की अपनी कुशलता (tour de force) से इस्लाम ने युगो-युगो तक के लिए मुहम्मद-द्वारा मानव जाति के सामने उपस्थित धार्मिक सन्देश के आध्यात्मिक मूल्यो का प्रत्यक्ष कर दिया है।

इस प्रकार खिलाफत के इतिहास म गरिजन एव बस्तिया स्थापित करने और आबादियो के स्थानान्तरण तथा अन्तर्मिश्रण का नियन्त्रित करने की साम्राज्य निर्माताओ की जो सुविचारित नीति थी उसका यह अनिच्छित एव अप्रत्याशित प्रभाव पडा कि एक उच्च धम की जीवनयात्रा मे गति आ गयी और उसी कारण ने रोम-साम्राज्य के इतिहास म तदनुकूल प्रभाव डाला।

रोम-साम्राज्य की प्रथम तीन शताब्दियो म, सीमावर्ती गरिजन ही धार्मिक प्रभाव के सवाहको म सबसे अधिक सक्रिय थे और इन स्रोतो से जिन धर्मों का बडी तेजी के साथ प्रचार हुआ वे थे डोलिचे के यूप्पिनर की यूनानी सस्करण वाली हित्तायती (हेलेनाइज्ड हिट्टाइट)[1] पूजा तथा मूलत ईरानी मिथ्रस[2] की यूनानी सस्कार वाली सीरियाई पूजा। युफ्रेटीज (फुरात) के तटो पर स्थापित रोमी गरिजनो से निकल कर ड्यूब के तटो पर स्थापित गरिजनो तक फिर जमन लाइम पर, फिर राइन के किनारे, फिर ब्रिटेन म वाल के आसपास हम इन दोनो धर्मों को फलते देखते हैं। यह दृश्य हम महायान की उस समकालिक यात्रा का स्मरण दिला देता है जो उसने हिन्दुस्तान से निकलकर तिब्बत के पश्चिमी पठार स होते हुए अपनी लबी मजिल की अन्तिम अवस्था म तारिम अपवाह द्रोणी (Basin बेसिन) के तटो से प्रशान्त सागर के तटों तक की थी। इस सम्पूर्ण भाग म सीमा की रक्षा के लिए सिनाई सार्वभौम राज्य के गरीजनों की एक श्रृखला थी जो यूरेशिया के मरुस्थलो से आने वाले यायावरों (खानाबदोशो) से रक्षा पाने के लिए स्थापित किये गये थे। कहानी के अगले अध्याय म महायान न परिमाजर भाग से सिनाई जगत् के अन्तरग भाग म

[1] हित्ताइत (हिट्टाइट) २००० से १२०० वर्ष ईसा पूर्व एशिया माइनर के अधिकाश भाग एव सीरिया पर राज्य करने वाला प्राचीन प्राच्य राष्ट्र। इन लोगों मे ऊची सभ्यता का विकास हुआ था। इनकी भाषा आधुनिक यूरोपीय कुल से ही सबद्ध था।

[2] मित्र-फारस के सूर्यदेव। यह नाम वास्तव वैदिक देवता 'मित्र' का ही रूप है।

—अनुवादक

विधानसभा (काउंसिल आव थ्री गाल्स) का सरकारी मिलन स्थल भी था, जहा साठ या उससे भी अधिक उपमण्डलो के प्रतिनिधिगण, निश्चित अवधि पर मिला करते थे। ये लोग आगस्टस की उस प्रजावेदिका के चतुर्दिक बैठा करते थे जिसे ड्रूसस ने सन् १२ ईसा-पूर्व इस स्थान पर निर्मित कराया था। सच पूछें तो लुगदूनम को जान-बूझकर साम्राज्य के महत्त्वपूर्ण अभिप्रायो की पूर्ति के लिए ही बनाया गया था। इतने पर भी १७७ सन् ईसवी तक इस बस्ती मे ईसाई समाज ने इतनी पर्याप्त शक्ति ग्रहण कर ली थी कि वह कत्लेआम का कारण बन गया और दूसरे स्थानो की भांति यहा भी शहीदो का खून चर्च का बीज बन गया, क्योकि इसके बाद ही शताब्दी का जो चतुर्थांश आया उसमे लुगदूनम के बिशप की हैसियत से ही सीरियन नस्ल के यूनानी विद्वान आयरीनियस ने सनातन ईसाई धर्मदर्शन (क्योलिक क्रिश्चियन थियोलोजी) को पहिली बार क्रमबद्ध रूप मे उपस्थित किया था।

रोम साम्राज्य मे ईसाई धर्म खिलाफत मे इस्लाम तथा सिनाई सार्वभौम राज्य मे महायान—मतलब इनमे से हरएक ने धर्म निरपेक्ष साम्राज्य निर्माताओ द्वारा अपने किसी अभिप्राय के लिए स्थापित गरिजनो एव बस्तियो का फायदा उठाया। फिर भी जनसंख्या के शांतिपूर्ण पुनर्विभाजन के अनिच्छित धार्मिक परिणाम इतने विलक्षण न थे जितना (विलक्षण) नेबुचद्नेजर[1] का यहूदियो की जसीरियाई प्रणाली को ग्रहण कर लेना था क्योकि जूडा को बन्दी रूप मे ले जाकर नव बबिलोनियाई युद्धनेता ने एक वर्तमान उच्च धर्म की प्रगति को बढ़ाया ही नही अपितु एक नये धर्म को जन्म दे दिया।

प्रान्त

जब सार्वभौम राज्य निर्माता अपने शासित क्षेत्र मे दूर दूर तक किलबंदियां करते और बस्तियां बसाते हैं वैसे वे जिन प्रान्तो मे अपने अधिशासित क्षेत्र विभाजित करते हैं उनके भी दो विशिष्ट कार्य होते हैं—स्वय सार्वभौम राज्य की रक्षा, दूसरे उस समाज की रक्षा जिसके सामाजिक गठन के लिए सार्वभौम राज्य एक राजनीतिक ढांचा प्रस्तुत करते हैं। रोम साम्राज्य और भारत मे ब्रिटिश राज के इतिहास इस सम्बन्ध मे, यह प्रदर्शित करने के लिए सामने रखे जा सकते हैं कि एक सार्वभौम राज्य के राजनीतिक गठन के दो मुख्य विकल्प होते हैं—साम्राज्य का निर्माण करने वाली शक्ति की श्रेष्ठता को बनाये रखना और पहिले के ग्राम राज्यो के पतन व विनाश के बाद विघटित होते हुए समाज गठन मे पैदा होने वाली राजनीतिक शून्यता को भर देना।

सार्वभौम राज्य के निर्माता पराजित प्रतिद्वन्द्वियो के पुन उठ खड़े होने के विरुद्ध रिंग सामा तक प्रान्तो को साथ अपने राज्य क्षेत्र मे मिला लेने और उन पर सीधा शासन

[1] नेबुचद्नेज़र—बेबिलोनिया को नस्ल का बबिलोन सम्राट। यहूदियो का राज्य जिसने विध्वंस किया। ६०५ ईसापूर्व इसने मिस्रियो को निकाल बाहर किया और सीरिया को बबिलोन मे मिला लिया। धार्मिक प्रकृति का आदमी था। —अनु०

स्थापित करन का प्रलोभन पालते हैं यह इस बात पर निभर करता है कि विनष्ट ग्रामराज्य अपन भूतपूव अधिपतियों तथा प्रजाओ के मा मे किस सीमा तक निष्ठा एव खेद की भावना को जन्म दते है। यह बात भी बहुत कुछ इस पर निभर करती है कि विजय कितनी तेजी के साथ हुई है तथा उस समाज का पूर्वापर इतिहास क्या है जिसके क्षेत्र मे सावभौम राज्य ने अपने को स्थापित किया है। जब विजयी साम्राज्य-निर्माता एक सपाटे मे अपना राज्य या शासन स्थापित कर लेते हैं और उन ग्राम राज्यो पर अपना शासन जबदस्ती लागू कर देते हैं तब उनको यह भय भी लगा रहता है कि कोई हिंसक बल तेजी के साथ कही उनके किये-कराये को खत्म न कर दे।

सिनाई (चीनी) जगत का उदाहरण लें तो हम देखते हैं कि उसम साम्राज्य निर्माता राज्य त्स-इन द्वारा पहिली बार प्रभावकारी राजनीतिक एकता दस वप से भी कम समय के अन्दर (२३०—२२१ ई पू) स्थापित हुई। इस लघु कालावधि मे त्स इन के सम्राट चेंग ने उस समय तक जीवित छ राज्यो को पराजित एव विनष्ट किया और इस प्रकार एक चीनी सावभौम राज्य का सस्थापक बन गया। उसने त्स इन शी ह्वाग-ती की उपाधि धारण का। किन्तु इतना सब होते हुए भी वह पूव राजकीय तत्वो की राजनीतिक आत्मचेतना को विनष्ट नही कर सका। फलत उस जिस समस्या का सामना करना पडा उसे इम्पारियल कौंसिल (साम्राज्य परिपद) म भाषणो की प्रतियोगिता के रूप म इतिहासकार स-मी मा-त्स इन न उपस्थित किया है। समस्या का चाहे जिस भी ढग से सामना किया गया हो इतना निश्चित है कि तीव्र परिवतन की नीति कायम रही और २२१ ई पू मे त्स इन शी ह्वाग ती न अपने नवस्थापित सावभौम राज्य के सम्पूण क्षेत्र को ३६ सनिक अधिनायको के अधिकार-क्षेत्र मे विभाजित करने का निणय कर लिया।

यह कठोर कदम उठाने मे सम्राट अपने द्वारा विजित छ ग्रामराज्यो पर वही सैनिक एव असामन्तीय व्यवस्था लागू कर रहे थे जो उनके अपने त्स इन राज्य म पिछले सौ वर्षों से चली आ रही थी। किंतु यह आशा नही की जा सकती थी कि विजित राज्य भी उसे पसन्द करेंगे। त्स इन शी ह्वाग-ती सावभौम राज्या की स्थापना के इतिहास की उस परिचित मूर्ति का प्रतिनिधि है जिसे 'विजेता पथिक' की सना दी जा सकती है और विजित राज्यो के शासकीय वग उसे उसी रूप म देखते थे जसे यूनानी नगर राज्यो की चौथी सदी के नागरिक मसीडोन के सम्राटो को देखते थे—एक 'बबर' से जरा ही अच्छे रूप मे। सिनाई (चीनी) जगत के सस्कृति-केंद्र के राज्य स्वभावत उस सस्कृति की पूजा की ओर प्रवृत्त थे जिसके वे स्वत ही प्रमुख व्याख्याता थे। फिर उनकी इस दुबलता को बाद म कन्फ्यूशियन विचारधारा के दाशनिकों द्वारा भी प्रेरणा एव पुष्टि मिल गयी जिसके प्रतिष्ठापन न सिनाई (चीनी) जगत् को पीडित करने वाली सामाजिक बीमारी का कारण परपरागत रीतियो एव आचारो की उपेक्षा को बताया था और उसका प्रमुख समाधान प्रारभिक सिनाई (चीनी) सामन्ती युग की कल्पित सामाजिक एव नतिक व्यवस्था की ओर प्रत्यावतन बताया। अद्ध-कल्पित अतीत का यह पवित्रीकरण त्स-इन की प्रजा एव शासको पर कुछ प्रभाव

न डाल सका और तयार किए बिना तीव्र गति से चलने वाले राज्य की सस्थाओ के एकाएक थोप दिए जाने से बडा बावेला उठ खडा हुआ, जिसकी ओर त्सिन शी ह्वाग ती का एकमात्र उत्तर और कठोर दमन का आश्रय लेना था।

यह नीति किसी विस्फोट के लिए निमत्रण स्वरूप था। फलत २१० ई पू म सम्राट की मृत्यु होते ही एक व्यापक विद्रोह उठ खडा हुआ। त्सिन साम्राज्य की राजधानी पर एक विद्रोही नेता लियू-पग ने कब्जा कर लिया। किन्तु सिनाई (चीनी) सावभौम राज्य के सस्थापक के क्रातिकारी काय के प्रति तीव्र प्रतिक्रिया की इस विजय से प्राचीन शासन की पुन स्थापना सभव न हो सकी। लियू पग अपहृत साम त वग का कोई सदस्य न था, वह एक कृषक था और एक टिकाऊ शासन स्थापित करने म सफल इसलिए हुआ कि उसने न तो काल दूषित साम ती व्यवस्था स्थापित करने की चेष्टा की न त्सिन शी ह्वाग-ती के क्रातिकारी प्रतिरूप का ही आश्रय दिया। उसकी नीति ऊपर से समझौते का तौर-तरीका अपनाते हुए पूववर्ती शासक के लक्ष्य तक क्रमश रास्ता बनाने की नीति थी।

२०७ ई पू त्सिन शक्ति का पतन हुआ और २०२ ई पू तक लियू-पग सिनाई (चीनी) जगत का एकमात्र स्वामी बन गया। इस छोटी-सी अवधि म प्राचीन शासन परपरा कायम करने का प्रयोग एक दूसरे विद्रोही नेता ह सियाग यू ने किया परन्तु वह कुछ व्यावहारिक न सिद्ध हुआ। जब इस असफलता के बाद लियू पग सिनाई (चीनी) जगत का एकछत्र स्वामी बन गया तब उसने पहिला काम यह किया कि अपने योग्य सहायकों को जागीरें दी और ह सियाग यू के शासन के उन जागीरदारों को भी अपनी जागीरों का उपभोग करने की छूट दे दी जो उसके साथ आ मिले। परन्तु एक एक करके वह जागीरभोगी सेनापतियों को अपदस्थ करता तथा मौत के घाट उतारता गया। दूसरे बहुत-से जागीरदारों को एक जागीर से दूसरी जागीर पर तबादला करता रहा और इस प्रकार उनकी क्षणस्थायी प्रजाओ से कोई खतरनाक घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित होने के पहिले ही उनको अपदस्थ करता गया। फिर इसी बीच लियू-पग ने साम्राज्य की शक्ति को कायम रखने बल्कि बढाने के लिए भी प्रभावशाली उपाय किए। इसका परिणाम यह हुआ कि त्सिन-शी-ह्वाग-ती के एक ऐसे सावभौम राज्य का जो कृत्रिम रूप से अकित स्थानीय प्रशासन-सस्थाओ की एक शृखला-द्वारा केंद्र से शासित होना हो आदर्श ह्वागती की मृत्यु के १०० वष के अन्दर ही एक बार फिर तथ्य बन गया। फिर इस बार की उपलब्धि की सफलता का एक निश्चित रूप था क्योंकि लियू-पग तथा उसके उत्तराधिकारियों की पवियन (दाघसूत्री) नीति ने साम्राज्य सरकार को उन मानवीय साधनों की स्थापना के लिए पर्याप्त अवसर दे दिया जिनके अभाव म प्रथम त्सिन सम्राट की विराट योजना विफलता के गत म डूब गयी।

एक केन्द्रित सरकार पर्याप्त लोकसेवकों या लोकाधिकारियों (प्रोफेशनल सिविल सर्विस) के बिना नहीं चलायी जा सकती और हान वश को जिसका प्रतिष्ठापक या सस्थापक लियू-पग था एक कुशल एव लोकप्रिय शासन सेवा सस्था के निर्माण में

सफलता प्राप्त हुई। इसके लिए उसे तत्त्वज्ञान की कन्फ्यूशियन विचारधारा के साथ समझौता करना और कन्फ्यूशियन तत्त्वज्ञानियो का पुराने जन्मगत सकुचित सनिक कुलीनतन्त्र से जो गठबधन था उसे तोड देना पडा। इसम सफलता प्राप्त करने के लिए उन्होने सावजनिक शासन सेवा के एक नय और उदार माग का उद्घाटन किया। कन्फ्यूशियन विधाओ म कुशलता ही इस सास्कृतिक योग्यता वाले नवीन कुलीनतन्त्र का माप बना दी गयी। यह परिवतन भी इतने धीरे धीरे तथा चतुराई के साथ किया गया कि नवीन अभिजाततत्र न पुराने अभिजाततन्त्र का ऐतिहासिक नाम 'छुनत्जे तक धारण कर लिया और किसी को पता तक न चल सका कि एक गभीर सामाजिक एव राजनीतिक क्रान्ति रूप ग्रहण करती जा रही है।

यदि अपनी उपलब्धि के टिकाऊपन से नापा जाय तो हान वश के प्रतिष्ठापक की गिनती अपने जीवन कार्यों से किसी सावभौम राज्य को जन्म देने वाले सब राज ममज्ञो के ऊपर की जायगी। आश्चय तो यह है कि पाश्चात्य जगत रोमन आगस्टस के समान पर लियू-पग की अपेक्षा कम महत्त्वपूण सफलताओ से ता परिचित है किन्तु चीनी इतिहास के कुछ विशेषज्ञ विद्वानो को छोड दें तो लियू पैंग के ऐतिहासिक अस्तित्व का उसे पता तक नहीं है। शायद किसी भावी युग मे अतीत की सम्पूण सभ्यताओं मे अपनी ऐतिहासिक जडें रखने वाले सावदेशिक समाज क इतिहासकार इससे अच्छे सन्तुलन का परिचय देंगे।

सिनाई (चीनी) सावभौम राज्य के प्रान्तीय गठन के महत्त्व की परीक्षा कर लेने के बाद, हमारे पास दूसरे उदाहरणो पर विचार करन क लिए स्थान नही रह गया है। इसलिए हम आगे बढकर अब ऐसे प्रान्तीय सगठनो द्वारा अनजान म उन लोगा के प्रति की गयी सेवाओ पर विचार कर लेना चाहते हैं जिनके लाभ के लिए उनका निर्माण नही किया गया था। यहा भी हम एक ही उदाहरण तक अपने को सीमित रखेंगे और देखेंगे कि रोम साम्राज्य के प्रान्तीय गठन का ईसाई धमसघ (चच) न कसे अपने लिए उपयोग कर लिया।

अपने धम-सस्थान का निर्माण करने मे सघ (चच) ने उन नगर राज्यो का उपयोग किया जो यूनानी समाज गठन एव रोमीय राजनीति के घटक थे और ज्यो ज्यो हेलेनी (यूनानी) सभ्यता की परपराए धीरे धीरे समाप्त होती गया, त्यों-त्या नगर का मतलब, स्वायत्त शासन वाली स्थानीय सस्थाओ से युक्त रोमन राष्ट्रमडल की अधिकारप्राप्त म्युनिसिपलिटा की जगह ऐसा कस्बा होता गया[1] जो किसी ईसाई धर्माचाय (बिशप) का मुख्य स्थान हो। जिस स्थानीय धर्माचाय (बिशप) के अधिकार म रोमन धमसघ (चच) के किसी प्रान्त का केंद्र स्थान पडता था उसे उस प्रान्त के अन्य बिशप स्वत ही अपने से बडा मान लेते थे। इसी प्रकार य बने हुए मेट्रापालिटन या आवबिशप उस बिशप को प्रधान धर्माचाय या प्राइमेट मान लेते थे जिसके अधिकार

[1] इगलण्ड मे भी अभी कुछ ही दिनों पहिले तक यही परपरा थी। वहा भी 'गिर्जाघरयुक्त' नगर (कथेड्रल सिटी) ही थे और कस्बे 'बरो' कहलाते थे।

न डाल गया और तैयार किये बिना हाथ गति से चलने वाले राज्य की संस्थाओं के एकाएक थोप दिये जाने से बड़ा बावेला उठ खड़ा हुआ, जिसकी ओर त्सिन की ह्वांग-ती का एकमात्र उत्तर और कठोर दमन का आश्रय लेना था।

यह नीति किसी विस्फोट के लिए निमंत्रण-स्वरूप थी। फलतः २१० ई० पू० में सम्राट् की मृत्यु होते ही एक व्यापक विद्रोह उठ खड़ा हुआ। त्सिन साम्राज्य की राजधानी पर एक विद्रोही नेता लियू-पंग ने कब्जा कर लिया। किन्तु सिनाई (चीनी) सार्वभौम राज्य के संस्थापक के क्रांतिकारी काम के प्रति तीव्र प्रतिक्रिया का इस विजय से प्राचीन शासन की पुनः स्थापना संभव न हो सकी। लियू-पंग अपहृत सामन्त वर्ग का कोई सदस्य न था, वह एक कृषक था और एक टिकाऊ शासन स्थापित करने में सफल इसलिए हुआ कि उसने न तो काल-दूषित सामन्ती व्यवस्था स्थापित करने की चेष्टा की, न त्सिन शी ह्वांग-ती के क्रांतिकारी प्रतिरूप का ही आश्रय लिया। उसकी नीति ऊपर से समझौते का तौर-तरीका अपनाते हुए पूर्ववर्ती शासक के लक्ष्य तक क्रमशः रास्ता बनाने की नीति थी।

२०७ ई० पू० त्सिन शक्ति का पतन हुआ और २०२ ई० पू० तक लियू-पंग सिनाई (चीनी) जगत का एकमात्र स्वामी बन गया। इस छोटी-सी अवधि में प्राचीन शासन परंपरा कायम करने का प्रयोग एक दूसरे विद्रोही नेता ह्सियांग यू ने किया परन्तु वह कुछ व्यावहारिक न सिद्ध हुआ। जब इस असफलता के बाद लियू-पंग सिनाई (चीनी) जगत का एकछत्र स्वामी बन गया तब उसने पहिला काम यह किया कि अपने योग्य सहायकों को जागीरें दीं और ह्सियांग यू के शासन के उन जागीरदारों को भी अपनी जागीरों का उपभोग करने की छूट दे दी जो उसके साथ आ मिले। परन्तु एक एक करके वह जागीरभोगी सेनापतियों को अपदस्थ करता तथा मौत के घाट उतारता गया। दूसरे बहुत-से जागीरदारों का एक जागीर से दूसरी जागीर पर तबादला करता रहा और इस प्रकार उनकी क्षणस्थायी प्रजाओं से कोई खतरनाक घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित होने के पहिले ही उनको अपदस्थ करता गया। फिर इसी बीच लियू-पंग ने साम्राज्य की शक्ति को कायम रखने, बल्कि बढ़ाने के लिए भी प्रभावशाली उपाय किये। इसका परिणाम यह हुआ कि त्सिन शी-ह्वांग-ती के एक ऐसे सार्वभौम राज्य का, जो कृत्रिम रूप से अंकित स्थानीय प्रशासन-संस्थाओं की एक शृंखला-द्वारा केंद्र से शासित होता हो, आदर्श ह्वांगती की मृत्यु के १०० वर्ष के अन्दर ही एक बार फिर तथ्य बन गया। फिर इस बार की उपलब्धि व सफलता का एक निश्चित रूप था क्योंकि लियू-पंग तथा उसके उत्तराधिकारियों की फेबियन (दीर्घसूत्री) नीति ने साम्राज्य सरकार को उन मानवीय साधनों की स्थापना के लिए पर्याप्त अवसर दे दिया जिनके अभाव में प्रथम त्सिन सम्राट की विराट योजना विफलता के गर्त में डूब गयी।

एक केंद्रित सरकार पेशेवर लोकसेवकों या लोकाधिकारियों (प्रोफेशनल सिविल सर्विस) के बिना नहीं चलायी जा सकती और हान वंश को, जिसका प्रतिष्ठापक या जन्मदाता लियू-पंग था, एक कुशल एवं लोकप्रिय शासन सेवा संस्था के निर्माण में

क्षेत्र म किसी प्रान्त-समूह का प्रशासकीय केन्द्र पडता था। ऐसे प्रान्त-समूह को 'डायोसीज' कहा जाता था जिसे चच न ग्रहण कर लिया किन्तु वह एक नी बिशप के अधिकार-क्षेत्र के लिए इस शब्द का प्रयोग करने लगा। इसी क्रम से बिशप मेट्रोपालिटन तथा प्रादमेट अपने प्रान्तिक धर्माचाय का सम्मान देने लगे और वह पूवकाल के 'प्रिफेक्ट' (रोमन प्रशासक) के तुल्य होना गया। पूव के धमशासन क्षेत्र (प्रीफेक्चर) को सिकन्दरिया (अलक्जेन्द्रिया) यरुसलम एनिआक एव कुस्तुनतुनिया (कास्टेंटिनोपुल) के चार पट्रियार्कों (प्रधान धर्माधिकारियो) म विभाजित कर दिया गया। तीन और प्रीफेक्चर जो वच उन्हे एक ही महत पर अल्प जनसख्या वाले राम के पट्रियाक क्षत्र म मिला दिया गया।

ईसाई चच का यह प्रादेशिक सगठन किसी सम्राट की आज्ञा स अस्तित्व म नही आया, यह चच द्वारा स्वय ही उस काल म निर्मित हुआ जब कि वह राज्य की दृष्टि म अस्वीकृत बल्कि उसक हाथो पीडित एक सस्था थी। चूकि धर्मनिरपेक्ष राज्य के प्रान्तीय गठन को आत्मसात् करके भी यह चच उससे मूलत स्वतत्र था इसीलिए अपने गठन म समान हानि पर भी वह तब भी जीवित रह सका जब शासन का पतन हो गया। गाल मे टूटत हुए राज शासन ने अपनी रक्षा के लिए एक नूतन विधि का आविष्कार किया। स्थानीय जनता का समथन प्राप्त करने के लिए उसने प्रतिष्ठित व्यक्तियो का समय-समय पर समारोह करना शुरू किया। इतने पर भी जब साम्राज्य धूल म मिल गया तो चच न इस विधि को अपना लिया और धर्माचार्यों का प्रादेशिक सम्मेलन बुलाना शुरू कर दिया।

उदाहरण के रूप म फ्रास के मध्ययुगीन साम्प्रदायिक मानचित्र मे कोई इतिहासकार चाहे तो वह बिशपो क क्षेत्र स उभरती हुई गैलिया तोगाता के नगर राज्य और गलिया कोमाता के परगनो की सीमाए देख सकता है। इसी प्रकार आर्कबिशप के अधिकार क्षेत्रो म उस आगस्टस द्वारा विभाजित चार प्रान्तो (नार्बोनसिस, एक्विटेनिया लुगडूनसिस एव बेल्जिका) की सीमा रेखाए मिल सकती है। यहा तक कि पाच पट्रियाक क्षत्र भी ज्यो-के-त्यो दीखते हैं जिनम चार पूर्वी परपरानिष्ठ चच (ईस्टर्न आर्थोडाक्स चच) के और एक पाश्चात्य कैथालिक चच के अधिकार म स्थायी देते हैं। यद्यपि कैल्सेडन म ४५१ ई म हुई चतुथ धमसभीय कौंसिल की बठक के बाद से इन पद्रह शताब्दियो म धमप्रजा के वितरण एव जातीयता क सम्बध म विशाल परिवतन हो गये हैं किन्तु उनक द्वारा उठायी गयी भयकर हानियो की पूर्ति ऐसी उप लब्धियो स हो गयी है जिनकी कल्पना भी इन धम क्षेत्रो के निर्माण क समय सभव न थी।

राजधानियाँ

सावभौम राज्यो की केन्द्रीय सरकारो म समय-समय पर अपनी राजधानियो का स्थान परिवतन करने की निश्चित प्रवृत्ति दिखायी पडती है। साम्राज्य निर्माता अपने राज्य का शासन अपनी सुविधा की दृष्टि स स्थापित राजधानियो म आरभ करते हैं। य स्थान या तो उनकी अपनी पितृभूमि (जन्म स्थान) की स्थापित राजधानी

हाते हैं अथवा विजित प्रदेशो की सीमा पर कोई नया ही स्थान इस काय के लिए चुना जाता है। इसम इतना ध्यान जरूर रखा जाता है कि साम्राज्य निर्माता के अपन देश के उस स्थान पर आने जान की सुविधा (जसे कलकत्ता) हो। परन्तु ज्या-ज्यो समय बीतता जाता है और घटनाआ के दबाव से अथवा साम्राज्य शासन के अनुभव स मूल साम्राज्य निर्माता अथवा उनके उत्तराधिकारी सुविधा की दृष्टि से कोई नया स्थान चुनते है, तब मूल साम्राज्य निर्माण करन वाली शक्ति का ही नही सम्पूण साम्राज्य के हित का ध्यान रखकर निणय करना पडता है। इस नये सामूहिक दृष्टिकाण के कारण विभिन्न परिस्थितियो मे विभिन्न स्थानो का ख्याल सामने आता है, जस यदि प्रशासन की सुविधा का ध्यान प्रधान हो तो एक एसा केद्रीय स्थान चुन जाने की सभावना ज्यादा हागी जहा से चारा ओर सचार के अच्छे साधन उपलब्ध हो। यदि मुख्य ध्यान किसी आक्रमणकारी से रक्षा करन का है तो स्थान एसा होगा जहा स उस आक्रमण भयग्रस्त सीमाप्रान्त को शीघ्र ही सनिक बल एव सामग्री पहुचायी जा सके।

हम देख चुके है कि सावभौम राज्यो के स्थापनकर्ता सदा एक ही मूल या स्रोत से नही आत। कभी-कभी तो वे एक ऐसी सभ्यता के प्रतिनिधि होते हैं जो उस समाज के लिए विजातीय होती है जिसकी राजनीतिक आवश्यकताओ की पूर्ति करना उनका ध्येय होता है। कभी-कभी वे ऐसे बबरा मे से आते हैं जो उस सभ्यता क लिए नतिक दृष्टि स पराये हा जाते हैं जिसकी ओर उनका आकषण होता है—दूसरे शब्दा मे कहे तो वे बाह्य श्रमिक वग से आते हैं। कभी-कभी क्या, प्राय वे ऐसे सनिक अभियानकर्ताओ (मार्चमेन) मे से होते हैं जो ऐसी सभ्यता के अनुगत होने के अपने दावे को, उसकी सीमाओ की बाहरी बबरो से रक्षा करके सिद्ध कर चुके होते हैं और बाद मे अपनी शक्ति का उपयोग अपने ही समाज के विरुद्ध करके उसे सावभौम राज्य का लाभ प्रदान करते हैं। इनके अलावा एक और भी श्रेणी होती है पर वह बहुत कम देखन मे आती है। ऐसा हो सकता है कि वे न तो विजातीय हो, न बबर हो, न सनिक अभियानकर्ता हो बल्कि उसी समाज के अन्दर से निकले हुए 'महापौर' (मेट्रोपालिटन) हो।

विदेशिया, बबरो अथवा अभियानकर्ताओ द्वारा जो सावभौम राज्य स्थापित होते हैं उनकी राजधानी सीमाप्रात की अपेक्षा केंद्र स्थान की ओर ही अधिक उन्मुख होगी यद्यपि अन्तिम श्रेणी या अभियानकर्ता की राजधानी सीमा की ओर भी हो सकती है क्योकि इस श्रेणी का अपना मूल काय बाद मे भी सपादित करना पड सकता है। 'मेट्रोपालिटन या महापौर द्वारा स्थापित सावभौम राज्यो मे राजधानिया स्वभावत केंद्र स्थान मे शुरू होगी। यद्यपि किसी खास दिशा से आक्रमण का भय होने पर और वह भय सरकार के ऊपर छा जाने पर वे सीमा की ओर भी बढती जा सकती हैं। उपलिखित किन नियमो से राजधानिया के स्थान का निश्चय एव उनका परिवतन होता है, उनके उदाहरण हम यहा उपस्थित करेंगे।

भारत मे ब्रिटिश राज, विदेशियो-द्वारा साम्राज्य का निर्माण करने का एक

अच्छा उदाहरण है। समुद्र पार से भारत में पहुँचकर और वहाँ के निवासियों पर हुकूमत करने का स्वप्न देखने के बहुत पहिले उनके साथ वाणिज्य करने आकर अंग्रेजों ने बबई, मद्रास और कलकत्ता में अपने व्यापार सस्थान स्थापित किये। इनमें से अंतिम (कलकत्ता) उनकी प्रथम राजनीतिक राजधानी बना क्योंकि अन्य स्थानों में उल्लेखनीय एव तुलनायोग्य सफलता पाने के प्राय एक पीढी पहिले ईस्ट इंडिया कम्पनी ने कलकत्ता के निकटवर्ती दो धनवान् प्रान्तों पर कब्जा कर लिया था। सम्पूर्ण भारत को ब्रिटिश राज में मिलाने की वेलेजली (गवर्नर जनरल १७९८ से १८०५ ई तक) की कल्पना के बाद सौ वर्ष और उस कल्पना के मूर्त हो जाने के बाद पचास वर्ष से भी अधिक समय तक कलकत्ता ब्रिटिश भारत की राजधानी बना रहा, परन्तु राजनीतिक दृष्टि से एक हो गये उस उप महाद्वीप का केन्द्रकर्षी आघात इतना प्रबल हो उठा कि ब्रिटिश भारत की केन्द्रीय सरकार को अपनी राजधानी कलकत्ता से दिल्ली बदलनी पड़ी जो सिन्धु एव गगा दोनों नदियों-द्वारा सिंचित प्रदेश वाले साम्राज्य की राजधानी होने के लिए ज्यादा अच्छा प्राकृतिक स्थान था।

दिल्ली राजधानी के उपयुक्त एक प्राकृतिक स्थान तो था ही, वह एक ऐतिहासिक स्थान भी था क्योंकि १६२८ ई के बाद वह बराबर मुगलों की राजधानी रह चुका था। अंग्रेजों की तरह मुगलों ने भी भारत को एक विजातीय सार्वभौम राज्य दिया—फर्क इतना ही है कि वह समुद्र की ओर से नहीं, उत्तर पश्चिम सीमान्त के मार्ग से आये थे। अगर उन्होंने ब्रिटिश उदाहरण की पूर्व कल्पना की होती तो वे अपनी पहिली राजधानी काबुल में रखते। जिन कारणों से उन्होंने ऐसा नहीं किया उन पर उनके इतिहास के विस्तृत विवेचन में प्रकाश पड सकता है। दिल्ली उनकी प्रथम राजधानी नहीं थी, परन्तु पूर्ववर्ती राजधानी आगरा भी केन्द्र स्थान में ही थी।

यदि हम स्पेनिश अमरीका पर उडती दृष्टि डालें तो हम देखेंगे कि मध्य अमरीका के साम्राज्य निर्माताओं ने एक ही बार सदा के लिए अपनी राजधानी दिल्ली की भांति तेनोश टीटलन (मक्सिको सिटी) निश्चित कर दी और प्रवेश की सुविधा वाले बन्दरगाह वेराक्रुज—जैसे कलकत्ता—की उपेक्षा की। पेरू में उन्होंने इसके प्रतिकूल मार्ग अंगीकार किया। वहाँ अन्दर के पठार इकास की राजधानी कुजको की उपेक्षा कर समुद्रतट स्थित लीमा को राजधानी बनाया। इसका कारण यह तथ्य था कि पेरू का प्रशान्त महासागर निकटवर्ती तट प्रान्त बहुत सम्पन्न एव महत्त्वपूर्ण था जबकि मक्सिको का अतलान्त महासागरीय तट भाग उतना सम्पन्न एव महत्त्वपूर्ण नहीं था।

जिन विजातीय उस्मानलियों ने प्राच्य कट्टरपन्थी या परपरानिष्ठ ईसाई समाज (ईस्टर्न आर्थोडाक्स क्रिश्चियन सोसायटी) को एक सार्वभौम राज्य दिया वे पहिले एशिया फिर यूरोप में तबतक बराबर अपनी राजधानी बदलते रहे जबतक कि उन्हें अपने बजेंनियाई (बजटाइन) पूर्वजों का अनुपम स्थान नहीं मिल गया।

जब मगोल खाकान कुबलाई (राज्यकाल १२५९–९४ ई) ने सुदूरपूर्वीय समाज के समस्त महाद्वीपीय भाग पर अधिकार कर लिया तो वह अपनी राजधानी मगोलिया के काराकोरम से चीन के पेकिंग (पेकिन) में उठा ले गया। किन्तु कुबलाई के मस्तिष्क

द्वारा इस बात का निर्देशन होने के बाद भी उसका हृदय अपने पूवजो की शाद्वल भूमि के लिए बराबर तडपता रहा और उस अद्धचीनी मगोल राजममज्ञ ने अपनी यायावरीय वृत्ति की तप्ति के लिए चुग-तू मे एक निवास भवन वनवाया। यह स्थान मगोलियन पठार के दक्षिण-पूर्वी छोर पर स्थित था और वहा से यह मदान नये राजकीय नगर के निकटतम पडता था। किन्तु पेकिंग (पकिन) बराबर शासन केन्द्र बना रहा, इसी प्रकार चुग-तू एक विश्रामस्थल—यद्यपि कभी-कभी वहा से भी राजकाज निपटाना ही पडता था।

शायद हम चुग-तू को शिमला के समकक्ष रख सकते हैं क्योंकि कुबलाई यदि अपने देश के मदान के सपने देखता था तो ब्रिटिश वायसरायगण निश्चित रूप से एक सहनीय जलवायु के लिए तरसते थे। हम बालमोरल से भी चुग-तू की तुलना कर सकते हैं क्योंकि महारानी विक्टोरिया का हृदय भी इगलैंड की उच्च भूमि (हाईलंडम) म उसी प्रकार बसता था जैसे कुबलाई का अपने पठार म। हम इसके भी आगे जाकर उन्नीसवी सदी के एक चीनी यात्री द्वारा बालमारल के सौन्दय का ऐसे उत्साह के साथ वणन करने की कल्पना कर सकते है जो पच्चीसवी सदी के चीनी कवि को महारानी विक्टोरिया एव उनके 'राजकीय सौन्दय वाले विलास गुम्बद' की चीनी कविता के जादुई पदो मे गूथ दे।

सिकन्दर महान् के महत पर क्षणस्थायी साम्राज्य के चिताभस्म पर जन्म लेने वाले उत्तराधिकारी राज्यो मे से एक के निर्माता सल्यूकस निकेटार ने एक ऐसे साम्राज्य निर्माता का उदाहरण प्रस्तुत किया है जो अपनी राजधानी के नगर के सम्बन्ध मे दुचित्ता था। कारण यह था कि वह अपनी साम्राज्य लिप्सा की दिशा के सम्बन्ध मे ही दुचित्ता था। सबसे पहिले उसने पुराने एकेमीनियाई साम्राज्य के सम्पन्न बबिलोनी प्रान्त पर अधिकार करने मे अपना मन लगाया और सचमुच उसे जीत लिया। तब उसने टाइग्रिस के दक्षिणी तट पर स्थित सिल्यूशिया मे अपनी राजधानी स्थापित की। यह ऐसी जगह थी जहा वह यूफ्रिटीज के भी निकटतम पडती थी। स्थान का चुनाव बहुत अच्छा रहा और सिल्यूशिया बाद की पाच से भी अधिक शताब्दियो तक एक महान् नगरी और यूनानी सभ्यता का एक महत्त्वपूण केन्द्र बनी रही। किन्तु उसका निर्माता खुद ही सुदूर पश्चिम के प्रतिद्वन्द्वी मसीडोनियन सेनानायको के फेर में पडकर अनेक सफल अभियानो मे भटक गया और उसने अपनी दिलचस्पी का केन्द्र मेडिटेरेनियन (भूमध्यसागर निकटवर्ती) जगत मे स्थानान्तरित कर दिया तथा सीरिया के एन्तिओक मे अपनी मुख्य राजधानी बनायी जो ओरेन्तीज के दहाने से सिर्फ २० मील की दूरी पर था।[1] इसका परिणाम यह हुआ कि उसके उत्तराधिकारी मिस्र के तालमिया (Ptolemies) तथा पूर्वी मेडिटेरेनियन के अन्य देशो के साथ लडने मे ही अपनी शक्ति नष्ट करते

[1] इसी के निकट एन्तिओक के बन्दर के रूप मे काम देने के लिए एक और सिल्यूशिया की स्थापना की गयी। इसी सिल्यूशिया से सन्त पाल ने साइप्रस जाने के लिए अपनी प्रथम समुद्री उपदेश-यात्रा आरम्भ की थी।

रहे—यहा तक कि अत मे पार्थिया वालो ने उनके बबिलोन प्रदेश पर भी कब्जा कर लिया।

ये सब उदाहरण विजातीय सभ्यताओ के प्रतिनिधियो द्वारा स्थापित साम्राज्यो से लिये गये है। अब हम बबरो द्वारा स्थापित साम्राज्यो की राजधानियो की स्थिति पर विचार करेगे।

जिन फारसी बबरो की विजयो ने सीरियाई समाजो को एकेमीनियाई साम्राज्य के रूप मे एक सावभौम राज्य प्रदान किया उनका देश पहाडी उजाड और मानवीय ससग के मार्गों से दूर स्थित था। हेरोडोटस ने जिस कहानी के साथ अपने ग्रथ की समाप्ति की है उसके अनुसार एकेमीनियाई साम्राज्य का निर्माण करने वाले साइरस महान ने इस सुझाव का मखौल उडाया था कि जब फारसी लोग ससार के स्वामी बन गये हैं तब उन्हे अपने वीरान पहाडी देश का त्याग कर अधिक उपजाऊ और अच्छे प्रदेश म बस जाना चाहिए। यह एक अच्छी कहानी है और हम इस अध्ययन के प्रारभिक भाग मे पहिले भी इसका उपयोग यह दिखाने के लिए कर चुके हैं कि मानवीय साहस को बढाने मे कठोर परिस्थितिया कितना ज्यादा काम करती हैं। फिर भी यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि साइरस महान् द्वारा अपने मीडियाई स्वामी के पराजित किये जाने के सौ वष से भी पहिले उसके एक एकेमीनियाई पूवज अपनी राजधानी अपने पूवजो की पहाडी ऊचाइयो से हटाकर सबसे पहिले अधिकार म आने वाले तराई के निचले प्रदेशो म ले गये थे। इस स्थान का नाम अनशन था और यह सुषा के पास कही स्थित था—यद्यपि उसकी बिलकुल ठीक स्थिति आज भी अज्ञात है। जब एकेमीनियाई साम्राज्य स्थापित हो गया तो उसकी राजधानी प्रतिवष ऋतु के अनुसार बदलती रही—विभिन्न जलवायु वाली कई राजधानिया आयी-गयी। किन्तु इनमे से पर्सिपोलिस एकबताना, यहा तक कि सुषा (पुरानी बाइबिल का शूषन) भी समारोह एव भावोद्वेग के केन्द्र बने रहे। भौगोलिक सुविधा की दृष्टि से वाणिज्य के लिए साम्राज्य का केन्द्र बबिलोन बना रहा। यही उसके पूववर्ती तराई वाले शासक की भी राजधानी था।

मूलत सीरियाई जगत् के लिए ईरानी पठारो वाले फारसी साम्राज्य निर्माताओ ने जिस सावभौम राज्य का निर्माण किया था वह जब यूनानियो के प्रवेश के लगभग हजार साल बाद अरबी पठार के किनारे मे आने वाले हेजाजी बबरो-द्वारा पुनगठित हुआ तो इतिहास ने बड़े जोर के साथ अपने को दोहराया। हेजाज के एक शान्त या नखलिस्तानी राज्य की प्रतिस्पर्धिनी क्षुद्र शासकमडली को उस सूझ का धन्यवाद करना चाहिए जिसने मक्का की एक प्रतिद्वन्द्विनी जाति के परित्यक्त प्रवक्ता (पैगबर) को अपने साथ आकर रहने के लिए निमत्रित किया और इस आशा से उन्हे अपना नेता बनने की चेष्टा करने का अवसर प्रदान किया कि वह शायद उनकी आपसी फूट दूर कर उनम वह एकता लाने म समर्थ हो जिसे प्राप्त एव स्थापित करने म वे खुद असमर्थ हो रहे थे। हिजरा के तीस साल के अन्दर ही यसरीब एक ऐसे साम्राज्य की राजधानी बन गया जिसमे सीरिया तथा मिस्र के पूववर्ती रोमन उपनिवेश ही नहीं थे

वरन् पूर्ववर्ती सासानी साम्राज्य का समस्त क्षेत्र भी था। खलीफ़ों को शासन की राजधानी बनाने का कारण निम्नलिखित तथ्य था। बात यह थी कि दूरस्थित यह दारुस्सलाम उस केन्द्रीय बाज के तुल्य था जिसमें मुस्लिम अरबी विश्व-साम्राज्य की चोंच में पकड़ कर सभी तजों के साथ यह चली कि लोगों को ईश्वरीय हस्तक्षेप का भान होने लगा। फिर यह नगर मदीनातुन्नबी (नबी का नगर) के रूप में जगमगा उठा। मदीना कुछ रूप में खिलाफ़त की राजधानी बना रहा। कम से कम तबतक जबतक कि अब्बासाइड खलीफा मंसूर ने ७६२ ई. में बगदाद की नींव नहीं डाली। किन्तु इस निधि से तो कुछ ने भी पहिले उम्मायद खलीफाओं ने राजधानी को, यथावत दमिश्क में पहुंचा दिया।

अब हम अभियानकर्ताओं (मार्चमेन) द्वारा निर्मित सार्वभौम राज्यों की ओर आते हैं। मिस्री सभ्यता के लंबे इतिहास में लोअर नील नद के ऊपरी भागों से आने वाले इन अभियानकर्ताओं ने कम से कम तीन बार समाज पर राजनीतिक ऐक्य बलात स्थापित किया और हर बार किसी सार्वभौम राज्य के अन्दर प्रयाण के बाद ही राजधानी बदलने (तीसरी बार तुरन्त नहीं कुछ समय बाद) का दृश्य देखने में आया। राजधानी नद के ऊपरी भागों जैसे थीबीज (लुक्सर) या उसके समकक्ष किसी स्थान से हटाकर ऐसे स्थान पर ले जायी गयी जहां आबादी का प्रमुख भाग आसानी से पहुंच सके। पहिले दो अवसरों पर यह मेम्फिस (काहिरा—करो) या उसके बराबर के स्थान पर ले जाया गया जबकि तीसरे अवसर पर नील डेल्टा के उत्तर-पूर्वी कोण के सीमान्त गढ़ में ले जायी गयी जो सैनिक दृष्टि से आक्रमण के लिए सुलभ था।

हेलेनी (यूनानी) इतिहास में रोम का भाग्य मिस्री थीब्स की याद दिलाता है। जैसे थीब्स ने नील नद के प्रथम प्रपात का संरक्षकत्व न्यूबिया के बर्बरों के विरुद्ध अलकाब से छीन ली थी वैसे ही रोम ने गालों के विरुद्ध हेलेनीय जगत् की निगहबानी एत्रस्कनों से ले ली। थीब्स की भांति ही रोम ने भी बाद में अपनी सेनाओं को अन्दर की ओर अभिमुख किया और उस हेलेनीय समाज पर राजनीतिक ऐक्य थोप दिया जिसका वह स्वतः भी एक सदस्य था। अनेक सदियों तक उस साम्राज्य की राजधानी के रूप में उसकी स्थिति बनी रही जिसका उसी ने सृजन किया था, यद्यपि इसकी कल्पना भी की जा सकती है कि यदि मार्क एंटोनी की चलती और ऐक्टियम के युद्ध का परिणाम कुछ दूसरा हुआ होता तो उसकी प्रमुख विजयों को देखने वाली पीढ़ी के काल में ही राजधानी के रूप में उसकी मर्यादा सिकन्दरिया (अलेक्जेंड्रिया) के हाथ चली गयी होती। तीन सदियों के बाद ऐसी परिस्थितियों की श्रृंखला के कारण जिनका वर्णन यहां संभव नहीं है तेजी से पतित होते हुए साम्राज्य की राजधानी कहीं ज्यादा अच्छे स्थान कुस्तुनतुनिया (कांस्टेंण्टिनोपुल) में चली गयी। क्रमानुवर्ती सार्वभौम राज्यों की राजधानी के रूप में बास्फोरस के तट पर स्थित नगर का भविष्य बड़ा लंबा था। मदीना की भांति ही टाइबर के तट पर बसे हुए नगर को समय पर एक उच्चतर धर्म का पवित्र नगर बनकर ही संतोष करना पड़ा।

यदि कुस्तुनतुनिया (कांस्टेण्टिनोपुल) दूसरा रोम था तो मास्काउ (मास्को)

मावम के पूववर्ती काल म प्राय तीसरे स्थान का दावा करता रहा। अब हम रूसी कट्टर ईसाई सभ्यता के सावभौम राज्य के अन्तगत राजधानियो की प्रतिस्थापना पर विचार कर सकते हैं। रोम की भाति मास्को (मास्को) ने भी बबरो के विरुद्ध, एक अभियान राज्य की राजधानी के रूप म अपनी जीवन-यात्रा शुरू की। ज्यो-ज्यो मगोल यायावरो की तरफ से खतरा कम होता गया मास्को (मास्को) को पश्चिमी ईसाई जगत् के अपने निकटतम पडोसियो—पोलो एव लिथुएनियनो—के आक्रमणो का सामना करने और उन्हे मार भगाने म लग जाना पडा। जिस समय जब राजधानी के रूप म उसका भविष्य सुरक्षित मालूम पडता था पश्चिमी रग म रगे जार की असाधारण महत्वाकाक्षाओ ने, अपनी नवीन रचना सेंट पीटसबग के पक्ष म उसे अधिकारच्युत कर दिया। स्वीडन से जीती गयी भूमि पर १७०३ ई म रूस सेंट पीटसबग की नीव डाली गयी थी। देश के दूर भीतरी भाग से हटाकर पीटर महान् अपनी राजधानी एक ऐसे स्थान पर ले गया जिसके जादुई द्वार पश्चिमी जगत म खुलते थे और जो उसकी राय म प्रौद्योगिक दृष्टि से कही उन्नत दुनिया म था। यह घटना हम सिल्यूकस निकेटार की याद दिलाती है जो अपनी राजधानी सुदूरपूर्वी सिल्यूसिया से ओरोन्तीज तट पर स्थित एतिओक मे ले गया था। किन्तु इन दोनो म कुछ अन्तर भी है। एतिओक के लिए अपनी सिल्यूसिया का त्याग करने म सिल्यूकस (जो दक्षिण पश्चिम एशिया म एक विदेशी साम्राज्य का निर्माता था) अपनी ही एक कृति का त्याग कर रहा था—ऐसी कृति का जिसके साथ कोई प्रबल राष्ट्रीय भावना सम्बद्ध नही थी फिर वह एक ऐसे स्थान के पक्ष म था जो मेडिटेरेनियन से मुश्किल से एक दिन की यात्रा पर था अत हेलेनी (यूनानी) जगत के हृदय के अधिक निकट था। सच पूछिए तो ऐसा करने म वह अपने गृह अपने देश की ओर भी उन्मुख हुआ था। किन्तु रूस के मामले मे ऐसी बात नही थी सम्पूर्ण भावनाए परित्यक्त मास्को (मास्को) के पक्ष म थी और पश्चिम के जिस रूक्ष और शीतल जलमाग की ओर पीटर की नयी प्रायोगिक राजधानी की खिडकिया खुलती थी उनकी हेलेनी (यूनानी) जगत के मेडिटेरेनियन से कोई तुलना ही न थी। सेंट पीटसबग दो सौ वर्षों तक अपने स्थान पर जमा रहा। उसके बाद जब साम्यवादी क्रांति हुई तो मास्को (मास्को) फिर होश म आया और सेंट पीटर के नगर को अपने नये नाम लेनिनग्राद[1] पर ही सन्तोष करके रह जाना पडा। यह सोचकर विचित्र-सा लगता है कि इस चतुथ रोम का भाग्य नाम के विषय म प्रथम (रोम) से बिलकुल भिन्न रहा। जब रोम एक सावभौम राज्य की

[1] इस प्रकार के नाम परिवतन के प्रसग मे कुछ हास्यास्पद बातें भी आती हैं। इस सक्षिप्त सस्करण के सपादक को याद आता है कि लगभग आधी सदी पहिले उसे एक ऐसे मित्र का पत्र मिला था जो हाल ही एक फ्रांसीसी प्रान्तीय कस्बे से लौटा था। उसने लिखा था—पिछली बार जब मैं यहा था तबसे कौंसिल मे बाबू विरोधी' (ऍटी क्लेरिक्ल) दल ने अपना बहुमत कर लिया है तथा ज्यो बपटिस्ट' माग अब एमिली जोला' माग हो गया है।

राजधानी नही रह गया तब भी वह क्वूर एव मुसोलिनी के कृत्यो के बावजूद, वह सब बना रहा जो वह आज भी है—एक सेंट पीटर का स्थान या सेंट पीटर के पवित्र नगर-जसा।

ये कुछ उद्देश्य हैं जिन्होंने इतिहास के कतिपय सावभौम राज्यो के शासको को अपनी राजधानियो का स्थान चुनने म प्रभावित किया। जब हम उस अनिच्छित उपयोग पर विचार करते हैं जो इन राजधानियो का शासकेतर लोगो तथा प्रबल अल्पमत-द्वारा किया गया तब हम सबसे असरकृत कार्यों अर्थात कब्जा एव लूट से आरभ करना पडता है। एक पुरानी कथा के अनुसार सैनिक शक्ति मे प्रबल एक राज्य के सनिक फील्ड मार्शल ब्लूचर ने वाटरलू के युद्ध क बाद प्रिंस रीजेंट का अतिथि रहते हुए लन्दन को देखकर कहा था—'क्या विनाश है!' राजधानियो के ध्वस और लूट की तो एक लम्बी सूची बनायी जा सकती है और यदि हम विजयी लुटेरो के पक्ष मे हुए परिणामो का अनुसरण करें तो देखेंगे कि ऐसी भयकर दावतो के बाद अक्सर अपच की बारी आती है। चतुर्थ शताब्दी ईसा पूर्व के हेलेनी समाज और ईसा की सोलहवी सदी के पाश्चात्य समाज के सनिक चेलो ने जो बबर कृत्य किये उनसे उनको लज्जित ही नही होना पडा वे उसी म तिरोहित भी हो गये। प्रारभिक बबर जन जो अपराध दड न पाने की भावना के साथ कर सकते थे वे वित्तीय अथव्यवस्था विकसित समाज में दडित हुए बिना नही कर सकते। प्रथम के द्वारा दक्षिण-पश्चिम एशिया के कोषागारो की लूट और दूसरे के द्वारा अमरीका के शोषण ने अकस्मात् चतुर्दिक सोने की धारा प्रवाहित कर दी जिससे भयकर रूप से मुद्रास्फीति (इनफ्लेशन) हो गयी। और पर्सीपोलिस मे मसीडानियन तथा कुजको म स्पेनिश लुटरो के पापो का प्रायश्चित्त साइक्लेडस के आयोजियन शिल्पकारा एव स्वैबिया के जमन किसानो को करना पडा।

आइए अब हम कम दुखदायी विषयो की भी चर्चा कर लें। सावभौम राज्यो की राजधानी वाले नगर स्पष्टत सब प्रकार के सास्कृतिक प्रभावो के प्रसार के सुविधाजनक कद्र थे। उच्चतर धम अपने प्रयोजन के लिए उन्हें उपयोगी पाते थे। जूडा से आय हुए नेबुकद्नेजर के निर्वासित जब बबिलोन की कद मे थे तब राजधानी क नगर न इनक्यूबेटर (ताप सचालित अडस्फोटन यन्त्र) के रूप मे एक उच्च भूमिक धम की सेवा की और उस धम न अपने ग्रामीण रूप की जगह एक सावदेशिक दृष्टिकोण अपनाकर अपनी आत्मा प्राप्त की।

एक सावभौम राज्य की राजधानी आध्यात्मिक बीजोदभव क लिए अच्छी भूमि प्रस्तुत करती है क्योकि इस प्रकार का नगर अपने घनीभूत एव लघु रूप म एक विशाल जगत का प्रतीक होता है। उसकी दीवारो के अन्दर सभी वर्गों एव अनेक राष्ट्रो के प्रतिनिधि रहते हैं उसम कई भाषाए बोलने वाले लोगो का निवास होता है, उसके द्वार सब दिशाओ की ओर जाने वाले मार्गो पर खुलते हैं। एक धम प्रचारक वहा एक ही दिन झोपडियो एव महलो दोनो म धर्मोपदेश कर सकता है। और उसने यदि सम्राट का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लिया तो वह साम्राज्य-

शासन के शक्तिमान यन्त्रों को अपने उपयोग के लिए प्रस्तुत कर दिये जाने की आशा कर सकता है। सूसा स्थित सम्राट के अन्तःपुर में नेहेमिया की अनुकूल स्थिति के कारण ही उसे यरुशलेम के मंदिर राज्य के लिए आर्टा जरेक्सीज प्रथम का संरक्षण प्राप्त हुआ। इसी प्रकार जिन जेसुइट पादरियों ने आगरा और पेकिन (पेकिंग) के शाही दरबारों में सोलहवीं एवं सत्रहवीं शताब्दियों में अनुकूल स्थिति प्राप्त करने की चेष्टा की और उसमें सफलता पायी, उन्होंने भी उसी नेहेमीय कौशल के भरोसे हिंदुस्तान और चीन को क्योंकि ईसाई मत में दीक्षित करने का स्वप्न देखा था।

निश्चय ही राजधानी वाले नगरों का ऐतिहासिक कार्य (मिशन) अंत में धार्मिक क्षेत्र में ही उपलब्ध होता है। सिनाई (चीनी) राजकीय नगर लोयाग मानव जाति की नियति पर जो प्रबल प्रभाव उस समय भी डाल रहा था जब ये पंक्तियां लिखी जा रही थी वह सुदूरपूर्वीय चाऊ तथा बाद में हान वंश की राजधानी होने की अपनी पूर्व राजनीतिक भूमिका के फलस्वरूप नहीं था। राजनीतिक दृष्टि से लोयाग निनेवा और टायर के समकक्ष अवश्य था किन्तु तब भी वह अपना प्रबल प्रभाव डालने में समर्थ इसलिए था कि वह एक ऐसी रोपणिका (नर्सरी) बन चुका था जिसमें महायान के बीज सिनाई सांस्कृतिक परिस्थिति में प्राप्त जलवायु के अनुकूल पनप रहे थे और इस प्रकार सिनाई जगत में व्यापक रूप से अपने को बोये जाने के योग्य बना सके थे। काराकोरम का निर्जन प्रदेश भी अदृश्य रूप से जीवित था क्योंकि ईस्वी सन् की तेरहवीं सदी में इस अनुर्वरा नगरी का तीव्र गति से जो उत्थान होता दिखायी पड़ा उसके कारण रोमन कैथोलिक मतवाले पश्चिम के धर्मप्रचारक नेस्तोरियन मत के मध्य एशियाई तथा लामावाद के तिब्बती व्याख्याताओं के आमने सामने आ गये।

अपने समय के निकट पहुंचकर देखें तो १६५२ ई० में यह स्पष्ट हो चुका था कि रामुलस एवं रेमस या आगस्टस नहीं बल्कि पीटर एवं पाल रोम के अमर महत्त्व के प्रणेता थे और कुस्तुनतुनिया (कांस्टेंटिनोपुल) जिसे द्वितीय ईसाई रोम कहना चाहिए जब एक सार्वभौम राज्य की राजधानी होने की सब अभिव्यक्तियों से शून्य हो चुका था तब भी उसका संसार में बड़ा प्रभाव था केवल इसलिए कि वह तब भी एक ऐसे पैट्रियार्क का केन्द्रस्थान था जिसे रूसी चर्च सहित दूसरे पूर्वीय परंपरा निष्ठ धर्मसंघ (ईस्टर्न आर्थोडाक्स चर्च) के धर्माध्यक्ष भी प्रमुख मानते थे।

सरकारी भाषाएं एवं लिपियां

इतना तो मान ही लेना चाहिए कि एक सार्वभौम राज्य मानसिक संचरण संसूचन (communica ion) के लिए सरकारी माध्यमों को अपना चुका होगा। इसके अन्तर्गत न केवल जबान से बोली जाने वाली भाषाओं का संप्रेषण ही आता है वरन् चाक्षुष दस्तावेजों (visual records) की भी कोई न कोई प्रणाली आ जाती है। चाक्षुष दस्तावेजों का प्रणाली ने सरकारी भाषा की सर्वतंत्रिता का रूप ग्रहण कर लिया है। और यद्यपि इसाइ ने बिना किसी सर्वतन्त्रता की सम्पन्नता नियं

ही सवसत्ताधारी शासन कायम रखने मे सफनता प्राप्त की है पर इसे अपवाद ही मान लेना चाहिए।

ऐसे भी उदाहरण हैं जिनम सावभौम राज्य की स्थापना के पूव किसी एक भाषा एव लिपि ने अपनी सम्पूण सभव प्रतिस्पर्द्धिनी भाषाओ एव लिपियो को मैदान से मार भगाया है। उदाहरणाथ मिस्री मध्य साम्राज्य' मे पुरानी मिस्री भाषा एव चित्रलिपि का ही ग्रहण किया जाना अनिवाय था। जपान के शोगुनो के शासन मे जपानी भाषा तथा उन चुने हुए चीनी अक्षरो की लिपि का होना आवश्यक था जो जपान मे पहिले से ही ग्रहण की जा चुकी थी। रूसी साम्राज्य मे रूसी भाषा तथा यूनानी वणमाला के स्लाव सस्करण की महती रूसी विविधताओ का होना भी अनिवाय था। किन्तु यह सरल स्थिति सवत्र सामान्य रूप से उपलब्ध नही। अक्सर साम्राज्य निर्मातागण, सरकारी भाषा एव लिपि के इस मामले मे, अपने को ऐसी स्थिति मे पाते हैं कि उनको कोई घटित तथ्य स्वीकार कर लेने की जगह कई प्रतिद्वन्द्विनी भाषाओ एव लिपियो मे से किसी एक का चुनाव कर लेने का कठोर कतव्य पालन करना पडता है।

इन परिस्थितियो मे अधिकाश साम्राज्य निर्माताओ ने अपनी मातृभाषा को ही सरकारी स्वीकृति प्रदान की है और यदि उसकी कोई लिपि नही होती तो वे किसी दूसरी लिपि को ग्रहण कर लेते हैं या फिर इसके लिए एक नयी लिपि का आविष्कार करते हैं। परन्तु ऐसे भी उदाहरण हैं जिनमे साम्राज्य निमाताओ ने अपने शासित प्रदेशो की राष्ट्रभाषा के रूप मे पहिले से ही प्रचलित किसी दूसरी भाषा के पक्ष मे अपनी मातृभाषा का परित्याग कर दिया है या किसी प्राचीन भाषा के पुनरुज्जीवित किये जाने का पक्ष ग्रहण किया है। किन्तु साम्राज्य निर्माताओ के लिए सामान्य माग यही रहा है कि वे अपनी राष्ट्रीय भाषा एव लिपि को एकाधिकार दिये बिना ही सरकारी सरक्षण प्रदान करें।

अब इन सामान्य स्थापनाओ को प्रत्यक्ष सर्वेक्षण के उदाहरण के प्रकाश म देखना चाहिए।

सिनाइ (चीनी) जगत मे यह समस्या त्स इन शी ह्वाग-ती द्वारा स्वाभाविक कठोरता के साथ हल कर ली गयी। सिनाई (चीन) सावभौम राज्य के निर्माता ने एकमात्र चीनी अक्षरो के उस रूप को प्रसारित किया जो उसके अपन पत्रिक राज्य त्स इन मे सरकारी उपयोग मे आ रहा था और इस प्रकार उस प्रवृत्ति को रोकने मे सफल हुआ जो उपयुक्त सकटकाल (Time of Troubles) की समाप्ति तक बहुत दूर जा चुकी थी और जिसके अनुसार प्रतिद्वन्द्वी राज्यो मे से हर एक अपनी ग्राम्य लिपि को विकसित करना चाहता था—उस ग्राम्य लिपि को जो प्रदेश के बाहर के बहुत ही कम साक्षरो के लिए सुबोध या स्पष्ट थी। चूकि सिनाई (चीनी) अक्षर साथक विचार लिपि या भावचित्रो के रूप म थे और किसी ध्वनि का प्रतिनिधित्व करते थे इसलिए त्स इन शी ह्वाग-ती ने इस काय द्वारा सिनाई समाज को एक समान चाक्षुष भाषा प्रदान की। यह भाषा उस स्थिति मे भी जारी रहने को थी जब बोली जाने

वाली भाषाएं टूटकर एक दूसरे की समझ म न आने वाली बोलियो के रूप में बदल जाय। वह सार्वदेशिक सचार-साधन के रूप म उस अल्पमत की सेवा कर सकता थी जो उसे पढने या लिखने की क्षमता प्राप्त कर लेता था—ठीक वसे ही जसे आधुनिक पाश्चात्य जगत म कागज पर लिखे अरबी अक उन सब लोगो को एक ही अर्थ प्रदान करते हैं जो बोलने म उन अको को विभिन्न नामो से पुकारते हैं। इतने पर भी जसा कि यह समान उदाहरण इंगित करता है, यदि भाषा एव लिपि की एकता के पक्ष मे दूसरी और शक्तियां काम न कर रहा होती तो त्स इन शी ह्वाग ती ने सिनाई अक्षरो को जो एक प्रामाणिक रूप प्रदान किया वह भी विभिन्न बोलिया के विवाद को दूर न कर पाता।

सिनाई अक्षरो के एक निश्चित और प्रामाणिक रूप प्रदान करने के काय की कल्पना शायद मिनोन सावभौम राज्य के अज्ञात सस्थापक द्वारा भी की गयी होगी। मिनोन जगत म जो लिपियां प्रचलित थी उनमे से तबतक किसी का भी गूढ वाचन नही हो पाया था जब यह ग्रथ लिखा गया था।[1] किन्तु उनकी तरतीब या शृखला से इस बात का प्रमाण मिलता है कि लेखन कला मे एक क्रान्तिकारी सुधार अवश्य किया गया था। मध्य मिनोन द्वितीय से मध्य मिनोन तृतीय तक जो परिवतन हुआ उसम हम देखते हैं कि जो दो प्रकार की स्वतत्र चित्रलिपियां प्रथमावधि के आरभ मे चल पडा थी वे सहसा पूर्णतया एक नयी, रेखाबद्ध अ लिपि (लाइनियर ए)[2] द्वारा दबा दी गयी। सीरियाई समाज के इतिहास म भी हम त्स इन शी ह्वाग-ती का एक प्रतिरूप उम्मायद खलीफा अब्दुल मलिक (राज्यकाल ६८५—७०५ ई०) के व्यक्तित्व म मिल जाता है। उसने भी अरब खिलाफत के भूतपूर्व रोमी प्रान्तो म यूनानी के स्थान पर तथा भूतपूर्व सासानी प्रान्तो म पेहलवी के स्थान पर अरबी भाषा एव लिपि को सार्वजनिक आलेखो की सरकारी भाषा के रूप म स्थान दिया।

अब हम अधिकृत पाये जाने वाले ऐसे उदाहरण लेंगे जिनम एक सावभौम

[1] भाग ७ से १० तक के इस सक्षिप्त सस्करण के प्रकाशन के पूर्व मिनोन 'लाइनियर बी' लिपि का गूढ वाचन स्वर्गीय अ वेंट्रिस एव श्री चैडविक ने यूनानी भाषा के वाहन के रूप में किया (देखिए जर्नल आव हेलेनिक स्टडीज भाग ७३ पृ ८४—१०३) उनकी व्याख्या को युक्तिसंगत हो प्राय सभी विद्वानों ने स्वीकार कर लिया।

[2] १९५४ ई० म, इन पंक्तियों के लिखे जाने तक 'लाइनियर ए' का गूढ वाचन सम्भव नहीं हो सका था। सम्पूर्ण क्रीट द्वीप में यह लिपि व्यापक रूप से प्रचलित थी और जिस भाषा का यह वाहन थी वह शायद प्राक्-यूनानी मिनोन (फिर वह चाहे जिस भी भाषा-वर्ग के अन्तर्गत रही हो) रही होगी। बाद की 'लाइनियर बी' लिपि जिसके विषय में अब निश्चय हो गया है कि वह यूनानी भाषा का ही वाहन थी क्रीट में 'नासास (Cnossos) तक सीमित थी किन्तु मुख्य देश की मसीनियन (माईसीनियन) सभ्यता के कई नगरों में भी उसका प्रचार था।

राज्य मे कई सरकारी भाषाओ एव लिपियो को मान्यता दी गयी। इन सरकारी भाषाओ मे साम्राज्य निर्माता की अपनी भाषा एव लिपि तो रहती ही है।

भारत के ब्रिटिश राज मे साम्राज्य निर्माताओ की मातृभाषा अंग्रेजी को कई प्रयोजनो मे मुगलो के समय से चली आयी सरकारी भाषा फारसी के स्थान पर रखा गया। उदाहरणाथ ब्रिटिश भारतीय सरकार ने अपन राजनयिक पत्र-व्यवहार के लिए १८२६ ई म और उच्च शिक्षा के लिए १८३५ ई मे अंग्रेजी को माध्यम बना दिया। किन्तु जब १८३७ ई मे ब्रिटिश भारत म फारसी का उसके सरकारी पद से हटा दन का अन्तिम निश्चय किया गया तब ब्रिटिश भारतीय शासन न और सब कार्यों के लिए जो पहिले फारसी द्वारा किये जाते थे, अंग्रेजी को माध्यम नही बनाया। न्यायिक और आर्थिक कारवाइया म जिनका सम्बन्ध हर जातीयता, जाति एव वर्ग के सभी भारतीयो से था, फारसी का स्थान अंग्रेजी को नही वरन स्थानीय भाषाओ को दिया गया और सस्कृत बहुल हिन्दी का, जो हिन्दुस्तानी नाम से प्रसिद्ध थी, निर्माण ब्रिटिश प्रोटेस्टेंट धर्म प्रचारको न किया। उनका उद्देश्य उत्तर भारत की हिन्दू आबादी को उर्दू नाम स विख्यात फारसी बहुल हिन्दी की एक प्रतिरूपिनी भाषा उपलब्ध करा देना था। इस समय तक भारतीय मुसलमानो ने अपने लिए उर्दू का निर्माण कर लिया था। एक विदेशी साम्राज्य निर्माता की विदेशी भाषा को एकमात्र सरकारी भाषा बनाकर राजनीतिक शक्ति का दुरुपयोग न करन का यह मानवीय एव विवेकपूर्ण निर्णय, शायद अशत इस उल्लेखनीय तथ्य का कारण है कि जब ११० साल बाद उनके वशजो ने अपना राज अपनी भारतीय प्रजाओ को सौंपा तो हिन्दुस्तान एव पाकिस्तान दोनो उत्तराधिकारी राज्यो मे निश्चित रूप से मान लिया गया कि अंग्रेजी भाषा ने ब्रिटिश राज्य मे जिन प्रयोजनो एव कार्यो का निर्वाह किया है उनके लिए, कम से कम अस्थायी रूप स, अंग्रेजी भाषा आगे भी जारी रहेगी।

इसका ठीक उलटा उदाहरण हमे सम्राट जोजेफ द्वितीय (राज्यकाल १७८०—९० ई तक) के कृत्य म मिलता है। जोजेफ फ्रासीसी क्रान्ति के पूर्व की पीढी म पश्चिमी जगत का एक प्रबुद्ध शासक माना जाता था। पर उसने डैन्यूबीय हैप्सबर्ग बादशाहत (डन्यूबियन हैप्सबर्ग मोनार्की) की जर्मन न बोलने वाली प्रजाओ पर जर्मन भाषा का व्यवहार करने का निर्णय थोप दिया। यद्यपि आर्थिक उपयोगिता एव सास्कृतिक सुविधा इस राजनीतिक नादिरी हुक्म (diktate) के पक्ष मे थी, फिर भी जोजेफ की भाषा-सम्बन्धी नीति बुरी तरह असफल हुई और इसी के कारण उन राष्ट्रीय आन्दोलनो की दागबेल पडी जिनसे सौ वर्षो से कुछ अधिक समय बाद हैप्सबर्ग साम्राज्य के टुकडे टुकडे हो गये।

भाषा-सम्बन्धी जो नीति अरब खिलाफत मे सफलता के साथ और डैन्यूबीय हैप्सबर्ग राजशासन मे असफलतापूर्वक प्रयुक्त हुई उसका अनुसरण ओथमन (ओटोमन) साम्राज्य के तुर्की स्वामियो ने कभी नही किया। वहा साम्राज्य शासन की सरकारी भाषा सस्थापक की प्रादेशिक तुर्की थी किन्तु ईसाई सन् की सोलहवी तथा सत्रहवी सदियो मे जब ओथमन शक्ति अपनी पराकाष्ठा पर थी, पादशाह के दास परिवार

(स्लेव हाउसहोल्ड) की सामान्य भाषा सब-कोट थी और नौसेना की सब-सामान्य भाषा इतालवी (इटालियन) थी। ब्रिटिश भारतीय सरकार की भांति ही, ओथमन सरकार ने भी, असनिक या दीवानी मामला म अपनी प्रजाआ को अपनी पसन्द की भाषा अपनाने की स्वतन्त्रता दने की नीति अपनायी। यह बात अधिकत व्यक्तिया के निजी व्यवसाय से सम्बन्ध रखने वाले मामला म चलता थी।

अपने उन प्रान्तो म लटिन को जबरदस्ती लादने म इसी प्रकार का सयम रोमनो ने भी दिखाया जिनमे यूनानी (ग्रीक) या तो मातृभाषा थी अथवा परपरा से चली आ रही सामान्य भाषा व राष्ट्रभाषा थी। उन्होंने सम्राट सेना की इकाइयो म लटिन को सैनिक कमान की एकमात्र भाषा बनाकर ही सन्तोष कर लिया। इन सनिक इकाइयो के लिए यह नियम अनिवाय था—फिर चाहे जहा भी उनकी भरती हुइ हो या जहा भी उन्हे रखा गया हो। इसके अलावा यूनाना या पूर्वी भूमि पर लटिन मूल वाली जो बस्तिया थी उनके नागरिक प्रशासन म भी लटिन अनिवाय थी। अन्य कार्यों म उन्होने ऐटिक शब्दो का प्रयोग वहा जारी रखा जहा सरकारी तौर पर उनका पहिले स इस्तेमाल होता था। यही नही उन्होंने उसे लटिन के साथ-साथ बराबरी का स्थान प्रदान कर खुद रोम के केन्द्रीय शासन मे उसकी एक सरकारी मर्यादा बना दी।

रोमनो ने यूनानी (ग्रीक) भाषा के साथ उदारता का जो व्यवहार किया वह संस्कृति के माध्यम के रूप म लटिन पर यूनानी की श्रेष्ठता का अभिनन्दन मात्र नही था। यह कुछ और भी था यह रोमन आत्माओ की सकरता (hybris) पर राजममज्ञता की एक उल्लेखनीय विजय का द्योतक था, क्योंकि साम्राज्य के दूर-दूर फले प्रदेशो मे जहा यूनानी का लटिन से कोई मुकाबला नही था, लटिन की विजय आश्चयजनक थी। यूनानी भाषा के क्षेत्र के बाहर की प्रजाआ एव मित्रो पर इसका उपयोग थोपने की जगह, रोमन अपनी सुखद स्थिति के कारण इसके सरकारी प्रयोग को एक रियायत या विशेष सुविधा मानकर इसका आकषण बढाने म समय हुए। फिर लटिन ने अपनी शान्तिपूण विजयो को केवल उन भाषाआ की कीमत पर नही प्राप्त किया जो कभी लिपिबद्ध नही हुइ। इटली मे उसे आस्कन एव अम्ब्रिया जसी अपनी भगिनी इतालीय बोलियो तथा मेसेपियन एव वेनशियन जसी इलीरियन बोलियो स प्रतियोगिता करनी पडी। य भाषाए सास्कृतिक जगत म एक समय लटिन की बराबरी की थी। इसके अलावा अपने अनातोलियन गृहक्षेत्र के सास्कृतिक उत्तराधिकार से लदी एट्रस्कन स उसे जो होड लेनी पडी उसकी तो बात ही क्या है। इसी प्रकार अफ्रीका म उसे प्यूनिक का मुकाबला करना पडा। इन सघर्षों में लटिन सदा ही विजयिनी होती रही।

इससे भी अधिक आत्म नियन्त्रण चारा दिशाआ के साम्राज्य (The Realm of the Four Quarters) के सुमरीय सस्थापको न प्रदर्शित किया जबकि उन्होंने तुच्छ अक्कादियन (एकेडियन) भाषा को अपनी सुमेरु भाषा के समकक्ष मान लिया। इस सावभौम राज्य का अन्त होने के पूव अक्कादियन न बाजी जीत ली थी और सुमेर व्यवहारत एक मृत भाषा हो गयी थी।

एकेमीनियाइयो ने अपने साम्राज्य शासन म अपनी फारसी मातृभूमि की भाति ही अपनी फारसी मातभाषा को भी उदारतापूवक स्थान दिया। साम्राज्य के महत् उत्तर-पूर्वी भाग पर स्थित बेहिस्तान की चट्टान पर दारा (डेरियस) महान ने अपने कार्यों का जो विवरण खुदवाया है वह कीलाक्षरी लिपि (Cuneiform script) के तीन विभिन्न रूपो मे साथ-साथ मिलता है। य लिपिया तीनो शाही राजधानियो की तीन भिन्न भाषाओ का द्योतक हैं—सुषा के लिए एलामाइट, एक्बताना के लिए मीडो, फारस और बविलान क लिए अक्कादी। किन्तु इस सावभौम राज्य के अन्तगत विजयिनी भाषा सरकारी तौर पर आदृत तीन भाषाओ म से एक भी नही थी, वह थी अपनी सुविधाजनक लिपि वाली अरामी (Aramic)। इस उदाहरण से यह निष्कष निकलता है कि किसी भाषा के भाग्य का निणय करन म राजनीति की अपेक्षा व्यवसाय एव सस्कृति का भाग अधिक महत्त्वपूण हो सकता है, क्योकि एकेमीनियाई साम्राज्य म अरामी भाषा भाषियो का राजनीतिक दृष्टि से कोई महत्त्व नही था। अरामी को देर से सरकारी सरक्षण और मर्यादा प्रदान करके एकेमीनियाई सरकार न एक निर्विवाद व्यावसायिक तथ्य को स्वीकार कर लिया था किन्तु अरामी ने सबसे उल्लेखनीय विजय यह प्राप्त की कि एकेमीनियाई शासन के बाद उसकी लिपि ने कीलाक्षरी लिपि का फारसी भाषा के माध्यम के रूप म अपदस्थ करके स्वय वह स्थान ले लिया।

मौय साम्राज्य मे दार्शनिक सम्राट अशोक (राज्यकाल २७२–३२ वष ई पू) न ब्राह्मी एव खरोष्ठी नाम की दो विभिन्न लिपियो मे लिखी जाने वाली अनेक स्थानीय बोलियो का प्रयोग कर निष्पक्ष न्याय एव व्यावहारिक सुविधा दोनो की मागें पूरी करने मे सफलता पायी। अशोक के गुरु गौतम न मानव जाति को निर्वाण का जो माग दिखाया था उससे अपनी प्रजा को परिचित करने के सम्राट के सकल्प से ही उस इस उदारता की प्रेरणा मिली थी। इकास साम्राज्य के स्पेनी विजेताओ को भी इसी प्रकार की भावनाओ ने प्रेरित किया था और अपनी अमरीकी प्रजा म कैथोलिक मत के प्रचार के लिए उन्होने क्वीचुएन देश भाषा का उपयोग करन की इजाजत दे दी थी।

यदि हम अध्याय की समाप्ति इस प्रश्न के साथ करें कि इनमे लाभ भागी कौन हुए तो हम देखते हैं कि जिन साम्राज्यो म ये भाषाए सरकारी प्रयोग मे आती थीं उनके उद्धारको ने बाद में हर तरह के धम निरपेक्ष व धर्मेतर क्षेत्रो मे तथा, महत धर्मों के प्रचारको ने भी अपने क्षेत्रो मे उनका प्रयोग किया। भाषा एव लिपि के इस मामले से जो निष्कष निकलते हैं वे इतने स्पष्ट हैं कि विस्तृत रूप से उनके चित्रण विवेचन की आवश्यकता नहीं।

हमने अपने सर्वेक्षण मे जिन भाषाओ का जिक्र किया है उनमे से किसी का उत्तर इतिहास इतना महत्त्वपूण नही है जितना आरामी का है। इनमे से अन्य भाषाओ को सावभौम राज्य के शासको का जितना सरक्षण प्राप्त हुआ था उससे कम ही इसे मिला था। जब सिकन्दर (अलेक्जेंद्र) ने एकेमीनियाई साम्राज्य का ध्वस कर दिया

तब एकेमीनियाइयो ने अपने पाश्चात्य प्रदेशो म इसे जो सरकारी मान लिया था, उससे वह अशिष्टतापूवक उतार दी गयी और उसके स्थान पर आतिक क्वाइने (Attic Koine) को बठा दिया गया। यद्यपि इस तरह उसे राजकीय सरक्षण से विरहित कर दिया गया फिर भी सास्कृतिक विजय की जो शृखला उसने सरकारी सरक्षण प्राप्त होने के पहिले ही आरम्भ की थी, उसे पूव म अक्कादी और पश्चिम म कनानाई (Canaanite) भाषाओ को अपदस्थ कर उसने पूरा कर लिया और उवर बालेन्दु (The Fertile Crescent)[1] की समस्त सेमिटिक बोलने वाली जनसख्या की जीवित भाषा बन गयी। उदाहरणाथ, यही वह भाषा थी जिसमे निश्चित रूप से जीसस (ईसा) ने अपने शिष्यो से बात की। जहा तक अरामी वण माला का सवाल है उसने तो और भी व्यापक विजय प्राप्त की। १७६६ ई म, मच्चुआ द्वारा चीनकी विजय के आरभ म ही यह मचू भाषा की लिपि बन गयी। उच्च धर्मो ने इसकी सेवा अगीकार कर इसे आगे बढ़ा दिया। अपनी सरल स्क्वि (Square Hebrew) शली म यह यहूदी धमग्रन्था तथा पूजा विधि का—वाहन—भाषा—बन गयी अरबी रूपान्तरण म इसने इस्लाम की वणमाला का रूप धारण कर लिया अपने सीरियाई रूप मे इसने नेस्तोरीयवाद (Nestorianism) और मानोफीजिटवाद (Monophysitism) की परस्पर विरोधी नास्तिकता की निष्पक्ष रूप से सेवा की, अपनी पेहलवी शली के अवेस्ताई रूपान्तरण म इसने जरथुस्त्रीय धमसघ की पवित्र पुस्तको को सुरक्षित रखा अपने मानिकेयाई (Manichaean) रूपान्तरण म इसने एक ऐसे पाखण्डी शिरोमणि की सेवा की जिसे ईसाई और जरथुस्त्री दोनो ने एक समान शाप दिया अपने खरोष्ठी रूपान्तर म इसने सम्राट अशोक को ऐसा साधन प्रदान किया जिसके द्वारा वह बुद्ध की शिक्षाओ को पूवकाल के एकेमीनियाई प्रात पजाब म अपनी प्रजाआ तक पहुचा सका।

कानून (विधि)

सामाजिक कमक्षेत्र, जो विधि विषय के अन्तगत आता है, अपने को तीन बड़े खण्डो मे विभाजित कर लेता है १ प्रशासनिक विधि (Administrative Law) जो शासन के प्रति प्रजा के कतव्यो का निर्धारण करता है २ आपराधिक विधि (Criminal Law) और ३ दीवानी विधि (Civil Law)। इन दोनो का सम्बन्ध एक समान एस कार्यो से है जिनम दोनो पक्ष निजी व्यक्ति (private person) होते हैं। निस्सन्देह कोई भी सरकार प्रशासनिक विधि से उदासीन नही रह सकती क्योकि सरकार का पहिला काम अपने अधिकार का आरोपण और उसकी अवज्ञा के उन सब कार्यो—घोर राजद्रोह (high treason) से लेकर कर (टक्स) चुकाने की चूक तक—का दमन करना है जिनम प्रजा सरकार की इच्छा के प्रति अविनयी होती है। इन्ही

[1] अरब मरुस्थल के उत्तर में मिस्र स सीरिया मेसापोटामिया एव बबिलोन होते हुए फारस की खाड़ी तक फला उपजाऊ भू-क्षेत्र।

विचारणाओं के कारण सरकारों को आपराधिक विधि की ओर भी ध्यान रखना पड़ता है, क्योंकि यद्यपि ऐसा हो सकता है कि अपराधी सीधे या जान-बूझकर सरकार पर आक्रमण न कर रहा हो, किन्तु सरकार के शान्ति एवं सुव्यवस्था बनाये रखने के कार्य में सचमुच हस्तक्षेप कर रहा हो। परन्तु जहाँ तक दीवानी विधि और सरकार का सम्बन्ध है उसमें सरकारें खुद अपने लाभ की अपेक्षा प्रजा के लाभ का ज्यादा ख्याल रखकर कार्य करता हैं। यह कोई आश्चर्य की चीज नहीं है कि इस बात को लेकर लोगों में व्यापक मतभेद है कि सार्वभौम राज्यों की सरकारों ने इस विभागीय विधि पर कहाँ तक ध्यान दिया है।

विधि के क्षेत्र में सार्वभौम राज्यों को एक ऐसी विशेष समस्या का सामना करना पड़ता है जो ग्राम्य राज्यों के सामने नहीं आती। उनके राज्य क्षेत्र में अनेक विजित ग्राम्य राज्यों की प्रजाएं सम्मिलित होती हैं और ये ग्राम्य राज्य, अन्य विषयों की भाँति विधि के क्षेत्र में भी, ऐसा उत्तराधिकार छोड़ जाते हैं जिनके साथ उनके विध्वंसक और उत्तराधिकारी को निपटना पड़ता है। कम से कम एक उदाहरण तो अवश्य है जिसमें साम्राज्य निर्माता—इस मामले में मंगोल—अपनी प्रजा से इतने घटिया थे कि वे अपने पुरखा के कानून का कोई भी अंश उन पर लागू न कर सके। उस्मानलियों ने प्रशासनिक एवं आपराधिक विधि पर अपना सुदृढ़ नियन्त्रण स्थापित किया किन्तु अपनी विविध गैर-तुर्की प्रजा की आबादियों के दीवानी कानून या विधि में हस्तक्षेप करने से विरत रहे। दूसरी ओर हम देखते हैं कि सिनाई (चीनी) त्स इन-शी ह्वाग-ती ने अपने स्वभावानुकूल, एक कलम से एक ही प्रकार का व्यापक कानून सब पर जबरदस्ती लागू कर दिया। उसने आज्ञप्ति (decree) जारी की कि उसके पुश्तैनी राज्य त्स इन में जो कानून प्रचलित हैं वे ही उन छः प्रतिस्पर्द्धी राज्यों के समस्त क्षेत्रों में भी जारी किये जायँ जिन्हें उसने जीतकर अपने राज्य में मिला लिया है। उसके इस कार्य के कम से कम दो समानान्तर उदाहरण आधुनिक पाश्चात्य इतिहास में भी मिलते हैं। नेपोलियन ने अपने साम्राज्य के समस्त इतालवी—इटालियन, फ्लेमी (फ्लेमिश), जर्मन और पोल (पोलिश) इलाकों में अपनी नव निर्मित फरासीसी विधि-संहिता (Law Code) को जारी किया था। इसी प्रकार भारत की ब्रिटिश सरकार ने इंगलैंड की देशविधि (Common Law) को, अंशतः मूल रूप में और अंशतः परिवर्तन के साथ स्थानीय कानूनों में सम्मिलित करके उस पूरे इलाके में जारी किया जिस पर उसका प्रत्यक्ष शासन था।

अपने साम्राज्य में विधि की एकरूपता स्थापित करने के विषय में रोमन अंग्रेजों या नेपोलियन या त्स इन-शी ह्वाग-ती की अपेक्षा सुस्त थे। रोमी (रोमन) विधि की छाया में रहना रोमी नागरिकता की एक प्रशंसित सुविधा थी और साम्राज्य की समस्त प्रजा पर नागरिकता का प्रगतिशील अभिदान (conferment) तब तक पूरा नहीं हुआ जब तक कि २१२ ई० में केराकल्ला का फर्मान जारी नहीं किया गया। खिलाफत के समानान्तर इतिहास में भी (खिलाफत की) गैर मुस्लिम प्रजा को साम्राज्य निर्माता के धर्म में दीक्षित करके क्रमशः ही इस्लामी कानून का शासन स्थापित किया गया।

ऐसे सार्वभौम राज्यो मे, जहा विधि ने प्रगतिशील मानकीकरण (standard ization) ने करीब-करीब एकरूपता प्राप्त कर ली थी, वहा कभी-कभी और आगे की भी एक अवस्था आयी जिसम साम्राज्य के अधिकारियो द्वारा एक ही साम्राज्य विधि का सहिताकरण (codification) किया गया। रोमी विधि (रोमन ला) के इतिहास म सहिताकरण की ओर प्रथम पग उस एडिक्टम परपेचुएम (स्थायी आदेश) के हिमीकरण (freezing) द्वारा उठाया गया, जो अभी तक प्रत्यक नगरपति (Practor urbanus) द्वारा अपने शासन वष के आरम्भ मे नये रूप से प्रसारित किया जाता था और उसकी पूर्ति ५२९ ई मे जस्टिनियेनियन सहिता क प्रवतन द्वारा अतिम पग उठाकर की गयी। सुमेरीय चतुर्दिक राज्य' (Sumerian Realm of the Four Quarters) म उर' से शासन करने वाले सुमेरीय सम्राटो के तत्त्वावधान म सकलित इससे पूव की सहिता ही आगे चलकर साम्राज्य के 'अमोरा' (Amorite) उद्धारक बबिलोन के हम्मूरबी द्वारा प्रवर्तित सहिता का आधार बन गयी। इसका पता १९०१ ई मे आधुनिक पाश्चात्य पुरातत्त्वज्ञ जे डी मार्गन ने लगाया था।

न्यायशास्त्र म सिद्धि के शिखर को पार करने के बहुत बाद, किसी सामाजिक उलटफेर के पूव उपान्त्य काल मे ही सामान्यत सहिताकरण की माग अपना पराकाष्ठा पर पहुचती है क्योंकि तब उस समय के विधि निर्माता विनाश की दुर्निवार शक्तियों के साथ युद्ध मे पीठ दिखा असाध्य रूप से भाग रहे होते हैं। जस्टीनियन स्वय भी ज्यो ही भाग्यदेवी के विरुद्ध पीठ दिखाकर भागा और उसके मुह पर अपने कापस जूरिस (न्यायतत्त्व) को प्रभावशाली मोर्चाबदी उठा फेंकी त्यो ही वह क्रोध के निष्ठुर कुत्तो द्वारा एक कागजी दौड म सरपट भागने के लिए विवश कर दिया गया। किसी तरह अपने 'नावेलाई (Novellae) के पन्ना द्वारा वह अपना रास्ता नापता रहा। फिर भी, अन्ततोगत्वा भाग्यदेवी को सहिता निर्माताओ के साथ दया का व्यवहार करना ही पडता है क्योंकि एक श्रेष्ठतर युग के उनके तिरस्कृत पुरखे प्रशसा की जो मदिरा उनको देने स इनकार कर देते, वही एक ऐसी आगे आने-वाली पीढी द्वारा उनके प्रेता को प्रदान की गयी जो बहुत दूर थी, बडी बबर थी या फिर अत्यधिक भावप्रवण होने के कारण उनकी रचनाओ के मूल्याकन म असमर्थ थी।

इस विवेचनाहीन श्रद्धावान् पीढी को भी बाद म पता लग जाता है कि पवित्र की हुई इन सहिताओं को तबतक लागू नही किया जा सकता जबतक कि उन्ह अनूदित न कर लिया जाय। और जब हम अनूदित कहते हैं तब हमारे मन म लगभग उसी प्रकार के व्यवहार की बात रहती है जो शेक्सपियर क बाटम को सहन करना पडा था जब पीटर क्विन ने अपने मित्र का गधे का सिर दिये जाने पर, चौंककर कहा था, तेरा कल्याण हो बाटम ! तू अनूदित हो गया। जस्टीनियन के युग के तुरत बाद ही सम्वाड स्लाव एव अरब आक्रमणो का एक तूफान आ गया। इसी प्रकार सुमेर एव अक्काद की अन्तिम अवस्था म सीनार क मदानो म, हम्मूरबी द्वारा किये गये राजनीतिक एव सामाजिक पुनरुद्धार क परिश्रमपूण कार्यों का पहाडियो की ओर

से होने वाले कसाई (Kassite) आक्रमणो के जलप्लावन से घिरकर कम नुकसान नही उठाना पडा । जब १५० वर्षो के मध्यान्तर के बाद उद्धारक लियो (Leo, the Restorer) एव उसके उत्तराधिकारियो ने बजटाइन साम्राज्य का पुनर्निर्माण आरम्भ किया, तो उन्हे जस्टीनियन के 'कापस ज्यूरिस' की अपेक्षा 'मूसाई कानून' (Mosaic Law) से ज्यादा सह्य सामग्री प्राप्त हुई । इसी प्रकार इटली मे भी भविष्य की आशा 'कापस ज्यूरिस' पर नहीं, बल्कि सेंट बेनडिक्ट के नियम पर आश्रित रही ।

इस प्रकार जस्टीनियन की सहिता खतम हो गयी और दफ्ना दी गयी। किन्तु लगभग चार सौ वर्षो बाद, ग्यारहवी शती म होने वाले न्यायशास्त्रीय पुनर्जागरण के बीच, बोलोग्ना विश्वविद्यालय म वह पुन जीवित हो उठी । इस केन्द्र स इस समय के बाद, बढ़ते हुए पश्चिम के विस्तार के कोने-कोने तक अर्थात जस्टीनियन के ज्ञान-क्षेत्र से बहुत दूर दूर तक उसके प्रभाव की किरणें पहुच गयी । अन्धकार युग म बौद्धिक शीतागार (Intellectual Cold Storage) के रूप मे बोलोग्ना की क्षमता का धन्यवाद करना चाहिए कि रोमी कानून (रोमन ला) का एक पाठ आधुनिक हालैण्ड, स्काटलण्ड और दक्षिण अफीका मे 'प्राप्त' हुआ । 'सनातन या परपरानिष्ठ ईसाई जगत्' (Orthodox Christendom) म अपेक्षाकृत कम कष्ट उठाने और तीन शतियो तक कुस्तुनतुनिया म निष्क्रिय पडे रहने के बाद 'कापस ज्यूरिस' ईसाई सवत् की दसवी शताब्दी म पुन प्रकट हुआ और मैसीडोनियन वश ने अपन आठवी शती के सीरियाई पूर्ववर्तियो के मूसाई कानून के स्थान पर इसे प्रचलित किया ।

हम उन टीटन बबर राज्यो की रीतियो मे रोमी कानून के अन्त सरण का वणन करने के लिए नही ठहरेंगे जिनक सामने उनका कोई भविष्य नही था । इसकी अपेक्षा पहिले के विविध रोमी प्रान्तो के अरब विजेताओ के इस्लामी कानून मे चोरी-छिपे हुए अप्रकट, फिर भी निश्चित, अन्त सरण अधिक महत्त्वपूण एव उल्लेखनीय हैं । यहा जिन दो तत्त्वो का मिश्रण हुआ वे और भी ज्यादा बेमेल थे और उनके मिश्रण के परिणामस्वरूप किसी बबर राज्य के उपयुक्त ग्राम्यविधि का नही, बल्कि एक व्यापक विधि का जन्म हुआ जिससे पुनरुद्धारित सीरियाई सावभौम राज्य की आवश्यकताओ की पूर्ति होनी थी, और इस राजनीतिक गठन के टूट जान के बाद भी जीवित रहकर एक ऐस इस्लामी समाज के जीवन को शासित करना और ढालना था जो खिलाफ्त के पतन के बाद, निरन्तर अपना विस्तार करता गया—यहा तक कि इन पक्तियो को लिखने के समय उसका क्षेत्र इण्डोनेशिया से लीथूनिया एव दक्षिण अफ्रीका से चीन तक फल गया है ।

टीटन प्रतिरूपो के विरुद्ध आदिकालिक मुस्लिम अरब, अपने पुरातन परपरागत जीवन-पथ से बुरी तरह हिल उठे थे । यह सब उनके अरब के मरुस्थलो एव शाद्वलो (नखलिस्ताना) से निकलकर रोमी एव सासानी साम्राज्यो के मदानो तथा नगरों पर फट पडने तथा सामाजिक वातावरण मे एक आकस्मिक परिवतन का धक्का लगने के पूव ही हो गया । बहुत दिना से अरब पर पडने वाले सीरियाई और यूनानी सास्कृतिक प्रभावो ने एक एसी पुजीभूत सामाजिक स्थिति पदा कर दी थी जो पगम्बर मुहम्मद

की निजी जीवन-यात्रा में बड़े नाटकीय रूप में प्रकाशित हुई। उनकी सफलताएँ इतनी विस्मयकारी एवं उनका व्यक्तित्व इतना प्रबल था कि कुरान एवं हदीस में लिखित उनकी आकाशवाणियों तथा कार्यों को ही उनके अनुयायियों ने न केवल मुस्लिम समाज के जीवन बल्कि शुरू में अपने से कई गुने अधिक संख्या वाली गैर मुस्लिम प्रजाओं तथा उनके मुस्लिम विजेताओं के बीच के सम्बन्धों का भी नियमन करने वाले कानून का स्रोत मान लिया। मुस्लिम विजयों की तीव्र एवं तूफानी गति ने तथा मुस्लिम विजेताओं के नवीन कानून के स्वीकृत आधार की विवेकहीनता ने एक बड़ी भयानक समस्या पैदा कर दी। कुरान एवं हदीस से एक दूषित समाज के लिए व्यापक विधि (कानून) के अवतरण का कार्य उतना ही अस्वाभाविक था जितनी इसराइल की सन्तति (यहूदियों) की एक मरुभूमि में मूसा से जलकूप पैदा कर देने की प्रार्थना थी।

कानून के चारे की खोज में पड़े हुए विधिवेत्ता के लिए निश्चय ही कुरान एक पथरीली भूमि जैसा था। हिजरा के पूर्व मुहम्मद के मिशन के मक्का वाले अराजनीतिक युग से आरम्भ होने वाले अध्यायों में एक व्यावहारिक विधिवेत्ता को उससे कहीं कम सामग्री मिलेगी जितनी उसे न्यू टेस्टामेण्ट (बाइबिल) में मिलेगी, क्योंकि उनमें आध्यात्मिक दृष्टि से महत्वपूर्ण तथा बार-बार दोहरायी गयी ईश्वर की एकता की घोषणा और बहुदेववाद एवं मूर्तिपूजा की निन्दा के अलावा ज्यादा कुछ न मिलेगा। मदीना में दिये हुए वक्तव्य-सम्बन्धी अध्याय प्रथम दर्शन में ज्यादा आशाप्रद दिखायी पड़ सकते हैं। क्योंकि हिजरा में मुहम्मद ने अपने ही जीवनकाल में एक ऐसी स्थिति प्राप्त कर ली थी जो ईसाई संवत् की चौथी शती तक ईसा के किसी भी अनुयायी को नहीं प्राप्त हुई थी। वह एक राज्य के अधिपति बन गये और इसके बाद उनके वक्तव्यों का सम्बन्ध मुख्यतः सार्वजनिक कार्यों से ही रह गया। फिर भी बाहरी उदाहरण के बिना इस मदनाई सूरा समूह से एक सर्वतोमुखी विधि-व्यवस्था की खोज निकालना कम से कम उतना ही कठिन है जितना संत पाल के धर्मपत्रों से किसी न्यायशास्त्रीय जादूगरी-द्वारा उसको निकाल लेना है।

इन्हीं स्थितियों में अरब [illegible] का निर्माण करने वाले कर्मवीरों ने सिद्धान्त को स्वयं अपना अवसर प्राप्त करने की छूट दी और स्वावलम्बन का सहारा लिया। उन्होंने सामान्य बोध, सादृश्य, मतैक्य एवं प्रथा की मान्यता से अपना रास्ता निकाला। जो कुछ भी उनको पसन्द आया वह जहाँ भी मिला वहाँ से उन्होंने उसे ले लिया। इस पर भी यदि धर्मात्मा लोग कल्पना करते थे कि ये सब पैगम्बर के मुँह से निकल कर आया तो क्या कहा जा सकता है? इस प्रकार जिन स्रोतों से जुड़े हुए उनमें ऐसा कानून का एक महत्वपूर्ण स्थान था। कुछ मामलों में उन्होंने इस स्रोत के [illegible] साथ-साथ लिया किन्तु अधिकतर ऐसा कानून इस्लाम तक [illegible] के माध्यम-द्वारा पहुँचा।

यहूदी विधि (Jewish Law) जिसका प्रभाव मुहम्मद के हिजरा के समय तक एक [illegible] ईसाई विधि [illegible] था [illegible] उन प्रदेशों में [illegible] जो उत्तरी अरब की अनुर्वर भूमि

से सीरिया के मदानो तथा नगरो मे घुस आये थे। सामाजिक वातावरण मे उसी एक आकस्मिक एव आत्यतिक परिवतन की आपातिक स्थिति का सामना करने के लिए, आदिवासी अरवो की भाति आदिवासी इसरायलिया (यहूदियो) ने भी एक भ्रष्ट समाज की ऐसी प्रचलित विधि (कानून) का सहारा लिया जा उन्हे 'प्रामिज्ड लण्ड' म फैली दिखायी पडी।

यद्यपि डिक्लाग एक विशुद्ध यहूदी निर्माण-सा दिखायी पडता है किन्तु इसरायली कानून का दूसरा अग, जो विद्वानो म 'नेवेनेंट कोड'[1] (प्रसविदा सहिता) के नाम से विख्यात है, हम्मूरबी की सहिता का ऋणी जान पडता है। उत्तरकालीन सीरियाई समाज की एक स्थानीय शाखा म कम से कम नौ सदियो बाद वहा की विधि-व्यवस्था म होन वाली सुमरी विधि सहिता का यह समागम इस बात को प्रमाणित करता था कि सुमरी सभ्यता की वे जडे कितनी गहरी एव दृढ थी जो हम्मूरबी की पीढी के साथ समाप्त होन वाली सहस्राब्दी मे फली था। उसके बाद आन वाली लगभग एक सहस्राब्दी म विविध विस्मयकारी सामाजिक एव सास्कृतिक क्रान्तिया आती रही, फिर भी हम्मूरबी की सहिता म समाविष्ट सुमरी विधि (सुमेरियन ला) हम्मूरबी की सीरियाई प्रजाओ या आश्रित राजाओ की सतति म उसी प्रकार और ऐसे प्रवल रूप म जारी रही कि कनानाई (कनानाइट) यहूदी ववर विजेताओ के अनुभव शून्य कानून को प्रभावित किय बिना न रह सकी।

जो बबर एक उच्चतर धम के अण्ड पोषक (incubator) थे उनकी विधि (कानून) म इस प्रकार प्रवेश करके रोमी विधि की भाति ही सुमेरी विधि ने इतिहास पर उससे कही गहरी छाप डाली जितनी अपने अन्य समवर्गों की भाति प्रतिष्ठा के साथ समाप्त हो जाने वाले ववरो को प्रभावित करने मे डाली थी। जब ये पक्तिया लिखी जा रही हैं तब भी अपने एकमात्र मूसाई रूप के कारण सुमेरी विधि एक जीवित शक्ति बनी हुई है। दूसरी ओर उसी तिथि म इस्लामी शरीयत रोमी विधि का न तो एकमात्र न सबसे प्राणमय ही, वाहन रह सकी है। ईसवी सन की बीसवी सदी मे रोमी विधि के मुख्य एव सीधे उत्तराधिकारी प्राच्य सनातन (Eastern Orthodox) एव पाश्चात्य कैथोलिक ईसाई चर्चों के धर्मादेश (Canons) थे। इस प्रकार सामाजिक क्रिया के अन्य क्षेत्रो की भाति ही विधि के क्षेत्र म भी आन्तरिक श्रमजीवी वर्ग द्वारा उत्पन्न अधिकारी सस्था ही सार्वभौम राज्य की प्रमुख लाभानुभोगी (beneficiary) सस्था रही।

पचांग, बाट एव माप, मुद्रा

आदिकालिक जीवन के बाद के किसी भी स्तर पर काल दूरी, लम्बाई परिमाण भार एव मूल्य के मानक माप सामाजिक जीवन की आवश्यकताए हैं। इस

[1] एक्जोडस, अध्याय चौबीस १७—२६, एव पूर्णतर वक्तव्य के रूप मे अध्याय बीस २३ से अध्याय तेईस, ३३ तक।

प्रकार की सामाजिक चलावनियाँ (social currencies) सरकारों से कहीं पुरानी हैं। ज्यो ही सरकारो का जन्म होता है त्यो ही वे उनके लिए चिन्ता का विषय बन जाती हैं। सरकारो का निश्चित एव मुख्य प्रयोजन सामान्य सामाजिक उद्यमों के लिए केन्द्रीय राजनीतिक नेतृत्व प्रदान करना है और इस मानक माप-तौल के बिना कार्यरूप मे परिणत नही किया जा सकता। फिर सरकारो का निषेधात्मक प्रयोजन अपनी प्रजाओ को इसके लिए विश्वस्त कर देना है कि सामाजिक न्याय का कुछ न कुछ अश तो उन्हें प्राप्त होगा ही। और व्यवसाय प्रणाली के अधिकाश निजी मामलो म किसी न किसी प्रकार के मानक या प्रामाणिक माप-तौल का सम्बन्ध आता ही है। यो तो हर तरह की सरकारो से मानक माप-तौल का सम्बन्ध आता है किन्तु सार्वभौम राज्यो के लिए वह विशेष चिन्ता का विषय है क्योकि अपनी प्रकृति के कारण ही इन राज्यो को उसकी अपेक्षा कही अधिक विविधता एव भिन्नता रखने वाली प्रजाओ को एक मे गूथकर रखने की समस्या का सामना करना पडता है जितना ग्राम्यराज्यो को अपनी प्रजाओ के सबन्ध मे झेलना पडता है। इसलिए मानक माप तौल से जो सामाजिक एकरूपता आती है उसमे उनकी विशेष दिलचस्पी होती है। हा शर्त यह है कि उनको प्रभावशाली रूप से लागू किया जा सके।

सब प्रकार के मानक माप मे समय मापने की किसी प्रणाली की आवश्यकता सबसे पहिले अनुभव होती है। इसम भी प्रथम आवश्यकता वर्ष मे आने वाली ऋतुओ के माप की है। इसके कारण वर्ष मास दिन के तीन विभिन्न विभिन्न प्राकृतिक चक्रो (cycles) का सामजस्य आवश्यक होता है। अग्रगामी कालमापको (chronometrists) ने शीघ्रता के साथ यह पता लगा लिया कि इन कालचक्रो के बीच जो अनुपात हैं वे सरल भिन्न नही वर करणियाँ (surds) हैं। फिर एक ऐसे महावर्ष (Magnus Annus) की खोज आरभ हुई जिसमे ये विसवादी चक्र साथ-साथ आरभ हो और अपने दूसरे समकालिक प्रारभ बिन्दु पर पुन एक साथ मिलें। इस खोज ने मिस्री बबिलोनी और माया (Mayan) समाजो मे ज्योतिगणित के आश्चयजनक प्रयोगो को जन्म दिया। एक बार जब इस प्रकार की गणना की गाडी चली, तो मुकुलित ज्योतिषियों ने न केवल सूय चन्द्र वर ग्रहो तथा स्थिर तारकाओ की वर्तुल गति पर भी ध्यान दिया और उनका तथिक क्षितिज (Chronological Horizon) इतनी दूर चला गया कि उसको अभिव्यक्त करना सरल नही और उसकी कल्पना करना तो और भी कम सरल है। यद्यपि परवर्ती सृष्टिविज्ञानी को ये बातें सकुचित-सी मालूम होगी क्योकि उनकी आखो म हमारा यह विशिष्ट सौर जगत आकाश-गगा (Milky Way) के तारक चूर्ण का एक कणमात्र है और स्वय आकाश-गगा भी ज्वलनशील जन्म से मृत्युगामी भस्मीकरण की ओर जाती हुई असख्य नीहारिकाओ म स एक व्यतीत (Ci-devant) नीहारिका (nebula) से अधिक कुछ नही है।

तथिक विस्तृतियो के मानसिक अनुसधान की अद्यतन अवस्था की बात छोड दें ता भी सूय तथा स्थिर तारकाओ म से एक की प्रतीयमान गतियो के बीच बार बार होन वाल सपात के अल्पतम सामान्य माप ने १४६० वर्षों के मिस्री सोथिक चक्र

को और सूय चन्द्र तथा पच ग्रह के सामान्य चक्र (cycle) ने ४३२,००० वर्षों के बबिलोनी महावप को जन्म दिया। इसी प्रकार ३७४ ४४० वर्षों के विशाल 'मायिक' (Mayan) महाचक्र मे दस विभिन्न अवयवी चक्रो को एकत्र कर दिया गया। आश्चयजनक रूप से ठीक यद्यपि भयानक रूप से जटिल, मायिक पचाग माया के 'प्राचीन साम्राज्य' स सम्बद्ध यूकातेक एव मेक्जी (Mexic) समाजो को उत्तराधिकार मे प्राप्त हुआ।

ज्योतिषियो की भाति सरकारें भी वप-गणना तथा पुनरावतक वप चक्र के सधियोग से अपने को सम्बन्धित पाती हैं क्योकि प्रत्येक सरकार की प्रथम चिन्ता अपना अस्तित्व कायम रखने की होती है और परम निष्कपट शासन को भी शीघ्र ही पता लग जाता है कि अपने कार्यों का कोई स्थायी आलेख रखे बिना वह ज्यादा दिनो तक काय नही कर सकता। सरकारो द्वारा ग्रहण किया गया एक तरीका था अपने कार्यों को कुछ वार्षिक दडाधिकारियो—जैसे रोमी वाणिज्यदूत (रोमी कौंसल)—के नाम पर निर्धारित करना। इसी प्रकार होरेस, अपने एक गीत मे, हमसे कहता है कि 'वह मैनलियस के कौंसल (वाणिज्यदूत) रहते समय पैदा हुआ था। यह वसा ही हुआ जसे कोई लन्दनवासी अपनी जन्मतिथि बताने के लिए नगर के उस प्रतिष्ठित आदमी का नाम ले दे जो उसके जन्मवप म लाड मेयर रहा हो। एसी प्रणाली से जो असुविधा होती है वह स्पष्ट है, कोई भी आदमी न तो सब कौंसलो के नाम याद रख सकता है न यही स्मरण रख सकता है कि वे किस क्रम से नियुक्त हुए थे।[1]

एक ही सन्तोषजनक प्रणाली रह जाती है—वह है किसी विशिष्ट वप को आरम्भिक तिथि के रूप मे चुन लेना और उसके बाद के वर्षों की गणना करना। इसके प्राचीन उदाहरण निम्नलिखित हैं—रोम पर फासिस्त कब्जा प्रथम फरासीसी प्रजातत्र की स्थापना, पगवर मुहम्मद की मक्का से मदीना हिजरत, भारतीय जगत् मे गुप्त वश के राज्यस्थापन सेल्यूसीद साम्राज्य के हस्मोनी (हस्मोनियन) उत्तराधिकारी राज्य की जूडिया म स्थापना तथा बबिलोन मे विजयी सेल्यूकस निकेटर के पुन प्रवेश से आरभ होने वाले युग।

कुछ ऐसे भी मामले हैं जिनमे युगो की गणना ऐसी घटनाओ से की गयी है

[1] इसी प्रकार ईसाई चर्चों-द्वारा इस्तेमाल किये जाने वाले 'नाइसीन' तथा 'एपोस्टिल्स' क्रीड दोनों में प्राप्त 'पोंटियस पाइलेट के अधीन दु ख-सहन' वाक्यांश मे किसी व्यक्ति के विरुद्ध दोषारोप की जगह एक तिथि का वक्तव्य मात्र है। यदि इन धममतों के रचयिता शास्त्राथ में पड़ने की इच्छा रखते तो वे साम्राजिक रोम के एक ऐसे प्रतिनिधि का नाम न बताते जिसके साथ उनकी सफाई और फिर से मेल हो गया था बल्कि अपराध को यहूदियों पर मढ़ देते—यहूदी जिन्हें ईसाई उस समय भी घृणा करते थे। 'पोंटियस पाइलेट के अधीन दु ख-सहन' का आशय केवल यह दावा है कि 'ट्रिनिटी (त्रत—त्रिगुट) का द्वितीय व्यक्ति एक ऐतिहासिक पुरुष हुआ है जिसकी एक निश्चित तिथि थी और वह दूसरे धर्मों के काल्पनिक व्यक्तियों—जसे मिथ्रास या ईसिस या साइबील—की तरह नहीं है।

जिनकी निश्चित तिथि विवादास्पद है। उदाहरणार्थ, इसका कोई प्रमाण नहीं है कि ईसा ईसाई सवत् के प्रथम वर्ष में पैदा हुए थे—यहां तक कि यह ईसाई सवत् भी उसकी छठवीं शताब्दी तक प्रचलित नहीं हो सका था। इसी तरह इसका भी कोई प्रमाण नहीं है कि रोम की स्थापना ७५३ वर्ष ईसा-पूर्व में हुई थी या ओलिम्पिक समारोह पहली बार ७७६ वर्ष ईसा-पूर्व में मनाया गया था। इससे तो और भी कोई प्रमाण नहीं है कि यह विश्व ७ अक्तूबर ३७६१ ईसा-पूर्व में उत्पन्न हुआ (यहूदियों के मतानुसार) या १ सितबर ५५०९ ईसा-पूर्व (प्राच्य सनातन ईसाइयों के अनुसार) या २३ अक्तूबर ४००४ ईसा-पूर्व की पिछली सध्या को ६ बजे उद्भूत हुआ (सत्रहवीं शताब्दी के आयरिश काल विनिर्णय आर्कबिशप उश्शर के अनुसार)।

पिछले दो अनुच्छेदों में इन युगों को चुनी घटनाओं की तिथियों के प्रमाणों चित्य के क्रम से रखा गया है। किन्तु यदि हम इन युगों के विस्तृत एव दीर्घकालिक प्रचलन की दृष्टि से इस सूची का सिंहावलोकन करें तो हम देखेंगे कि जिस तावीज या मत्र-कवच से उनकी सफलता या असफलता का निर्णय हुआ है वह धार्मिक स्वीकृति की प्राप्ति या उसका अभाव मात्र है। १९५२ ई० में इस वर्ष में जब ये पंक्तियाँ लिखी जा रही हैं पाश्चात्य ईसाई सवत् समस्त जगत पर छा गया है और इसका गंभीर प्रतिस्पर्द्धी इस समय सिर्फ इस्लामी सवत् है, यद्यपि यहूदी अपने स्वाभाविक आग्रह के साथ अब भी *सृष्टि के आरंभ होने की तिथि के अपने अनुमान पर ही कायम हैं।* सच बात तो यह है कि मानव बुद्धि द्वारा काल के माप एव मानवात्माओं पर धर्म के अधिकार इन दोनों के बीच एक परपरागत सम्बन्ध है। जिन समाजों में इतनी व्यवहार कुशलता या तार्किकता है कि ज्योतिष का खुलआम मजाक उडाया जाता है, उनमें भी चित्त की अगम्य अवचेतन गहराइयों में इस मूढाग्रह या वहम ने अधिकार जमा रखा है। इसीलिए ऐसे उदाहरण दुर्लभ हैं जिनमें विवेक-सम्मत पचाग शोधन का कार्य सफल हो पाया है। जिस फरासीसी क्रान्ति की तर्कसगत विधि-सहिताए पृथिवी के एक छोर से दूसरे छोर तक फैल गयी थी और जिसके विद्यादभ से पूर्ण नवीन माप तौल के बाटों—ग्राम किलोग्राम मिलीग्राम तथा मीटर किलोमीटर एव मिलीमीटर—ने खूब सफलता प्राप्त की उसे भी अन्ध विश्वासपूर्ण एव ईसाई चर्च द्वारा पवित्र किये हुए रोमी पचाग (Roman Calendar) को अपदस्थ करने में खुद पूरी तरह पराजित हो जाना पडा। फिर भी फरासीसी क्रान्तिकारी पचाग एक आकर्षक निर्माण था। उसमें महीनों के नाम थे और वे अपनी समाप्ति द्वारा ३ ३ की चार ऋतुओं में विभाजित किये गये थे। प्रत्येक मास की अवधि एक समान ३० दिनों की थी तथा प्रत्येक महीने में १० १० दिन की अवधि के तीन सप्ताह रखे गये थे। सामान्य वर्ष की पाच दिनों की कमी इस आज तक आविष्कृत सबसे बुद्धिमत्तापूर्ण पचाग की कोई बाधा नहीं थी—पर वह एक ऐसे देश के लिए जो अपने दसवें ग्यारहवें और बारहवें महीने को क्रमश अक्तूबर नवबर और दिसबर कहता था जरूरत से ज्यादा युक्तिसगत था।[1]

[1] थाम्पसन, जे एम 'दि फ्रेंच रेवोल्यूशन' (आक्सफोर्ड १९४३ ब्लैकवेल) पृ ९

उपर्युक्त उद्धरणा मे जिन गलत नामो (misnomers) की निन्दा की गयी है उनके पास इसका एक स्पष्टीकरण भी था और उसे रोमी लोकतंत्र के सनिक इतिहास मे देखा जा सकता है। रोमी पचाग म छ महीने मूलत देवो के नाम पर नहीं बल्कि सख्या-द्वारा व्यक्त किये जाते थे और जब पहिली बार उनको नाम दिये गये तब वे अकां में कुछ गलत भी नही थे। मूलत रोमी सरकारी वष प्रथम माच को शुरू होता था तथा इस महीने का नाम युद्ध के रोमी देवता के नाम पर रखा गया था, और जब तक सरकारी कारवाई का क्षेत्र राजधानी से कुछ ही दिना की यात्रा तक सीमित था तवतक नवनिर्वाचित मजिस्ट्रेट (दण्डाधिकारी) १५ माच को अपना कायभार सम्हालने के बाद वासन्तिक अभियान के समय तक स्थान पर पहुचकर अपनी कमान ग्रहण कर सकता था। किन्तु जब रोमी सनिक कारवाइयो का क्षेत्र इटली के आगे तक फल गया तब इन दूर स्थानो मे से किसी एक की कमान पर नियुक्त मजिस्ट्रेट जब तक अपने स्थान पर पहुचता था तब तक मौसम बहुत कुछ बीत जाता था। हनीबाल युद्ध के बाद जो अद्धशताब्दी आयी उसमे तो इस पचाग दोष का कोई व्यावहारिक महत्त्व नहीं रहा क्योंकि पचाग खुद इतना पथभ्रष्ट हो गया था कि जिस महीने के आगमन की कल्पना वसत मे की जाती थी वह हटकर पूववर्ती शरद मे पहुच गया। उदाहरणाय १९० ईसा-पूर्व के वष म जब रोमी सेना ने मैग्नेशिया के एशियाई रणक्षेत्र मे सिल्यूसीद की सेना को हराया, तो वहा सनिक दस्ते केवल इसीलिए समय पर पहुच पाये थे कि सरकारी १५ माच पीछे हटकर पूव वष के १६ नवम्बर को पहुच गया था। इसी प्रकार १६८वें वष ईसा पूर्व मे जब एक दूसरी रोमी सेना ने पाइडना मे मसिडोनी (मैसिडोनिया) सेना को निर्णायक रूप से पराजित किया तो सरकारी १५ माच वस्तुत पिछला ३१ दिसम्बर था।

ऐसा जान पडता है कि इन दोना तिथिया के बीच रोमी स्वय ही अपने पचाग का शोधन करने लगे थे। परन्तु दुर्भाग्य की बात तो यह थी कि वे उसे ज्योतिष के अनुसार जितना ही ठीक करते उतना ही सैनिक समय सारणी की दृष्टि से वह बेकार होता जाता था। तदनुसार १५३ ईसा-पूर्व म ऐसा हुआ कि जिस दिन वार्षिक मजिस्ट्रेटो को अपना कायभार सम्हालना था उसे १५ माच से हटाकर पीछे की ओर १५ जनवरी पर ले जाया गया। परिणामस्वरूप माच की जगह जनवरी वष का पहिला महीना बन गया किन्तु ज्योतिष सम्बन्धी अयुक्तताए तबतक चलती ही रही जबतक कि जूलियस सीजर ज्योतिषियो के निष्कर्षों का एकाधिकारिक समथन करने मे समथ नही हो गया। इसके बाद उसने एक जूलियन पचाग चलाया जो ज्योतिष के अनुसार ठीक तिथि के इतना सन्निकट था कि लगभग डेढ हजार साल तक चलता रहा। इसी समय छ अक निर्दिष्ट महीनो म से प्रथम (क्विस टाइलिस) को एक नाम दिया गया जो अग्रजी का जुलाई हो गया है। अगली पीढी म इसके बाद का महीना अगस्त बन गया। फिर जूलियस और आगस्टस सरकारी तौर पर दीवस' (देव) नाम से ही अभिहित थे और जिन देवो के नाम पर पहल ही महीनो के नाम रख दिये गये थे, उनके बीच इनके नामा का प्रवेश कुछ अनुचित न था।

धर्मों के साथ पचागो के विचित्र ससग का चित्र जूलियन पचाग के बाद के इतिहास म दिखायी पडा। ईसाई सवत् की सोलहवी शती तक यह स्पष्ट हो गया कि उसमे दस दिन शेष रह जाते है तब दस दिन घटाकर तथा शताब्दि अधिवष (Leap Year) सम्बधी नियम म परिवतन करके उसकी अशुद्धता को अत्यणु की प्रमात्रा (quantum) तक सशोधित कर दिया गया। सोलहवी शती के पाश्चात्य ईसाई समाज मे यद्यपि सत टामस एक्वीनोज के युग की लीक पर गलीलियो का युग चढा चला आ रहा था फिर भी यह अनुभव किया गया कि केवल पोप ही पचाग शोधन के काय का आरभ कर सकते हैं। तदनुसार सशोधित पचाग का उद्घाटन १५८२ ई मे पोप ग्रिगोरी तेरहवें के नाम पर ही किया गया। किन्तु प्रोटेस्टेण्ट धर्मानुयायी इगलण्ड म किसी समय के पूज्य पोप इस समय तक केवल रोम के निदित बिशप मात्र रह गये थे। यहा तक कि उनकी गर्हित दुष्टताओ से मुक्ति पाने के लिए बादशाह एडवड षष्ठ की 'द्वितीय प्राथना पुस्तक' मे प्राथना की गयी। एलिजाबेथ की प्राथना-पुस्तक मे यह विरक्तिजनक अश निकाल दिया गया किंतु भावना तो फिर भी बनी ही रही। अग्रेजी एव स्काटी सरकारें अगले १७० वर्षों तक अपने प्राचीन पचागो से दृढतापूवक चिपकी रही और इस प्रकार उस युग के भावी इतिहासकारो को एन एस तथा ओ एस के बीच भेद करने के तुच्छ काय म समय देने के लिए विवश करती रहीं। अततोगत्वा जब १७५२ ई मे ब्रिटेन अपने यूरोप महाद्वीप के पडोसियो की पक्ति मे आ गया तब बुद्धिसगत कही जाने वाली अठारहवी शती की ब्रिटिश जनता ने उससे कही ज्यादा तहलका मचाया जितना ऊपर से उसकी अपेक्षा कम प्रबुद्ध दीखने वाली ईसवी सवत् की सोलहवी शती के कथोलिक जगत ने मचाया था। क्या इसका कारण यह है कि जहा तक पचाग का सम्बध था पालमट का अधिनियम (Act) पोप के 'बुल' या फतवे के पीछे छिपी ईश्वरवाणी के सामने एक दुबल विकल्प था?

जब हम पचागो एव युगो के क्षेत्र से निकलकर तौल माप तथा मुद्रा के क्षेत्र में जाते हैं तो सामाजिक प्रवतनो के ऐसे क्षेत्र म प्रवेश करते हैं जिसमे धार्मिक विश्वासो से अनियन्त्रित यौक्तिक बुद्धि का शासन रहता है। इसीलिए जहा फरासीसी क्रान्तिकारियो को धमनिरपेक्ष नये पचाग के प्रवतन म पूण असफलता हुई वहा तौल के नये बाट एव माप के विषय म उन्हे सावजनिक सफलता भी प्राप्त हुई।

जब हम नये ढग की फरासीसी एव सुमेरी मीटर प्रणालियो की तुलना करते हैं तो हमे ज्ञात होता है कि फरासीसी सुधारको के काय म जो चकाचौंध करने वाली सफलता मिली उसका कारण उनकी 'यायपूण नरमी थी। पुरातन शासनकाल की विस्मयकारी रूप म चित्र विचित्र या बहुरगी सारणियो को गणना की एक ही प्रणाली के अन्तगत लाने म उन्होंने जब असुविधापूर्ण दाशनिक पद्धति का अयौक्तिक अनुसरण किया तो अपना व्यावहारिक सुबुद्धि का ही परिचय दिया। यह दाशनिक पद्धति मानव जाति के सम्पूर्ण भाग-द्वारा जो एक मत से ग्रहण कर ली गया थी वह बुद्ध इसके गुणो के कारण नहीं था बल्कि केवल इसलिए कि सामान्य मानव को हाथ-पाव

मे दस दस उगलिया हा होती है। यह प्रकृति का एक निष्ठुर क्रियात्मक व्यग्य था कि उसने निम्न श्रेणी के कशेरुकीय (vertebrate—रीढदार) प्राणियो म से कुछ को उनके चार अगा मे से हर एक मे छ अक वाले हिस्से दिये किन्तु इस प्रशसनीय प्राकृतिक अक-गणक (Abacus) को उसका उपयोग करने के लिए विवेचना शक्ति नही दी, जबकि मानव प्राणी को विवेक देकर भी उपागा के विषय मे उसके साथ बडी कजूसी का व्यवहार किया और १० या २० चीजें देकर ही टरका दिया। यह दुर्भाग्य की बात रही क्योकि दाशमिक गणना म आधारिक माप केवल दो और पाच मे ही विभाजित हो सकता है जबकि दो, तीन और चार सबसे एक समान विभक्त हो सकने वाली सबसे छोटी सख्या १२ है। इतने पर भी दाशमिक अक पद्धति अनिवार्य थी क्योकि जबतक किसी समाज की कोई प्रज्ञा सख्या १२ की आन्तरिक श्रेष्ठता को समझने योग्य हो पायी, तब तक दाशमिक अकन पद्धति अछेद्य रूप से व्यावहारिक जीवन मे जम चुकी थी।

फरासीसी सुधारको ने इन दशकटकीय चुभनो को क्षमा कर दिया, किन्तु उनके सुमेरी पूर्ववर्ती कम विवेकवान थे। सुमेरु ने सख्या १२ की विशेषताओ का जो आविष्कार किया था वह उसकी प्रतिभा का ही एक शोशा था और उन्होने माप-तौल की अपनी प्रणाली के द्वादशिक आधार पर पुन शोधन का एक क्रान्तिकारी पग उठाया किन्तु उन्होंने यह महसूस नही किया कि जबतक वे अपने साथी मानवो को सब कामा के लिए द्वादशिक अकपद्धति ग्रहण करने को तयार करने का अगला कदम नही उठाते तबतक द्वादशिक माप-तौल से होने वाली सुविधाए दो असमानुपातिक तुलाए साथ साथ चलने से होने वाली असुविधाओ के कारण नष्ट हो जायगी। सुमेरी द्वादशिक प्रणाली पृथिवी के कोने-कोने मे फल गयी किन्तु पिछले डेढ सौ वर्षों के बीच यह अपनी तरुण फ्रासीसी प्रतिस्पर्द्धिनी के विरुद्ध एक हारती हुई लडाई लड रही है। आक्सफर्ड की भाति उर भी 'पराजित हेतुआ का गह' सिद्ध हुआ, यद्यपि सच्ची बात यह है कि उर की लडाई तबतक खतम नहा मानी जा सकती जबतक अग्रेज एक फुट मे १२ इच और एक शिलिंग मे १२ पेंस की गिनती करते हैं।[1]

ज्यो ही यह बात मान ली गयी कि सच्चा व्यवहार सामाजिक चिन्तन का विषय है और कोई भी स्वनामधन्य सरकार गलत तौल और माप देने को एक दडनीय अपराध माने बिना नही रह सकती मुद्रा के आविष्कार का क्रम अपने आप ही आ जाता है। किन्तु इस काय की पूर्ति भी कतिपय निश्चित एव क्रमिक उपायो का अवलम्बन करने के पूर्व नही हो सकती। इस प्रकार का आवश्यक काम-समूह भी सातवी शती ईसा पूर्व तक निष्फल रहा, यद्यपि उस समय समाज मे सभ्यता नाम की चीज शायद तीन हजार वर्षों से वर्तमान थी।

[1] दिन के चौबीस घटे और घटे के ६० मिनट भी सुमेरु के ही आविष्कार हैं और अनन्त काल तक उनके जीवित रहने की आशा है। फरासीसी क्रान्तिकारियों तक ने घडी को दाशमिक बनाने का प्रयत्न नहीं किया।

पहिला कदम था—कुछ विशेष वस्तुओं को विनिमय के माध्यम की भांति बरतने का उपाय। इससे उस वस्तु की आन्तरिक उपयोगिता न खोते हुए भी उससे स्वतंत्र एक दूसरी वस्तु प्राप्त हुई। किन्तु इस पग से स्वतः ही मुद्रा का आविष्कार नहीं हो गया क्योंकि चुनी हुई वस्तुएं विविध प्रकार की थीं और सब धात्विक नहीं थीं। उदाहरणार्थ मेक्सी एवं एंदियन विश्व में, स्पेनी कब्जे के समय तक पुरानी दुनिया में बहुमूल्य धातुएं नाम से विख्यात एवं प्रलोभनीय तत्त्व इतने परिमाण में मौजूद था कि स्पेनी विजेताओं को वह काल्पनिक और अविश्वसनीय मालूम पड़ा। वहां के मूल निवासी बहुत पहिले से इन धातुओं के परिमार्जन शोधन की कला जानते थे और दस्तकारियों में उनका प्रयोग करते थे। किन्तु उन लोगों ने कभी विनिमय के माध्यम के रूप में उनका उपयोग करने की बात नहीं सोची थी—यद्यपि इस प्रयोजन के लिए वे फलियां सूखी मछली नमक एवं समुद्री घोंघे और सापियां आदि कुछ विशेष पदार्थों का प्रयोग करते थे।

व्यापारिक रूप से अन्तर्ग्रथित मिस्री बबिलोनी सीरियाई एवं यूनानी जगत में बहुमूल्य धातुओं का प्रयोग आसानी से तौलने योग्य छड़ों के रूप में मूल्य के माप के लिए उसके सकड़ों क्या हजारों वर्ष पहिले से होता आ रहा था जब एजियन सागर के एशियाई तट पर स्थित कतिपय यूनानी नगरों की सरकारों ने विनिमय के धात्विक माध्यम को दूसरी वस्तुओं के समान स्तर पर रखने की प्रचलित प्रथा के आगे जाकर इसे गलत बाट या माप देने के कानून के अन्तर्गत एक अपराध बना दिया। इसके बाद इन अग्रगामी नगर राज्यों ने दो और क्रान्तिकारी कदम उठाये—एक यह कि इन मूल्यवान् धात्विक इकाइयों पर राज्य का एकाधिकार स्थापित कर दिया दूसरा यह कि इस सरकारी करेंसी (मुद्रा) पर कोई विशिष्ट मूर्ति एवं आलेख का अंकन कर दिया जिससे मालूम हो जाय कि वह मुद्रा सरकारी टकसाल का एक प्रामाणिक उत्पादन है और उसके ऊपर जो तोल एवं कोटि (क्वालिटी) अंकित है उसे सबको स्वीकार करना चाहिए।

चूंकि लघु क्षेत्रफल एवं संख्या वाले राज्य में मुद्रा की व्यवस्था करना कोई कठिन काम नहीं है इसलिए यह कोई घटना नहीं थी कि नगर राज्यों ने ऐसी प्रयोगशालाओं (laboratories) का काम किया जिनमें यह प्रयोग किया जा सका। किन्तु इसके साथ यह भी उतना ही स्पष्ट है कि मुद्रा की उपयोगिता त्यों-त्यों बढ़ती जाती है ज्यों-ज्यों उस क्षेत्र का विस्तार होता है जिसमें वह विधिमान्य निविदा (legal tender) है। जब छठी शती ईसा पूर्व के प्रारम्भिक दशकों में लीडियाई (लीडियन) राजतन्त्र ने मिलेटस के अतिरिक्त अनातोलिया के पश्चिमी तट पर स्थित सब यूनानी नगर राज्यों को जीत लिया और हालिज नदी तक उसके अन्तरंग भाग पर भी कब्जा कर लिया था उसने पराजित यूनानी नगर राज्य फोसिया (Phocaea) के स्थानीय मान पर आधारित मुद्राएं जारी कीं जो सारे लीडियाई साम्राज्य में चल गयीं। लीडियाई सम्राटों में सबसे प्रसिद्ध (और अंतिम भी) क्रोसस (Croesus) था जो इस उपाय से इतना धनवान् हो गया कि अपने समय के लिए एक जनश्रुति-सा बन गया। ईसाई

सवत की बीमवी शती का आधे से अधिक भाग बीत जाने पर भी अब तक एक पश्चिमवासी के मुह से राघ्स चाइल्ड या राक्फेलर या फोड या मारिस या अन्य आधुनिक पाश्चात्य कोटयधीशा की जगह ज्यादा स्वाभाविकता के साथ निकलता है—"क्रोशश जसा धनवान ।'

अंतिम एव निर्णायक कदम तब उठाया गया जब लीडिया का राज्य, अपनी बारी, विशाल एकेमीनियाई साम्राज्य मे मिला लिया गया। इसके बाद मुद्रा रूप म प्राप्त द्रव्य का प्रचलन हुआ। चूकि सिनाई जगत ज्यादा दूरी पर स्थित था इसलिए हान लियू पैंग के कुशल हाथा से त्स इन-शी ह्वाग-ती के क्रातिकारी साम्राज्य निर्माण का उद्धार हो जाने के बाद ही वह मुद्राप्रणाली को ग्रहण करने के योग्य बन सका। ११९ ईसा-पूर्व सिनाई सम्राट की सरकार को अब तक अनाविष्कृत सत्य की एक दीप्तिमयी अन्त प्रेरणा हुई कि केवल धातु ही ऐसा पदाथ नही जिससे द्रव्य या मुद्रा का निर्माण किया जा सके।

'छ-आगगान स्थित शाही बाग मे सम्राट के पास एक श्वेत मृग (हिरन) था। यह जानवर दुलभ है साम्राज्य भर मे उसका जाडा नही था। किसी मत्री की सलाह पर सम्राट ने इसे मरवा डाला और इसके चमडे स एक प्रकार का ट्रजरी नोट बनवाया। उसका विश्वास था कि उसकी नक्ल न का जा सकेगी। ये चमखण्ड एक-एक वगफुट के थे। इनमे एक झालरदार किनारी थी और ये विशेष प्रकार से चित्रित किये गये थे। प्रत्येक खण्ड का मनमाना मूल्य, अर्थात् चार लाख ताम्र मुद्रा, था। जो राजा या सामन्त सम्राट के प्रति सम्मान प्रकट करने आते थे उन्हे नकद दाम देकर एक चमखण्ड खरीदने और उसी पर अपने उपहार सम्राट को देने के लिए विवश किया जाता था। किन्तु मृग के ये चमखण्ड बहुत थोडी सख्या मे थे इसलिए शीघ्र ही वह समय आ गया जब इस तरकीब से सरकारी खजाने म अत्यावश्यक द्रव्य का आना बन्द हो गया।'[1]

करेंसी नोटो का आविष्कार तबतक प्रभावपूर्ण ढग पर लागू नही किया जा सका जबतक कि उसके साथ कागज और छपाई के दो और सिनाई (चीनी) आविष्कार नही हो गये। चक्र के रूप मे बेचनीय (negotiable) कागज ताग सरकार-द्वारा सन् ८०७ एव ८०९ ई म जारी किये गये थे। इनका प्रतिरूप सरकारी खजाने म सुरक्षित रहता था। किन्तु इस बात का कोई प्रमाण नही है कि इन चक्रा पर के अभिलेख मुद्रित (छपे हुए) थे। मुद्रित कागजी मुद्रा ९७० ई मे सुग सरकार द्वारा अवश्य जारी की गयी थी।

इसम कोई सन्देह नहा कि कागजी मुद्रा (करेंसी नोटो) का आविष्कार उन्हें जारी करने वाली सरकारो की प्रजाओ के लिए लाभदायक सिद्ध हुआ, यद्यपि उनमे स्फीति (inflation) और अवस्फीति (deflation) की सामाजिक रूप से विध्वसकारी

[1] फिटजेरल्ड, सा पी 'चाइना ए शार्ट कल्चरल हिस्ट्री' (लन्दन, १९३५, क्रीसेट प्रेस) पृ १६४ ६५।

अस्थिरताए चलती ही रहती थी और कम मूल्य पर लेकर अधिक मूल्य पर बेचने का प्रलोभन भी आविष्कार के साथ ही आया। किन्तु इससे भी ज्यादा लाभ खुद इन नोटो को जारी करने वाली सरकारो को हुआ क्योकि मुद्रा जारी करने से एक सरकार का सीधा एव निरतर सम्पर्क प्रजा के एक अल्पसंख्यक उद्योगी, समझदार और प्रभावशाली वर्ग से होता रहता है। यह मुद्रावतरण अपने आप न केवल सरकार की प्रतिष्ठा मे वृद्धि करता है वरन उसे आत्म विज्ञापन का भी अत्यन्त श्रेष्ठ अवसर प्रदान करता है।

जहा के लोग अपने विदेशी शासन की राजनीतिक दासता के जुए के प्रति असन्तोष एव विरोध रखते है उन पर भी इस मुद्रा प्रणाली का प्रभाव पडता है—यह बात न्यू टेस्टामण्ट (बाइबिल) के एक श्रेष्ठ लेखांश मे बतायी गयी है—

उन्होंने उसके पास कुछ फरिसियों (Pharisees) और हेरोडियों (Herodians) को इसलिए भेजा कि उसकी जुबान पकड सकें। जब वे आये तो उन्होंने उससे कहा—प्रभु, हम जानते हैं कि आप सच्चे हैं और आपको किसी भी आदमी की परवा नहीं है क्योंकि आप मानव देह को महत्व नहीं देते बल्कि सच्चाई के साथ ईश्वर का मार्ग बताते हैं। तब बताइए कि सीजर को खिराज देना विधि सम्मत है या नहीं ? हम उसे दें या न दें ?

"किन्तु उसने उनके पाखण्ड को जानते हुए कहा—मुझे क्यों प्रलुब्ध करते हो ? एक पेनी ले आओ, जिसे मैं देख सकू।' वे उसे ले आये और उसने उनसे कहा—इस पर किसकी मूर्ति और आलेख है ?' उन्होंने उससे कहा—सीजर का।' ईसा ने उत्तर मे उनसे कहा—'जो चीजें सीजर की हैं उन्हें सीजर को दो और जो ईश्वर की हैं उन्हें ईश्वर को दो।"

वे लोग उसकी जुबान लोगो के सामने पकड न पाये। उसके उत्तर पर विस्मित होकर चुप बैठ रहे।"[1]

यह अपने आप ही होने वाला नैतिक लाभ जो मुद्रा जारी करने से एक भयानक रूप से प्रतिकूल राजनीतिक एव धार्मिक वातावरण मे भी प्राप्त हो जाता है रोमी साम्राज्य-सरकार के लिए टकसाल से होने वाले आर्थिक लाभ की अपेक्षा कही ज्यादा मूल्यवान् था। मुद्रा पर सम्राट की प्रतिच्छवि से उस यहूदी आबादी के मन मे भी साम्राज्य-सरकार के लिए कुछ प्रतिष्ठा का भाव उत्पन्न हुआ जो रोम के राज्य को न केवल अवध मानती थी बल्कि यह भी मानती थी कि दस धर्मादेशो मे दूसरा खुदा द्वारा मूसा को प्रस्तर-पत्र पर अपने हाथ से लिखकर दिया गया था और जिसमे स्पष्ट निषेधाज्ञा थी —

'तू स्वय किसी प्रतिमा का अकन नहीं करेगा न ऊपर स्वर्ग की किसी वस्तु या उसके नीचे की धरती या धरती के नीचे के जल मे की किसी वस्तु की प्रतिमा खींचेगा। तू स्वय उनके आगे नहीं झुकेगा, न उनकी सेवा करेगा,

[1] मार्क बारह १३ १७। मैथ्यू बाईस, १५ २१। ल्यूक बीस, २० २६

क्योंकि तुम्हारा प्रभु और ईश्वर म हूँ—और मैं ईर्ष्यालु ईश्वर हूँ।"[1]

जब १६७ ई पू मे सिल्यूसीद राजा एन्तिओक्स चतुथ ने यहावा के यरुशलेम-स्थित पवित्रतम मन्दिर म ओलिम्पियन ज्यूस की एक मूर्ति रखवा दी तो उस विनाश कारी घृणित वस्तु'[2] का 'ऐसे स्थान पर जहा वह नही होनी चाहिए'[3] देखकर यहूदी इतने बिगडे कि तबतक शान्त नही हुए, जबतक कि उन्होंने सिल्यूसीद शासन का नामो निशान नही मिटा दिया। पुन जब सन् २६ ई म रोमी कोषाधिकारी (Roman Procurator) पाण्टियस पाइलेट न रोम के सनिक झण्डा का जिन पर सम्राट की मूर्ति अकित थी, लेकर, कपडे म लपेटे हुए और रात के अधेरे मे यरुशलेम म प्रवेश किया तो यहूदियों म इतनी भयानक प्रतिक्रिया हुई कि पाइलेट को उन चिह्ना एव प्रतीका को वहा से हटाना पडा। किन्तु इन्ही यहूदियो ने, सीजर की मुद्राओ पर वही घृणित मूर्ति न केवल चुपचाप देखने के लिए अपने को तैयार कर लिया बल्कि उनको स्पश करने, उनका इस्तेमाल करन उन्हे कमाने और जमा करन मे भी वे सिद्ध हो गय।

रोमी सरकार भी नीति के साधन के रूप मे एक देशव्यापी मुद्रा प्रणाली के महत्त्व को समझने मे पीछे न रही।

'*प्रथम शती के मध्य के बाद से साम्राज्य सरकार ने न केवल तात्कालिक* जीवन युग की राजनीतिक, सामाजिक, आध्यात्मिक एव कला सम्बन्धी प्रेरणाओं के दपण के रूप मे मुद्रा के क्रियान्वयन का महत्त्व अगीकार किया—शायद ही और सरकारों ने इसके पूव या बाद ऐसा किया होगा—बल्कि प्रचार के दूरगामी साधन के रूप मे भी उसकी अपरिमेय एव अद्वितीय सभावनाओ को ग्रहण किया। समाचार वितरण की आधुनिक प्रणालियां तथा प्रचार के आधुनिक साधन, डाक के टिकट से लेकर आकाशवाणी तथा समाचार-पत्र तक सबका प्रतिरूप हमे इस सामाजिक मुद्रा प्रणाली मे दिखायी पडता है, जिसमे वार्षिक मासिक—हम कह सकते हैं दनिक—नवीनताए एव टाइप की विविधताए सावजनिक घटनाओं के प्रभाव का विवरण प्रस्तुत करती हैं और उन लोगों के उद्देश्यों एव विचारधाराओं को व्यक्त करती हैं जिनका राज्य पर नियत्रण है।"[4]

स्थायी सेनाए

किस सीमा तक स्थायी सेनाओ की आवश्यकता है इस विषय पर सावभौम राज्यो मे बडी भिन्नता पायी जाती रही है। उनमे कुछ तो ऐसे थे जिन्होंने करीब करीब पूरी तरह उनका त्याग कर दिया था। दूसरे ऐसे थे कि एक शोचनीय आवश्यकता के रूप में इन व्ययसाध्य सस्थाओ चल एव गेरीजन काय मे लगी स्थिर

[1] एक्जोडस बीस ४ ५ [2] डन ग्यारह ३१ एव बारह, ११

[3] माक तेरह १४

[4] टायनबी, जे एम सी 'रोमन मडलियस' (न्यूयाक १९४४, दि अमेरिकन न्यूमिस्मेटिक सोसायटी), पृ १५

सना दोनों, को ग्रहण किया। ऐसे सार्वभौम राज्यों की सरकारों को उन कठिन और कभी-कभी असाध्य समस्याओं का सामना करना पड़ा जिन्हें इन भारी भरकम एवं अक्सर खतरनाक संस्थाओं ने उनके लिए पैदा कर दिया। किन्तु ये सब ऐसी बातें हैं जिनका अनुसन्धान करने के लिए हम ठहर नहीं सकते। इस शीर्षक के अन्दर आ सकने वाले अनेक विषयों में से हम केवल एक तक ही अपने को सीमित रखेंगे। वह जो शायद सबसे मनोरंजक और सबसे महत्त्वपूर्ण तथा इस परिच्छेद के सामान्य तर्क के निकट भी है—अर्थात् ईसाई चर्च के विकास पर रोमी सेना का प्रभाव।

निश्चय ही ईसाई चर्च रोमी सेना का सबसे प्रकट या सबसे निकट का लाभानुभोगी नहीं था। सभी विघटनशील साम्राज्यों की सम्पूर्ण सेनाओं से सबसे ज्यादा लाभ उठाने वाले लोग थे वे विजातीय एवं बर्बर जो उनमें भरती कर लिये जाते थे। उत्तरकालिक एकेमीनियाइयों ने यूनानी अर्थलोभी आदमियों की भरती कर जो पावर चल सेना बनायी वही सिकन्दर महान के द्वारा एकेमीनियाई साम्राज्य की पराजय का कारण हुई। अब्बासाई खलीफाओं के अंग रक्षकों में, तथा रोमी साम्राज्य एवं मिस्री नवीन साम्राज्य की स्थायी सेनाओं में बर्बरों की भरती के कारण खिलाफत में तुर्की बर्बरों, रोमी साम्राज्य के पश्चिमी प्रान्तों में टीटानी (टीटानिक) एवं सर्मेशियन (Sermatian) बर्बरों तथा मिस्र में हाइक्सोस बर्बरों का शासन स्थापित हुआ। इससे भी ज्यादा आश्चर्य तब होता है जब हम किसी सेना के प्रावरण (लबादे) को एक चर्च पर उतरता देखते हैं और आश्चर्य तब और बढ़ जाता है जब इस प्रेरणा एवं उत्साह का पाने वाला असैनिक परंपरा में विश्वास रखने वाला चर्च होता है।

खून गिराने में तथा फलस्वरूप सैनिक सेवा में आत्मिक आपत्ति होने के कारण आदिकालिक ईसाई इस विषय में यहूदी परंपरा से भिन्न थे। उनका विश्वास था कि ईसा का द्वितीय विजयागमन शीघ्र ही होने वाला है और उनको धीरज के साथ उस समय की प्रतीक्षा करने का आदेश है। १६६ ईसा-पूर्व से १३५ ई० तक तीन सौ वर्षों की अवधि में जब यहूदियों ने पहिले सिल्यूसीद, फिर रोमी शासन के विरुद्ध विद्रोहों की एक शृंखला-सी खड़ा कर दी तब लगभग इतनी ही लम्बी अवधि में (ईसा के मिशन से आरंभ करके रोमन साम्राज्य-सरकार तथा चर्च के बीच ३१३ ई० में हुई संधि एवं मैत्री तक) ईसाइयों ने अपने रोमी उत्पीड़कों के विरुद्ध कभी सशस्त्र विद्रोह नहीं किया। जहाँ तक रोमी सेना में भरती होने का विषय है यह निश्चय ही ईसाइयों के मार्ग में एक रोड़ा सा था क्योंकि इसमें न केवल प्रत्यक्ष सेवा द्वारा खून बहाने का प्रश्न आता था बल्कि अन्य बातों के साथ साथ मृत्युदण्ड और फाँसी देने सम्राट के प्रति बिना किसी प्रतिबन्ध के निष्ठा की सैनिक शपथ लेने सम्राट की प्रतिमा की पूजा करने एवं उसके लिए बलिदान देने की तयारी तथा मूर्ति की भाँति ही असैनिक भक्तों के प्रति भक्ति रखने की आवश्यकता के प्रश्न भी सम्बद्ध थे। तथ्य तो यह है कि प्रारंभिक ईसाई पादरियों द्वारा सेना में नौकरी करना ईसाइयों के लिए निषिद्ध घोषित कर दिया गया था। आरिजन और टर्टूलियन द्वारा इस प्रकार की घोषणा हुई थी—यहाँ तक कि सक्रेमेण्टियस ने भी कुस्तुनतुनिया का शान्ति

सधि हो जाने के बाद प्रकाशित अपनी एक पुस्तक म ऐसा ही फतवा दिया था।

यह एक महत्वपूण बात है कि ईसाई चच-द्वारा रोमी सेना का बहिष्कार उस समय टूट गया जब सेना म स्वेच्छा से ही भरती होती थी—रोमी साम्राज्य शासन द्वारा यह प्रश्न उठाने और डाआक्लेटियन (राज्यकाल २८३—३०५ ई) द्वारा अनिवाय सनिक सेवा जारी करने (यद्यपि यह भी केवल सिद्धान्त तक ही सीमित रही) के सौ से भी अधिक वष पहिले। लगभग १७० ई तक तो इस सवाल पर सघष होने की स्थिति को सदा बचाया गया। ईसाई सिविल अधिकारी ईसाइयो की भरती से हाथ खीचे रहते थे। दूसरी आर यदि कोई व्रात्य (Pagan) सनिक सेवा करते हुए धम परिवतन द्वारा ईसाई हो जाता था तो चच भी अवधि के अन्त तक उसे अपनी सेवा ज्यो की त्यो जारी रखने और सेना द्वारा दिये गये हर तरह के काम करते रहने की स्थिति को स्वीकार कर लेता था। सभवत चच ने इस शिथिलता को अपने लिए उसी प्रकार विहित मान लिया जैसे उसने शुरू से कितनी ही परस्पर प्रतिकूल बातो को सहन किया था—जैसे दासप्रथा—उस स्थिति मे भी जब मालिक एव दास दोनो ईसाई हो। इस युग मे चच को आशा थी कि ईसा के द्वितीय आगमन को इतना थोडा समय रह गया है कि एक सैनिक, जो धम-परिवतन द्वारा ईसाई बन चुका है, ठीक उसी तरह अपना समय बिता सकता है जिस तरह दासता के बन्धन मे बधा वह दास जो धम-परिवतन से ईसाई हो गया है।

ईसाई सवत् की तीसरी शती मे ईसाइयो ने रोमी समाज के राजनीतिक रूप से उत्तरदायी वर्गों म अधिकाधिक सख्या म शामिल होना शुरू किया—अशत स्वय ससार मे उन्नति करके और अशत उच्चवर्गीय धर्मान्तरित लोगो को अपनी ओर मिलाकर। इस प्रकार रोमी सेना के सामाजिक महत्त्व के कारण जो सवाल उसके सामने आ खडा हुआ था, उसे सिद्धान्त रूप मे कभी हल न करते हुए या पूरे राज्य के—सेना जिसका एक अग थी—ईसाई हो जाने की प्रतीक्षा न करके भी आचरण-द्वारा उन्होंने उसका उत्तर देने की चेष्टा की। डाओक्लेटियन की सेना मे ईसाई सनिक दल इतना बडा और इतना प्रभावशाली था कि ३०३ ई के उत्पीडन का प्रहार पहिले सना के ईसाइयो पर ही हुआ। यह निश्चित रूप से प्रकट है कि पश्चिमी प्रान्तो मे सेना म ईसाइयो का प्रतिशत असनिक आबादी म ईसाइयो के प्रतिशत से ज्यादा था।

जिस युग मे सनिक सेवा पर प्रतिबन्ध जारी था उस युग मे चच पर सेना का प्रभाव और भी महत्त्वपूण तथा ध्यान देन योग्य है। युद्ध म उन्ही वीरतापूण गुणो की आवश्यकता पडती है जो एक जनप्रिय धम के अनुयायियों को प्रदर्शित करने पडते हैं और ऐसे धर्मों के कितने ही उपदेशको ने युद्ध के अस्त्रो एव कलाओ द्वारा प्रस्तुत शब्द भाण्डार का सहारा लिया है। सबसे ज्यादा तो खुद सन्त पाल ने ऐसा किया है। यहूदी परपरा म, जिसे ईसाई चच ने अपनी ही विरासत के एक बहुमूल्य अग की भाति सुरक्षित रखा है, युद्ध शाब्दिक एव रूपकीय दोनो अर्थों मे एक पवित्र काय है। जब यहूदी सैनिक परपरा एक शक्तिमान साहित्यिक प्रभाव का प्रतीक थी तो रोमी सनिक परपरा अपने को एक जीवन्त प्रभावशाली यथाथता के रूप में सामने लाती

थी। प्रजातन्त्र की रोमी सेना रोमी विजयों के निर्दय युग मे और उससे भी ज्यादा रोमी सिविल (नागरिक) युद्धों के निर्दय युग में चाहे जितनी क्षतिकारी एव घृण्य रही हो किन्तु साम्राज्य की सेना, जो लूट पर नही वेतन पर निर्वाह करती थी और जो यूनानी जगत् के सभ्य आतरिक भागो मे फैलकर उसे नष्ट कर देने की जगह बर्बरो से सभ्यता की रक्षा करने के लिए सीमाओ पर तैनात रहती थी उसे उनका कल्याण साधन करने वाली संस्था के रूप मे रोम की प्रजा का स्वप्रसूत सम्मान प्रशसा, यहा तक कि स्नेह भी प्राप्त हुआ और यह सेना के लिए एक उचित गर्व की बात थी।

सन् ९५ ई के लगभग रोम के क्लीमेण्ट ने कोरिन्थवासियो के नाम अपने प्रथम धर्मपत्र (Epistle) मे लिखा—"हमे अपने शासको की सेवा करने वाले सैनिकों के आचरण पर गौर करना चाहिए। जरा उनकी उस सुव्यवस्थितता विनम्रता और आज्ञाकारिता की तो सोचो जिनके साथ वे आदेशो का पालन करते हैं। उनमे सब दूत (Legate) या जन रक्षक (Tribune) शत-सेना नायक या इनसे छोटे अफसर भी नही हैं फिर भी अपनी टुकडी मे सेवा करने वाला प्रत्येक सैनिक सम्राट एव सरकार के आदेशो का पालन करता है।"

इस प्रकार अपने ईसाई पत्र लेखको के सामने सैनिक अनुशासन का उदाहरण रखकर क्लीमेण्ट चर्च मे सुव्यवस्था स्थापित करना चाहते थे। वह कहते थे कि आज्ञापालन सब ईसाइयो के लिए जरूरी है। वह केवल ईश्वर के प्रति ही नही, धार्मिक जगत् मे अपने से बडे जनो के प्रति भी होना चाहिए। किन्तु ईसाई चर्च की सैनिक कल्पना के विकास मे ईश्वर का सैनिक मुख्यत धर्म प्रचारक होता था। धर्म प्रचारक को नागरिक जीवन की बाधाओ से अपने को मुक्त कर लेना चाहिए। और उसे अपनी शिष्यमण्डली द्वारा उसी प्रकार समर्थन पाने का अधिकार है जैसे करदाता द्वारा दिये हुए धन से सैनिक को अपना वेतन पाने का अधिकार है।

इस प्रकार चर्च की संस्थाओ के विकास पर रोमी सेना का जो भी प्रभाव पडा हो, फिर भी वह रोमी सिविल सर्विस की अपेक्षा उस क्षेत्र मे कम प्रभावशाली था। सेना के उदाहरण का मुख्य प्रभाव चर्च के आदर्शों पर पडा।

ईसाई धर्म दीक्षा मे बपतिस्मे की जो प्रथा है उसकी तुलना सत साइप्रियन ने उस सैनिक शपथ (सैक्रामेण्टम) से की है जो रगरूट के रोमी सेना मे भरती होने के समय ली जाती थी। एक बार भरती हो जाने के बाद ईसाई सैनिक को अपना युद्ध कार्य नियमो के अनुसार ही चलाना पडता था। उसे पलायन के अक्षम्य अपराध का, इसी प्रकार कर्तव्यच्युति (Dereliction of Duty) के गभीर अनाचार का भी त्याग करना ही चाहिए। सन्त पाल ने रोमनों के नाम जो धर्मपत्र लिखा था उसमे सैनिक भाषा का एक पद आया है। टर्टूलियन ने उसमे यह वाक्य ग्रहण किया—'अपचार (delinquency) का वेतन मृत्यु है।' बाइबिल के प्रामाणिक अग्रेजी अनुवाद मे सन्त पाल का पद 'पाप की मजदूरी' (Wages of Sin) है। इसी प्रकार ईसाई जीवन के सस्कारों एव नैतिक

दायित्वो को टटूलियन ने सनिक कठोर श्रम या श्राति (fatigue) के समान बताया है। उसकी शब्दावली म उपवास सत की गश्त है और तलवारा की छाया सत मैथ्यू के अनुसार प्रभु की हलकी (सनिक) गठरी है ईसाई सैनिक की निष्ठापूण सवा के लिए सेवा-मुक्ति के बाद 'ईश्वरी इनाम की सिफारिश की गयी है। और जबतक यह इनाम न प्राप्त हो तब तक सैनिक अपने लिए रसद लेता रह सकता है बशर्ते कि वह सतुष्ट रहता है। क्रूस एक सनिक पताका है और ईसा प्रधान सेनापति हैं। सच पूछें तो बर्यरिंग गाइल्ड का 'ईसाई सैनिको आगे बढो' का नारा और जनरल बूथ की 'मुक्ति सेना' (Salvation Army) वाणी एव आचरण दानो मे एक ऐसी समानातर रेखा खीचते हैं जो चच के प्रारम्भिक दिनो तक चली जाती है। किन्तु जिस सेना ने मूलरूप से ऐसी तुलना का सुझाव दिया वह एक गर ईसाई सेना थी, जिसे रोमी साम्राज्य ने एक दूसरे ही प्रयोजन स उत्पन्न किया और बना रखा था।

नागरिक सेवाए (सिविल सर्विसेज)

अपनी नागरिक या असनिक सेवाओ का विस्तार करने मे सावभौम राज्यो मे बडी भिन्नता रही है। पमाने के ऊपरी सिरे पर हम ओथमन सरकार को पाते हैं जिसने अपनी प्रशासनिक आवश्यकताओ के लिए वह सब किया जो मानवीय मेधा सोच सकती और मानवीय सकल्प पूण कर सकता है। उसने एक ऐसी नागरिक सेवा (सिविल सर्विस) का निर्माण किया जो केवल पेशे वाली बिरादरीमात्र न थी धमव्यवस्था का एक लौकिक या धमनिरपेक्ष पर्याय थी—ऐसी कठोरता के साथ विलगित, इतने सयम के साथ अनुशासित और इतनी क्षमता के साथ अनुकूलित' (conditioned) जस कोई अतिमानुषी, या अवमानुषी, जाति हो—मानवजाति के सामान्य प्रकार से इतनी भिन्न जसे एक सुजात अश्व, कुत्ता (हाउण्ड) या बाज जो उत्पादनकर्ता या प्रशिक्षक (ट्रनर) क हाथ मे पहिले अनगढ़ सामग्री के रूप मे आया रहा हो।

सावभौम राज्यो के लिए नागरिक सेवाओ के जन्मदाताओ के सामने एक समस्या प्राय आती है कि जो अभिजात या कुलीनवग (aristocracy) 'सकट काल' मे इन राज्यो पर प्राय अपनी धौंस जमाये रहा है उसका क्या उपयोग किया जाय। उदाहरणाथ जब पीटर महान् ने मस्कोवी का पाश्चात्यीकरण आरभ किया तो वहा इसी प्रकार का अयोग्य कुलीनवग मौजूद था। किन्तु 'प्रिंसिपेट' के सस्थापन के समय रोम-साम्राज्य मे वही कुलीनवग अत्यन्त योग्य एव समथ था। पीटर और आगस्टस दोनो ने ही अपने-अपने साम्राज्य के कुलीनवग से एक व्यापक प्रशासनिक सरचना (structure) का निर्माण करने क लिए सामग्री ली किन्तु दोनो के उद्देश्य भिन्न थे। जहां पीटर ने पुरानी चाल के सामन्तो को पाश्चात्य प्रणाली के कुशल प्रशासक बनने पर बाध्य किया वहा आगस्टस ने सिनेटरा को सहभागी के रूप मे ग्रहण किया, कुछ इसलिए नही कि उसे उनकी सेवाओ की

आवश्यकता थी बल्कि इसलिए कि वह इस सहभागिता को उस दुर्गति के विरुद्ध एक बीमा समझता था जो जबदस्ती हटा दिये गये भूतपूर्व शासक वर्ग के अपमानित सदस्यो के हाथो उसके पूर्ववर्ती जूलियस सीजर को भोगनी पडी थी। जिन विरोधात्मक समस्याओ का सामना आगस्टस और पीटर महान् को करना पडा वे ऐसी किंकर्तव्यविमूढ कर देने वाली है कि एक साम्राज्य के निर्माता को प्राक्-साम्राजीय कुलीनवर्ग के संघर्ष मे ला खडा करती हैं। यदि कुलीनवर्ग योग्य है तो वह सम्राट की सेवा को अपनी शान के खिलाफ समझकर नाराजी जाहिर करता है, इसके विपरीत यदि कुलीनवर्ग अयोग्य है, तो जो एकाधिकारी (डिक्टेटर) उनको अपनी सेना म नियुक्त करता है उसे शीघ्र ही पता चल जायगा कि उसके हथियार की अहिंसकता उसकी धार के भोथर हो जाने से बराबर हो गयी है।

साम्राज्य के पहिले का कुलीन वर्ग ही एकमात्र ऐसा सामान नही था जिसे साम्राज्य निर्माता अपनी नागरिक सेनाओ मे भरती करन के लिए चाहते थे। यदि यही तक बात होती तो इन बड़े आदमियो से कर्नलो का एक ऐसा दल बनता जो बिना किसी रजीमण्ट के होता। तब वकीलो एव दूसरे पेशे के आदमियो से निर्मित मध्यम वर्ग की आवश्यकता पडती जिसके सदस्य रेजीमेण्टी अफसरो के समकक्ष होते। इसके बाद भी सामान्य सनिको की तरह छोटे स्थानो के लिए साधारण आदमियो की जरूरत पडती। कभी-कभी किसी सार्वभौम राज्य के निर्माता एक ऐसे वर्ग की सेवाए ग्रहण करने की सौभाग्यपूर्ण स्थिति म होते थे जो अपने देश की आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए पहिले से ही अस्तित्व मे आ चुका होता था। जबतक यूनाइटेड किंगडम (इग्लण्ड स्काटलण्ड, आयरलण्ड) के प्रशासनिक इतिहास को जरा ही पहिले बीते अध्याय की पार्श्वभूमि मे रखकर न देखा जाय तबतक ब्रिटिश भारतीय सिविल सर्विस की प्रगति और उपलब्धियो को समझना कठिन होगा।

'१८३३ ई के बाद कानून द्वारा कारखानो का निरीक्षण शुरू हुआ। यह एक नये प्रकार की नागरिक सेवा (सिविल सर्विस) के विकास की एक स्थिति थी रिवाज के स्थान पर विज्ञान को स्थापित करने में बेंथम के उत्साह तथा प्रशासन के बारे म उसके इस विचार का कि वह एक प्रवीण व्यापार' (*skilled business*) है इस मामले मे पूर्णत सतोषजनक परिणाम हुआ। उसकी प्रेरणा से इगलण्ड ने एक ऐसे कर्मचारी-मण्डल का निर्माण किया जिसने अपने काम म प्रशिक्षण एव स्वतत्रता का समावेश किया। वह आगल जस्टिस आव पीस के समान नही था नये नागरिक सेवक' का नाम था। वह फरासीसी इण्टेण्डण्ट की भाति भी नही था क्योकि उनकी तरह केवल वह सरकार द्वारा बनाया प्राणी नही था। अंग्रेज जनता ने शिक्षित आदमियो का ऐसी शर्तों पर उपयोग करना सीखा जिनसे उनकी स्वतत्रता तथा आत्मसम्मान की रक्षा हुई। उस समय इस शिक्षित वर्ग का मुख्य कार्य नवीन (औद्योगिक) जगत् की अव्यवस्था पर सर्च लाइट फेंकना था। दूषणो को प्रकट करने और योजनाए बनाने मे वकीलो डाक्टरो, वैज्ञानिको और साहि

जाती है वह, कन्फ्यूशस सम्प्रदाय की प्राचीन साहित्य शैली मे पुनर्लेपन की कुशलता तथा कन्फ्यूशस सम्प्रदाय के विद्वानो के लिए सन्तोषजनक उनके दर्शन को समझाने की योग्यता है तब इस नयी सिनाई सिविल सर्विस ने एक निश्चित रूप धारण कर लिया। इस प्रकार दूसरी शती ईसा पूर्व की कन्फ्यूशियन विचारधारा को बड़े कौशल के साथ साम्राज्य शासन का भागीदार बना दिया गया। इसे देखकर स्वय कन्फ्यूशस विस्मित हो जाते किन्तु यह निर्जलीकृत (dehydrated) अर्थात् नीरस राजनीतिक दर्शन भी एक सघबद्ध पेशेवर जीवन प्रणाली के लिए उससे ज्यादा प्रभावशाली प्रेरणा का काम करता था जितना डायोक्लेटियन के युग मे यूनानी जगत् की साहित्यिक पुरातनपन्थी संस्कृति देती थी। वह चाहे जितना विषादभी रहा हो किन्तु उसने एक पारपरिक सदाचार तो दिया ही। सिनाई नागरिक सेवको के प्रतिरूप रोमनो मे इसी एक बात की कमी थी।

जहा हान साम्राज्य और रोमी साम्राज्य ने अपनी-अपनी सिविल सर्विस अपने ही सामाजिक और सास्कृतिक उत्तराधिकार से निर्मित की वहा अपनी समस्या की प्रकृति के कारण पीटर महान को ऐसा कुछ करने का मौका नही मिल सका। १७१७—१८ ई मे उसने नवीन पाश्चात्य प्रशासन प्रणाली मे प्रशिक्षित करने के लिए अनेक प्रशासनिक महाविद्यालयो की स्थापना की। स्वीडन के युद्धबन्दियो को प्रशिक्षक के काम के लिए फासा गया और रूसी शिक्षार्थियो को प्रशासन प्रशिक्षण के लिए कोनिग्सबर्ग भेजा गया।

जहा भी साम्राज्य की सिविल सर्विस का गठन चेतनापूर्वक विजातीय सस्थाओ की नकल पर किया जाता है, वहा लोगो के प्रशिक्षण के लिए विशेष प्रबन्ध करने की आवश्यकता पडती ही है। किन्तु थोडी-बहुत मात्रा मे इस प्रकार की आवश्यकता सभी तरह की सिविल सर्विस के लिए पडती है। इकाई (Incaic), एकेमीनियाई रोमी तथा ओथमानी साम्राज्यो मे सम्राट का निजी परिवार ही साम्राज्य सरकार की गाडी के पहिये की नाभि और प्रशासको का प्रशिक्षण विद्यालय था। इस पारिवारिक शिक्षण विद्यालय का काम बहुधा बालभृत्यो (pages) के दल का निर्माण कर या दैनिक शर्तों पर आदमियो को रखकर पूरा कर लिया जाता था। कुजको मे स्थित इका के सम्राट के दरबार मे शिक्षण के लिए नियमित पाठ्यक्रम था और बीच-बीच मे जाच परख भी होती रहती थी। हैरोडोटस के कथनानुसार एकेमीनियाई साम्राज्य मे सब खानदानी फारसी बच्चो को ५ साल की उम्र से २० साल की उम्र तक सम्राट के दरबार मे शिक्षा दी जाती थी। यह शिक्षा अश्वारोहण, बन्दूक चलाने और सत्यकथन, केवल तीन विषयो मे होती थी। ओथमान दरबार ने अपने प्रारभिक दिनो मे ब्रूसा मे बालभृत्यो के शिक्षण की व्यवस्था की थी और जब सुलतान मुराद द्वितीय (राज्यकाल १४२१—५१ ई) ने तात्कालिक राजधानी एड्रियानोपुल मे राजकुमारो के लिए एक स्कूल खोला तबतक वह व्यवस्था चल ही रही थी। मुराद द्वितीय के उत्तराधिकारी सुलतान मुहम्मद द्वितीय (राज्यकाल १४५१—८१ ई) ने एक नवीन मार्ग ग्रहण किया और अपनी सिविल सर्विस मे उस्मानली मुसलिम सामन्तो के बच्चो को नही बल्कि ईसाई दासो को—यहा तक कि पाश्चात्य ईसाई राज्यो के युद्धबन्दियो

तथा पादशाह के अपने ही पूर्वी सनातनी ईसाई प्रजाओ से 'उपहार' मे प्राप्त बच्चो तक मा—भर्ती किया । इस विचित्र सस्था की चर्चा हम इस ग्रन्थ के किसी पिछले अध्याय म कर भी चुके हैं ।

इस प्रकार जब ओथमन पादशाहो न जान बूझकर अपने निजी दास_परिवार को तेजी के साथ बन्ते हुए साम्राज्य के शासन के लिए साधन रूप म इस्तेमाल कर लिया और स्वतत्र उस्मानलियो का उससे सचमुच बहिष्कृत कर दिया, तब रोमन सम्राटो ने सीजर के परिवार का ऐसा ही उपयोग करने को विवश होकर, साम्राज्य शासन मे मुक्त लोगो के काय-व्यापार को सीमित करने के उपाय किये । प्रारभिक दिनो मे रोमन साम्राज्य के प्रशासन म विशेषत केन्द्रीय सरकार मे इन मुक्त आदमियो का बल जोर था । सीजर की गृहस्थी म स्थित पाच प्रशासकीय कार्यालय तो साम्राज्य के मत्रालय का रूप धारण कर चुके थे । किन्तु उन पदो पर भी जो परपरा स मुक्त हुए आदमियो के लिए सुरक्षित से थे, किसी मुक्त व्यक्ति के लिए रहना राजनीतिक दृष्टि से असभव हो गया । ज्यो ही वे प्रमुख स्थान पर पहुचते या उनका पता लगता कि वे निकाल दिये जाते थे । क्लाडियस एव नीरो के इन 'मुक्त हुए' (freedmen) मत्रियो के निरकुश शक्ति प्रदशन एव स्वेच्छाचार का परिणाम यह हुआ कि फ्लेवियन एव उनके उत्तराधिकारियो के समय म सब प्रमुख पद एक एक करके इक्वेस्ट्रियन आडर (अश्वारोही सरदारो के एक व्यावसायिक वग) को हस्तातरित कर दिये गये ।

इस प्रकार रोमी सिविल सर्विस के इतिहास म दास निम्न वग एव सिनेटर कुलीन वग दोनो के स्थान पर इक्वेस्ट्रियन अर्थात् व्यवसायी वग की क्षमता बढ गयी तथा जिस कुशलता और ईमानदारी से इक्वेस्ट्रियन नागरिक सेवको (सिविल सर्वेंटस) ने अपने कत्तव्यो का पालन किया उसे देखते हुए अपने प्रतिस्पर्धियो पर उनकी विजय के औचित्य मे शका नही रह जाती । एक वग का यह निष्क्रमण जो प्रजातान्त्रिक शासन की पिछली दो शतियो म शोषण, कृषि-कर और सूदखोरी से अत्यन्त धनी और शक्तिमान हो गया था शायद आगस्टसीय साम्राज्य प्रणाली की सबसे अधिक उल्लेखनीय विजय है । इसी प्रकार ब्रिटिश भारतीय नागरिक सवको (सिविल सर्वेंटस) की भरती भी व्यावसायिक वग से ही हुई थी । उनकी सेवा का आरभ भी एक व्यावसायिक कम्पनी के रूप मे हुआ था जिसका प्रयोजन अर्थ-लाभ मे था । घर से इतनी दूर प्रतिकूल जलवायु म नौकरी करने मे उनकी मूल प्रेरणा यही थी कि व्यापार द्वारा अपना भी कुछ निजी लाभ कर लेंगे या सभव हुआ और किस्मत खुल गयी तो खजाना जमा कर लेंगे । और जब वह ईस्ट इण्डिया कम्पनी एक महत्त्वपूर्ण सरल सनिक विजय-द्वारा ध्वस्त मुगल साम्राज्य के सबसे धनवान प्रान्त मे प्रभुत्व-सम्पन्न सस्था के रूप मे बदल गयी (भले नाम म कभी न हो) तो थोडे दिनो तक कम्पनी के नौकर अपने निजी लाभ के लिए तजी के साथ धन बटोरने की छीन झपट मे उसी बेशर्मी के साथ लग गये जसी रोमन इक्वाइटी (सामन्तो) ने उससे कही ज्यादा लम्बी अवधि तक प्रदर्शित की थी । फिर भी रोमी की भाति ही इस ब्रिटिश उदाहरण मे भी लुटेरे अवाछनीय व्यक्तियो का दल एक सरकारी सेवको की एक सस्था म परिवर्तित कर दिया गया जिनकी प्रेरणा

केंद्र अब व्यक्तिगत लाभ नहीं रह गया था और जिन्होंने असीम राजनीतिक सत्ता का दुरुपयोग किये बिना उसका इस्तेमाल करना सीखने को अपने सम्मान का प्रश्न बना लिया।

भारत मे ब्रिटिश प्रशासन के स्वभाव मे यह शुभ परिवर्तन अशत इसलिए हुआ कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने अपने सेवको को उनके कधो पर आ पडी नयी राजनीतिक जिम्मेदारियो को वहन करने के लिए शिक्षण देने का निणय किया। अपनी प्रशासन सेवा मे नियुक्ति के परिवीक्षको (probationers) के लिए कम्पनी ने १८०६ ई मे हटफोड कैसिल नामक एक कालेज खोला जो तीन वर्षों बाद हेलीबरी मे स्थानात रित कर दिया गया। इस कालेज ने अपने जीवन के ५२ वर्षों म एक एतिहासिक भूमिका का निर्वाह किया। भारत का शासन कम्पनी के हाथ से सम्राट के हाथ मे चले जाने के कुछ ही समय पहिले, १८५३ ई मे, पालमण्ट ने भविष्य में इस सेवा के लिए प्रति योगिता परीक्षा द्वारा भरती करने का निश्चय किया। इस निणय के कारण यूनाइटेड किंगडम के विश्वविद्यालयो एव तथाकथित पब्लिक स्कूलो (जिनसे निकलने वाले विद्यार्थी ही प्राय दोनो प्राचीन आग्ल विश्वविद्यालयो मे जाते थे) जसी गर-सरकारी सस्थाओ के लिए भी इस सर्विस का दरवाजा खुल गया। १८५७ ई मे हेलीबरी कालेज बद कर दिया गया। इसके जीवन के बावन वर्षों मे रगवी के डा अर्नाल्ड आये और चल गये किन्तु जिन सब बातो को लेकर उनके जीवन का निर्माण हुआ था वे सब समान मन वाले शिक्षको द्वारा समस्त पब्लिक स्कूलो म प्रचारित कर दी गयीं। उन्नीसवी शती के उत्तराद्ध मे आने वाला औसत सिविल सर्वेण्ट स्कूल एव विश्वविद्यालय में प्रशिक्षित हो चुका होता था। यह प्रशिक्षण एक विशेष प्रकार की विद्वत्ता का शिक्षण होता था जिसमे पाश्चात्यो के दृष्टिकोण के अनुसार 'प्राचीन' (क्लासिकल) भाषाओ और साहित्यो का ज्ञान तथा एक एसे ईसाई दृष्टिकोण का विकास करना शामिल था जो कुछ अस्पष्ट एव अरूढिवादी होते हुए भी दृढ हो। यदि हम इस नतिक एव बौद्धिक प्रशिक्षण के साथ उस मिनाई कफ्यूशियन शास्त्रीय साहित्य के शिक्षण का समानातर उदाहरण के रूप म ग्रहण कर लें जिसकी अपेक्षा बीस सदियो पूव स्थापित होने पर भी उस जमाने के चीनी सरकारी सेवको से की जाती थी तो यह सिफ एक कल्पना की ही बात न होगी।

अब हम इस बात पर विचार करें कि सावभौम राज्यो ने अपने प्रयोजन के लिए जिन साम्राजिक नागरिक सेवाओ का निर्माण किया था उनसे मुख्य लाभ किन्हें हुआ ? निश्चय ही सबसे ज्यादा एव स्पष्ट लाभ उठाने वाले इन साम्राज्यों के वे उत्तराधिकारी राज्य थे जिनमे ऐसी कीमती विरासत का उपयोग करने की बुद्धि थी। इनकी सूची म हम पश्चिम के रोमी साम्राज्य के उत्तराधिकारी राज्यों का नाम देते हैं। इन्होंने साम्राजिक सिविल सर्विस से कुछ ज्यादा शिक्षा नहीं ग्रहण की बल्कि उसे छिन्न भिन्न कर दिया। इससे ज्यादा सबक उन्होंने चच से लिया क्योंकि वे उसी के अनुगामी हो गये थे। किन्तु हम देखते हैं कि यह चच स्वय ही रोमी सिविल सर्विस का एक लाभानुभोगी था। लाभानुभोगी उत्तराधिकारी राज्यों की सूची को पूर्ण किये बिना

भी इन पक्तियो के लिखने समय, यह कहा जा सकता है कि हाल मे ही बने हुए भारतीय गणराज्य तथा पाकिस्तान भारतीय ब्रिटिश सिविल सर्विस के लाभानुभोगी हैं।

किंतु सबसे महत्त्वपूर्ण लाभानुभोगी चर्च ही रहे हैं। हम देख चुके हैं कि ईसाई चर्च का सौपानिक संघटन किस प्रकार रोमी साम्राज्य के सेवक-मण्डल के आधार पर बना। इसी प्रकार का आधार थीवास स्थित अमोन रे के प्रधान पुरोहित के तत्त्वाव धान मे 'पैन इजिप्टिक' (मिस्रसमथक) चर्च ने मिस्र के नवीन साम्राज्य से प्राप्त किया। जरथुस्त्र सप्रदाय के लिए सासानी साम्राज्य ने इसी प्रकार का आधार प्रस्तुत किया। अमोन रे के प्रधान पुरोहित की सृष्टि थीबा के फैरो (Theban Pharoah) का प्रतिबिम्ब है, जरथुस्त्री प्रधान मोबद सासानी शाहशाह के समकक्ष है और पोप में उत्तर डायोक्लेटियन रोमी सम्राट से समानता पायी जाती है। लौकिक प्रशासनिक सग ठना न चर्च की उससे कही घनिष्ठ सेवा की जितनी उसके अपने साघटनिक ढाचो द्वारा हुई है। प्रशासनिक सगठना ने उनके दृष्टिकोण एव उनकी विशिष्ट प्रकृति को भी प्रभावित किया था। कुछ एसी भी घटनाए मिलती हैं जिनमे ये बौद्धिक और नतिक प्रभाव न केवल उदाहरण द्वारा बल्कि एक व्यक्ति के, जिनमे वे मूर्तिमान हो उठे थे, लौकिक सेवा से ईसाई पथ की सेवा मे स्थानान्तरित हो जाने के रूप मे प्रकट हुए।

जिन तीन ऐतिहासिक व्यक्तियो ने, पश्चिम मे कथलिक चर्च के विकास को निर्णायक मोड दिया है वे लौकिक रोमी साम्राजिक सिविल सर्विस स ही चर्च मे आये थे। एम्ब्रोसियस (जीवनकाल लगभग ३४०—९७ ई) एक एसे नागरिक सेवक का पुत्र था जो अपने पेशे के सर्वोच्च शिखर पर पहुच चुका था। भावी सन्त एम्ब्रोसे भी अपने पिता के पद चिह्नों का अनुसरण करता हुआ लीगूरिया प्रान्त एव रोमीलिया का गवनर हो गया था। सहसा ३७४ ई में जन प्रोत्साहन की एक लहर ने उसको इच्छा जाने बिना ही विश्वसनीय सरकारी सेवाकाय से हटाकर उसे मिलन के धर्माध्यक्षीय अधिकार क्षेत्र (Episcopal See) मे घसीट लिया। कसियोडोरस ने (जीवनकाल ४९०–५८५ ई) अपनी लम्बी आयु का प्रथम भाग बादशाह थियोडोरिक आस्ट्रोग्रोथ की सेवा मे रोमी (रोमन) इटली का प्रशासन करते हुए व्यतीत किया। अपने उत्तरकालीन जीवन म इटली म स्थित अपनी एक ग्राम्य सम्पत्ति का उसने सन्यासियों के आश्रम में परिवर्तित कर दिया जो मौण्ट कसिनो स्थित सट वेनेडिक्ट के आश्रम का पूरक था। सेंट बेनेडिक्ट का अनुगमन करने वाले सन्यासियो का, जो ईश्वर के प्रेम मे डूबे खेतो मे कठोर शरीर श्रम करते थे, यदि आरम्भ मे एक ऐसे कसियोडारन स्कूल स ससग न होता जो समान आदर्शों से अनुप्राणित हुआ था और जिसमे उन्हें गूढ विश्वासपूर्ण प्राचीन शास्त्रीय ग्रन्था एव धमपुरोहितो की पुस्तको की प्रतिलिपि करने का घोर मानसिक श्रम करना पडता था तो वे विकासमान पाश्चात्य ईसाई समाज के लिए वह सब न कर पाते जो उन्होंने किया। जहा तक ग्रीगोरी महान (जीवनकाल लगभग ५४० ई से ६०४ ई) का सम्बन्ध है, बहुत दिना तक नगर शासनाधिकारी (Praefectus Urbi) के रूप मे लौकिक सरकारी सेवा करने के बाद उन्होंने नौकरी छोड दी और

फसियोडोरस के उदाहरण का अनुकरण करते हुए, रोम के अपने पतृक महल म एक सन्यासी आश्रम खोल लिया और अपनी आशा एव इच्छा के विपरीत, साधु माग ग्रहण कर पोपप्रणाली के निर्माताओ म से एक हो गये। इन महान नागरिक सेवको म से हर एक ने चर्च की सेवा म वास्तविक शांति एव विश्राम प्राप्त किया तथा अपन सिविल सर्विस के जीवन म प्राप्त कुशलताए एव परम्पराएं चच की सेवा म ले आये।

मागरिकताए

चूकि सावभौम राज्य प्राय अनेक प्रतियोगी ग्राम्य राज्यो को बलात् मिलाकर बनाया जाता है, स्वभावत उसे शासक एव शासित के बीच पनी एव चौडी खाई के साथ जीवन का आरभ करना पडता है। इस खाई के एक ओर साम्राज्य निर्माण करने वाला समुदाय होता है जिसमे पूववर्ती युग के प्रतियोगी स्थानीय समुदायो के शासको के बीच रह रहकर अपन अस्तित्व के लिए होते रहने वाल लम्बे सघष स बच रहे प्रभुताशील अल्पमत के प्रतिनिधि होते हैं दूसरी ओर एक पराजित जनता पडी होती है। यह भी एक सामान्य बात है कि प्रभावशील ढग पर मताधिकार प्राप्त अग पराधीन बहुमत से भरती किये गये रगरूटो के फलस्वरूप समय बीतने के साथ-साथ अपेक्षाकृत बडा होता जाता है। किन्तु यह क्रम इस सीमा तक चला जाय कि शासक और शासित के बीच का प्रारभिक भेद पूरी तरह से मिट जाय ऐसा बहुत ही कम होता है।

हा एक उल्लेखनीय अपवाद ऐसा मिलता है जिसमे सावभौम राज्य की स्थापना के चौथाई शती के अन्दर ही समस्त जनता को मताधिकार युक्त करन के काय मे सफलता प्राप्त हुई। यह उदाहरण सिनाई (चीनी) जगत का है। दूसरे छ ग्राम्य राज्यो को पराजित करके जिस विजयी प्रतियोगी त्सिन द्वारा, २३०-२२१ ईसा-पूव मे सिनाई सावभौम राज्य की स्थापना हुई थी उसकी प्रभुता का तब अन्त हो गया जब २०७ ईसा पूव मे हान ल्यू पग द्वारा त्स इन शासक की राजधानी हसीन याग पर कब्जा कर लिया गया। इस सिनाई मावभौम राज्य की समस्त जनसख्या के राजनीतिक मताधिकार प्राप्त करने की तिथि १९६ ईसा-पूव है। यहा यह कहने की जरूरत नही है कि राजनीतिक सफलता के कारण कुछ एक झटके म सिनाई समाज का आधारभूत आर्थिक एव सामाजिक ढाचा बदल नहीं गया, वह समाज/एक लघु सुविधाप्राप्त शासक वग का समथन करने वाले कर दाता कृषकसमूह के रूप मे आगे भी बना रहा किन्तु इतना जरूर हुआ कि तब से सरकारी सिनाई स्वग मे जाने वाला रास्ता सचमुच सामाजिक वर्गों का विचार किये बिना योग्यता के लिए खुल गया।

बहुत अधिक समय तक कायशील ऐतिहासिक शक्तियो द्वारा जो सयोगकारी प्रभाव उत्पन्न होता है निश्चय ही वह किसी एक कानून का निर्माण कर सबको एक सी वैध मर्यादा प्रदान कर देने मात्र से नही पदा किया जा सकता। भारत के ब्रिटिश राज्य मे यूरोपियनो यूरेशियनो एव एशियाइयो को या इडीज के स्पेनी सामान्य मे यूरोपियनो क्रियोलो (Creoles) और 'इडियनो को एकसी मर्यादा प्रदान कर देने और दोनो मामलो म सबके एक ही मुकुट (सम्राट) की प्रजा होने पर भी शासक

एव शासित मे जो सामाजिक खाई चली आ रही थी वह कुछ बहुत कम नही हुई। इसका एक प्राचीन एव महत्वपूण उदाहरण केवल रोमी साम्राज्य क इतिहास मे ही मिलता है जहा एक समय का सुविधाप्राप्त प्रभुताशाली अल्पमत धीरे धारे अपनी पूव वर्ती प्रजाओ के समूह म मिलाकर सफलतापूवक समाप्त कर दिया गया और इस प्रकार आरम्भ मे जा खाई थी वह पट गयी। फिर यहा भी राजनीतिक समानता का महत् तत्व रोमी नागरिक को वधानिक मर्यादा प्रदान करने मात्र से नही प्राप्त हा गया। २१२ ई म करावल्ला का राज्यादश प्रचारित होने के बाद से ही राम साम्राज्य के सब मुक्त पुरुष निवासी, कुछ थोड़े अपवादो को छोड, रोमी नागरिक हो गये किन्तु तब भी जीवन की यथाथताओ को विधि-साधम्य तक लाने के लिए अगली शती मे एक राजनीनिक एव सामाजिक क्रान्ति की आवश्यकता हुई ही।

प्रिंसिपेट[1] के युग म जिस राजनीतिक समत्व की ओर रोमी साम्राज्य बढ़ा जा रहा था और जहा वह डायोक्लेटियन के समय मे पहुच गया, उसका अन्तिम लाभानुभोगी निश्चय ही कथोलिक ईसाई चच था। इस कथोलिक ईसाई चच ने रोमन साम्राज्य से द्वैध नागरिकता की महती धारणा उधार ली। यह एक वैधानिक युक्ति थी जिसके द्वारा सकुचित निष्ठाओ की निन्दा किये बिना या स्थानीय प्रथाओ का उल्लघन किये बिना ही एक व्यापक समुदाय की सदस्यता के लाभो का उपभोग किया जा सकता था। प्रिंसिपेट के ढाचे के अन्दर ही ईसाई चच बढा और प्रिंसिपेट से शासित रोमी साम्राज्य मे रोम के विश्वनगर के सभी नागरिक (महानगर मे यथायत निवास करने वाले कुछ लागा को छोडकर) किसी ऐसी स्थानीय म्युनिसि-पलिटी या नगरपालिका के भी नागरिक होते थे जो रोमी राजनिकाय (body politic) के अन्तगत होते हुए भी एक स्वायत्त शासन प्राप्त नगर राज्य होती थी और जिसम नगर राज्य स्वायत्त शासन का परपरागत यूनानी रूप ही चलता था तथा इस स्थानीय मातभूमि का अपनी सन्तति के प्रेम पर परपरागत अधिकार एव प्रभाव होता था। इसी रोमी धमनिरपेक्ष नमूने पर विकासमान एव विस्तारशील ईसाई पुरोहित वग ने एक ऐसे सघटन एव सयुक्त भावना का निर्माण किया जो एक साथ ही स्थानीय एव व्यापक दोनों थी। जिस चच के प्रति ईसाई निष्ठा रखता था वह एक *नगर विशेष का स्थानीय ईसाई समुदाय भी था और साथ ही वह कैथोलिक ईसाई* समाज भी था जिसके आलिगन म ये सब स्थानीय चच एक-सी रीति और सिद्धान्त का पालन करने के कारण समा जाते थे।

[1] अर्थात प्राक डायोक्लेटियन साम्राज्य, जिसे आगस्टस ने स्थापित किया था। आगस्टस 'प्रिंसेप्स' की उपाधि धारण करता था जिसका अथ था—'सदन (सिनेट) का नेता'।

७. सार्वभौम चर्च (धर्मसघ)

सभ्यताओं के साथ सार्वभौम चर्चों के सम्बन्ध विविध धारणाएँ

१ चर्च नासूर के रूप में

हम देख चुके है कि जब सभ्यता का क्षय हो जाता है और उसके बाद सकट काल आता है तब उसमे बहुधा सावभौम चच का जन्म होता है और वह आगामी सावभौम राज्य के राजनीतिक ढाचे के अन्दर अपने हाथ पाव फलाता है। इस अध्ययन के पिछले किसी अध्याय मे हमने यह भी देखा है कि सावभौम राज्यो द्वारा चलायी जाने वाली सस्थाओ से मुख्य लाभ उठाने वाले सावभौम चच ही रहे हैं, इसीलिए यह कोई आश्चयजनक बात नहीं है कि सावभौम राज्य के नायकगण जिनके भाग्य का सूय अस्त हो रहा हो, उसी राज्य की छाती पर एक सावभौम चच की वृद्धि देखना पसन्द न करें। इस कारण साम्राज्य शासन और उसके समथकों की दृष्टि मे चच राज्य के ह्रास के लिए उत्तरदायी एक नासूर (कसर) के रूप म दिखायी पडता है।

रोम साम्राज्य के पतन को लेकर ईसाई सवत् की दूसरी शती के अन्तिम भाग म सेलसस ने इसी प्रकार का लाछन लगाया था। तब से पश्चिम म जहा साम्राज्य मौत की घडिया गिन रहा था बराबर उसमे वृद्धि ही होती गयी। इस विरोधी भावना का विस्फोट ४१६ ई मे साम्राजिक रोम के गैलिक (फरासीसी) पुजारी और कट्टर व्रात्य (pagan) रुतीलियस नमेतियनस की निम्नलिखित कविताओ मे जो उसने मरुद्वीप को ईसाई सन्यासियो की बस्ती के रूप मे बदलते देखकर लिखी थी, मिलता है—

"ज्यों ही हम आगे बढ़े द्वीप वह दीख पडा
सागर के बीच खडा दीन हीन वेश में
मकुल जनों से जो, ज्योति को उपेक्षा कर
'सन्यासी' बने हुए यूनानी नाम धर
क्योकि वे चाहते हैं निभृत में रहना,
कोई ध्यान दे न सके जिससे उनके काय पर।
भाग्य के वरदान उन्हें भीत करते हैं
और वे डरते हैं उसके दु ख शोक से।
कसा आश्चय है, वेदना से छूटने को,

वेदना का जीवन ग्रहण ये करते हैं।
दूषित मस्तिष्क का कैसा उन्माद यह
पाप भीति-हेतु जो समस्त पुण्य
पन्थ का त्याग कर देते हैं।"[1]

अपनी यात्रा समाप्त करने के पूर्व रूतीलियस को दूसरे द्वीप में इससे भी दुःख जनक दृश्य देखने पड़े। वही द्वीप जिसने एक दिन उसके एक देशवासी को मुग्ध कर लिया था—

'गोर्गों खड़ा है देखो सागर के मध्य में
धोतीं तरगें तुग उसके चरण-तल
पीसा और साइरनस खड़े हैं दोनों पार्श्व में
चट्टानी चोटियों से आँखें फेर लेता है
यद्यपि ये स्मारक हैं पिछली विपत्ति के।
जीवित मरण का वरण किया था यहीं
मेरी जाति के एक पागल युवक ने।
उच्च वश, धन धान्य, परिणय के सूत्र सब
भूल, उन्माद में पृथिवी को छोड़कर
मिथ्या विश्वासवश आया था छिपने।
और उस अभागे दभी मानव ने सोचा झूठ
दवी स्फुलिंग है दरिद्रता में जलता।
निर्दय कशाघात अपने ही जीवन पर,
इतने किये कि क्रुद्ध देव भी न करते।
तन मूर्छाकारी मदिरा से भी हीन है
सम्प्रदाय यह जो मन मूर्छित कर देता है।"[2]

इन पक्तियों में उस ब्रात्य अभिजात वर्ग की भावनाएं बोल रही है जो रोम साम्राज्य के विनाश का कारण हेलनी (यूनानी) पन्थ की परपरागत उपासना के त्याग में देखता था।

एक अस्तगत रोमन साम्राज्य और एक अभ्युदयशील ईसाई चर्च के बीच इस विच्छेद ने एक ऐसा सवाल खड़ा कर दिया जिसने न केवल समकालीन लोगों से प्रत्यक्ष सम्बन्धित जनों की बल्कि काल की अत्यधिक चौड़ी खाई के पार दूर की घटनाओं की चिन्ता करने वाली पीढ़ी की भावनाओं को भी आन्दोलित कर दिया। जब गिबन ने अपने वक्तव्य में लिखा— मैंने बर्बरता और धर्म की विजय-कथा कही

१ रूतीलियस नेमेतियनस, सोव 'दे रेदितू सुओ' (De Reditu Suo) भाग १ पक्ति ४३६ ४६। डा जी एफ सवेज आमस्ट्रांग कृत तथा १६०७ ई में 'बेल' लन्दन द्वारा प्रकाशित अंग्रेजी अनुवाद से हिन्दी अनुवादक द्वारा अनूदित।

२ वही, पक्तियाँ ५१५ २६

है", तब उसने अपने महत् ग्रन्थ के ७१ अध्यायों को न केवल नौ शब्दों में संक्षिप्त तथा घनीभूत करके रख दिया वरन् अपने सेलसस एवं रूतीलियस के पक्ष में होने की घोषणा भी कर दी। जैसा कि उसने देखा, एन्तोनाइन युगीन यूनानी इतिहास का सांस्कृतिक शिखर सोलह शतियों के उस कालान्तर के इस पार तक अपना सिर उठाये हुए खड़ा था और उसकी दृष्टि में एक सांस्कृतिक प्राणी का प्रतिनिधित्व करता था। इसके सहारे गिबन के दादा-परदादाओं की पीढ़ी ने एक दूसरे पर्वत की ऊपरी ढलान पर चढ़ने और उस पर पांव जमाने में सफलता प्राप्त की जिस पर से यूनानी अतीत की जुड़वां चोटियां अपने सम्पूर्ण गौरव के साथ एक बार पुनः दिखायी पड़ीं।

यह दृष्टिकोण, जो गिबन के ग्रन्थ में सन्निहित है, बीसवीं शती में एक मानव विज्ञानी (anthropologist), जिनका अपने क्षेत्र में काफी ऊंचा स्थान है, द्वारा भी बड़ी स्पष्टता और तीव्रता के साथ प्रकट किया गया है

"महीयसी माता का धर्म, जिसमें अनगढ़ बर्बरता तथा आध्यात्मिक प्रेरणाओं का अद्भुत संगम था, समान प्राच्य धर्मों की बहुसंख्या में से एक था, जो सात्यवाद के उत्तरकाल में सारे रोम साम्राज्य में फैल गया था और यूरोपीय प्रजाओं को जीवन के विजातीय आदर्शों से संतृप्त (saturate) करके प्राचीन सभ्यता के सम्पूर्ण ढांचे पर कुठाराघात करता था।

"यूनानी और रोमी समाज का निर्माण इस धारणा पर हुआ था कि व्यक्ति समुदाय के और नागरिक राज्य के अधीन है। चाहे इस संसार में हो या परलोक में हो वह व्यक्ति की सुरक्षा के ऊपर राष्ट्रमण्डल (कामन वेल्थ) की सुरक्षा को प्रधानता देता था और इसे मानव कर्म का सबसे बड़ा उद्देश्य मानता था। बचपन से ही इस निःस्वार्थ आदर्श के अनुसार प्रशिक्षित होने के कारण नागरिक अपना जीवन लोक सेवा में व्यतीत करते थे और सबके सामान्य हित के लिए प्राण त्याग करने को तैयार रहते थे और यदि कभी वे इस महत् त्याग से हट जाते थे तो यह समझते थे कि अपने देश के हित पर निजी हित को प्रधानता देकर उन्होंने अत्यन्त नीचता और हीनता का कार्य किया है। प्राच्य धर्मों के फैल जाने के बाद यह सब बदल गया क्योंकि उन धर्मों ने आत्मा को ईश्वर के प्रणिधान में ले जाने और इस प्रकार उसकी निरतिशय मुक्ति को ही मानव जीवन का एकमात्र ध्येय बताया। ये ऐसे उद्देश्य थे जिनकी तुलना में राज्य की समृद्धि, क्या अस्तित्व तक, का कुछ महत्त्व नहीं रह गया। इस स्वार्थपूर्ण एवं अनैतिक सिद्धान्त का अनिवार्य परिणाम यह हुआ कि अपने आध्यात्मिक संवेगों पर अपने विचार केन्द्रित करने के लिए भक्त जनसेवा से अधिकाधिक दूर हटता गया। इसीलिए उसने अपने अन्दर इहलौकिक जीवन के प्रति तिरस्कार का भाव भी पैदा किया क्योंकि इसे वह एक महत्तर एवं सनातन जीवन के लिए तैयारी के रूप में ग्रहण करता था। पृथ्वी के प्रति अवज्ञा एवं तिरस्कार तथा स्वर्ग के ध्यान में उन्मद आनन्द से भरे संत एवं संन्यासी सर्वसाधारण की दृष्टि में, मानवता का सर्वोच्च आदर्श बन गये।

वेदना का जीवन ग्रहण ये करते हैं।
दूषित मस्तिष्क का कैसा उन्माद यह
पाप भीति-हेतु जो समस्त पुण्य
पथ का त्याग कर देते हैं।"[१]

अपनी यात्रा समाप्त करने से पूर्व रुतीलियस को दूसरे द्वीप में इससे भी दुःख जनक दृश्य देखने पड़े। वही द्वीप जिसने एक दिन उसके एक स्वदेशी को मुग्ध कर लिया था—

'गोर्गी खड़ा है देखो सागर के मध्य में
घातीं तरगें तुग उसके चरण-तल
पीसा और साइरनस खड़े हैं दोनों पार्श्व में
चट्टानी चोटियों से आँखें फेर लेता है
यद्यपि वे स्मारक हैं पिछली विपत्ति के।
जीवित मरण का वरण किया था यहीं
मेरी जाति के एक पागल युवक ने।
उच्च वंश, धन धान्य, परिणय के सूत्र सब
भूल, उन्माद में पृथिवी को छोड़कर
मिथ्या विश्वासवश आया था छिपने।
और उस अभागे दभी मानव ने सोचा झूठ,
दैवी स्फुलिंग है दरिद्रता में जलता।
निर्दय कशाघात अपने ही जीवन पर,
इतने किये कि क्रुद्ध देव भी न करते।
तन मूर्च्छाकारी मदिरा से भी हीन है
सम्प्रदाय यह जो मन मूर्च्छित कर देता है।"[२]

इन पंक्तियों में उस ग्रात्य अभिजात वर्ग की भावनाएं बोल रही हैं जो रोम साम्राज्य के विनाश का कारण हेलेनी (यूनानी) पथ की परपरागत उपासना के त्याग में देखता था।

एक अस्तगत रोमन साम्राज्य और एक अभ्युदयशील ईसाई चर्च के बीच इस विच्छेद ने एक ऐसा सवाल खड़ा कर दिया जिसने न केवल समकालीन लोगों से प्रत्यक्ष सम्बन्धित जनों की बल्कि काल की अत्यधिक चौड़ी खाई के पार दूर की घटनाओं की चिन्ता करने वाली पीढ़ी की भावनाओं को भी आन्दोलित कर दिया। जब गिबन ने अपने वक्तव्य में लिखा— "मैंने बर्बरता और धर्म की विजय-कथा कही

[१] रुतीलियस नेमेतियनस, शीर्ष 'दे रेदितू सुओ' (De Reditu Suo) भाग १ पंक्ति ४३६ ४६। डा जी एफ सवेज आमस्ट्रांग कृत तथा १६०७ ई में 'बेल' लन्दन द्वारा प्रकाशित अंग्रेजी अनुवाद से हिन्दी अनुवादक द्वारा अनूदित।

[२] वही, पंक्तियाँ ५१५ २६

है", तब उसने अपने महत् ग्रन्थ के ७१ अध्यायो को न केवल नौ शब्दो मे सक्षिप्त तथा घनीभूत करके रख दिया वरन् अपने सेरसस एव ल्यूलियस के पक्ष म होने की घोषणा भी कर दी। जसा कि उसने देखा, एन्तोनाइन युगीन यूनानी इतिहास का सास्कृतिक शिखर सोलह शतियो के उस कालान्तर के इस पार तक अपना सिर उठाये हुए खडा था और उसकी दृष्टि म एक सास्कृतिक प्राणी का प्रतिनिधित्व करता था। इसके सहारे गिबन के दादा-परदादाओ की पीढी ने एक दूसरे पवत की ऊपरी ढलान पर चढ़ने और उस पर पाव जमाने मे सफलता प्राप्त की जिस पर से यूनानी अतीत की जुडवा चोटिया अपने सम्पूर्ण गौरव के साथ एक बार पुन दिखायी पड़ी।

यह दृष्टिकोण, जो गिबन के ग्रन्थ म सन्निहित है बीसवी शती के एक मानव विज्ञानी (anthropologist), जिनका अपने क्षेत्र मे काफी ऊचा स्थान है द्वारा भी बडी स्पष्टता और तीव्रता के साथ प्रकट किया गया है

"महीयसी माता का धम, जिसमें भनगढ़ बवरता तथा आध्यात्मिक प्रेरणाओं का अद्भुत सगम था, समान प्राच्य धर्मों की बहुसख्या मे से एक था, जो वात्यवाद के उत्तरकाल में सारे रोम साम्राज्य मे फल गया था और यूरोपीय प्रजाओं को जीवन के विजातीय आदर्शों से सतृप्त (saturate) करके प्राचीन सभ्यता के सपूर्ण ढाचे पर कुठाराघात करता था।

"यूनानी और रोमी समाज का निर्माण इस धारणा पर हुआ था कि व्यक्ति समुदाय के और नागरिक राज्य के अधीन है। चाहे इस ससार मे हो या परलोक मे हो वह व्यक्ति की सुरक्षा के ऊपर राष्ट्रमण्डल (कामन वेल्थ) की सुरक्षा को प्रधानता देता था और इसे मानव कम का सबसे बडा उद्देश्य मानता था। बचपन से ही इस निस्वाथ आदश के अनुसार प्रशिक्षित होने के कारण नागरिक अपना जीवन लोक सेवा मे व्यतीत करते थे और सबके सामान्य हित के लिए प्राण त्याग करने को तयार रहते थे और यदि कभी वे इस महत त्याग से हट जाते थे तो यह समझते थे कि अपने देश के हित पर निजी हित को प्रधानता देकर उन्होंने अत्यन्त नीचता और हीनता का काय किया है। प्राच्य धर्मों के फल जाने के बाद यह सब बदल गया क्योंकि उन धर्मों ने आत्मा को ईश्वर के प्रणिधान मे ले जाने और इस प्रकार उसकी निरतिशय मुक्ति का ही मानव जीवन का एकमात्र ध्येय बताया। ये ऐसे उद्देश्य थे जिनका तुलना मे राज्य की समृद्धि, क्या अस्तित्व तक का कुछ महत्त्व नहीं रह गया। इस स्वाथपूण एव अनैतिक सिद्धान्त का अनिवाय परिणाम यह हुआ कि अपने आध्यात्मिक सवेगों पर अपने विचार केन्द्रित करने के लिए भक्त जनसेवा से अधिकाधिक दूर हटता गया। इसीलिए उसने अपने अन्दर इहलौकिक जीवन के प्रति तिरस्कार का भाव भी पदा किया क्योंकि इसे यह एक महत्तर एव सनातन जीवन के लिए तयारी के रूप मे ग्रहण करता था। पृथिवी के प्रति अवज्ञा एव तिरस्कार तथा स्वर्ग के ध्यान मे उन्मद आनन्द से भरे सन्त एव सन्यासी सवसाधारण की दृष्टि मे, मानवता का सर्वोच्च आदश बन गये।

उन्होंने अपने सामने से उस देश भक्त और नागरिक का पुराना आदर्श हटा दिया जो अपने को भूलकर जीता है और अपने देश के हित के लिए मरने को तयार रहता है। जिनकी आँखें स्वर्ग के स्वप्न-आदर्शों पर उभरती हुई प्रभु की नगरिया पर लगी थीं उन्हें स्वभावत पार्थिव नगर सूना एव तिरस्करणीय सा लगता था।

'इस प्रकार गुरुत्व का केन्द्र, कहना चाहिए कि, वर्तमान से एक भावी जीवन की ओर स्थानान्तरित हो गया। इसके कारण परलोक का जो भी लाभ हुआ हो किन्तु इसमे जरा भी सन्देह नहीं कि इस परिवर्तन से इस लोक की बहुत ज्यादा हानि हुई। राजनिकाय मे व्यापक विघटन आरम्भ हो गया। राज्य और कुटुम्ब के बन्धन शिथिल हो गये। समाज का ढांचा उसके व्यक्तिगत तत्वों के रूप में द्रवित होने लगा। फलत यह बर्बरता की गोद में जा गिरा क्योंकि सभ्यता केवल नागरिकों के क्रियात्मक सहयोग एव अपने निजी हितों को सर्वजनहित के अधीन करने की उनकी रजामन्दी पर निर्भर है। लोगों ने अपने देश की रक्षा करने और अपनी श्रेणी को जारी रखने से भी इन्कार कर दिया। अपनी आत्मा और दूसरों की आत्माओं का बचाव करने की चिन्ता मे वे भौतिक जगत को, जिसे वे पाप का मूल समझते थे, अपने चतुर्दिक नष्ट होने के लिए छोड़कर सन्तुष्ट हो गये। यह सम्मोहन हजार साल तक चलता रहा। जब मध्ययुग समाप्त हो गया तो रोमी विधि (रोमन ला), अरस्तू के दर्शन तथा प्राचीन कला एव साहित्य का पुनरुत्थान हुआ और यूरोप पुन जीवन एव आचरण के स्वजातीय आदर्शों की ओर लौट आया। सभ्यता की जय यात्रा मे लम्बे विश्राम का अन्त हो गया। अन्त मे प्राच्य आक्रमण की धारा हट गयी और अबतक वह भाटे मे पड़ी है।"[1]

जब १९४८ ई मे ये पंक्तियां लिखी जा रही हैं तब भी उसका भाटा—ह्रास चल ही रहा है और उनका यह लेखक आश्चर्य कर रहा है कि यदि उपर्युक्त शिष्ट विद्वान आज अपनी पुस्तक 'गोल्डेन बाउ' का उसके चतुर्थ सस्करण के लिए पुन शोधन करते होते तो जीवन एव आचरण के स्वजातीय आदर्शों पर यूरोप के लौट आने के उन कतिपय मार्गों के विषय मे क्या कहते जो उनके उत्तेजक अनुच्छेदों के लिखने के बाद इन इकतालीस वर्षों के बीच अपनाये गये हैं। यह सिद्ध हो चुका है कि फ्रेजर और उनके जैसे विचार रखने वाले कुछ समकालिक व्यक्ति बुद्धि-सगत एव सहिष्णु विचार के उन पाश्चात्य नवव्रात्यों (Neo Pagan) की अन्तिम पीढ़ी के लोग थे जो पहिली बार ईसाई सवत् की पन्द्रहवीं शती में इटली मे आविर्भूत हुई थी। १९५२ ई तक वे अपने दानवी, सवेगी, उत्तेजनापूर्ण उन उत्तराधिकारियों द्वारा निकाल बाहर कर दिये

[1] फ्रेजर, सर जे जी 'दि गोल्डेन बाउ' एडोनिस, ऐटिस, ओसिरिस 'स्टडीज इन दि हिस्ट्री आफ ओरियंटल रिलीजस' द्वितीय सस्करण (लन्दन १९०७ मकमिलन) पृ २५१ ५३। एक पाद टिप्पणी में ग्रन्थकार स्वीकार करते हैं कि प्राच्य धर्मों का प्रचार प्राचीन सभ्यता के पतन का एकमात्र कारण न था।

गये जो एक धर्मनिरपेक्ष पाश्चात्य समाज की पथहीन गहराइयों से निकलकर आये थे। फ्रेजर के शब्द एक दूसरी ही प्रतिध्वनि के साथ अल्फ्रेड रोजेनबर्ग की भाषा में फिर से कहे गये। फिर भी यह तथ्य तो रह ही जाता है कि रोजेनबर्ग और फ्रेजर दोनों गिबन वाले एक ही प्रतिपाद्य विषय की व्याख्या कर रहे थे।

इस अध्ययन के एक पूर्व भाग में हम पहिले ही विस्तारपूर्वक बता चुके हैं कि वस्तुतः यूनानी समाज का पतन उस पर ईसाई धर्म या अन्य किसी प्राच्यधर्म (जो ईसाई धर्म के असफल प्रतिद्वन्द्वी थे) का आक्रमण होने के बहुत पूर्व हो चुका था। जांच पड़ताल से हम इस निष्कर्ष पर पहुंच चुके हैं कि आज तक तो महत्तर धर्मों द्वारा किसी भी सभ्यता की मृत्यु का अपराध नहीं बन सका। हां, ऐसे दुःखान्त काण्ड की आगे संभावना की जा सकती है। इस सवाल के अन्तराल में पठन के लिए हमें अपनी जांच पड़ताल स्थूल विश्व से उठाकर सूक्ष्म विश्व तक, अतीत इतिहास के तथ्यों से हटाकर मानव प्रकृति के शाश्वत तत्त्वों तक ले जानी पड़ेगी।

फ्रेजर का कथन यह है कि उच्च धर्म निश्चित एवं असाध्य रूप से समाज विरोधी (Anti social) होते हैं। सभ्यता में जिन आदर्शों पर दृष्टि रहती है उनसे हटकर जब वह उच्च धर्मों द्वारा प्रतिपादित आदर्शों की ओर मुड़ जाती है तब क्या उन सामाजिक मूल्यों को क्षति पहुंचना आवश्यक है जिनके लिए खड़े होने का दावा सभ्यताएं करती हैं? क्या आध्यात्मिक और सामाजिक मूल्य एक दूसरे के विपरीत और विरोधी हैं? यदि वैयक्तिक आत्मा की मुक्ति को जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य के रूप में ग्रहण किया जाता है तो क्या सभ्यता की संरचना (Structure) की अवज्ञा होती है? फ्रेजर इन प्रश्नों का स्वीकारात्मक उत्तर देते हैं। यदि उनका उत्तर ठीक मान लिया जाय तो इसका अर्थ यह होगा कि मानव जीवन एक ऐसी दुःखान्त घटना है जिससे उद्धार संभव ही नहीं है। परन्तु इस अध्ययन के लेखक की राय में फ्रेजर का उत्तर मिथ्या था और वह उच्च धर्मों तथा मानवात्मा दोनों की प्रवृत्तियों की गलतफहमी पर आधारित था।

मनुष्य न तो एक आत्मत्यागिनी पिपीलिका है न एक असामाजिक साइक्लाप्स[1] है। बल्कि वह एक सामाजिक प्राणी (Social Animal) है जिसके व्यक्तित्व को दूसरे व्यक्तित्वों के संसर्ग से ही व्यक्त एवं विकसित किया जा सकता है। इसको उलटकर कहना चाहें तो यों कह सकते हैं कि एक व्यक्ति के सम्बन्ध-सूत्रों से दूसरे व्यक्ति के सम्बन्ध-सूत्रों के बीच उभयनिष्ठ भूमि के अतिरिक्त समाज और कुछ नहीं है। उन व्यक्तियों के कर्म-समूह के अतिरिक्त उसका कुछ भी अस्तित्व नहीं है जो केवल समाज के बीच ही जीवित रह सकते हैं। फिर अपने संगी मानवों के साथ व्यक्ति का जो सम्बन्ध होता है उसमें और ईश्वर के साथ उसके सम्बन्ध के बीच कोई असामंजस्य नहीं है। आदिकालीन मानव की आध्यात्मिक दृष्टि में कबीले के आत्मा और उसके देवों के बीच स्पष्टतः एक अन्योन्याश्रय भाव दिखायी पड़ता है जो कबीले

[1] यूनानी पुराण में वर्णित काना देवता। —अनु०

वालो को एक दूसरे से विलग करने के स्थान पर लोगो के बीच परम शक्तिमान् बन्धन का काम करता है। आस्तिकतापूर्ण समाज में ईश्वर के प्रति मनुष्य के कर्तव्य और पडोसी के प्रति उसके कर्तव्य के बीच इस सामजस्य की क्रियाशीलता का अनुसधान एव विवरण स्वय मेजर ने किया है। और जब लोगो ने ईसाइयतधारी शासक की पूजा मे समाज के लिए एक नये बन्धन की उपलब्धि करनी चाही तो विघटनशील सभ्यताओ ने भी मानो सयोग से इसकी पुष्टि की। तब क्या मेजर के कथनानुसार 'महत् धर्मों' ने इस सामजस्य को विरोध के रूप में बदल दिया? सिद्धान्त एव आचरण दोनों मे इसका उत्तर नकारात्मक ही मिलता है।

यदि हम आरभ से चलें तो पूर्वसिद्ध दृष्टिकोण के अनुसार व्यक्तियो की आध्यात्मिक कर्मशीलता के अभिकर्ता (Agent) के अलावा और किसी रूप मे कल्पना भी नही कर सकते और आध्यात्मिक कर्मशीलता का एकमात्र सभव क्षेत्र आत्मा (Spirit) एव आत्मा के सम्बन्धो के बीच ही फैला दिखायी पडता है। ईश्वर प्राप्ति के प्रयत्न में भी आत्मी एव सामाजिक कर्म का ही सपादन करता है और यदि ईश्वर का प्रेम इस दुनिया मे ही ईसा-द्वारा मानव जाति के उद्धार के रूप में क्रियान्वित हो सकता है तब मनुष्य का उस ईश्वर के कम से कम समदृश होने के प्रयत्नो मे, जिसने मानव को अपने ही प्रतिबिंब रूप मे निर्मित किया अपने मानव बन्धुओ के उद्धार के लिए अपना बलिदान करने के ईसा के उदाहरण का अनुगमन तो करना ही चाहिए। इसलिए ईश्वर की खोज मे अपनी आत्मा की रक्षा करने और पडोसी के प्रति अपने कर्तव्य का पालन करने के बीच जो परस्पर विरोध दिखायी पडता है वह मिथ्या है।

'तू अपने ईश्वर प्रभु को अपने समस्त हृदय अपनी समस्त आत्मा और अपने समस्त मन से प्रेम करेगा' यह प्रथम एव महान् धर्मादेश (Commandment) है। पर दूसरा भी इस जैसा ही है तू अपने पडोसी को अपनी ही भाति प्यार करेगा?'[१]

इससे यह सिद्ध होता है कि पृथिवी के प्रति रणोद्यत चर्च मे रहकर ऐहिक समाजो के श्रेष्ठ सामाजिक उद्देश्यो की पूर्ति उस ऐहिक समाज की अपेक्षा कही अधिक सफलता पूर्वक की जा सकती है जो इन उद्देश्यो की प्राप्ति का प्रयत्न सीधे-सीधे करता है और जिसके पास इससे ऊचा और कोई उद्देश्य नही है। दूसरे शब्दो मे इस जीवन मे वैयक्तिक आत्माओ का आध्यात्मिक विकास अपने साथ उससे कही ज्यादा सामाजिक प्रगति ले आयेगा जितनी किसी दूसरे तरीके से प्राप्त की जा सकती है। बुनियन के रूपक (पिलग्रिम्स प्राग्रेस) मे तीर्थ यात्री (Pilgrim) को लघु प्रवेश-द्वार जो सदाचरण के जीवन मे प्रवेश का मार्ग था तबतक नही मिलता जबतक उसने उसके बहुत आगे क्षितिज पर उज्ज्वल प्रकाश[२] को नही देखा। और यहा हमने जो कुछ ईसाई धर्म के

[१] मत्ती बाईस, ३७ ३६

[२] इसमें सन्देह नहीं कि 'पिलग्रिम्स प्राग्रेस' के प्रथम भाग में क्रिश्चियन और उसके

विषय में कहा है वही अन्य महत् धर्मों के विषय म भी कहा जा सकता है। एक वग के रूप म ईसाई धम का सार सभी धर्मों का सार है यद्यपि विभिन्न आखों म ये विभिन्न वातायन—जिनमे होकर ईश्वरीय ज्योति मानवात्मा मे प्रकाशित होती है—अपनी पारदर्शिता की मात्रा म या अपने द्वारा फेंकी गयी किरणो के चुनाव म कुछ अन्तर रख सकते हैं।

जब सिद्धान्त आचरण और मानव व्यक्तित्व के स्वभाव मे निकलकर इतिहास के तथ्यो के क्षेत्र म प्रवेश करते हैं तो हमारा यह सिद्ध करने का काम कि धर्मात्मा लोगो ने वस्तुत समाज की व्यावहारिक आवश्यकताओ की पूर्ति की है बडा सरल हो जाता है। यदि हम असीसी के सन्त फ्रासिस या सन्त विसण्टपाल या जान वेस्ले या डेविड लिविंगस्टोन क उदाहरण देते है तो शायद उस वस्तु को प्रमाणित करने के लिए हमे अपराधी करार दिया जा सकता है जिसे प्रदशन की कोई आवश्यकता नही है। इस लिए हम मानवो के उसी वग को लेंगे जिसको सामान्यत नियम के अपवाद रूप मे समझा और उपहास किया जाता है—मनुष्यो का ऐसा वग जो ईश्वर के नशे मे डूबे होने के साथ ही 'समाज विरोधी' भी माना जाता हो जो धर्मिष्ठ एव तिरस्कृत दोनो हो और जिस पर किसी सनकी की यह उक्ति लागू होती हो—शब्द के सबसे बुरे अथ मे एक भला आदमी, मतलब ईसाई वरागी—जसे अपने मरुस्थल म रहने वाले सन्त एन्तानी या स्तम्भवासी सन्त सादमियन। इतना तो स्पष्ट ही है कि अपने को अपने सगी मानवो से पृथक रखने म य सन्त उनसे बहुत बडी परिधि के साथ कही अधिक क्रियात्मक ससग मे आते थे जितनी बडी परिधि म लोग तब उनके निकट आते जब वे ससार स्थित होते और किसी दुनियावी पेशे म लगकर अपना जीवन व्यतीत करते। वे अपनी कुटिया मे बठे हुए भी ससार को उससे कही प्रभावशाली ढग पर हिला सके, जितना सम्राट अपनी राजधानी मे बैठा हुआ उसे हिला सकता था। यह इसीलिए कि ईश्वर के साथ सान्निध्य स्थापित करके पवित्र हो जाने का उनका निजी साधनाभ्यास एक एसा सामाजिक कम भी था जो राजनीतिक स्तर पर की गयी किसी लौकिक

दो साथियों की तीथ यात्रा एक ऐसी जीवन यात्रा (Career) है जिसे हम पवित्र व्यक्तिवाद (Holy Individualism) कह सकते हैं, किन्तु दूसरे भाग में इस धारणा का सशोधन कर दिया गया है। और हम वहां ऐसे तीथयात्रियों का वद्धिगत समुदाय देखते हैं जो न केवल अपने आध्यात्मिक लक्ष्य की ओर यात्रा कर रहे हैं वरन जो रास्ते मे एक दूसरे के प्रति लौकिक सामाजिक सेवाए भी करत चलते हैं। इस विरोधाभास न ही नोंक्सयोर नाक्स की रचना 'ज्यू द इस्पिरित' को जन्म दिया जिसमें वह प्रदर्शित करता है कि यद्यपि प्रथम भाग पवित्रवादी बुनियन की ही रचना है, दूसरा भाग ऐसे छद्म बुनियन की रचना है जिसके उपनाम के पीछे एक सक्त क्थोलिक महिला छिपी हुई है। —नाक्स, रोनाल्ड ए० 'एसेज इन सेगयर' (लन्दन, १९२८, शीड ऐण्ड वाड) अध्याय ७, 'दि आइडेंटिटी आफ सूड बुनियन।'

सामाजिक सेवा से कही अधिक शक्ति के साथ मानवों को हिला करता था।

"कभी कभी यह भी कहा जाता रहा है कि पूर्वी रोमी (East Roman) का तापसिक आदर्श अपने समय के संसार से उसका अनुवर विनिमतन मात्र था।—भिक्षादाता जान (John' The Almsgiver) की जीवनी शायद इसका कुछ निर्देश कर सकती है कि क्यों कुस्तुन्तुनिया (Byzantine) निवासी सहानुभूति और आश्रय का पूर्ण विश्वास लिए, अपनी विपत्ति और आवश्यकता के समय सहृदयता एव सान्त्वना के हित अपनी प्रेरणा से उस तपस्वी के पास गया ? प्रारम्भिक बजतियाई वैराग्य का एक महत्त्वपूर्ण अग सामाजिक न्याय के लिए उसकी तीव्र भावना और दीन तथा दलित लोगों के हित का समर्थन है।"[1]

२ चर्च कीट-कोश के रूप मे

हमने इस विचार का खडन किया है कि चर्च ऐसे नासूर हैं जो सभ्यता की जीवित शिराओ को खा जाते हैं, फिर भी हम उद्धृत अनुच्छेद के अन्त मे दिये गये फ्रेजर के इस मत से सहमत हो सकते हैं कि यूनानी समाज की अंतिम अवस्था म ईसाई धर्म की जो धारा इतना तेजी के साथ बही थी वह पिछले जमाने म बहुत क्षीण हो गयी और जो क्रिश्चियनोत्तर पाश्चात्य समाज (Post Christian Western Society) इससे उदभूत हुआ वह वैसा ही है जैसा प्राक ख्रीस्टीय यूनानी (Pre-Christian Hellenic) समाज था। इसके कारण चर्च एव सभ्यताओ के बीच के सम्बन्ध की एक दूसरी ही सभावित धारणा सामने आ जाती है। इस दृष्टिकोण को एक आधुनिक पाश्चात्य विद्वान ने निम्नलिखित अनुच्छेद मे प्रकट किया है—

"पुरातन सभ्यता नष्ट हो गयी थी दूसरी ओर, कट्टर ईसाइयों के लिए चर्च, यहूदी पादरी की भाति, जीवित एव मत के बीच खडा था जैसे इहलोक और परलोक की वस्तुओं के बीच की किसी वस्तु का द्योतक हो। वह ईसा का शरीर होने के कारण शाश्वत था—कोई ऐसी चीज जिसके लिए जिया और मरा जा सकता है। फिर भी वह उतना ही इस लोक मे था जितना कि खुद साम्राज्य था। इस प्रकार चर्च के विचार ने एक ऐसे अमूल्य स्थिर बिन्दु का निर्माण किया जिसके चतुर्दिक एक नयी सभ्यता धीरे धीरे ठोस रूप ग्रहण कर सकती थी।"[2]

इस विचार से चर्चों का मुख्य प्रयोजन समुदाय की प्रजातियो (species) को जो सभ्यता के नाम से पुकारी जाती है उस सकटपूर्ण राज्यान्तर काल मे जीवन के एक मूल्यवान कीटाणु की रक्षा करते हुए जीवित रखना है जो उस प्रजाति के एक

[1] डान ई ऍंड बनीज एन एच 'ब्रो बजटाइन सेंटस' (आक्सफर्ड १९४८), ब्लकवेल पृ० १९७ १९८।

[2] बर्किट, एफ सी 'अर्ली ईस्टन क्रिश्चियनिटी' (लन्दन १९०४, मरे) पृ० २१० ११।

नश्वर प्रतिनिधि के विनष्ट होने एव दूसरे के जन्म लेने के बीच म आता है। इस प्रकार चच सभ्यताओ की जनन प्रणाली का एक भाग बन जाता है और उस अण्ड, कीट डिम्ब और कीट कोश के रूप मे एक तितली से दूसरी तितली के बीच काय करता रहता है। इस अध्ययन के लेखक को यह स्वीकार करना पडा था कि इतिहास म चर्चों की इस भूमिका के सरक्षकीय दृष्टिकोण से उसे बहुत वषा तक सन्तोप रहा है।[1] और अब भी उसका विश्वास है कि कीट-कोश (Chrysalis) के रूप म उसके काय की धारणा, नासूर वाली धारणा के विपरीत, बहुत दूर तक ठीक है। किन्तु साथ ही उसका यह भी विश्वास हो चुका है कि चर्चों के बारे में यह बात केवल एक सत्यांश को प्रकट करती है। अब हमें इसी सत्यांश की परीक्षा करनी है।

यदि हम उन सभ्यताओ पर दृष्टि डालते हैं जो १९५२ ई० तक जीवित थी तो हमें यह दिखायी पडता है कि उनमें से प्रत्येक की पाश्व भूमि में एक सार्वभौम चच अवश्य रहा है जिसके द्वारा वह पुरातन पीढी की किसी सभ्यता से सम्बद्ध थी। पाश्चात्य एव सनातन ईसाई सभ्यताए ईसाई चच के माध्यम-द्वारा यूनानी सभ्यता से सम्बद्ध थी। सुदूर पूर्वीय सभ्यता महायान द्वारा सिनाई (चीनी) सभ्यता से सम्बद्ध थी। इसी प्रकार हिन्दू सभ्यता हिन्दू धम द्वारा भारतीय (इण्डिक) सभ्यता से तथा ईरानी एव अरबी सभ्यताए इस्लाम के जरिये सीरियाई सभ्यता से सम्बद्ध थी। इन सभ्यताओ के धाम कीट-कोश के रूप में चच थे तथा विनष्ट सभ्यताओ के बचे हुए विविध जीवाश्म (Fossils), जिनकी चर्चा हम इस अध्ययन के किसी पूव भाग म कर चुके हैं, सब के सब ईसाई पौरोहित्यिक कवच के अन्दर सुरक्षित रहे। उदाहरण के लिए हम यहूदियो एव पारसियो के नाम ले सकते है। ये जीवाश्म वस्तुत चच के ऐसे कीट-कोश थे जो अपनी तितलियां को जन्म देने में असफल रहे।

हम आगे जिन उदाहरणो का सर्वेक्षण करने जा रहे हैं उनसे पता लगेगा कि जिस प्रक्रिया-द्वारा सभ्यता अपनी पूववर्ती (सभ्यता) के साथ सम्बद्ध हो जाती है, कीट कोश रूपी चच की दृष्टि से उसकी तीन अवस्थाए होती हैं जिन्हे हम गर्भाधानिक

[1] आध्यात्मिक दृष्टि से सवेदनशील किसी प्राणी मे यही विचार आत्मतृप्ति के स्थान पर एक विषण्ण भावना का सृष्टि करते हैं, 'ज्यो ही प्राचीन (क्लासिकल) सभ्यता का पतन हुआ, ईसाई धम ईसामसीह का वह गरिमापूण धम नहीं रह गया वह विघटित होते हुए विश्व के लिए सामाजिक सीमेण्ट (मिलनकारी तत्त्व) के रूप में एक उपयोगी धम बन गया। इस प्रकार, अन्धकार युग के बाद पाश्चात्य यूरोपीय सभ्यता के पुनजन्म मे उसने सहायता की। अबतक वह नाम के लिए ऐसे चतुर और अशान्त लोगों का धम बना हुआ है जो इसके आदर्शों के प्रति मौलिक आस्था प्रकट करना भी छोडते जा रहे हैं। जहा तक उसके भविष्य का सम्बन्ध है कौन भविष्यवाणी कर सकता है?" बार्नेस, ई डब्ल्यू, 'दि राइज आव क्रिश्चियनिटी' (लन्दन, १९४७, लॉगमेंस ग्रीन) पृ० ३३६।

(conceptive), गर्भाधानिक (gestative) एवं प्रसवकारक (parturient) नाम दे सकते हैं। इन तीन अवस्थाओं को हम कालक्रमानुसार पुरातन सभ्यता की विघटनावस्था, राज्यान्तरकाल (interregnum) और नूतन सभ्यता का उद्भव कहकर भी पुकार सकते हैं।

सम्बद्धता की प्रक्रिया की गर्भाधानिक अवस्था तब शुरू होती है जब चर्च अपने चतुर्दिक फैले इहलौकिक परिवेश द्वारा प्राप्त संयोगों को ग्रहण कर लेता है। इस परिवेश का एक लक्षण यह होना है कि सार्वभौम राज्य अनिवार्यतः उन आर्थिक संस्थाओं एवं जीवन निधियों को निष्क्रिय बना चुका होता है जो अपनी विकासावस्था में, और संकट काल में भी समाज को जीवनी शक्ति देती थी। सार्वभौम राज्य का प्रयोजन है—प्रशांति। किन्तु उससे आगे होने वाली राहत की भावना शीघ्र ही नैराश्य भावना से विजड़ित हो जाती है, क्योंकि जीवन अपने को किसी स्थान पर रोककर ही अपनी रक्षा नहीं कर सकता। ऐसी स्थिति में एक उन्नीयमान चर्च प्रवाहहीन लौकिक समाज के प्रति यह सेवा करके स्वयं अपना भाग्य निर्माण कर सकता है जिसकी उसे तुरन्त आवश्यकता है। वह मानव जाति की बद्ध शक्तियों के लिए नये स्रोतों का उद्घाटन कर सकता है। रोमन साम्राज्य में—

'ईश्वरवाद पर ईसाई धर्म की विजय ने वक्ता को अलंकृत वक्तृत्व के लिए नये नये विषय और तार्किक को विवाद के लिए नये विचार दिये। इन सब बातों के भी ऊपर उसने एक नया सिद्धान्त निकाला जिसका कार्यशील होने का अनुभव समाज के प्रत्येक भाग में किया गया। उसने गतिहीन समूहों को अन्दर से हिला दिया। उसने एक अमर्यादित साम्राज्य की जड़ जनता में तूफानी जनतन्त्र के तीव्र मनोभाव जगा दिये। धर्म द्रोह के भय ने वह कर दिखाया जो उत्पीड़न की भावना ने नहीं किया था। जो लोग एक अत्याचारी से दूसरे अत्याचारी के हाथ भेड़ों की तरह लिए दिये जाने के अभ्यस्त थे, उन्हें उसने आन्दोलन में निष्ठा के साथ भाग लेने वाले आदमियों और दृढ़ विद्रोहियों के रूप में बदल दिया। वाणी के जो स्वर युगों से मौन थे ग्रिगोरी के व्यासपीठ से गूंज उठे। फिलिप्पी के मैदानों से जो भावना, जो प्रेरणा मर चुकी थी वह एथेनेसियस और एम्ब्रासे में पुनः जीवित हो उठी।''[१]

इसमें जैसी वाग्मिता है वैसा ही सत्य भी है किन्तु इसकी विषय-वस्तु वही दूसरी या गर्भकालिक है। प्रथमावस्था ने जिसमें विजय के पूर्व का संघर्ष था सामान्य स्त्री पुरुषों को एक महान बलिदान का हर्षोन्मत्त अवसर प्रदान किया—वही अवसर जो संकट काल के निवारक के रूप में रोमी साम्राज्य द्वारा अपने सार्वभौम राज्य की निर्जीव शान्ति थोपने के पूर्व उनके पूर्वजों के गौरव एवं दुःख का कारण हुआ था। इस प्रकार गर्भाधानिक अवस्था में चर्च स्वयं वह ऊर्जस्विता

१ मेकाले, लार्ड 'मिसलेनियस राइटिंग्स' में 'इतिहास' (लन्दन, १८६०, लांगमैंस ग्रीन, २ भाग) भाग १, पृ० २६७

प्राप्त करता है जिसे राज्य न तो मुक्त कर सकता था, न जिसका उपयोग ही कर सकता था। फिर वह ऐसे नवीन स्रोतो की रचना करता है जिनके द्वारा लोग अपने को प्रकट कर सकते हैं। इसके बाद जो गर्भकालिक अवस्था आती है उसमे चर्च की कारवाइयो मे अतिशय वृद्धि होती है। 'ऐसे बहुत से आदमियो को, जो लौकिक प्रशासन मे अपनी प्रतिभा के लिए कोई अवसर नही पा सके थे, वह अपनी सेवा मे ले लेता है। इस उदीयमान सस्था की ओर लोग खूब आकर्षित होते हैं और जिस गति से विघटनशील समाज का ह्रास एव पतन होता है उसी मात्रा मे इसकी गति एव विस्तार मे घटी-बढी होती है। उदाहरण के लिए, विघटनशील सिनाई सभ्यता मे यूरेशियन यायावरो-द्वारा पद-दलित पीत नद द्रोणी (Yellow River Basin) मे महायान को यागत्सी द्रोणी की अपेक्षा अधिक सफलता प्राप्त हुई, यागत्सी मे तो वह बहुत दिनो तक प्रवेश ही नहीं कर पाया। यूनानी जगत् मे चतुर्थ शती मे लातीनी रग मे ढले हुए (लटिनाइज्ड) प्रातवासी ईसाई धर्म में आ गये। यह घटना ठीक उस समय हुई जब सरकार का केन्द्र कुस्तुनुनिया चला गया, और सरकार ने पश्चिमी प्रातो को छोड ही दिया। विघटित होते हुए भारतीय जगत् मे हिन्दू धर्म की प्रगति के सम्बन्ध मे भी यही बात दिखायी देती है।

इस्लामी पुराण कथाओ की एक विचित्र किन्तु अभिव्यक्तिमयी कल्पना मे कहा गया है कि पैगम्बर हजरत मुहम्मद ने एक मेढे या दुम्बे की शक्ल मे परिवर्तित होकर उस्तरे की धार के समान पतले एक पुल को बडे विश्वासपूर्वक पार कर लिया था जो मुह फाडे हुए नरक (दोजख) की खाई के बीच से स्वर्ग तक पहुँचने का एक मात्र रास्ता था। इतिहास की वीरतापूर्ण स्थिति मे चर्च की उपमा इसी काल्पनिक घटना से दी जा सकती है। उस इस्लामी रूपक मे यह भी कहा गया है कि जिन नास्तिको या काफिरो ने खुद अपने पाव पर भरोसा करके इस साहसिक कार्य मे भाग लिया वे निश्चित रूप से अगाध गर्त मे गिर गये। केवल वही मानवात्माए उस रास्ते को पार कर सकी जिन्हे अपने पुण्य या निष्ठा के पुरस्कार स्वरूप मेढे के बालो से सुन्दर किलनियो का रूप धारण कर चिपकने का अवसर दिया गया। जब रास्ता पार कर लिया गया तो चर्च की इस तारक सेवा की गर्भकालिक स्थिति समाप्त हुई और प्रसवावस्था आ गयी। अब चर्च और सभ्यता के क्रिया कलाप बिलकुल उलट जाते हैं और जिस धर्म ने गर्भाधानिक अवस्था में पुरातन सभ्यता से जीवनी शक्ति ग्रहण की थी और गर्भकालिक अवस्था मे राज्यान्तरकाल के तूफानों के बीच रास्ते को पार किया था वही अपने गर्भ मे अकुरित नवीन सभ्यता को जीवन शक्ति प्रदान करने लगता है। हम धर्म के तत्त्वावधान मे इस सर्जनात्मक शक्ति को लौकिक धाराओ मे सामाजिक जीवन के आर्थिक, राजनीतिक एव सास्कृतिक क्षेत्रो पर बहती हुई देखते हैं।

आर्थिक स्तर पर प्रसवकारी सार्वभौम चर्च ने नवीन निर्मित सभ्यता को जो *सबसे आकर्षक और आज भी वर्तमान रिक्थ का दान किया था उसे समका-*लिक पाश्चात्य जगत के आर्थिक पराक्रम मे देखा जा सकता है। अब एक नवीन

धर्म निरपेक्ष समाज पाश्चात्य कैथोलिक ईसाई धर्म से अण्डीट से लम्बे काल तक संघर्ष करने के बाद आए। जो बाहर निकलने में समर्थ हुआ तब से चौथाई सहस्राब्दी बीत चुकी है फिर भी पाश्चात्य औद्योगिकी का उद्भव एवं दावी उत्तरण अब भी देखने में पाश्चात्य ईसाई आश्चर्यजनक का एक गौण फल या उपसृष्ट सा लगता है। इस प्रकार भौतिक प्रभाव की मनोवैज्ञानिक जोर शरीर-श्रम के कर्तव्य एवं गरिमा में निष्ठा मात्र थी—'परिश्रम सम्मानित है' (Laborare est orare)। यूनानी धारणा यह थी कि श्रम ओछा और हेय है उससे यह क्रान्तिकारी अतिक्रमण कर लेना और उसे स्थापित कर देना सम्भव ही न होता यदि सन्त बेनेडिक्ट के आदेश से वह पवित्र न मान लिया गया होता। इसी नींव पर बेनेडिक्ट के सम्प्रदाय ने पाश्चात्य आर्थिक जीवन के कृषि-सम्बन्धी मूलाधार की स्थापना की थी और इसी आधारिक कार्य ने सिस्टर्शियन सम्प्रदाय को औद्योगिक अधिरचना (Superstructure) के लिए एक आधार दिया जिसे उनके विवेक-संचालित श्रम ने खड़ा कर दिया था। परन्तु जब इस वायुनिर्मित टावर आफ बेबेल ने निर्माताओं के इहलौकिक पड़ोसियों के हृदयों में लोभ उत्पन्न कर दिया और यह लोभ इस सीमा तक पहुंच गया कि वे अपने को रोक न सके तब इस स्थिति का अन्त हो गया। सन्यासी आश्रमों की लूट ही आधुनिक पाश्चात्य पूंजीवादी अर्थ-व्यवस्था के उद्भव का एक कारण थी।

जहां तक राजनीतिक क्षेत्र का सवाल है इस अध्ययन के किसी पूर्व भाग में हम पोप प्रणाली को एक ऐसे ईसाई लोकतन्त्र (Republica Christiana) की ढलाई करते देख चुके हैं जिसने मानव जाति को आश्वस्त कर दिया था कि वह एक साथ ही ग्राम राज्य और सार्वभौम राज्य दोनों का लाभ उठाती हुई भी दोनों की हानियों से बची रह सकती है। धार्मिक राज्याभिषेक द्वारा स्वतन्त्र राज्यों की राजनीतिक मर्यादा को आशीर्वाद देकर पोपतन्त्र (पपसी) राजनीति के जीवन में पुन वही अनेकता एवं विविधता ला रहा था जो यूनानी समाज की विकासावस्था में बड़ी फलदायिनी सिद्ध हुई थी। इसके साथ ही जिस राजनीतिक अनैक्य एवं विरोध के कारण यूनानी समाज का सर्वनाश हुआ था उसे दूर करने और नियन्त्रण में रखने के लिए पोपतन्त्र ने सबके निर्णयों को अधिशासित करने के आध्यात्मिक अधिकार का दावा किया था। पोपतन्त्र ने रोमी साम्राज्य का धर्मशास्त्रीय उत्तराधिकारी होने के कारण ही यह दावा किया। एक धर्मनेता के पथ प्रदर्शन में लौकिक ग्राम राजाओं को मिल जुलकर एक में रहना था। कई शताब्दियों की परख और गलती के बाद यह राजनीतिक धार्मिक प्रयोग असफल हो गया। इस असफलता के कारणों के विषय में हम इस अध्ययन के पिछले किसी भाग में चर्चा कर चुके हैं। यहां तो प्रसवावस्था में ईसाई चर्च ने जो भूमिका सम्पादित की उसी को याद रख लेना है और इसे भी स्मरण रखना है कि ब्राह्मण धर्माचारी वर्ग ने उन्नीयमान हिन्दू सभ्यता के राजनीतिक संगठन के लिए इसी प्रकार की भूमिका ग्रहण की थी। ब्राह्मणों ने राजपूत वंशों को इसी प्रकार विहित बना लिया जैसे ईसाई चर्च ने क्लोविस और पेपिन के प्रति किया था।

जब हम सनातन (कट्टर) ईसाई जगत् (आर्थोडाक्स क्रिश्चियेनडम) में ईसाई चर्च तथा सुदूर पूर्व में महायान ने जो राजनीतिक भूमिका संपादित की उसकी परीक्षा करते हैं, तब हम देखते हैं कि इन दोनों समाजों में चर्च का कार्य क्षेत्र पूर्वगामी सभ्यता के सार्वभौम राज्य के प्रेत का आवाहन कर सीमित कर दिया गया है—हान साम्राज्य में सुई एवं तांग के तथा सनातन ईसाई जगत् के मुख्य निकाय में रोमी साम्राज्य के पूर्व रोमी (ईस्ट रोमन या बजनियाई) पुनरुत्थान के प्रेत द्वारा। सुदूर पूर्वी समाज में महायान ने अपने लिए एक नया स्थान पा लिया जैसे अगल-बगल अस्तित्व रखने और एक ही जनता की आध्यात्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाले अनेक धर्मों तथा दर्शनों के समूह में एक वह भी हो। किंचित् संकोचपूर्वक वह सुदूर पूर्वीय समाज के जीवन को आच्छादित करता रहा। संस्कृत मत परिवर्तन द्वारा कोरिया और जापान का सुदूर-पूर्वीय जीवन प्रणाली में लाने में भी उसकी देन है। उसने इस क्षेत्र में जो काम किया उसकी तुलना पाश्चात्य कैथोलिक चर्च-द्वारा हंगरी, पोलैंड और स्कैण्डेनेविया को पाश्चात्य ईसाई तंत्र में खींच लाने से की जा सकती है। इसी प्रकार पूर्वी सनातन चर्च (ईस्टर्न आर्थोडाक्स चर्च) द्वारा रूस की धरती पर सनातन ईसाई सभ्यता का एक अंकुर रोपने के कार्य से भी उसकी तुलना हो सकती है।

जब हम उदीयमान सभ्यताओं के प्रतिप्रसवकारी चर्चों की राजनीतिक देन से उनकी सांस्कृतिक देन की ओर जाते हैं तो हम उदाहरण-स्वरूप देखते हैं कि महायान यद्यपि राजनीतिक क्षेत्र से भगा दिया गया किन्तु वह संस्कृति के क्षेत्र में बड़े प्रभावपूर्ण ढंग से फिर जम गया। बौद्ध दर्शन की आदिकालीन विचारधारा में जो कालजयी बौद्धिक क्षमता थी वह महायान को उत्तराधिकार-स्वरूप प्राप्त हुई थी। दूसरी ओर ईसाई धर्म का आरम्भ उसके अपने किसी तत्त्वज्ञान के बिना ही हुआ। इसलिए उसे अपना विश्वास यूनानी विचारधाराओं की विजातीय बौद्धिक शब्दावली में सामने रखने की चतुराई करने को विवश होना पड़ा। पाश्चात्य ईसाई तंत्र में यह यूनानी बौद्धिक मिश्र धातु बारहवीं शती में अरस्तू के स्वागत से और दृढ़ हो जाने के बाद अत्यधिक प्रबल हो उठी। विश्वविद्यालयों की स्थापना और विकास करके ईसाई चर्च ने पश्चिम की बौद्धिक प्रगति में महत्त्वपूर्ण योग दिया किन्तु उसके सांस्कृतिक प्रभाव की सबसे महती देन तो ललित कलाओं के क्षेत्र में थी। यह बात इतनी प्रत्यक्ष है कि इसके लिए किसी दृष्टान्त की आवश्यकता नहीं।

कीट कोश के रूप में चर्चों ने जिस भूमिका का अभिनय किया उसका सर्वेक्षण अब हमने पूरा कर लिया है किन्तु यदि हम किसी ऐसे ऊंचे स्थान पर चढ़कर सिंहावलोकन कर सकें जहां से सभी सभ्यताएं एक दूसरे से अपने सम्बन्धों के साथ देखी जा सकती हों तो हम यह दिखायी देते देर न लगेगी कि केवल चर्च रूपी अण्डकीट ही ऐसे माध्यम नहीं हैं जिनसे कोई सभ्यता अपनी पूर्ववर्ती के साथ सम्बद्ध होती है। एक ही उदाहरण लें यूनानी समाज मिनोअन सभ्यता से सम्बद्ध था किन्तु मिनोअन जगत् के अन्दर किसी चर्च के विकसित होने और यूनानी समाज के लिए चर्च अण्डकीट प्रदान करने का कोई प्रमाण नहीं मिलता। यद्यपि प्रथम पीढ़ी की कतिपय सभ्यताओं

धम निरपेक्ष समाज पाश्चात्य क्थोलिक ईसाई चच के अन्तीट स लम्बे याल तक सघष करने के बाद अपने को बाहर निकालने में समय हुआ तब से चौथाई सह स्राब्दी बीत चुकी है फिर भी पाश्चात्य औद्योगिकी का अद्भुत एव दानवी उपकरण अब भी देखने में पाश्चात्य ईसाई आरण्यकवाद का एक गौण फल या उपसृष्ट सा लगता है। इस प्रबल भौतिक प्रासाद की मनोवनानिक नीव शरीर-श्रम के कतव्य एव गरिमा में निष्ठा मात्र थी— परिश्रम सम्मानित है' (Laborare est orare)। यूनानी धारणा यह थी कि श्रम ओछा और हेय है उससे यह क्रान्तिकारी अतिक्रमण कर लेना और उसे स्थापित कर देना सभव ही न होता यदि सन्त बेनेडिक्ट के आदेश से वह पवित्र न मान लिया गया होता। इसी नीव पर बेनेडिक्ट के सम्प्रदाय ने पाश्चात्य आर्थिक जीवन के कृषि-सम्बन्धी मूलाधार की स्थापना की थी और इसी आधारिक काय ने सिस्टाशियन सम्प्रदाय को औद्योगिक अधिरचना (Superstructure) के लिए एक आधार दिया जिसे उनके विवेक-सचालित श्रम ने खडा कर दिया था। परन्तु जब इस 'साधुनिर्मित टावर आव बबेल' ने निर्माताओ के इहलौकिक पडोसियो क हृदयो म लोभ उत्पन्न कर दिया और वह लोभ इस सीमा तक पहुच गया कि वे अपने को रोक न सके तब इस स्थिति का अत हो गया। सन्यासी आश्रमो की लूट ही आधुनिक पाश्चात्य पूजीवादी अथ व्यवस्था के उदभव का एक कारण थी।

जहा तक राजनीतिक क्षेत्र का सवाल है इस अध्ययन के किसी पूव भाग म हम पोप प्रणाली को एक ऐसे ईसाई लोकतन्त्र (Republica Christiana) की दलाई करते देख चुके हैं जिसने मानव जाति को आश्वस्त कर दिया था कि वह एक साथ ही ग्राम राज्य और सावभौम राज्य दोनो का लाभ उठाती हुई भी दोनो की हानियो स बची रह सकती है। धार्मिक राज्याभिषक द्वारा स्वतत्र राज्या की राजनीतिक मर्यादा को आशीर्वाद देकर पोपतत्र (पपसी) राजनीति के जीवन म पुन वही अनेकता एव विविधता ला रहा था जो यूनानी समाज की विकासावस्था मे बडी फलदायिनी सिद्ध हुई थी। इसके साथ ही जिस राजनीतिक अनवय एव विरोध के कारण यूनानी समाज का सवनाश हुआ था उसे दूर करने और नियत्रण मे रखने के लिए पोपतत्र ने सबके निणयो को अधिशासित करने के आध्यात्मिक अधिकार का दावा किया था। पोपतत्र ने रोमी साम्राज्य का धमक्षत्रीय उत्तराधिकारी होने के कारण ही यह दावा किया। एक धमनेता के पथ प्रदशन म लौकिक ग्राम राजाओं को मिल जुलकर एक म रहना था। कई शताब्दियो की परख और गलती के बाद यह राजनीतिक धार्मिक प्रयोग असफल हो गया। इस असफलता के कारणो क विषय में हम इस अध्ययन के पिछले किसी भाग में चर्चा कर चुके हैं। यहा तो प्रसवावस्था मे ईसाई चच न जो भूमिका सपादित की उसी को याद रख लेना है और इसे भी स्मरण रखना है कि ब्राह्मण धर्माचारी वग ने उन्नीयमान हिन्दू सभ्यता के राजनीतिक सगठन क लिए इसी प्रकार की भूमिका ग्रहण की थी। ब्राह्मणो न राजपूत वशो को इसी प्रकार विहित बना लिया जस ईसाई चच न क्लोविस और पपिन के प्रति किया था।

जब हम सनातन (कट्टर) ईसाई जगत् (आर्थोडाक्स क्रिश्चियेण्डम) मे ईसाई चच तथा सुदूर पूव म महायान ने जो राजनीतिक भूमिका सपादित की उसकी परीक्षा करते हैं, तब हम देखते हैं कि इन दोनो समाजो म चच का काय क्षेत्र पूवगामी सम्यता के सावभौम राज्य के प्रेत का आवाहन कर सीमित कर दिया गया है—हान साम्राज्य मे सुई एव त' आग के तथा सनातन ईसाई जगत् के मुख्य निकाय मे रोमी साम्राज्य के पूव रोमी (ईस्ट रोमन या बजनियाई) पुनरुत्थान के प्रेत द्वारा। सुदूर पूर्वी समाज मे महायान ने अपने लिए एक नया स्थान पा लिया जैसे अगल-बगल अस्तित्व रखने और एक ही जनता की आध्यात्मिक आवश्यकताओ की पूर्ति करने वाले अनेक धर्मों तथा दशनो के समूह म एक वह भी हो। किंचित सकोचपूवक वह सुदूर पूर्वीय समाज के जीवन को आच्छादित करता रहा। मस्कृत मत परिवतन द्वारा कोरिया और जपान को सुदूर-पूर्वीय जीवन प्रणाली म लाने म भी उसकी देन है। उसन इस क्षेत्र म जो काम किया उसकी तुलना पाश्चात्य कथोलिक चच-द्वारा हगरी पोलैंड और स्कैण्डेनेविया को पाश्चात्य ईसाई तत्र म खीच लाने से की जा सकती है। इसी प्रकार पूर्वी सनातन चच (ईस्टन आर्थोडाक्स चच) द्वारा रूस की धरती पर सनातन ईसाइ सम्यता का एक अकुर रोपन के काय से भी उसकी तुलना हो सकती है।

जब हम उदायमान सम्यताओं के प्रतिप्रसवकारी चर्चों की राजनीतिक देन से उनकी सास्कृतिक देन की ओर जाते हैं तो हम उदाहरण-स्वरूप देखते हैं कि महायान यद्यपि राजनीतिक क्षेत्र से भगा दिया गया किन्तु वह सस्कृति के क्षेत्र म बडे प्रभावपूर्ण ढग से फिर जम गया। बौद्ध ध्यान की आदिकालीन विचारधारा म जो कालजयी बौद्धिक क्षमता थी वह महायान को उत्तराधिकार-स्वरूप प्राप्त हुई थी। दूसरी ओर ईसाइ धम का आरम्भ उसके अपने किसी तत्त्वज्ञान के बिना ही हुआ। इसलिए उसे अपना विश्वास यूनानी विचारधाराओ की विजातीय बौद्धिक शब्दावली म सामने रखने की चतुराई करने को विवश होना पडा। पाश्चात्य ईसाई तत्र मे यह यूनानी बौद्धिक मिश्र धातु बारहवी शती मे अरस्तू के स्वागत से और दृढ हो जाने के बाद अत्यधिक प्रबल हो उठी। विश्वविद्यालयों की स्थापना और विकास करके ईसाई चच ने पश्चिम की बौद्धिक प्रगति मे महत्त्वपूर्ण योग दिया किन्तु उसके सास्कृतिक प्रभाव की सबसे महती देन तो ललित कलाओ के क्षेत्र मे थी। यह बात इतनी प्रत्यक्ष है कि इसके लिए किसी दृष्टान्त की आवश्यकता नही।

कीट-कोष के रूप मे चर्चो ने जिस भूमिका का अभिनय किया उसका सर्वेक्षण अब हमने पूरा कर लिया है किन्तु यदि हम किसी ऐसे ऊचे स्थान पर चढकर सिंहाव लोकन कर सकें जहा स सभी सम्यताए एक दूसरे से अपने सम्बन्धो के साथ, देखी जा सकती हो तो हमे यह दिखायी देते देर न लगगी कि केवल चच रूपी अण्डकीट ही ऐसे माध्यम नही हैं जिनसे कोई सम्यता अपनी पूववर्ती के साथ सम्बद्ध होती है। एक ही उदाहरण ल यूनानी समाज मिनोअन सम्यता स सम्बद्ध था किन्तु मिनोअन जगत् के अदर किसी चच के विकसित होने और यूनानी समाज के लिए चच अण्डकीट प्रदान करने का कोई प्रमाण नही मिलता। यद्यपि प्रथम पीढी की कतिपय सम्यताओ

के आन्तरिक श्रमजीवियों में उच्च धर्म का कोई-न-कोई आदिम रूप विकसित हुआ था (संभव है कि अन्य सभ्यताओं में भी विकसित हुआ हो और आधुनिक शोध को उसका ज्ञान न हो) किन्तु यह स्पष्ट है कि इन अतीत गुंथों में से कोई ऐसा नहीं था जो आगामी सभ्यता के लिए कुशल कीट-कोश का काम कर सके। इस प्रकार के जितने भी दृष्टान्त उपलब्ध हैं उनकी निरीक्षा करने से पता चलता है कि दूसरी पीढ़ी की कोई भी सभ्यता यूनानी, सीरियाई, भारतीय इत्यादि किसी चर्च के माध्यम-द्वारा अपनी पूर्ववर्ती सभ्यता से सम्बद्ध नहीं थी। जितने भी सार्वभौम चर्चों का हमें पता है वे सब दूसरी पीढ़ी की सभ्यताओं के विघटित होते हुए सामाजिक निकायों के अन्तर्गत ही विकसित हुए थे। तीसरी पीढ़ी की कोई भी सभ्यता, यद्यपि उनमें से कई ध्वस्त हो गयी हैं और विघटित होती जा रही हैं (सभी के साथ ऐसा हो सकता है), सार्वभौम चर्चों की दूसरी फसल पैदा करने का विश्वसनीय प्रमाण नहीं दे पा रही है।

इसलिए हमारे सामने जो ऐतिहासिक शृंखला या मालिका है उसे हम निम्नलिखित रूप में लिपिबद्ध कर सकते हैं —

आदिकालीन समाज
प्रथम पीढ़ी की सभ्यताएं
दूसरी पीढ़ी की सभ्यताएं
सार्वभौम चर्च
तीसरी पीढ़ी की सभ्यताएं

इस सारणी को ध्यान में रखते हुए अब हम इस सवाल पर विचार करने की स्थिति में हैं कि चर्च सभ्यता की एक विशेष पीढ़ी की उत्पादक सुविधाओं के अतिरिक्त भी कुछ हैं या नहीं हैं।

३ चर्च समाज की महत्तर प्रजाति (स्पीशी) के रूप में

(क) एक नया वर्गीकरण

अभी तक हमने यह मानकर काम किया है कि सभ्यताएं इतिहास में नेतृत्व करती रही हैं और चाहे विघ्न (नासूर) रूप में या सहायक (कीट-कोश) के रूप में हो, चर्चों का स्थान अधीनता का या गौण रहा है। अब हम अपने दिमाग को इस संभावना की ओर खुला रखकर देखें कि चर्च नेता भी हो सकते हैं और सभ्यताओं के इतिहास की कल्पना तथा व्याख्या उनकी अपनी नियति के रूप में नहीं वरन धर्म के इतिहास पर उनके प्रभाव के रूप में की जानी चाहिए। यह विचार नूतन एवं विरोधाभासपूर्ण मालूम होगा, परन्तु आखिर इतिहास को पाने-समझने का यही तरीका तो उस ग्रन्थ समूह में अपनाया गया है जिसे हम बाइबिल के नाम से पुकारते हैं।

इस विचार से हमें सभ्यता के मुख्य प्रयोजन के सम्बन्ध में अपनी पूर्व-मान्यताओं में संशोधन करना पड़ेगा। अब हमें सोचना पड़ेगा कि दूसरी पीढ़ी की सभ्यताएं इसलिए अस्तित्व में नहीं आयीं कि अपने लिए सफलताएं प्राप्त करें, न इसलिए जन्मी

कि तीसरी पीढी म भी अपने प्रकार का फिर से उत्पादन कर बल्कि वे केवल इसलिए अस्तित्व म आयी कि पूर्णत विकसित महत्तर धर्मों को जन्म लेने के लिए एक अवसर प्रदान करें। और चूँकि इन महत्तर धर्मों का जन्म मध्यकालिक सभ्यताओ के ध्वस एव विघटन के फलस्वरूप होता है इसलिए उनके इतिहासो के अन्तिम अध्यायो को—उन अध्यायो को जो उनके दृष्टिबिन्दु से असफलता की कहानी कहते हैं महत्त्व का स्थान दे। इस विचार प्रणाली के अनुसार हमे यह भी मान लेना होगा कि प्रारम्भिक या आदिमकालीन सभ्यताए भी उसी प्रयोजन की पूर्ति के लिए अस्तित्व म आयी हैं, यद्यपि वे अपने उत्तराधिकारियो की तरह पूर्णत विकसित महत्तर धर्मों को जन्म न दे सकी। उनके आन्तरिक श्रमजीवी वर्गों के अविकसित आदिम उच्च धर्म—तम्मुज एव ईश्तर की उपासना तथा ओसिरिस एव ईसिस की उपासना—फूल फल न पाये। फिर भी इन सभ्यताओ ने माध्यमिक या दूसरी पीढी की सभ्यताओ का जन्म देकर अपना जीवन लक्ष्य (मिशन) पूरा कर लिया क्योकि इन माध्यमिक सभ्यताओ से ही बाद मे पूर्ण विकसित महत्तर धर्मों का उद्भव हुआ और प्रथम सभ्यताओ की अनगढ आदि-कालिक धर्म-सामग्री ने दूसरी पीढी द्वारा उत्पन्न महत्तर धर्मों के लिए प्रेरणा का कार्य किया।

इतना देख लेने पर आदिकालिक और माध्यमिक सभ्यताओ मे एक के बाद एक होने वाले उत्थान-पतन—दूसरे सन्दर्भ मे देखें तो—एक लय के दृष्टान्त-जैसे लगते हैं जिसमे चक्र के क्रमिक आवर्तन से वह गाडी आगे बढ़ती जाती है जिसे चक्र (पहिया) उठाये हुए है। यदि हम पूछें कि एक सभ्यता के चक्रावर्तन मे अधोगामी गति धर्मरथ को आगे बढाने का साधन या कारण क्या होती है तो उसका उत्तर हम इस सत्य मे मिलेगा कि धर्म एक आध्यात्मिक क्रिया है और आध्यात्मिक उन्नति एसचाइलिस द्वारा केवल दो शब्दो म घोषित इस नियम के अधीन है—'हम पीडा से ही सीखते हैं।' यदि हम आध्यात्मिक जीवन की प्रकृति के इस सहज बोध का उस आध्यात्मिक प्रयास पर लागू करें जिसके परिणामस्वरूप ईसाई धर्म और उसके बन्धु महत्तर धर्म—महायान, इस्लाम एव हिन्दू धर्म—फूले फले तो हम तम्मुज तथा अत्तिस, एडोनिस तथा ओसिरिस के भावोद्वेगो म ईसा के भावोद्वेग की पूर्व भाकी पा सकते हैं।

यूनानी सभ्यता के ध्वस के परिणाम-स्वरूप जो आध्यात्मिक प्रसव-वेदना हुई उसी से ईसाई धर्म का जन्म हुआ था, किन्तु यह एक लबी कहानी का अन्तिम अध्याय था। ईसाई धर्म की जडें यहूदी एव जरथुस्त्रीय भूमि म थी और वे जडें भी दूसरी दो माध्यमिक सभ्यताओ—बेबिलोनियाई और सीरियाई—के पिछले ध्वस से उद्भूत हुई थी। इसराइल एव जूडा के जिन राज्यो मे जूडाइज्म (यहूदी धर्म) के कृप स्रोतो का पता चलता है, वे सीरियाई जगत् के परस्पर लडने वाले अनेक राज्यो म से दो थे और इन ऐहिक राष्ट्र-मडलों का पतन एव उनकी सम्पूर्ण राजनीतिक महत्त्वाकाक्षाओ की परिसमाप्ति ही ऐसे अनुभव थे जिनके कारण जूडा या यहूदी धर्म का जन्म हुआ और उसकी सर्वोत्तम अभिव्यक्ति 'पीडित सेवक' के उस शोकगीत[1] (elegy) मे हुई

[1] ड्यूटेरो ईसाया के विविध पद, विशेषत अध्याय ५३ के पद

जा एकेमीनियाई साम्राज्य की स्थापना के पूव सीरियाई सकटकाल के अतिम दिना म छठी शती इसा-पूव लिखा गया था ।

किन्तु इतने से भी हम कहानी के आरभ तक नही पहुचते क्योकि ईसाई धम की जूडियाइ या यहूदी जड की भी अपना मूसाई जड थी और इसराइल या जूडा के धम की यह पगम्बर स पूव की अवस्था भी एक और पूववर्ती लौकिक विपदा—मिस्र के उस नूतन साम्राज्य के विध्वस—का परिणाम थी जिसके आन्तरिक श्रमजीवी वग म इसरायली लोग उनकी अपनी ही परम्पराओ के अनुसार जबरन भर्ती किये जाते थ । इही परम्पराओ म कहा गया है कि उनके इतिहास के मिस्री काण्ड के पूव सुमेरी दीक्षा हो चुकी थी जिसम एक सत्य ईश्वर से दवी सदेश पाकर अब्राहम ने अपन को विनष्ट सामाजिक नगर उर स किसी प्रकार मुक्त किया । यह बात सुमरी सभ्यता क विघटन काल के बीच म किसी समय की है । इस प्रकार उस आध्यात्मिक प्रगति मे जिसकी परिणति ईसाई धम म जाकर हुई प्रथम पग इतिहासनो को नात किसी न किसी सावभौम राज्य के पतन क साथ परम्परागत रूप स जुडा हुआ है । इस दृश्य भूमिका पर ईसाई धम एक एसे आध्यात्मिक विकास की चरम परिणति के रूप म दिखायी पडता है जो एक पर एक आन वाल लौकिक सकटा क बाद भी न केवल जीवित रहा वरन उनसे एक पुञ्जीभूत प्रेरणा भी प्राप्त की ।

इस दृष्टि से धम का इतिहास एकात्मक (Unitary) और प्रगतिशील दिखायी पडता है जब इसके प्रतिकूल सभ्यताओ के इतिहास अनेकताओ और पुनरावृत्तिया से पूण हैं । काल-आयाम (Time Dimension) का यह वषम्य दिक्-आयाम (Space-Dimension) म भी दिखायी पडता है । क्योकि ईसाई धम तथा अय तीना महत् धर्मो म जो ईसाई सवत् की बीसवी शती म भी जीवित हैं परस्पर उसस कही ज्यादा घनिष्ठ अनुरूपता है जो समवयस्क सभ्यताओ म एक दूसर के साथ थी । चूकि महायान म भी ईश्वर के प्रति वही दृष्टि थी जो एक आत्मोत्सगकारी त्राता (ईसा) म थी इसलिए ईसाई धम और महायान म एक दूसरे से बहुत ज्यादा अनुरूपता थी । जहा तक इस्लाम एव हिन्दू धम का प्रश्न है इनम भी ईश्वरीय प्रकृति का अन्तदशन था जिसने उनको एक विशिष्ट धम एव उद्देश्य प्रदान किया था । इस्लाम ईश्वर के एकत्व का पुन दृढीकरण था जबकि ईसाई धम इसके प्रतिकूल इस महत्त्वपूण सत्य को कम स कम ऊपर स देखने म तो दुबल करता था । हिन्दू धम न मानवीय भक्ति के एक लक्ष्य के रूप म ईश्वर के व्यक्तित्व की फिर से पुष्टि की । इसके अतिरिक्त बौद्ध दशन म इस व्यक्तित्व की प्रतिभागिक अस्वीकृति मिलती है । चारो महत् धम एक ही विषय-वस्तु के चार रूप या भद थ ।

किन्तु यदि एसा है तो फिर कम स कम जूडाई या यहूदी ध्यान स उद्भूत धर्मों ईसाई मत और इस्लाम म उस दवी एकता के सम्बन्ध म मानव की भांति कुछ दुलभ आत्माओ तक ही क्या सीमित रहा जबकि सामान्य दृष्टिकोण इसके प्रतिकूल था ? जूडाई (यहूदी) महत् धर्मो म स प्रत्येक के प्रामाणिक दृष्टिकोण म जो प्रकाश उसके निजी वातायन म आता था वही पूण प्रकाश था और अय सब साधा

म यदि अन्धकार मे नही तो गोधूलि या झुटपुटे मे ही बठे हुए थे। इनम से प्रत्येक म के प्रत्येक सम्प्रदाय ने भी अपने साथी सम्प्रदायो के प्रति यही दृष्टिकोण बना लिया। इस प्रकार विविध सम्प्रदायो ने उसी को अस्वीकार कर दिया जो सवनिष्ठ था और एक दूसरे के दावे को न मानने के कारण ही नास्तिक को ईश्वर निन्दा का अवसर मिल गया।

जब हम यह सवाल पूछते है कि क्या इस खेदजनक स्थिति के अनिश्चित काल तक चलते रहने की सभावना है तो हम खुद अपने को याद दिलानी पडती है कि इस प्रसग म "अनिश्चित काल' का अथ क्या है? हम इतना याद रखना चाहिए कि यदि मानव जाति अपनी नवाविष्कृत तकनीको या प्रविधियो को ही इस ग्रह के प्राणिजीवन की समाप्ति कर देने म नही लगाती तो मानवीय इतिहास अब भी अपने शशव मे है और उसके असख्य सहस्र वर्षों तक चलते रहने की सभावना है। इस सभावना के प्रकाश मे धार्मिक ग्राम्यता या सकीणता की वतमान अवस्था के अनिश्चित काल तक चलते रहने की बात वाहियात सी मालूम होती है। या तो विविध सम्प्रदाय निकाय (चच) और धम गुर्राते हुए एक दूसरे को तबतक नष्ट करते रहेंगे जबतक कि उनम से किसी का भी अस्तित्व शेष रह जायगा या फिर एक सग्रथित मानव जाति धार्मिक एक्य मे अपनी मुक्ति प्राप्त करेगी। हम अब यह देखना है कि क्या हम, भले अस्थायी रूप से सही, उस भावी ऐक्य की प्रकृति की कल्पना कर सकते हैं?

अपनी प्रकृति के ही कारण निम्न कोटि के धम स्थानीय होते हैं। वे कबीलो या ग्राम्य राज्यो के धम होते हैं। जब सावभौम राज्यो की स्थापना हो जाती है तब इन छोटे धर्मों का प्रयोजन समाप्त हो जाता है और विस्तृत क्षेत्रो म बडे छोटे धम लोगो को धर्मान्तर द्वारा अपने में मिलाने की प्रतियोगिता करने लगते है। इस प्रकार धम व्यक्तिगत रुचि का विषय हो जाता है। इस अध्ययन म हम एकाधिक बार यह देख चुके हैं कि किस प्रकार विविध धम उस पुरस्कार के लिए प्रतियोगिता म शामिल हुए जिसे रोम साम्राज्य मे ईसाई धम ने जीतकर प्राप्त किया। यदि एक ही क्षेत्र मे—इस बार विश्वभर म—अनेक धर्मों के धर्मोपदेशक धम परिवतन की दिशा म नवीन उत्साह से, फिर एक साथ काम करना शुरू कर देंगे तो उसका परिणाम क्या होगा? एकेमीनियाई, रोमी, कुषाण, हान एव गुप्त साम्राज्यो के इसी प्रकार के क्रियाकलाप के इतिहास देखने से मालूम पडता है कि ये परिणाम दो प्रकार के हो सकते हैं—या तो उनमे एक धम सब पर हावी हो जाता है या फिर प्रतियोगी धम एक दूसरे के साथ साथ रहने के लिए राजी हो जाते हैं, जसा कि सिनाई और भारतीय जगत् मे हुआ। ये दोनो परिणतियाँ एक दूसरे से उतनी भिन्न नही जितनी ऊपर से दिखायी पडती हैं क्योंकि विजयी धम प्राय अपने प्रतियोगियों की प्रमुख विशेषताओं को अपनाकर ही विजय प्राप्त करते रहे हैं। विजयी ईसाई धम पन्थ में साइबील एव ईसिस ने ही प्रभु की महिमामयी माता मेरी के रूप म अपने को फिर से व्यक्त किया है। इसी प्रकार मिस्र एव सोल इन्विक्टस की ही कल्पनाओं म हम ईसा का युयुत्सु रूप देखत

हैं। इसी तरह विजयी इस्लाम में पथ म एक निर्वासित ईश्वरावतार देव रूप मे पूजित अली क आवरण मे पुन दिखायी पडता है और निषिद्ध मूर्ति-पूजा खुद धर्म सस्थापक द्वारा मक्का स्थित काबा में सग-असवद की अंधपूजा पुन पवित्र कर दिये जाने के रूप म अपने को फिर स दृढ़ कर लेती है। फिर भी इन दोनो वैकल्पिक परिणतियो म महत्त्वपूर्ण अन्तर है और पाश्चात्य रग म रगी बीसवी शती के जगत के बच्चे अपने भविष्य के मामले म उदासीन नही रह सकते।

तब किस परिणाम की आशा अधिक है? जब जूडाई (यहूदी) मूल वाले महत्त धर्मों का प्रसार हुआ तो उनमे बडी असहिष्णुता फैल गयी थी किन्तु जब भारतीय क्षेत्र म भारतीय धर्मों की स्वाभाविक विशषता का प्राधान्य था तो जिओ और जीने दो ही सामान्य नियम था। इस विषय म उत्तर का निर्णय महत् धर्मों के मार्ग म आने वाले प्रतियोगियो की प्रकृति पर निर्भर करता है।

एक बार यह यहूदी अन्तर्दृष्टि कि 'ईश्वर प्रेम है' स्वीकार कर लेने और उसे घोषित कर देने के बाद ईसाई धर्म ने फिर ईर्ष्यालु ईश्वर वाली असगत यहूदी धारणा क्या मान्य की? यह प्रत्यागमन जिसके कारण ईसाई धर्म तब से आज तक बराबर भयानक आध्यात्मिक क्षति उठाता आया है, वह मूल्य था जो ईसाई धर्म को सीजर की पूजा के प्रति अपने जीवन-मरण सघर्ष म विजयी होने के लिए चुकाना पडा था। और इस सघर्ष मे चर्च की विजय हो जाने के कारण जो शान्ति स्थापित हुई उसम भी यहोवा और ईसा के असगत सहयोग का अन्त नहीं हुआ बल्कि और दृढ हो गया। विजय की घडी म ईसाई शहीदो की दृढता ईसाई उत्पीडको की असहनशीलता म बदल गयी। ईसाई धर्म के इतिहास का यह प्रारम्भिक अध्याय बीसवी शती की पश्चिमी हवा म बहती हुई दुनिया के आध्यात्मिक भविष्य के लिए अपशकुन-सूचक है क्योंकि जिस तिमिंगिल (विशालाकार सामुद्रिक जीव, Leviathan) की पूजा को प्रारम्भिक ईसाई चर्च ने ऐसी पटकान दी थी कि वह अन्तिम या निर्णायक जान पडती थी, उसी ने सब सत्ता-सम्पन्न राज्य के रूप म उत्पन्न होकर अपने को फिर से दृढ कर लिया, इस पर उस राज्य से सघटन और यन्त्रीकरण की आधुनिक पाश्चात्य प्रतिभा ने पशाचिक विचक्षणता क साथ इसलिए सहयोग किया कि मानवो की आत्माओ और शरीरो को इस सीमा तक गुलाम बना ले जिस सीमा तक अतीत के बुरी से बुरी आकाक्षा रखने वाले किसी अत्याचारी ने कभी कल्पना भी न की होगी। ऐसा मालूम पडता है जैसे पाश्चात्य रग म रगती जा रही आधुनिक दुनिया म ईश्वर और सीजर के बीच फिर लडाई लडनी पडेगी और उस समय युयुत्सु चर्च के रूप में सेवा करने का नैतिक दृष्टि से सम्मानपूर्ण परन्तु आध्यात्मिक दृष्टि से खतरनाक कर्तव्य ईसाई मत को एक बार फिर पूरा करना पडेगा।

इसलिए जो ईसाई ईसवी सवत् की बीसवी शती में पैदा हुए हैं उन्हें इस सभावना की कल्पना करनी होगी कि सीजर-पूजा के साथ द्वितीय युद्ध में शायद ईसाई चर्च को पुन यहोवा-पूजा को ग्रहण करना और इस प्रकार पीछे लौटना पडेगा जबकि अभी पहिली बार की त्रुटि की पूर्ति हो नही हो पायी है। फिर भी यदि उन्हें इसम विश्वास

है कि व्यथित ईसा में साकार हुए प्रेम रूप ईश्वर का प्रकाश अन्त में पाषाण हृदया को रक्त-मास के हृदयो मे बदल देगा तब वे राजनीतिक दृष्टि से सयुक्त विश्व में धर्म के भविष्य की झाकी देखने का साहस कर सकते है—उस विश्व में जो ईसाई देवाभिव्यक्ति द्वारा यहावा तथा सीजर दोना की पूजा से मुक्त हो चुका होगा।

जब ईसाई सवत् की चौथी शती की समाप्ति होते होते विजयी चर्च ने उन लोगो को उत्पीडित करना शुरू किया जिन्होंने उसमे शामिल होने से इकार किया तो व्रात्य साइम्माचुस ने उसका विरोध किया। उसके विरोध म निम्नलिखित शब्द भी थे—'इतने महत रहस्य की आत्मा तक केवल एक ही मार्ग से नही पहुचा जा सकता। इस वाक्य म व्रात्य अपने ईसाई उत्पीडको की अपेक्षा ईसा के अधिक निकट है। उदारता अन्तर्दृष्टि की माता है और सत्य ईश्वर तक पहुचने के मनुष्य के प्रयत्न म एकरूपता नही हो सकती क्योंकि मानव प्रकृति पर ईश्वर अनेकता की ऐसी मुहर लगी हुई है जो ईश्वर के सृजन कर्म का प्रमाणांक (Hall Mark) है। धर्म का अस्तित्व इसलिए है कि वह मानवात्माओ को दवी प्रकाश प्राप्त करने मे समर्थ बनाये और वह तबतक इस प्रयोजन की पूर्ति नही कर सकता जबतक वह ईश्वर के मानव उपासकों की विविधता एव अनेकरूपता को ईमानदारी के साथ प्रतिबिम्बित नही करता। इतना मान लेने पर इस बात की कल्पना की जा सकती है कि वर्तमान महत् धर्मों मे से प्रत्येक जो जीवन मार्ग उपस्थित करता है और ईश्वर के सम्बन्ध मे जो दृष्टि देता है उसकी तुलना एक मुख्य मनोवैज्ञानिक टाइप (प्रकार) से की जाय जिसकी विशिष्ट आकृति मानव ज्ञान के इस नये क्षेत्र म बीसवी शती के अग्रगामियो द्वारा क्रमश प्रकाश मे लायी जा रही है। यदि इन धर्मों मे से प्रत्येक किसी विशद रूप से अनुभव की जाने वाली आवश्यकता की सचमुच पूर्ति न करता तो इसकी कल्पना करना कठिन है कि उनमे से हर एक इतने लम्बे समय तक मानव जाति के इतने बडे अश की निष्ठा प्राप्त कर सकता। इस प्रकाश मे जीवित महत धर्मों की अनेकरूपता पथ के रोडे या विघ्नरूप में न रह जायगी बल्कि अपने को मानव मन (Human Psyche) की विविधता के एक आवश्यक उपसिद्धान्त (corollary) के रूप मे व्यक्त करेगी।

यदि धर्म के भविष्य के विषय मे इस विचार पर लोगो का दृढ विश्वास हो जाय तो इससे सभ्यता की भूमिका सम्बन्धी एक नवीन धारणा का जन्म होगा। यदि धर्म का रथ अपनी दिशा म बराबर चलता रहा तो सभ्यता के उत्थान पतन की चक्रिक और पुनरावर्तिनी गति न केवल विपरीत वर वशवर्तिनी भी रहेगी। सभव है, पृथिवी पर जन्म मरण के दुखदायी चक्र के सावधिक आवर्त्तन द्वारा रथ को स्वर्ग की ओर उठाने म वह अपने प्रयोजन की पूर्ति कर सके और अपनी महिमा का अनुभव भी कर सके।

इस सदर्श (Perspective) मे पहिली और दूसरी पीढ़ी का सभ्यताए अपने अस्तित्व के औचित्य को साफ तौर से सिद्ध कर सकती हैं किन्तु तीसरी पीढी वालियो का दावा प्रथम दर्शन म, अधिक सशयात्मक लगता है। पहिली पीढी ने, अपने पतन या ह्रास मे, महत् धर्मों के अविकसित और अनगढ़ तत्त्वो का पदा किया। दूसरी पीढी ने उस प्रजाति के चार पूर्णत विकसित प्रतिनिधियो को जन्म दिया जो अभी हमारे

लिखने के समय तक क्रियाशील है। किन्तु तीसरी पीढ़ी के आन्तरिक श्रमिक वग के उत्पादनो मे से ऐसे जिन नये धर्मों के पहिचानने की कल्पना की जा सकती है उन्होन हमारे लिखने के समय तक तो बड़ा ही हल्का अभिनय किया है। और यद्यपि, जसा कि ज्याज इलियट ने लिखा था, "भविष्यवाणी मानवी त्रुटियो म सबसे निरथक है फिर भी यह भविष्यवाणी करन म हम कोई ज्यादा खतरा नही अनुभव करते कि अत म वे किसी काम के सिद्ध नही होंगे। इतिहास की जिस धारणा को हम उपस्थित कर रहे है उसके अनुसार आधुनिक पाश्चात्य सभ्यता के अस्तित्व का एक मात्र सभव औचित्य इतना ही है कि यह इसाई धम और उसके तीन साथी धर्मों की इतनी सवा कर सकती है कि विश्वविस्तृत पमाने पर उनके लिए मिलनस्थली तयार कर दे। यह सवा वह उनके अपने सर्वोच्च मूल्यो एव विश्वासो के ऐक्य की अनुभूति उनम पदा करके कर सकती है और मनुष्य की सघटित आत्मपूजा के रूप मे व्यक्त मूर्तिपूजा की चुनौती को उन सबके सामने उपस्थित करके भी कर सकती है।

(ख) चर्चों के अतीत का महत्त्व

इस अध्याय के पिछले भाग म हमने जो स्थिति अपनायी है उस पर एक ओर तो वे सब लोग आक्रमण कर सकते हैं जो सभी धर्मों को एक बहाना एव मनगढ़न्त कल्पना मानते है और दूसरी ओर उसे उनक आक्रमण का सामना करना पड सकता है जो मानते हैं कि ये चच सदा के लिए और बिल्कुल ही उन धर्मों के अयोग्य हैं जिन्ह मानने का दावा करते हैं। पहिले वग के आक्रमण पर विचार करना तो इतिहास क इस अध्ययन के विचार क्षेत्र के बाहर है। और जब हम दूसरे वग तक अपनी सीमा मान लेते हैं तो हमे इतना स्वीकार करना ही पडता है कि हमारे आलोचक क पास अपन आरोप के लिए काफी मसाला है। उदाहरण के लिए ईसाई चच के आरम्भिक काल से अत्याधुनिक काल तक के नेताओ का विचार करने पर मालूम पडता है कि उन्होंने अपने पथ से विरत हो यहूदियो के पौरोहित्य तथा फारसीपन यूनानियो क बहुदेववाद एव मूर्तिपूजा तथा रोमनो से उत्तराधिकार मे प्राप्त सुविधा-सम्पन्न वर्गों का कानूनी समथन करने की वृत्तियो को ग्रहण कर अपने ही सस्थापक (ईसा) को अस्वीकार किया है। दूसरे धम भी इस बिना पर कुछ कम आलोच्य नही रहे हैं।

यद्यपि इन असफलताओ को क्षमा नहीं किया जा सकता किन्तु विक्टोरिया युग क एक हाजिर जवाब बिशप की वक्रोक्ति द्वारा उनकी सफाई दी जा सकती है। जब उसस पूछा गया कि पादरी लोग इतन मूख क्यो होते हैं तो उसन कहा— आप और क्या आशा कर सकते हैं ? हम लोगों को अपादरियों से ही तो उन्हें लेना पडता है। चच सन्तो स नही पापियो से ही मिलकर बने हैं और किसी भी समय के किसी भी समाज म स्कूलों की भांति ही चच भी उस समाज के बहुत आगे नहा हो सकते जिस समाज म वे रहते, चलते फिरते और अपना अस्तित्व रखते हैं। किन्तु विरोधी पुन आक्रमण करते हुए विक्टोरिया युग के उस बिशप को कटु उत्तर दे सकता है कि चच ने अपादरी या गृहस्थ वग म जो चुनाव किया है वह मलाई या सार (क्रीम) नही

तलछट है। आधुनिक पाश्चात्य जगत् मे ईसाई चर्च के विरुद्ध राजनीतिक दृष्टिकोण वाले विरोधियों द्वारा यह एक आरोप बराबर लगाया जाता है कि वह प्रगति के चक्र मे केवल पाचे या अवरोध का काम करता रहा है।

"जैसे ही सत्रहवीं शती के आगे पाश्चात्य ईसाई जगत (Western Christendom) से एक ख्रीष्टोत्तर पाश्चात्य सभ्यता (Post Christian Western Civilisation) का विकास हुआ त्यों ही चर्च ने धर्म निरपेक्षता या लौकिकता के प्रसार तथा नवप्राकृतवाद (Neo-Paganism) के प्रत्यावर्तन से भीत होकर धर्मनिष्ठा (Faith) और नष्ट होती हुई सामाजिक व्यवस्था दोनों को एक समझने की भूल कर दी। इस प्रकार 'उदार' (लिबरल) आधुनिकतावादी (मार्डनिस्ट) तथा वैज्ञानिक की त्रुटियों के विरुद्ध एक बौद्धिक पृष्ठरक्षी कार्रवाई (Rearguard Action) करते हुए असावधानता वश उसने राजनीतिक प्राचीनतावाद का रुख अपना लिया, सामन्तवाद, राजतन्त्र, कुलीनतन्त्र पूँजीवाद और प्राचीन तन्त्रों का आम तौर पर समर्थन करने लगा और उन राजनीतिक प्रतिक्रियावादियों का मित्र और प्राय अस्त्र बन गया जो उतने ही ईसाई विरोधी थे जितना सामान्य 'क्रान्तिकारी' शत्रु था। आधुनिक ईसाई मत के अनैतिक राजनीतिक कारनामों का यही कारण है। उन्नीसवीं शती मे उदार लोकतन्त्र की भर्त्सना करने मे उसने राजतन्त्र एव कुलीनतन्त्र का साथ दिया, बीसवीं शती में सर्वाधिकारवाद की निन्दा करने के लिए उदार लोकतन्त्र के साथ हो गया। इस प्रकार फरासीसी क्रान्ति के बाद से सदा ही वह अपने युग की राजनीति से एक पग पीछे की अवस्था मे रहा है। निश्चय ही यह आधुनिक विश्व मे ईसाई मत की मार्क्सवादी आलोचना का सारांश है। इसका ईसाई उत्तर शायद यह होगा कि जब एक विघटित होती हुई सभ्यता के भटकते हुए शूकर तीव्र गति से पतन की ओर जा रहे हों तो यह चर्च की जिम्मेदारी हो जाती है कि पशुओं के उस झुण्ड की पिछली पंक्ति की रक्षा करे और उसमे से जितनों के लिए सम्भव हो उतने पशुओं की आँखों को ढलान के ऊपर पीछे की ओर फेरने की चेष्टा करे।"[1]

जिन लोगों के लिए धर्म ख्याली पुलाव-सी चीज है उनके मत को इन आरोपों से बल प्राप्त होगा और दूसरे भी बहुत से लोगों को, जो इस दृष्टिकोण को अपना चुके है, यह बात सही मालूम होगी। दूसरी ओर इस अध्ययन के लेखक की भाँति जिन लोगों का विश्वास है कि जीवन मे धर्म सबसे महत्त्वपूर्ण वस्तु है, और जो अपने इस विश्वास के कारण बहुत दूर तक देखकर विचार करेंगे, वे एक ऐसे अतीत का स्मरण करेंगे जो यद्यपि अपेक्षाकृत अल्पकालिक है फिर भी पुरातनता के कोहरे मे जाकर धूमिल हो गया है और वे एक ऐसे भविष्य की कल्पना करेंगे जो यदि पाश्चात्य प्रौद्योगिकी के हाइड्रोजन (उद्जन) बम या ऐसे ही किसी ब्रह्मास्त्र द्वारा की जाने

[1] श्री मार्टिन वाइट द्वारा लेखक को दी गयी टिप्पणी। यह 'ए स्टडी आव हिस्ट्री' भाग ७ पृ० ४५७ पर प्रकाशित हो चुकी है।

सहायक होने के स्थान पर उसने उसमें और अड़चन पैदा कर ली है। जबतक यह मान नहीं लिया जाता कि एक ही शब्द जब दार्शनिकों और वैज्ञानिकों-द्वारा प्रयुक्त होता है और जब नबियों द्वारा उसका प्रयोग होता है तो वह एक ही वास्तविकता के सन्दर्भ में प्रयुक्त नहीं होता वरन् अनुभूति के दो विभिन्न प्रकारों के लिए भिन्नार्थ द्योतक पर एक ही शब्द के रूप में प्रयुक्त होता है।

हमने जिस समझौते का वर्णन किया है उसके परिणाम-स्वरूप देर सबेर विरोध का फिर से उठ खड़ा होना अनिवार्य है। क्योंकि जब एक बार दैवी सन्देश का सत्य विज्ञान के सत्य की भाषा में मौखिक रूप से निर्मित हो गया तो विज्ञान के आदमी ऐसे सिद्धान्त निकाय की आलोचना करने से सदा के लिए कैसे विरत हो सकते हैं जिसे विज्ञान की दृष्टि से सत्य मान लिया गया है? दूसरी ओर ईसाई मत, जब एक बार उसका सिद्धान्त बुद्धिसम्मत भाषा में निर्मित कर लिया गया विवेक के विहित अधिकार क्षेत्र के अन्तर्गत ज्ञान के प्रदेश पर अधिकार का दावा करने से हट नहीं सकता। और जब सत्रहवीं शती में एक आधुनिक पाश्चात्य विज्ञान ने यूनानी दर्शन का जादू हटाना शुरू किया और नयी बौद्धिक दिशाओं की खोज में लग गया तो रोमी चर्च की प्रथम भावना यही हुई कि चर्च के पुराने यूनानी बौद्धिक मित्र पर एक जगती हुई पाश्चात्य बुद्धि के आक्रमण के विरुद्ध निषेधाज्ञा जारी कर दे—मानो ज्योतिष की भूकेन्द्रिक परिकल्पना (थियरी) ईसाई निष्ठा का अनिवार्य भाग हो और गलीलियो द्वारा टोलेमी (Ptolemy) का संशोधन करना एक धार्मिक अपराध हो।

१६५२ ई० तक विज्ञान एवं धर्म के इस युद्ध को चलते हुए तीन सौ साल हो गये और मार्च १६३९ में हिटलर द्वारा अवशिष्ट जेकोस्लोवाकिया के विनाश के बाद ग्रेट ब्रिटेन और फ्रांस की सरकारों की जो अवस्था हुई थी वैसी ही अवस्था आज चर्च के पुरोहित अधिकारियों की है। दो सौ वर्षों से अधिक समय से चर्च देखते आ रहे हैं कि विज्ञान उनके हाथ से एक पर एक प्रदेश छीनता और हथियाता जा रहा है। सृष्टि शास्त्र जीव विज्ञान, भौतिकी, मानवशास्त्र हर एक को बारी-बारी से पकड़ कर इस प्रकार पुनर्निर्मित कर दिया गया है कि वह प्रचलित धार्मिक शिक्षण के विरुद्ध पड़ता है और इन हानियों का कोई अन्त होता भी नहीं दिखायी पड़ता। इस स्थिति में धर्म-क्षेत्र के अधिकारियों ने देखा कि चर्चों के लिए बस एक ही आशा रह जाती है कि वे पूर्ण कट्टरता या दुराग्रह को अपनायें।

रोमन कैथोलिक चर्च में १८६९ ७० में हुई वैटिकन कौंसिल के समादेशों तथा १९०७ ई० में आधुनिकतावाद के प्रति घोषित अभिशाप में कट्टरता की यह भावना व्यक्त हुई। उत्तरी अमरीका के प्रोटेस्टेण्ट चर्चों में वह 'बाइबिल बेल्ट' के मूल सिद्धान्त (Fundamentalism) के रूप में दिखायी पड़ी। इसी प्रकार इस्लामी दुनिया में वह वहाबी इद्रीस सनुसी एवं मेहदी नामक उग्र पुरातनपंथी आन्दोलनों के रूप में व्यक्त हुई। इन आन्दोलन शक्ति के नहीं दुर्बलता के ही लक्षण थे। उन्हें देखकर तो ऐसा लगा कि महत्तर धर्म पतन की ओर दौड़े जा रहे हैं।

महत्तर धर्मों पर से मानव जाति की निष्ठा के सदा के लिए लुप्त हो जाने की

सभावना अमागलिक है क्योकि घम मनुष्य की तात्त्विक वा सारभूत नक्तियो मे से एक है। जब मनुष्य धम की भुखमरी से पीडित होता है तो अपनी आध्यात्मिक निराशा मे ऐसी धातुओ से भी धार्मिक सान्त्वना प्राप्त करने की चेष्टा करता है जहा उसकी सभावना नही होती। इसका एक महत् उदाहरण प्राचीन इतिहास म है—बुद्ध के सदेश को सूत्रबद्ध करने की प्रथम चेष्टा मे सिद्धाथ गौतम क शिष्यो ने जिस नितात रूप से निर्वैयक्तिक दशन का निर्माण किया था उसी से महायान की उत्पत्ति का आश्चयजनक कायापलट काय सभव हो गया। ईसवी सवत् की बीसवी शती म पश्चिमी रग मे रगी दुनिया मे भी भौतिक माक्सवादी दशन मे इसी प्रकार के रूप परिवतन का आरम्भ दिखायी पड रहा है। यह उन रूसी आत्माओ म होता दिखायी पड रहा है जो अपने परम्परागत धार्मिक सबल से रहित कर दिये गये हैं।

जब बौद्धवाद तत्त्वज्ञान से धम मे परिवर्तित हो गया तो उसका सुखद परिणाम निकला—एक महत्तर धम। किन्तु यदि महत्तर धर्मों को क्षत्र से धकेलकर बाहर कर दिया जायगा तो यह भय है कि उस रिक्तता का स्थान निम्न कोटि के धम ले लेंगे। कतिपय देशो मे नवीन लौकिक विचारधाराओ—फासिज्म (उग्र राष्ट्रवाद) साम्यवाद, राष्ट्रीय समाजवाद आदि—के नवदीक्षित अनुयायी इतने प्रबल हो उठे कि उन्होंने सरकारो का नियत्रण अपने हाथ मे ले लिया और निदय उत्पीडन द्वारा अपने सिद्धान्तो और आचारो को लोगो पर थोप दिया। किन्तु अपनी पुजीभूत शक्ति के सर्वांग कवच म मानव की पुरानी आत्मपूजा का यह पुन स्फोट रोग की यथाथ व्यापकता का कोई अनुमान नही प्रस्तुत करता। उसका सबसे गभीर लक्षण तो यह है कि अपने को जनतात्रिक और ईसाई कहने वाले देशो मे भी आबादी के ५ भाग के धम का ५ अश आज देशभक्ति के सुदर नाम के पीछे छिपी, देवरूप म परिवर्तित समुदाय की वही आदिकालिक ग्रामयपूजा है। इसके अतिरिक्त यह पुजीभूत आत्मपूजा न तो प्रेतपूजा मात्र है, न इन पीछे पडने वाले भूत प्रेतो मे सबसे आदिम है। जितने भी आदिमकालिक समुदाय आज बच गये हैं और पाश्चात्येतर सभ्यताओ की जितनी भी आदिमकालिक कृषक जनता है और जो मानव जाति की जीवित पीढी की तीन चौथाई स कम नही है वह सब पाश्चात्य समाज के स्फीत आन्तरिक श्रमजीवीवग मे जबदस्ती भरती की जा रही है। ऐतिहासिक दृष्टान्तो के प्रकाश मे ऐसा मालूम पडता है कि पूवजो की जिन धार्मिक प्रथाओ मे दीन हीन नये रगरूटों की यह भीड अपनी धार्मिक आवश्यकताओ क लिए सन्तोष प्राप्त कर सकती है वे श्रम जीवियो के घाघ मालिको—आचार्यों नेताओ के रिक्त हृदयो म विलुप्त हो जायगी।

इससे प्रकट होता है कि धम पर विज्ञान की करारी विजय दोनो पक्षो के लिए भयावह सिद्ध होगी क्योंकि विवेक और धम दोनों ही मानव स्वभाव के आवश्यक उपादान हैं। अगस्त १९१४ म समाप्त होने वाली महयात्री के चतुर्थांश म पाश्चात्य वैज्ञानिक मानव अपने इस निश्छल विश्वास म हलका फुलका होकर सन्तरण करता रहा है कि उसे ससार को अधिकाधिक अच्छा बनाने के लिए केवल नये नये नये आविष्कार करते जाना है।

जब विज्ञान-उपासक मानव पा लेंगे कुछ और।
हम पहिले से सुखी बनेंगे जीवन मे इस ठौर।[1]

किन्तु वैज्ञानिक का विश्वास दो मूलभूत त्रुटियो के कारण दूषित हो गया। एक तो अठारहवी और उन्नीसवी शतियो म पाश्चात्य जगत मे जो अपेक्षाकृत अधिक सुख की स्थिति आयी उसे उसने अपनी उपलब्धि या सफलता मानने की गलती कर ली, फिर दूसरी गलती उसने यह मानकर की कि हाल मे प्राप्त यह सुखद स्थिति बहुत दिनो तक रहने वाली है। किन्तु वस्तुत उनके सामने स्वग की भूमि नही, मरुभूमि फैली पडी थी।

सत्य तो यह है कि अमानवीय प्रकृति पर नियत्रण का जो वरदान विज्ञान ने दिया है वह मनुष्य के लिए उससे बहुत ही कम महत्त्व का है जितन महत्त्व का खुद अपने साथ, अपने सगी मानवो के साथ और ईश्वर के साथ उसका सम्बन्ध है। यदि मानव के प्राक मानवीय पूवज को सामाजिक प्राणी बन सकने की सामथ्य न दी गयी होती और यदि आदिमकालिक मानव अपने सहकारिता के एव पूजीभूत काय करने के लिए बुद्धि की जो अनिवाय शर्तें हैं उन सामाजिकता के अनगढ तत्त्वो मे अपने को प्रशिक्षित करने की आध्यात्मिक स्थिति तक न उठा होता तो मनुष्य को सृष्टि का स्वामी बनाने का जो अवसर बुद्धि को प्राप्त हुआ वह भी न प्राप्त हुआ होता। मनुष्य की बौद्धिक एव प्रौद्योगिक सफलताए उसके लिए महत्त्वपूण रही हैं पर इसलिए नही कि खुद अपने मे उनका कोई महत्त्व है बल्कि केवल इसलिए कि एक सीमा तक उन्होंने उसे उन नैतिक प्रश्नो का सामना करने और उनका समाधान खोजन के लिए विवश किया है जिन्हें शायद दूसरी अवस्था मे वह टालता जाता। इस प्रकार आधुनिक विज्ञान ने गभीर महत्त्व के नतिक प्रश्न खडे कर दिये हैं किन्तु उन्हे हल करने की दिशा मे उसकी कोई देन नही है, न हो ही सकती है। जिन अत्यन्त महत्त्वपूण प्रश्नो का उत्तर मनुष्य को देना ही चाहिए वे ऐसे प्रश्न हैं जिन पर कहने के लिए विज्ञान के पास कुछ नही। जब सुकरात ने विश्व को प्रेरित और शासित करने वाली आध्यात्मिक शक्ति के साथ सान्निध्य स्थापित करने के लिए भौतिक विज्ञान के अध्ययन का त्याग किया था तो वह यही शिक्षा देना चाहता था।

अब हम यह देखने की स्थिति मे हैं कि धम से किस बात की आशा की जाती है। उसे विज्ञान को बौद्धिक ज्ञान का ऐसा प्रत्येक क्षेत्र---जो परपरा से धम के अन्तगत चले आ रहे हैं उन्हे भी—सुपुर्द कर देने के लिए तैयार रहना चाहिए जिन पर विज्ञान अपना अधिकार स्थापित करने मे सफल हो सकता है। बौद्धिक क्षेत्रो पर धम का परपरागत शासन एक ऐतिहासिक घटना थी, और जहा तक उस (धम) न अपने इन शासित क्षेत्रो का त्याग किया वहा तक वह लाभ मे रहा क्योंकि उनकी व्यवस्था

[1] बेलाक, एच 'एलेक्ट्रिक लाइट', एक न्यूडीगेट पुरस्कार प्राप्त व्यग्यकविता, जिसका विषय शायद आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी के अधिकारियों ने चुना था। रचना काल १८९० ई।

करना उसका काम नही था। उसका कतव्य तो ईश्वर की पूजा के सच्चे ध्येय की ओर मानव को ले जाना और उसके साथ सम्बध स्थापित करा देना है। ज्योतिष, जीवविज्ञान (Biology) तथा उपर्लिखित अय बौद्धिक क्षत्रो को विज्ञान के हाथ म देकर धम ने निश्चित रूप स कुछ प्राप्त ही किया है। यहा तक कि मनोविज्ञान (Psychology) का त्याग भी यद्यपि बडा व्यथाकारी जान पडता है, उतना ही लाभदायक सिद्ध हो सकता है जितना व्यथाजनक है, क्योकि इससे शायद वह ईसाई धमदर्शन के कुछ ऐसे आवनारिक अवगुठनो को काट सके जो अतीत काल म मानवात्मा और उसके स्रष्टा के बीच सब अवराधो से अधिक कठिन सिद्ध हुए हैं। यदि विज्ञान इतना करने म सफल हो गया तो वह आत्मा से ईश्वर को विरहित करने की जगह नियमित रूप से आत्मा को उसकी यात्रा के असीम दूरी पर स्थित लक्ष्य के एक पग निकट पहुचा देगा।

यदि धम और विनान दोनो नम्रता सीख सकें और आत्मविश्वास की रक्षा कर सकें तथा वे नम्रता और आत्म विश्वास अपने-अपने स्थान पर हो तो दोना ऐसी मन स्थिति म हो सकते हैं जो पुनर्मिलन के लिए शुभ हो और यदि यह पुनर्मिलन होना ही है तो दोनो पक्षो को इसे किसी सयुक्त काय के द्वारा प्राप्त करना होगा।

अतीत काल मे ईसाई मत एव यूनानी दशन के बीच तथा हिदू धम और *भारतीय दशन के बीच जो खीचातानी हो गयी थी, उसम दोनो पक्षो ने इस सत्य* को समझ लिया था। इन दोनो झगडो मे धार्मिक अनुष्ठान को धमदाशनिक अभि व्यक्ति प्रदान करके और दाशनिक शब्दावली मे पौराणिकता का समागम करके यथाथ सघष को बचा लिया गया था किन्तु जैसा कि हम देख चुके हैं इन दोनो मामलो मे आध्यात्मिक एव बौद्धिक सत्य के सम्बध का मिथ्या निदान करने के कारण मतिभ्रम हो गया था। उसकी स्थापना इस भ्रमात्मक मायता पर कर ली गयी थी कि आध्यात्मिक सत्य को बौद्धिक शब्दावली म सूत्रबद्ध किया जा सकता है। बीसवी शती के पाश्चात्य रग म रगी दुनिया मे हृदय और मस्तिष्क दोनो को अत मे असफल हो गये इस प्रयोग से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए।

यदि चारो जीवित महत्तर धर्मों के वरेण्य धमदशन को छोड देना और उनके स्थान पर आधुनिक पाश्चात्य विज्ञान की भाषा मे नवनिर्मित एक दशन को लागू करना *सगत होता तो भी इस प्रयोजन की सफल उपलब्धि एक पुरानी भूल की पुनरुक्ति मात्र* होती। वज्ञानिक ढग पर सूत्रबद्ध धम-दशन (यदि ऐसे धम-दशन की कल्पना सभव है) उतना ही असतोष जनक और क्षण भगुर सिद्ध होगा जितने आध्यात्मिक रूप में सूत्रबद्ध वे दशन थे जो १९५२ ई० म बौद्धो, हिदुओ ईसाइयो और मुसलमानों के गले मे चक्की के पाट की भाति बधे हुए थे। असतोषजनक वह इसलिए होगा कि बुद्धि की भाषा आत्मा की अतदृष्टि को प्रकट करने के लिए अपर्याप्त होती है क्षणभगुर वह इसलिए होगा कि बुद्धि का यह गुण ही है कि वह निरन्तर अपना आधार बदलती रहती और अपने पूववर्ती निष्कर्षों का त्याग करती रहती है।

तब धम दशन के रूप मे अपने लिए एक उभयनिष्ठ मच निर्मित करने की अपनी

ऐतिहासिक असफलता के प्रकाश मे परस्पर अनुकूल होने के लिए हृदय और मस्तिष्क को क्या करना चाहिए ? क्या किसी और अधिक आशाप्रद दिशा मे सयुक्त कारवाई के लिए कोई मार्ग है ? जिस समय ये पक्तिया लिखी जा रही थी पाश्चात्य मानव का मन, भौतिक विज्ञान की चढती हुई विजयो से, जिसमे अणु के विच्छेदन की गौरवपूर्ण सफलता ने चार चाद लगा दिये हैं, अब भी सम्मोहित है। कि तु यदि यह सत्य है कि मानवेतर प्रकृति पर मनुष्य के नियत्रण की प्रगति मे एक मील की विजय का उसके लिए इतना महत्त्व नही जितना अपने साथ, अपने सगी मानवो के साथ तथा ईश्वर के साथ व्यवहार या आचरण करने की उसकी क्षमता की वृद्धि मे एक इच की विजय का है, तो फिर इसकी कल्पना की जा सकती है कि ईसवी सवत की बीसवी शती मे पाश्चात्य मानव की सम्पूर्ण उपलब्धियो मे जो कमाल—चमत्कार—सिहावलोकन मे सबसे महत्त्व का स्थान लेगा वह है मानव प्रकृति की अन्तर्दृष्टि के क्षेत्र मे नवीन बातो की उद्भावना। समकालीन अग्रेज कवि की विदग्धतापूर्ण लेखनी से निकली कुछ पक्तियों मे एक ज्योति किरण प्राप्त की जा सकती है—

सागर के पार अब पोत नहीं जाते हैं
धरती के छोर से नवीन प्राण प्राप्त कर
भूमडल पीछे छोड यूरप के कोने मे
गृह की दिशा की ओर नाव चली आती है।
नूतन जगत की खोज के सदेशा से
मन जो तरगित है उसको सभालती।
कि तु परिवर्तन हो चाहे और कितने ही
एक विश्व फिर भी बचा है जहा कल्पना
करती विहार, जो सुदूर पडा आज भी।
जिसमे रहस्य सिंधु और हैं अनिश्चित तट,
जिसका पता है लगा मानव को हाल म।
प्रेत छाया नाचती है भय विजडित धुध है
ऐसा वह विश्व जहा नाविक नहीं जाते हैं
जिसमे प्रवेश मानस शास्त्री ही कर पाते।
भूमध्य रेखा, अक्ष-अश ध्रुव भी न जहा
जहा देशातर है न, वह विश्व कौन है ?
मानव की आत्मा का अवगुठन-युक्त वह
धूमिल विशृखलता का अद्भुत-सा विश्व है।[1]

मनोविज्ञान के राज्य मे पाश्चात्य वैज्ञानिक विचार का आकस्मिक प्रवेश अशत उन दो विश्वयुद्धो का परिणाम है जो चित्र पर विध्वसकारी प्रभाव डालने वाले अस्त्रों से लडे गये। इस प्रकार जिस अभूतपूर्व नदानिक (Clinical) अनुभव का अवसर

[1] स्किनर मार्टाइन लेटस टू मलाया ३ और ४ (लन्दन १९४३, पुटनम) प ४१ ४३

मिला उसके लिए धन्यवाद करना चाहिए क्योंकि उसी के कारण पाश्चात्य बुद्धि निरा की अवचेतन गहराइयों को भांप सकी और इस भाग को स्मरण हुआ था। सम्बन्ध में एक नयी धारणा—इस अगाध मन सागर की सतह पर मडराती हुई चिन्तन ज्योति की उपलब्धि की।

अवचेतन की उपमा एक शिशु एक जंगली, यहाँ तक कि एक ऐसे निम्न जानवर से भी दी जा सकती है जो चेतना की अपेक्षा अधिक बुद्धिमान् अधिक ईमानदार और गलतियों की ओर बहुत कम प्रवृत्ति रखने वाला हो। यह सृष्टि के आत्म रूप में पूर्ण ऐसे कार्यों में से एक है जो सदा से विश्रामस्थल हैं जब कि चेतना मानवीय व्यक्तित्व एक ऐसी अपरिमेय उच्चतर कोटि की सत्ता की ओर असीम रूप से निरत है जो स्वयं ही मानवीय चित्त के इन दो विभिन्न किन्तु अवियोज्य अंगों की रचयिता है। यदि आधुनिक पाश्चात्य मस्तिष्कों ने अवचेतन का आविष्कार केवल इसलिए किया हो कि उसमें मूर्तिपूजा का एक नया आधार मिल गया है तो वे ईश्वर के निकट जाने के एक अवसर का त्याग करके उससे और अपने बीच एक नवीन खाई की सृष्टि मात्र करेंगे। निःसन्देह इस समय उनके लिए एक सुअवसर उपस्थित है।

(घ) चर्चों के भविष्य की आशा

यदि ईसाई संवत् की बीसवीं शती में उत्पन्न पीढ़ी ऐसे दिन की आशा करे जब हृदय और मस्तिष्क परस्पर-अनुकूल हो जायेंगे तो वह हृदय और मस्तिष्क के, चर्चों के अतीत के महत्त्व के उस ज्ञान से भी सहमत हो जाने की आशा कर सकती है जो हमारी जिज्ञासा की आखिरी मंजिल अर्थात् चर्चों एवं सभ्यताओं के बीच के सम्बन्ध का एक आरम्भ बिन्दु हो सकता है। इस बात का पता लगाने के बाद कि चर्च नासूर नहीं है बल्कि घटनावश अडवीट के अलावा और कुछ नहीं है हम इस संभावना पर विचार करते रहे हैं कि क्या वे समाज की कोई उच्चतर प्रजाति (Species) तो नहीं हैं? जबतक हम यह न जान लें कि चर्चों का अतीत उनके भविष्य की संभावनाओं पर क्या प्रकाश डालता है तबतक इस प्रश्न पर हम अपना निर्णय नहीं दे सकते। और यहां सबसे पहिले हम यह बात याद रखनी है कि ऐतिहासिक काल के पैमाने पर महत्तर धर्म और जिन चर्चों में वे मूत हुए, आयु में तब भी बहुत छोटे थे। विक्टोरियन उपासना-स्थलों में लोकप्रिय एक भजन में निम्नलिखित पंक्तियां हैं—

युगों-युगों से बढ़ा जा रहा,
उसकी शुभ यात्रा का रथ है।
अब भी खीष्ट धर्मनिष्ठा से
चलता जाता अपना पथ है।
प्राणों में है प्रबल भावना,
मन में करता यही कामना
कब अपना घर दीख पड़ेगा?
मन को जब विश्राम मिलेगा।

विवरण म मिलता है कि एक अधिकारी ने अपनी भक्त-मडली को पहिली पक्तिया बदलकर गान का आदेश दिया था—

आज हुआ आरम्भ, चल पडा
उसकी शुभ यात्रा का रथ है।

इस अध्ययन के लेखक ने जो कुछ समझा है उसके हिसाब से उसके द्वारा किया परिवतन बिल्कुल तथ्यानुकूल है। आदिमकालीन समाजा की तुलना म सम्यताए केवल कल की सृष्टि हैं और महत्तर धर्मों के चच तो इन प्राचीनतम सम्यताओ से आध ही पुरान है।

चर्च की वह कौन सी विशेषता थी जिसने उसे सम्यता और आदिमकालीन समाज दोनो स भिन्नता प्रदान की और जिसने हमे चर्चों का एक ऐसे वश (Genus) की भिन्न एव महत्तर प्रजाति के रूप मे वर्गीकरण करने को बाध्य किया जिसम समाज के ये तीना प्रकार सन्निहित थे ? चर्चों का विशेष लक्षण यह था कि वे 'एक ही सत्य ईश्वर को अपना मन्तव्य मानते थे। एक सत्य ईश्वर' क साथ इस मानवी भ्रातृत्व ने, जिसे आदिमकालीन धर्मों मे पाने की कोशिश की गयी थी और महत्तर धर्मों म प्राप्त किया गया था, इन समाजो को कुछ ऐसे गुण प्रदान किये जो आदिमकालीन समाजो या सम्यताओ म नही पाये जाते थे। उसने उस विरोध पर, मनोमालिन्य पर नियत्रण स्थापित करने की शक्ति दी जो मानव समाज के बद्धमूल दुगुणो मे एक था, उसने इतिहास के प्रयोजन के प्रश्न का एक समाधान उपस्थित किया।

विरोध—मनोमालिन्य—मानव जीवन म इसलिए बद्धमूल हो गया है कि मानव ससार के उन सब पदार्थों म सबसे अनाडी है जिनका सामना करने को वह विवश होता है, पर साथ ही वह एक सामाजिक प्राणी भी है और एसा प्राणी है जिसम स्वतत्रसकल्प शक्ति है। इन दो तत्त्वा के मिश्रण का तात्पय यह है कि केवल मानव सदस्य द्वारा निर्मित समाज मे सदा ही सकल्पो का सघप होना रहेगा, और यदि मनुष्य मत परिवतन के जादू का अनुभव करे तो यह सघष आत्मघात की सीमा तक पहुच जायगा। मनुष्य की मुक्ति के लिए ही मनुष्य का मत-परिवतन आवश्यक है क्योकि उसका स्वतत्र एव अनोपणीय सकल्प, ईश्वर से विलग करने का खतरा उठाकर भी उसे उसकी आध्यात्मिक क्षमता प्रदान करता है। अवचेतन मन के स्तर से ऊपर उठने की आध्यात्मिक क्षमता से युक्त न होने के कारण प्राक् मानवी सामाजिक प्राणी को यह खतरा डावाडोल नही कर सकता था, क्योकि अवचेतन मन ईश्वर के साथ उसी प्रयासहीन सामजस्य का अनुभव करता है जिसका आश्वासन उसकी निर्दोषता सब अमानवी प्राणियों को देती है। जब ऐसे याग (Yang) के गतिमान होने से मानवीय चेतना एव व्यक्तित्व का सजन हुआ जिसम ईश्वर ने प्रकाश को अधकार से अलग कर दिया तो यह निषेधक रूप से परमानन्दपूण 'यीन' अवस्था टूट गयी। मानव की जो चेतन आत्मा अद्भुत आध्यात्मिक प्रगति की उपलब्धि के लिए ईश्वर के वाहन का काम करती है, वही ईश्वर का प्रतिबिम्ब होने के बोध के कारण जब उन्मत्त हो जाती है और अपने को ही प्रतिमा रूप मे ढाल लेती है तो अपने को शोचनीय पतन के गत

मे भी गिरा लेती है। यह आत्मघाती प्रणयोन्माद जो अहंकार के पाप की मजदूरी है, आध्यात्मिक पथभ्रष्टता मात्र है। अस्थिर संतुलन मानव व्यक्तित्व का सार है और इस अस्थिर संतुलन की अवस्था म जब आत्मा रहती है तब उसके लिए सदा ही आध्यात्मिक पथभ्रष्टता की ओर उन्मुख होने का भय बना रहता है। और यह आत्मा निर्वाण की 'यीन' स्थिति म किसी आध्यात्मिक प्रत्यावर्तन द्वारा आत्म पलायन करके नही पहुच सकती। जिस पुनरुपलब्ध यीन स्थिति म मनुष्य को मुक्ति मिलती है वह निस्तेज आत्म विनाश की शांति नही वरन् भलीभांति कसा हुआ सामजस्य है। चित्त का काय है बाल-सुलभ चीजो को छोड देने के पश्चात् बालोपम गुणो की पुनरुपलब्धि। ईश्वर क इच्छानुसार चलन और ईश्वर का अनुग्रह पान के ईश्वरदत्त सकल्प क साहसिक प्रवत्तन द्वारा आत्मा को ईश्वर के साथ फिर से वही बच्चो-जसा सान्निध्य प्राप्त करना है।

यदि मनुष्य की मुक्ति का माग यही है तो उसे बडा कठोर माग तय करना है क्योकि जिस महती सजन क्रिया ने उसे 'होमोसपियस' बनाया उसी ने उसी कलम से उसके लिए 'होमोकाकोस बनना कठिन कर दिया और जो सामाजिक प्राणी 'होमोफेबर' है उसे यदि अपने को नष्ट नही कर लेना है तो उसे सहकारितापूवक चलना ही होगा।

मानव म जो सहजात सामाजिकता है उसक कारण प्रत्येक मानव समाज प्रभावपूण रूप से सवग्राही होता है। आज १९५२ ई तक कोई भी मानव समाज सामाजिक क्रियाशीलता के प्रत्येक स्तर पर विश्वव्यापी नही हो सका, किन्तु एक लौकिक या धमनिरपेक्ष आधुनिक पाश्चात्य सभ्यता ने पिछले दिनो, तुल्य राजनीतिक एव सास्कृतिक सफलता प्राप्त किये बिना आर्थिक एव प्रौद्योगिक स्तर पर करीब करीब विश्वव्यापकता प्राप्त कर ली है और दो विश्वयुद्धो के विध्वसकारी अनुभव के बाद यह अनिश्चित ही है कि 'मार गिराओ' वाली भयानक रूप से परिचित उस नीति के बिना विश्व राजनीतिक रूप से सयुक्त हो सकेगा जो सभ्यताओ के इतिहास मे विश्वव्यापी ऐक्य का परपरागत मूल्य रही है। किन्तु किसी तरह भी मानव जाति की एकता ऐसे भद्दे और असस्कृत तरीके से नही प्राप्त की जा सकती, यह केवल ईश्वर की एकता के विश्वास के अनुसार आचरण करने और इस ऐक्कि पार्थिव समाज को ईश्वर के राष्ट्रमडल (कामनवल्थ) का एक प्रात समझने के प्रासगिक *परिणाम के रूप मे ही प्राप्त की जा सकती है।*

ईश्वर के राष्ट्रमडल के मुक्त समाज और सम्पूण सभ्यताओ मे समादृत बन्द समाज के बीच जो महती खाई है और जिस आध्यात्मिक उडान के बिना यह खाई पार नही की जा सकती, उसका चित्रण करते हुए एक आधुनिक पाश्चात्य तत्त्वचिंतक कहते हैं—

"मनुष्य का निर्माण बहुत छोटे छोटे समुदायो के लिए हुआ था। यह बात सामान्यत मानी जाती है कि आदिमकालीन समुदाय इसी प्रकार के होते थे किन्तु इतना और मानना पडेगा कि आदिमकालीन मानवात्मा का अस्तित्व बराबर कायम है, हा, वह ऐसी आदतों मे छिपा हुआ है जिसके बिना सभ्यताओं का जन्म ही न हो सकता था । सभ्य मानव आदिमकालीन मानव से मुख्यत इस

बात मे भिन्न है कि इसके पास ज्ञान का अटूट भंडार है और वे आदतें हैं जिन्हें उसने उपार्जित किया है प्राकृतिक मानव उपार्जित विशेषताओं के नीचे दब गया है, फिर भी वह मौजूद है उसमें करीब करीब कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। यह कहना गलत है कि "प्रकृति को बाहर निकालो तो वह और द्रुत गति से लौटेगी", क्योंकि आप उसे निकाल बाहर कर ही नहीं सकते। वह सदा वहां है। लोगो की यह कल्पना सत्य नहीं है कि उपार्जित विशेषताएं इन्द्रियों मे गर्भित होकर आनुवंशिक रूप से अपने को प्रकट करती हैं। भले दमित हो जाय किन्तु आदिमकालीन प्रकृति चेतना की गहराइयों मे बनी रहती है। वह अत्यन्त सभ्य समाजों मे भी खूब प्राणवती होकर रहती है। हमारे सभ्य समाज यद्यपि इस प्रकार के समाज से भिन्न हैं जिनके लिए हम मूलतः बनाये गये थे, फिर भी एक तात्त्विक बात मे उससे मिलते हैं। दोनों ही समानरूप से बन्द समाज हैं। अपनी प्रवृत्ति से हम जिन लघु मंडलियों के लिए बनाये गये हैं, उनकी तुलना मे यद्यपि सभ्यताएं बड़ी विशाल हो गयी हैं फिर भी उनमे कुछ लोगों को शामिल करने और दूसरे कुछ को निकालने की वही खासियत वर्तमान है। एक राष्ट्र, फिर चाहे वह कितना ही महान हो, और मानवता के बीच वही अन्तर है जो सीमाबद्ध और असीम मे, बन्द—बद्ध—और मुक्त मे है।

"इस बद समाज और मुक्त समाज, नगर एवं मानवता के बीच केवल मात्राभेद नहीं है, बल्कि प्रकार भेद है। राज्य की एकता केवल उसकी अपने को दूसरे राज्यों से बचाने की आवश्यकता के कारण है। आदमी अपने देश-बन्धुओं को इसलिए प्यार करता है कि वह विदेशियो से घृणा करता है। यह आदिम कालिक प्रवृत्ति है और सभ्यता के बाह्यावरण के नीचे अब भी वर्तमान है। अब भी हम अपने रिश्तेदारों और अपने पड़ोसियो के लिए प्राकृतिक प्रेम का अनुभव करते हैं। परन्तु मानवता का प्रेम एक संस्कारित रुचि है। पहली स्थिति में हम सीधे पहुंच जाते हैं, जबकि दूसरी मे सर्केडहैंड या दूसरे के द्वारा होकर पहुँचते हैं क्योंकि केवल ईश्वर के माध्यम द्वारा ही धर्म मानव को मानवजाति से प्रेम करने की स्थिति तक पहुँचाता है, ठीक वैसे ही जैसे तत्त्ववेत्ता केवल विवेक के द्वारा ही हमे मानव व्यक्तित्व की महत्ता और मनुष्यों के अधिकार का सम्मान करना सिखाते हैं। न तो पहिले, न दूसरे दृष्टान्त मे हम मानवता की धारणा तक दर्जे-बदर्जे अर्थात कुटुम्ब और राष्ट्र के रास्ते पहुँच सकते हैं।"[1]

ईश्वर के भाग लिये बिना मानवजाति की एकता हो नही सकती, जब स्वर्गीय चालक को हटा दिया जाता है, तब मनुष्य न केवल उस वैमनस्य म जा फसता है जो उसकी सहजात सामाजिकता के प्रतिकूल है वर एक दुःखदायी समस्या से भी सतप्त होता है जो उसके सामाजिक प्राणी होने के कारण उसम अन्तर्निहित है, जितना ही

[1] बर्गसां, एच 'ला दिउ सोर्सेज दला मोरेल एत दि ला रिलीजन।' (पेरिस १९३२। 'अल्कन') पृष्ठ २४ २८, २८८, २९३, २९७

म भी गिरा लेती है। यह आत्मघाती प्रणयोन्माद जो अहकार के पाप की मजदूरी है, आध्यात्मिक पथभ्रष्टता मात्र है। अस्थिर सतुलन मानव व्यक्तित्व का सार है और इस अस्थिर सतुलन की अवस्था मे जब आत्मा रहती है तब उसके लिए सदा ही आध्यात्मिक पथभ्रष्टता की ओर उन्मुख होने का भय बना रहता है। और यह आत्मा निर्वाण की 'यीन' स्थिति मे किसी आध्यात्मिक प्रत्यावतन द्वारा आत्म पलायन करके नही पहुच सकती। जिस पुनरुपलब्ध यीन स्थिति मे मनुष्य को मुक्ति मिलती है वह निस्तेज आत्म विनाश की शान्ति नही वरन् भलीभाति कसा हुआ सामजस्य है। चित्त का काय है बाल-सुलभ चीजो को छोड देने के पश्चात बालोपम गुणो की पुनरुपलब्धि। ईश्वर के इच्छानुसार चलने और ईश्वर का अनुग्रह पाने के ईश्वरदत्त सकल्प के साहसिक प्रवत्तन द्वारा आत्मा को ईश्वर के साथ फिर से वही बच्चो-जसा सानिध्य प्राप्त करना है।

यदि मनुष्य की मुक्ति का माग यही है तो उसे बडा कठोर माग तय करना है क्योकि जिस महती सजन क्रिया ने उसे 'होमोसेपियस' बनाया उसी ने उसी कलम से उसके लिए 'होमोकाकोस' बनना कठिन कर दिया और जो सामाजिक प्राणी होमोफेबर है उसे यदि अपने को नष्ट नही कर लेना है तो उसे सहकारितापूवक चलना ही होगा।

मानव म जो सहजात सामाजिकता है उसके कारण प्रत्येक मानव समाज प्रभावपूण रूप से सवग्राही होता है। आज १९५२ ई तक कोई भी मानव समाज सामाजिक क्रियाशीलता के प्रत्येक स्तर पर विश्वव्यापी नही हो सका किन्तु एक लौकिक वा धमनिरपेक्ष आधुनिक पाश्चात्य सभ्यता ने पिछले दिनो, तुल्य राजनीतिक एव सास्कृतिक सफलता प्राप्त किये बिना आर्थिक एव प्रौद्योगिक स्तर पर करीब करीब विश्वव्यापकता प्राप्त कर ली है और दो विश्वयुद्धो के विध्वसकारी अनुभव के बाद यह अनिश्चित हो है कि 'मार गिराओ' वाली भयानक रूप से परिचित उस नीति के बिना विश्व राजनीतिक रूप से सयुक्त हो सकेगा जो सभ्यताओ के इतिहास मे विश्वव्यापी ऐक्य का परपरागत मूल्य रही है। किन्तु किसी तरह भी मानव जाति की एकता ऐसे भद्दे और असस्कृत तरीके से नही प्राप्त की जा सकती यह कवल ईश्वर की एकता के विश्वास के अनुसार आचरण करने और इस एकिक पार्थिव समाज को ईश्वर के राष्ट्रमडल (कामनवेल्थ) का एक प्रान्त समझने के प्रासगिक परिणाम क रूप म ही प्राप्त की जा सकती है।

ईश्वर के राष्ट्रमडल के मुक्त समाज और सम्पूण सभ्यताओ म समादृत बन्द समाज के बीच जो महती खाई है और जिस आध्यात्मिक उड़ान के बिना यह खाई पार नही की जा सकती, उसका चित्रण करते हुए एक आधुनिक पाश्चात्य तत्त्वचिन्तक कहते हैं—

> "मनुष्य का निर्माण बहुत छोटे-छोटे समुदायों के लिए हुआ था। यह बात सामान्यत मानी जाती है कि आदिमकालीन समुदाय इसी प्रकार के होते थे किन्तु इतना और मानना पडेगा कि आदिमकालीन मानवात्मा का अस्तित्व बराबर कायम है, हां, वह ऐसी आवर्तो मे छिपा हुआ है जिसके बिना सभ्यताओं का जन्म ही न हो सकता था । सभ्य मानव आदिमकालीन मानव से मुख्यत इस

बात मे भिन्न है कि इसके पास ज्ञान का अखूट भंडार है और वे आदतें हैं जिन्हें उसने उपार्जित किया है प्राकृतिक मानव उपार्जित विशेषताओं के नीचे दब गया है, फिर भी वह मौजूद है उसमे करीब करीब कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। यह कहना गलत है कि "प्रकृति को बाहर निकालो तो वह और द्रुत गति से लौटेगी", क्योंकि आप उसे निकाल बाहर कर ही नहीं सकते। वह सदा वहा है। लोगो की यह कल्पना सत्य नहीं है कि उपार्जित विशेषताए इन्द्रियों मे गर्भित होकर आनुवंशिक रूप से अपने को प्रकट करती हैं। भले दमित हो जाय किन्तु आदिमकालीन प्रकृति चेतना की गहराइयों मे बनी रहती है। वह अत्यन्त सभ्य समाजों मे भी खूब प्राणवती होकर रहती है। हमारे सभ्य समाज यद्यपि इस प्रकार के समाज से भिन्न हैं जिनके लिए हम मूलत बनाये गये थे, फिर भी एक तात्त्विक बात मे उससे मिलते हैं। दोनों ही समानरूप से बन्द समाज हैं। अपनी प्रवृत्ति से हम जिन लघु मडलियों के लिए बनाये गये हैं, उनकी तुलना मे यद्यपि सभ्यताएँ बड़ी विशाल हो गयी हैं फिर भी उनमे कुछ लोगों को शामिल करने और दूसरे कुछ को निकालने की वही खासियत वर्तमान है। एक राष्ट्र, फिर चाहे वह कितना ही महान हो, और मानवता के बीच वही अन्तर है जो सीमाबद्ध और असीम में, बन्द—रुद्ध—और मुक्त मे है।

"इस बद समाज और मुक्त समाज, नगर एव मानवता के बीच केवल मात्राभेद नहीं है, बल्कि प्रकार भेद है। राज्य की एकता केवल उसकी अपने को दूसरे राज्यों से बचाने की आवश्यकता के कारण है। आदमी अपने देश-बन्धुओं को इसलिए प्यार करता है कि वह विदेशियों से घृणा करता है। यह आदिम कालिक प्रवृत्ति है और सभ्यता के वाह्यावरण के नीचे अब भी वर्तमान है। अब भी हम अपने रिश्तेदारों और अपने पड़ोसियों के लिए प्राकृतिक प्रेम का अनुभव करते हैं। परन्तु मानवता का प्रेम एक संस्कारित रुचि है। पहली स्थिति मे हम सीधे पहुच जाते हैं, जबकि दूसरी में सकेंडहैंड या दूसरे के द्वारा होकर पहुँचते हैं क्योंकि केवल ईश्वर के माध्यम द्वारा ही धर्म मानव को मानवजाति से प्रेम करने की स्थिति तक पहुँचाता है, ठीक वैसे ही जैसे तत्त्ववेत्ता केवल विवेक के द्वारा हो हमें मानव व्यक्तित्व की महत्ता और मनुष्यों के अधिकार का सम्मान करना सिखाते हैं। न तो पहिले, न दूसरे दृष्टान्त मे हम मानवता की धारणा तक दर्जे-बदर्जे अर्थात कुटुम्ब और राष्ट्र के रास्ते पहुच सकते हैं।"[1]

ईश्वर के भाग लिये बिना मानवजाति की एकता हो नहीं सकती, जब स्वर्गीय चालक को हटा दिया जाता है तब मनुष्य न केवल उस वमनस्य म जा फसता है जो उसकी सहजात सामाजिकता के प्रतिकूल है वर एक दु खदायी समस्या से भी सतप्त होता है जो उसके सामाजिक प्राणी होने के कारण उसमे अन्तर्निहित है, जितना ही

[1] बर्गसां, एच 'ला दिउ सोर्सेज दला मोरेल एत दि ला रिलीजन।' (पेरिस, १६३२। 'अल्कन') पृष्ठ २४ २८, २८८, २६३, २६७

वह अपनी सामाजिक प्रकृति के अनुकूल जीने का प्रयत्न करता है उतनी ही तीव्रता के साथ वह तबतक उसके सामने उपस्थित होती रहती है जबतक वह एक समाज मे अपना अभिनय करता रहता है, एक सत्य ईश्वर जिसका सदस्य नही है। समस्या यह है कि जिस सामाजिक क्रिया म मनुष्य अपने को साथक करता है वह काल एव अवकाश, समय एव व्यवधान दोनो की दृष्टि से पृथिवी पर व्यक्ति की जीवन-सीमा के आगे निकल जाती है। इस प्रकार मात्र उसम भाग लेने वाले प्रत्येक मानव व्यक्ति के दृष्टिकोण से देखने पर इतिहास एक जडमति द्वारा कही कहानी है जिसका कोई अथ नही। किन्तु जब मनुष्य उस इतिहास म एक सत्य ईश्वर के कतृत्व की भाकी पा लेता है तो बाह्य दृष्टि से देखने पर निरथक 'आवाज एव आवेग' एक आध्यात्मिक अथ ग्रहण कर लेता है।

इस प्रकार यद्यपि एक सभ्यता अस्थायी रूप से अध्ययन का बोधगम्य क्षत्र हो सकती है, ईश्वर का राष्ट्रमडल ही एक मात्र नतिक दृष्टि से सहन किये जाने योग्य कमक्षत्र है और पृथिवी पर इस 'ईश्वरीय नगर' (Civitas Dei) की सदस्यता या नागरिकता मानवात्माओ को महत्तर धर्मों द्वारा अर्पित की जाती है। यदि मनुष्य पृथिवी पर स्वेच्छापूवक ईश्वर के सहकारी के रूप म अपना अभिनय कर सकता है तो लौकिक इतिहास म वह जो खडात्मक एव क्षणभगुर भाग लेता है उससे उसे मुक्त किया जा सकता है। क्योकि स्थिति पर ईश्वर का जो प्रभुत्व है वह मनुष्य के नगण्य प्रयासो को एक दवी मूल्य एव अभिप्राय से मडित कर देता है। मनुष्य के लिए इतिहास की यह मुक्ति इतनी मूल्यवान् है कि धमनिरपेक्ष आधुनिक पाश्चात्य जगत् मे भी, इतिहास का एक प्रच्छन्न ईसाई दशन आगे होने वाले भूतपूव ईसाई बुद्धिवादियो के लिए रख छोडा गया है।

> 'चूकि बाइबिल गास्पेल्स (ईसा के सदुपदेश), सृष्टि की कथा तथा ईश्वर राज्य की घोषणा मे विश्वास रखते हैं इसीलिए ईसाइयों ने इतिहास की सकलता (Totality) का समन्वय करने का प्रयत्न किया। इसके बाद किये गये इसी प्रकार के प्रयत्नों ने केवल उस बीजातीत (Transcendent) लक्ष्य का बदल दिया जो ईश्वर के स्थानापन्न के रूप मे सेवा करने वाली विविध अन्तर्निहित नतिकता-द्वारा मध्ययुगीन समन्वय के ऐक्य का आश्वासन देता था, किन्तु प्रयास प्रधानत यही रहा, और वे ईसाई ही थे जिन्होंने सबसे पहिले इसकी कल्पना की, अर्थात् उन्होंने इतिहास की सकलता की एक बुद्धिगम्य व्याख्या की जिससे मानवता के आरभ का कारण विदित हुआ और उसके अन्त का पता चला।
>
> "समस्त कार्टेशियन प्रणाली एक ऐसे सवशक्तिमान् ईश्वर की धारणा पर आधारित है जो एक प्रकार से स्वय अपने को उत्पन्न करता है और इसलिए निणयात्मक ढग से (a fortiori) शाश्वत सत्यों की भी सृष्टि करता है जिनमे गणित के सत्य भी सम्मिलित हैं। यह असत् या शून्य से (ex Nihilo) समस्त जगत का उद्भव करता है और निरन्तर सृष्टि करते हुए उसको सुरक्षित रखता है क्योंकि इसके बिना सम्पूण वस्तुए उसी शून्य या असत भाव

(Nothingness) मे समा जायेंगी जिसमें से उसकी इच्छा ने उनको निकाला है। जरा लीबनिज के मामले पर ध्यान दो। यदि उचित ईसाई तत्वों का दमन कर दिया जायगा तो फिर उसकी विचार प्रणाली मे क्या बचेगा ? उसकी अपनी आधारिक समस्या का बयान भी नहीं—अर्थात वस्तुओं का क्रान्तिकारी उद्भव और एक स्वतन्त्र एव परिपूर्ण ईश्वर-द्वारा जगत की सृष्टि। यह एक आश्चर्य जनक और ध्यान देने योग्य तथ्य है कि यदि हमारे समयुगीन ईश्वर के नगर' और गास्पेल से उसी तरह निवेदन नहीं करते जिस तरह लीबनिज ने बिना हिचकिचा हट के किया था तो इसका कारण यह बिल्कुल नहीं है कि उन पर इनका प्रभाव नहीं पड़ा है। उनमे बहुतेरे उसी से जीते हैं जिसे भूल जाने के लिए चुनते हैं।"[१]

अतत एक सत्य ईश्वर की उपासना करने वाले समाज मे ही, उस भूतप्रेत बाधा (दुष्प्रभाव) के निवारण का आश्वासन प्राप्त हो सकता है जिसका हम इस अध्ययन के पिछले भाग मे नकल का खतरा (Perilousness of Mimesis) कहकर वणन कर चुके हैं। जसा कि हम देख चुके हैं सम्यता की सामाजिक शरीर रचना मे 'एकीलीज की एडी' (Achilles heel) उसकी (सम्यता की) अनकरण निभरता है। यह अनुकरण एक ऐसी सामाजिक क्वायद (Social Drill) के रूप में होती है जिसका उद्देश्य यह निश्चय कराना होता है कि मानव जाति के सब सामान्य जन अपने नेताओ का अनुगमन करेंगे। जब यीन स्थिति से उस याग क्रिया म परिवतन होता है जो आदिकालीन समाज की प्रकृति मे उत्परिवतन वा नामान्तरण के द्वारा सम्यता की उत्पत्ति के समय घटित होती है तब सामान्य जन अपन पूवजो का अनुकरण छोडकर जीवित पीढी के रचनाशील मानव व्यक्तित्वो का अनुकरण करने लगते हैं, किन्तु इससे सामाजिक प्रगति के लिए जो रास्ता खुलता है उसका अन्त मृत्यु के द्वार पर जाकर हो सकता है क्योकि कोई भी मानव प्राणी अपनी सीमा के अन्दर ही सजनशील हो सकता है और वह भी पराश्रयी हुए बिना नही और जब एक अपरिहाय असफलता वैसे ही अपरिहाय स्वप्न भग को जन्म देती है तब बदनाम नताओ को अपने नतिक दृष्टि से वचित अधिकार को बनाये रखने के लिए हिंसक बल का सहारा लेना पडता है। ईश्वरीय नगर म अनुकरण के एक नवीन स्थानान्तरण-द्वारा यह खतरा दूर हो जाता है। क्योकि अनुकरण ऐहिक सम्यताओ के क्षणभगुर नेताओ से हटकर सम्पूण मानवीय सजनशीलता के उद्गम ईश्वर की ओर चला जाता है।

ईश्वर का अनुकरण इन मानवात्माओ को उन निराशाओ की गोद मे नही डाल सकता जो परम ईश्वरानुरूप मानवो तक के अनुकरण से होती हैं और जब निराशाए पैदा होती हैं तब व एक अशान्त श्रमजीवीवग के नैतिक पतन का कारण होती हैं। यह अशान्त श्रमजीवीवग एक ऐसे समाज से बनता है जो अब केवल

[१] गिलसन, ई 'दि स्पिरिट आव मेडीवियल फिलासफी' अंग्रेजी अनुवाद (लन्दन १९३६, शोड ऐण्ड वाड) पृ ३९० ९१ एव १४ १७

प्रभावशाली अल्पमत बनकर रह गया है। इस प्रकार आत्मा एव एक सत्य ईश्वर के बीच जो सानिध्य स्थापित होता है वह उस बन्धन के रूप म कभी नही बदल सकता जो एक दास और निरकुश राजा के बीच होता है क्योकि प्रत्येक महत् धम मे विभिन्न मात्राओ मे, शक्ति रूपी ईश्वर की कल्पना प्रेम के रूप म की गयी है और इस प्रेमालु ईश्वर को एक मरते हुए ईश्वर के साक्षात् अवतार रूप मे उपस्थित करना एक ऐसा ईश्वरीय न्यायवाद (Theodicy) है जो खीष्ट के अनुकरण को अन्य पुनरुज्जीवन रहित मानवो क अनुकरणो मे अन्तर्निहित दु खान्त घटना से सुरक्षित कर देता है।

चर्चों के जीवन मे सम्यताओ की भूमिका

(१) पूवरग के रूप मे सम्यताए

यदि पूर्वोक्त अनुसधान ने हमे विश्वास दिला दिया है कि महत्तर धर्मों को साकार रूप देने वाले चच, इस पृथिवी पर, एक और समान, 'ईश्वरीय नगरी' (Civitas Dei) के विविध सनिकट मान हैं और ईश्वर का यह राष्ट्र मण्डल (कामन वेल्थ) समाज की जिस प्रजाति का एकमात्र और विचित्र प्रतिनिधि है, वह आध्यात्मिक दृष्टि से उस प्रजाति की अपेक्षा उच्चतर कोटि की है जिसका प्रतिनिधित्व सम्यताए करती हैं, तो हम अपनी इस मूल कल्पना को उलटने के अपने प्रयोग मे आगे जाने के लिए प्रोत्साहित होंगे कि इतिहास मे सम्यताओं की भूमिका ही प्रधान स्थान रखती है और चर्चों की भूमिका गौण या उसके अधीन है। तब हम सम्यताओ के रूप म चर्चों की *व्याख्या न करके साहसपूवक एक नया रास्ता पकडेंगे—चर्चों के रूप म सम्य* ताओ पर विचार करने का। यदि हम सामाजिक ककट या कसर की खोज मे हो तो हम उसे उस चच म नही पायेंगे जो सम्यता का अधिकार अपहरण करक उसकी जगह पद छा जाता है अपितु उस सम्यता मे पायगे जो चच का मूलोच्छेद कर उसके स्थान पर बठ जाती है, और जब हमने चच की उस कोशकीट के रूप मे कल्पना की जिसके द्वारा एक सम्यता दूसरी को जन्म देती है तो हम अब उस आभासी सम्यता की कल्पना चच के अवतार के पूवरग (Overture) के रूप मे करनी है और सम्बद्ध सम्यता को आध्यात्मिक उपलब्धि के उच्चतर स्तर से प्रत्यावत्तन के रूप मे ग्रहण करना है।

इस प्रतिज्ञा की पुष्टि के लिए एक टेस्ट केस के रूप मे यदि हम खीष्टीय चच के ज र को ले लें और अनेक शब्दो के लौकिक अथ किस प्रकार धार्मिक अथ एव प्रयोग म बदल गये, इस सूक्ष्म किन्तु महत्त्वपूण प्रमाण को उपस्थित करें तो हम उस भाषा शास्त्रीय प्रमाण से इस दृष्टिकोण का समथन होता पायेंगे कि खीष्टमत एक ऐसी धार्मिक विषयवस्तु है जिसमे लौकिक पूवरग वतमान है और यह पूवरग न केवल यूनानी सावभौम राज्य की रोमी (रोमन) राजनीतिक सफलता म सन्निहित है वर स्वय यूनानीवाद या यूनानी सस्कृति (हेलेनिज्म) की सब अवस्थाओ एव पहलुओ मे मिली *सफलता भी उसमे सम्मिलित है।*

खीष्टीय चच अपने नाम तक के लिए एथेंस नगर मे प्रयुक्त उस पारिभाषिक

प्रभावशाली अल्पमत बनकर रह गया है। इस प्रकार आत्मा एव एक सत्य ईश्वर के बीच जो सानिध्य स्थापित होता है वह उस बधन के रूप म कभी नही बदल सकता जो एक दास और निरकुश राजा के बीच होता है क्योकि प्रत्येक महत् धम म विभिन्न मात्राओ मे, शक्ति रूपी ईश्वर की कल्पना प्रेम के रूप म की गयी है और इस प्रेमालु ईश्वर को एक मरते हुए ईश्वर के साक्षात अवतार रूप म उपस्थित करना एक ऐसा ईश्वरीय न्यायवाद (Theodicy) है जो खीष्ट के अनुकरण को अन्य पुनरुज्जीवन रहित मानवो के अनुकरणो मे अन्तर्निहित दु खान्त घटना से सुरक्षित कर देता है।

चर्चों के जीवन मे सभ्यताओ की भूमिका

(१) पूवरग के रूप मे सभ्यताए

यदि पूर्वोक्त अनुसधान ने हम विश्वास दिला दिया है कि महत्तर धर्मों को साकार रूप देने वाले चच, इस पृथिवी पर, एक और समान, ईश्वरीय नगरी' (Civitas Dei) के विविध सनिकट मान हैं और ईश्वर का यह राष्ट्र मण्डल (कामन वेल्थ) समाज की जिस प्रजाति का एकमात्र और विचित्र प्रतिनिधि है, वह आध्यात्मिक दृष्टि से उस प्रजाति की अपेक्षा उच्चतर कोटि की है जिसका प्रतिनिधित्व सभ्यताए करती हैं तो हम अपनी इस मूल कल्पना को उलटने के अपने प्रयास म आगे जाने के लिए प्रोत्साहित होंगे कि इतिहास मे सभ्यताओं की भूमिका ही प्रधान स्थान रखती है और चर्चों की भूमिका गौण या उसके अधीन है। तब हम सभ्यताओं के रूप मे चर्चों की व्याख्या न करके साहसपूवक एक नया रास्ता पकडेंगे– चर्चों के रूप म सभ्यताओं पर विचार करने का। यदि हम सामाजिक ककट वा कसर की खोज मे हो तो हम उसे उस चच मे नहीं पायेंगे जो सभ्यता का अधिकार अपहरण करके उसकी जगह खद छा जाता है अपितु उस सभ्यता मे पायेंगे जो चच का मूलोच्छेद कर उसके स्थान पर बैठ जाती है, और जब हमने चच की उस कोशकीट के रूप म कल्पना की जिसके द्वारा एक सभ्यता दूसरी को जन्म देती है तो हम अब उस आभासी सभ्यता की कल्पना चच के अवतार के पूवरग (Overture) के रूप मे करनी है और सम्बद्ध सभ्यता को आध्यात्मिक उपलब्धि के उच्चतर स्तर से प्रत्यावत्तन के रूप मे ग्रहण करना है।

इस प्रतिज्ञा की पुष्टि के लिए एक टेस्ट केस के रूप मे यदि हम खीष्टीय चच के जन्म को ले और अनेक शब्दो के लौकिक अथ किस प्रकार धार्मिक अथ एव प्रयोग म बदल गये, इस सूक्ष्म किन्तु महत्त्वपूण प्रमाण को उपस्थित करें तो हम उस भाषा शास्त्रीय प्रमाण से इस दृष्टिकोण का समथन होता पायेंगे कि खीष्टमत एक ऐसी धार्मिक विषयवस्तु है जिसमे लौकिक पूवरग वतमान है और यह पूवरग न केवल यूनानी सावभौम राज्य की रोमी (रोमन) राजनीतिक सफलता में सन्निहित है वर स्वय यूनानीवाद या यूनानी सस्कृति (हेलेनिज्म) की सब अवस्थाओ एव पहलुओ मे मिली सफलता भी उसमे सम्मिलित है।

खीष्टीय चच अपने नाम तक के लिए एथेंस नगर म प्रयुक्त उस पारिभाषिक

शब्द के लिए ऋणी है जो राजनीतिक काय निपटाने वाली नागरिकों की सामान्य सभा के लिए प्रयुक्त होता था, किन्तु इस 'इक्लीजिया' (Ecclesia) शब्द को ग्रहण करने के बाद चच ने उसे एक ऐसा उभयाथ प्रदान किया जिसमे रोम साम्राज्य की राजनीतिक पद श्रेणी का प्रतिबिम्ब दिखायी पडता था। ईसाई प्रयोग म इक्लीजिया के दो अथ हो गये—एक स्थानीय ईसाई समुदाय, दूसरा सार्वभौम खीष्टीय चच।

जब स्थानीय एव सावभौम खीष्टीय चच 'लटी' (गृहस्थ, ससारी) एव क्लर्जी (पुरोहित-पादरी) नामक दो धार्मिक वर्गों म बटकर प्रथित हो गया और जब क्लर्जी भी पद-श्रेणियो क एक सोपानिक सघटन (heirarchy) म परिवर्तित हो गये तो उनके लिए भी जिन शब्दो की आवश्यकता पडी व प्रचलित लौकिक यूनानी और लटिन शब्द भाण्डार स ही ल लिय गय। खीष्टीय चच का लटी एक आदिम यूनानी शब्द 'लाओस (laos) से ले लिया गया। लाओस शब्द जनसाधारण के लिए उन पर शासन करने वालो से उनकी भिन्नता प्रकट करने के लिए प्रयुक्त होता था। 'क्लर्जी ने अपना यह नाम यूनानी शब्द 'क्लरोज' (Kleros) से लिया जिसका अभिप्राय तो मण्डली' था किन्तु उसका प्रयोग न्यायिक अथ म होता था—उत्तराधिकार प्राप्त जायदाद के निर्दिष्ट अश के लिए। खीष्टीय चच ने इस शब्द को ग्रहण कर उसका प्रयोग ईसाई समुदाय के एक ऐसे अश के लिए कर लिया जिसे ईश्वर न अपनी सेवा तथा व्यावसायिक पौरोहित्य के लिए नियुक्त किया था। जहा तक आडर (order) या श्रेणी का सवाल है यह 'आर्डाइस (ordines) शब्द से ल लिया गया जो रोमन राजसस्था के राजनीतिक सुविधा प्राप्त वर्गों के लिए प्रयोग किया जाता था। सर्वोच्च आडर (श्रेणी) के सदस्य 'बिशप कहलाने लगे जिसका अथ ओवरसियर (निरीक्षणकर्ता) था और जो एपिस्कोप्वाइ' (Episcopoi) स ग्रहण किया गया था।

जब तक खीष्टीय चच की धमपुस्तक क लिए ता बिब्लिया' (पुस्तकें) शब्द का प्रयोग नही आरम्भ हुआ था तब तक उसे भूराजस्व के रोमन शब्द भाण्डार से लिये गये शब्द स्क्रिपचुरा (Scriptura) से अभिहित किया जाता था। ईसाई धम के जो दो 'टेस्टामेण्ट' (प्रतिज्ञापत्र) हैं उन्हे यूनानी मे 'दायाथेकाइ (diathekai) तथा लटिन मे टेस्टामेण्टा' इसलिए कहा जाता था कि उन्हें ऐसे वध आदेशो के समान समझा गया जिन्हे ईश्वर ने पृथिवी के मानव जीवन को व्यवस्थित करने की दृष्टि से मानव के नाम दो किस्तो मे जारी किया था।

प्रारम्भिक खीष्टीय चच मे जो लोग आध्यात्मिक दृष्टि से विशिष्ट थे उन्होने अपनी साधना या प्रशिक्षण के लिए यूनानी शब्द ऐसेसिस (acesis) लकर एसेटिक (वरागी तपस्वी) बना लिया। यद्यपि इसका प्रयोग प्रमुख यूनानी खेलो मे भाग लेने वाले कुश्ती बाजो को दिये जाने वाले शारीरिक प्रशिक्षण के लिए होता था। और जब चौथी शती मे शहीद होने के प्रशिक्षण का स्थान ससार-त्यागी—वरागी —के प्रशिक्षण ने ले लिया तो इस नये प्रकार के ईसाई मल्ल ने जिसकी साधना फौजदारी, कचहरी एव अखाडों मे नाम प्राप्त करने की जगह मरुस्थल के एकान्त से सम्बद्ध थी एक दूसरे यूनानी शब्द एनाकोरिटीज (anachoretes) को ग्रहण कर लिया जो मूलत ऐसे लोगों के लिए

प्रयुक्त होता था जो दार्शनिक चिन्तन मनन या उत्पीडनकारी कर भार के प्रति विरोध प्रकट करने के लिए अपने को व्यावहारिक जीवन से निच्छिन्न कर लेते थे। वही शब्द उन ईसाई उत्साहिया के लिए, विशेषत मिस्र म प्रयुक्त होने लगा जो लौकिक दुराचरण के प्रति विरोध प्रकट करने तथा ईश्वर से सानिध्य स्थापित करने के लिए मरुस्थल मे एकान्त निवास करने चले जाते थ। एरेमास' (Eremos) शब्द से 'एरेमाइट' वा 'हर्मिट' (सन्यासी) बन गया। जब इन एकान्तवासियो (Monachoi मानाचोई=Monks मान्क्स) ने अपने नाम के शाब्दिक अथ का परित्याग कर दिया और अनुशासित समुदायो के रूप म रहने लगे तो पारिभाषिक शब्दो के विपरीत अर्थों के बोधक इस एकान्तवासी समाज (Monastrion) ने अपने नाम के लिए एक लटिन शब्द कान्वेण्टस (Conventus) ग्रहण कर लिया जो अपने लौकिक रूप म दो बाता के लिए प्रयुक्त होता था—'त्रमासिक अधिवेशन' और व्यापार परिषद'।

जब प्रत्येक स्थानीय चच मे होने वाला सावधिक सभाओ की मूलत अनौपचारिक कारवाइया बाद म एक कठोर एव तीव्र कमकाण्ड मे बदल गयी तो उस धार्मिक जनसेवा के लिए लीतूर्जिया' (Leiturgia) या अग्रेजी 'लीटर्जी' (गिर्जा का प्राथना-स्थल) शब्द को ले लिया गया जो पाचवी या चौथी ईसापूव शतियो मे एथेस के राष्ट्र मण्डल म धनिको द्वारा स्वेच्छा से किये जाने वाले व्यय के लिए प्रयुक्त होता था और जो इस सम्मानप्राप्त नाम स किंचित् मधुरता के आवरण मे वस्तुत एक अधिकर के तथ्य को छिपाने के लिए प्रयुक्त किया जाता था। इस सावजनिक प्रायना म मुख्य आचार था पवित्र समागम। (Holy Communion) जिसमे उपासकगण रोटी और मदिरा एक साथ बठकर खाते-पाते थे और इस प्रकार ख्रीष्ट के भीतर एव ख्रीष्ट के साथ होने का एक प्राणवान् अनुभव प्राप्त करते थे। इस ईसाई सहभोज सस्कार (Sacrament) ने अपना नाम एक शाल्य रोमन प्रथा से ग्रहण कर लिया जिसके द्वारा एक नया रगरूट रोमी सना की सदस्यता की शपथ लेता था। पवित्र समागम या होली कम्यूनियन जिसकी परिणति सस्कार या सहभोज (सक्रामेण्ट) मे होती थी, ने अपना नाम एक ऐसे शब्द से ले लिया जो अपने यूनानी रूप मे काईनोनिया' (Koinonia) और अपने लटिन अनुवाद मे कम्यूनियो' होने के कारण किसी भी सामाजिक काय—विशेषत राजनीतिक समाज—मे भाग लेने का अथ प्रकट करता था।

एक भौतिक अथ के अन्दर आध्यात्मिक अथ का उद्बोध उस उपक्रम का उदाहरण है जिसे इस अध्ययन के किसी पूवभाग मे हमने अलौकिकीकरण (Etherialisation) की सज्ञा दी है और उसे विकास का एक लक्षण माना है। यूनानी एव लटिन शब्द भाण्डार के अलौकिकीकरण का यह सर्वेक्षण—जिसे आसानी से बढाया जा सकता है—इतना प्रकट करने के लिए पर्याप्त है कि यूनानी सभ्यता वस्तुत ईसाई धम के लिए एक तैयारी (Praeparatio evangelii) या भूमिका थी और ख्रीष्टीय मत के पूवरग रूप में यूनानी सभ्यता की जो सेवा है उसके मुख्य

प्रयोजन की खोज करते हुए हमने एक आशाप्रद अनुसंधान की जमीन पर पाव रखे हैं। जब एक सभ्यता के जीवन ने एक प्राणवान चच को जन्म देने के पूवरग रूप मे सेवा की तो पूवगामी सभ्यता की मृत्यु को सकट नही वर अपनी जीवन-गाथा की समुचित समाप्ति के अथ मे ही ग्रहण किया जाना चाहिए।

(२) सभ्यता—प्रत्यावत्तन या प्रतीपगति के रूप मे

हम यह देखने की चेष्टा करते रहे हैं कि यदि हम चर्चों के इतिहास को सभ्यताओ के रूप मे देखने के आधुनिक पाश्चात्य स्वभाव को तोडकर उनका प्रतिकूल दृष्टिकोण ग्रहण कर लें तो इतिहास कसा दीख पडेगा। इसने हम यह सोचने को भी प्रेरित किया है कि दूसरी पीढ़ी की सभ्यताओ को जीवित महत्तर धर्मों के पूव रग के रूप मे ग्रहण करें तथा उनके फलस्वरूप उनके पतन एव विघटन के कारण उन्हें असफल न समझें बल्कि उन्होने इन महत्तर धर्मों के उत्पन्न होने के काय मे सहायता कर जो सेवा की है उसके कारण उन्हें सफल समझें। इस दृष्टि से तृतीय पीढी की सभ्यताए पूवगामी सभ्यताओ के ध्वसावशेष से उत्पन्न महत्तर धर्मों के प्रत्यावतनों के रूप मे देखी जा सकती हैं क्योंकि उन विनष्ट सभ्यताओ की लौकिक विफलता की पूर्ति यदि आध्यात्मिक परिणामो को देखकर मान ली जाय तो श्रमसचीय कीट कोशो से निकलने और अपने लिए एक नया पार्थिव जीवन जीना आरभ करने की लौकिक सफलता की जाँच भी इसी कसौटी पर की जानी चाहिए कि उसका आत्मा के जीवन पर क्या प्रभाव पडता है। यह प्रभाव स्पष्टत प्रतिकूल ही रहा है।

यदि हम मध्ययुगीन पाश्चात्य ख्रीष्टीय लोकतत्र (Medieval Western Republica Christiana) से एक आधुनिक पाश्चात्य धम निरपेक्ष सभ्यता के उद्भव को टस्ट केस के रूप मे ग्रहण करें तो हमने इस अध्याय के प्रथमाद्ध मे शब्दों के अथ एव प्रयोग म परिवतन का उदाहरण देते हुए जो जाच-शाली अपनायी है उसी का अनुसरण कर हम इस सन्दभ म भी शब्द-परिवतन की तुच्छ घटनाओ पर विचार कर सकते हैं। पहले हम क्लेरिक' शब्द लेते हैं। 'पवित्र धर्मानुक्रम में जो क्लक होता था उसको हम लौकिक जगत मे भी नम्र क्लक (लिपिक) के रूप मे पाते हैं। यह लौकिक क्लक इगलण्ड मे छोटे आफिस कार्यों का सम्पादन करता है तथा अमेरिका म किसी भण्डार या स्टोर के विक्रय-पटल (काउटर) के पीछे काम करता है। कन्वजन (Conversion) शब्द पहिले आत्मा को ईश्वर की ओर मोडने के अथ म प्रयुक्त होता था वह आज कोयले का विद्युत-शक्ति के रूप म कन्वजन (रूपान्तरण) अथवा पाच प्रतिशत माल का तीन प्रतिशत माल के रूप म कन्वजन (परिवतन) के सन्दभ मे हमारे लिए अधिक परिचित है। अब हम आत्माओ की चिकित्सा' की बात कम सुनते हैं दवाइयों से शरीर की चिकित्सा' की बात बहुत ज्यादा सुनायी देती है। 'पवित्र दिवस' (Holy Day) आज 'अवकाश दिवस (Holiday) हो गया है। ये सब उदाहरण 'भाषागत लौकिकीकरण (Linguistic

dis-etherialization) अथवा 'भाषागत अलौकिकीकरण के परित्याग' की बात ही कहते हैं जो समाज के धर्म निरपेक्षीकरण का प्रतीक है।

"फ्रेडरिक द्वितीय महत इन्नोसेंट का शिष्य एवं प्रतिपाल्य (Ward) था, वह राज्य के रूप मे चर्च का सस्थापक था। वह एक बौद्धिक मनुष्य था और यदि हम उसकी साम्राज्य कल्पना मे चर्च की परछाई पाते हैं तो इसमे कोई आश्चर्य की बात नहीं है। समस्त इतालीय सिसलीय (Italian Sicilian) राज्य, जिसके प्रति पोपगण पीटर के पितृदाय (Patrimony) के रूप मे लुब्ध थे, इस प्रतिभावान नरेश के लिए आगस्टस का पितृदाय बन गया। फ्रेडरिक ने चर्च की आध्यात्मिक एकता मे समाहित लौकिक एवं बौद्धिक शक्तियों को युक्त करने तथा उन पर आधारित एक नये साम्राज्य का निर्माण करने की चेष्टा की। आइए, हम फ्रेडरिक के इतालीय रोमन राज्य के पूरे महत्त्व को हृदयगम करें, एक शक्तिमान इटालियन पशीय सामन्त राज्य (Seignoiry), जिसने एक लघु अवधि के लिए एक राज्य के अदर जर्मन, रोमन एवं प्राच्य सब तत्वों को संयुक्त कर दिया था—फ्रेडरिक स्वयं महान् सामन्त एवं एक महत निरंकुश राजा के रूप मे विश्व का सम्राट था और रोम का मुकुट धारण करने वाले राजाओं मे अंतिम था। बारबूसा की भांति उसका सीजर पद न केवल जर्मन बादशाहत से सम्बद्ध था वरं प्राच्य सिसिलीय (Oriental Sicilian) निरंकुशता से भी सबधित था। इस बात की अवधारणा कर लेने के बाद, हम देखते हैं कि 'रिनसां' के समस्त निरंकुश शासक, स्काला एवं मांट फेल्ट्र, वाइकौंटी, बोर्जिया एवं मेडिसी, अपने लघुत्तम रूपों मे भी, फ्रेडरिक द्वितीय के ही पुत्र एवं उत्तराधिकारी, इस 'द्वितीय सिकन्दर' के आगे राजा बनने वाले सेनापति (ग्याडोची) थे।"[1]

होहेनस्टाफेन के फ्रेडरिक के उत्तराधिकारियो की सूची और लम्बी की जा सकती है और उसम ईसाई सवत् की बीसवी शती तक के लोगो का समावेश किया जा सकता है। आधुनिक पाश्चात्य जगत् की लौकिक या धर्म निरपेक्ष सभ्यता, एक दिशा से, उसकी भावना से नि सृत जान पडती है। यह कल्पना करना बिल्कुल व्यर्थ होगा कि चर्च तथा लौकिक राजाओ के मध्य सघर्ष में सारा दोष एक पक्ष का ही था, हम तो यहा केवल यह कहना चाहते हैं कि ईसाई लोकतन्त्र के गर्भ मे एक लौकिक सभ्यता का राक्षसी जन्म एक ऐसे यूनानी निरंकुश राज्य के रिनसां (पुनर्जागरण) के कारण ही सभव हुआ जिसमें धर्म राजनीति का एक विभाग था।

जब तीसरी पीढी की सभ्यता ख्रीष्ट धर्म सस्था से ही निकलकर अपना रास्ता बनाने में समर्थ हुई तो क्या दूसरी पीढी की आभासिक सभ्यता की सफलता के लिए 'रिनसां' एक नित्य एवं अपरित्याज्य साधन था ? यदि हम हिन्दू सभ्यता

[1] कटोरोविज, ई फ्रेडरिक दि सेकेण्ड, ११६४ १२५०, अंग्रेजी अनुवाद (लदन १६३१, कांस्टेबुल) पृ० ५६१ २, ४६३ ४

के इतिहास पर दृष्टिपात करें तो हमें मालूम हो जायगा कि मौर्यों या गुप्तो के साम्राज्य में इस प्रकार के समानान्तर पुनरुज्जीवन के दृष्टान्त प्राप्त नही होते ? किन्तु जब हम भारत से हटकर चीन की ओर मुडते हैं और सुदूरपूर्वीय सभ्यता को उसके गृहदेश में ही देखते हैं तो हम हान साम्राज्य के सुई एव ताग पुनरावतन म रोमन साम्राज्य के पुनरावतन की एक आकषक एव अभ्रान्त प्रतिमूर्ति मिलती है। जो अन्तर है वह परिस्थिति का है। साम्राज्यवाद का सिनाई 'रिनसा' पवित्र रोमन साम्राज्य के यूनानी रिनसा की अपेक्षा कही सफल था, कम से कम प्राच्य सनातन खीष्टीय समाज (Eastern Orthodox Christian Society) के राज्य क्षेत्र में बजतियाई (बजटाइन) साम्राज्य का जो समानान्तर यूनानी रिनैसा' (पुनर्जागरण) था, उससे तो अधिक सफल निश्चय ही था। हमारे वतमान अनुसधान के लिए यह महत्त्वपूण है कि तीसरी पीढी की सभ्यता भी, जिसके इतिहास में उसकी पूववर्ती का रिनैसा बहुत ज्यादा दूर तक प्रविष्ट हो गया था, उस चच के जाल से अपने को मुक्त करने में बडी सफल थी जिसे उसकी पूववर्ती ने जन्म दिया था। जिस महायान बौद्ध मत ने म्रियमाण 'सिनाई (चीनी) जगत् को उतनी ही पूणता से मुग्ध कर लिया था, जितनी पूणता से ईसाई धम ने मृतप्राय यूनानी जगत् को वशीभूत किया था, वह सीनोत्तर (Post Sinic) राज्यान्तरकाल (इटररेनम) के चरम पतन में भी अपनी उन्नति के शिखर पर पहुच गया था किंतु इसके बाद तेजी के साथ उसका पतन हो गया। इतना प्रदर्शित कर देने के बाद हम इस निष्कष पर पहुचते हैं कि एक मृत सभ्यता का रिनसा (पुनर्जागरण) एक जीवित महत्तर धम से प्रत्यावत्तन या प्रतीप गति का सूचक है और वह (रिवाइवल) जितना ही आगे ठेला जायगा, पापान्धन्नता उतनी ही अधिक होती जायगी।

पृथिवी पर युयुत्सा की चुनौती

पिछले अध्यायो में हमने देखा कि जो लौकिक सभ्यता धम-सघ से अलग हो गयी उसके लिए पूववर्ती सभ्यता के जीवन से कुछ तत्त्वो की सहायता लेकर अपना माग बनाना स्वाभाविक था किंतु हमे अब भी इतना देखना शेष है कि इस विच्छेद का अवसर कसे उपस्थित होता है, और निश्चित रूप से बुराई के इस प्रारम्भ की खोज हमे चच के किसी दुबल विन्दु या गलत कदम मे करनी चाहिए जिसकी कीमत पर या जिसके कारण यह विस्फोट सम्भव हो सका।

चच के लिए एक भयानक समस्या उसके मुख्य प्रयोजन में ही निहित है। इस पृथिवी को 'ईश्वरीय नगरी' के लिए जीतने की दृष्टि से चच युयुत्सु है और इसका मतलब यह है कि एक चच को आध्यात्मिक के साथ लौकिक विषयों से भी निपटना और पृथिवी पर अपने को एक सस्था के रूप में भी सघटित करना है। इस प्रकार एक अवज्ञापूण परिवेश में ईश्वर का काय करने में चच को अपनी अलौकिक नग्नता ढकने के लिए ऐसे ठोस सास्थिक आवरण की आवश्यकता पडती है जो चच की आध्यात्मिक प्रकृति के विरुद्ध होता है। इसलिए यह देखकर आश्चय नहीं होता कि सत-समागम की वह पार्थिव बाहरी चौकी जो लौकिक समस्याओ के समाधान की ओर आकर्षित हुए बिना इस ससार मे अपना काम नही कर सकता, सकटापन्न हो जाती है क्योकि इन लौकिक समस्याओ पर सस्थागत अस्त्रो से आक्रमण करना उसके लिए आवश्यक हो जाता है।

इस तरह की सबसे प्रसिद्ध दुखान्त घटना हिल्डेब्रैण्डाइन पोपतंत्र (पपेसी) का इतिहास है और इस अध्ययन के किसी पिछले भाग में हम देख चुके हैं कि आभासत अनिवाय कारण-काय शृखलाओ-द्वारा किस प्रकार हिल्डेब्रण्ड करार पर घसीट लाया गया। यदि वह यौन एव आर्थिक भ्रष्टाचार से पुरोहित या पादरी वग का उद्धार करने की लडाई मे अपने को न डालता तो वह ईश्वर का सच्चा सेवक नही हो सकता था और वह चच के सघटन में चुस्ती न ले आता तो पादरी वग का सुधार भी नहीं कर सकता था और चच के सघटन म चुस्ती लाना तब-तक सम्भव न था जबतक कि चर्च एव राज्य की अधिकार-सीमाओ का स्पष्ट निर्धारण न हो जाता और चूकि सामती युग मे चच एव राज्य के काम एक दूसरे

से अविच्छेद्य रूप मे ग्रथित एव सम्मिश्रित हो गये थे इसलिए यह तबतक चर्च के सतोष योग्य सीमा निर्धारण न कर सकता था जबतक कि राज्य के भाग म अनधिकृत रूप से कुछ अश काटकर चर्च का न दे देता। और ऐसा करने पर राज्य का विरोध करना उचित ही था। परिणाम यह हुआ कि पहिले आविपत्रो (Manifestoes) की लडाई के रूप मे सघर्ष शुरू हुआ और तीव्र गति से बलात् युद्ध में अधःपतित हो गया। इस युद्ध म द्रव्य और बन्दूकें प्रत्यक्ष पक्ष क साधन बन गयीं।

हिल्डेब्रैण्डाइन चर्च की दु खान्त घटना ऐसी आध्यात्मिक प्रतीप गति या प्रत्यावर्तन का एक महत्त्वपूर्ण उदाहरण है जो चर्च के पार्थिव मामलो म उलझ जाने और अपना काम करने की चेष्टा करते हुए प्रसगवश लौकिक कार्य प्रणाली ग्रहण करने से अवक्षिप्त हुआ। इस आध्यात्मिक रूप से विध्वसक इहलौकिकता तक पहुचने के लिए एक दूसरा प्रशस्त मार्ग भी है। अपने मान (स्टण्डर्ड) के अनुसार जीवित रहने के आचरण मे ही चर्च आध्यात्मिक पश्चाद्गमन का खतरा उठाता है। क्योंकि पार्थिव सस्थाओ के पुण्यात्मक सामाजिक उद्देश्यो म ईश्वरेच्छा अवगत प्रकट होती है और ये पार्थिव आदर्श उन लोगो के द्वारा और अधिक सफलता के साथ पूर्ण हो सकते हैं जो इन आदर्शों को स्वय अपने म कोई साध्य नही मानते बल्कि उनमे कोई और ऊची चीज पाने की कोशिश करते हैं। इस नियम क प्रवर्तन के दो अत्युत्कृष्ट उदाहरण हैं—सन्त बेनेडिक्ट तथा पोप ग्रिगोरी महान की सफलताए। य दोनो सन्त पश्चिम मे आश्रम जीवन प्रणाली की अभिवृद्धि के लिए तुल गये थे फिर भी अपने आध्यात्मिक कार्य के एक आनुषगिक फल क रूप म इन दो वीतराग महात्माओ ने ऐसे आर्थिक चमत्कार कर दिखाये जो लौकिक राजममज्ञो की क्षमता के बिल्कुल बाहर थे। उनकी आर्थिक सफलताओ की प्रशसा ईसाई एव मार्क्सवादी दोनो प्रकार के इतिहासकार समान रूप से करेंगे। इतने पर भी यदि ये प्रशसाए बनेडिक्ट एव ग्रिगोरी को परलोक म सुनायी पडती तो ये सन्त निश्चय ही, गलतफहमी की व्यथा क साथ अपने गुरु एव आचार्य की उक्ति का स्मरण करते—'यदि सभी लोग तुम्हारे विषय म अच्छा कहे तो अपने पर अनिष्ट ही आया समझो।' और यदि वे किसी प्रकार इस धरती पर पुन आ सकते तथा अपनी आखो से देखते कि उन्होंने इस पृथिवी पर रहने समय जो आध्यात्मिक प्रयत्न किये थे उनके अनुवर्ती आर्थिक प्रभावो के अंतिम नतिक परिणाम क्या हुए तो उन्हें निश्चय ही घोर यत्रणा होती।

व्यग्रकारी सत्य तो यह है कि ईश्वरीय नगरी के आध्यात्मिक परिश्रम क आनुषगिक भौतिक फल केवल उसकी आध्यात्मिक सफलता का ही प्रमाणपत्र नहीं हैं वे ऐसे जाल भी हैं जिनमे एक आध्यात्मिक सन्त उसम कहीं अधिक पैशाचिकता के साथ फसाया जा सकता ... के साथ एक उग्र हिल्डरब्रैण्ड राजनीति एव युद्ध मे उलझ जाने के बा... है। सन्त बर्न... युग तथा तथाकथित ... में ईसाई ५ ... जान ब...

मठ या आश्रम जीवन के इतिहास की हजारो साल की कहानी से लोग परिचित हैं और प्रोटेस्टेण्ट तथा ईसाई विरोधी लेखकों के सब दोषारोपों म विश्वास रखन की आवश्यकता नही है। आगे हम जा उद्धरण दे रहे हैं वह एक ऐसे आधुनिक लेखक की कृति से ले लिया गया है जा आश्रम विरोधी दुर्भावना के सन्देह से पर है और जिसे सामान्यत प्राक् रिफामशन मठवास या यति-जीवन का अन्तिम एव निकृष्टतम युग समझा जाता है उसकी बात नही कहता—

"ऐबाट (Abbot=मठाधीश) और कान्वेण्ट (ईसाई धार्मिक समुदाय) में जो खाई आ गयी उसका मुख्य कारण सम्पत्ति का सचय था। कालान्तर मे मठों की जायदादें इतनी बढ गयीं कि मठाधीश अपनी जमीनों की व्यवस्था तथा तत्सम्बन्धी जिम्मेदारियों मे ही पूर्णत व्यस्त रहने लगा। जायदादों तथा कर्तव्यों के विभाजन का ऐसा ही एक उपक्रम स्वय साधुओं या मठवासियो में भी चल रहा था। प्रत्येक मठ व्यवहारत विभिन्न विभागों मे विभाजित था, प्रत्येक विभाग की अपनी आय होती थी और अपने विशिष्ट दायित्व होते थ। जसा डाम डेविड नोवेल्स कहते हैं—'विचेस्टर, कण्टबरी तथा सत अल्बांस के मठों को छोडकर, जहा कि प्रबल बौद्धिक अथवा कलात्मक हित वतमान थे, इस प्रकार का व्यवसाय एक ऐसी जीविका बन गया जो मठ में प्राप्त सम्पूर्ण प्रतिभा को आत्मसात कर लेती थी।" जिनमे प्रबन्धपटुता के गुण थे किन्तु जिनके पास कोई ऐसी जायदाद न थी कि उस पर उसका प्रयोग कर सकते, उनको विशाल सम्पत्ति एव जायदाद वाले मठों में पर्याप्त अवसर मिल गया।"[1]

फिर भी वह सन्यासी, जो एक सफल व्यवसायी क रूप मे अध पतित हो गया है, आध्यात्मिक पश्चादगमन या प्रत्यावतन के सबसे साघातिक रूप को प्रकट नही करता। इहलोक मे 'ईश्वरीय नगरी' के नागरिको के लिए घात मे छिपा सबसे निकृष्ट प्रलोभन राजनीति म कूदना या व्यवसाय मे फिसल जाना नही है वर उस पार्थिव सस्था को देवता बना देना है जिसम इस पथिवी पर युयुत्सु चच अपूर्णत यद्यपि अपरिहाय रूप से गठित है। देवरूप मे परिवर्तित मानवीय वल्मीक, जिसकी मनुष्य तिमिंगिल या सागर दत्य के रूप में पूजा करते हैं जितना अनिष्टकारी होता है उसस कहीं अधिक अनिष्टकारी यह देवरूप में ढला चच की प्रतिमा है।

जब चच अपने बारे में यह विश्वास करने लगता है कि वह न केवल सत्य का भाण्डार है वर अपने पूर्ण एव निश्चित रूप में व्यक्त सम्पूर्ण सत्य का एक मात्र भाण्डार है जब वह कशाघाता विशेषत अपन ही परिवार के सदस्यो की चोटो से उत्पीडित हाना है तभी अवरोहण की दिशा में पग धरता है। इसका

[1] मरमन, जे आर एच "चच लाइफ इन इग्लण्ड इन दि थर्टीन्थ सचरी" (कम्ब्रिज, १६४५, यूनिवर्सिटी प्रेस) पृष्ठ २७९ ८०, २८३,३५३

एक उत्कृष्ट उदाहरण है—रिफार्मेशन[1]-विरोधी ट्रीडण्टाइन[2] रोमन कथोलिक चच का वह रूप जिसमें कैथोलिकइतर जन उस देखते थे। पिछल चार सौ वर्षों स हमारे लिखने के समय तक वह प्रहरी की भांति, ऐसी मुद्रा मे खडा रहा है जो उतनी ही अनम्य है जितनी उसकी चौकसी अटूट है—पोपतत्र क शिरस्त्राण-सहित प्रबल कवच से सज्जित, सीने पर पद मर्यादा का प्लेट लगाये तथा कठोर धर्माचार की आवत्तक लय म ईश्वर की सनिक सलामी लते हुए। इस दुवह सस्थात्मक सर्वांग कवच का अवचेतन उद्देश्य था—इस ससार की समकालीन लौकिक सस्थाओं मे दृढ़तम के आगे भी जीवित रहना। ईसाई सवत् की बीसवी शती मे एक कथोलिक आलोचक, पिछले चार सौ वर्षों के इतिहास के प्रकाश मे कुछ जोर क साथ तक कर सकता है कि प्राक्-ट्रीडेण्टाइन कथोलिक मत की हलकी शस्त्र-सज्जा के प्रति भी जो प्रोटेस्टेण्ट अधय दिखायी पड़ा वह समय के पूव था। कितु यदि सगत भी होता तो इस निणय से यह सिद्ध नही होता कि अवरोधो को दूर करन की चेष्टा सदा ही गलत होगी या यह कि उनका ट्रीडेण्टाइन गुणीकरण एक गलती नहीं थी।[3]

[1] पाश्चात्य ईसाई जगत में होने वाला एक महत्त्वपूर्ण धार्मिक आन्दोलन, १६वीं शती में आरम्भ। मार्टिन लूथर द्वारा धर्मादेश से मनवायी गयी निष्ठा के विरुद्ध छेडा गया आन्दोलन। आरम्भ में नतिक एव धार्मिक। पोपलीला का पर्दा फाश करने वाला आन्दोलन।—अनुवादक

[2] रोमन कथलिक चच को १५४५ ई से १५६३ ई तक टेण्ट मे हुई कौंसिल से सम्बन्धित।—अनुवादक

[3] उपर्युक्त अनुच्छेद, 'इतिहास का अध्ययन' के इस भाग को अन्य सामग्री के साथ, टाइप की हुई प्रति के रूप में लेखक के मित्र मार्टिन वाइट के पास भेज दिया गया था। पूरी पुस्तक मे उनकी अनेक टिप्पणिया दी गयी हैं। उन्हीं की एक टिप्पणी निम्नलिखित है—"यहाँ एक रोमन कथोलिक आलोचक, आपके द्वारा ही प्राय प्रयोग किये गये शब्दों में यही उत्तर देगा—'अन्तिम सिंहावलोकन करो' (Respice Finem)। ऊपर का सम्पूण अनुच्छेद ही सभावना के ऊपर आधारित है, वह अभी तक तो पूरी हुई नहीं है। क्या यह तथ्य नहीं है कि रोमन चच कौंसिल आव ट्रेंट के बाद कभी इतना शक्तिमान् और प्रभावशाली नहीं था जितना आज बीसवीं शती में है? जब १८७० ई में इसने अपने धम विश्वास मे पोप की निर्भ्रान्तता को ग्रहण किया था तब १९५० ई में भी अपने सौभाग्य के आभासिक शिखर पर पहुँचकर उसने लौकिक पाश्चात्य जगत् का अपमान करते हुए आत्मविश्वास क रूप में कुमारी माता (वर्जिन मदर) वाले सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया। क्या हमारे लिखने क समय इसी प्रकार सभावना नहीं की जा सकती कि अपने ट्राइण्टाइन सर्वांग कवच के साथ रोमन चच ही एक ऐसी पाश्चात्य सस्था है जो नवत्राय

अब हमने महत्तर धर्मों से लौकिक सभ्यताओ के निष्फल पुनरावर्त्तनो के प्रतीपगमन के कुछ कारणो पर अपनी उगली रखी है और प्रत्येक मामले मे हमने यह पाया कि सकट किसी निष्ठुर नियति (Saeva necessitas) अथवा किसी अन्य बाह्य शक्ति द्वारा नही, बल्कि एक ऐसे 'मूल पाप (Original Sin) द्वारा अवक्षिप्त किया जाता है जो पार्थिव मानव प्रकृति मे सहज है। किन्तु यदि महत्तर धर्मों से प्रतीपगमन या परावर्त्तन (Regression) मूल पाप का परिणाम है तो क्या हम यह समझ लें कि ये परावर्तन अनिवार्य हैं ? यदि वे ऐसे ही हैं तो इसका मतलब यह होगा कि इस पृथिवी पर युयुत्सा की चुनौती निषेधात्मक रूप से इतनी कठिन है कि कोइ भी चर्च अन्त मे उसके सामने खड़े होने मे समर्थ नही है। फिर यह निष्कर्ष हम पुन इस विचार की ओर खींच ले जायगा कि चर्च इससे ज्यादा और कुछ नही है कि निरर्थक पुनरावर्तित सभ्यताओ के लिए क्षणभगुर कीटकोशो का काम कर दे। क्या यही अन्तिम निष्कर्ष है ? इससे पूर्व कि हम लाचारी के साथ मान लें कि ईश्वर की प्रकाशधारा किसी अगम्य अधकार मे स्थायी रूप से निमग्न होकर नष्ट हो जाने के लिए है आइए हम एक बार पुन उन आध्यात्मिक ज्योतिमालिकाओ पर दृष्टिपात कर लें जो महत्तर धर्मों के अवतरण-द्वारा ससार मे लायी गयी हैं क्योंकि अतीत आध्यात्मिक इतिहास के ये अध्याय उन परावर्त्तनो से आध्यात्मिक पुनरुज्जीवन की दिशा मे शकुनसूचक सिद्ध होंगे।

हमने यह भी देखा है कि मनुष्य की आध्यात्मिक प्रगति मे क्रमानुसार जो मील के पत्थर हैं और जिन पर इब्राहीम, मूसा पैगम्बरो और खीष्ट के नाम खुदे हैं, उस स्थानों पर लगे हैं जहा से लौकिक सभ्यता की धारा का सर्वेक्षण करने वाला बता सकता है कि रास्ता कहा-कहा कटा हुआ है और कहा आवागमन मे विच्छेद है, और आनुभविक प्रमाणो ने हमे यह विश्वास करने का कारण प्रदान किया है कि मानव के धार्मिक इतिहास में उच्च बिन्दुओ के साथ उसके लौकिक इतिहास के निम्न बिन्दुओ का आकस्मिक योग सभवत मानव के पार्थिव जीवन के ही 'नियमों'—कानूनो—मे से एक होगा। यदि ऐसा है तो हम यह जानने की आशा करनी चाहिए कि लौकिक इतिहास के उच्च बिन्दुओ का भी धार्मिक इतिहास के निम्न बिन्दुओ से अकस्मात् मिलन होता है और इहलौकिक ह्रास के साथ जो धार्मिक सफलताए लगी

साम्यवादी राज्य के सामने खड़े होने और उसे चुनौती देने योग्य साबित होगी ? और मास्को वटिकन (पोपतन्त्र) के प्रति जो विशेष भय एव घृणा प्रकट करता है उससे क्या इस बात की पुष्टि नहीं होती ? यदि ऐसा है तो इस डायनोसार (एक भीमकाय रेंगने वाले जन्तु) के पृष्ठ वर्म की आकृति उतनी सगत नहीं होगी जितना कि एक लम्बा एव सफलतापूर्वक सचालित घेरा। और कथोलिक इतिहास की ट्रीडेण्टाइन स्थिति, सिंहावलोकन में, फ्रांस के पतन से विजय दिवस के ब्रिटिश इतिहास की चर्चिलीय अवस्था जसी ही दिखायी पड़ेगी। आपने परिणाम के बारे मे पहले से ही फसला कर लिया है।"

रहती हैं वे न केवल आध्यात्मिक प्राप्ति वर आध्यात्मिक पुनरज्जीवन की भी सूचक हैं। कथा के परम्परागत पाठ म भी उन्हे पुनरुज्जीवन की भाति उपस्थित किया गया है।

उदाहरणार्थ हिब्रू पुराण मे इब्राहीम (अब्राहम) के आवाहन का कारण टावर आव बेबल'[1] के आत्मविश्वासी निर्माताओ-द्वारा ईश्वर की अवज्ञा को बताया गया है। इसी प्रकार मूसा का मिशन मिस्र की उच्च रहन-सहन के अमगलकारी प्रयोग से ईश्वर की प्रिय जाति की रक्षा करना था। यहोवा ने इसराइल को जो देश प्रदान किया था उसम दुग्ध एव मधु की धाराए बहती थी। इस देश के उपयोग द्वारा इसराइल ने बडा भौतिक सफलता प्राप्त की थी किन्तु इसी के कारण वह आध्यात्मिक दृष्टि से अध पतित हो गया था। इसी के प्रति अनुताप प्रकट करने की शिक्षा देन की प्ररणा इसराइल एव जूडा क नबियो को हुई थी। जसा कि एक लौकिक इतिहासकार देखता है, ईसा के भावावेग (Passion) मे यूनानी सकट-काल (Hellenic Time of Troubles) का सम्पूर्ण लाखो वेदना भरी हुई है और ईसा का धर्मम न्त्र बाइबिल म उस प्रसविदा (Covenant) को समस्त मानव जाति तक प्रसारित कर दने के प्रयोजन से स्वय ईश्वर के हस्तक्षेप के रूप मे उपस्थित किया गया है, जो पहिल ईश्वर ने एक ऐसे इसरायली के साथ किया था जिसके वशजो ने अपने आध्यात्मिक उत्तराधिकार का फारसी नियमानुवर्तनवाद (Formalism) सादूसी भौतिकवाद (Sadducaen Materialism), हीरोदीय अवसरवाद (Herodian Opportunism) तथा धर्मोन्मत्त कट्टरता के साथ मिश्रित कर दिया था।

इस प्रकार हमने देखा कि आध्यात्मिक ज्योतिर्मयता के घोर विस्फोट आध्यात्मिक ग्रहण (Eclipse) तथा पार्थिव सकटो के कारण हुए और इससे हम यह अनुमान लगा सकत है कि यह कोई घटनाओ का अध्याय नहा है। हमने इस अध्ययन क किसी पिछले भाग मे देखा है कि शारीरिक दृष्टि स कठोर परिस्थितिया ही पार्थिव सफलताओं की पोषणशालाए होती है और इस साधर्म्य के अनुसार इस बात की भी आशा की जा सकती है कि आध्यात्मिक दृष्टि स कठोर परिस्थितिया भी धार्मिक प्रयत्नो पर स्फूर्तिप्रद प्रभाव डालेंगी। आध्यात्मिक दृष्टि से कठोर परिस्थिति वह परिस्थिति होगी जिसम आत्मा की प्रेरणाए भौतिक समृद्धि-द्वारा अवरुद्ध हो गयी हो, सासारिक समृद्धि को दूषित भाप या सडाघ, जो समुदाय को अचेत कर देती है आध्यात्मिक दृष्टि स सवेदनशील एव कमठ आत्माओं को इस जगत् क आरपणो की अवज्ञा करने को उत्साहित कर सकती है।

क्या खीष्टीय सवत् की बीसवी शती की दुनिया म धर्म क प्रति प्रत्यावर्तन आध्यात्मिक प्रगति का द्योतक होगा अथवा वह जीवन क उन कठोर तथ्यो से अस

[1] शीनार प्रदेश का स्तम जिसमें विविध भाषाओं में अनेक लोगों के एक साथ बोलने के कारण बड़ा भ्रम फैला था। कोलाहल एव भ्रम का स्थान। महत्त्वाकांक्षी योजना।—अनुवादक

भव पलायन का एक अधम प्रयास होगा जिन्हें हम जानते हैं ? इस प्रश्न का हमारा उत्तर अशत आध्यात्मिक विकास की सभावनाओ के अपने अनुमान पर निभर करेगा ।

हम पहले ही एक सभावना के सम्बन्ध मे लिख चुके हैं कि वह समय ज्यादा दूर नही जब लौकिक अधुनातन पाश्चात्य सभ्यता का विश्वव्यापी प्रसार एक ऐसे सार्वभौम राज्य की स्थापना-द्वारा अपने को राजनीतिक रूप मे परिवर्तित कर लेगा जो भौतिक सीमा रहित एक राष्ट्रमण्डल मे सम्पूर्ण पृथिवी को अपनाकर इस प्रजातिक राजतत्र के आदश की पूर्ति करेगा । इसी सदभ म हमने इस सभावना पर भी विचार किया कि ऐसे निर्माण के अन्दर चारो जीवित महत्तर धर्मों के अनुयायी शायद समझ लें कि एक समय की उनकी प्रतिस्पर्धी प्रणालिया वस्तुत एक ही सत्य ईश्वर तक पहुँचने के अनेक विकल्प—माग हैं और ये माग ऐसे स्थानो से गुजरते है जिनम एक ही मगलमूर्ति की विविध आशिक झलकें देखने को मिलती हैं । हमने यह धारणा भी बनायी कि इस प्रकाश म ऐतिहासिक जीवित चच परस्पर मिल-जुल कर एक ही युयुत्सु चच मे विकसित होकर अन्त मे अनेकता मे एकता को अभिव्यक्त करें। यह मानते हुए कि ऐसा ही होना है, क्या इसका अथ यह होगा कि उस अवस्था म ईश्वर का राज्य पृथिवी पर स्थापित हो जायगा ? खीष्टीय सवत की बीसवी शती क पाश्चात्य जगत् म यह एक अपरिहाय प्रश्न है क्योकि पृथिवी पर किसी न किसी प्रकार के स्वग की स्थापना अधिकाश लौकिक विचार धाराओ का लक्ष्य रही है । इस लखक की राय मे प्रश्न का उत्तर नकारात्मक है ।

इस नकारात्मक उत्तर का प्रकट कारण समाज की प्रकृति एव मनुष्य की प्रकृति म ही दिखायी पडता है । क्योकि समाज व्यक्तियो के कमक्षेत्रो की सवनिष्ठ भूमि के सिवा और कुछ नही है और मानव व्यक्तित्व म बुराई और भलाई की एक सहज क्षमता वतमान है । हमने जिस प्रकार के एक ही युयुत्सु चच की स्थापना की कल्पना की है वह मनुष्य का मूल पाप से मुक्त नही कर सकता । यह जगत ईश्वर के राज्य का एक प्रान्त है किन्तु यह विद्रोही प्रान्त है, और उसके स्वभाव को देखते हुए लगता है कि वह सदा ही ऐसा रहेगा ।

८ वीर-युग

दु खान्तिका की धारा

(१) एक सामाजिक बाँध

जब एक आकषक रूप म सजनात्मक अल्पमत का गर्हित रूप स प्रभुताशाली अल्पमत के रूप म पतन हा जाता है तथा इसी कारण जब एक विकासशील सभ्यता विनष्ट हा जाता है तो इसका एक परिणाम यह होता है कि कभी के आदिम समाज म स उन धर्मान्तरित लोगा का विच्छेद हा जाता है जिन्हें विकासमान सभ्यता अपन सास्कृतिक विकिरण (Radiation) या प्रकाश द्वारा प्रभावित कर रही थी। तब उन भूतपूर्व धर्मान्तरितो का व्यवहार प्रशसा स घोर विरोध म बदल जाता है जहा वे हर बात का अनुकरण करते थे वहा युद्ध क लिए तयार हो जाते हैं। इस युद्ध का दो मे से एक परिणाम हाता है। जहा तक स्थानीय युद्धभूमि आक्रामक सभ्यता का किसी ऐसी प्राकृतिक सीमा तक बढने की सभावना प्रदान करती है जा अभी तक अनौ-गम्य (Unnavigated) सागर या अनतिक्रमित (Untraversed) मरुस्थल या अनारोहित (Unsurmounted) पवतश्रेणी के रूप म रहो हा वहा तक बबरो का निश्चित रूप से पराजित किया जा सकता है किन्तु जहा इस प्रकार की प्राकृतिक सीमा नहीं है वहा भूगोल सनिक कारवाई म बबरो की सहायता करता है, क्योकि वहा पाछे हटते हुए बबर का अपन पृष्ठ भाग (Rear) मे युद्ध के दाव-पच के लिए एसा असाम क्षेत्र प्राप्त हाना है कि बार-बार बदलता लडाई का मोर्चा (Battle front) देर-सबर ऐसी रेखा पर पहुँच जाता है जहा आक्रामक सभ्यता की सनिक श्रेष्ठता, आक्रामक के आधार-केन्द्र से लडाई का मदान बहुत दूर चले जान के कारण, निरथक हो जाती है।

इस रेखा पर हटता-बढता रहने वाला युद्ध किसी सनिक निणय पर पहुँचे बिना एक स्थिर युद्ध म परिवर्तित हो जायगा और दानो पक्ष अपने को ऐसी गतिहीन स्थितियो मे पायेंगे जहा वे एक दूसरे के आस-पास इस प्रकार जीवित रहेंगे जसे सभ्यता के विघटन एव एक दूसरे के विरोधी होने के पूव, सभ्यता के सजनात्मक अल्पमत एव उसके द्वारा धर्मान्तरित लोगो के रूप म साथ-साथ रहते थे। किन्तु साथ-साथ रहते हुए भी इन दोनो दलो के मानसिक सम्बन्ध विरोध से पूव की सजनात्मक अन्योन्य क्रिया (Interaction) म फिर से नहीं बदलते, इसके अतिरिक्त

वे भौगोलिक अवस्थाएं भी पुन नहीं आ पाती जिनमे सास्कृतिक अन्त समागम पहिले सम्भव हुआ था। विकासावस्था मे सभ्यता एवं विस्तृत प्रागण के पार फैली बर्बरता से छायापथ थी जिससे बाहर का आदमी इस आवयक रगस्थली मे सहज ही प्रवेश पा लेता था किन्तु जब मित्रभाव विरोध मे बदल गया तब यह सवाही सास्कृतिक देहली (Limen) एक विसवाही या पृथक्कारी सनिक मार्चे (Limes) मे परिवर्तित हो गयी। यह परिवतन उन अवस्थाओ की भौगोलिक अभिव्यक्ति है जिनसे वीर युग का जन्म होता है।

सच पूछा तो वीर-युग इसी विसवाही सनिक मार्चे की परिणति का सामाजिक एव मनोवज्ञानिक परिणाम है और हमारा प्रयोजन अब यह है कि घटना-क्रम का पता लगायें। इसके लिए एक आवश्यक पाश्वभूमि उन बबर युयुत्सु दलो का सर्वेक्षण है जिन्होने विविध सावभौम राज्यो की सनिक शक्तियो के विविध विभागो से लोहा लिया। इस प्रकार का सर्वेक्षण इस अध्ययन के किसी पिछले भाग मे किया भी जा चुका है जिसमे हमने साम्प्रदायिक धर्म एव महाकाव्य के क्षेत्र मे इन युयुत्सु दलो की विशिष्ट सफलताओ का उल्लेख किया था। अपने वर्तमान अनुसधान मे बिना पुनरुक्ति के हम उपयुक्त सर्वेक्षण से सहायता ले सकते हैं।

एक सनिक मार्चे की उपमा ऐसे प्रतिपधक बाँध से दी जा सकती है जो अब खुली न रह गयी घाटी के आर पार फैला हो—मानवीय कौशल एव शक्ति का एक भव्य स्मारक प्रकृति की अवज्ञा करने वाला—फिर भी अनिष्टकर, अनिष्टकर क्योंकि प्रकृति की अवज्ञा एक ऐसा कौशलपूर्ण काय है जिसे मनुष्य बिना दण्ड पाये नहीं कर सकता।

> "अरब-मुसलमानी परम्परा में कहा गया है कि किसी जमाने मे यमन मे द्रवात्मक इजीनियरिंग (Hydraulic Engineering) का एक विशाल निर्माण था। इसे मआरिब की दीवार या बाँध कहते थे। यमन के पूर्वी पर्वतों से नीचे गिरने वाली जल राशि वहाँ एक विशाल कुण्ड मे संचित होती थी और फिर वहाँ से नहरों के रूप मे निकलकर देश के एक बड़े भूभाग को सींचती थी। उसके कारण खेती की सघन प्रणाली को जीवन प्राप्त होता था और एक घनी आबादी उसके सहारे जाती थी। कहानी मे कहा गया है कि कुछ समय बाद यह बाँध टूट गया और टूटने में हर चीज को नष्ट करता गया। देश निवासियो पर ऐसा विषम सकट आया कि कितने ही कबीले देश छोड़कर बाहर चले गये।"[1]

जो अरब समूह प्रवास (Volkerwanderung)[2] अरब प्रायद्वीप से बड़ी शक्ति एव वेग से निकलकर तीनसान एव पिरेनीज के पार तक फैल गया था, उसके

[1] कतानी, एल "स्तवी दी स्तोरिया ओरियंतेल" भाग १ (मिलन १९११, होयप्ली) पृ २६६

[2] जातियों का सामूहिक प्रवास, विशेषत दक्षिणी एव पश्चिमी यूरोप में टीटानिक जातियों का प्रवास।—अनुवादक

पीछे जो प्रेरणा थी उस पर इस कथा से प्रकाश पडता है। यदि इसे किसी उपमा मे परिवर्तित कर दिया जाय तो यह प्रत्येक सार्वभौम राज्य के प्रत्येक सैनिक मोर्चे की कहानी बन जायगी। सनिक बाध के फट जाने का सामाजिक आपदा कोई अनिवाय दु खान्तिका (Tragedy) है या वह परिहार्य है? इस सवाल का जवाब देने के लिए आवश्यक है कि सभ्यता और उसके बाह्य श्रमजीविवग के बीच जो सम्बन्ध है उसकी प्राकृतिक धारा के साथ बाँध निर्माताओ-द्वारा किये गये हस्तक्षेप के सामाजिक एव मनोवैज्ञानिक प्रभावो का हम विश्लेषण करें।

जब एक बाँध का निर्माण किया जाता है तो उसका पहिला काम होता है उसके ऊपर एक जलकुण्ड की रचना किन्तु यह चाहे जितना बडा हो उसकी एक सीमा तो होती ही है। वह अपने अपवाह क्षेत्र (Catchment Basin) के एक लघु अश से अधिक का सचय कदापि नही कर सकता। बाँध के ठीक ऊपर जो जलमग्न क्षेत्र है उसमे और उस पार पीछे की ओर के ऊँचे एव सूखे क्षेत्र मे तीव्र अन्तर होगा। किसी पिछले सन्दर्भ मे हम पहिले ही उस अन्तर या विरोध का पर्यवेक्षण कर चुके हैं जो किसी सैनिक मोर्चे के अपनी सीमा मे रहने वाले बबरो के जीवन पर पडने वाले प्रभाव और जरा ज्यादा दूर के पृष्ठ प्रदेश (Hinterland) के आदिवासियो का अविचलित अवसन्नता के बीच होता है। स्लाव लाग प्रीपेट के दलदल मे दो हजार वर्षों तक अपना आदिमकालिक जीवन शान्तिपूर्वक बिताते रहे जब कि इसा युग ने पहिले मीनो लोगो के अर्णवतन्त्र' (Thalassocracy of the Minos) की यूरोपीय स्थलसीमा के सन्निकट होने के कारण टीउन बबरो का भी वसे ही अनुभव से गुजरते हुए पाया। जलकुण्ड वाले बबर ऐसे विशेष रूप से क्यो अस्थिर हो गये? और उसके बाद उनको प्राप्त होने वाली ऊर्जा जिसने उन्हें सनिक मोर्चे को तोडकर निकल जाने मे समर्थ किया का स्रोत क्या है? यदि हम पूर्वी एशिया की भौगोलिक स्थिति मे अपनी उपमा का अनुसरण करें तो हम इन प्रश्नो का उत्तर मिल सकता है।

मान लीजिए कि हमारी उपमा मे जो कल्पित बाँध सैनिक मोर्चे का प्रतीक है उत्तरकालिक चीनी प्रदेशो शिनसी एव शानसी के अन्दर से जाने वाली 'महती भित्ति (महान दीवार, 'दि ग्रेट वाल') वाले क्षेत्र की किसी ऊँची घाटी के आर-पार बना है। बाँध के प्रतिस्रोत के मुहाने पर बराबर बढते जाने वाले परिमाण मे गिरती जलधारा का आदि उदगम क्या है? यद्यपि वाह्यत सारे का सारा जल बाँध के ऊपर से निचली धारा मे आ जाता है किन्तु उसका आदि उदगम उस दिशा मे नही हो सकता, क्योकि बाँध एव पाधारा का जल विभाजक (Watershed) के बीच का अन्तर इतना अधिक नही है और पनधारा के पीछे शुष्क मगोलियन पठार ((Plateau) फला हुआ है। वस्तुत जलपूर्ति का आदिस्रोत बाध के ऊपर नही बल्कि उसके नीचे, मगोलियन पठार मे नही प्रशान्त महासागर मे प्राप्त किया जा सकता है क्योंकि उसी का जल सूर्यताप से भाप बनकर पुरवया-द्वारा उडता फिरता और अन्त मे ठण्डी हवा के आघात से वृष्टि के रूप में अपवाह क्षेत्र मे गिर पडता है। मार्चे के बबर पक्ष मे जो मानसिक उर्जा (Psychic Energy) सचित होती है वह नगण्य मात्रा में सीमा

पार के बवरो के अपने लघु सामाजिक दाय से प्राप्त होती है किन्तु उसका अधिकाश उस सभ्यता के विशाल भाण्डार से प्राप्त होता है जिसकी रक्षा के लिए बाँध का निर्माण किया गया है।

मानसिक ऊर्जा का यह रूपान्तरण कैसे हो जाता है ? रूपान्तरण प्रथम किसी सस्कृति का विघटन और नये साँचे मे उसका पुनर्घटन (Recomposition) है। इस अध्ययन मे अन्यत्र हमने सस्कृति के सामाजिक विकिरण की तुलना प्रकाश के भौतिक विकिरण से की है और उस सन्दर्भ मे हम जिन 'नियमो (कानूनो) पर पहुँचे थे उनका स्मरण दिलाना यहाँ आवश्यक है।

पहिला नियम यह है कि समाकल (Integral) प्रकाश किरण की भाँति ही समाकल सस्कृति किरण भी उपेक्षक पदार्थ के अन्दर प्रवेश करते समय, अपने अगभूत तत्त्वो के वर्ण क्रम (Spectrum) मे विवर्तित (Diffracted) हो जाता है।

दूसरा नियम यह है कि यदि विकिरणशील समाज पहिले से ही विघटित होने लगा है तो यह विवर्तन किसी विजातीय समाज निकाय के सघात के बिना भी हो सकता है। विकासमान सभ्यता की परिभाषा यह है कि जिसमे उसके घटको—आर्थिक राजनीतिक और प्रकृत अर्थ मे सास्कृतिक घटको—मे एक दूसरे के साथ सामजस्य हो, और इसी सिद्धान्त के अनुसार एक विघटनशील सभ्यता की परिभाषा यो की जा सकती है कि जिसके उपर्युक्त तीनो घटको मे परस्पर विरोध पदा हो गया हो।

हमारा तीसरा नियम यह है कि एक समाकल सस्कृति किरण का वेग (Velocity) और वेधक शक्ति (Penetrating Power) उन विविध वेगो और वेधक शक्तियो की औसत या माध्य होती है जो विवर्तन के परिणामस्वरूप एक-दूसरे से स्वतन्त्र रूप से गतिशील होने वाले उसके आर्थिक राजनीतिक एव सास्कृतिक घटक प्रदर्शित करते हैं। अविवर्तित सस्कृति की अपेक्षा आर्थिक एव राजनीतिक घटको की यात्रा की गति तीव्र होती है सास्कृतिक घटक अधिक धीमी गति से यात्रा करते हैं।

इस प्रकार एक विघटनशील सभ्यता तथा सैनिक मोर्चे के पार के उसके विच्छिन्न बाह्य श्रमजीविवर्ग के बीच सामाजिक समागम मे सभ्यता के विवर्तित विकिरण का दुखद ह्रास होता है। आर्थिक एव राजनीतिक समागम—व्यापार एव युद्ध—के अतिरिक्त व्यवहारत सब ओर समागम समाप्त हो जाता है इनमे से भी अनेक कारणो से व्यापार अधिकाधिक सीमित और युद्ध अधिकाधिक गहरा होता जाता है। कुटिल लक्षणा के इस प्रभाव मे जो कुछ वरणशील अनुकरण होना भी है वह बबरो के अपने अभिक्रम (Initiative) या पहल पर होना है। वे केवल उन तत्त्वो का अनुकरण करने की पहल करते हैं जिन्हे वे ऐसे रूप मे स्वीकार करते है कि नकल का अरुचिकर उद्गम छिपा ही रह जाय। मान्य रूपान्तरो तथा सचमुच नवीन कृतियो दोनो के उदाहरण हम इस अध्ययन के किसी पूर्व भाग मे दे चुके हैं। यहाँ हम इतना ही स्मरण दिलाना चाहते हैं कि 'कुल' वाले बबरो के लिए सन्निकट की सभ्यता के महत्तर धर्म को अपसिद्धान्त के रूप मे ग्रहण कर लेना स्वाभाविक है (उदाहरणार्थ गोथो का एरियन विधर्मी ईसाई धर्म)। इसी प्रकार सलग्न सार्वभौम राज्य के सीजर

तन्त्र को ऐसे स्वेच्छाचारी राजतन्त्र के रूप मे ग्रहण कर लना भी उनके लिए स्वाभाविक है जो किसी कबीलाई कानून (Tribal law) पर नहीं, बल्कि सैनिक दबदबे पर आधारित हैं। मौलिक सृष्टि की बबर क्षमता वीर काव्य मे व्यक्त होती है।

(२) चाप सचय (एक्यूमुलेशन आव प्रशर)

सनिक मार्चे का स्थापना स जो सामाजिक बाड निर्मित होती है उस पर भी प्रकृति के वही नियम लागू होन है जो बाध के निर्माण स पदा होने वाली भौतिक बाड पर लागू होते है। बाध के ऊपर सचित जलराशि नीचे के पानी के साथ एक स्तर पर होना चाहती है। मौलिक बाध के ढाचे म इजीनियर जल कपाटो (Sluices) के रूप म सुरक्षा वाल्वो (Safety valves) की योजना करता है जिन्हे परिस्थिति के अनुसार खोला या बन्द किया जा सकता है। सनिक मोर्चे का निर्माण करने मे राजनीतिक इजीनियर भी इस सुरक्षा युक्ति की उपेक्षा नही करते। किन्तु इस मामले म युक्ति केवल जल प्रलय (Cataclysm) को अवलम्बित कर देती है। सामाजिक बाध के अनुरक्षण म नियमित जल निस्सारण द्वारा दाब या चाप का निवारण असभव है बाध को हानि पहुचाये बिना जलकुण्ड से पानी बाहर नही निकल सकता क्योंकि बाध के ऊपर जो पानी होता है वह वर्षा या सूखे मौसम म क्रमश बढने और घटने की जगह इस मामले मे स्वभावत निरन्तर बढता ही रहता है। आक्रमण और प्रतिरक्षा (Attack and defence) की प्रतियोगिता म, अन्तत आक्रमण की ही विजय होती है। समय बबरो के अनुकूल है। हा, यह सम्भव है कि अपने मोर्चे के पीछे स विघटित होती हुई सभ्यता के अभिलषित क्षेत्र म टूट पडने और उसे आप्लावित कर देने म लम्बा समय लग जाय। यह भी सम्भव है कि इस लम्बी अवधि मे बबरो की भावना उस सभ्यता से प्रभावित एव विकृत भी हो जाय जिससे उन्हे विच्छिन्न कर दिया गया है। यह लम्बी अवधि, जिसम मोर्चा टूट जाता है और बबर द्रुत गति से बढ चलते हैं, वीरयुग की आवश्यक भूमिका है।

मोर्चे के निर्माण से सामाजिक शक्तियो का एक ऐसा अभिनय शुरू हो जाता है जिसका निर्माताओ के लिए सकटापन्न अन्त होना निश्चित है। उस पार के बबरो स समागम-हीनता की नीति बिल्कुल अव्यावहारिक है। साम्राज्य सरकार जो भी निश्चय करे किन्तु व्यापारी अग्रगामी और दुस्साहसी तथा इसी प्रकार के और लोग उस अनिवार्यत सीमा के उस पार खीच ले जायगे। ईसाई सवत् की चौथी शती के अन्त म यूरेशियाई अनुवर मदानो का लाघकर आने वाल हूण यूरेशियाई खानाबदोशो अथवा यायावरो के साथ रोमन साम्राज्य के सम्बन्धो का इतिहास इसका एक उल्लेखनीय उदाहरण प्रस्तुत करता है कि किसी सावभौम राज्य के सीमावासी लोग सीमा पार के बबरो स किस प्रकार मिल-जुलकर काम करने लगते हैं। यद्यपि हूण बड़े ही रक्त पिपासु बबर थे और यद्यपि रोमन साम्राज्य के यूरोपीय मार्चे पर उनकी प्रधानता क्षणस्थायी थी फिर भी इस लघु अवधि के समकालिक विवरण के जो अवशेष प्राप्त है उनम इस प्रकार के भाईचारे के तीन महत्त्वपूर्ण मामलो का उल्लेख

है। इनमें भी सबसे आश्चयजनक मामला तो ओरेस्तीज नाम के एक पन्नोनियन रोमन नागरिक का है जिसके पुत्र रोमुलस आगस्तुलस ने, पश्चिम के अन्तिम रोमन सम्राट के रूप म कलक्पूण महत्त्व प्राप्त किया। यही ओरेस्तीज कुछ समय तक प्रसिद्ध सेनानायक अटटिला का सचिव रहा था।

अप्रभावपूण रूप से विलग मोर्चे को पार कर बाहर जाने वाले पदार्थों म शायद युद्धास्त्र ही सबसे महत्त्वपूण थे। यदि बबरो को सम्यता के गढ म निर्मित अस्त्रो के प्रयोग का अवसर न मिला होता तो वे इतनी सफलता के साथ आक्रमण न कर सके होते। ब्रिटिश भारतीय साम्राज्य के पश्चिमोत्तर सीमा त पर १८९० ई के बाद 'कबीलाई क्षत्र म राइफलो एव गोला-बारूद के प्रवाह न सीमान्त युद्ध का स्वरूप एकदम से बदल दिया।[1] पहिले सीमापार के पठानो एव बलूचियो तक आधुनिक पाश्चात्य लघु शस्त्रास्त्रो के पहुचने का साधन ब्रिटिश भारतीय सेनाओ पर छापा मारकर डकैती कर लेना मात्र था, 'इसम कोई बड़े खतरे या चिता की बात न थी किन्तु जब फारस की खाडी से, जो बुशहर और मस्कत दोनो स्थानो पर अग्रेज व्यापारियो के कब्जे मे थी, उनके पास बहुत ज्यादा हथियार पहुचने लगे तो चिन्ता की बात हो गयी।'[1] इस मामले में साम्राज्य की प्रजा के निजी हित को साम्राज्य सरकार के सावजनिक हित पर प्रधानता देकर बबरो को दूर रखने की जगह उनके साथ व्यापार करने का एक उल्लेखनीय उदाहरण मिलता है।

किन्तु सीमा पार का बबर सन्निकट की सम्यता से सीखी हुई श्रेष्ठतर चालो का प्रयोग करके ही सन्तुष्ट नही हो जाता, वह प्राय उनमे सुधार भी करता है। उदाहरणाथ करोलिंगियन साम्राज्य तथा वैसेक्स के राज्य की सामुद्रिक सीमाओ पर स्कन्देनवियन जलदस्युओ ने सम्भवत उन्नीयमान पाश्चात्य ईसाई जगत के फ्रीजियन समुद्री सीमा-वासियो से जलयान निर्माण तथा नौकानयन का कौशल सीखकर उसका ऐसा अच्छा उपयोग किया कि उन्होंने समुद्र पर अपना आधिपत्य ही स्थापित कर लिया। यही नही उसके साथ आक्रामक युद्ध म उन्होंने पहल करनी भी शुरू कर दी और अपने शिकार पाश्चात्य ईसाई देशो के विरुद्ध उनकी नदियो एव समुद्री किनारो पर कारवाई का आरम्भ कर दिया। नदियो पर बढते हुए वे उस सीमा तक पहुच गये जहा तक नौ-परिवहन सम्भव था। तब अनुकरण में प्राप्त एक वस्तु को उन्होंने दूसरी से बदल लिया और चुराये हुए घोडो पर सवार होकर अपना अभियान जारी रखा क्योंकि उन्होंने नौकानयन की फ्रीशियन कला के साथ ही अश्वारोही युद्ध की फ्रैंकिश कला भी सीख ली थी।

समरास्त्र के लम्बे इतिहास म एक बबर-द्वारा सम्यता मे प्राप्त किये हुए शस्त्र के उसी के विरुद्ध प्रयोग करने का सबसे नाटकीय उदाहरण है नयी दुनिया (अमरिका) जहा अश्व का तबतक किसी को ज्ञान भी न था जबतक कि

[1] डेवीज, सी सी 'दि प्राब्लम आव दि नाथ वेस्ट फ्रण्टियर १८९० १९०८' (कम्ब्रिज १९३२, यूनीवर्सिटी प्रेस), पृ १७६

कोलम्बस के बाद के पाश्चात्य ईसाई अनधिकार प्रवेशकों-द्वारा उसका वहा आयात नहीं किया गया। जो पालतू पशु पुरानी दुनिया मे खानाबदोश पशु प्रजनकों का मुख्य जीवनाधार था उसका मिसिसिपी द्रोणी के महान मैदानो में अभाव होने के कारण जहा वह कृषकों का स्वग बन सकता था वहा उन कबीलियो का शिकारगाह मात्र बनकर रह गया था, जो बड़े श्रम से पदल अपने शिकार का पीछा करते थे। जो एक आदश अश्व देश था उसमे ही अश्व के इस विलम्बित आगमन का आप्रवासी तथा मूलवासी दोनो के जीवन पर प्रभाव पडा। दोनो पर हो पडने वाला प्रभाव यद्यपि क्रान्तिकारी था किन्तु अन्य प्रत्येक विषया मे एक-दूसर से भिन्न था। टेक्सास वेनेजुला तथा अर्जेण्टाइना के मदान मे अश्व के प्रचलन ने डेढ सौ पीढियो के कृषका के वशजो को खानाबदोश पशु प्रजनकों मे परिवर्तित कर दिया, साथ ही उसने न्यू स्पेन के स्पेनी वायसराय शासित उपनिवश तथा अंग्रेजी उपनिवेशो की (जो बाद मे सयुक्त राज्य बन गये) सीमाओ के पार महत् मदानों मे रहने वाले 'इण्डियन' कबीलो को सचल अश्वारोही युयुत्सु दनो म बदल दिया। बाहर से ग्रहण किये हुए इस शस्त्र ने यद्यपि इन सीमा पार के बबरो को अन्तिम विजय नही प्रदान की किन्तु उसने उनके अन्तिम पराभव को स्थगित अवश्य कर दिया।

जबकि ईसाई सवत की उन्नीसवी शती ने उत्तरी अमेरिका के प्रशाद्वलवासी इण्डियनो को अनधिकार प्रवेशी यूरोपीय के ही एक शस्त्र का उसके मूल स्वामी के विरुद्ध प्रयोग करते और आयात किये हुए अश्व की सहायता से मदानो क स्वामित्व के विषय मे उससे लडते देखा तब उसके पहिले ही अठारहवी शती के वनवासी इण्डियना को छद्म सघष एव घात में यूरोपीय बन्दूको का प्रयोग करते वह दख चुकी थी। बन्दूक के साथ घने जगल ने इण्डियन की दोस्ती निबाही और इन दोनो का मिलन उन समकालिक यूरोपीय सनिक चालो से श्रेष्ठ सिद्ध हुआ जिसकी सवृत रचना, निश्चित गति और अजस्र गोलीवर्षा बिना सोचे समझे दुश्मना के विरुद्ध प्रयुक्त होने के कारण, स्वय विनाश को प्राप्त हो गयी। दुश्मन ने यूरोपीय बन्दूक को अमरीकी जगल की स्थिति के अनुकूल बना लिया था। इसलिए वे ज्यादा अच्छे रहे। जब आग्नेयास्त्रा (Fire Arms) का आविष्कार नही हुआ था तब भी एक आक्रामक सभ्यता मे प्रचलित अस्त्रा को इसी प्रकार वनस्थितियो के अनुकूल बनाकर उत्तरी यूरोप क ट्रासरेनेन वनो के बबर निवासियो ने उन रोमनो के आक्रमण से शान्त वनश्री युक्त जमनी को बचा लिया था जिन्होंने इसके पहिल ही आशिक रूप से वनो को काट कर खेती करने वाले गाल पर कब्जा कर लिया था। इन बबरा ने ईसवी सवत् ९ मे टीटोबगर वाल्ड मे गहरी एव निर्णायक पटकान दी थी।

रोम-साम्राज्य एव उत्तरी-यूरोपीय बबरो के बीच जो सैनिक सीमा रेखा अगली चार शतिया तक बनी रही वह स्वय ही अपना स्पष्टीकरण प्रस्तुत करती है। यह वही रेखा थी जिसके पार एक जगल हिमाच्छादन (Glaciation) की अन्तिम पाली के बाद से बराबर राज्य करता आया था और उस कृषक मानव (Homo Agricola) के सब कार्यों पर अब भी प्रबलता के साथ छाया हुआ था, जिसने भूमध्यसागर से

आने वाली रोमी सेनाओ के लिए राइन एव डैन्यूब तक रास्ता बना दिया था। यह रेखा रोम-साम्राज्य के दुर्भाग्य से यूरोप महाद्वीप का अतिक्रमण करने वाली सबसे लम्बी रेखा थी और इसके बाद से सीमा पार बबरो की बराबर बढती हुई कुशलता से लोहा लेने के लिए रोम को साम्राज्य सेनाओ मे निरन्तर सख्या की वृद्धि करनी पडी।

इस पश्चिम के रग म रगती जाने वाली दुनिया म जो इन पक्तियो के लिखन के समय तक नाममात्र के अश को छोड भूमण्डल की समस्त निवास योग्य तथा पारगम्य सतह पर छा गयी है अब तक कुछ ग्राम्य राज्य बच गये है। इन ग्राम्य राज्यो की स्थानीय बबर विरोधी सीमाओ पर बबरो के जो अविनयी अमानुषिक बन्धु थ उनम स दो को आधुनिक पाश्चात्य औद्योगिक प्रविधि न पहिले ही पछाड दिया था। जगल तो बहुत पहले ठण्डे फौलाद का शिकार हो चुका था अनुवर मदान या स्टेपी म भी मोटरकार एव हवाई जहाज प्रविष्ट हो चुके थे। परन्तु बबरा के साथी पवत को तोडने म जरा कठिनाई हुई। बबरवाद का उच्चपवतीय पदावल दस्ता (Highlander rearguard) अपनी सबसे अतिम निरवलम्ब आशाओ मे आकपक प्रवीणता के साथ अपन भूप्रदेश से औद्योगिक पाश्चात्य सनिक प्रविधि की कुछ ताजी चालो का प्रयोग करने लगा है। इसी प्रकार मोरक्को के स्पेनी एव फरासीसी अधिक्षेत्रो के बीच स्थित सैद्धान्तिक सीमा पर रहने वाले रीफ हाईलण्डरो ने १६२१ मे आवन स्थान पर स्पेनियो पर जो कहर मचाया उसकी तुलना सन ६ ई म टीटोबगरवाल्ड म चेरुस्की तथा उनके पडोसियो द्वारा किये गये वरुस की तीन अक्षौहिणियो के विनाश से ही की जा सकती है। उन्होंने १६२५ ई मे पश्चिमोत्तर अफ्रीका की फरासीसी सरकार की नीव हिला दी। १८४६ से जब अग्रेजो ने बबर विरोधी सीमा सिखो से ली थी १६४७ ई तक ६८ वर्षों की अवधि म हाथ की ऐसी ही सफाई के साथ वजीरिस्तान के महसूदो ने उनको पराजित करने के ब्रिटिश प्रयत्नो को बार-बार विफल किया। १६४७ ई म तो अग्रेजो ने बिना किसी समाधान के पश्चिमोत्तर भारतीय सीमा का भयानक उत्तराधिकार पाकिस्तान को सौंप दिया।

१६२५ ई म रीफी आक्रमण फरासीसी पश्चिमोत्तर अफ्रीका के मुख्य क्षेत्र से मोरक्को के फरासीसी अधिकृत क्षेत्र को जोडने वाले गलियारे (Corridor) को काटने म सफल होते होते रह गया। रीफी प्रयत्न जरा ही असफल रह गया यदि वह सफल हो गया होता तो भूमध्यसागर के दक्षिण तट पर स्थित समस्त फरासीसी साम्राज्य खतरे म पड गया होता। इसी प्रकार का विराट भारतीय ब्रिटिश राजहित तब भी खतरे म पड गया था जब १६१६ २० ई म वजीरिस्तान म महसूद बबरो ने ब्रिटिश भारतीय साम्राज्य की सेनाओ से मोर्चा लिया था। रीफी युद्ध की भाति इस अभियान म भी युद्ध-सलग्न (Belligerent) बबरो की शक्ति उन आधुनिक पाश्चात्य शस्त्रास्त्रो एव चालो को चतुराई के साथ अपना लेने और उन्हें पहाडी क्षेत्र के अनुरूप बना लेने म थी जिनका पाश्चात्य आविष्कारको द्वारा बनाए गए ढग पर प्रयोग करना बबरो की स्थिति म बेकार था। १६१४ १८ के महायुद्ध म यूरोपीय मोर्चे के लिए आविष्कृत भारी एव महगा साजसामान जो सघटित सेनाओ के बीच चौरस भूमि पर लडने के

लिए उपयुक्त था, पवतश्रेणियो के पीछे छिपकर लडन वाले कबायली दलो के लिए उनकी अपेक्षा बहुत कम प्रभावशाली रह गया।[1]

जिन सीमावर्ती बबरो ने १९१९ ई म महसूदा द्वारा तथा १९२५ ई म रीफियो-द्वारा प्रदर्शित सनिक कुशलता प्राप्त कर ली है उन्ह अनिणयात्मक रूप से पराजित करने के लिए भी त्रस्त मोर्चे के पीछे की शक्ति को इतना प्रयत्न करना पडता है जो—सख्याबल या सामग्री या रुपये किसी भी माप से—उसके परेशान करने वाले विरोधियो के उन तुच्छ साधनो म बहुत अधिक होता है जिन पर यह भारी भरकम प्रत्याक्रमण किया जाता है। जिसे १८८१ ई म श्री ग्लडस्टन न सभ्यता के साधन[2] कहा था वह इस प्रकार के युद्ध म बाधा-स्वरूप भी हो सकता है और सहायक भी। ब्रिटिश भारतीय सेनाओ की गति उन बहुसख्यक मशीनी पुर्जो के कारण ही अवरुद्ध हो गयी थी जिन पर अपनी ही श्रेष्ठता के प्रतिपादन क लिए वह निभर करती थी। फिर एक ओर जब ब्रिटिश भारतीय सनाए अपन बाहुल्य के कारण ही शीघ्रतापूवक और प्रभावशाली रूप से आक्रमण करन म असमथ सिद्ध हुइ तब दूसरी ओर महसूदा के पास इतना कम था कि समझ मे नही आता था कि किस चीज पर आक्रमण किया जाय। किसी दण्डात्मक अभियान का प्रयोजन होता है दण्डित करना किन्तु कोई ऐसे समुदाय को कैसे दण्डित करे? उन्ह अकिंचनता पर पहुँचा दे? पर वे तो पहले से ही अकिंचन थे। भले उनका इसम मजा न मिलता हो पर ऐसे जीवन को उन्होने अपन लिए अनिवाय मानकर अगीकार कर लिया था। जिसे टामस हा स ने 'प्रकृति की अवस्था (State of Nature) कहा है वसा ही उनका जीवन था—ऐका न्तिक, दीन, मलिन, पाशव एव लघु। उसे और ऐकान्तिक तथा दीन, मलिन और पाशव तथा लघुनर बनाना सम्भव न था और यदि सम्भव भी होता तो क्या किसी को यह भरोसा हो सकता था कि वे इसकी कुछ ज्यादा परवाह करेंगे? यहा हम एक ऐसे दृष्टिबिन्दु पर पहुँच रहे हैं जिसे इस अध्ययन के किसी पूव भाग म हम किसी दूसरे सन्दभ म प्रकट कर चुके हैं। वह यह कि एक

[1] इसी प्रकार १८०८ १८१४ के प्रायद्वीपीय समर (Peninsular war) के योद्धाओं ने जिन चालों को अपनाकर बार बार नेपोलियन की सेना को पराजित किया था, उन्हीं चालों के साथ वे आसानी से १८१४ ई मे न्यू आर्लियन्स में ऐण्ड्रू जक्सन द्वारा, जिसने सीमावासियों का तरीका अपना लिया था, हरा दिये गये।

[2] ग्लडस्टन ने पालमेण्ट की साधारण सभा (हाउस आफ कामन्स) मे कहा था—'सभ्यता के साधन समाप्त नहीं हुए हैं।" उस समय उनका अभिप्राय यह था कि अन्ततोगत्वा ब्रिटिश शासन आयरलण्ड क राष्ट्रीय आन्दोलन एव अपराध के नियन्त्रण के लिए काफी सशक्त साबित होगा। यह उनकी गलती थी। ४० साल बाद 'सभ्यता' ने अपनी थकान को स्वीकार कर लिया और 'आयरिश फ्री स्टेट' स्थापित करने वाली सन्धि पर हस्ताक्षर कर दिया।

आदिकालिक समाज निकाय उच्च भौतिक सभ्यता का उपभोग करने वाले समाज निकाय की अपेक्षा ज्यादा सरलता एव शीघ्रता से पुन शक्ति प्राप्त करता है। वह उस तुच्छ कीट की भाति है जो आधा काट देने पर भी इस बात की ओर कोई ध्यान नही देता और पूववत् अपना काम करता रहता है। पर अब हमें उन रीफिया और महसूदो को छोडकर लौट पडना चाहिए जो अभी तक तो सभ्यता पर अपने प्रहारो को किसी सफल परिणाम तक पहुचाने म असमथ रहे हैं और दु खान्तिका के उपक्रम की परीक्षा का काय पुन आरम्भ कर देना चाहिए।

सीमान्त युद्ध के जिस आरोह या उत्कष ने सनिक शक्ति के सतुलन म एक क्रमिक परिवतन उपस्थित कर दिया वह निरन्तर बढत जान वाले कर भार के कारण उसकी अथव्यवस्था पर भारी बोझ डालकर सम्बद्ध सभ्यता को बराबर दुबल भी बनाता जाता है। दूसरी ओर वह बबरों की सनिक क्षुधा को उत्तेजित करता है। यदि सीमा पारवर्ती बर्बर अपरिवर्तित आदिमकालिक मानव ही बना रहता तो उसकी समस्त ऊर्जाओं का अधिकाश शान्ति की कला के प्रति ही समर्पित हो जाता और उसके शान्तिपूण श्रम से उत्पन्न वस्तुओं के दण्डात्मक विनाश का उसी अनुपात म उस पर अधिक अवपीडक (Coercive) प्रभाव पडता। अब तक पडोसी सभ्यता से आदिमकालिक समाज के नैतिक विच्छेद की दु खान्त कहानी यही रही है कि सीमान्त युद्ध-कला में विशेषज्ञता प्राप्त करने के लिए बबर अपनी पवकालिक शान्तिपूण उत्पादनक्षमता की अवज्ञा करता रहा है वह पहले आत्मरक्षा और *बाद मे अपनी जीविका प्राप्त करने की और उत्तेजक प्रणाली या विकल्प प्राप्त करने* की दृष्टि से हल के स्थान पर तलवार एव भाले को ग्रहण कर लेता है।

सीमान्त युद्ध में दोनों प्रतिपक्षियो के लिए भौतिक परिणाम में जो महत्त्वपूण विषमता होती है वह दोनों के नैतिक आधार की महती एव वद्धिमती असमानता म व्यक्त होती है। विघटनशीला सभ्यता की सन्तति के लिए निरन्तर चलन वाला सीमान्त युद्ध, बराबर बढते जाने वाले वित्तीय व्यय का भार लिये आता है दूसरी ओर बबर प्रतिपक्षी के लिए वह युद्ध बोझ नही वर अवसर है चिन्ता नही बल्कि उल्लास है। ऐसी स्थिति में यह कोई आश्चय की बात नही कि जो दल मोर्चे का कर्त्ता एव शिकार दोनो होता है वह अपने बबर शत्रु को अपने पक्ष म लाने के अतिम कायसाधक का प्रयोग किये बिना विनाश को स्वीकार नहीं कर सकता। इस अध्ययन के किसी पूव भाग मे हम इस नीति के परिणाम की जाँच कर चुके हैं। और यहां हम अपने इस पूव निष्कष को दोहरान की आवश्यकता नहीं है कि मोर्चे के पतन का प्रतिकार करने का यह कायसाधक जिस सकट को रोकने के लिए बनाया जाता है उसी को और निकट ला पटकता है।

सामा-पारवर्ती बबरों के पग में तुला के निष्ठुर झुकाव को रोकने के लिए रोम साम्राज्य ने जो सघष किया उसके इतिहास में अपने साथी बबरों को दूर रखने के *लिए बबरों की ही सहायता लेने की नीति स्वय असफल हो गयी* क्योंकि यदि हम सम्राट थियोडोसियस प्रथम के शासन में एक विरोधी आलोचक की बात पर

विश्वास कर तो रोमनो ने खुद एक ओर तो बबरो को रोमी युद्धकला सिखला दी, दूसरी ओर उन्हे साम्राज्य की दुबलता स भी परिचित करा दिया ।

"रोमी सेनाओं में अनुशासन का अन्त हो चुका था और रोमन तथा बबर के बीच का समस्त भेद टूट चुका था। दोनों श्रेणियों की सेनाए निम्न स्तर पर एक दूसरे से बिल्कुल खिलत मिल्त हो चुकी थीं क्योंकि सनिक इकाइयों के आधार पर निर्मित सनिकों का रजिस्टर तक अद्यतन नहीं रखा जाता था। इस प्रकार (सीमापारवर्ती बबर युयुत्सु दलों से भागकर रोमी साम्राज्य सेना मे आये हुए बबर भगोडे) रोमन सेना मे भरती हो जाने के बाद, अपने घर जाने और अपनी जगह एवजी दे जाने के लिए तबतक स्वतन्त्र थे जबतक कि अपनी इच्छा से वे रोमनों की अधीनता मे व्यक्तिगत सेवा करने के लिए तयार नहीं होते थे। रोमन सनिक दलों में फली हुई इस प्रकार की निपट अव्यवस्था बबरों स छिपी नहीं थी क्योंकि समागम के लिए द्वार उन्मुक्त कर दिये जाने के कारण भगोडे उन्हें पूरी सूचना देने मे समय थे। बबरों का निष्कष यह था कि रोमी राज सस्था का प्रबन्ध इतना बुरा हो चुका था कि वह निश्चित रूप से आक्रमण को आमन्त्रित करता था।"[1]

जब इस प्रकार के भाड़े के टट्टू समूह रूप में पक्ष-परिवतन करते है तो इसमे कोई आश्चय नही कि वे प्राय एक लडखडाते हुए साम्राज्य पर अन्तिम प्रहार (Coup de grace) करन म सफल होते हैं। किन्तु हमे अभी इसका स्पष्टीकरण करना तो शष ही है कि जसा प्राय देखने मे आता है वे अपने मालिको के विरुद्ध कसे हो जाते हैं ? क्या उनका व्यक्तिगत हित उनके काम की जिम्मेदारियो से मेल नही खाता ? कभी-कभी छापा मारकर जो कुछ वे पा जाते हैं उससे तो जो वेतन नियमित रूप से व प्राप्त कर रहे है वह ज्यादा लाभप्रद और ज्यादा सुरक्षापूण है। तब वे गद्दार—द्रोही क्या हो जाते है ? इसका उत्तर यह है कि जिम साम्राज्य की रक्षा के लिए उसे भाडे पर रखा गया है उसके विरुद्ध होकर बबर भृतिभोगी निश्चय ही अपने भौतिक हित के विरुद्ध काय कर रहा है किन्तु ऐसा करने मे वह कोई भी आश्चय का काम नही कर रहा है। मनुष्य शायद ही कभी प्रमुखत आर्थिक मानव के रूप म काम करता है और गद्दार भृतिभोगी का आचरण ऐसे मनोवेग (*Impulse*) से नियन्त्रित होता है जो किसी भी आर्थिक विचार से अधिक प्रबल होता है। सीधा तथ्य यह है कि जिस साम्राज्य से उसन वेतन लिया है उससे वह घृणा करता है। और दोना पक्षो के बीच जो नैतिक खाइ है वह किसी ऐसे व्यावसायिक या स्वाथमूलक कृत्य से सदा के लिए नही भरी जा सकती जो बबर-द्वारा किसी आन्तरिक इच्छा के परिणामस्वरूप नही किया गया है। जिस सभ्यता की रक्षा का भार उसे दिया गया है उसमें भाग लेने की उसे कोई इच्छा नही है। इस सभ्यता के प्रति उसमे श्रद्धा या अनुकरण की वह वृत्ति नही है जो इसी सभ्यता की आकषक विकासावस्था म उसके पूवजो की थी। अनुकरण की धारा

[1] जोसियस हिस्त्वायर, भाग ४, अध्याय ३१ §§ १ ३

की दिशा तब से उलट गयी है और इसकी जगह कि सभ्यता के प्रति बर्बर की आंखों में आदर की भावना हो सभ्यता के प्रतिनिधि की आंखों में बर्बर के प्रति सम्मान की भावना है।

> प्रारम्भिक रोमा इतिहास को असाधारण कृत्य करने वाले साधारण लोगों का इतिहास कहा गया है। उत्तरकालिक साम्राज्य में सिवा नेमी (routine) काम के असाधारण आदमी भी कोई और काम नहीं करते थे, और चूंकि साम्राज्य ने साधारण आदमी उत्पन्न एवं प्रशिक्षित करने में सदियां बिता दी थीं इसलिए उसके अन्तिम काल के असाधारण मनुष्य—स्टिलिको, ऐटियस इत्यादि—ज्यादा तर बर्बर जगत से उद्भूत हुए थे।"[1]

(३) जल-प्रलय और उसके परिणाम

जब बांध फट जाता है तो उसमें संचित सम्पूर्ण जल भयानक रूप से सीधी ढलान पर से नीचे आता है और समुद्र में चला जाता है बहुत दिनों से प्रतिबंधित शक्तियों की यह मुक्ति एक तिहरे संकट को जन्म देती है। पहले तो बाढ़ टूटे हुए बांध के नीचे की शस्य श्यामला धरती में मानव की कृतियों का अन्त कर देती है। दूसरे शक्ति एवं जीवन देने वाला जल समुद्र में जा गिरता है और मनुष्य के किसी प्रयोजन में आये बिना व्यर्थ नष्ट हो जाता है। तीसरे, पानी निकल जाने से कुण्ड खाली हो जाता है उसके ऊँचे तट सूख जाते हैं और फलस्वरूप जो हरियाली वहाँ उग आयी थी उसे मौत निगल जाती है। सारांश यह कि बांध के दृढ़ रहने पर जो जल अनेक प्रकार से आदमी के काम आता था वह सर्वत्र प्रलय मचा देता है—उस भूमि में भी जिसे वह नंगा-सूखा छोड़ जाता है और उस भूमि में भी जिसे वह डुबा देता है। यह सब बांध-द्वारा जल के उस नियन्त्रण के हटते ही हो जाता है जिसे इतने समय तक वह उस पर रखे हुए था।

भौतिक प्रकृति के साथ मनुष्य की प्रतियोगिता की यह घटना इसे दर्शाने वाली एक अच्छी उपमा है कि सैनिक मोर्चे के नष्ट हो जाने के बाद क्या होता है। उसके परिणामस्वरूप जो सामाजिक जल प्रलय होता है वह सभी सम्बन्धित लोगों के लिए एक संकट है किन्तु विनाश का भार सबके लिए एक-सा नहीं होता बल्कि जिसकी आशा की जा सकती थी उसका उलटा होता है क्योंकि प्रधान पीड़ित लोग वे नहीं होते जो विनष्ट सार्वभौम राज्य की भूतपूर्व प्रजाओं में थे वरन् प्रकट रूप से विजयी दीखने वाले स्वयं बर्बर होते हैं। उनकी विजय ही उनके नाश का अवसर बन जाती है।

इस विरोधाभास का स्पष्टीकरण क्या है? बात यह है कि मोर्चा न केवल

[1] कौलिंगउड, आर जी, कौलिंगउड, आर जी एवं मायर्स जे एन एल कृत रोमन ब्रिटेन एण्ड इंग्लिश सेटिलमेण्ट्स, द्वितीय संस्करण में (आक्सफर्ड १९३७, क्लेयरेण्डन प्रेस), पृ० ३०७

सभ्यता की प्राचीर का काम करता था वरं स्वय आक्रामक बबर के अन्तर म जो आत्म विनाशकारी आसुरी शक्तिया छिपी थी उनके विरुद्ध भी वह एक दबी सुरक्षा का उपाय था। हम देख चुके है कि मोर्चे की निकटता सीमापारवर्ती बबरो मे एक शारीरिक बचनी पदा करती है क्योकि मोर्चे के अन्तगत सभ्यता-द्वारा उत्पन्न मानसिक ऊर्जा की वर्षा से उनकी पूववर्त्ती आदिमकालिक अथ व्यवस्था और सस्थाए विघटित हो जाती है। यह मानसिक ऊर्जा ऐसी बाड क पार लगायी जाती है जो एक विकासमान सभ्यता और उसकी आकषक एव मुक्त देहली क पार के आदिकालिक धर्मान्तरित क बीच क सम्बन्धो क प्रकृत परिणाम, अर्थात् अधिक पूण और अधिक सफल समागम क लिए स्वय बाधक होती है। हम यह भी देख चुके हैं कि जबतक बबर मामा स बाहर रहता है तबतक वह इस विजातीय मानसिक ऊर्जा की बाड का कुछ अश सास्कृतिक—राजनीतिक, कलापूण एव धार्मिक—उपज, म रूपान्तरित करन म सफल होता है। ये वस्तुए अशत सभ्य सस्थाओ की अनुकृति एव अशत बबरो की अपनी नयी कृति होती है। मतलब यह कि जबतक बाध उस मनोवैज्ञानिक विक्षोभ को अपनी सीमा म रखता है जिसका असर बबर पर पड सकता है तबतक उसका विशेष भ्रष्टकारी प्रभाव नही पडता और यह सुरक्षाकारी मोड खुद उस मोर्चे की उपस्थिति के कारण हो प्राप्त हो जाता है जिसे नष्ट करने पर बबर तुला होता है क्योकि मोर्चा जबतक चलता है तबतक किसी न किसी मात्रा मे वह आदिमकालिक मानव क उस अनुशासन का एक विकल्प प्रदान करता है जिसे खोकर तथा आदिम कालिक प्रथाओ क टूट जान पर आदिम मानव सीमापारवर्ती बबर मे परिवर्तित हुआ है। मोर्चा उसे पूरा करने को कुछ काम देता है, पूर्ति के लिए कोई लक्ष्य प्रदान करता है लोहा लेने के लिए कुछ कठिनाइया सामने रखता है और इन सबके कारण उसकी कमण्यता बराबर अपन स्थान पर बनी रहती है तथा उसे अनुशासित कर देता है।

जब मोर्चे का अकस्मात् पतन हो जाता है और फलत यह सुरक्षा नष्ट हो जाती है कुछ अनुशासन भी दूर हो जाता है और उसी के साथ बबर को ऐसे कृत्य करने के लिए विवश होना पडता है जो उसके लिए बडे कठिन होते है। यदि सीमापारवर्ती बबर अपन आदिमकालिक पूवज की अपेक्षा अधिक पाशविक और अधिक कपटी है तो यह उत्तरकालिक बबर जिसने सीमा को तोड डाला है और मत साम्राज्य क परित्यक्त प्रदेश म एक उत्तराधिकारी राज्य का निर्माण किया है, उससे भी ज्यादा भ्रष्ट हो जाता है। जबतक मोर्चा कायम रहता है सफल छापे की लूट का उपभोग करने मे उसकी आलस्यपरक इन्द्रिय-लोलुपता का मूल्य उसे उस दण्डात्मक अभियान के विरुद्ध की जाने वाली सुरक्षा की आपदाए एव कठिनाइया उठाकर चुकाना पडता है जो उसके छापे के फलस्वरूप सामने आता है। पर मोर्चा टूट जाने पर किसी दण्ड भय के बिना विलास एव आलस्य को चाहे जबतक बढाया जा सकता है। जसा कि हमने इस अध्ययन के किसी पूव भाग म कहा था सभ्यता की नकल (Partibus Civilium) करन म बबरो ने उस गिद्धो की दुःखदायी भूमिका अदा

की जो किसी लाश के गलित मास एव उसमे रेंगते कीडा स पेट भरते हैं। यदि यह तुलना बडी बीभत्स मालूम पडती हो तो सभ्यता के खडहरा म, जिसकी प्रशसा वे नही कर सकते, उन्मत्त होकर दौडते विजयी बबरो के झुण्डो की उपमा ऐसे दुष्ट किशोरो के झुण्डो से दी जा सकती है जो घर एव स्कूल के नियत्रण स भाग खड़े हुए है और ईसवी सवत् की बीसवीं शती के नगर-समाजो के लिए समस्या बन गय हैं—

"इन समुदायों-द्वारा प्रकट होने वाली विशेषताए गुण दोष दानों में समान रूप से, स्पष्टत किशोरावस्था की हैं इसका विशिष्ट लक्षण है मुक्ति—सामाजिक, राजनीतिक एव धार्मिक मुक्ति—सामान्यत वीर युगों की विशिष्टता न तो बचपन की विशिष्टता है न प्रौढ़ावस्था की बल्कि वीर युग के प्रारूपिक मानव (typical man) की तुलना तो युवक से की जा सकती है। सच्ची तुलना क लिए हमे एक ऐसे युवक की ओर देखना होगा जो अपन पालकों—माता पिताओं—के विचार एव नियन्त्रण स ऊपर उठ गया हो। ऐसा उदाहरण भाले भाले माता पिताओं के उन लडकों मे मिल सकता है जिन्होंने स्कूल मे या अन्यत्र बाह्य प्रभाव के कारण ऐसा ज्ञान प्राप्त कर लिया हो जिसके कारण अपनी परिस्थिति से ऊची अवस्था मे रखे जा सकें।"[1]

जो जातिया आदिमकालिक से बबर मे बदल गयी है उनमे आदिमकालिक प्रथाओ का ह्रास हो गया है। इस ह्रास का एक परिणाम यह हुआ है कि जो अधिकार पहल सगोत्र वर्गों द्वारा प्रयुक्त होता था अब कमीटेटस (पारिषद-मण्डल) अर्थात् सरदार या राजा के प्रति निजी वफादारी की शपथ लेने वाले दुस्साहसिक व्यक्तियो की सस्था के हाथ मे चला गया। जबतक सभ्यता अपन सार्वभौम राज्य म सत्ता का आभास भी बनाय रख सकी तबतक य बबर युयुत्सु सरदार और उनका पारिषद मण्डल (कमीटटस) एक मध्यवर्ती राज्य (Buffer State) क रूप म सफलतापूवक अपनी सेवाए प्रदान करते रहे। रोम साम्राज्य की अधोरैमी (Lower Rhenish) सीमा के सलियन फ्रैंकिश रुभवो का, ईसाई सवत् की चौथी शती के मध्य स पाचवी शती के मध्य तक का इतिहास इसके उदाहरण मे पेश किया जा सकता है। किन्तु एक लुप्त सार्वभौम राज्य के पूव-शासित प्रदेश क अन्तराल म बबर विजेताओ द्वारा स्थापित उत्तराधिकारी राज्यो का भाग्य देखने से प्रकट होता है कि बजर बबर राजनीतिक प्रतिभा का वह थोडा उपादान उन कामो को सभालने और उन समस्याओ का समाधान करने के योग्य बिलकुल न था जो एक व्यापक ईसाई राज्य की राजमर्मज्ञता क लिए ही बहुत ज्यादा सिद्ध हो चुकी थी। एक बबर उत्तराधिकारी राज्य निर्वाणिया सार्वभौम राज्य की असामान्य मात्र की शक्ति पर अपना काम जारी कर देता है और पदों पर बठे हुए य गवार आत्मद्रोह-द्वारा अपन अनिवाय विनाश क आगमन को और निकट ला देते हैं। यह आत्मद्रोह नतिक अग्नि-परीक्षा के सपीडन स, अन्तर की किसी साघातिक रूप म मिथ्या वस्तु के फट पडने से होता है, क्योंकि जो

[1] चडविक एच एम 'दि हीरोइक एज' (कम्ब्रिज १९१२, यूनीवर्सिटी प्रस) पृष्ठ ४४२-४

राजनीति एक स्वेच्छाचारी सनिक नेता के प्रति शस्त्र सज्जित आततायियों की सनक भरी वफादारी पर निर्भर करती है एक ऐसे समुदाय के शासन के लिए नतिक रूप से अयोग्य है जो सभ्यता को अपनाने के लिए एक असफल यत्न भी कर चुका हो। बबर पारिषद मण्डल (कमीटटस) मे आदिमकालिक सगोत्र वग के लोप के बाद विजातीय प्रजा की आबादी मे स्वय कमीटेटस' का ही लोप हो जाता है।

सभ्य क्षेत्र म अनधिकार प्रवेश करने वाले बबर अपने अनधिकार प्रवश के अनिवाय परिणामस्वरूप स्वय अपन को नतिक ह्रास का दण्ड देते है। किन्तु आध्यात्मिक सघष के बिना वे अपने इस भाग्य के आगे कधा नही डाल देते। इस आध्यात्मिक सघष की रेखाए हमे उनके कमकाण्ड, पौराणिक गाथा तथा आचरण मान-सम्बधी उनके साहित्यिक अभिलेखो मे मिलती है। बबरो की सवव्यापी प्रधान पुराण-कथा म किसी दानव से नायक क विजय युद्ध की बात कही गयी है। इस अपार्थिव शत्रु के पास एक ऐसा खजाना है जो वह मानव जाति से दूर रखे हुए है। ग्रेण्डेल तथा ग्रेण्डेल की माता से ब्यू उल्फ के युद्ध, सप राक्षस स सीगफ्राइड के युद्ध तथा गोगन के सिर काट लने का पर्सियस का चमत्कार एव बाद मे एण्ड्रोमीडा को निगलने का प्रयत्न कर रहे सागर-दानव को मारकर उसे बचाने तथा उसका प्रेम प्राप्त करने के चमत्कार की कथाओ का सवनिष्ठ अभिप्राय (motif) यही है। जसन के स्वर्णिम मेष-लोम के सप अभिभावक को अपनी चालो से पछाड देने तथा हेरोक्लिज-द्वारा सर्वेरस के अपहरण मे भी यही अभिप्राय पुन व्यक्त होता है। मोर्चे के बाहर की परिचित लावारिस भूमि (No man's land) से एक ही छलाग मे बाड के विनष्ट हो जान से प्रकट एक मुग्धकारी जगत म आ जान का जो विकम्पनकारी अनुभव है उसके कारण चित्त की अवचेतन गहराइयो मे एक दानवी आध्यात्मिक शक्ति मुक्त हो उठती है। इस दानवी आध्यात्मिक शक्ति से मनुष्य क सर्वोत्कृष्ट आध्यात्मिक काय उसके तकनापरक सकल्प (Rational Will) की रक्षा के लिए बबर की अपनी आत्मा म जो मानसिक सघष होता है उसी का बाह्य प्रसार इस पुराण-कथा मे दिखायी पडता है। यह कथा निश्चय ही एक ऐसे पिशाच-मोचन के अनुष्ठान का साहित्यिक उपाख्यान मे भाषान्तर है जिसम सनिक रूप से विजयी परन्तु आध्यात्मिक दृष्टि से व्यथित बबर अपनी विनाशकारी मानसिक व्याधि का एक व्यावहारिक समाधान खोजने का प्रयत्न करता है।

वीर युग की विशिष्ट परिस्थितियो म आरोपणीय आचरण के जो विशेष मान उद्भूत हुए उनम एक दूसरे दृष्टिकोण से हम मोर्चे की भौतिक बाड के पतन के कारण अवसन्न सभ्यता के बबर सरदारो एव नायको की आत्मा मे ताण्डव करने वाले दानव की विनाश-लीला पर एक नतिक मर्यादा स्थापित करने का प्रयत्न देखते हैं। इसके प्रमुख उदाहरण हैं—एकियनो का होमरीय आइडोज (लज्जा) और नमसिस (आक्रोश) तथा उम्मायदो का ऐतिहासिक 'हिल्म' (कृत्रिम आत्मसयम)।

"सम्मान की भाति ही आइडोज' (लज्जा) एव 'नेमेसिस' (आक्रोश) की भी मुख्य विशेषता यह है कि उनका आगमन तभी होता है जबकि मनुष्य स्वतन्त्र होता है जब उस पर कोई बाध्यता नहीं होती। यदि तुम ऐसे लोगों

को लो जो अपनी सम्पूर्ण पुरानी अनुशास्तियों (Sanctions) को तोड़कर उनसे अलग हो गये हैं और उनमे से किसी ऐसे शक्तिमान् एव उद्दण्ड सरदार को चुनो जो किसी से नहीं डरता, तो पहले तुम यही सोचोगे कि ऐसा आदमी जो कुछ उसके दिमाग मे आता है उसे करने के लिए स्वतन्त्र है। और तब, तथ्य के रूप म तुमको मालूम पड़ता है कि उसकी अन्यवस्था के बीच भी कोई ऐसा सभवित काय हो जायगा जो उसे बेचैन कर देगा। यदि खुद उसी ने वह काम किया है तो वह उस काय के लिए अनुताप करता है, वह काम भूतबाधा की भांति उसे भयग्रस्त किये रहता है। यदि उसने उसे नहीं किया है तो उसे करने से दूर भागता है। वह ऐसा इसलिए नहीं करता कि कोई उसे दबाता है विवश करता है, न इसीलिए करता है कि बाद मे इसका कोई विशेष परिणाम निकलेगा केवल इसलिए ऐसा करता है कि वह आइडोज (लज्जा) का अनुभव करता है ।

"अपने ही किये काम के विषय मे अनुभव 'आइडोज' (लज्जा) है, दूसरे के द्वारा किये हुए काम के विषय मे हम जो अनुभव करते हैं वह 'नेमेसिस' (आक्रोश) है। प्राय यह वही होता है जो तुम सोचते हो कि दूसरे तुम्हारे बारे मे अनुभव कर रहे होंगे। परन्तु मान लो कोई भी देख नहीं रहा है। काम जसा तुम अच्छी तरह जानते हो, ऐसा है जिसके विषय मे 'नेमेसिस' (आक्रोश) का अनुभव करना है, परन्तु वहा अनुभव करने के लिए कोई उपस्थित नहीं है। इतने पर भी यदि तुमने जो कुछ किया है उसे नापसद करते हो और उसके लिए 'आइडोज' (लज्जा) का अनुभव करते हो तो अनिवायत तुममे यह चेतना है कि किसी आदमी या वस्तु द्वारा तुम्हारा काय नापसद या अस्वीकार किया जायगा। पृथिवी, जल और वायु सबको दूषित आखें हैं और उन्होंने तुम्हें देख लिया है और जो कुछ तुमने किया है उस पर तुमसे रुष्ट हैं।"[1]

जसा कि हामरीय महाकाव्य म चित्रित हुआ है मिनोनोत्तर (Post Minoan) युग मे कायरता, मिथ्यालाप कूटसाक्ष्य (Perjury) श्रद्धाहीनता तथा असहायो के प्रति निदयता या विश्वासघात एस काय थे जिनसे आइडाज (लज्जा) और नेमसिस (आक्रोश) की भावनाओं का उदय हाता था।

'उनके साथ किये गये गलत कार्मों का सवाल छोड़कर भी, मानवों के कुछ वग ऐसे होते ही हैं जो दूसरों की अपेक्षा अधिक लज्जा का विषय होते हैं। ऐसे लोग हैं जिनकी उपस्थिति मे मनुष्य लज्जा—एक आत्मचेतना एक आतक, सदा की अपेक्षा अधिक अच्छा व्यवहार करने के महत्त्व का अनुभव करता है। और किस तरह के आदमी मुख्यत यह लज्जा भावना उत्तेजित करते हैं? निश्चय ही नृपतिगण, गुरुजन साधु-सत, राजकुमार तथा राजदूत एव उनके जसे ही और तो हैं ही—ये सब ऐसे लोग हैं जिनके प्रति तुम स्वभावत श्रद्धा का

[1] मरे, गिल्बट दि राइज आव दि ग्रीक एपिक', ततीय सस्करण (आक्सफड १९२४, क्लेयरेंडन प्रस) पृ ८३ ८४

अनुभव करते हो, और जिनकी भली-बुरी सम्मति का ससार म महत्त्व है। फिर भी तुम देखोगे कि ये नहीं बल्कि दूसरे ही लोग हैं जो 'आइडोज' (लज्जा) की प्रेरणा उत्पन्न करते हैं जिनके सामने तुम्हे अपनी अयोग्यता की और गहरी चेतना होती है और जिनकी अच्छी-बुरी सम्मति अन्ततोगत्वा, अव्याख्येय रूप से और अधिक वजनदार होती है ससार के वचित, पीडित, असहाय तथा इन सबमे सबसे अधिक असहाय, मृत।"[1]

सामाजिक जीवन के सब पहलुओ म प्रवेश करने वाली लज्जा एव आक्रोश के विरुद्ध हिल्म (बाह्य आत्मसयम) 'राजनीतिक गुण (Vertu des Politiques) है।[2] यह लज्जा एव आक्रोश की अपेक्षा और कृत्रिम, और कपटपूर्ण है इसीलिए कम आकर्षक है। बाह्य आत्मसयम, नम्रता की अभिव्यक्ति नही है।

"बल्कि इसका उद्देश्य प्रतिपक्षी को अपमानित करना है खुद अपनी श्रेष्ठता का विरोध प्रकट करके उसे हतप्रभ कर देना है, अपनी गरिमा (dignity) और खुद अपने रवये (attitude) की शान्ति का प्रदर्शन करके उसे चकित कर देना है तत्त्व मे, 'हिल्म अधिकाश अरब गुणों की भांति ही, ढोंग एव दिखावट का गुण है, इसमे वास्तविक तत्त्व की अपेक्षा दम्भ अधिक है। हिल्म' के लिए प्रसिद्धि जरा-सी ललित मुद्रा या मधुर वाणी के सस्ते मूल्य पर प्राप्त की जा सकती है। फिर सबसे बडी बात यह है कि अरब समाज जिस अराजकतापूर्ण स्थिति मे था और जिसमे हिंसा का प्रत्येक काय अनुतापहीन प्रतिहिंसा को जन्म देता था, उसमें यह समयोचित था। (मुआविमाह के उम्मायद उत्तराधिकारियों द्वारा) जिस रूप मे 'हिल्म का आचरण होता था उससे अरबो को राजनीतिक शिक्षा देने के उनके काय मे सरलता होती थी अपने फौलादी हाथों पर मखमली दस्ताने पहिन कर साम्राज्य पर शासन करने वाले नरेशो के पक्ष मे मरुभूमि की अराजकतापूर्ण स्वतन्त्रता का बलिदान करने मे उनके शिष्यो में जो कटुता आती थी उसे यह मधुर बना देता था।"[3]

हिल्म आइडाज तथा 'नमसिस' की प्रकृति का यह श्रेष्ठ चित्रण प्रकट करता है कि आचरण के य मान वीर युग की परिस्थितियो के लिए कस उपयुक्त थे और यदि जसा कि हम पहिले बता चुके है वीर युग आभ्यन्तरिक रूप स एक अस्थायी स्थिति है तो इसके आवागमन के निश्चिततम लक्षण इसके प्रमुख आदर्शों का अनुकरण या विनाश है। ज्यो-ज्यो आइडोज' और 'नमसिस' (लज्जा एव

[1] मरे गिल्बट 'दि राइज आव ग्रीक एपिक', ततीय सस्करण (आक्सफड १९२४, क्लेरेण्डन प्रेस) प ८७ ८८

[2] लमेंस, एस जे, पेरी एच 'एतु दे सर ला रेने दु कलिफे ओम्मायदे मोआविया आयर" (बेरूत १९०८, इम्प्रयेरी कथोलीक पेरी १९०८, गुइथनर) पृ० ८१, टिप्पणी २—इस पुस्तक के अश प्रकाशको की अनुमति से उद्धत किये गये हैं।

[3] वही प ८१, ८७ १०३

सीजर समाप्त कर रोमनों के स्थान पर
स्वयं विश्व शासन की बागडोर लेते
सम्राट बुधय देलो हैं बन गये।
फिर भी प्रयन्तियाँ वे लुण्ठन और रक्त तथा
हृदय के पशुत्व और हाथ की नृशंसता
से पूर्ण थीं थे, कुछ भी न छोड़ा,
गोथ बड़े शक्तिमान थे।
किन्तु शक्तिमान थे विनाश अत्याचार मे,
कुछ भी लिखा न, कोई काम ही दिखाया कर
चिन्तन और सर्जना को कोई देन छोड़ी नहीं।
किन्तु कृषि क्षेत्र शस्यश्यामल से पूर्ण थे
हँसिया चलाने का यत्न वे पा गये—
अन्यथा धरित्री पर उनका न चिह्न है।[1]

यह नपा-तुला फसला जिसकी घोषणा पद्रह शतियो के व्यवधान म की गयी है उस यूनानी कवि को सन्तुष्ट नही कर सकता था जो मिनो लागा क सागर-साम्राज्य के उत्तराधिकारी बबरा द्वारा निर्मित नतिक गदी बस्ती (Slum) म अब भी रहन की तीव्र चेतना से युक्त है। मिनोत्तर (Post Minoan) वीर युग के विरुद्ध हेसिओड ने जो अभियोग लगाया है उसका तात्पय है कि वह न केवल व्ययता बल्कि आपराधिकता (Criminality) के दोष स दूषित है। इसस यह भी मालूम पडता है कि उसके समय म भी वह आपराधिकता एक उन्नीयमान यूनानी सभ्यता के ऊपर प्रेत छाया की भाति लगी हुई थी। हेसिओड का फसला बडा निष्ठुर है--

"और पिता जियस ने पार्थिव मानवों की एक तीसरी जाति और बनायी—एक कांस्य जाति, जो किसी भी बात में चांदी जसी नहीं थी, मानो अखरोट के तनों से बनी हो, शक्तिमती और भयानक। एरीज के निदारुण कृत्यों एव अहकार के अनधिकार प्रवेश मे ही उनका आनन्द था। कभी रोटी उनके मुह में नहीं गयी किन्तु सीने के अन्दर उनके हृदय वज्र की भांति दृढ़ थे—कोई उस दृढ़ता तक नहीं पहुँच सकता था। उनकी शक्ति महान था और उनकी बलिष्ठ देहयष्टि के स्कन्धों से उगने वाले शस्त्रास्त्र अजेय थ। उनके सर्वांग-कवच कांसे के थे और कांसे से ही वे धरती जोतते थे (कृष्ण लौह का तबतक पता न था)। पर उनका पतन उन्हीं के हाथों हो गया। वे अपने ही रास्ते शीतल यमलोक के गलते हुए भवनों (कब्रों) में समा गये—नाम भी मिट गया। उनको सम्पूर्ण शक्तिमती वीरता के साथ भी मौत ने उन्हें अपनी अधेरी गोद मे ले लिया और वे सूय की उज्ज्वल ज्योति छोड़कर चले गये।'[2]

[1] ब्रिजेस, राबट 'दि टेस्टामेण्ट आफ ब्यूटी' (आक्सफर्ड १६२६, क्लेयरण्डन प्रेस), पुस्तक १, पंक्तियाँ ५३५ ५५। कविता का हिन्दी अनुवाद अनुवादक द्वारा।

[2] हेसिओड, 'वक्स एण्ड डेज', पंक्ति १४३ १५५

अपने ही अपराधपूर्ण दोषो से बर्बर अपने ऊपर पीडा का जो तूफान ले आते हैं उस पर भावी पीढियो का निर्णय हसिओड की कविता के उस अंश में व्यक्त रूप मे, शायद अन्तिम होता यदि कवि ने स्वय आगे यह न लिखा होता—

"जब यह जाति भी धरती के नीचे दब गयी तो फिर कारोनस के पुत्र जियस द्वारा सबमाता (पृथिवी) पर एक चौथी जाति का निर्माण किया गया—एक श्रेष्ठतर जाति, ज्यादा पुण्यवती, वीर मानवो की एक दवी जाति—जिन्हें अर्द्धदेव कहा जाता है—एक जाति जो इस असीम पृथिवी पर समय से पहिले आ गयी। वे लोग भी बुरे युद्ध और भयानक लडाई द्वारा नष्ट कर दिये गये—कुछ तो ओडीपुस[1] के साथियो के लिए लडते हुए केडमस की भूमि में सप्तद्वार थीब्स (Seven Gate Thebes) के नीचे मारे गये कुछ दूसरे मजुकुतला हेलेन के लिए विनष्ट होने को सागर के विशाल वक्ष पर जहाजों-द्वारा दाय ले जाये गये। वहां उनका अन्त हो गया और वे मृत्यु के आलिंगन मे विलुप्त हो गये। फिर भी उनमे चद लोग बच गये, कारोनस के पुत्र जियस द्वारा उनको मानव जाति से दूर, पृथिवी के छोर पर, आवास प्रदान किया गया। वहां वे रहते हैं। चिन्ता रहित हृदय के साथ, सागरधारा के गहरे भवरों मे—सुखी वीर गण, जिनके लिए प्रतिवर्ष तीन-बार पकने वाली मधुर मधुर शस्य मालिका उपजाऊ खेतों द्वारा प्रस्तुत की जाती है।'[2]

इस अनुच्छेद का अपने ठीक पहिले वाले अनुच्छेद से और उन जातियो की सूची से जिनके मूल मे यह फला हुआ है, क्या सम्बन्ध है? यह प्रसग सूची की शृखला को दो बाना मे काटता है। पहली बात तो यह है कि जिस जाति का पर्यवलोकन यहा किया गया है अपनी पूर्ववर्ती स्वर्ण, रजत एव कास्य तथा उसकी उत्तराधिकारिणी लौह जातियो के प्रतिकूल, किसी धातु से उसकी पहिचान नही की जाती, दूसरी बात यह है कि चारो अन्य जातिया एक-दूसरे का अनुगमन योग्यता के ह्रास की दिशा मे करती हैं। इसके अलावा तीन पूर्ववर्ती जातियो की नियति मृत्यु के बाद उनकी पृथिवी पर की जीवनावधि के अनुरूप है। स्वर्ण की जाति 'जियस महान की इच्छा से शुभ प्रेतात्माओ मे बदल गयी—धरती के ऊपर की प्रेतात्माए जो पार्थिव मानवो की अभिभावक और धनदायिनी हैं।" उससे हलकी रजत या चादी की जाति ने 'मरणशील प्राणियो मे पृथिवी के नीचे धन्यता का स्थान प्राप्त किया—यश मे दूसरा स्थान, फिर भी सम्मानप्राप्त।' किन्तु जब हम कास्य की जाति तक पहुचते हैं तब देखते हैं कि मृत्यु के बाद उनका भाग्य अशुभ मौन मे डूब गया है। इस साचे पर बुनी गयी सूची मे चौथी जाति के लिए तो हम यही आशा कर सकते हैं कि मृत्यु के बाद वह

[1] ओडीपुस=थीब्स का बादशाह जिसने अपनी चतुराई से स्फिक्स की पहेलियां सुलझायीं और उसके पिता को मारकर उसकी मां से विवाह कर लिया। —अनुवादक

[2] हेसिओड 'वर्क्स एण्ड डेज,' पंक्तियां १५६ १७३

गापिता की यन्त्रणा सहन करने के लिए दण्डित होगी, किन्तु उनके प्रतिकूल उनमे से कम से कम कुछ चुने हुए लोगो को हम मृत्यु के बाद स्वर्ग या परमानन्दधाम (Elysium) म ले जाये जाते देखते हैं वहां वे पृथिवी म ऊपर' वही जीवन बिताते हैं जो स्वर्ण की जाति व्यतीत करती रही है।

कांस्य जाति और लौह जाति के बीच वीरो की जाति का प्रवेश स्पष्टत बाद की कल्पना है जो इस काव्य के क्रम (Sequence), समभिति (Symmetry) तथा आशय को भग करती है। कवि को यह भद्दा अश प्रविष्ट करने के लिए किससे प्रेरणा मिली ? निश्चय ही उत्तर यह होगा कि वीरो की जाति का जो चित्र यहा उपस्थित किया गया है, वह कवि एव उसकी जनता की कल्पना पर ऐसे स्पष्ट रूप म उभर आया था कि उसके लिए स्थान खोजना ही पड़ा। वीरो की जाति वस्तुत कांस की ही जाति है जिसका उल्लासहीन हेसिओडी तथ्य की शैली म नही वर ऐन्द्रजालिक होमरी कल्पना म एक बार फिर वर्णन कर दिया गया है।

सामाजिक शब्दावली मे वीर युग मूढ़ता और अपराध है किन्तु भावात्मक भाषा म वह एक महत् अनुभव है, पुलक से भरा अनुभव है जिस बाढ न बर्बर आक्रामको के पूर्वजों को पीढ़िया तक परेशान किया था उस तोड डालने और एक आभासित असीम विश्व मे फट पड़ने का अनुभव—एक ऐसे विश्व म जो उन्ह असीम सभावनाए प्रदान करता हुआ दीखता हो। परन्तु एक प्रशसनीय अपवाद को छोड और सब सभावनाए निष्फल सिद्ध होती हैं, फिर भी एक सामाजिक एव राजनीतिक स्तर पर बर्बरो की सनसनी पैदा करने वाली परिपूर्ण निष्फलता ही विरोधाभासिक रूप से उनके कारण कवियो की सजनात्मक कृतियो की सफलता का कारण होती है क्योंकि कला क क्षेत्र मे असफलता द्वारा जो निर्माण सभव है वह सफलता स सभव नहीं है कोई सफलता की कथा ट्रेजेडी (दु खान्त गाथा) की ऊंचाई तक नही पहुच सकती। 'फोल-कर-वान-डर-उग (volkervonderung)'[1] या जातियों के प्रव्रजन प्रवसन मे उत्पन्न उल्लास जहां कर्मवीरो की मत्त आत्माओ को निराशा के गर्त मे डाल देता है वहा वह बर्बर कवि को अपने नायको की दुष्टता और अयोग्यता को अमरगान म ढालने का अवसर भी प्रदान करता है। काव्य के इस ऐन्द्रजालिक राज्य मे बर्बर नायक मरकर वह सप्रवित गरिमा प्राप्त कर लेते हैं जो वास्तविक जीवन म कभी उनकी पकड में न आयी थी। मत इतिहास एक अमर रोमांस के रूप म खिल पड़ता है। अपने उत्तरकालिक प्रशसकों पर वीर काव्य जो सम्मोहन डाल देता है उसके कारण वे यह सोच नहीं पाते कि वह वस्तुत एक सभ्यता की मृत्यु और उसका

[1] आदिवासियों का प्रव्रजन प्रवसन, विशेषत टयूटन जातियों का दक्षिण-पश्चिम यूरोप में प्रवास। दूसरी शती से ग्यारहवीं शती तक यह प्रव्रजन चलता रहा और नार्मन—उत्तरवासी—इगलण्ड एव फ्रांस मे आकर बसते रहे। इन प्रवासों के कारण रोमन साम्राज्य का पतन हुआ और इतिहास के प्राचीन एव मध्य युगों के सक्रातिकाल की यही मुख्य विशेषता रही है।—अनुवादक

उत्तराधिकारिणी सभ्यता के बीच एक अधम विष्कम्भ मात्र है, और जिसे इस अध्ययन की शब्दावली म हमने जान बूझकर व्यग्यपूवक 'वीर युग' या 'वीरो का युग' कहा है।

जसा कि हम देख चुके हैं इस भ्रम का सबसे पहिला शिकार उस 'अधकार युग' का कवि हुआ है जो वीर युग का ही परिणाम है। जसा कि सिंहावलोकन मे स्पष्ट है इस बाद के युग को ऐसे अधकार के लिए लज्जित होन का कोई कारण नही है जो केवल इस बात का द्योतक है कि बबर गृहदाहियो-द्वारा जलायी गयी होली बुझ चुकी है, और यद्यपि लपट के निशान वाली जमीन की सतह राख की ढेर से धुधली हो गयी है फिर भी अधकार युग ने जिस प्रकार अपने को सजनात्मक सिद्ध किया है उस प्रकार वीर युग कदापि नही था। समय पूरा हो जाने पर उस उपजाऊ भस्मक्षेत्र को कोमल हरीतिमा के अकुरो से आच्छादित करने के लिए नवीन जीवन का उदय होता है। हेसिओड का काव्य, होमर के निकट रखन पर नीरस लगता है किन्तु वह लौटती हुई वसन्त ऋतु का एक दूत है। फिर भी उपकाल के पूव की तमिस्रा का यह ईमानदार इतिवृत्तकार हाल के नश गृहदाह से प्रणोदित काव्य से इतना चमत्कृत है कि वह वीरो की जाति के काल्पनिक होमरी चित्र को ऐतिहासिक काव्य के रूप मे विश्वासपूवक ग्रहण कर लेता है।

जब हम विचार करते हैं कि हेसिओड ने कास्य जाति के अपने जिस चित्र को हमारे लिए सुरक्षित रखा है उसमे होमरी स्वैर कल्पना (Fantasy) की सृष्टि के साथ ही बबर के उस रूप का भी एक निदय उद्घाटन है, जो कि वह वस्तुत है। फिर भी इस सूत्र के बिना भी, आन्तरिक साक्ष्य के प्रस्फोटन द्वारा इस वीर पुराणकथा को उड़ाया जा सकता है। पता चलता है कि इन वीरो ने पाप का जीवन बिताया और कास्य जाति की निष्ठुर मृत्यु को प्राप्त हुए, और जब हम सब नकली रोशनिया बुझा देते हैं तथा दिन के समस्त प्रकाश मे कोलाहलपूण झगडे और उन्मत्त भोजोत्सव के कवित्वमय आदर्शीकरण को देखते हैं तो इसी तरह वलहल्ला (Valhalla)[1] भी एक गन्दी बस्ती के रूप मे दिखायी देती है। इस वलहल्ला म प्रवेश प्राप्त करने के लिए जो वीर अपने को योग्य सिद्ध करते हैं वे भी वस्तुत उन दानवो की कोटि के ही हैं जिनके विरुद्ध उन्होन अपना पराक्रम प्रदर्शित किया है, और एक दूसरे के द्वारा पृथिवी की गोद से नष्ट कर दिये जाने के कारण उन्होन दुनिया को अपने ही द्वारा निर्मित प्रेत नगरी से मुक्त कर दिया है और सिवा अपने और सबके लिए एक सुखद अन्त प्राप्त कर लिया है।

बबर महाकाव्य की चकाचौंध से प्रभावित होने वालो म हेसिओड भले प्रथम व्यक्ति रहा हो पर वह अन्तिम नही था। ईसाई सवत की जो उन्नीसवी शती ज्ञानवती

१ नास पुराण कथा में ओडिन का हाल जिसमे वह रणयुद्ध मे मारी जाने वाली आत्माओं को प्राप्त करता था। इसमे ५४० द्वार थे। प्रत्येक द्वार से प्रतिदिन उष काल मे वीर सनिक युद्ध करने जाते थे और देवताओं के साथ दावत खाने के लिए रात को लौटते थे।—अनुवादक

मानी जाती है उसम एक नीम हकीम तत्त्वज्ञानी को हम ऐसी शुभ खबर 'नार्डिक जाति की पुराणकथा का उदघाटन करते पाते है जिसके रक्त का एक अक्षम समाज की शिराओ म अन्त क्षेप (inject) करने से वह यौवन के लिए अमृत मिद्ध होगा। और जब हम आनन्दी फरासीसी अभिजात की राजनीतिक आत्मक्रीडा (Jeu d esprit) का दानवी जमन नव-बबरवाद के पगम्बरो द्वारा एक जातिगत पुराण कल्पना म स्फुरित होते देखते हैं तो हृदय के टुकडे-टुकडे हो जाते है। प्लेटो ने जोर दिया था कि उसके प्रजातत्र से कवियो को निर्वासित कर दिया जाना चाहिए। जब हम वीर गाथाओ (Saga) के प्रणेताओ एव 'तृतीय रीख'[१] (Third Reich) के सस्थापको क बीच कारण-काय सम्बध की खोज करते हैं तो प्लेटो के कथन का महत्त्व स्पष्ट हो जाता है।

पर ऐसे अवसर भी आये हैं जब बबर हस्तक्षेपकारी ने भावी पीढियो के लिए नम्र सेवा का काय भी किया है। प्रथम पीढी की सभ्यता स दूसरी पीढी तक के सक्राति काल मे हस्तक्षपकारी बबर ने, कुछ उदाहरणो म मृत सभ्यता और उसकी नवोत्पन्न उत्तराधिकारिणी के बीच एक शृखला स्थापित करने का काम किया—ठीक वसे ही जसे दूसरी पीढी की सभ्यता से तीसरी तक के सक्रातिकाल मे चच कोन कीट ने शृखला स्थापित करने का काम किया था। उदाहरणाथ सीरियाई और यूनानी सभ्यताए मिनोई समाज के बाह्य श्रमजीविवग द्वारा पूवगामी मिनोई सभ्यता स शृखलाबद्ध कर दी गयी थी। इसी प्रकार हित्ती या हित्ताई (Hittite) सभ्यता अपनी पूवगामी सुमेरु सभ्यता से और भारतीय सभ्यता अपनी पूवगामा सिधु सस्कृति (यदि उसे सुमेरु सभ्यता से स्वतत्र अपना निजी जीवन और अस्तित्व रखन वाली मान त) से सम्बद्ध हो गयी थी। परतु जब इस सेवा की तुलना चच-कोन-कीटो की भूमिका के साथ करते हैं तो इसकी लघुता प्रत्यक्ष हो जाती है। यद्यपि युयुत्सु दनो को जम देने वाले बाह्य श्रमजीविवग की भाति ही चर्चों का निर्माण करने वाला आतरिक श्रमजीवीवग भी एक विघटनशील सभ्यता के मनोवज्ञानिक विच्छेद की सतति है किंतु वह (आतरिक श्रमजीविवग) अतीत से अपक्षाकृत बहुत अधिक समृद्ध उत्तराधिकार प्राप्त करता और भावी पीढिया को सौंपने मे समथ होता है। जब हम यूनानी सभ्यता के प्रति पाश्चात्य ईसाई सभ्यता के ऋण के साथ मिनोई सभ्यता के प्रति यूनानी सभ्यता के ऋण की तुलना करते हैं तो यह बात स्पष्ट हो जाती है। ख्रीष्टीय चच का यूनानीकरण सतृप्ति बिदु (Saturation Point) तक कर दिया गया है होमरी कवि मिनोयन समाज के विषय म प्राय कुछ भी नही जानते थ व रिक्तता क मध्य (In Vacuo) अपन वीर युग के उस भीम शव को यदाकदा जिक्र करत हुए उपस्थित करते हैं जिस पर चारण कवि के गूढ नायक—जो अपने को बडे गव के साथ नगरो का विध्वसकर्ता कहते हैं—गलित मास का भाग लगा रह हैं।

यह स्पष्ट हो जाने पर एकेइयनो और उसी भूमिका का अभिनय करने वाल उनकी पीढी क दूसरे बबरो की सेवा प्राय नगण्य-सी रह जाती है। सचमुच उनका क्या

१ ततीय जमन साम्राज्य जिसे हिटलर ने बनाने का दावा किया था। — अनुवादक

मूल्य था ? जब हम दूसरी पीढी की उन सम्यताओ की तुलना शेष माध्यमिक सम्यताओ की नियति के साथ करते हैं जो इस सूक्ष्म बबर क्डी-द्वारा अपनी पूववर्ती सम्यताओ से सबद्ध हो गयी थी, तब इसकी वास्तविकता स्पष्ट हो जाती है। जो कोई माध्यमिक सम्यता अपनी पूववर्तिनी के बाह्य श्रमजीविवग द्वारा सम्बद्ध नही हो सकी होगी वह निश्चित रूप से अपना पूववर्तिनी के प्रभविष्णु अल्पमत द्वारा मम्बद्ध की गयी होगी। केवल इतने ही विकल्प सभव हैं क्योंकि प्राथमिक सम्यताओ के आतरिक श्रमजीविवग के अविकसित महत्तर धर्मों से किसी कोश-कीट—चच का उद्भव नही हुआ।

तब हमारे सामने दूसरी पीढी की सम्यताओ के दो वग हैं—पहिला वह जो बाह्य श्रमजीविवर्ग द्वारा अपनी पूववर्ती सम्यताओ से सम्बद्ध है, दूसरा वह जो पूववर्तिनी सम्यता के प्रभविष्णु अल्पमत-द्वारा सम्बद्ध है। दूसरे विषयो म भी य दो वग परस्पर विरुद्ध दिशाओ मे खडे हैं। प्रथम वग अपने पूववर्ती से इतना भिन्न है कि सम्बद्धता का तथ्य भी सन्देहास्पद हो जाता है। दूसरा या बाद का वग अपने पूववर्ती से इतने घनिष्ठ रूप मे विजडित है कि उनके भिन्न अस्तित्व के दावे का भी विरोध किया जा सकता है। बाद वाले वग के तीन मात्र उदाहरण हैं—१ बबिलोनी, जिसे या तो एक भिन्न सम्यता या फिर सुमेर सम्यता का विस्तार समझा जा सकता है, २ यूकेताई (Yucatec) और ३ मेक्सिकी (Mexic)। अतिम दोनो माया या मय (Mayan) सम्यता से सम्बद्ध हैं। इन दो वर्गों का चयन कर लेने के बाद हम दोनो के बीच एक और अन्तर का पयवेक्षण कर सकते हैं। माध्यमिक सम्यताओ का अधिसम्बद्ध (Supra affiliated) वग (या प्राथमिक सम्यताओ का मृत तना) पूरे का पूरा असफल हो गया, जबकि दूसरे वग की सम्यताए—यूनानी, सीरियाई और इडिक (भारतीय) सफल हुइ। अधिसम्बद्ध सम्यताओ मे से किसी ने, अपनी समाप्ति के पूव किसी सावभौम चच को जन्म नही दिया।

यदि हम अपने इस निष्कष को याद रखें कि कालक्रमानुसार एक के बाद एक आने वाले समाज प्रकार (Types of Society) मूल्य क्रम म उसी भाति उत्तरोत्तर ऊपर उठते जाते है और उस क्रम मे महत्तर धम अब तक प्राप्त उच्चतम स्थिति मे हैं तो अब हम यह भी देख सकते हैं कि दूसरी पीढी की सम्यता के बबर कोश-कीट (पर तीसरा पीढी के नहीं) महत्तर धर्मों क विकास म भाग लेने के सम्मान भाजन हैं। यह प्रस्थापना निम्नलिखित तालिका-द्वारा स्पष्टतम रूप मे व्यक्त की जा सकती है—
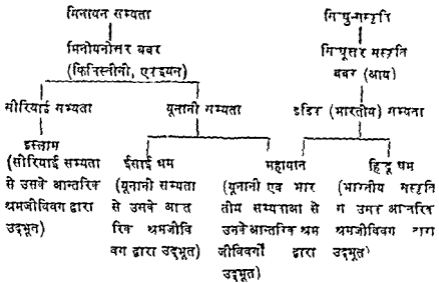
टिप्पणी 'स्त्रियों की पिशाची रेजीमेण्ट' (सैनिक दल)

वीर युग के सर्वोत्कृष्ट पुरुष-युग होने की संभावना की जा सकती है। किन्तु जो प्रमाण हैं वे क्या इसे पशुबल का युग होने का दोषी नहीं सिद्ध करते? और जब बल को उन्मुक्त कर दिया जाता है तो शरीर से प्रबल (पुरुष) जाति के सामने स्त्रियों को अपनी मर्यादा की रक्षा का क्या अवसर रह जाता है? यह पूर्वसिद्ध (a priori) तर्क न केवल वीर काव्य में प्राप्त आदर्श चित्र से वरन् इतिहास के तथ्यों से भी कट जाता है।

वीर युग में महान संकट स्त्रियों के काम को लेकर ही आते हैं। जब स्त्रियाँ निष्क्रिय भूमिका में होती हैं तब भी ऐसा ही होता है। यदि गेपीडाई के विनाश का *कारण रोजामुंड के लिए अलब्वाइन की असन्तुष्ट कामना है तब तो यह प्रशंसा की* बात है कि ट्राय के विनाश की उत्तेजना हेलेन के लिए पेरिस की कामना के सन्तुष्ट हो जाने के कारण प्राप्त हुई थी। सामान्यतः स्त्रियाँ अप्रच्छन्न रूप से झगड़ा पैदा करने वाली होती हैं और उनका विद्वेष वीरों को एक-दूसरे के प्राण लेने के लिए उतारू कर देता है। ब्रनहिल्ड[1] और क्रीमहिल्ड[2] के बीच का पुराणोक्त कलह जो अन्त

[1] यूरोपीय पुराण-कथा में एक तरुण और सुन्दरी रानी जिस पर सीगफ्राइड जादू के बल से अधिकार कर लेता है और अपने साले गुथर की ओर उन्मुख करता है। जब उसे सीगफ्राइड की पत्नी क्रीमहिल्ड से इसका पता लगता है तो वह हेगन की सहायता से विश्वासघात का बदला लेती है और सीगफ्राइड को धोखे से मरवा देती है।—अनुवादक

[2] बादशाह गुथर की बहिन और सीगफ्राइड की पत्नी। *सीगफ्राइड की मृत्यु के बाद* ईतजेल से विवाह कर लेती है।—अनुवादक

मे दरजिल के डयूबी हाल के हत्याकाण्ड के रूप मे घटित हुआ, ऐतिहासिक ब्रूनहिल्ड और उसके शत्रु फ्रीडगुड के बीच के उस झगड़े मे होने वाली सच्ची घटनाओ मे जुडा हुआ है जो राम साम्राज्य के उत्तराधिकारी मेरोविजियन राज्य मे ४० वर्ष तक चलने वाले गृहयुद्ध का कारण हुआ।

वीरयुग मे पुरुषो पर स्त्रियो का प्रभाव केवल अपने पुरुष-समूह को भ्रातृघातक युद्ध म प्रवृत्त करने के दौरात्म्य तक ही सीमित नही है। शायद ही किसी स्त्री ने इतिहास पर उससे अधिक गहरी छाप डाली हो जितनी सिकन्दर की मा ओलिम्पियास और मुआविया की मा हिन्द ने डाली है। ये दोनो ही अपने दुर्जेय पुत्रो पर आजीवन नैतिक प्रभुता स्थापित करके अपने को अमर बना गयी हैं। इतने पर भी गोने रिलो, रगना (Regans) एव लेडी मकबेथो की, प्रामाणिक इतिहास से कटी हुई सूची अनिश्चित सीमा तक बढायी जा सकती है। इस घटना के स्पष्टीकरण के कदाचित् दो रास्ते है—पहिला समाजशास्त्रीय, और दूसरा मनोवैज्ञानिक।

समाजशास्त्रीय स्पष्टीकरण इस तथ्य म पाया जाता है कि वीर युग एक ऐसा सामाजिक राज्यान्तरकाल है जिसम आदिमकालिक जीवन की परम्परागत आदतें टूट गयी हो किन्तु उदीयमान सभ्यता या उदीयमान महत्तर धर्म द्वारा अभी नवीन प्रथा की चपाती सिककर तयार न हुई हो। इस क्षणभगुर स्थिति मे सामाजिक शून्यक (vacuum) या रिक्तता ऐसे व्यक्तिवाद से भर जाती है जो इतना सर्वप्रभुता-सम्पन्न होता है कि लिंगो (sexes) के बीच के आन्तरिक भेदो को भी मिटा देता है। उल्लेखनीय है कि इस निरकुश व्यक्तिवाद का ऐसा परिणाम होता है कि कठिनाई से ही उस अव्यावहारिक नारी-अधिकारवाद से उसका भेद किया जा सकता है जो इन लोगो के स्त्री-पुरुषो के भावनात्मक एव बौद्धिक क्षितिज के बिलकुल परे होता है। समस्या पर मनोवैज्ञानिक दृष्टि से विचार करते हुए यह सुझाव दिया जा सकता है कि बबर अस्तित्व के लिए परस्पर विनाशकारी जो युद्ध करते थे उनम विजय दिलाने वाले पत्त (काड) पशुबल नही वर अध्यवसाय, प्रतिहिंसा, निष्ठुरता, चातुर्य और छल छद्म है, और ये ऐसे दुर्गुण हैं जिनसे पापपूर्ण मानवीय प्रकृति स्त्री म भी उतनी ही समृद्ध है जितनी पुरुष म।

यदि हम अपने से ही सवाल करते हैं कि वीर युग के नरक मे अपनी पिशाची रेजामेट का सचालन करने वाली स्त्रिया वीर पुत्रिया हैं जो खल नायिकाए हैं, या आमेट मात्र है, या क्या हैं, तो हमे कोई स्पष्ट उत्तर नही मिलता। स्पष्ट इतना ही है कि उनकी दु खद नैतिक द्वधवृत्ति (ambivalence) उन्ह कविता के लिए आदर्श विषय बना देती है और यह कोई आश्चर्य की बात नही है कि मिनोत्तर (पास्ट मिनोएन) वीर युग के महाकाव्य-उत्तराधिकार म एक प्रिय शैली वह 'नारी-सूची' भी है जिसम एक पुराणोक्त ककशा के अपराधों एव कष्टो के गान से काव्यात्मक सस्मरणो की अन्तहीन शृंखला मे एक के बाद दूसरा गाथा सामने आ जाती है। जिन ऐतिहासिक नारियो की विकट दुस्साहसिकताए इस काव्य म प्रतिध्वनित हैं वे यदि पहिले से जानती होती कि एक सस्मरण का सस्मरण एक दिन किसी विक्टोरियन कवि की कल्पना म

९ दिगन्तर सभ्यताओ के बीच समागम

अध्ययन-क्षेत्र का विस्तार

इस इतिहास के अध्ययन की प्रारम्भिक व्यावहारिक कल्पना यह थी कि ऐतिहासिक सभ्यताएं अध्ययन के अनेक बुद्धिगम्य क्षेत्र है, यदि यह कल्पना उनके इतिहास की सब अवस्थाओ पर लागू होती तो हमारा कार्य अब तक पूर्ण हो गया होता। किन्तु वास्तविकता यह है कि जबतक हम किसी सभ्यता की उत्पत्ति, विकास एव पतन की बात पर विचार कर रहे होते हैं तबतक वह एक बुद्धिगम्य इकाई मालूम पडती है किन्तु अपने विघटन की अवस्था मे वह वैसी नही रह जाती। जब तक हम अपनी मानस दृष्टि उसकी सीमा के बाहर तक न ले जा सकें तबतक सभ्यता के इतिहास की इस अन्तिम अवस्था को समझ नही सकते। इसका एक महत्त्वपूर्ण उदाहरण है—सीरियाई सभ्यता द्वारा प्रेरणाप्राप्त ईसाई धर्म के लिए रोमन साम्राज्य का एक यूनानी पालने की व्यवस्था करना।

महत्तर धर्मों की उत्पत्ति मे विभिन्न सभ्यताओ के संघर्ष ने जो भूमिका अभिनीत की है वह ऐतिहासिक भूगोलशास्त्र का सामान्य तथ्य है। जब हम किसी मानचित्र मे महत्तर धर्मों के उत्पत्ति स्थानो पर निशान लगाते हैं तब देखते हैं कि पुरानी दुनिया के समस्त भूतल पर अपेक्षाकृत अत्यन्त लघु दो भूमिखण्डो के अन्दर या उनके इर्द गिर्द वे सब स्थान आ जाते है—एक ओर तो वह है आक्सस-जक्जारतीस जलद्रोणी (Oxus Jaxartes Basin) और दूसरा खण्ड है सीरिया। जब हम सीरिया कहते है तब हमारा अभिप्राय उसके उस विशद अर्थ से होता है जिसमे उत्तर अरबी स्टेपी, भूमध्यसागर और आमनी तथा एनातोलियाई पठारो (plateaux) के दक्षिणी कगारो (escarpments) से सीमित क्षेत्र आता है। आक्सस-जक्जारतीस जलद्रोणी महायान के उस रूप की जन्मस्थली थी जिसमे उसका सुदूरपूर्व विश्व मे प्रसार हुआ। इसके भी पूर्व, कदाचित्, वह जरथुस्त्री मत की जन्मस्थली थी। सीरिया के एतिहासिक मे ईसाई मत के उस रूप का निर्माण हुआ, जिसमे वह हिलों के फरिसी यहूदीवाद के विविध रूपो मे अवतीर्ण होने के पश्चात् यूनानी जगत मे फैला। यहूदी मत एव समारितना का समधर्म दोनो दक्षिणी सीरिया मे उन्नत हुए थे। मरोनाइता के एकेश्वरवादी ईसाई मत एव द्रूसा के हाकिम-पूजक धर्म मत दोनो का जन्म मध्य सीरिया मे हुआ। महत्तर धर्मों की जन्मस्थलियो का यह भौगोलिक केन्द्रीकरण तब

और भी महत्त्वपूर्ण हो उठता है जब हम अपना क्षितिज निकटवर्ती भूखण्डों तक ले जाते हैं। लाल सागर के पार पर पश्चिमी अधित्यकाओं के साथ-साथ सीरिया का जो हेजाज़ी विस्तार है वह एक ऐसे ईसाई धर्म का जन्मस्थल है जो नवीन इस्लाम धर्म में परिवर्तित हो गया। इसी प्रकार जब हम आक्सस-जक्जारतीज जलद्रोणी के सम्बन्ध में अपने निरीक्षण का विस्तार करते हैं तो हम महायान के प्रारम्भिक रूप का जन्म स्थान गिघुन की जलद्रोणी में दिखायी पड़ता है।

इसका कारण हमारा स्पष्टीकरण क्या है? जब हम आक्सस-जक्जारतीज जलद्रोणी एवं सीरिया का प्राकृतिक विशेषताओं पर ध्यान देते हैं और दोनों का परस्पर तुलना करते हैं तो मालूम पड़ता है कि दोनों को प्रकृति ने ऐसे 'पथगोलक' (Round About) के रूप में सवाय निर्मित किया है जहां कुतुबनुमा के किसी बिन्दु से आने वाले यातायात को कुतुबनुमा के किसी दूसरे बिन्दु की ओर अनेक विकल्प सम्मिश्रणों में सम्प्रेषित किया जा सकता है। सीरियाई पथगोलक पर नील-जलद्रोणी भूमध्य सागर दक्षिणपूर्वी यूरोपीय पृष्ठप्रदेश-युक्त अनातोलिया, दजला फुरात जलद्रोणी तथा अरबी स्टेपी से मार्ग आकर मिलते हैं। इसी प्रकार मध्य एशियाई पथगोलक पर ईरानी पठार होते हुए आने वाला दजला फुरात मार्ग हिन्दूकुश के दर्रों से होकर आनेवाला भारतीय मार्ग, और तारिम जलद्रोणी से होकर आनेवाला सुदूरपूर्वीय मार्ग मिलते हैं। इसके अतिरिक्त उस निकटवर्ती यूरेशियाई स्टेपी से आने वाला एक मार्ग भी यहा आता है जिसने इस समय सूख गये द्वितीय भूमध्य-सागर का स्थान एवं सवाहकता प्राप्त कर ली है और जिसकी पूर्वकालिक स्थिति का प्रमाण कस्पियन सागर अराल सागर एवं बलकाश झील के रूप में आज भी मिलता है।

प्रकृति ने जिस भूमिका के लिए इन शक्तिमान यातायात-केन्द्रों की रचना की थी, उसे, इनमे से प्रत्येक ने अत्यात्र सम्यता के अवतीर्ण होने के बाद के पाच-छः हजार वर्षों में बार-बार अभिनीत किया है। एक के बाद एक आने वाले अनुवर्ती युगों में सीरिया कभी सुमेर एवं मिस्री सम्यताओं के बीच, कभी मिस्री हित्ताइ एवं मिनोय सम्यताओं के बीच, कभी सीरियाई बबिलोनी मिस्री एवं यूनानी सम्यताओं के बीच कभी सीरियाई परम्परानिष्ठ ईसाई तथा पाश्चात्य ईसाई सम्यताओं के बीच तथा अन्त मे अरबी ईरानी तथा पाश्चात्य सम्यताओं के बीच सघर्ष का केन्द्र रहा है। इसी प्रकार आक्सस-जक्जारतीज जलद्रोणी क्षेत्र विभिन्न अनुवर्ती युगों में सीरियाई एवं भारतीय सम्यताओं के बीच, सीरियाई भारतीय, यूनानी एवं सिनाई सम्यताओं के बीच तथा सीरियाई एवं सुदूरपूर्वीय सम्यताओं के बीच सघर्ष का केन्द्र रहा है। इन सब सघर्षों के परिणामस्वरूप दोनों मे से प्रत्येक धर्मोत्पादक (Numeniferous) क्षेत्र अनेक विरोधी सम्यताओं के सार्वभौम राज्यों में मिलाया जाता रहा है। इन क्षेत्रों में विविध सम्यताओं के बीच जो विशेष रूप से सक्रिय समागम होता रहा है उसी से उनकी सीमा में इतने महत्तर धर्मों के जन्मस्थानों के असाधारण केन्द्रीकरण का रहस्य समझ में आ जाता है।

इस प्रमाण के बल पर हम इस आशय का एक नियम बना सकते हैं कि

महत्तर धर्मों के अध्ययन के लिए लघुतम बुद्धिग्राह्य क्षेत्र किसी भी एक सभ्यता के शासन-क्षेत्र से निश्चित रूप म बडा होगा, क्योंकि वह ऐसा क्षेत्र होगा जिसम दो या अधिक सभ्यताओ का परस्पर सघर्ष हुआ हो। हमारा अगला कदम उन सघर्षों का विशद सर्वेक्षण करना होगा जो कतिपय ऐतिहासिक उदाहरणो म महत्तर धर्मों की उत्पत्ति का कारण हुए हो।

ये सघर्ष वस्तुत अवकाश-आयाम या दिगन्तर म उन सभ्यताओ क बीच समागम के द्योतक हैं जो प्राक्कल्पनाश्रित (exhypothesi) एक दूसरे की समकालीन रही हो, किन्तु इस अध्ययन के वर्तमान भाग मे जाने के पूर्व हम इतना चाहते हैं कि सभ्यताओ का परस्पर समागम काल-आयाम (time-dimension) म भी हुआ है और वह भी दो प्रकार का। काल म एक प्रकार का समागम तो अनुवर्त्तिनी सभ्यताओ के बीच प्रतीयमानता एव सम्बद्धता का सम्बन्ध होता है। यह विषय इस सम्पूर्ण अध्ययन म हमारे साथ रहा है। दूसरा समागम है—किसी विकसित सभ्यता तथा बहुत पहिले मरी पूर्ववर्त्तिनी सभ्यता के प्रेत क साथ का सम्बन्ध। हम इस प्रकार के सघर्षों को पुनर्जागरण (Renaissance) नाम से पुकार सकते हैं—नाम, जिसका इस ऐतिहासिक प्रपच के एक विशेष उदाहरण के सिलसिले मे ईसवी सवत् का उन्नीसवी शती के एक फरासीसी लेखक ने आविष्कार किया था—यद्यपि वही एकमात्र उदाहरण न था। काल के अन्तर्गत सभ्यताओ के इस सघात का वर्णन हम इस अध्ययन के आगामी भाग के लिए सुरक्षित रखगे।

समकालीन सभ्यताओ के मध्य सघातो का सर्वेक्षण

(१) परिचालन की एक योजना (ए प्लन आफ आपरशन)

जब हम समकालीन सभ्यताओ के बीच के सघातो का सर्वेक्षण करने का प्रयत्न करते हैं तो हम इतिहास के भयानक रूप से जटिल चक्रव्यूह या भूलभुलयां का सामना करना पडता है इसलिए इस झुरमुट म घुसन के पूव कोई अनुकूल प्रवेश बिंदु खोज लेना हमारे लिए हितकर होगा। हमने अपन सास्कृतिक मानचित्र म मूलत जिन सभ्यताओ का निर्देश किया था उनकी सख्या इक्कीस थी और पुरातत्त्व सम्बधी अनुसधान की प्रगति ने जब हम सिधु-सस्कृति को सुमेर सभ्यता स भिन्न तथा नाग सस्कृति को सिनाई की पूववर्तिनी एक दूसरी सभ्यता मानने को विवश कर दिया है तो इस परिवतन के कारण वह सख्या तईस हो जायगी। किन्तु यदि हम यह तथ्य मान भी लें कि समकालिक अतिव्याप्ति से हीन कोई भी दो सभ्यताएं ऐस किसी सघष म नही आ सकती जिसस इस समय हमारा प्रयाजन है ता भी यह स्पष्ट है कि सम कालीन सभ्यताओ के बीच हुए सघातो की सख्या सभ्यताओ की सख्या से बहुत बढ़ जायगी, और तथ्य है कि बहुत बढ़ जाती है। जसा मैं पहिल ही कई बार कह चुका हूँ कि हमार सामन सभ्यताओ की तीन पीढिया है। यदि पहिली पीढी सब की सब एक साथ मर गयी होती और दूसरी का भी वही हाल हुआ होता तो दिक्-आयाम मे होने वाले सघातो की बुनावट सरल हो गयी होती। हम प्रथम पीढी की क ख ग घ एव ङ सभ्यताओ के पारस्परिक सघषो पर इस सभावना का खयाल किये बिना विचार करना होगा कि इनम स किसी का दूसरी पीढी की च छ ज झ एव ञ सभ्य ताओ स भी सघात हुआ होगा परन्तु निश्चय ही बात ऐसी नही है। यद्यपि सुमेरु सभ्यता दूसरी पीढी की किसी भीमकाय तरुणी (सभ्यता) स सघष म आन के पूव ही भलीभाति दफना दी गयी थी किन्तु प्रथम पीढी की विक्रमशीला मिस्री सभ्यता ने बिल्कुल ही दूसर प्रकार का आचरण किया।

अभी 'आधुनिक समय तक एक कारण ऐसा रहा है जिसने दिगतरीय सम कालीन सभ्यताओ के बीच हुए वास्तविक सघर्षों का सख्या गणित के सभाव्य महत्तम अक से घटाकर करुणाजनक रूप से बहुत कम कर दी सम्भव है दिक व्यवधान ही इतना बडा, अथवा एसी प्रकृति का रहा है कि उसस पारस्परिक सघष का निराकरण

हो जाता रहा हो। उदाहरणार्थ, पुरानी दुनिया और नयी दुनिया की सभ्यताओं म तबतक कोई सघप नही हुआ जबतक कि पाश्चात्य ईसाई सभ्यता ने अपने इतिहास के 'आधुनिक' अध्याय (लगभग १४७५ १८७५ ई) मे सागर-सतरण की कला मे दक्षता नहा प्राप्त कर ली। यह सफलता एक ऐतिहासिक सीमा चिह्न है और इससे हमे कोई ऐसा सकेत या सुराग प्राप्त हो सकता है जो हम उस ऐतिहासिक चक्रव्यूह मे प्रवेश बिन्दु खोजने मे सहायक हो जिसके अनुसधान का दायित्व हमने ग्रहण किया है।

जब ईसाई सवत की पद्रहवी शती म पश्चिमी यूरोप के नाविको ने सागर सतरण की कला म दक्षता प्राप्त करली तब उन्होने इस ग्रह (पृथिवी) पर स्थित सम्पूर्ण बसी हुई अथवा बसने योग्य भूमि तक शरीरत पहुचने के एक साधन पर अधिकार कर लिया। अय सब समाजो के जीवन म पश्चिम का सघात क्रमश प्रधान सामाजिक बल बन गया। ज्यो-ज्यो उन पर पश्चिम का दबाव बढता गया उनके जीवन मे उलट-पुलट होने लगी। शुरू म केवल पाश्चात्य समाज अपने जीवन म उस प्रलय से अप्रभावित-सा प्रतीत हुआ जो वह शेष ससार के जीवन मे कर रहा था, किन्तु इस अध्ययन के लेखक के जीवन-काल म ही पश्चिम एव उसकी समकालिक सभ्यताओ के बीच होने वाले एक सघप ने स्वय पाश्चात्य समाज के क्षितिज को भी तमसाच्छन्न कर दिया।

पश्चिम एव एक विजातीय समाज निकाय की इस टक्कर ने पाश्चात्य मामलो म जो प्रभावशाली भूमिका ग्रहण कर ली वह हाल के पाश्चात्य इतिहास का एक नवीन लक्षण है। १६८३ ई में वियना पर द्वितीय उस्मानी (तुर्की ओटोमन) आक्रमण की विफलता से लेकर १९३९ ४५ ई के महायुद्ध म जमनी की पराजय तक सब मिलाकर पश्चिम शेप ससार से शक्ति म इतना बढा-चढा था कि उनके अपने समूह के बाहर पाश्चात्य शक्तियो का सामना करने वाला कोई न था। किन्तु १९४५ ई मे शक्ति के इस पाश्चात्य सर्वाधिकार का अन्त हो गया क्योकि उस तिथि के अनन्तर, १६८३ ई के बाद, पहिली बार शक्तिमत्ता की राजनीति का एक पृष्ठपोषक पश्चिमेतर रग रूप वाला एक राष्ट्र बन गया।

यह सच है कि सोवियत सघ और साम्यवादी विचार धारा के साथ पाश्चात्य सभ्यता के सम्बन्ध म एक अनिश्चितता थी। सोवियत सघ उस पीटरी रूसी साम्राज्य का राजनीतिक उत्तराधिकारी था जो ईसाई सवत की सत्रहवी और अठारहवी शतियो के चक्र म स्वेच्छा से पाश्चात्य जीवन-शैली का अनुयायी बन चुका था और उसके बाद से पश्चिम के खेल मे इस गुप्त समझौते द्वारा शामिल होने लगा था कि नव-मतग्राही पाश्चात्य नियमो का पालन करेगा। फिर उदारतावाद एव फासिस्तवाद की भांति ही साम्यवाद भी, अपने मूल रूप मे उन लौकिक विचारधाराओ म से एक था जो ईसाई मत की स्थानापन्न या विकल्प रूप मे आधुनिक पश्चिम मे उदित हुई थी। इस प्रकार एक दृष्टि स सोवियत सघ और सयुक्त राज्य (अमेरिका) के बीच विश्व के नेतृत्व के लिए और साम्यवाद तथा उदारतावाद के बीच मानव जाति की निष्ठाप्राप्ति के लिए

जो प्रतियोगिता है उसे अब भी पाश्चात्य समाज के घर के अन्दर एक पारिवारिक समस्या के रूप मे देखा जा सकता है। दूसरे दृष्टिकोण से, अपने पीटरी पूर्वज के समान सोवियत सघ का एक ऐसे रूसी परम्परानिष्ठ (आर्थोडॉक्स) ईसाई सार्वभौम राज्य के रूप मे ग्रहण किया जा सकता है जिसने सुविधा और प्रच्छन्नता के लिए जीवन का पाश्चात्य बाना पहिन रखा हो। इसी दृष्टिकोण से साम्यवाद को प्राच्य परम्परानिष्ठ ईसाई धर्म के बजाय विकल्प के रूप मे देखा जा सकता है जिसे उदारतावाद पर इसलिए तरजीह दी गयी कि उदारतावाद एक पाश्चात्य रूढिनिष्ठता ही तो था जब कि साम्यवाद का जन्मजात पाश्चात्य होते हुए भी पाश्चात्य आखो मे उसे जघन्य नास्तिकता समझा जाता था।

जो भी हो, इतना तो असदिग्ध है कि रूसी भावना एव विचार मे पाश्चात्य विरोधी प्रवृत्ति का तीव्र पुन स्वरारोह १९१७ ई की रूसी साम्यवादी क्रांति का एक परिणाम था, और सोवियत सघ के, दो बची हुई प्रतियोगी विश्व शक्तियो मे से एक के रूप मे आविर्भूत होने के कारण एक ऐसे राजनीतिक क्षेत्र मे फिर से सास्कृतिक सघर्ष पैदा हो गया जो लगभग २५० वर्ष पूर्व एक ही सस्कृति के रंग मे रगी शक्तियो के बीच पारिवारिक राजनीतिक झगडो के लिए सुरक्षित था। यह भी ध्यान देने की बात है कि बहुत पहिले हार मानकर छोड दी गयी लडाई को परिश्मीकरण के विरुद्ध फिर से जारी करने मे रूसी एक ऐसे उदाहरण की स्थापना कर रहे थे जिसका के अन्दर ही चीनियो द्वारा अनुसरण किया जा चुका है और समय आने पर जिसका ३१ साल अनुगमन जापानी, हिन्दू एव मुसलमान भी कर सकते है, बल्कि ऐसी जातिया भी उसका अनुसरण कर सकती हैं जो दक्षिण पूर्वी यूरोप के परम्परानिष्ठ ईसाई जगत के मुख्य अग के रूप मे पाश्चात्य रग मे गहरी रगी जा चुकी हैं। इसी प्रकार नयी दुनिया की तीन निमग्न प्राक्-कोलम्बीय सभ्यताए भी इसका अनुसरण कर सकती हैं।

इन विवेचनाओ से विदित होता है कि आधुनिक पश्चिम तथा अन्य जीवित सभ्यताओ के बीच होने वाले सघर्षों की निरीक्षा यात्रा के लिए एक अनुकूल बिंदु बन सकती है। इसलिए अगले विचारणीय सघर्ष स्वभावत वे सघर्ष होगे जो पाश्चात्य ईसाई दुनिया के आरम्भिक तथाकथित मध्य युग मे उसके पडोसियो के साथ हुए हो। इसके बाद हमारा काम यह होगा कि जो सभ्यताए आज नष्ट हो चुकी हैं उनमे से उन्हे अलग छाट लें जिनने अपने पडोसियो पर उतना ही प्रभाव डाला हो जितना पश्चिमी सभ्यता ने अपनी समकालिक सभ्यताओ पर डाला है। परन्तु ऐसा करते हुए भी हम प्रत्येक ऐसे सघर्ष पर विचार करने का आश्वासन नही दे सकते जिसे इतिहास की सूक्ष्म परीक्षा ने हमारे सामने प्रस्तुत कर दिया हो।

किन्तु इस परिचालन-योजना का आरम्भ करने के पूर्व हम उस तिथि का निर्णय कर लेना होगा जिससे पाश्चात्य इतिहास का आधुनिक अध्याय आरम्भ होता है।

पाश्चात्येतर पर्यवेक्षक उस क्षण से इसका आरम्भ मानेंगे जब प्रथम पाश्चात्य जलयानो ने उनके तटो का दर्शन किया होगा क्योकि अपाश्चात्य दृष्टि मे पाश्चात्य मानव

(Homo Occidentalis) का स्रोत समुद्र ही है, जमा कि एक वैज्ञानिक कल्पना के अनुसार वही जीवन का भी स्रोत है। उदाहरणार्थ, सुदूरपूर्वीय विद्वानों ने जब मिंग युग मे पहिली बार पाश्चात्य मानवता के नमूने देखे तो उनके तात्कालिक प्राप्ति-स्थान एव मस्कृति के बाह्य स्तर को देखकर उन नवागन्तुको का दक्षिण-सागरीय बर्बर नाम दे दिया। इस तथा दूसरे सघर्षों मे सर्वव्यापी पाश्चात्य नाविक अपने शिकार व्यक्तियो की चकित दृष्टि मे एक तीव्र रूपान्तरण मालिका से गुजरे। जब वे तट पर प्रथम बार उतरे तो पूर्णत अनाक्रामक के एक निर्दोष सामुद्रिक जन्तुक (Animalculae) जैसे दिखायी पडे परन्तु बहुत शीघ्र उन्होने अपने को भयानक समुद्री दस्यु के रूप मे प्रकट कर दिया और उसके बाद वे ऐसे परभक्षी उभयचर (Predatory Amphibians) सिद्ध हुए जो शुष्क भूमि पर भी वैसे ही चल सकते थे जैसे अपने जलतत्त्व मे।

आधुनिक पश्चिम के अपने दृष्टिकोण के अनुसार उसकी आधुनिकता उस क्षण मे आरम्भ हुई जब उसने ईश्वर के स्थान पर अपने को इसके लिए धन्यवाद दिया कि वह अपने 'मध्यकालिक' ईसाई अनुशासन से ऊपर उठ चुका है। यह आशाप्रद आविष्कार पहिले इटली मे हुआ। बात यह हुई कि जिस पीढी ने पाश्चात्य जनता के आल्प्स पार के बहुमत को इटली के रग-ढग मे निमग्न होते देखा वह वही थी जिसने अटलांटिक समुद्र-तट के पाश्चात्य लोगो द्वारा सागर को पराजित होते देखा था। इन दोनो ऐतिहासिक युगान्तरकारी घटनाओ को दृष्टि मे रखते हुए हम विश्वासपूर्वक पाश्चात्य इतिहास के आधुनिक अध्याय का आरम्भ पन्द्रहवी शती के अन्तिम चतुर्थांश से मान सकते हैं।

जब हम आधुनिक पश्चिम और शेष जगत के बीच हुए सघर्षों के परिणामो पर विचार आरम्भ करते हैं तो हमे पता चलता है कि नाटक आरम्भ होने के बाद बीता हुआ साढे चार शतियो का युग अननुकूल रूप से छोटा है और हम एक अधूरी कहानी का विवरण दे रहे हैं। यदि हम इसी प्रकार की एक पहिले की कहानी की ओर अपना ध्यान ले जाये तो यह बात बिलकुल स्पष्ट हो जायगी। यदि हम अपने समकालिको पर आधुनिक पश्चिम के सघात के इस पुस्तक लिखने के समय तक के इतिहास की तुलना हित्ताई (हिट्टाइट), सीरियाई मिस्री, बबिलोनी, भारतीय एव सिनाई (चीनी) समाजो पर यूनानी सभ्यता के सघात से करें और इस कालक्रमानुसारी तुलना के लिए हम ३२४ ईसा-पूर्व सिकन्दर के हेलिसपोंट पार करने की घटना का १४९२ ई मे कोलम्बस द्वारा अटलांटिक पार करने की घटना से समीकरण करें तो जो ४६० साल, हमे आधुनिक पाश्चात्य विवरणों मे १९५२ ई तक पहुचाते हैं वे दूसरी ओर (३२४ ईसा पूर्व + ४६० वर्ष) हमे केवल १२६ ई तक ले जाते हैं और यह तिथि सम्राट ट्राजन एव उसके उच्चायुक्त (हाई कमिश्नर) प्लिनी के बीच बिथीनिया और पाटस प्रान्तो मे ईसाइयो के एक दुर्बोध सम्प्रदाय के साथ होने वाले व्यवहार विषयक पत्र-व्यवहार की तिथि के कुछ ही वर्ष बाद की है। उस समय कौन ईसाई धर्म की बाद वाली विजय की कल्पना कर सकता था? इस ऐतिहासिक समानान्तर से मालूम पडता है कि शेष जगत पर पाश्चात्य सघात के विषय मे अध्ययन करने वाले एक पाश्चात्य छात्र की

मानव दृष्टि से १६५२ ई० में भी भविष्य किस पूर्णता के साथ लिखा जा सकता है ?

ईसाई संवत् की बारहवीं शती में इस प्रश्न के लिखे जाने के समय यूनानी-ईसाई एवं उसके समकालिकों के संघर्ष का बहुत अधिक अंश हो चुका है और इतिहासकार के लिए उस कथा का आरम्भ से अन्त तक अनुसरण कर सकना सम्भव है किन्तु उसका अन्त कहाँ जाकर प्राप्त होगा ? इसके अनुसन्धानकर्ता को अपने समय से बारहवीं शती से पीछे न जाना पड़ेगा क्योंकि उस समय गुर्जरतुर्कीय जगत् और सीरियाई जगत् दोनों ही इस ओर्थोडाक्सी के साथ यूनानी-ईसाई समाज की प्रतिक्रियाओं से भर रहे थे कि उसके विषय में जरा भी सन्देह नहीं रह गया था। गुर्जरतुर्कीय जगत् में शासन कला उस समय भी यूनानी प्रभावों से अनुप्राणित थी तथा सीरियाई जगत में अरस्तू का दर्शन एवं विज्ञान अरबी भाषा के माध्यम से प्राच्य विचारकों को प्रभावित कर रहा था।

इस प्रकार के प्रश्न उन स्थितियों दूसरे समाजों के उदाहरणों से भी सम सीमा तक लिखे एवं पुष्ट किया जा सकता है उस बुद्धिमत्तापूर्ण सूक्ति का स्मरण दिलाते हैं कि समकालिक इतिहास का लिखना असम्भव है। किन्तु साथ ही यह एक ऐसा असम्भव कार्य है जिसे करने से इतिहासकार बाज नहीं आते इसलिए अब हम अपनी आँख मली रखकर और पाठक को उचित चेतावनी देकर बाद इस असम्भव कार्य के विशेष क्षेत्र में जो हमारे सामने है प्रविष्ट होते हैं।

(२) पाश्चात्य के अनुसार परिणाम
क आधुनिक पाश्चात्य सभ्यता के साथ संघर्ष

१ आधुनिक पश्चिम और रूस

नोवागोरोड प्रजातन्त्र और मास्कोवी की ग्रंड डयूकी को मिलाकर रूसी परंपरानिष्ठ ईसाई सार्वभौम राज्य पन्द्रहवीं शती के अष्टम दशक में बना था। इस प्रकार वह पाश्चात्य इतिहास के 'आधुनिक' अध्याय के प्रारम्भ का समकालिक ठहरता है। किन्तु इस तिथि के पहिले ही पाश्चात्य सभ्यता से रूसी दिमाग का परिचय हो चुका था क्योंकि चौदहवीं एवं पन्द्रहवीं शतियों में पोलण्ड और लिथुवनिया का शासन रूसी परम्परानिष्ठ ईसाई राज्य की मूल विरासत के लम्बे भूखण्डों पर फैल चुका था। सोलहवीं सत्रहवीं और अठारहवीं शतियों में पोलण्ड एवं लिथुवनिया (दोनों राज्य १५६९ ई० में मिलकर एक हो गये थे) की रूसी आबादियों पर पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव अधीन रूसी परंपरानिष्ठ ईसाई समाज का रोमन कैथलिक चर्च के साथ धार्मिक एकीकरण हो जाने के कारण बराबर बढ़ता गया। एक ओर भूमिपति अभिजात वर्ग पर्याप्त अंश में जेसुइट मिशनरियों-द्वारा धर्मान्तरित किया गया दूसरी ओर कृषक वर्ग का अधिकांश यूनिएट चर्च का सदस्य बन गया और उसे अपनी परंपरागत रीतियाँ एवं अनुशासन बनाये रखने की छूट दी गयी। इस प्रकार श्वेत रूसी (ह्वाइट रशन) और यूक्रेनी आबादियाँ अपने सगे रूसी प्राच्य परंपरानिष्ठ ईसाइयों से बिछुड़ गयीं उनकी निष्ठा पर अधिकार करने के लिए मास्कोवी और पश्चिम के बीच का अदम्य संघर्ष बराबर

१६३६ ४५ के महायुद्ध के अन्त तक चलता रहा, जब किसी तरह इनके अतिम अवशेष रूसी प्रभाव मे पुन लाये गये।

इतने पर भी यह मूलत रूसी किन्तु बाद मे अध-पाश्चात्य बन गयी सीमा भूमि कोई ऐसा प्रमुख क्षेत्र न थी जिसमे रूस तथा आधुनिक पश्चिम के बीच सघष होता रहा हो क्योंकि आधुनिक पाश्चात्य सस्कृति का पोलैंड मे आया हुआ प्रतिबिम्ब इतना धुधला था कि रूसी आत्माओ पर उसका कोई गहरा प्रभाव नही पड सकता था। इस महत्त्वपूण सघष म पाश्चात्य पक्ष की ओर अटलाटिक तटवासी वे समुद्री लोग ही प्रधान योद्धा थे जिन्होने इटालियनो से पाश्चात्य जगत का नेतृत्व अपने हाथ मे ले लिया था। इस प्रभुत्वशाली वग मे बाल्टिक के पूर्वी तट पर बसे रूस के निकट पडोसी भी शामिल थे। किन्तु यद्यपि बाल्टिक प्रान्तो के जमन बैरनो (जागीरदारो) तथा मध्यवित्त वग ने रूसी जीवन पर अपनी सख्या के अनुपात से अधिक प्रभाव डाला किन्तु प्रवेश के उन बदरगाहो-द्वारा आने वाले अटलाटिक वासियो ने उसे कही ज्यादा प्रभावित किया, जिन्हे रूसी सम्राट-सरकार ने जान-बूझकर खोल रखा था।

इस समागम मे नाटक की कथावस्तु पश्चिम के प्रौद्योगिकीय पराक्रम (technological prowess) तथा रूसी आत्माओं के अपनी आध्यात्मिक स्वतन्त्रता कायम रखने के दृढ निश्चय के बीच एक दूसरे पर होनेवाली अविश्रान्त प्रतिक्रिया से निर्मित हुई थी। रूसियो का विश्वास था कि रूस की एक असाधारण नियति है। इसीलिए वे समझते थे कि द्वितीय रोम कुस्तुनतुनिया का प्रावरण (कतव्य) उनके कधो पर आ पडा है। प्राच्य ईसाई परपरानिष्ठ मत का गढ एव अनुपम निधान (repository) बनने की भूमिका मास्काउ-द्वारा ग्रहण कर लेने का ही अन्त इस बात मे जाकर हुआ कि १५८६ ई मे मास्काउ मे एक स्वतन्त्र पैटियार्की (धर्माधिकार क्षेत्र) की स्थापना हो गयी। यह घटना ठीक उसी समय घटित हुई जब मध्ययुगीन पाश्चात्य अतिसपणो (encroachments) द्वारा पहिले से ही कम हो गये रूसी राज्य पर आधुनिक पाश्चात्य प्रौद्योगिकी की प्रारभिक विजयो का आतक छाने लगा था।

इस चुनौती का चीन ने तीन भिन्न रूपो मे उत्तर दिया। एक प्रतिक्रिया तो सर्वाधिकारवादी धर्मोमाद की थी जिसका प्रचार और विवेचन प्राचीन आस्तिक' (Old Believers) नामक धर्मोमादी सम्प्रदाय-द्वारा हुआ। दूसरा उत्तर पूणतर हीरोदवाद (Herodianism=सुखेच्छावाद) के रूप मे मिला जिसे महान पीटर-जैसी प्रतिभा का विवेचक मिल गया। पीटर की नीति यह थी कि रूसी साम्राज्य को परपरानिष्ठ ईसाई सावभौम राज्य (आर्थोडाक्स क्रिश्चियन यूनिवसल स्टेट) से आधुनिक पाश्चात्य जगत् के एक ग्राम्यराज्य के रूप में बदल दिया जाय। पीटरी नीति का अनुसरण करके रूसियो ने अपने को दूसरे राष्ट्रो के समान बनाने का यत्न किया तथा पूर्वी परपरानिष्ठ ईसाई धम का गढ बनने की अपनी अनुपम नियति की कल्पना का त्याग कर दिया जबकि प्राचीन आस्तिकों का कहना था कि केवल रूसी समाज के अन्दर ही मानव जाति की भावी आशाएँ निहित हैं। यद्यपि पीटर की नीति, व्यक्त सफलता के साथ, दो सौ से अधिक वर्षों तक अपनायी जाती रही किन्तु उसे रूसी जनता का पूण

एवं हार्दिक समर्थन कभी प्राप्त नहीं हुआ। १९१४-१८ के महायुद्ध में रूस के सैनिक प्रयास का जो असंतोषकर परिणाम हुआ उससे इसका प्रमाण मिल गया कि सौ से अधिक वर्षों तक परीक्षा करने के बाद भी पाश्चात्यीकरण की पीटरी नीति में केवल न केवल कमी रही बल्कि असफल भी हो गयी। उससे जो आशा की गयी थी वह पूरी नहीं हुई। ऐसी परिस्थिति में रूस का अनुपम नियति-सम्बन्धी बहुत दिनों का संचित विश्वास साम्यवादी शक्ति के द्वारा पुनः प्रकट हो उठा।

रूसी साम्यवाद क्या था? यह रूसी नियति की इस अदम्य भावना के साथ आधुनिक पाश्चात्य प्रौद्योगिकीय परम्परा को मिला देने का एक प्रयत्न था। आधुनिक पाश्चात्य विचारधारा, यद्यपि यह प्रचलित पाश्चात्य उदारतावाद के प्रति विद्रोह की विचारधारा ही थी, को इस प्रकार ग्रहण करने में भी आधुनिक पश्चिम के विरुद्ध रूस के एक अनुपम उत्तराधिकार के स्वामी होने के दृढ़ विश्वास को प्रकट करने का विरोधाभास ही निहित था। लेनिन और उनके उत्तराधिकारियों ने समझ लिया था कि पश्चिम के साथ उसके ही अस्त्रों से लड़ने की नीति विफल, जब कि अस्त्रों का शुद्ध भौतिक अर्थों में निर्माण हुआ हो सफल नहीं हो सकती। आधुनिक यूरोप की आश्चर्यजनक सफलता का रहस्य यही था कि उसमें आध्यात्मिक एवं भौतिक शक्तियों का पूर्ण सामंजस्य था। आधुनिक यूरोपीय प्रौद्योगिकी के विस्फोट से जो दरारें पड़ गयी थीं उन्होंने आधुनिक पाश्चात्य उदारतावाद की प्रेरणा के लिए रास्ता खोल दिया था। पश्चिम के विरुद्ध रूस की जो प्रतिक्रिया थी उसकी सफलता के लिए उसका किसी ऐसे धर्म के नायक के रूप में प्रकट होना आवश्यक था जो समान स्तर पर उदारतावाद की प्रतिस्पर्द्धा कर सके। जो जीवित जातियां अपनी देशी सांस्कृतिक परम्पराओं से न तो पाश्चात्य थीं न रूसी, उन सब की आध्यात्मिक निष्ठा अपने पक्ष में प्राप्त करने के लिए इस धर्मविश्वास से सज्जित होकर रूस का पश्चिम से सामना करना अनिवार्य था। इतने से ही सन्तुष्ट न होकर शत्रु के शिविर में प्रवेश करके खुद पश्चिम की अपनी मातृभूमि में, रूसी धर्म का उपदेश करने का साहस भी उसने किया। यह एक ऐसा विषय है जिसकी ओर हम इस अध्ययन के उत्तर भाग में अनिवार्यतः ध्यान देंगे।

२ आधुनिक पश्चिम एवं परम्परानिष्ठ ईसाई जगत् का मुख्य निकाय

(दि माडर्न वेस्ट ऐंड दि मेन बॉडी आव आर्थोडाक्स क्रिश्चियनडम)

परम्परानिष्ठ ईसाई जगत् के मुख्य निकाय में आधुनिक पाश्चात्य संस्कृति का स्वागत और रूस में उसका स्वागत दोनों ही समकालिक थे। दोनों मामलों में पाश्चात्यीकरण का आन्दोलन ईसाई संवत् की सत्रहवीं शती के अन्तिम भाग में प्रारम्भ हुआ, दोनों में पहिले बहुत दिनों से चले आते विरोध के रुख के स्थान पर इस आन्दोलन में उपेक्षा की भावना आयी। दोनों मामलों में परम्परानिष्ठ ईसाई आत्माओं के रुख में परिवर्तन होने का एक कारण पश्चिम का वह पूर्वगत मनोवैज्ञानिक परिवर्तन था जिसमें एक असहिष्णु धार्मिक कट्टरता की जगह एक धर्मेतर सहिष्णुता आ गयी थी। इस परिवर्तन में पाश्चात्य प्राणियों की उस गहरी निराशा का प्रतिबिम्ब था जो पश्चिम

के तथाकथित धार्मिक युद्धो का परिणाम थी। जो भी हो, राजनीतिक स्तर पर इन दो विभिन्न परपरानिष्ठ ईसाई पाश्चात्यकरण के आदोलनो के रास्ते अलग-अलग हो गये।

उपयुक्त निधि पर दोनो परपरानिष्ठ ईसाई समाज सावभौम राज्यो के रूप मे एक मे जकड दिये गये। किन्तु इनमे से जहा रूसी सावभौम राज्य देशज निर्माण था वहा परपरानिष्ठ ईसाई जगत का मुख्य निकाय इस पर ओयमन तुर्कों द्वारा बाहर से लाकर थोपा गया था। इस प्रकार हम देखते हैं कि रूस में पाश्चात्यकरण का जो आदोलन चला वह उस समय वतमान सम्राट-सरकार को दृढ करने के लिए चलाया गया। यह आदोलन एक क्रातिकारी प्रतिभावान् व्यक्ति द्वारा, जो जार भी था ऊपर मे नीचे की ओर चलाया गया था, जबकि ओयमन साम्राज्य मे पाश्चात्यकरण के आन्दोलनों का लक्ष्य ओयमन शक्ति को विशृखल करके सब, यूनानी तथा अय पराधीन परपरानिष्ठ ईसाई जातियो को अन्ततोगत्वा राजनीतिक स्वतन्त्रता दिलाना था, और ये आदोलन नीचे से ऊपर की ओर सचालित किये गये थे—राजकाय सभालने वाले राजकुमारो द्वारा नही वर निजी व्यक्तियो के साहस-द्वारा।

सत्रहवी शती मे पश्चिम के प्रति परपरानिष्ठ ईसाइयो के व्यवहार मे जो क्राति हुई उसने सब एव यूनानी लोगा म रूसी हृदयो की अपक्षा कहीं बडे परिवतन की सूचना दी। यह बात तब स्पष्ट हो जाती है जब हम पश्चिम के प्रति दोनो के पूव विरोधभाव की भाषाओं की तुलना करते हैं। ईसाई सवत की तेरहवी शती मे यूनानियो ने उस तथाकथित लैटिन (रोमन) साम्राज्य के विरुद्ध प्रबल विरोध व्यक्त किया जो चतुथ धमयुद्ध—जिहाद (क्रूसड) के 'फ्रैंका' (पश्चिमी यूरोपवासियो) द्वारा आधी शती से उन पर बलपूवक थोपा हुआ था। पद्रहवी शती म उन्होने परपरानिष्ठ एव कथलिक चर्चों के उय एकीकरण को अग्राह्य ठहराया जो १४३९ ई मे फ्लोरेंस की कौंसिल मे कागज पर स्वीकार किया जा चुका था—यद्यपि इस एकीकरण में ही तुर्की आक्रमणकारी के विरुद्ध पश्चिम से उनके लिए सहायता प्राप्त करने का एक मात्र अवसर था। किन्तु उन्होने पोप पर पादशाह को तर्जीह दी। १७९८ ई तक मे कुस्तुनतुनिया के यूनानी अखबारो ने यरुशलम के प्रधान धमयाजक (पट्रियाक) का एक वक्तव्य प्रकाशित किया जिसमे वह अपने पाठको से कहता है—

> "जब कुस्तुनतुनिया के अतिम सम्राटों ने पूर्वी चच को पोप की दासता मे धकेलना शुरू किया तब विशिष्ट ईश्वरी कृपा ने इस विडम्बना से यूनानियों की रक्षा के लिए ओयमन साम्राज्य को खडा कर दिया, जो पाश्चात्य राष्ट्रों की राजनीतिक सत्ता के विरुद्ध एक अवरोध तथा परपरानिष्ठ चच का त्राता बन गया।"[1]

[1] फिनले, जो 'ए हिस्ट्री आव ग्रीस, बी सी वन हड्रेड फोर्टीसिक्स टु ए डी एटीन हड्रेड सिक्सटीफोर' (आक्सफोर्ड, १८७७, क्लेरडन प्रेस, ७ भागों में) भाग ५, पृ २८४ ५

के तथाकथित धार्मिक युद्धो का परिणाम थी। जो भी हो, राजनीतिक स्तर पर इन दो विभिन्न परपरानिष्ठ ईसाई पाश्चात्यकरण के आदोलनो के रास्ते अलग-अलग हो गये।

उपयुक्त तिथि पर दोनो परपरानिष्ठ ईसाई समाज सावभौम राज्यों के रूप मे एक मे जकड दिये गये। किन्तु इनमे से जहा रूसी सावभौम राज्य देशज निर्माण था वहा परपरानिष्ठ ईसाई जगत का मुख्य निकाय इस पर ओथमन तुर्कों द्वारा बाहर से लाकर थोपा गया था। इस प्रकार हम देखते हैं कि रूस मे पाश्चात्यकरण का जो आदोलन चला वह उस समय वतमान सम्राट-सरकार को दृढ करने के लिए चलाया गया। यह आदोलन एक क्रातिकारी प्रतिभावान् व्यक्ति द्वारा जो जार भी था, ऊपर से नीचे की ओर चलाया गया था, जबकि ओथमन साम्राज्य मे पाश्चात्यकरण के आदोलनो का लक्ष्य ओथमन शक्ति को विशृखल करके सब यूनानी तथा अन्य पराधीन परपरानिष्ठ ईसाई जातियो को अततोगत्वा राजनीतिक स्वतन्त्रता दिलाना था, और ये आदोलन नीचे से ऊपर की ओर सचालित किये गये थे—राजकाय सभालने वाले राजकुमारो द्वारा नही वर निजी व्यक्तियो के साहस-द्वारा।

सत्रहवी शती म पश्चिम के प्रति परपरानिष्ठ ईसाइयो के व्यवहार मे जो क्राति हुई उसने सब एव यूनानी लोगो मे रूसी हृदयो की अपेक्षा कही बड परिवतन की सूचना दी। यह बात तब स्पष्ट हो जाती है जब हम पश्चिम के प्रति दोनो के पूव विरोधभाव की भाषाओं की तुलना करते हैं। ईसाई सवत् की तेरहवीं शती मे यूनानियों ने उस तथाकथित लटिन (रोमन) साम्राज्य के विरुद्ध प्रबल विरोध व्यक्त किया जो चतुथ धमयुद्ध—जिहाद (क्रूसेड) के फ्रैंको (पश्चिमी यूरोपवासियो) द्वारा आधी शती से उन पर बलपूवक थोपा हुआ था। पद्रहवीं शती मे उन्होने परपरानिष्ठ एव कैथलिक चर्चों के उस एकीकरण को अग्राह्य ठहराया जो १४३९ ई मे फ्लोरेंस की कौंसिल म कागज पर स्वीकार किया जा चुका था—यद्यपि इस एकीकरण मे ही तुर्की आक्रमणकारी के विरुद्ध पश्चिम से उनके लिए सहायता प्राप्त करने का एक मात्र अवसर था। किंतु उन्होने पोप पर पादशाह को तर्जीह दी। १७९८ ई तक मे कुस्तुनतुनिया के यूनानी अखबारो ने यरुशलम के प्रधान धमयाजक (पैट्रियाक) का एक वक्तव्य प्रकाशित किया जिसमे वह अपने पाठको से कहता है—

> "जब कुस्तुनतुनिया के अतिम सम्राटों ने पूर्वी चच को पोप की दासता मे धकेलना शुरु किया तब विशिष्ट ईश्वरी कृपा ने इस विडम्बना से यूनानियों की रक्षा के लिए ओथमन साम्राज्य को खडा कर दिया, जो पाश्चात्य राष्ट्रों की राजनीतिक सत्ता के विरुद्ध एक अवरोध तथा परपरानिष्ठ चच का त्राता बन गया।"[1]

[1] फिनले, जो ए हिस्ट्री आव ग्रीस, बी सी वन हड्रेड फोर्टीसिक्स टु ए डी एटटीन हड्रेड सिक्सटीफोर' (आक्सफोड, १८७७, क्लेयरडन प्रेस, ७ भागों मे) भाग ५, पृ २८४ ५

परन्तु पारम्परिक धर्मोन्माद की प्रतिमा का यह विश्लेषण, पराजयाधीन सांस्कृतिक युद्ध का अंतिम प्रहार था। सच पूछें तो इस युद्ध का निर्णायक मोड़ सौ वर्ष से पहिले ही शुरू हो चुका था। अपने ओथमन प्रभुओं से अपने पाश्चात्य पड़ोसियों की परम्परानिष्ठ ईसाइयों की सांस्कृतिक निष्ठा के इस हस्तान्तरण के आरम्भ की तिथि वस्त्रों के चलन में होने वाले परिवर्तनों के मनोवैज्ञानिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण संकेत द्वारा घोषित होती है। फिर वस्त्र विन्यास के इस प्रमाण की पुष्टि सांस्कृतिक क्षेत्र में प्राप्त अन्य प्रमाणों से भी होती है। सत्रहवीं शती के सातवें दशक में रिआया की सामाजिक महत्त्वाकांक्षा का लक्ष्य ओथमनों के रंग-ढंग का अनुसरण करना ही था जैसा कि उस समय कुस्तुनतुनिया स्थित अंग्रेज राजदूत के निज सचिव सर पाल राईकाट ने लिखा है—

"बुद्धिमान् मनुष्य के लिए यह बात ध्यान देने योग्य है कि किस प्रसन्नता के साथ यूनानी और आरमेनी ईसाई तुर्की आदतों की नकल करते हैं, और जहाँ तक वे जा सकते हैं उनके निकट जाते हैं। और जब किसी असाधारण अवसर पर उन्हें अपनी ईसाई विशिष्टता से रहित होकर उपस्थित होने की सुविधा प्राप्त होती है तो अपने को कितना गौरवशाली समझते हैं।"[1]

दूसरी ओर हम देखते हैं, रूमी परंपरानिष्ठ ईसाई रईस डेमेट्रियस कंटेमीर को उस काल के एक चित्र में कटोप, कोट वेस्टकोट एवं कृपाण धारण किये दिखाया गया है। कंटेमीर १७१० ई० में पोर्ट-द्वारा मोलदेविया का प्रिंस (शासक) नियुक्त किया गया था और अगले ही साल यह विश्वासघात करके रूसियों से जा मिला। निस्सन्देह, परिधान के ये परिवर्तन मन के सांचे में तदनुवर्ती परिवर्तनों के बाह्य चिह्न हैं। उदाहरणार्थ कंटेमीर लैटिन इटालियन तथा फरासीसी भाषाएं लिख-पढ़ सकता था तथा तुर्की की सेवा में नियुक्त फनारियोत यूनानी परंपरानिष्ठ ईसाइयों का मान अपने तुर्की मालिकों द्वारा अठारहवीं शती में पाश्चात्य जीवन प्रणाली के उनके ज्ञान के आधार पर किया जाता था। यह ऐसे युग की बात है जब ओथमन सरकार को ऐसी पाश्चात्य शक्तियों से, जिन्हें वह युद्ध में हरा नहीं पाती थी व्यवहार करने के लिए चालबाज कूटनीतिज्ञों से काम लेना पड़ता था।

अठारहवीं शती में ओथमन सम्राट की परंपरानिष्ठ ईसाई प्रजा की पीड़ाओं का मुख्य कारण, विघटन के मार्ग पर बढ़ते हुए साम्राज्य में व्याप्त कुप्रबंध था। इसके प्रतिकूल पाश्चात्य ईसाई जगत में धार्मिक सन्देहवाद के आगमन के साथ शासकीय कुशलता में वृद्धि हुई और राजनीतिक चेतना का उदय हुआ। हैप्सबर्ग के कैथोलिक राजतन्त्र ने अपनी गैर-कैथोलिक प्रजाओं का परिपीडन बन्द कर दिया और उनकी सब परंपरानिष्ठ ईसाई प्रजाएं (हंगरी में हैप्सबर्ग राजतन्त्र द्वारा जीते हुए पूर्व ओथमन शासित भूखण्डों में बसाये हुए ओथमन साम्राज्य से आये शरणार्थी) ऐसे मनोवैज्ञानिक संवाहक माध्यम बन गयी जिनके द्वारा आधुनिक पाश्चात्य संस्कृति सारी सब प्रजा में

[1] राईकाट, सर पी 'दि प्रेजेंट स्टेट आव दि ओटोमन इम्पायर' (लंदन, १६६८ ई०, स्टार्की ऐण्ड ब्रोम) पृ० ८२

फल गयी। पाश्चात्य सास्कृतिक प्रभाव का दूसरा स्रोत वेनिस म होकर प्रवाहित हुआ, यह वेनिस १६६६ ई के पूव साढे चार शतिया से यूनानी परपरानिष्ठ ईसाई द्वीप क्रीट के अधीन था और इससे छोटे युगो म यूरोप महाद्वीपीय यूनान के कुछ भागो पर शासन भी कर चुका था। पाश्चात्यकरण की एक दूसरी शक्ति थी—कुस्तुनतुनिया स्थित पाश्चात्य कूटनीतिज्ञो की टोली। इस टोली ने साम्राज्य की सब जातियों के लिए अ प्रादेशिक स्वायत्त शासन के प्राचीन ओथमन सिद्धान्त का लाभ उठाकर साम्राज्य के अ दर एक लघु साम्राज्य बना लिया था जिसकी सीमा के भीतर वे न केवल ओथमन साम्राज्य मे बसे अपन देशवासियो पर वर उन ओथमन प्रजाओ पर भी शासन करते थे जिन्होने उनकी सरकारी सेवा म आश्रय लिया था। एक और भी दूसरा स्रोत उन यूनानी व्यापारी जातियो न जारी कर दिया था जो पाश्चात्य जगत् में लदन लिवर पूल और न्यूयाक-जसे दूर क स्थानो में जाकर स्थापित हो गयी थी।

इन भौमिक एव सागरीय मार्गो से परपरानिष्ठ ईसाई जगत के प्रमुख निकाय मे जा आधुनिक पाश्चात्य प्रभाव ज्योतित हुआ उसकी प्रतिक्रिया एक ऐसे समाज पर हो रही थी जो एक विजातीय सावभौम राज्य के अन्दर जी रहा था। इस प्रकार हम देखते हैं कि आधुनिक पाश्चात्य जीवन प्रणाली ग्रहण करने का यत्न राजनीतिक स्तर पर प्रचलित होन के पूव शक्षणिक स्तर पर हुआ। कारा ज्योर्ज और मिलोज ओब्रीनोविक के विद्रोहो के पूव पेरिस मे अद्यमान दियोज कोराइस तथा वियेना मे बूक करादजिक का शक्षिक (academic) काय हो चुका था।

ईसाई सवत् की उन्नीसवीं शती के आरम्भ मे विश्वासपूवक यह भविष्यवाणी की जा सकती थी कि ओथमन साम्राज्य के यूरोपीय क्षेत्रो पर किसी न किसी प्रकार का पाश्चात्य रग चढ जायगा। किन्तु उस परिवतन का रूप क्या होगा, यह उस समय अस्पष्ट था। १८२१ ई म जिस शतवार्षिकी का अन्त हुआ उसके अन्दर विश्व धर्माध्यक्ष (Oecumenical Patriarch) के फनेरियत यूनानी पापदो न रोम साम्राज्य के पूर्वी रोमन प्रेत को (मुर्दे से) जिन्दा कर देने के अपने पुराने स्वप्न को राजनीतिक स्तर पर पाश्चात्य समस्या का समाधान करने के एक नवीन स्वप्न मे परिवर्तित कर दिया था। जिस प्रकार पीटर महान ने रूसी साम्राज्य को परिवर्तित कर दिया था उसी प्रकार उन्होने ओथमन साम्राज्य को समसामयिक पाश्चात्य बहुजातीय प्रबुद्ध राजतत्रो—जसे डन्यूबीय हैप्सबग राजतत्र—म परिवर्तित कर देने का स्वप्न देखा। और प्रोत्साहनकारी बहुसख्यक प्रगतिशील राजनीतिक सफलताओ के कारण यह फनेरियत यूनानी महत्वाकाक्षा बडी प्रबल हो उठी थी।

ओक्युमेनिकल (सवव्यापक) पैट्रियाक को विस्तारशील ओथमन साम्राज्य की सम्पूर्ण पूर्वी परपरानिष्ठ ईसाई रयत का सरकारी प्रधान बनाकर सुलतान ने कुस्तुन-तुनिया क इस धर्माध्यक्ष को ईसाई प्रजाओ पर ऐसी राजनीतिक सत्ता प्रदान कर दी जो ईसाई सवत की सातवी शती मे अरबों-द्वारा सीरिया एव मिस्र के विजय कर लिय जाने के बाद से कुस्तुनतुनिया के किसी सम्राट के शासनकाल मे नही दी गयी थी। सत्रहवी एव अठारहवी शती म यह राजनीतिक सत्ता उनकी आजाद मुसलमान साथी

प्रजाओ के कृत्य से और भी बढ गयी। १५६६ ई मे सुलेमान की मत्यु हुई। उसके बाद के सौ वर्षों म आजाद मुसलमानो ने पादशाह के गुलाम कुटुम्ब को इस बात के लिए विवश कर दिया कि उन्हें ओथमन साम्राज्य के शासन मे साझेदार बनाया जाय। इस राजनीतिक विजय के बाद उन्होने यूनानी रिआया को भी अपनी उस साझेदारी म शरीक कर लिया। पोर्टे के ड्रगोमन (दुभाषिया) तथा बेडे के ड्रगोमन के पद इसीलिए निर्मित किये गये कि ओथमन यूनानी प्रतिभा का साम्राज्य की सेवा म उपयोग किया जाय। इसके बाद भी गर यूनानी परपरानिष्ठ ईसाई रिआया का कीमत पर यूनानियो के पक्ष मे और भी कारवाइया की गयी।

१८२१ ई के पूव की अद्धशती मे फनेरियत यूनानी यह कल्पना कर सकते थे कि उन्ह ओथमन साम्राज्य मे कुछ इस प्रकार का प्रभुत्व मिलता जा रहा है जसा समसामयिक बादशाह सम्राट जोजेफ द्वितीय जमनो के लिए डैन्यूबीय हैप्सबग राजतत्र म प्राप्त करा देने के लिए सचेष्ट था। किन्तु इसी समय पश्चिम म होने वाली क्रातिकारी घटनाओ क कारण फनेरियतो की बढ़ती हुई शक्ति रुक गयी। प्रबुद्ध राजतत्र (Enlightened Monarchy) के स्थान पर सहसा राष्ट्रवाद न प्रबल प्रभावी पाश्चात्य राजनीतिक विचार का रूप ल लिया और ओथमन साम्राज्य की गर-यूनानी परपरानिष्ठ ईसाई रिआया पर तुर्की मुसलमानो की दासता की जगह, फनेरियत यूनानी दासता लादने की अपनी उठती हुई राष्ट्रवादी आकाक्षा मे कोई तृप्ति नही दिखायी पडी। यह बात डन्यूबीय जागीरदारिया की रूमानियन आबादी के रुख से तब स्पष्ट हो गयी जब १८२१ ई म फनेरियत यूनानी शासन के ११० वर्षों के स्थानीय अनुभव के बाद, हैप्सीलडी का आक्रमण बिल्कुल विच्छिन्न हो गया। उन्होने इस यूनानी के उस आदेश की ओर जरा भी ध्यान न दिया जो उसने परम्परानिष्ठ ईसाई समाज के सभी सदस्या के रूप म उस समाज को ओथमन शासन से मुक्त करने के लिए फनेरियत यूनानी नेतृत्व के अधीन शस्त्रग्रहण करन के हेतु उनको दिया था।

फनेरियतो की महती सूझ' की यह विफलता इस बात का सकेत थी कि पाश्चात्य जीवन प्रणाली अपनान के निश्चय स युक्त ओथमन साम्राज्य की बहुजातीय परपरानिष्ठ ईसाई आबादी, अपने को अनेक ग्रामराज्यो के जोड या पबदो म विभक्त करके ही रहेगी और फास स्पेन पोर्चुगाल एव हालड क साचे पर यूनानी, रूमन सब बलगार, अलबेनी एव ज्यार्जी इत्यादि स्वतत्र जातियो क रूप म निर्मित होगी— जिनम से हर एक म एक विशिष्ट धम की जगह एक विशिष्ट भाषा देशबधुओ के एकीकरण और उन्हे विदेशियो स अलग पहिचान कराने का साधन होगी। किन्तु उन्नीसवी शताब्दी के आरम्भ म इस विदेशज मा आधुनिक पाश्चात्य साचे का रूपरेखा को देख सकना मुश्किल था। उस समय ओथमन साम्राज्य म थोडे ही जिले ऐस थ जिनकी आबादी भाषागत जातीयता क आधार पर लगभग-सजातीय भी रही हो और बहुत थोडे एसे थ जिनम राज्यत्व (Statehood) का प्रारभिक बातें भी मौजूद रही हा। क्रान्तिकारी आधुनिक पाश्चात्य अभिकल्प (design) मे मल खान क लिए राजनीतिक नक्शे के आमूल परिवर्तनकारी पुनर्निर्माण म लाखों मानव प्राणी बर्बाद

हो गये और ज्यो-ज्यो यह हिंसक कारवाई एक के बाद एव उन क्षेत्रों तथा आबादियो पर फैलती गयी जो राष्ट्रीयता के आधार पर राजनीतिक रूप से गठित होने मे असमर्थ थी, त्या-त्यो दु ख-कष्ट अधिक व्यापक और गहरा होता गया। यह भयानक कहानी १८२१ ई मे यूनानी राष्ट्रवादियों द्वारा मोरिया के ओथमन मुसलमानी अल्पमत के विनाश से लेकर १६२२ ई मे पश्चिमी अनातोलिया से यूनानी परपरानिष्ठ ईसाई अल्पमत के पूर्ण देशत्याग तक फली हुई है।

इन प्रतिकूल परिस्थितियो में और ऐसे छोटे पैमाने पर जिन परपरानिष्ठ ईसाई राष्ट्रीय राज्यो का निर्माण हुआ था वे निश्चय ही पश्चिमी रग मे डूब रहे रूसी साम्राज्य की भाति, आधुनिक पश्चिम का वैसा सामना कर सकने की महत्त्वाकाक्षा नही पाल सकते थे जैसा मध्ययुगीन पाश्चात्य ईसाई जगत् के साथ पूर्वी रोमन साम्राज्य मे किया था। उनकी दुबल शक्तिया लघु क्षेत्रखण्डो सम्बन्धी स्थानीय झगडो मे ही समाप्त हो जाती थी, वे एक दूसरे के प्रति कटुतम शत्रुता रखते थे। बाहरी दुनिया के सम्बन्ध मे उन्होने अपने को ऐसी स्थिति में पाया जो उस स्थिति से भिन्न नही थी जिसमे उनके पूर्वजो ने ओथमनी शान्ति की स्थापना के पूर्व की शतियो मे अपने को पाया था। उस युग मे भी यूनानियो, सर्बो, बुलगरो एव रूमनो के सामने मध्यकालिक पाश्चात्य सगी ईसाईयो की दासता या उस्मानलियो की दासता म से एक को चुनने का सवाल था। ओथमनोत्तर काल मे उनके सामने फिर दो विकल्प थे—या तो वे एक धर्मनिरपेक्ष आधुनिक पाश्चात्य समाजनिकाय मे निमग्न हो जाय या पहिले पीटरी और बाद म साम्यवादी रूस की दासता स्वीकार करें।

१९५२ ई में इन गैररूसी परपरानिष्ठ ईसाई राज्यो मे से अधिकाश वस्तुत रूस के सैनिक एव राजनीतिक नियन्त्रण मे थे। यूनान एक मात्र अपवाद था, जहा सोवियत सघ एव सयुक्त राज्य (अमेरिका) के बीच युद्ध के बाद के एक अघोषित युद्ध मे रूसी हार गये थे। इस युद्ध मे प्रत्येक पक्ष मे विदेशी युद्धकारियों (Foreign Belligerents) के यूनानी परिपत्री (Proxies) मौजूद थे। इनके अलावा उसमे उस युगोस्लाविया के भी परिपत्री थे जिसने युद्धोत्तर रूसी नेतृत्व को ठुकराकर अमेरिकी सहायता स्वीकार कर ली थी। किन्तु रूसी प्रभुत्व के अन्दर जो राज्य थे उनमे यह बात स्पष्ट हो गयी थी कि रूसी सत्ता का अप्रत्यक्ष प्रयोग भी एक लघु अल्पमत के सिवा और सबके लिए घृणाजनक था। यह लघु अल्पमत उन साम्यवादियों का था जो सोवियत सरकार के एजेण्टों के रूप मे इन देशो पर शासन कर रहे थे।

रूसी प्रभुत्व के विरुद्ध यह अवज्ञा बहुत पुरानी बात थी जिसे रूस मे साम्यवादी क्राति होने की तिथि के बहुत पहिले, उन्नीसवीं शती म रूमानिया, बलगरिया एव सर्बिया के साथ रूसी सम्बन्ध के इतिहास से दिखाया जा सकता है। उदाहरणार्थ, १८७७ ७८ के रूसी-तुर्की युद्ध के तत्काल बाद रूस उस सर्बिया पर अपना प्रभुत्वकारी प्रभाव जमाने की सोच रहा था जिसको उसने तुर्की सेनाओ द्वारा पराजित होने से बचाया था। यही बात रूमानिया के बारे में भी थी जिसे उसी समय रूस ने दोबरूजा उपहार मे दे डाला था। इन सबके अलावा वह (रूस) बल्गेरिया पर भी अपना प्रभुत्व

जमाना चाहता था क्योंकि उसे उसने एक मात्र रूसी धर्मात्मा के बल पर, शून्य से निकालकर अस्तित्व में ला दिया था। किन्तु बाद की घटनाओं से प्रमाणित हो गया, जैसा कि पहिले भी विभिन्न स्थानों में अनेक बार प्रमाणित हो चुका था कि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में कृतज्ञता जैसी कोई चीज नहीं हुआ करती।

गैर रूसी परंपरानिष्ठ ईसाई देशों की यह रूस विरोधी भावना, प्रथम दृष्टि में, ऐसे समय आश्चर्यजनक मालूम होगी जब परंपरानिष्ठ ईसाई मत रूसी राज्य का प्रमुख धर्म था और जब पुरानी स्लावोनी (भाषा रूसी, रूमानी, बल्गेरी और सर्बी (रशन, रूमानियन बल्गेरियन और सर्बियन) परंपरानिष्ठ चर्चों की सामान्य धर्माधीय भाषा थी। ओथमन चंगुल से निकलने के संघर्ष में रूस ने इन सब जातियों को जब प्रभावपूर्ण सहायता प्रदान की थी तब इनके साथ व्यवहार करने में सर्व-स्लाववादिता (Pan-Slavism) तथा सर्व-परंपरानिष्ठता (Pan-Orthodoxy) इस प्रकार विफल क्यों हो गयी?

इसका उत्तर यही जान पड़ता है कि ओथमन परंपरानिष्ठ ईसाई पश्चिम के जादू से प्रभावित हो चुके थे और यदि रूस इन्हें किसी अंश तक आकर्षित करता था तो इसलिए नहीं कि वह स्लाव था, न इसीलिए कि वह 'परंपरानिष्ठ' (orthodox) था किन्तु महज इसलिए कि वह उस पाश्चात्यकरण के प्रयास में अग्रगामी था जिस पर वे भी अपना दिल लगा चुके थे। किन्तु रूस से पश्चिम के रंग में रंगते हुए इन गैर रूसी लोगों का परिचय जितना ही घनिष्ठ होता जाता था उतना ही उन्हें यह स्पष्ट होता जाता था कि पीटरी रूस का यह पाश्चात्य आवरण केवल दिखाऊ है—एक रूसी को छीलो तो अन्दर तुम तातार पाओगे। यह दिखाने के लिए अनेक प्रलेखीय प्रमाण एकत्र किये जा सकते हैं कि ओथमन ईसाइयों में रूस की सांस्कृतिक प्रतिष्ठा कथराइन महती के युग (राज्यकाल १७६२-९६ ई) में सर्वाधिक थी और उसके बाद ज्यों-ज्यों ओथमन साम्राज्य के मामलों में रूसी हस्तक्षेप बढ़ने लगा और इन पीड़ित ईसाई जातियों को, जिनका त्राता बनने का रूस प्रयत्न कर रहा था, ज्यों-ज्यों रूसी स्वभाव का अधिकाधिक परिचय मिलता गया त्यों-त्यों उसकी प्रतिष्ठा गिरती गयी।

३ आधुनिक पश्चिम तथा हिन्दू जगत्

जिन परिस्थितियों में हिन्दू जगत से आधुनिक पश्चिम की टक्कर हुई वे कुछ बातों में उन अनुभवों से आश्चर्यजनक समानता रखती थीं जिनसे परंपरानिष्ठ ईसाई जगत् को गुजरना पड़ा था। दोनों सभ्यताओं में से प्रत्येक अपने सार्वभौम राज्यों में व्यक्त हो चुकी थी और दोनों के मामले में यह शासन उन विदेशी साम्राज्य निर्माताओं द्वारा थोपा गया था जो ईरानी मुस्लिम सभ्यता के बच्चे थे। जब उनके क्षितिज पर आधुनिक पश्चिम का उदय हुआ तब ओथमन परंपरानिष्ठ ईसाई जगत् की भांति मुगल भारत में भी इन मुसलमान शासकों की प्रजाएं अपने प्रभुओं की संस्कृति की ओर आकर्षित हो रही थीं। ज्यों-ज्यों पश्चिम प्रसरित होकर बढ़ता गया और इस्लामी समाज की प्रभावशालिता कम होती गयी त्यों-त्यों दोनों क्षेत्रों में वे अपनी निष्ठा बाद में उगने वाले सितारे के प्रति हस्तान्तरित करते गये। किन्तु जहां इनमें समानता के ये

बिन्दु दिखायी पडते हैं, वहा विपमता के भी कुछ उल्लेखनीय बिन्दु मिलते हैं।

उदाहरणार्थ जब ओथमन परपरानिष्ठ ईसाई पश्चिम की ओर झुके तब उन्हे उस सभ्यता की इसके पूर्व की मध्यकालिक अवस्था के साथ हुए संघर्ष के दुर्भाग्यपूर्ण अनुभव से उत्पन्न पारपरिक विरोध भावना पर काबू पाना पडा था। किन्तु इसके विपरीत हिन्दुओ को अपने सांस्कृतिक पुनर्निर्धारण कार्य मे ऐसी दुखद स्मृतियो से गुजरना नही पडा। क्योंकि हिन्दू जगत एव पश्चिम का जो संघर्ष १४९८ ई० मे कालीकट मे वास्को डि गामा के उतरने के साथ शुरू हुआ वह वस्तुत इन दोनो समाजो के बीच प्रथम समागम का द्योतक था।

इसके अलावा परिस्थितियो के इस अन्तर से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है बाद की घटनाओ का अन्तर। परपरानिष्ठ ईसाई जगत् के इतिहास मे विदेशी सार्वभौम राज्य अपने विघटन के दिन तक अपने मुसलमान संस्थापको के हाथ मे ही रहा दूसरी ओर जिस साम्राज्य को तमूरी मुगल योद्धाओ के दुर्बल उत्तराधिकारी संघटित रखने मे असफल रहे उसे आग्ल व्यापारियो ने पुनर्गठित किया। जब इन व्यापारियो ने देखा कि भारत मे जिस कानून और व्यवस्था की स्थापना के बिना कोई पश्चिमी प्राणी व्यापार-व्यवसाय नही चला सकता उसे यदि वे खुद नही करते तो उनके प्रतिद्वंद्वी फरासीसी करने जा रहे हैं तो उन्होने अकबर का अनुसरण किया। इस प्रकार हिन्दू जगत् के पाश्चात्यकरण की यह महत्त्वपूर्ण अवस्था ऐसे युग मे आयी जब भारत पाश्चात्य शासन के अधीन था। इसके फलस्वरूप भारत मे आधुनिक पाश्चात्य सस्कृति का स्वागत, रूस की भाति, ऊपर से नीचे की ओर शुरू हुआ—ओथमनी परपरानिष्ठ ईसाइ जगत् की भाति, नीचे से ऊपर की ओर नही।

इस स्थिति मे हिन्दू समाज की ब्राह्मण एव वैश्य जातियो ने हिन्दू इतिहास मे वह भूमिका अभिनीत की जिसका अभिनय करने मे गररूमी परपरानिष्ठ ईसाई इतिहास मे फैनरियत यूनानी असफल हो चुके थे। भारत के सम्पूर्ण राजनीतिक शासनो मे राज्य का मन्त्रित्व ब्राह्मणो का परमाधिकार रहा है। सम्बद्ध हिन्दू समाज मे यह भूमिका अभिनीत करने के पूर्व वे उसे इडिक जगत् मे अभिनीत कर चुके थे। मुगलो के मुसलमान पूर्वगामियो को और खुद मुगलो को भी उन हिन्दू राज्यो के उदाहरण का अनुगमन करना ज्यादा सुविधाजनक जान पडा जिनका अपहरण वे कर रहे थे। मुसलमान शासको की सेवा मे नियुक्त ब्राह्मण मन्त्रियो एव निम्नाधिकारियो के कारण, यह विदेशी शासन हिन्दुओ के लिए उतना अप्रिय नही रह गया जितना उनके अभाव मे होता। ब्रिटिश राज ने भी, अपनी बारी, मुगल राज के उदाहरण का अनुसरण किया, दूसरी ओर अग्रेजो के आर्थिक उद्योगो ने इसी प्रकार का अवसर वैश्यो के लिए भी उपस्थित कर दिया।

भारत का शासन ब्रिटिश हाथो मे चले जाने के फलस्वरूप फारसी की जगह अग्रेजी को सम्राट-सरकार की सरकारी भाषा बनाने और उच्च शिक्षा के माध्यम के रूप मे फारसी तथा संस्कृत साहित्य पर पाश्चात्य साहित्य को वरीयता देने की ब्रिटिश नीति का हिन्दू सांस्कृतिक इतिहास पर उतना ही महत् प्रभाव पडा था। दोनो

मामलो मे एक व्यापक निरकुश सत्ताधारी सरकार के आदेश से पाश्चात्य जीवन का परिच्छद प्रचलित हो गया। उच्च जाति के हिन्दुओ ने पाश्चात्य शिक्षा इसीलिए अर्जित की कि सरकार ने नियम बना दिया था कि यह शिक्षा ही ब्रिटिश भारतीय सरकारी सेवाओं म प्रवेश पाने की कुंजी मानी जायगी। भारतीय व्यापार और सरकार के पाश्चात्यकरण ने भारत म दो पश्चिमी उदार पेशा का आरम्भ किया—विश्वविद्यालयीय सकाय (University Faculty) अर्थात् अध्यापन और विधिवग या वकालत का। निजी उद्योग पर आश्रित पाश्चात्य ढग के व्यापार जगत् म सर्वाधिक लाभप्रद काय यूरोपीय ब्रिटिश प्रजा के एकाधिकार (मोनोपोली) म नही लाये जा सके।

अनिवाय था कि जिस प्रकार ओयमन परम्परानिष्ठ ईसाई जगत् म फनरियत *यूनानी महत्वाकाक्षी हो उठे थे उसी प्रकार हिन्दू समाज का यह नवीन वग भी इस* आकाक्षा से पूरित हो उठता कि जिस व्यापक साम्राज्य के अन्तगत वे रह रहे थे उसे उन विदेशी हाथो से अपने हाथो मे ले लिया जाय जिन्होने उसे बनाया था और उस समय के प्रचलित सवधानिक नमूने पर पाश्चात्य रग म रगी दुनिया के ग्राम्य वा सीमित राज्यों मे बदल दिया जाय। अठारहवी एव उन्नीसवी शती के मोड पर फनरियता न भी ओयमन साम्राज्य को अठारहवी शती के प्रबुद्ध राजतत्र म बदल देने का स्वप्न देखा था। उन्नीसवी एव बीसवी शती के मोड पर हिन्दू जगत के पाश्चात्य रग मे रगे राजनीतिक नेताओ ने ब्रिटिशभारतीय साम्राज्य को एक प्रजासत्तात्मक पाश्चात्य राष्ट्रीय राज्य म बदलने के कही अधिक कठिन काय को अपनाकर पाश्चात्य राजनीतिक आदर्शों मे परिवतन का अभिनन्दन किया। १५ अगस्त १९४७ को भारत का शासन ब्रिटिश से भारतीय हाथो म हस्तान्तरित होने के पाच वर्षों से भी कम म *यह भविष्यवाणी करना समय क पूव है कि इस प्रयास का परिणाम क्या होगा,* किन्तु इतना कहना सभव है कि भारतीय उपमहाद्वीप को अग्रेजो की जो सबसे मूल्यवान् देन थी उस राजनीतिक एकता को सुरक्षित रखन म हिन्दू राजममज्ञता उससे कही ज्यादा सफल हुई जितनी आशा करने का साहस विदेशी शुभपी कर सकते थे। घटनाओ के झुकाव का पयवेक्षण करने वाले कितने ही ब्रिटिश पयवेक्षको ने भविष्यवाणी की थी कि ब्रिटिश राज का पतन होते ही सारे उपमहाद्वीप के खण्ड-खण्ड हो जायगे। वह भविष्यवाणी गलत साबित हुई यद्यपि हिन्दू दृष्टिकोण से, पाकिस्तान के अलग हो जाने के कारण अखण्डता को आघात पहुचा।

पाकिस्तान के निर्माण पर जोर देन म भारतीय मुसलमानो का अभिप्रेरक उनका भय था जो दुबलता की चेतना से उत्पन्न हुआ था। वे भूले नही थे कि ईसाई सवत् की अठारहवी शती मे किस प्रकार मुगल राज उस राज्य की तलवार के बल पर रक्षा करने मे असमथ हो गया था जिसे केवल तलवार से ही प्राप्त किया गया था। व यह भी जानते थे कि उसी सप्रमाणित साधन (तलवार) से मुगलो के पूव राज्य के अधिकाश भाग मराठा एव सिख हिन्दू वारिस राज्यो के हाथ म चले गए होते यदि ब्रिटिश सनिक हस्तक्षेप के कारण भारतीय राजनीतिक इतिहास को एक दूसरा ही मोड न प्राप्त हुआ होता। वे यह भी जानते थे कि ब्रिटिश राज्य के अधीन भी वे

हिंदुओं-द्वारा दोनों जातियों के बीच के शाश्वत संघर्ष को उस अवस्था में पीछे छोड़ दिये जायगे जिसमें ब्रिटिश सरपंच ने यह निर्णय दे दिया था कि प्रतियोगिता के साधन का स्थान तलवार की जगह कलम ले लेगी।

इन कारणों से भारतीय मुसलमानों ने १९४८ ई. में अपने लिए एक अलग उत्तराधिकारी राज्य पाने पर जोर दिया। इसके फलस्वरूप जो विभाजन हुआ उससे ठीक उन्हीं दुःखदायी परिणामों के दिखायी पड़ने का खतरा आ गया जो इसके पहिले की शताब्दी में ओथमन साम्राज्य के विभाजन के बाद पैदा हो गया था। भौगोलिक दृष्टि से परस्पर मिश्रित जातियों को प्रादेशिक रूप से अलग-अलग राष्ट्रीय राज्यों में छाँटकर रखने के प्रयत्न में ऐसी सीमाओं का निर्धारण करना पड़ा जो प्रशासनिक एवं आर्थिक दृष्टियों से गर्हित थीं। इस कीमत पर भी, अल्पसंख्यक जातियों की बहुत बड़ी-बड़ी आबादियाँ विभाजक रेखाओं की गलत दिशाओं में छूट गयीं। लाखों भयग्रस्त शरणार्थी अपने घर और जायदाद को छोड़कर भाग खड़े हुए। पलायन के इस भयानक मार्ग में चलते हुए भी उन पर कटु हो उठे प्रतिपक्षियों-द्वारा अत्याचार किये गये। भागकर वे अनाथ-से एक ऐसे देश में पहुँचे जो उनके लिए अनजाना था। वहाँ उन्हें फिर से एक नयी जिन्दगी शुरू करनी पड़ी। इससे भी भयानक बात यह हुई कि भारत एवं पाकिस्तान की सीमा का एक भाग ऐसा था जहाँ कश्मीर पर कब्जा करने के लिए दोनों के बीच एक अघोषित युद्ध छिड़ गया। फिर भी १९५२ ई. तक दिल्ली एवं कराची दोनों में भारतीय राजममज्ञों-द्वारा भारत को भयानक ओथमन मार्ग पर कटुतापूर्ण अन्त तक चलने से बचाने का प्रभावशाली प्रयास किया जाता रहा। इस प्रकार, इस ग्रन्थ के लिखने के समय तक अल्पकालीन राजनीतिक दृष्टि से भारतीय संभावनाएँ सब मिलाकर उत्साहवर्धक हैं। और यदि आधुनिक पश्चिम की टक्कर से हिन्दू जगत को गंभीर खतरे अब भी हों तो उन्हें जीवन की राजनीतिक सतह पर खोजना उतना सार्थक न होगा जितना उसके आर्थिक अधस्तन तथा आध्यात्मिक गहराइयों में। किन्तु इसमें भी खतरनाक स्थिति उत्पन्न होने में शायद कुछ समय लगेगा।

पश्चिमीकरण के स्पष्ट जोखिम, जिनसे हिन्दू जगत शंकित था, दो थे। पहिली बात तो यह है कि हिन्दू एवं पाश्चात्य सभ्यताओं की कोई उभयनिष्ठ सांस्कृतिक पार्श्वभूमि नहीं थी, दूसरी बात यह कि जिन हिन्दुओं ने विजातीय आधुनिक पाश्चात्य संस्कृति के बौद्धिक तत्त्वों पर अधिकार प्राप्त कर लिया था वे अज्ञान एवं साधनहीन किसानों के विशाल समूह के कंधों पर लदे अत्यन्त लघु अल्पमत के रूप में थे। यह कल्पना करने के लिए कोई आधार नहीं था कि पाश्चात्य संस्कृति का यह प्रवेश उसी स्तर पर रुक जायगा बल्कि यह भविष्यवाणी करने के लिए प्रबल आधार थे कि जब वह अन्तस्तर के कृषक-समूह में परिवर्तन करना शुरू करेगा तो वहाँ कुछ नवीन एवं क्रांतिकारी प्रभाव भी उत्पन्न कर देगा।

हिन्दू समाज एवं आधुनिक पश्चिम के बीच की सांस्कृतिक खाई विभिन्नता मात्र नहीं थी, वह नितान्त विपरीतता थी क्योंकि आधुनिक पश्चिम ने अपने सांस्कृतिक दाय का जो लौकिक संस्करण तैयार किया था, उससे धर्म को निकाल दिया गया था,

जब कि हिंदू समाज अंततम तक धार्मिक था और धार्मिक बना रहा—यहां तक कि उस पर धर्मपने या धार्मिक कट्टरता का आरोप लगाया जा सकता है, बशर्ते कि, जैसा भाव इस ह्रासात्मक शब्द से निकलता है मनुष्य की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण खोज का आत्यंतिक केन्द्रीकरण सचमुच संभव हो। जीवन-सम्बन्धी उत्कट धार्मिक और स्वेच्छापूर्वक गृहीत लौकिक दृष्टिकोणों की यह विपरीतता उस भिन्नता से कहीं ज्यादा गहरी है जो एक धर्म से दूसरे धर्म के बीच होती है। इस बिंदु पर हिन्दू इस्लामी और मध्यकालीन पाश्चात्य ईसाई संस्कृतियां उसकी अपेक्षा एक दूसरे के कहीं ज्यादा अनुकूल थीं जितनी उनमें से कोई भी आधुनिक पश्चिम की लौकिक संस्कृति के अनुकूल है। इस सर्वनिष्ठ धार्मिकता के बल पर ही उस असहनीय आध्यात्मिक तनातनी का अनुभव किये बिना हिंदुओं के लिए इस्लाम और रोमन कैथलिक ईसाई मत को ग्रहण करना संभव हुआ—जैसा कि पूर्वी बंगाल के (हिंदूधर्म छोड़कर आये) मुसलमानों और गोवा के रोमन कैथलिकों में स्पष्ट देखा जा सकता है।

धर्म-मार्ग द्वारा विजातीय सांस्कृतिक आधार तक पहुँचने में हिंदुओं की यह प्रमाणित क्षमता महत्त्वपूर्ण थी क्योंकि यदि 'धर्मपना' उनकी सभ्यता का प्रधान लाक्षणिक चिह्न था तो उसके बाद का सबसे स्पष्ट अंग उसका एकाकीपन था। इसमें सन्देह नहीं कि यह एकाकीपन उन हिंदुओं-द्वारा अपने आध्यात्मिक जीवन के बौद्धिक कक्ष में नियन्त्रित कर लिया गया था जिन्होंने लौकिक अधुनातन पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त की थी और इसके द्वारा आधुनिक पाश्चात्य आधार पर भारतीय जीवन के राजनीतिक एवं आर्थिक पक्षों के पुनर्गठन कार्य में भाग लेने के योग्य बन चुके थे। किन्तु इस दुखी बुद्धिजीवी वर्ग के रंगरूट अपनी उपयोगी सेवाओं से अपनी आत्माओं में ही विच्छेद पैदा कर रहे थे। ब्रिटिश राज में संवर्द्धित यह हिंदू बुद्धिजीवीवर्ग अपने हृदयों में उन पाश्चात्य मार्गों के प्रति एकाकी बना रहा जो उसके मस्तिष्क के लिए परिचित हो चुके थे। असामञ्जस्य ने एक ऐसी अंतर्निविष्ट आध्यात्मिक व्याधि उत्पन्न की जो पाश्चात्य सांचे पर गठित भारतीय राष्ट्रीय राज्य के स्वतन्त्रता प्राप्त करने के राजनीतिक रामबाण (दवा) द्वारा अच्छी नहीं की जा सकती थी।

एक ओर पाश्चात्य शिक्षणप्राप्त हिंदू मन का यह अनमनीय आध्यात्मिक एकाकीपन था तो दूसरी ओर उसकी जोड़ का उद्व्यक्त आध्यात्मिक एकाकीपन उनके उन पाश्चात्य शासकों के प्राणों में भी था जिनके साथ ब्रिटिश राज में हिन्दू बुद्धिजीवीवर्ग को काम करना पड़ता था। १७८६ ई में प्रशासन में सुधार करने के समादेश के साथ कार्नवालिस ने गवर्नर-जेनरल का पद ग्रहण किया था तथा १८५८ ई में ब्रिटिश राजनीतिक सत्ता ईस्ट इंडिया कम्पनी के हाथ से पूर्णत सम्राट के हाथ में चली गयी। इस काल (१७८६ १८५८ ई) में अपनी भारत में उत्पन्न सभी प्रजाओं के प्रति यूरोप में उत्पन्न ब्रिटिश शासक वर्ग के रुख में एक गहरा और सब मिलाकर दुर्भाग्यपूर्ण परिवर्तन हो गया था।

अठारहवीं शती में भारत में अंग्रेज इस देश की प्रथाओं का अनुसरण करते थे—यहाँ तक कि अपनी सत्ता के दुरुपयोग की प्रथा का भी। इसलिए जिन भारतीयों

को वे प्रवचित और उत्पीडित करते थे उनके साथ भी व्यक्तिगत सम्पक के कारण सुपरिचित थे। उन्नीसवी शती के बीच उन्होने एक उल्लेखनीय नतिक स्वास्थ्य-लाभ किया। बगाल के अग्रेज शासको की प्रथम पीढा को सहसा प्राप्त सत्ता के जिस नशे ने लाछित किया था वह नतिक ईमानदारी के एक नये आदश के कारण सफलतापूवक नियन्त्रित किया जा चुका था। इस नवीन आदश के अनुसार भारत मे आने वाले अग्रेज सिविल अधिकारियो से यह अपेक्षा की जाती थी कि वे अपनी सत्ता को एक सावजनिक न्यास (पब्लिक ट्रस्ट) के रूप मे ग्रहण करेंगे न कि व्यक्तिगत लाभ के अवसर के रूप मे। किन्तु ब्रिटिश शासन की इस नतिक मुक्ति के साथ भारत मे रहने वाले अग्रेजो और उनके भारतीय पडोसियो के बीच व्यक्तिगत समागम मे कमी होती गयी—यहा तक कि उन पुराने बुरे दिनो वाला, मानवीय स्तर पर भारत के रग मे रगा अग्रेज नवाब अपने काम या पेशे मे तो अनिद्य किन्तु व्यक्तिगत रूप से पहुँच के बाहर उस ब्रिटिश सिविल सर्वेण्ट के रूप मे बदल गया जिसने १६४७ ई० मे ऐसे भारत से विदा ली जिसे अपना घर बनाये बिना ही उसने अपना कायकारी जीवन समर्पित कर दिया था।

ऐसा क्यों हुआ कि पूववर्ती स्वच्छन्द एव सरल व्यक्तिगत सम्बन्धो का इस दुर्भाग्य पूण ढग पर एक ऐसे युग मे अन्त हो गया जबकि उनके लाभकारी प्रभावो की हानि उठाने का सबसे कम अवसर था? निस्सन्देह इस परिवतन के मूल मे अनेक कारण थे। पहिले तो इण्डियन सिविल सर्विस का उत्तरकालिक ब्रिटिश अधिकारी अपने पक्ष में यह दलील देगा कि उसका यह अलगाव अपने कत्तव्यो के पालन मे नतिक ईमानदारी बरतने का अनिवाय मूल्य था। अपने सामाजिक सम्बन्धो मे देवोपम एकाकीपन का पालन किये बिना कोई आदमी अपने पेशे मे देवता की भाति काय कैसे कर सकता है? इस परिवतन का दूसरा यद्यपि इससे कम महत्त्व का कारण विजयानुप्रेरित अहकार था, क्योकि १८४६ ई तक बल्कि १८०३ ई मे ही, भारत मे अग्रेजों की सनिक एव राजनीतिक शक्ति अठारहवी शती की उनकी शक्ति से कहीं ज्यादा और आश्चर्यजनक रूप से प्रबल हो उठी थी। भारतीय-आग्ल सामाजिक एव सास्कृतिक सम्बन्धों के इतिहास के बीसवी शती के एक अग्रेज विद्यार्थी ने इन दोनो कारणो के परिचालन का गभीर विश्लेषण किया है—

> "ज्यों-ज्यों (अठारहवीं) शती की समाप्ति होने लगी, सामाजिक वातावरण में क्रमश एक परिवतन आ गया। पारस्परिक आमोद प्रमोद' (Reciprocal entertainments) के अवसरों मे कमी आ गयी, भारतीयों के साथ घनिष्ठ मत्री का निर्माण बन्द हो गया। शासन के उच्च पदों पर इगलैंड से नियुक्त होकर आदमी आने लगे, शासन का रूप ज्यादा सामाजिक और उसका आचरण अधिक दृप्त एव एकाकी हो गया। मुसलमान नवाबों तथा अग्रेज सामन्तों कूटनीतिक पडितों एव अग्रेज विद्वानों ने जिस खाई को कुछ समय के लिए पाट दिया था वह कुशकुन के रूप मे फिर बढने—चौडी होने लगी। एक श्रेष्ठता की भावना (सुपीरियारिटी काम्प्लेक्स) बन रही थी जो भारत को न केवल ऐसा देश मानती थी जिसकी प्रथाए बुरी हैं और आदमी भ्रष्ट हैं बल्कि जो प्रकृत्या कभी सुधरने और अच्छा होने मे असमर्थ हैं

"भारत के भारतीय यूरोपीय सम्बन्धों का यह दुर्भाग्य है कि शासन के भ्रष्टाचार के निराकरण के साथ ही जातिगत (रेशल) खाई चौड़ी हो गयी।

भ्रष्ट कम्पनी अधिकारियों, कुप्रवृत्तियों से प्राप्त वमव, रयत के उत्पीड़न, स्त्रियों पर अत्याचार एव अवध यौन सम्बन्धों के दिन ऐसे भी थे जब अंग्रेज भारतीय सस्कृति मे रुचि रखते थे, फारसी मे कविताए करते थे और सामाजिक समता एव व्यक्तिगत मत्री की भावना के साथ पडितों, मौलवियों एव नवाबों के साथ उठते बठते, मिलते जुलते थे। कानवालिस का दुर्भाग्य यह था कि भ्रष्टाचार की स्वीकृत बुराइयों के निराकरण में उसने उस सामाजिक सन्तुलन को भी भग कर दिया जिसके बिना पारस्परिक अवबोध (Understanding) असभव था।

कानवालिस ने उच्चतर सरकारी पदों से सब भारतीयों को अलग करके एक नवीन शासकीय वग का निर्माण किया। समता एव सहयोग की कीमत चुकाकर भ्रष्टाचार का निर्मूलन किया गया। उसके अपने मन मे, तथा सामान्यत स्वीकृत दृष्टिकोण में भी, दोनों बातों के बीच एक आवश्यक सम्बन्ध था। उसने कहा—"मेरा स्पष्ट विश्वास है कि हिन्दुस्तान का हर मूल निवासी भ्रष्ट है।" उसने सोचा कि आंग्ल भ्रष्टाचार को उचित वेतन देकर दूर किया जा सकता है और वह यह सोचने को नहीं ठहरा कि भारतीय शुभेच्छा के लाभ के लिए इसे भारतीय भ्रष्टता दूर करने मे भी कम से कम आजमाया तो जा सकता है। उसने अकबर के मनसबदारों के नमूने पर ऐसी भारतीय सामाजिक नौकरशाही के निर्माण की बात ही नहीं सोची जिसे विशेष प्रशिक्षण, उचित वेतन, समान व्यवहार के प्रोत्साहन, पदोन्नति एव उपाधियों द्वारा सम्मानित करके कम्पनी के प्रति उसी प्रकार निष्ठावान् बनाया जा सकता था जसे मुगल अधिकारी सम्राट के प्रति निष्ठावान् थे।"[१]

इस विच्छेद का एक तीसरा कारण भारत और इगलण्ड के बीच सचार व्यवस्था में तेजी आ जाना था जिसके कारण अग्रेजा के लिए इधर उधर यात्रा करते हुए भी इगलण्ड की भूमि पर अपने घरो का मानस निवासी बने रहना सभव हो गया। किन्तु सभवत एक चौथा भी कारण था जो अन्य सब कारणो से अधिक प्रबल एव प्रभावशाली था और भारत म रहने वाला अग्रेज जिसका शिकार न कि उत्पन्नकर्ता था। उत्तरकालिक अग्रेज निवासी की ऐकान्तिकता के प्रति रोष प्रकट करने वाला भारतीय यदि यह स्मरण रखे कि अग्रेजा के भारत म आने के तीन हजार वष पहिले से ही यह महाद्वीप जाति व्यवस्था से आक्रान्त था और अपनी पूववर्ती सिंधु (Indic) सभ्यता से विरासत म प्राप्त बुराई को हिन्दू समाज ने और बढ़ा लिया था और अग्रेजा के बिना ही जाने के बाद जसा कि उनके आगमन के पहिले भी भारत के निवासी अपनी ही पैदा की हुई सामाजिक बुराई मे ग्रस्त हैं और थे तो शायद वह इस अनधिकार प्रवेशकर्त्ता के प्रति

१ स्पियर टी जी पी दि नबाब्स ए स्टडी आव दि सोशल लाइफ आव दि इगलिश इन एटीन्थ सेंचुरी इण्डिया', लदन १६३२, मिल्फोर्ड, पृ १३६, १३७, और १४५

कुछ अधिक उदार हो सकेगा। अपने १५० सालो के राज मे अग्रेजो ने जिस एकाकीपन का विकास कर लिया था उसे भारतीय इतिहास के लम्बे सदर्श (perspective) मे देखने पर भारतीय स्थानिक (endemic) व्याधि का एक हलका आक्रमण माना जा सकता है।

इस उत्तरकालिक अग्रेज ऐकान्तिकता का वृद्धिगत प्रभाव ब्रिटिश राज का अन्त हो जाने से शमित हो सकता है किन्तु भारतीय कृषक-समाज की स्थिति एव आशाओ के विषय मे ब्रिटिश शासन का सुधारकारी प्रभाव एक ऐसी ब्रिटिश विरासत है जो शायद ब्रिटिश सिविल सेवको के हिन्दू उत्तराधिकारियो के गले मे बधी चक्की सिद्ध होगी।

ब्रिटिश शासन मे इस उपमहाद्वीप के प्राकृतिक साधन अनेक रूपो मे बाहर निकले रेलो के निर्माण से, सिंचाई से और सबके ऊपर योग्य एव कर्त्तव्यनिष्ठ प्रशासन से। अपने अग्रेज शासको के विदा होने के समय तक भारतीय कृषक समाज सभवत इतने पर्याप्त रूप से आधुनिक पाश्चात्य प्रौद्योगिकी की भौतिक सफलताओं तथा ईसाई हृदया आधुनिक पाश्चात्य लोकतत्र प्रणाली के प्रति जागरूक हो चुका था कि स्वय अपनी पैतृक देन पर आपत्ति करने के न्याय एव आवश्यकता दोनो का अनुभव करने लगा, किन्तु इसके साथ ही इन सपनो का देखना आरम्भ करने वाले भारतीय कृषक-समाज ने खुद ही उनकी पूर्ति के मार्ग मे निकृष्टतम अवरोध उपस्थित किया— किसी प्रकार जीवित रहने की सीमा तक वह सतति का उत्पादन करता गया जिसका परिणाम यह हुआ कि ब्रिटिश प्रयास से भारत की खाद्यपूर्ति मे जो वृद्धि हुई थी वह कृषकों की व्यक्तिगत दशा सुधारने की जगह उनकी सख्या बढाने का कारण बन गयी। अखण्ड भारत की जो आबादी १८७२ ई मे २०६,००० ००० के लगभग था वह १९३१ मे बढकर ३३८ ११९ १५४ तथा १९४१ मे ३८८,९९७,९५५ हो गयी। बाढ अब भी उसी वृद्धि पर है। अग्रेजों के हिन्दू उत्तराधिकारी इस राजनीतिक रिक्थ (legacy) को, जिसने पहिले ही उस प्रशासन मे किसी प्रकार की अकुशलता का अवसर नही छोडा था, जिसकी पतवार उन्होंने अपने हाथ म सभाल ली है किस प्रकार निबाहेंगे ?

जनसख्या की अतिशय वृद्धि की परम्परागत दवा थी अकाल, महामारी, असनिक अशान्ति तथा युद्ध-द्वारा आबादी को घटाकर पुन उस अक पर पहुचा देना जिस पर बचे हुए लोग एक बार फिर अपने प्रथागत निम्न स्तर पर अपना परम्परागत जीवन बिताने योग्य हो सकें भारतीय स्वतन्त्रता के लिए अपनी लगन से भरी खोज मे महात्मा गाधी ने उसके लिए आवश्यक बर्बर साधनो की इच्छा किये बिना ही उसी माल्थसी परिणाम की इच्छा की थी। वह देख सके थे कि यदि भारत पश्चिमी जगत के आर्थिक तन्तुओ म उलझकर रह गया तो केवल राजनीतिक स्वतन्त्रता आभासिक मुक्ति बनकर रह जायगी। और मशीन निर्मित वस्त्रो के व्यवहार का परित्याग करने का आन्दोलन चलाकर उन्होंने इस आर्थिक वटवृक्ष की प्रौद्योगिक जड पर बिल्कुल ही सही अपनी कुल्हाडी रखी। उनके आन्दोलन की पूर्ण असफलता ने इस बात को प्रमाणित कर दिया कि इस समय तक भारत पाश्चात्य रग में रगे विश्व के आर्थिक जीवन म बुरी तरह उलझ चुका था।

जब भारत की जातीयता-समस्या ऐसे बेहतर ढंग का पहल जागी जिसकी राजनीतिज्ञ भी उपेक्षा न कर सकेंगे तब भारत के ... के लिए उपलब्ध हिन्दू समाज सर्वांश पश्चिमी रंग से रंगी दुनिया के मैत्रिक वातावरण से निकल होकर रूसी-साम्यवादी समाचार की ओर ... भारतीय समाचार लोक विचार के लिए विवश हो जाएंगे। ... या भारत विभाजन वाले हिन्दू राजधर्मियों द्वारा अनुसरण का नहीं मीठिया भगवान रह गा फिर इसमें जरा भी सन्देह न रह जाएगा कि भारत के राष्ट्रीय कार्यक्रम के प्रतिस्पर्धी रूसी रामबाण (दवा) मानो भार या जाएगा क्योंकि पश्चिमी रंग न रंगने हुए भारत की भांति ही साम्यवादी रूस ने भी अपने सांस्कृतिक अतीत से रहित कृषक समाज की समस्या निराकरण में पानी की ओर भारत के प्रस्तुत कर अपने ढंग पर इस चुनौती का उत्तर भी दे चुका था। हो सकता है कि यह साम्यवादी ढंग भारतीय कृषक समाज अथवा भारतीय बुद्धिजीवीवर्ग को इतना अधिक क्रूर और क्रांतिकारी प्रतीत हो कि वे उत्साहपूर्वक उसका अनुसरण न करें किन्तु इस बात की संभावना है कि किसी बुरी घड़ी में जनसंख्या न कमा करने की उससे भी निष्ठुर प्राचीन पद्धति के विकल्प के रूप में भारत-सरकार के कार्यक्रम में साम्यवादी कार्यक्रम अपना स्थान बना ले।

४ आधुनिक पश्चिम तथा इस्लामी जगत्

पाश्चात्य इतिहास के आधुनिक अध्याय के आरम्भ के समय एक दूसरे की पीठ से जुड़े हुए दो तत्कालीन इस्लामी समाजों ने पश्चिमी और रूसी समाज दोनों से पुरानी दुनिया के दूसरे भागों में जाने के सूखे रास्तों को रोक रखा था। पन्द्रहवीं सदी के अन्त में अरबी मुसलमानी सभ्यता अफ्रीका में जिब्राल्टर जलडमरूमध्य (Straits of Zibralter) से सेनेगाल तक अटलांटिक समुद्रतट को घेरे हुए थी। इस प्रकार पाश्चात्य ईसाई जगत् उष्ण कटिबन्धीय (tropical) अफ्रीकी भूभाग से कटकर अलग पड़ गया था दूसरी ओर उस काले महाद्वीप (अफ्रीका) में न केवल सहारा के बाहर सूडान की उत्तरी सीमाओं पर वर हिन्द महासागर के बाहर निकले उसके पूर्वी तट 'सावाहिल' तक अरब प्रभाव की तरंगें फैल रही थीं। महासागर एक अरबी भील-सा बन चुका था जिसमें मिस्री दलालों के वेनिसी व्यापारिक साझेदार तो प्रवेश न कर पाते थे और अरब जहाज स्वेज से सोफाला तक अफ्रीकी समुद्रतट पर न केवल आते जाते थे वर उन्होंने इडोनेशिया तक जाने का मार्ग निकाल लिया था। उन्होंने इस द्वीपपुंज (Archipelago=इन्डोनेशिया) को हिन्दू धर्म से इस्लाम के लिए छीन लिया और पूर्व की ओर और आगे बढ़कर दक्षिणी फिलीपाइन के वारम मलय निवासियों को भी अपने धर्म में परिवर्तित करके पश्चिमी प्रशान्त महासागर में भी अपना एक अड्डा बनाने की चेष्टा की थी।

इसी काल में ईरानी मुस्लिम सभ्यता इससे भी अधिक शक्तिमान युद्धनीतिक या सनिक स्थिति पर अधिकार किये हुए थी। उस्मानली साम्राज्य निर्माताओं ने कुस्तुनतुनिया मोरिया कारमान और त्रेबिजोंद पर कब्जा कर लिया था और क्रीमिया में जेनेवा के जो उपनिवेश थे उन्हें छीन लेकर काला सागर को एक ओथमन झील के रूप में परिवर्तित कर दिया था। अन्य तुर्कीभाषी मुस्लिम देशों ने इस्लाम का

अधिकार क्षेत्र काला सागर से बढ़ाकर वोल्गा की मध्यधारा तक पहुंचा दिया था और इस पाश्चात्य सीमाप्र के पीछे ईरानी जगत् दक्षिण-पूर्व की ओर कमू एव शॅसी के उत्तर-पश्चिमी चीनी प्रान्तों तथा ईरान एव हिन्दुस्तान के ऊपर बगाल और दक्षिण भारत तक फैल गया था।

यह महत इस्लामी राष्ट्रबन्दी एक ऐसी चुनौती थी जिसका दो अवरुद्ध ईसाई समाजो की प्रमुख जातियो ने वसा ही ऊजस्वी उत्तर भी दिया।

पाश्चात्य ईसाई जगत मे अटलाटिक तटवर्ती क्षेत्र के लोगो ने पद्रहवी शती मे एक नये ढग के, समुद्र मतरण कुशल ऐसे जहाज का आविष्कार किया जो किसी बन्दरगाह मे आश्रय लिय बिना महीनो समुद्र पर रह सकता था। पुतगाली नाविको ने, जो १४२० ई के लगभग मदीरा तथा १४३२ ई मे अजोम की खोज करके, गहरे सागर पर जहाजरानी करने की कला मे निपुण हो चुके थे १४४५ ई मे वर्दी अन्तरीप का चक्कर लगाकर अटलाटिक के अरबी समुद्रतट के बाजू से होकर आगे निकल जाने मे सफलता प्राप्त की। वे १४७१ ई मे इक्वेडर पहुच गये, १४८७ ८८ मे उत्तमाशा अन्तरीप का चक्कर लगाने म सफल हुए और १४९८ ई म भारत के पश्चिमी समुद्रतट पर स्थित कालीकट मे जा उतरे, १५११ ई मे मलक्का का जलसंधि पर अधिकार कर लिया, पश्चिमा प्रशान्त महासागर म आगे बढते हुए १५१६ ई म अपना भण्डा कण्टन मे गाड दिया और १५४२ ४३ मे जपान के समुद्रतट तक जा पहुचे। पोर्च्युगीजो ने एक छापावे मे हिन्द महासागर का समुद्री शासन अरबो के हाथ से छीन लिया।

जब पूव दिशागामी पोर्च्युगीज पथदर्शक इस प्रकार पाश्चात्य जगत का आकस्मिक समुद्री विस्तार करते हुए दक्षिणवर्ती अरबी मुस्लिम दुनिया की बगल से रास्ता बनाते बढ़े जा रहे थे, तब पूवदिशागामी कज्जाक नव-नाविक भी उसी आकस्मिक ढग पर, उत्तर की ईरानी मुस्लिम दुनिया की बगल से निकलते हुए बडी तेजी से रूसी जगत की सीमाए बढाय चले जा रहे थे। जब मस्कोवी जार इवान चतुर्थ ने १५५२ ई मे काजान जीत लिया तो उनके लिए रास्ता खुल गया, क्योकि काजान ईरानी मुस्लिम दुनिया का पूर्वोत्तरी बुर्ज था और उसके पतन के बाद जगल और तुषार के अलावा उनके माग को रोकने वाली कोई चीज नही रह गयी। और ये जगल और तुषार तो कज्जाको के परिचित मित्र थे। इसलिए रूसी परपरानिष्ठ ईसाई जगत के य अग्रगामी दस्ते यूराल को पार कर साइबेरिया के जलमार्गों से पूव की ओर बढते ही गये और १६३८ ई म प्रशान्त महासागर के तट पर जाकर रुके। इसी प्रकार २४ माच १६५२ ई को ये मचू साम्राज्य की पूर्वोत्तर सीमा पर जाकर रोके जा सके। इस प्रकार इन नवीन सीमाओ तक पहुचकर विस्तारशील रूसी जगत् न केवल ईरानी दुनिया बल्कि सम्पूण यूरेशियन स्टेप्पी को बगल मे काटकर आगे निकल गया।

इस प्रकार एक शताब्दी से कुछ अधिक समय के अन्दर ही ईरानी और अरबी समाजो के सयुक्त प्रयत्न मे आगे बढी इस्लामी दुनिया न केवल बगल से निकल जाने

वाले इन तत्त्वो द्वारा पिछाड दी गयी थर पूणत घिर भी गयी। सोनहवी एव सत्रहवी शतिया के मोड पर पहुचते पहुचते फन्दा शिकार के गले म था। फिर भी जिस आकस्मिकता के साथ इस प्रवल पकड मे इस्लामी जगत् आ गया था वह उतना असाधारण नही था जितनी वह लम्बी समयावधि थी जिसके बीतने के बाद ही मुसलमानो के प्रतिद्वद्वी या खुद मुसलमान ही परिस्थिति को समभकर तदनुकूल कार्रवाई करने को अग्रसर हुए—पाश्चात्य और रूसी पक्ष के लिए अपने स्पष्टत असहाय शिकार पर टूट पडने की ओर मुस्लिम पक्ष म अपने को उस निराशाजनक परिस्थिति स निकालने की कारवाई। १६५२ ई म दारलइस्लाम अपन मूल रूप म ज्यो का त्यो था केवल कुछ सुदूरवर्ती प्रान्त ही उसके हाथ से निकल पाये थ। मिस्र से अफगानिस्तान और तुर्की से यमन तक फला मध्यक्षेत्र विदेशी राजनीतिक आधिपत्य किंवा नियत्रण मे भी मुक्त था। इस तिथि तक मिस्र, जोडन, लेबनान, सीरिया एव ईराक सब के सब उस ब्रिटिश एव फरासीसी साम्राज्यवाद की बाढ के नीचे मे बाहर निकल आय थे जिसने उन्हें क्रमश १८८२ ई एव १९१४ १८ के महायुद्ध के मध्य डुबा दिया था। अब अरबी दुनिया के अतरग को अवशिष्ट भय पाश्चात्य शक्तियो से नही जाउनवादियो—यहूदियों—की ओर से हो रहा है।

पाश्चात्य प्रश्न के प्रति मुस्लिम जातियो के अवबोध (अण्डरस्टैण्डिग) के सकेत तीन परिस्थितियो मे पाये जाते हैं। जिस समय आधुनिक पाश्चात्य सस्कृति की टक्कर उनके जीवन की प्रधान समस्या वन गयी थी उस समय भी मुसलमान जातिया उन रूमियो के समान, जो अपने इतिहास के ऐसे ही सकटकाल मे राजनीतिक दृष्टि से स्वतत्र थे अपनी स्वामिनी स्वय थी। इसी प्रकार इस विषय मे वे उन ओथमन परम्परा निष्ठ ईसाइयो के विसदृश थी जो अपने इतिहास के सकट की घडी म राजनीतिक दृष्टि से पराधीन थे। ये मुसलमान जातिया एक ऐसी महती सनिक परम्परा की वारिस भी थीं जो इस्लामी सभ्यता के बच्चो की आखो म उस सभ्यता के मूल्यवान् होने के अधिपत्र (warrant) की भाति थी। इसलिए युद्ध मे पराजय के अप्रतिवाच्य तक से प्रमाणित अपने उत्तरकालिक सनिक ह्रास का आकस्मिक प्रदशन उनके लिए जसा आश्चयजनक था वसा ही अपमानजनक भी था।

अपने ऐतिहासिक सनिक पराक्रम के विषय म मुसलमानो की आत्मतृप्ति उनके हृदय म इतनी गहराई मे पैठी हुई थी कि १६८३ ई म वियेना के विरुद्ध अपनी असफलता और सनिक ज्वार के उनके विरुद्ध पलट जाने पर भी उसम निहित पाठ का तब भी उन पर कोई विशेष प्रभाव न पडा था जब लगभग सौ वष बाद उसे मानने को विवश होने की स्थिति पदा हो गयी थी। जब १७६८ ई मे ओथमन साम्राज्य एव रूस म युद्ध छिड जाने के बाद तुर्कों को बताया गया कि रूसी उनके विरुद्ध बाल्टिक म निर्मित नौसेना का प्रयोग करने वाले हैं तब वे बाल्टिक एव भूमध्यसागर के मध्य सीधा कोई जलमाग भी है, यह मानने से तबतक इन्कार करते रहे जबतक कि वह समुद्री बेडा वहा पहुच नही गया। इसी प्रकार तीस साल बाद जब मामलूक सनिक अधिपति मुराद वे को वनिस के एक व्यापारी ने यह चेतावनी दी कि नपोलियन-द्वारा

माल्टा पर कब्जा उसके मिस्र मे उतरने की भूमिका हो सकती है तो उस विचार के बेतुकेपन पर उसने कहकहा लगाया।

अठारहवी एव उन्नीसवी शतियों के मोड पर, एक शती पूर्व के रूसी जगत की भाति, ओथमन जगत् म, ऊपर से नीचे की ओर चलने वाला पाश्चात्यकरण का आदोलन आधुनिक पाश्चात्य समर यन्त्र-द्वारा उसकी पराजय का ही परिणाम था। पाश्चात्यकरण का यह आदोलन सशस्त्र सेना के पुनर्गठन के साथ शुरू हुआ था। किन्तु उसमे प्रधान महत्त्व का कम से कम एक मुद्दा ऐसा था जिस पर ओथमन और पीटरी नीतियो मे अन्तर था। पीटर महान ने, प्रतिभा की अन्तर्दृष्टि के साथ यह देख लिया था कि पाश्चात्यकरण की नीति को सर्वस्व या फिर कुछ नही बनाना आवश्यक है। उसने देखा कि उसे सफल बनाने के लिए न केवल सेना पर बल्कि जीवन के प्रत्येक विभाग पर उसको लागू करना होगा, और यद्यपि जैसा कि हम देख चुके हैं, रूस म पीटरी शासनकाल जीवन के केवल शहरी वाह्यावरण को पाश्चात्य रग मे ढालने से अधिक सफलता नही प्राप्त कर सका और ग्राम्य समाज को प्रभावित करने मे असफल होने का दण्ड अन्त मे उसे साम्यवाद के सामने घुटने टेककर देना पडा किन्तु पीटर के सास्कृतिक आक्रमण पर उसके लक्ष्य की पूर्ण सिद्धि के पूर्व ही जो आनुषगिक अवरोध आया उसका कारण उसकी दृष्टि की असफलता उतनी न थी जितना रूसी प्रशासन यन्त्र मे पर्याप्त प्रेरक शक्ति का अभाव था। दूसरी ओर तुर्की म १७६८ ई के रूस तुर्की युद्ध छिडने से लेकर १६१८ ई म प्रथम विश्व महायुद्ध के अन्त तक की डेढ शतियो मे, ओथमन सैनिक दलो के पाश्चात्यकरण की नीति, उनकी अनिच्छा के बावजूद भी चलती रही—यद्यपि बार बार इस छाया का आलिंगन करने का दुखदायी भ्रमात्मकता का पर्दाफाश होना रहा कि एक विजातीय सस्कृति के तत्त्वो को ग्रहण करके मनोनुकूल वरण करना सभव है। उस्मानलियों ने उस काल मे मुह बनाते हुए पाश्चात्यकरण की जो तदनुवर्ती खुराकें अपने को पिलायी उसका फटकार भरा फसला है—हर बार बहुत कम और विलम्ब से।' कहीं १६१६ म जाकर मुस्तफा कमाल एव उनके साथियों के लिए खुलकर और पूरे हृदय से पीटरी ढग पर पाश्चात्यकरण की नीति का प्रचलन करना सभव हो सका।

यह पुस्तक लिखने के समय तक मुस्तफा कमाल द्वारा निर्मित पाश्चात्य रग मे रगा तुर्की राष्ट्रीय राज्य एक सफल उपलब्धि प्रतीत होता है। किन्तु इस्लामी दुनिया के दूसरे भागो मे अभी तक इसके जसी दूसरी उपलब्धि नही हुई है। ईसाई सवत् की उन्नीसवी शती के द्वितीय चतुर्थांश मे मिस्र का जो पाश्चात्यकरण उस अल्बेनी दुस्साहसिक मुहम्मद अली द्वारा चलाया जा रहा था, वह यद्यपि उस शती मे तुर्की सुलतानों द्वारा अपनायी या उपलब्ध किसी भी बात की अपेक्षा कहीं अधिक परिपूर्ण था किन्तु वह उसके उत्तराधिकारियो के शासन-काल म बिल्कुल निकम्मा साबित हुआ और परिणाम मे एक ऐसे पाश्चात्य इस्लामी दोगले के रूप मे बदल गया जिसमे मूल एव अनुकृत दोनो सभ्यताओ की निकृष्टतम बुराइया थी। अपने अर्ध-बर्बर राज्य के इससे कहीं ज्यादा दुर्गम क्षेत्र म अमानुल्ला ने मुस्तफा कमाल की जो नकल की वह

पर ऐसा प्रयोग था जिसे अपने अपने स्वभाव के अनुसार—सुनहरा या दुःखान्त घटना के रूप में लिया जा सकता है किन्तु जो भावी इस्लामी दुनिया में अत्यन्त सीमित सिद्ध होने से नहीं बच सकता।

ईसाई सागर की खाली घाटी के मध्य में संसार जो युग का उत्तम अक्षांश द्वारा किये गये प्रयोग के समान दाम्य प्रयोगों की सफलता या असफलता से इस्लामी दुनिया के भविष्य का निर्णय नहीं हो सकता था। जो भी हो निकट भविष्य में इस्लामी दुनिया का भाग्य एक ऐसी घटना से निर्धारित होगा जो बीस उस (इस्लामी दुनिया की) पर रखा है परन्तु शक्ति नहीं उस पर निर्भर करेगा। इन परिस्थितियों की दृष्टि से आपेक्षिक इतिहास के आविष्कार के बाद से मुख्य मार्ग के रास्ते एक मुक्त संचार-मार्ग दोनों रूपों में इस्लामी दुनिया का महत्त्व बढ़ गया है।

इस्लामी दुनिया पुरानी दुनिया की चार प्रागैतिहासिक सभ्यताओं में से तीन की मातृभूमियाँ तक फैल गयी थी। इस समय विलुप्त उन समुदायों में पहिले की दुःखद घाटियाँ—नील घाटी, दजला फुरात घाटी और सिंधु घाटी—से जो इतिहास-निर्माण सम्पत्ति किसी समय प्राप्त की थी उस निधि को आधुनिक पाश्चात्य प्रणालियों से उसकी सिंचाई और कृषि में वृद्धि की गयी और इराक में उस आर्थिक रूप से पुनः स्थापित किया गया। इस्लामी दुनिया के आर्थिक साधनों में मुख्य वृद्धि उन भागों में भूमिगत खनिज तेल भण्डार की खोज एवं उपयोग के कारण हुई जिनका कृषि उत्पादन की दृष्टि से कोई विशेष मूल्य नहीं था। अपने आप उछलने वाले जिन प्राकृतिक तेल-कूपों (natural gushers) को प्राक् इस्लामी युग में जरथुस्त्रीय धार्मिक वर्ग द्वारा धर्मस्थानों के रूप में परिवर्तित कर दिया गया था और उन्हें अग्निदेव की पवित्रता के सम्मान में एक शाश्वत ज्योति शिखा जलाये रखने के काम में लिया जाता था १७२३ ई० में पीटर महान ने उनकी प्रबल आर्थिक परिसम्पत्ति को देख लिया था और यद्यपि बाकू तेल-क्षेत्र के व्यापारिक उपयोग द्वारा उस प्रतिभा की अन्तर्दृष्टि की पुष्टि के लिए अभी प्रायः १५० वर्ष और बीतने थे किन्तु इसके अनन्तर तीव्र गति से होने वाली एक के बाद एक नयी खोजों ने प्रदर्शित कर दिया कि बाकू उस स्वर्णिम शृंखला में एक बड़ी मात्र है जो इराकी कुर्दिस्तान और ईरानी बख्तियारिस्तान से होती हुई दक्षिण-पूर्व दिशा में अरब प्रायद्वीप के एक समय के मूल्यहीन क्षेत्रों तक फैली है। इसके कारण तेल के लिए जो छीन झपट मची उसने एक क्षोभपूर्ण राजनीतिक स्थिति को जन्म दिया क्योंकि रूस का काकेशश स्थित रोटी का टुकड़ा और पश्चिमी शक्तियों के फारस तथा अरब देशों में स्थित टुकड़े एक दूसरे से सीधी मार की दूरी पर थे।

व्यापक संचार के शीर्षबिन्दु के रूप में इस्लामी दुनिया का महत्त्व पुनः स्थापित हो जाने के कारण उत्तेजना बढ़ गयी। एक ओर रूस और अटलांटिक के इर्द गिर्द के पाश्चात्य जगत् तथा दूसरी ओर भारत, दक्षिण पूर्वी एशिया, चीन और जापान के बीच के निकटतम मार्ग सब के सब इस्लामी भूमि से सागर या हवा में से होकर जाते थे और मार्ग मानचित्र में, जैसा कि नक्शे में भी, सोवियत संघ और पश्चिम खतरनाक रूप से एक दूसरे के निकट थे।

आधुनिक पश्चिम एव यहूदी

पाश्चात्य सभ्यता के इतिहास के आधुनिक अध्याय के सम्बन्ध म मानव जाति
का अतिम अधिमत (Verdict) चाहे जो हो, इतना तो स्पष्ट है कि आधुनिक पाश्चात्य
जगत ने अमिट कलक के दो अपराध करके अपने को दागी बना लिया है। पहिला
अपराध है—नयी दुनिया के खेतो पर काम करने के लिए अफ्रीका से हबशी गुलामों
को जहाज द्वारा भेजना और दूसरा पाश्चात्य स्वदेश में हो एक यहूदी दायसपोरा
(इतर जातियो के बीच यहूदियो की बस्ती) को विनष्ट कर देना। पाश्चात्य जगत् और
यहूदी जाति के सघर्ष का दुखद काण्ड 'मूल पाप (ओरिजिनल सिन) तथा सामाजिक
परिस्थितियो के एक विशेष योग की परस्पर प्रतिक्रियाओ का परिणाम था।

जिस रूप म यहूदी समाज की पाश्चात्य ईसाई जगत् के साथ टक्कर हुई वह
एक विशेष सामाजिक घटना है। वह एक ऐसी सभ्यता का जीवाश्मित या प्रस्तरीकृत
अवशेष (Fossilised Relic) था जो और सब रूपों म विलुप्त हो चुका था। जूडा का
सीरियाई ग्राम्यराज्य जिससे यहूदी समाज का उद्भव हुआ था हिब्रू, फोनेशी आमनी
एव फिलिस्तीनी इत्यादि जातियो म से एक था किन्तु जहा जूडा की और भगिनी
जातिया अपने बैबिलोनी एव यूनानी पडोसियो के साथ एक के बाद एक होने वाले
सघर्षों म सीरियाई समुदाय को लगी साघातिक चोट के कारण अपना अस्तित्व एव
अपना राजतत्र खो चुकी थी वहा उन्ही चुनौतियो ने यहूदियो को अपने लिए सघटित
जीवन की एक ऐसी नवीन विधि अपनाने को प्रेरित किया जिसके द्वारा एक विदेशी
बहुमत एव विजातीय शासन के अन्दर रहकर भी दायसपोरा के रूप मे, अपनी पहिचान
की रक्षा करने और इस प्रकार अपने राज्य और अपने देश की हानि के बाद भी
जीवित रहने म उन्होंने सफलता प्राप्त की। किंतु इतने पर भी इस अत्यधिक सफल
यहूदी प्रतिक्रिया को अप्रतिम नही कहा जा सकता, क्योकि इस्लामी और ईसाई जगत
के बीच स्थित यहूदी दायसपोरा का एक दूसरा ऐतिहासिक प्रतिरूप भारत मे स्थित
पारसी दायसपोरा के रूप म भी प्राप्त था, वह भी उसी सीरियाई समाज का दूसरा
प्रस्तरीकृत अवशेष था।

पारसी सीरियाई सभ्यता के ईरानी धर्मान्तरित लोगो के व उत्तरजीवी
(Survivors) या बचे लोग थे जिन्होंने उस समाज को एकेमीनियाई साम्राज्य के रूप
म उसका सार्वभौम राज्य प्रदान किया था। यहूदी की भाति पारसी जाति भी राज्य
एव स्वदेश की क्षति के बाद भी जीवित रहने की विजयिनी इच्छा का कीर्तिस्तम्भ थी,
और पारसियो ने भी सीरियाई जगत् और पडोसी समुदायो के बीच के उत्तरोत्तर
सघर्षों के फलस्वरूप ही यह क्षति उठायी थी। जसे यहूदियो ने १३५ ई मे समाप्त
होने वाली तीन शतियो म उत्सर्ग किया था वसे ही पारसियो के जरथुस्त्री पूवजो ने
आक्रामक यूनानीवाद को निकालने के असफल प्रयत्नों म अपना बलिदान कर दिया।
जस रोमन साम्राज्य ने यहूदियो पर असफलता का दण्ड थोपा था वसे ही ईसाई सवत्
की सातवी शती म आदिकालिक मुस्लिम अरब आक्रमणकर्त्ताओ ने जरथुस्त्री ईरानियों
पर असफलता का दण्ड दिया। अपने इतिहास के इन समान सकटो मे यहूदियो और

पारसियो ने नयी संस्थाओ का निर्माण करके और नये कार्य-कलाप म दक्षता प्राप्त करके अपना अस्तित्व एव ऐक्य कायम रखा। अपने धार्मिक धर्मा—कानूनो के विस्तरण म उन्होने एक नया सामाजिक संयोजक तत्त्व (सीमेंट) प्राप्त किया था। पहिले अपने देश म व कृषि-कार्य करते थे किन्तु जब अपने पूवजो की भूमि स निकाल दिये गये तो उन भूमिहीन निर्वासितो ने इसके दारुण आर्थिक परिणामो से कृषि का काम करने म असमर्थ हो जाने के बाद, उसकी जगह व्यापार और दूसरे प्रकार के दुहरी कामो म एक विशेष दक्षता प्राप्त करके अपनी रक्षा की।

फिर भी यहूदी और पारसी डायसपोरा लुप्त सीरियाई समाज द्वारा पीछे छोडे एकमात्र जीवाश्म (Fossils) नही थे। ईसाई मत की स्थापना और इस्लाम की स्थापना के बीच के युग म ईसाई अपधर्मों (Christian heresies) ने भी नेस्तोरी (नेस्तोरियन) और मोनोफाइसाइट (Monophysite=ईसा की केवल एक प्रवृत्ति को मानने वाला, एकधर्मी ईसाई) चर्चों के रूप म जीवाश्म पैदा किये थे। इसके अलावा सीरियाई ही एकमात्र ऐसा समाज नही था जिससे ऐसी जातिया निकली हो जिन्होंने अपना राजत्व खान और अपनी भूमि से निर्मूल कर दिये जाने के बाद धार्मिक अनुशासन एव व्यापारिक साहस दोनो के सम्मिश्रण-द्वारा अपनी रक्षा करने म सफलता प्राप्त की थी। एक विजातीय ओथमन शासन के नीचे पराभूत यूनानी परपरानिष्ठ ईसाई समाज भी धरती से अशत निर्मूल कर दिया गया था। तब उसने भी अपने सामाजिक गठन तथा आर्थिक कार्य-कलाप म ऐसे परिवर्तन कर लिये थे जिनके द्वारा उपर्युक्त प्रकार के डायसपोरा बनने के माग पर वह आगे बढ सका था।

निश्चय ही, ओथमन साम्राज्य की मिल्लत (Millet) प्रणाली, समाज के साम्प्रदायिक ढाचे का केवल एक ऐसा संघटित संस्करण थी जो सीरियाई राज्यप्रथा के धूल म मिल जाने तथा असीरी (असीरियन) सैनिकवाद के आक्रमणो-द्वारा सीरियाई जातियो के अनुमोचनीय रूप म अन्तर्मिश्रित हो जाने के बाद सीरियाई जगत म स्वत उदित हो गया था। इसके फलस्वरूप भौगोलिक दृष्टि से अन्तर्मिश्रित जातियो के जाल के रूप म समाज का जो पुन संधिकरण या संयोजन हो गया वह सीरियाई समाज से उसके ईरानी एव अरब मुस्लिम उत्तराधिकारियो को प्राप्त हुआ था तथा जिसे बाद म एक अवसन्न परपरानिष्ठ ईसाई जगत् पर उस्मानली ईरानी मुस्लिम साम्राज्य निर्माताओ ने थोप दिया था।

इस ऐतिहासिक सदर्भ म स्पष्ट है कि पाश्चात्य ईसाई जगत् से जिस यहूदी डायसपोरा की मुठभेड हुई वह कोई अनुपम सामाजिक घटना नही थी। इसके विरुद्ध वह एक ऐसे समुदाय प्रकार का उदाहरण थी जो समस्त इस्लामी जगत् बल्कि पाश्चात्य ईसाई जगत् के अन्दर जिसमे यहूदी डायसपोरा फस गया था, एक मानक प्रकार (स्टैंडर्ड टाइप) बन गया था। इसलिए आसानी से यह पूछा जा सकता है कि क्या यहूदी समुदाय और पाश्चात्य ईसाई जगत् के बीच के इस दु खद संघर्ष के निराले सामाजिक परिवेश के अन्दर पाश्चात्य पक्ष मे भी उतनी ही विशिष्टताए नही है जितनी यहूदी पक्ष म पायी जाती हैं ? और जब हम यह सवाल करते हैं तब हम देख सकते हैं कि पाश्चात्य इतिहास

की धारा तीन एस प्रसगो में निश्चय ही निराली थी जिनका यहूदी पाश्चात्य सम्बन्धो के इतिहास के लिए औचित्य है। पहिली बात तो यह है कि पाश्चात्य समाज ने स्वय ही अपने को भौगोलिक दृष्टि से विच्छिन्न ग्राम्य राज्यो के रूप मे ग्रथित बना लिया। दूसरी बात यह कि उसने अपने को धीरे धीरे कृषको एव जमीदारो के अति ग्राम्य समाज से कारीगरो एव बुर्जुवाओ (पूजीजीवी वर्गों) के अति नगरी या (ultra urban) समाज मे रूपान्तरित कर लिया। तीसरी बात यह हुई कि यह राष्ट्रवादी और मध्य वर्गीय मानस वाला उत्तरकालीन पाश्चात्य समाज अपने मध्यकालिक अध्याय की आपेक्षिक धूमिलता से निकला और तेजी से आकर समस्त शेष जगत पर छा गया।

सामी विरोधवाद (अरबो और यहूदियो का विरोध) और एक विशेष क्षेत्र के समग्र अधिवासियो का अपने अक मे लेने वाले सजातीय समाज के ईसाई आदर्श के बीच जो आन्तरिक सम्बन्ध था वही आइबेरी (आइबेरियन) प्रायद्वीप के यहूदी दायसपोरा के इतिहास मे अपने को व्यक्त करता है।

ज्योही रोमी और विजीगाथी (Visigothic=पश्चिमी गाथिक) समाजो के बीच की खाई (५८७ ई मे) दूसरे के एरियन से कथलिक ईसाई मत स्वीकार कर लेने के कारण भर गयी त्योही विजीगाथियो मे सयुक्त ईसाई समाज तथा परिणामत अधिक स्पष्टता से व्यक्त निराली यहूदी मिल्लत के बीच खिचाव पैदा होने लगा। यह क्षोभ-वृद्धि यहूदी विरोधी अनेक कानूनो मे प्रकट हुई और जब इसके विरुद्ध गुलामो की उनके स्वामियो से रक्षा करने के लिए विजीगाथी कानून मे साथ-साथ बढती हुई मानवीय भावना को देखने हैं तो दुख होता है। परन्तु एक ओर नैतिक रूप से ऊपर उठती और दूसरी ओर नैतिक रूप से नीचे गिरती कानून मालिकाए राज्य पर चर्च के प्रभाव की द्योतक हैं। ऐसी परिस्थिति मे यहूदियो ने अन्तत उत्तरी अफ्रीका के अपने सहधर्मियो से मुस्लिम अरबो का हस्तक्षेप प्राप्त करने के लिए साठ गाठ की। इसमे कोई सन्देह नही था कि इस निमत्रण के बिना भी अरब तो आते ही। जो भी हो वे आये। प्रायद्वीप मे पाच सौ वर्षों के मुस्लिम शासन (७११ १२१२ ई) का आरम्भ हुआ। इस शासन के अधीन स्वायत्त यहूदी दायसपोरा कोई निराला समुदाय नही था।

आइबेरी (आइबेरियन) प्रायद्वीप के अरबों द्वारा विजय कर लेने का सामाजिक प्रभाव यह हुआ कि अपने सीरियाई जगत् से विजेता (अरब) समाज का क्षतिज रूप से ग्रथित (horizontally articulated) जो ढाचा लाये थे उसके पुन स्थापन द्वारा यहूदी समाज शान्ति से रहने लगा। किन्तु मुस्लिम शक्ति के पतन के बाद प्रायद्वीप मे यहूदी दायसपोरा के कल्याण का अन्त हो गया क्योकि जिन मध्यकालीन कैथलिक ईसाई बबर विजेताओ ने अन्दुलेसिया के उम्मायद खलीफाओ के राज्यभग पर अधिकार कर लिया वे एक सजातीय ईसाई राष्ट्रमण्डल (कामनवेल्थ) के आदर्श के प्रति निवेदित थे और १३६१ ई तथा १४६७ ई के बीच यहूदियो को या तो निर्वासन स्वीकार करना पड़ा या फिर विवशत अपना धर्म बदलकर ईसाई हो जाना पड़ा।

साम्प्रदायिक सजातीयता का अभाव, जो अपने बीच रहने वाले यहूदी विदेशियों के प्रति पाश्चात्य ईसाई समुदाय की विरोधी असहिष्णुता का राजनीतिक प्रयोजन था अपने समय के साथ होने वाली आर्थिक एवं सामाजिक घटनाओं से दृढ़ होता गया।

पाश्चात्य समाज का जन्मस्थान यूनानी जगत् का एक ऐसा दूरवर्ती क्षेत्र था जहाँ यूनानी सभ्यता की नगरीय संस्कृति अपनी जड़ जमाने में असफल हो चुकी थी। रोमन साम्राज्य के पश्चिमी प्रान्तों में औपनिवेशिक वृत्ति के आधार पर नगरीय जीवन का जो अधिनिर्माण खड़ा किया गया था वह अल्पस्थायी होने के स्थान पर उल्टे एक दुष्फल सिद्ध हुआ और जब यह विजातीय राजनीतिक ढाँचा अपने ही भार से बैठ गया तो पश्चिम फिर उसी निम्न आर्थिक स्तर पर जा गिरा जिस पर यूनानियों द्वारा अपने को अपनाये जाने के पहले था टाइरान सागर के उस पार फैलाने के प्रयत्न के पूर्व पड़ा था। इस निराली आर्थिक बाधा के दो परिणाम हुए। पहिली अवस्था में पाश्चात्य ईसाई जगत् में एक ऐसे यहूदी दायसपोरा का प्रवेश हो गया जिसने वहाँ के ग्रामीण समाज को पूर्णतम व्यापारिक अनुभव तथा संगठन का लाभ देकर पश्चिम में अपने जीवन निर्वाह का उपाय निकाल लिया था। ऐसे पूर्णतम व्यापारिक अनुभव तथा संगठन के बिना क्रिश्तानिया (ग्राम्यसमाज) भी रहा जा सकता थी और अब तक वह अपने साधनों से उसे प्रस्तुत करने में असमर्थ था। द्वितीयावस्था में पाश्चात्य ईसाई मूर्तिपूजक (Gentiles) साम्प्रदायिक यहूदी कलाओं में दक्षता प्राप्त करके अपने ही यहूदी बन जाने की महत्त्वाकांक्षा से प्रेरित हो उठे।

युगों के प्रवाह में इस यहूदी आर्थिक प्रयोजन पर पाश्चात्य मूर्तिपूजकों को इच्छाशक्ति के दानवी व्यापारण का सनसनीजनक पुरस्कार प्राप्त हुआ। ईसाई संवत् की बारहवीं शती तक आर्थिक कुशलता के लक्ष्य की ओर अपनी लम्बी यात्रा में चलते हुए पाश्चात्यों के नरवों के पूर्वी पृष्ठरक्षी भी एक ऐसे रूपान्तरण से गुजर रहे थे जो एक हजार साल पहिले ही उस आन्दोलन के उत्तरी इतालवी और फलमी (फ्लमिश) अग्रगामियों द्वारा सिद्ध किया जा चुका था और जिसे समान औचित्य के साथ या तो आधुनिकीकरण या यहूदीकरण कहा जा सकता है। पाश्चात्य इतिहास में इस सामाजिक आधुनिकता की उपलब्धि का लक्षण एक ऐसे एन्तोनियो वर्ग का उद्भव था जो खुद ही शाइलाक का सारा काम करने के योग्य होने के कारण उसे निकाल बाहर करने को उत्सुक था।

यहूदियों एवं पाश्चात्य मूर्तिपूजकों के बीच का इस आर्थिक लड़ाई का नाटक तीन अंकों तक चलता रहा। पहिले अंक में यहूदी उतने ही लोकप्रिय थे जितने कि अपरित्याज्य थे। किन्तु उनके प्रति किया जाने वाला दुर्व्यवहार इसलिए सीमित था कि उनके मूर्तिपूजक पीड़कों का काम आर्थिक दृष्टि से बिना उनके चल नहीं पाता था। दूसरा अंक एक के बाद दूसरे पाश्चात्य देशों में तब खुलता है जबकि उदीयमान मूर्तिपूजक पूँजीजीवी पर्याप्त अनुभव, कौशल एवं पूँजी प्राप्त करके इस योग्य हो जाता है कि स्थानीय यहूदी का स्थान छीन ले। तब उस स्थिति में जिस पर इंगलैण्ड तेरहवीं

स्पेन पन्द्रहवी और पोलण्ड तथा हगरी बीसवी शती मे पहुचे—मूर्तिपूजक पूजीजीवी अपने यहूदी प्रतिस्पर्धियो के निष्कासन के लिए अपनी नवीनार्जित शक्ति का प्रयोग करता है। तीसरे अक म भलीभाति प्रतिष्ठित हो चुका मूर्तिपूजक पूजीजीवी यहूदी आर्थिक कलाओ म इतना प्रवीण हो जाता है कि यहूदी प्रतिस्पर्द्धा म गिर जाने का परपरागत भय उसे नही रह जाता और इसीलिए मूर्तिपूजक राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की सेवा म यहूदी योग्यता की पुर्ननियुक्ति द्वारा आर्थिक लाभ उठाने से अब वह विरत नही होता। इसी भावना से टस्कन सरकार ने स्पेन एव पुर्तगाल से आने वाले प्रच्छन्न यहूदी (Crypto Jewish) शरणार्थियो को १५९३ ई म और उसके बाद लगहान मे बसने की अनुमति दे दी, हालण्ड ने तो १५७९ ई म ही अपने दरवाजे उनके लिए खोल दिये थे और जिस इगलण्ड ने १२९० ई म अपने यहा के यहूदियो को निकाल बाहर करने की दृढ़ता अपनायी थी उसने १६५५ ई मे पुन उनको प्रवेश की इजाजत दे दी।

पाश्चात्य इतिहास के आधुनिक युग म यहूदियो को इस प्रकार आर्थिक मताधिकार मिल जाने के बाद उन्हे बडी तेजी के साथ सामाजिक एव राजनीतिक मताधिकार भी प्राप्त हो गया, जो पाश्चात्य ईसाई जगत म समकालीन धार्मिक और वैचारिक क्रान्ति होने का परिणाम था। प्रोटेस्टेण्ट रिफार्मेशन ने सयुक्त कैथलिक चर्च के विरोधी मोर्चे को तोड दिया और सत्रहवी शती के इगलण्ड एव हालण्ड म शरणार्थी यहूदियो का इन प्राटेस्टेण्ट देशो के रोमन कैथलिक शत्रुओं द्वारा पीडित लोगो के रूप म स्वागत किया गया। तदनन्तर सभी यहूदियो को कैथलिक एव प्रोटेस्टेण्ट देशो म सहिष्णुता का उदय होने का लाभ प्राप्त हुआ। १९१४ ई तक मानव-कार्य-कलाप के सभी क्षेत्रो मे यहूदियो की सरकारी तौर पर मुक्ति बहुत पहिले ही घटित एक तथ्य बन चुकी थी। और यह बात इस समय लुप्त पोलण्ड लिथुवेनिया के सयुक्त राज्य (United Kingdom) के उन क्षेत्रो को छोडकर जो छीनकर रूसी साम्राज्य म मिला लिये गये थे, आधुनिक पाश्चात्य जगत के सम्पूर्ण प्रान्तो के लिए सत्य थी। इस स्थिति म ऐसा लग रहा था कि यहूदी एव ईसाई समुदायो के परस्पर मिश्रण और स्वच्छापूर्ण एकीकरण से यहूदी समस्या हल हो जायगी। किन्तु ये आशाए मिथ्या सिद्ध हुई। अभी तक जो तीन अक का सुखान्त नाटक लग रहा था उसका शीघ्र ही चौथा अक आरम्भ हो गया जो उसके पहिले के सब दृश्यो से भयानक था। तब क्या गलती हो गयी ?

एक विक्षेप तो यह था कि यद्यपि पाश्चात्य मूर्तिपूजको और यहूदियो के बीच की कानूनी दीवार सरकारी तौर पर हटा दी गयी थी किन्तु उनके बीच की मनोविज्ञानिक बाड बनी रही। अब भी एक अदृश्य मुहल्ला (ghetto) ऐसा था जिसके अन्दर पाश्चात्य मूर्तिपूजक यहूदी को बन्द रखे हुए था और खुद यहूदी भी इस पाश्चात्य मूर्तिपूजक से अपने को अलग रखे जा रहा था। सरकारी तौर पर तो समाज सयुक्त था किन्तु इस सयुक्त समाज के अन्दर यहूदी अपने को अनेक सूक्ष्म रूपो म एक बहिष्कृत व्यक्ति पाता था दूसरी ओर मूर्तिपूजक भी फ्रीमसनरी यहूदी को अपना प्रतिस्पर्द्धी पाता था—फ्रीमसनरी यहूदी जो खुद तो उस सब लाभ को उठाने का उत्सुक

था किन्तु दूसरो को देने को रजामन्द न था जो एक संयुक्त समाज के सभी सदस्यो को मिलना चाहिए था। दोनो दल दो प्रकार का आचरण करते रहे—अपनी जाति के लोगो के साथ व्यवहार करने में उच्चतर मानक का, और कल्पना जगत् में टूट गयी सामाजिक बाड़ के उस पार के नाम के नागरिक बन्धुओ के साथ भिन्न मानक का। और अनीति के पुराने पाप पर पाखण्ड के इस आवरण ने प्रत्येक पक्ष की दृष्टि में दूसरे पक्ष को और हेय, पर पहिले से कम भयजनक बना दिया। इससे परिस्थिति दोनो दलो के लिए और उत्तेजक किन्तु कम कष्टकर हो गयी।

जहा जहा भी स्थानीय आबादी में मूर्तिपूजक के साथ यहूदी तत्त्व के अनुपात में ज्यादा तेजी से वृद्धि हुई वही सामी विरोधवाद (एण्टी-सेमिटिज्म) के पुन प्रकोप द्वारा दोनो समुदायो के बीच के सम्बन्ध की अनिष्टकरता प्रकट हो गयी। रूसी उत्पीड़न के दबाव के कारण १८८१ ई से ही रूसी साम्राज्य के पूर्व पालिश लिथुनियन क्षेत्रो से यहूदी प्रवासी लन्दन एव न्यूयार्क में आने लग थे इसलिए इन दोनो नगरो में १९१४ ई तक यह प्रवृत्ति दिखलायी पड़ने लगी। और प्रथम विश्व महायुद्ध के जमाने मे गलीशिया कांग्रेस पालण्ड और सीमा या बाड़ (The Pale) के पूर्वी प्रान्तो से यहूदी देशान्तरवासियो की संख्या में वृद्धि हो जाने के फलस्वरूप १९१८ ई के बाद जर्मन आस्ट्रिया तथा जर्मन रीच में वह प्रवृत्ति और विषाक्त हो गयी। किन्तु जिन शक्तियो ने जर्मन राष्ट्रीय समाजवादियो (German National Socialists) को सत्ता तक पहुचाया उसमें यह जर्मन सामी विरोध सबसे सक्षम था। बाद में जर्मन राष्ट्रीय समाजवादियो द्वारा किये गये यहूदियो के 'नर-सहार' (Genocide) पर यहा विस्तार से लिखने की आवश्यकता नही है। तथ्य उतने ही विख्यात हैं जितने भयावह हैं और राष्ट्रीय पैमाने पर ऐसे दौरात्म्य का प्रदर्शन करते हैं जिसका आज तक के इतिहास में दूसरा उदाहरण नही है।

आधुनिक पाश्चात्य राष्ट्रवाद ने पाश्चात्य जगत के यहूदी डायसपोरा पर दो बाजुओं से एक साथ हमला किया एक ओर तो उसने पाश्चात्य यहूदियो को ठीक उसी समय अपने आकर्षण में खीचा जब कि वह दूसरी ओर उन्हें अपने दबाव से अपनी एक अलग राष्ट्रीयता आविष्कृत करने को प्रेरित करता रहा—जिसे हम उन्नीसवी शती के उदारतावाद के पहिले के युग से सम्बद्ध और यहूदियो के लिए सुरक्षित पाश्चात्य करण के व्यक्तिगत रूप के विपरीत पाश्चात्यकरण का सामूहिक रूप कह सकते हैं। व्यक्ति यहूदी को यहूदी धर्म मानने वाले पाश्चात्य पूजीजोवी के रूप में परिवर्तित करने में पाश्चात्यकरण के आदर्श की भाति किसी ग्राम्य राष्ट्र राज्य (nation state) में एक मात्र तथा सजातीय यहूदी आबादी वाले यहूदी डायसपोरा का केन्द्रित करने का यह दूसरा आदर्श अथवा उसका कोई अर्थ इस बात का प्रमाण था कि पाश्चात्य यहूदी समुदाय की मुक्ति पर्याप्त रूप में इतनी यथार्थ तो थी ही कि प्रचलित पाश्चात्य आदर्शों के प्रभाव की ओर उन्हें प्रेरित कर सके। किन्तु इसके साथ ही अपने ही प्रवर्तक थियोडोर हर्जल के शब्द प्रमाण (testimony) के अनुसार जियनवाद (Zionism=नवयहूदीवाद) इस चिन्ता का भी प्रमाण था कि कही व्यक्तिगत स्वीकरण (assimilation) का मार्ग

पाश्चात्य मूर्तिपूजको म उदारतावाद क स्थान पर तेजी से बढ़ते हुए राष्ट्रवाद-द्वारा उनके लिए फिर न बन्द कर दिया जाय। १६१८ के पहिले के आस्ट्रियन साम्राज्य क जमन भाषी प्रदशो वाले एक ही भौगोलिक क्षेत्र म यहूदी जियनवाद और जमन नव-सामी विरोधवाद (Neo-Antisemetism) का एक क बाद एक उठ खडा होना शायद कोई आकस्मिक घटना नही है।

इतिहास की समस्त काली प्रवचनाओ मे कोई मानव स्वभाव पर उससे ज्यादा अशुभ प्रकाश नही डालती जितना यह तथ्य डालता है कि अपनी जाति क भयकर अन्याया की पीडा सहन कर लने क अनन्तर तुरन्त ही नयी शली के राष्ट्रवादी यहूदियो ने उस अपराध स दूर रहने की जगह जिसके वह खुद शिकार रह चुक थे, अपनी बारी अपन से दुबल जाति पर ठीक वहा अत्याचार—अपराध करना शुरू कर दिया। उन्होन फिलिस्तीन (पलस्टाइन) के अरबा पर वही अत्याचार शुरू कर दिये। उन अरबा का एकमात्र अपराध यही था कि फिलिस्तीन उनके पूवजा का घर था, नाजियो क हाथ यहूदियो को जिस प्रकार की पीडाए सहनी पडी थी उनस उन्हाने कोई सबक नही लिया बल्कि वही सब खुद भी करन लग। हा दसरायली यहूदियो ने इतना जरूर नही किया कि नाजियो की भाति फिलिस्तीनी अरबो को निमूल करके बन्दी शिविरो एव गस चम्बरो म डाल देते। किन्तु उन्होन अधिकाश से, पाच लाख स अधिक अरबो स उनकी व जमीन छीन ली जिन्ह वे और उनके बाप-दाद पीढिया से अपने कब्जे मे रखते और जोतत आय थे। उन्होंने उनकी यह सब सम्पत्ति ले ली जा व बचार भागते हुए अपन साथ ल जान म असमथ थे और इस प्रकार उन्हे विस्थापित व्यक्तिया क रूप म भयकर दन्य म डाल दिया।

जियोनी प्रयाग क फलस्वरूप इस अध्ययन के किसी पूव भाग मे व्यक्त यह दृष्टिबिन्दु प्रमाणित हा गया कि पाश्चात्य मूर्तिपूजका ने अपन मध्य रहन वाल यहूदिया क विषय म अरस स जिस 'यहूदी स्वभाव की धारणा बना रखी थी वह उत्तराधिकार म प्राप्त उनका कोई विशिष्ट जातिगत दान नही था वर पाश्चात्य जगत के बीच यहूदी दायसपोरा की विचित्र परिस्थिति का परिणाम था। जियोनवाद का विरोधाभास यह था कि एक विशुद्ध यहूदी समुदाय का निर्माण करन के अपन दानवी यत्न क साथ ही वह पाश्चात्य मूर्तिपूजका की दुनिया मे भी यहूदियो के मिश्रण या स्वीकरण के लिए उतना ही प्रभावकारी प्रयत्न कर रहा था जितना कि वह यहूदी व्यक्ति करता था जो यहूदी धम वाला पाश्चात्य पूजीजीवी या एक पाश्चात्य पूजीजीवी नास्तिक (Agnostic) बनना पसन्द करता था। ऐतिहासिक यहूदी समाज दायसपोरा के रूप म था और उनकी निजी यहूदी विशिष्टताए और परपराए—मूसाई कानूनो क प्रति सूक्ष्म निष्ठा तथा व्यापार एव वित्त म पक्की कलाप्रवीणता—व थी जिन्हे दायसपोरा ने युगो के प्रवाह म, एक एसे सामाजिक कवच का रूप दे दिया था जिसके कारण भौगोलिक रूप से विच्छिन्न इस समुदाय म अतिजीविता (survival) की जादुई क्षमता उत्पन्न हो गयी थी। उदार एव जियोनी दोना विचारों क उत्तरकालीन यहूदी पाश्चात्यकारक (Westernizers) एक समान ऐतिहासिक अतीत स विच्छिन्न होते जा रहे थ, और जियोनवाद

का अलगाव इन दोनो से कही ज्यादा कठोर था। उन आधुनिक पाश्चात्य प्रोटेस्टेण्ट ईसाई अग्रगामियो की भाति जिन्होने सयुक्त राज्य (अमेरिका), दक्षिण अफ्रीका यूनियन तथा आस्ट्रेलिया राष्ट्रमडल (कामनवेल्थ) का निर्माण किया था, किसी भूमि पर स्थिर रूप से बसकर एक नवीन राष्ट्र का निर्माण करने के लिए सामूहिक रूप से दायसपोरा का त्याग करने म जियोनवादी उसी मूर्तिपूजका वाले सामाजिक वातावरण म निमग्न हो रहे थ । और जहा तक उनके अपने धमग्रन्थो स प्रेरणा लेने की बात है यह प्ररणा न तो उन्हे मूसाई *कानून स न नबियो से वर बुक्स आव एक्जोडस (बहिर्गमन पुस्तक)* के आख्याना तथा जोशुआ से प्राप्त हुई थी ।

इस भावना से उद्धतता और उत्साह के साथ उन्होने अपने को दिमागी काम करने वालो की जगह शरीर श्रमिको म नगरवासी की जगह ग्रामीणो मे मध्यस्थो की जगह उत्पादको मे धनपति की जगह कृषको मे, दुकानदारो की जगह योद्धाओ तथा शहीदो की जगह आतकवादियो म बदलना शुरू कर दिया । अपनी पुरानी भूमिकाओ की भाति ही इस नयी भूमिका म भी उन्होने चीमडपन और लोच का परिचय दिया। किन्तु इसराइलियो, जसा कि फिलिस्तीनी यहूदी अपने को कहते हैं के लिए भविष्य क गभ म क्या है इसे भविष्य ही बता सकता है । इद गिद की अरब जातिया अनाहूत आगन्तुक या अतिक्रमी (intruder) को अपने बीच से बाहर निकालने पर तुल सी गयी और उत्पादक अद्धचद्र (The Fertile Crescent) की ये अरब जातियां इसराइलियो से सख्या मे बहुत ज्यादा थी फिर भी फिलहाल, सख्या मे उनकी श्रेष्ठता ऊर्जा एव कुशलता म उनकी हीनता के नीचे दब गयी ।

फिर बात यह भी है कि अब सारे सवाल विश्व के सवाल बन गय हैं । सोवियत सघ और सयुक्त राज्य (अमरिका) क मध्यपूर्वीय स्वाथ किस पक्ष म होगे? यह है सवाल। जहा तक सोवियत सघ का सम्बन्ध है किसी भी उत्तर की भविष्यवाणी करना कठिन है । जहा तक सयुक्त राज्य (अमरिका) का सम्बन्ध है आज तक उसकी फिलिस्तीनी नीति का निर्णायक तत्त्व रहा है —सख्या सम्पत्ति और प्रभाव म आबादी के यहूदी और अरब तत्त्वो क बीच की विषमता । अमरिकी यहूदियो की तुलना म अमरिकी अरबो का सख्या लगभग नगण्य है भले हा उनम लबनानी ईसाई उद्गम के लोगो को भी शरीक कर लिया जाय । अमेरिका के नागरिक जीवन म यहूदीदल जा शक्ति रखता है वह उसकी सख्या क अनुपात म कम नहा है क्योकि व न्यूयार्क नगर म ही केन्द्रित हैं और अमरिका की स्थानीय राजनीति म वाटा क लिए जा प्रतियोगिता है उसकी दृष्टि म वह एक प्रमुख राज्य का प्रमुख नगर है । किन्तु द्वितीय विश्वयुद्ध क अन्त के बाद क नाजुक वर्षों म सयुक्त राज्य अमरिका का सरकार न इसराइल को जो दूरव्यापी सहायता दी वह विदेशी मूर्तिपूजक अमरिका राजनीतिज्ञों क अनुमानों क आधार पर नहा वरन अनासक्त एव आदर्शवादी यद्यपि सम्भवत कुसूचित सद्भावना का ही प्रति बिम्ब है । अमरिकी लोगो न नाजियो क हाथ यूरोप म पीडित यहूदियो की पीडा क अन्दर प्रवेश किया और समझा क्योकि दूसरे बहुतेरे यहूदी उनके नित्य के जीवन का परिचित मूर्तिरूप म थ जबकि फिलिस्तीनी अरबो का पीडाओ को उन तक पहुचान

वाल परिचित अरबो का वहा अभाव था और अनुपस्थित व्यक्ति सदा गलत होते हैं।

६ आधुनिक पश्चिम तथा सुदूरपूर्वीय एव देशज अमरिकी सभ्यताए

अब तक हम आधुनिक पश्चिम के साथ जिन जीवित सभ्यताओ के सघर्षो का सर्वेक्षण करते रहे हैं उन सब म पश्चिमी समाज की आधुनिक अवस्था के सघात के कारण जो परिवतन का आरम्भ हुआ उसक पहिले ही उनको पश्चिम के इस समाज का अनुभव हो चुका था। यह बात हि दू समाज तक के सम्ब ध मे भी सत्य है यद्यपि पश्चिम से उसका ससग बहुत ही क्षीण रहा था। इसके प्रतिकूल अमरिका के देशो म पश्चिम के अस्तित्व का ज्ञान ही न था। इसी प्रकार चीन और जपान को भी उनका उस क्षण तक कोई ज्ञान न था जबतक कि आधुनिक पाश्चात्य अग्रगामी नाविक उनके तटो पर नही पहुच गये। इसका परिणाम यह हुआ कि पश्चिम के दूतो का आरम्भ म बिना किसी स देह के स्वागत किया गया, वे लोग जो कुछ अपने साथ ले गये थे उनम नवीनता का आकषण भी था। कि तु बाद मे दोनो कहानियो ने तेजी से एक दूसरे के प्रतिकूल मोड ले लिया। एक कठिन स्थिति को सुलझाने म सुदूरपूर्वीय सभ्यताए जितनी ही सफल हुइ अमेरिकी सभ्यताए उतनी ही असफल हो गयी।

मध्य अमेरिकी एव एदियाई (एडियन) दुनियाओ के स्पेनी विजेताओ ने शस्त्र बल से अपने अल्प साधन वाले सहायहीन आखेटो पर तुर त अधिकार कर लिया। उ होने आबादी के उन तत्वो को लगभग निमल कर दिया जो देशी सस्कृति के पुज थे उ होंने उनके स्थान पर अपने को एक विजातीय प्रभुत्वशील अल्पमत के रूप मे स्थापित कर लिया और देहाती आबादी को पाश्चात्य ईसाई समाज के अ त श्रमजीवियो की हैसियत म लाकर छोड दिया। इसक लिए उ होन उनके श्रम को इस शत पर स्पेनी धर्माधिक (Economico Religious) ठेकेदारो (entrepreneurs) के सुपुद कर दिया कि ये कृपक मिशनरी अपने उन श्रमिको का रोमन कथलिक ईसाई सम्प्रदाय मे धर्मा तरित करना भी अपने ही कत्त य का अग बना लेंग। इतना होन पर भी इस पुस्तक के लिखने के समय तक यह निश्चित नही माना जा सकता कि जिस प्रकार हजार वर्षों की यूनानी परतत्रता के बाद सीरियाई समाज पुन सामने आ गया और अपने को पुनर्गठित कर लिया उसी प्रकार अ ततोगत्वा देशी सस्कृतिया किसी न किसी रूप मे फिर अवतीण न हो उठेंगी।

दूसरी ओर अपने प्रारभिक अज्ञान के कारण चीन और जपान क दो सुदूर पूर्वीय समाज जिस साघातिक सकट मे पड गय थे उसको वे पार कर गय। उ होने पाश्चात्य सभ्यता को तराजू पर तौला उसे न्यून पाया उसे निकाल फेंकने का निश्चय किया और उससे सम्पक न रखने की एक निर्दिष्ट नीति को कार्यान्वित करने के लिए आवश्यक शक्ति का सग्रह करने की व्यवस्था की। कि तु जसा कि बाद म मालूम हुआ कहानी का अ त इस प्रकार नही हुआ। जिस रूप मे पश्चिम ने अपने को पहिले उनके सामने रखा था उस रूप म पश्चिम से अपन सम्ब ध तोड लेने के बाद चीनियो और जपानियो न अपनी पाश्चात्य समस्या को सदा के लिए छोड नही दिया। तिरस्कृत पश्चिम ने बाद मे अपने को रूपान्तरित कर लिया और उसने अपन को पूर्वी एशियाई

हृदय-पट पर पुन पेश किया—इस बार वह प्रथम उपहार के रूप म अपना धर्म लेकर नही वर अपनी प्रौद्योगिकी को लेकर उपस्थित हुआ। अब सुदूरपूर्वीय समाजो के सामने यह समस्या आ गयी कि या तो वे इस नवनिर्मित पाश्चात्य प्रौद्योगिकी पर अधिकार स्थापित करें या फिर उसके हाथ म अपने को समर्पित कर दें।

इस सुदूरपूर्वीय नाटक म चीनियो और जापानियो, दोनो ने कुछ बातो म एक समान और कुछ बातो म विभिन्न ढगो पर आचरण किया। घटनाओ का एक महत्त्वपूर्ण बिंदु यह था कि द्वितीय अक म धर्म निरपेक्ष आधुनिक पाश्चात्य सस्कृति का स्वागत-भाव चीन एव जापान दोनो म नीचे से ऊपर की ओर आरम्भ हुआ। रूस की पीटरी जारशाही के प्रतिकूल चीन के मचू साम्राज्य एव जापान के तोकुगावा शोगुन शासन दोनो एक समान पहल करने म असफल रहे। परन्तु इस अक के अन्त हृदय म धान के विपरीत जापान ने पीटरी प्रणाली को स्वीकार कर लिया जबकि प्रथम अंक म अर्थात सोलहवी शती के सघर्षों म दोनो सुदूरपूर्वीय समुदायो ने शुरू म ही विभिन्न मार्ग अपनाकर लिए थे। उन्होंने अपने सोलहवीं-सत्रहवी शती के धार्मिक रूप म आन वाली आधुनिक पाश्चात्य सस्कृति का जो अस्थायी स्वागत और फिर तिरस्कार किया था उसम हम देखते हैं कि चीन म आरम्भ से अत तक पहल ऊपर से नीचे की ओर हुई, जबकि जापान म वह नीचे से ऊपर की ओर हुई थी।

यदि हम आधुनिक पश्चिम के प्रति दोनो सुदूरपूर्वीय समाजो की पिछली चार शतियो म होने वाली प्रतिक्रियाओ को ग्राफ के रूप म बनायें तो हम देखेंगे कि चीनी की अपेक्षा जपानी वक्ररेखा काफी तीव्र है। दोनो अवसरो पर पाश्चात्य सस्कृति के प्रति आत्मसमर्पण करने म अथवा वदेशिक जुगुप्सा के मध्यान्तर काल म अपने को सरोधित (insulated) करने म कभी चीनी उतनी दूर तक नही गये जितनी दूर तक जपानी गये।

सोलहवीं-सत्रहवी शतियो के मोड पर आते आते जपान जिसका राजनीतिक एकीकरण तब भी अपूर्ण था के सामने विजातीय स्पेनी विजेताओ (Conquistadores) के निदय हाथो सागर के पार से, उस पर राजनीतिक एकता थोपे जाने का सकट आ उपस्थित हुआ। १५६५ ७१ म स्पेनियो द्वारा फिलीपाईंस और १६२४ ई मे डचों द्वारा फारमोसा पर प्रभुत्व उस भाग्य के पदार्थ-पाठ के समान था जो जपान के किसी म घटित होने वाला था। इसके प्रतिकूल चीन के विशाल उपमहाद्वीप को उस युग के समुद्री डाकुओ के आगमन से विशेष भय का कोई कारण नहीं था क्योंकि ऐसे यत्रसुविधा रहित समुद्री लुटेरे चाहे जितनी भी परेशानी पदा करने वाले हो किन्तु वे कोई भ्रम विष्णु विजेता नहीं थे। उस समय की चीनी सम्राट-सरकार के लिए गभीर चिन्ता का कारण पैदा करने वाला खतरा तो यूरेशीय स्टेप्पी से जमान के रास्ते पदा होने वाला आक्रमण था और जब सत्रहवी शती के बीच मिंग राजकुल की जगह तजस्वी अर्द्ध-बर्बर मचुओ ने ले ली तो अगले दो सौ वर्षों तक महाद्वीप के अन्दर म फिर कोई खतरा चीन पर नहीं आ सका।

चीन और जपान की भौगोलिकीय राजनीतिक परिस्थितियो म यह जो अन्तर

है उमी से यह बात बहुत दूर तक स्पष्ट हो जाती है कि क्यो चीन मे रोमन-कैथलिक ईसाई धम का निपीडन सत्रहवीं शती के अत तक स्थगित रहा और जब वह आरम्भ भी हुआ तो किमी राजनीतिक भीति एव शका का नही वर एक धार्मिक विवाद का परिणाम था। इसके प्रतिकूल जपान में रोमन-कथलिक ईसाई सम्प्रदाय का निपीडन बडी फुर्ती और निदयता क साथ शुरू हुआ और उसने अत म जपान तथा पाश्चात्य जगत के बीच सम्पक के लिए केवल एक मात्र डच सूत्र को छोड और सब सम्पक-साधन काट दिय। नवस्थापित केद्रीय जपानी शासन ने एक के बाद एक जो मुष्टिका प्रहार किये उनका आरम्भ हिदेयोशी द्वारा १५८७ ई मे प्रचारित अध्यादेश (ordinance) से ही हो गया था। इस अध्यादेश द्वारा समस्त पाश्चात्य ईसाई धमप्रचारकों को निर्वासित कर देने की आज्ञा दी गयी थी। इसकी परिणति १६३६ ३९ के उस अध्यादेश मे हुई जिसके द्वारा जपानी प्रजा को समुद्र क बाहर विदेश जाने तथा पोर्चुगीजो के जपान मे रहने पर रोक लगा दी गयी थी।

चीन की भाति जपान मे भी पृथक्करण या असम्पक्त्व की नीति का विसजन नीचे से ऊपर की ओर हुआ। इसके मूल म आधुनिक पाश्चात्य वैज्ञानिक ज्ञान का फल चखने की भूख थी। १८५२ मे तथा रक्षित जपान के द्वारोद्घाटन के कुछ ही पूव, १८४० ५० के अभिनिषेध (proscription) से प्रौद्योगिकी म अपने विश्वास के कारण आदोलन के अनेक अग्रजो को शहीद होना पडा। जपान मे आदोलन बिल्कुल धम निरपेक्ष था। उसके प्रतिकूल चीन का उन्नीसवी शती का समानुवर्ती आदोलन उन प्रोटेस्टेण्ट ईसाई मिशनरियो की क्रियाशीलता से पूण था जो ब्रिटिश एव अमरीकी विक्रेताओ के साथ वहा आते थे, ठीक वसे ही जैसे उनसे पोर्चुगीज अग्रजों के साथ जपान मे रोमनकैथलिक धमप्रचारक आते रहे थे। परतु चीन मे प्रोटेस्टेण्ट ईसाई धम प्रचारको का यह प्रभाव आगे भी चलता रहा। काउ मिन-ताग के सस्थापक सन-यात सेन स्वय प्रोटेस्टेण्ट ईसाई धम मे नवदीक्षित पिता क पुत्र थे। मदाम सन यात सेन उनकी बहिन मदाम च्याग-काई शेक और उनके भाई टी वी सुग इत्यादि के रूप में एक दूसरे प्रोटेस्टेण्ट ईसाई चीनी परिवार ने काउ मिन-ताग के बाद के इतिहास मे बडा प्रधान अभिनय किया है।

पाश्चात्यकरण के जपानी एव चीनी दोना आदोलनो को एक सुस्थापित देशी सर्वव्याप्त शासन नष्ट करके उसका स्थान लेने के विराट काय की पूर्ति करनी पडी किन्तु जपानी पाश्चात्यकारी चीनियो की अपेक्षा ज्यादा सावधान क्षिप्र एव कुशल थे। १८५३ ई में जपानी क्षेत्रिक सागर (territorial waters) मे कमाडोर पेरी के स्क्वाडरन न प्रवेश किया था। इसके पद्रह वष के अदर ही उन्होंने न केवल उस तोकूगावा शासन को उखाड फेंका जो समय के उपयुक्त अपने को ऊपर नही उठा सका था, बल्कि उससे कही ज्यादा कठिन एक दूसरा काम भी पूरा कर लिया। यह काम था पुराने शासन के स्थान पर एक ऐसे सक्षम एव कुशल शासन की स्थापना जो ऊपर से नीचे की ओर एक व्यापक पाश्चात्यकरण आन्दोलन का सचालन कर सके। चीनियो ने इसी काय के निषेधात्मक अर्धांश की पूर्ति मे ११८ वष लगा दिये १७९३ ई मे

पेकिंग म लार्ड मकाटनी के दूतमण्डल का आगमन पश्चिम की उद्दिगत शक्ति का उतने कुछ कम महत्त्वपूर्ण प्रदर्शन नही था जितना ६० वर्ष बाद ईदो खाडी म कमाडोर पेरी का आगमन था। तिस पर भी चीन मे प्राचीन शासन का उच्छेद १९११ के पूर्व सम्भव न हो सका और उसके बाद भी जो हुकूमत स्थापित हुई वह कोई प्रभावशील पाश्चात्यकारिणी नवव्यवस्था न थी बल्कि एक ऐसी अराजकता थी जिसे काउमिन ताग चौथाई शती (१९२३ ४८ ई) म नियन्त्रित नही कर सका—यद्यपि यह सारा समय भावी उग्र पाश्चात्यकारी आन्दोलन के लिए ही समर्पित था।

१८९४ ९५ ई [१] म चीन-जपान युद्ध छिडने म लेकर ५० वर्ष तक चीन पर जपान की सनिक शक्ति की श्रेष्ठता के अनुपात म ही इस भेद का माप किया जा सकता है। उस अर्द्धशती के बीच चीन सनिक दृष्टि से जपान की दया पर निभर था और यद्यपि इस सघर्ष की अन्तिम अवस्था म सम्पूर्ण चीन पर प्रभावकारी आधिपत्य स्थापित कर लेना जपान की शक्ति के बाहर की बात सिद्ध हुई किन्तु साथ ही यह भी स्पष्ट हो गया कि यदि जपानी युद्ध यन्त्र सयुक्त राज्य अमरिका-द्वारा तोड न दिया जाता तो बिना दूसरो की सहायता के चीनी कभी जपानियो स अपने उन छीने हुए बन्दरगाहो औद्योगिक क्षत्रो तथा रेलो को पुन न ले पाते जो चीन के पाश्चात्यकरण की कुजी रूप थे।

परन्तु जो भी हो बीसवी शती के द्वितीयार्द्ध के आरम्भ मे जपानी खरगोश और चीनी कछुआ साथ-साथ लगभग एक ही सकटापन्न लक्ष्य पर पहुच गये। जपान सबसे महती पाश्चात्य शक्ति की सनिक प्रभुता के चरणो म निष्क्रिय सा पडा हुआ था और चीन क्रान्ति के माग से अराजकता से निकलकर एक साम्यवादी शासन के लौह नियन्त्रण रूपी उसकी विलोम स्थिति म पहुच गया। हम उसे चाहे पाश्चात्य समझें या पाश्चात्य विरोधी (इस अध्ययन मे इस विषय पर पहिल ही विचार किया जा चुका है) परन्तु हर हालत मे सुदूरपूर्वीय सस्कृति की दृष्टि से यह एक विजातीय विचार धारा थी।

इन दो सुदूरपूर्वीय समाजो और आधुनिक पश्चिम के बीच जो दूसरी टक्कर हुई उसकी प्रथमावस्था का ऐसा एक समान अनर्थपूर्ण अन्त होने का स्पष्टीकरण क्या है? चीन और जपान दोनो मे इस अनर्थ की जड उस बिना हल की हुई समस्या म थी जो एशिया एव पूर्वी यूरोप के लिए उभयनिष्ठ थी और जिसका विचार हम हिन्दू जगत पर पश्चिम के सघात के विवेचन मे पहिले ही कर चुके है। उस आदिकालिक कृषक जनसख्या पर पाश्चात्य सभ्यता के सघात का क्या प्रभाव पडने वाला था जो युगो स इतनी अधिक सन्तान का उत्पादन करने की अभ्यस्त थी कि किसी तरह उन्हे जीवित भर रखा जा सकता था और जिसम अब एक नवीन असन्तोष अन्तर्निविष्ट किया

[१] इस युद्ध के सम्बन्ध मे 'पच' मे 'जप दि जायण्ट किलर' (जपान, एक विराट मारक) नामक एक व्यग्य चित्र निकला था जिसमे उस समय की अग्रज जनता के सौहार्दपूर्ण छिछोर आचरण का चित्रण किया गया था।

जा रहा था पर जिसने अब तक इस तथ्य का सामना करना शुरू नही किया था कि आर्थिक समृद्धि की सभावनाए एक आर्थिक एक सामाजिक और सबके ऊपर एक मनोवैज्ञानिक क्रान्ति के मूल्य पर ही सिद्ध की जा सकती हैं ? लक्ष्मी की कृपा एव आशीर्वाद का लाभ उठाने के लिए इन बद्धगति कृषको को भूमि उपयोग एव भूमि के पट्टे की अपनी पारपरिक परिपाटी मे क्रातिकारी परिवतन करने होगे और सन्तानोत्पादन की गति को भी नियन्त्रित करना होगा।

तोकूगावा सोगुन शासन के अन्तगत जपान के राजनीतिक एव आर्थिक जीवन मे स्थिरता लाना सभव हो सका था क्योकि उसका समथन करने वाला, जन्म मृत्यु सख्या-सम्बन्धी स्थिरता का एक आधार था। विविध उपायो से जिनमे गभपात एव बालघात तक शामिल थे, जनसख्या को तीन करोड पर स्थिर कर दिया गया था। जब इस शासनकाल का उच्छेद कर दिया गया तो उसमे अप्राकृतिक रूप से जम गया एक जपानी सामाजिक निकाय द्रवित होने लगा, और जनसख्या तेजी से फुदक्कर बढने लगी। राजनीतिक एव आर्थिक स्तर पर होने वाले परिवतनो के विपरीत अनियन्त्रित सन्तानोत्पादन का फिर से आरम्भ पाश्चात्य प्रभाव के कारण नही था बल्कि यह एक ऐसे कृषक-समाज की परपरागत आदतो की ओर प्रत्यागमन मात्र था जो तोकूगावा युग के तुषारघटित वातावरण मे एक मनोवैज्ञानिक कौशल द्वारा नियन्त्रित किया गया था। जो भी हो मृत्यु का अनुपात कम करके आदिमकालिक आदतो पर गिर जाने के इस जन्ममरण-सख्या सम्बन्धी प्रभाव को समकालिक पाश्चात्यकरण ने और बढा दिया।

इन परिस्थितियो में जपान के सामने दो ही विकल्प थे—या तो वह अपना प्रसार करे या फिर विस्फोट से नष्ट हो जाय। फिर प्रसार के व्यावहारिक रूप तो यही हो सकते थे कि या तो वह शेष विश्व को अपने साथ व्यापार करने पर राजी करे या फिर ऐसे दुबल देशों से अपने लिए अतिरिक्त प्रदेश साधन और बाजार शस्त्र बल के भरोसे जीत ले जो सनिक दृष्टि से इतने अशक्त थे कि सनिक शक्ति सम्पन्न पाश्चात्य रूप धारण करने वाले जपान के आक्रमण से अपनी सम्पत्ति की रक्षा न कर सकते थे। १८६८ से १९३१ तक की जपानी वदेशिक नीति का इतिहास इन्ही दो विकल्पो के बीच फिरते रहने का इतिहास है। जपानी राष्ट्र के ऊपर सनिक विकल्प ग्रहण करने पर आर्थिक राष्ट्रवाद की विश्वव्यापी वृद्धि का जो क्रमिक प्रभाव पड रहा था वह उस आर्थिक तुषारझझा (blizzard) के भयावह अनुभव से रुक गया जो १९२९ के पतझड मे वाल स्ट्रीट पर आ पडा था और जिसने शेष विश्व को भी अपने अक मे समेट लिया था। बिल्कुल दो साल बाद १८ १९ सितम्बर १९३१ की रात को जपान ने आक्रमण का अपना वह महत् अभियान शुरू किया जिसका अन्त १९४५ ई में वी जी दिवस के रूप में हुआ।

चूकि चीनी अपेक्षाकृत लघु द्वीपसमूहों मे केन्द्रित नही थे बल्कि एक अत्यन्त विस्तृत उपमहाद्वीप मे फले हुए थे इसलिए उनके यहा जनसख्या की समस्या उतनी शीघ्रता के साथ सामने नही आयी, न जपान की भाति इतनी निष्ठुरता के साथ उसके समा

घान की चेष्टा ही की गयी। किंतु दूर दृष्टि स देखन पर वह भी उतनी ही गभीर थी और उसको सुलझान का भार अब चीनी साम्यवादी अधिनायका या तानाशाहो पर आ पडा। साम्यवाद द्वारा चीन पर यह वचारिक विजय सुदूरपूर्वीय समाज के मुख्याग पर उस रूसी आक्रमण का सबसे ताजा प्रयत्न था जो तीन सौ वर्षो स किसी न किसी रूप म बढता गया था। यहा हम उसकी प्रारभिक अवस्थाओ की चर्चा न करेंगे। उन्नीसवी शती के उस काल मे जब जपान को गभीरतापूवक अपना प्रतिद्व द्वी नही समझा जाता था जपान एव पश्चिमी शक्तिया प्रतिद्वन्द्वी आशाताओ के रूप म आयी और मृतप्राय चीनी साम्राज्य की लोथ पर हाथ साफ करने लगी। इस स्थिति म प्रश्न यह रह गया कि क्या हागकाग और शघाई चीन म ब्रिटिश साम्राज्यवाद क लिए उसी प्रकार वृद्धिकारी बिन्दु साबित होग जिस प्रकार भारत मे ब्रिटिश साम्राज्यवाद की अभिवृद्धि के लिए बम्बई एव कलकत्ता सिद्ध हुए थे? दूसरी ओर रूस न १८३० ई म ही व्लादिवास्तोक पर अपनी प्रभुसत्ता (सावरेनटी) स्थापित कर ली थी और वह १८९७ म उससे कही अधिक केन्द्रीय तथा महत्त्वपूण बन्दरगाह पोट आथर को भी पट्टे पर ले चुका था। जपान ने ही १९०४ ५ के युगपरिवतनकारी रूस जपान युद्ध मे रूस के इस प्रयत्न का आरम्भ म ही खत्म कर दिया। फिर प्रथम विश्व महायुद्ध (१९१४ १८) के अत मे पुन रूस अराजकता से विच्छिन्न हो उठा जब कि विजयी पाश्चात्य मित्र मण्डल का न्यूनाधिक एक निष्क्रिय भागीदार होने के कारण जपान न खूब लाभ उठाया। जो भी हो जहा रूसी जारशाही असफल हो गयी थी वहा रूसी साम्यवाद सफल हुआ। उसकी सफलता के कारणो का किसी न किसी रूप म हम इस अध्ययन मे कितनी ही बार उल्लख कर चुके हैं—कारण जिन्ह हम कवियो म पायी जान वाली सूक्ति क समान थोथे विरोधाभासो के रूप म प्रकट कर सकते हैं—कलम तलवार से अधिक शक्तिशाली है। मार्क्स के धमवाह्य साम्यवादी सिद्धात ने रूस को एक ऐसी मनो वज्ञानिक अपील—प्ररणा दी जो न तो जारशाही न दे सकी थी। इसलिए सोवियत सघ अन्यत्र की भाति चीन म भी एक विराट पाचवें दस्ते का आदेश दे सकता था। यदि आज साम्यवादी रूस साधन जुटा सेगा तो उसके चीनी प्रशसक उसका काम विश्वसनीय रूप स कर सकेंगे।[1]

७ आधुनिक पश्चिम और उसके समकालिकों के बीच सघष की प्रकृति

हम जिन मुठभेडो का वणन कर चुके हैं उनकी तुलना करने पर सबस महत्त्वपूण निष्कष यह निकलता है कि आधुनिक पाश्चात्य सभ्यता शब्द म जो आधुनिक शब्द है यदि उसका अथ मध्यवग किया जाय तो उस एक अधिक निश्चित एव ठोस अथबोध स गर्भित किया जा सकता है। ज्योंही पाश्चात्य जातियो न एक एस मध्यवित्त या बुजुआ वग का निर्माण किया जो समाज म प्रधानता प्राप्त करन म

[1] पिछले ३ ४ वर्षों में रूस-चीन के बीच साम्यवाद की व्याख्या और उसके प्रयोग को लेकर जो मतभेद उत्पन्न हो गया है उसने लेखक के इस निष्कष पर एक प्रश्न चिह्न लगा दिया है।—अनु०

समय था त्योंही वे आधुनिक बन गयी। पन्द्रहवीं शती के अन्त म पाश्चात्य इतिहा का जो नया अध्याय खुला उसे हम आधुनिक समझते हैं क्योंकि इसी जमाने म अधि उन्नत पाश्चात्य जातियो म मध्यवग नियन्त्रण अपने हाथ म लेने लगा। इससे यह निष्क निकलता है कि पाश्चात्य इतिहास के आधुनिक युग के जारी रहने विदेशियो व पाश्चात्य रग ढग अपनाने की योग्यता उनक मध्यवर्गीय पाश्चात्य जीवन पद्धति मे प्रवे करने की उनकी सामथ्य पर निभर करती थी। जब हम नीचे से ऊपर की ओर पाश्चात्यकरण के पूववर्णित उदाहरणो की परीक्षा करते है तो देखते हैं कि यूनान परपरानिष्ठ ईसाई, चीनी एव जपानी जीवन के पूवस्थित सामाजिक गठन मे पहि ही ऐसे मध्यवर्गीय तत्त्व थे जिनके द्वारा पाश्चात्यकरण का प्रभाव काम करत रहा। इसके विरुद्ध जिन मामलो म पाश्चात्यकरण की प्रक्रिया ऊपर से नीचे की ओ चली वहा स्वेच्छाचारी शासको ने अपनी प्रजा को हुक्म के बल पर पाश्चात्य रग रगना शुरू कर दिया और वहा वे बिना जबदस्ती वाले उस विकास क्रम के लिए प्रतीक्ष न कर सके जो उन्हें देशी स्रोत वाला प्रामाणिक मध्यवर्गीय अभिकर्त्ता—एजेण्ट— प्रस्तुत कर सकता। उनकी जगह उन्होंने अपने लिए एक बुद्धिजीवी वग का निर्मा करके देशी उपज के मध्यवग के स्थान पर उसका एक कृत्रिम विकल्प बना लिया।

इस प्रकार रूस एव मुसलमानी तथा हिन्दू जगत् म जो बुद्धिजीवी वग अस्तित मे आया उसमे उसके निर्माताओ ने सफलतापूवक पाश्चात्य मध्यवग की विशेषताअ का वास्तविक रग भर दिया। किन्तु रूसी उदाहरण से मालूम पडता है कि यह र क्षणजीवी सिद्ध हो सकता है। क्योंकि रूस को मध्यवर्गीय पाश्चात्य सम्प्रदाय म ला के लिए मूलत पीटरी जारशाही ने जिस रूसी बुद्धिजीवी वग का निर्माण किया थ वह अपने हृदय म जारशाही एव पाश्चात्य बुजुवा आदश दोनो के प्रति विद्रो लिये आया—१६१७ ई के क्रान्तिकारी विस्फोट के बहुत पहिले यह घटित हो चुक था। और रूस म जो कुछ हुआ वह दूसरे बुद्धिजीवियो के साथ अन्यत्र भी घटि हो सकता है।

इस बुजुवा विरोधी मोड के प्रकाश मे, जिसे रूसी बुद्धिजीवी वग पहिले ह ग्रहण कर चुका था यह देखना उचित ही होगा कि उस अपश्चिमी बुद्धिवादी द मे पाश्चात्य मध्यम वग से क्या समानताए हैं और क्या विभेद है जिसे एक गरपश्चिम वातावरण मे पाश्चात्य मध्यम वग का ही काय करने को निर्देशित किया गया था।

उनके इतिहासो म एक सवनिष्ठ बात तो यह थी कि दोनो उन समाजो क परिधि के बाहर स आये थे जिनमे उन्होंने अपने को प्रस्थापित कर लिया था। हम यह देख ही लिया है कि जब पाश्चात्य समाज पहिले अन्धकार युग से बाहर आया त वह एक कृषक समाज था और उसके जीवन के लिए नागरिक कायकलाप इतन विजातीय थे कि उनम से कुछ का आचरण मूलत एक विजातीय यहूदी न्यायसपोरा द्वारा तबतक होता रहा था जबतक कि मूर्तिपूजको के अपने यहूदी आप बन जाने की आकाक्षा मे एक मूर्तिपूजक मध्यम वग अस्तित्व म न आ गया।

एक दूसरा अनुभव जो आधुनिक पाश्चात्य मध्यवग और समकालिक बुद्धिजीवी

वग के लिए सवनिष्ठ या सामान्य था, यह था कि दोनो ने अपनी परिणामगत प्रधानता अपने मूल मालिको से विद्रोह करके ही प्राप्त की थी। ग्रेट ब्रिटेन, हालण्ड, फ्रास तथा अन्य पाश्चात्य देशो म मध्यवग ने उन उन बादशाहों का शासन म किया जिनके गरदाग ने असावधानी म उस (मध्यम वग) का भाग्य निर्माण किया था।[1] इसी प्रकार उत्तर आधुनिक युग की अपाश्चात्य शासन-पद्धतियो म बुद्धिजीवी वग न उन पाश्चात्यकारी तानाशाहो के विरुद्ध सफल विद्रोह करके शक्ति प्राप्त की थी जिन्होन जान-बूझकर उसका निर्माण किया था। यदि हम पीटरी रूस उत्तरकालीन ओयमन साम्राज्य एव भारतीय ब्रिटिश राज्य के इतिहासों म प्राप्त इस सामान्य दृश्य का एक सक्षिप्त अवलोकन प्रस्तुत करें तो हम देखेंगे कि बुद्धिजीवी वग का यह विद्रोह न केवल तीनों उदाहरणो म घटित हुआ बल्कि लगभग समान समयावधि के बीतने पर हर मामले म उसने उत्कट रूप धारण किया। रूस मे १८२५ म जो निष्फल दिसम्बर क्रान्ति हुई और पीटरी परिपाटी के प्रति रूसी बुद्धिजीवी वग न जो युद्ध घोषणा की वह १६८६ मे पीटर के प्रभुत्व के प्रभावशाली आरम्भ के १३६ वर्षों बाद घटित हुई। भारत मे राजनीतिक अशान्ति' ने उन्नीसवी शती के अन्तिम भाग म अपने को व्यक्त करना शुरु किया था—अर्थात् बगाल मे ब्रिटिश राज्य की स्थापना के बाद १४० साल से भी कम समय मे। ओयमन साम्राज्य में 'ऐक्य एव प्रगति समिति (दि कमिटी आव यूनियन ऐण्ड प्राग्रेस) ने १६०८ मे सुलतान अब्दुल हमीद द्वितीय को हरा दिया। यह घटना भी १७६८ ७४ के रूसी-तुर्की युद्ध मे पराजय के आघात से विवश होकर पर्याप्त सख्या मे मुस्लिम प्रजाओ के आधुनिक पाश्चात्य युद्ध-कला म प्रशिक्षण आरम्भ करने के १३४ साल बाद हुई।

किन्तु समानता के इन बिन्दुओ के साथ कम से कम एक महत्त्वपूर्ण विभेद भी मिलता है। आधुनिक पाश्चात्य मध्यमवग उस समाज मे जिस पर वह प्रभुत्व जमाने आया था एक देशज तत्त्व था, एक मनोवैज्ञानिक अथ मे वह वहा मानो अपने ही घर म था। इसके प्रतिकूल बुद्धिजीवी वर्गों को दो प्रकार की कठिनाइया झेलनी पडी—एक तो नवीन दुग्धपायी प्राणी (Novi Homines) होने के कारण दूसरे विजातीय होने के कारण। वे किसी प्राकृतिक विकास के उत्पादन एव लक्षण नही थे वरन् एक विजातीय आधुनिक पश्चिम के साथ सघषशील अपने ही समाज के पराभव स्वरूप थे। वे शक्ति के नही, दुबलता के प्रतीक थे। बुद्धिजीवी स्वय इस द्वेषजन्य विभेद से भली भाति परिचित थे। वे जिस सामाजिक सेवा की पूर्ति के लिए उत्पन्न किये गये थे उसने उसी समाज मे उन्हें विजातीय बना दिया जिसके लिए वे उसे कर रहे थे। अपने कर्त्तव्य की धन्यवादहीनता के सम्बन्ध मे उनके अन्तर्ज्ञान (intuition) के साथ उनकी सामाजिक स्थिति के सहज आकुचनो से उत्पन्न निर्दय स्नायविक भार

[1] उदाहरणाथ यह अग्रेजो इतिहास का एक बडा ही सामान्य तथ्य है कि ट्यूडरों ने कामस को जो अधिकार दिये थे उन्हें उन्होंने स्टुअट लोगों के विरुद्ध प्रयुक्त किया।

न मिलकर उस पाश्चात्य मध्यवर्ग के प्रति उनमे एक ज्वालामयी घृणा पदा कर दी जो उनका जनक भी था और सकट भी, उनका ध्रुवतारा भी था और उनका हौआ भी। और इस लुटेरे सूर्य के प्रति, जिसके मुख्य ग्रह वे थे उनका यन्त्रणामय विमयुज व्यवहार कटूलस के गीत गाल निम्न पद्य म बडी ही तीव्रता के साथ व्यक्त हुआ है—

Odi et amo quare id faciam, fartasse requiris

Nescio sed fieri sentio et excrucior

[मैं तुम्हे घृणा करता हू और मैं तुम्हे प्यार करता हू शायद तुम पूछोगे कि क्या ? मैं नही जानता, किन्तु अनुभव मैं कुछ इसी प्रकार करता हू, और यह मुझे उत्पाडित कर देता है।']

पाश्चात्य मध्यमवर्ग के प्रति एक विजातीय बुद्धिजीवी वर्ग की घृणा की गहराई न पाश्चात्य मध्यमवर्गीय सफलताओ का अनुकरण करने की अपनी अक्षमता की भविष्यवाणी कर दी। इसका एक महत् उदाहरण, जिसम इस कटुताकारी पूर्वबोध का औचित्य सिद्ध हुआ था, १९१७ का प्रथम दो रूसी क्रान्तियो के बाद, रूसी बुद्धिजीवी वर्ग की पीटरा जारशाही के विध्वस को उनीसवी शती की पाश्चात्य परिपाटी को एक विधानसभात्मक सरकार (पालमटरी गवनमट) म रूपान्तरित कर देने की अपनी बडी-बडी बाता की पूर्ति की अनयकारी असफलता थी। केरेंस्की शासन इसलिए असफल हो गया कि उस पर बिना मिटटी-गारे के ही ईटें बनाने का काय आ गया था एक ठोस, योग्य, सर्वबुद्धिकारी एव अनुभवी मध्यमवर्ग, जहा स वह समय आदमी ले सकता, के बिना ही विधानात्मक सरकार बनाने का काय। इसके विपरीत लेनिन इसलिए सफल हुए कि उन्होन कुछ ऐसी चीज निर्मित करने का प्रयत्न किया जिससे स्थिति का सामना किया जा सकता था। निश्चय ही उनका सवसघ व्यापी साम्यवादी दल (आल-यूनियन कम्यूनिस्ट पार्टी) कोई ऐसा पदार्थ नही था जो बिना पूर्वोदाहरण के हो। ईरानी मुस्लिम इतिहास म इसका उदाहरण पहिले स ही मौजूद था आटमन बादशाह के गुलाम हरम म, सफाविओ की काजिलबाश भक्त बिरादरी म, उसका दृष्टान्त मिलता है। सिखो ने अपने अखाडे से मुगल प्रभुत्व को चुनौती देने के अपने निश्चय स जिस सिख खालसा की सृष्टि की उसमे भी इसे देखा जा सकता है। इन मुसलमानी एव हिन्दू बिरादरियो म रूसी साम्यवादी दल की विशिष्ट प्रवृत्ति निश्चित रूप स विद्यमान थी। लेनिन का जो मौलिकता का दावा है वह इतना ही है कि उन्होन अपन लिए इस विराट राजनीतिक यन्त्र का निर्माण किया, वह इस बात म भी है कि पश्चिम की प्रचलित परपरानिष्ठ विचारधारा का निराकरण करते हुए भी पाश्चात्य प्रौद्योगिकी के अधुनातन साधनो पर अधिकार स्थापित करके एक अन्य पश्चिमी समाज म उस राजनीतिक यन्त्र के प्रयोग को उन्होने वरीयता दी।

लेनिन न जिस एकदलीय अधिनायकतन्त्र की स्थापना की उसकी सफलता इसी एक बात स साबित हो जाती है कि बहुत बडी सख्या म उसकी नकल की गयी। हम इन अनुसरणकर्ताओ पर, जो साम्यवाद म आस्था प्रकट करते और अपने को साम्यवादी

रहो है कि सार न करते अथवा गवारा न करते ... युद्धों का पुनर्मिलन करने वाले मुगलों के समान आतुर थे लागन की ओर ... में मुगलों के आक्रमण द्वारा की ओर और उसकी म हिन्दुस्तान ... शीघ्र समाकर्षी लागन का आर इंगित करते हैं। इस नाता गर-साम्यवादी ... लागा म मुर्गी का ... अभूतपूर्व था क्योंकि उस समय ... द्वारा ... पाश्चात्य प्रणाली के द्वितीय लागन म परिवर्तित कर दिया।

(ग) मध्यकालिक पाश्चात्य ईसाई जगत से टक्कर

१ क्रूसेडों (जिहादों) का ज्वार भाटा

क्रूसेड शब्द सामान्यत उन पा ... अभियानों के लिए सीमित है जो पास म प्रोत्साहन एवं आचार्यों से एक ईसाई राज्य विजय कर । उसकी महत्ता करते या यरूशलम म पुन एक ईसाई राज्य ... किये जाते थे। परन्तु यहा हम इस शब्द का प्रयोग ... विस्तृत अर्थ म कर रहे हैं जिसमे पाश्चात्य ईसाई जगत् के उन सब युद्धो का समावेश हो जाता है जो उसके इतिहास के मध्ययुगीन अध्याय म उसकी सीमाओ पर स्पेन एव सिसिली म इस्लाम के विरुद्ध या भूत पूर्वी रोम साम्राज्य के प्रतिद्वन्द्वी ईसाई धर्मराज्य के विरुद्ध तथा पूर्वोत्तर सीमा के बाल्टिक बबरो के विरुद्ध हुए थे। इन सब युद्धो को एक शब्द म जिहाद या क्रूसेड कहा जा सकता है क्योंकि योद्धाओं ने बिल्कुल पाखण्डपूर्वक हो यहा बल्कि भावपूर्वक अपने बारे म यह समझ लिया था कि वे ईसाई धर्मजगत् (क्रिश्चियनडम) की सीमाओ को या तो बढा रहे हैं या उसकी रक्षा कर रहे हैं। हम कल्पना करते हैं कि चासर इस विस्तृत अर्थ म शब्द के प्रयोग पर राजी होगा। 'कटरबरी टेल्स' के अपने आमुख (Prolog) म जो शब्द चित्रो की गलरी—चित्रशाला है उसम सामन्त (Knight) का चित्र प्रथम ही है। यह एक ऐसा योद्धा था जिसने अपने यौवनकाल म लायस तथी एव प्रशियस म युद्ध किया होगा किन्तु उसके स्रष्टा को कभी यह खयाल नहीं आया कि स्थानीय पाश्चात्य राज्यो के बीच होने वाले ऐसे पारिवारिक झगडा से उसे सम्बद्ध करे। इसकी जगह उसे ऐसे रूप म चित्रित किया गया है माना वह ग्रनेड (ग्रनाडा) से प्रूस और लेतोव (रूस प्रशा एव लिथुवेनिया) तक पाश्चात्य ईसाई धर्मजगत् की सम्पूर्ण सीमाओ पर लडता रहा हो और यद्यपि चासर न उसे वस्तुत क्रूसेडर (जिहादी) के नाम से अभिहित नहीं किया है किन्तु स्पष्टत यह उसे एक ऐसा योद्धा समझता है जो विशिष्ट ईसाई युद्धों म लगा रहा। अन्य सम्बद्ध सभ्यताओ पर आक्रामक पाश्चात्य ईसाई धर्मजगत की टक्कर से पड़े प्रभाव का विवेचन करने के पूर्व फिलहाल हमारी चिन्ता यह है कि प्रसार के लिए किये जाने वाले इन मध्ययुगीन युद्धो की सामान्य धारा के बारे म कुछ विचार दे दें।

ईसाई सवत् की ग्यारहवी शती म पाश्चात्य समाज का मध्ययुगीन विप्लव आश्चर्यजनक रूप से उतना ही आकस्मिक था जितना पन्द्रहवी एव सोलहवी शतियो के मोड पर हुआ आधुनिक विप्लव था। और मध्ययुगीन पाश्चात्य दुस्साहस का

आनुषगिक विनाश भी उतनी ही शीघ्रता के साथ सामने आया जितनी शीघ्रता के साथ उसकी आरभिक सफलता सामने आयी थी। मान लीजिए कि चीन से आने वाले एक बुद्धिमान् पर्यवेक्षक ने ईसाई सवत् की तेरहवी शती के मध्यवर्षों मे अपने यहा से पुरानी दुनिया के दूसरे छोर तक पर्यटन किया हो तो वह भी पहिले से यह देख सकने मे समर्थ नही हो सकता था कि पाश्चात्य प्रवेशकर्त्ता इस जमाने मे दारुल इस्लाम और रोमानिया (प्राच्य रोम साम्राज्य के परपरानिष्ठ ईसाई राज्यक्षेत्र) से निकाल ही जाने वाले हैं। इसी प्रकार मान लो कि वह दृश्य पट पर तीन सौ वर्ष पूर्व अवतीर्ण हुआ तो भी वह यह न देख सकता कि वही दोनो विश्व उस सभ्य आगन्तुक के विश्वव्यापी (Oikoumene) पश्चिमी सीमान्त के अन्त तक स्पष्टत पिछड़े हुए एव असभ्य देशवासियो द्वारा बस आक्रान्त एव पददलित होने वाले ही हैं। ज्योही वह स्नेना यूनानी ईसाई समाजो को एक दूसरे से अलग करके पहिचानना सीख लेता तथा ज्योही वह उन्हे उस सीरियाइ समाज से अलग करके पहिचानना जान चुकता जो इस्लाम के ईसाई अपधर्म (Christian heresy) के अतिरिक्त और सब धर्मों का ग्रहण कर लेने के उपक्रम मे था त्योही सभवत वह इस निष्कर्ष पर पहुच जाता कि भूमध्य जलद्रोणी तथा उसके अन्तर्देशो (hinterlands) के नियत्रण के इन तीन प्रतिद्वन्द्वियो मे परपरानिष्ठ ईसाई धर्मजगत् के पक्ष मे सर्वोत्तम और पाश्चात्य ईसाई जगत् के लिए सबसे कम सभावनाएं हैं।

सम्पत्ति शिक्षा प्रशासकीय कुशलता तथा सामरिक सफलता की तुलनात्मक स्थिति की विविध परीक्षाओ की दृष्टि से परपरानिष्ठ ईसाई जगत निश्चय ही मध्य दशम शताब्दी के पर्यवेक्षक की सूची मे शीर्ष स्थान पर और पाश्चात्य ईसाई जगत् सबसे नीचे होता। उस समय पाश्चात्य ईसाई जगत् एक ऐसा कृषक-समाज था जिसमे नागरिक जीवन विजातीय या बाहरी था तथा मुद्रा एक दुर्लभ वस्तु थी जब कि समकालिक परपरानिष्ठ ईसाई जगत् मे समृद्धिशील व्यवसाय एव उद्योग पर आश्रित एक मुद्रा अर्थ व्यवस्था (money economy) प्रचलित थी। पाश्चात्य ईसाई जगत मे केवल पादरी लोग साक्षर थे जबकि परपरानिष्ठ ईसाई जगत मे उसी आठवी शती मे लिओ साइरस ने जो नवीन रोमी साम्राज्य निर्मित किया था वह तब भी फूल फल रहा था और उन भूभागो को फिर से जीतना भी उसने शुरु कर दिया था जिन्हे मूल रोमी साम्राज्य ने सातवी शती मे आदिकालिक मुस्लिम अरब विजेताओ के हाथ खो दिया था।

जब मुस्लिम विजय की धारा भूमि पर से हटने लगी तब भी उसके बहुत समय बाद तक सागर मे आगे बढना उसने जारी रखा और दोनो ईसाई दुनियाओ के साथ नवी शताब्दी मे मगरिबी[1] मुस्लिम जलदस्युओ ने बडा बुरा व्यवहार किया

[1] मगरिब का अर्थ अरबी में पश्चिम होता है। यह अफ्रीका के उस पश्चिमोत्तर स्कन्ध का अरबी नाम है जिसमे उत्तरकाल के ट्यूनीशिया अल्जीरिया एव मोरक्को शामिल हैं। यह अफ्रीका माइनर (लघु अफ्रीका) वस्तुत एक द्वीप है,

आनुषगिक विनाश भी उतनी ही शीघ्रता के साथ सामने आया जितनी शीघ्रता के साथ उसकी आरभिक सफलता सामने आयी थी। मान लीजिए कि चीन से आने वाले एक बुद्धिमान पर्यवेक्षक ने ईसाई सवत की तेरहवी शती के मध्यवर्षों मे अपने यहा से पुरानी दुनिया के दूसरे छोर तक पर्यटन किया हो तो वह भी पहिले से यह देख सकने मे समर्थ नही हो सकता था कि पाश्चात्य प्रवेशकर्त्ता इस जमाने मे दारुल इस्लाम और रोमानिया (प्राच्य रोम साम्राज्य के परपरानिष्ठ ईसाई राज्यक्षेत्र) से निकाल ही जाने वाले हैं। इसी प्रकार मान लो कि वह दृश्य पट पर तीन सौ वर्ष पूर्व अवतीर्ण होता तो भी वह यह न देख सकता कि वही दोनो विश्व उस सभ्य आगन्तुक के विश्व व्यापी (Oikoumene) पश्चिमी सामान्त के अब तक स्पष्टत पिछडे हुए एव असभ्य देशवासियो द्वारा बस आक्रान्त एव पददलित होने वाले ही हैं। ज्योही वह दोनो यूनानी ईसाई समाजो को एक दूसरे से अलग करके पहिचानना सीख लेता तथा ज्योही वह उन्हे उस सीरियाइ समाज से अलग करके पहिचानना जान चुकता जो इस्लाम के ईसाई अपधर्म (Christian heresy) के अतिरिक्त और सब धर्मों को ग्रहण कर लेने के उपक्रम मे था त्योंही सभवत वह इस निष्कर्ष पर पहुच जाता कि भूमध्य जलद्रोणी तथा उसके अन्तर्देशो (hinterlands) के नियन्त्रण के इन तीन प्रतिद्वन्द्वियो मे परपरानिष्ठ ईसाई धर्मजगत के पक्ष मे सर्वोत्तम और पाश्चात्य ईसाई जगत के लिए सबसे कम सभावनाए हैं।

सम्पत्ति, शिक्षा प्रशासकीय कुशलता तथा सामरिक सफलता की तुलनात्मक स्थिति की विविध परीक्षाओ की दृष्टि से परपरानिष्ठ ईसाई जगत् निश्चय ही मध्य दशम शताब्दी के पर्यवेक्षक की सूची मे शीर्ष स्थान पर और पाश्चात्य ईसाई जगत् सबसे नीचे होता। उस समय पाश्चात्य ईसाई जगत एक ऐसा कृषक-समाज था जिसमे नागरिक जीवन विजातीय या बाहरी था तथा मुद्रा एक दुर्लभ करसी था, जब कि समकालिक परपरानिष्ठ ईसाई जगत् मे समृद्धिशील व्यवसाय एव उद्योग पर आश्रित एक मुद्रा अर्थव्यवस्था (money economy) प्रचलित थी। पाश्चात्य ईसाई जगत् मे केवल पादरी लोग साक्षर थे जबकि परपरानिष्ठ ईसाई जगत् मे उसी आठवी शती मे लिओ साइरस ने जो नवीन रोमी साम्राज्य निर्मित किया था वह तब भी फूल फल रहा था और उन भूभागो को फिर से जीतना भी उसने शुरू कर दिया था जिन्हे मूल रोमी साम्राज्य ने सातवी शती मे आदिकालिक मुस्लिम अरब विजेताओ के हाथ खो दिया था।

जब मुस्लिम विजय की धारा भूमि पर से हटने लगी तब भी उसके बहुत समय बाद तक सागर मे आग बरसना उसने जारी रखा, और दोनो ईसाई दुनियाओं के साथ नवी शताब्दी मे मगरिबी[1] मुस्लिम जलदस्युओ ने बडा बुरा व्यवहार किया

[1] मगरिब का अर्थ अरबी में पश्चिम होता है। यह अफ्रीका के उस पश्चिमोत्तर स्कध का अरबी नाम है जिसमे उत्तरकाल में ट्यूनीशिया, अल्जीरिया एव मोरक्को शामिल हैं। यह अफ्रीका माइनर (लघु अफ्रीका) वस्तुत एक द्वीप है,

किन्तु परपरानिष्ठ ईसाई जगत् ने उनकी चुनौती का जवाब उनसे क्रीट छीन लेकर दिया जबकि पाश्चात्य ईसाई जगत् के द्वारा इस प्रकार का जवाब दिये जाने का कही कोई उल्लेख नही है। बल्कि, इसके प्रतिकूल मुस्लिम लुटेरे खुश्की के रास्ते भी उन्हें रिवेरा से घकेलते जा रहे थे और आल्प्स के दर्रों मे घुस गये थे।

अपने काल्पनिक चीनी पर्यवेक्षक से हम जिस सूक्ष्म दृष्टि की आशा कर सकते हैं उसस अधिक गहरी दृष्टि से देखने पर निश्चय ही कुछ आधारभूत तथ्य सामने आ सकते हैं। ध्यान देने पर उसने देखा होता कि परपरानिष्ठ ईसाई जगत ने, जिसने भूमध्य (मडीट्रेनियन) म ऐसा तुच्छ प्रदर्शन किया था दूसरे क्षेत्रो मे अपने स्कन्डिनेवियाई एव मगयार बर्बर आक्रमणकारियो के विरुद्ध वीरतापूर्ण सघर्ष किया। मुसलमानो के विरुद्ध भी पाश्चात्य ईसाई जगत् की सीमाओ ने आइबेरियाई प्रायद्वीप मे अपनी लम्बी धीमी यात्रा शुरू कर दी थी और आगे बढने लगी थी। अपने प्रतिद्वन्द्वियो मे से प्रत्येक के प्रतिकूल दसवी शती की पाश्चात्य ईसाई दुनिया एक ऐसी सभ्यता थी जो विकास की अवस्था मे थी। उसका आध्यात्मिक गढ वैराग्यवाद (Monosticism) था तथा वरागी जीवन के बेनेडिक्टाई (बेनेडिक्टाइन) मार्ग का दसवी शती का क्लूनियाई (Cluniac) कार्याकल्प बाद के समस्त धार्मिक वा लौकिक पाश्चात्य सामाजिक सुधारो का मूलाधार था।

फिर भी दसवी शती के पाश्चात्य ईसाई जगत् मे जीवन के ये लक्षण ग्यारहवी शताब्दी म उसके अन्दर दीख पडने वाली पाश्चात्य ऊर्जा के आश्चर्यजनक विस्फोट पर पर्याप्त प्रकाश डालने म असमर्थ हैं—एक ऐसा विस्फोट जिसमे दो पडोसी समाजो के विरुद्ध आक्रमण का आरम्भ उसकी अपेक्षा कम सजनात्मक एव कम प्रशसनीय कारवाइयो म से एक था। पाश्चात्य ईसाइयो ने नार्मण्डी एव डेनला की स्कन्डिनेवियाई बस्तियो के लोगों का धर्म परिवर्तन करके अपना चमत्कारिक क्रम जारी रखा। यही नहीं उन्होंने स्कन्डिनेवियाई युद्ध पिपासु दलो को उनके मूल रूप म ही अपने धर्मसम्प्रदाय म लाने म सफलता प्राप्त की। इसी प्रकार हगरी और पोलैण्ड के बबरो को भी उन्होंने अपने धर्म म मिला लिया। वरागी जीवन के क्लूनियाई सुधार ने पोप के नेतृत्व म सम्पूर्ण ईसाई पौरोहित्य प्रथा को हिल्डरब्रडी (हिल्डरब्रडाइन) सुधार की ओर अग्रसर किया। आइबेरी प्रायद्वीप म प्रगति की वृद्धि के ही समानान्तर दक्षिण इटली म प्राच्य रोमी साम्राज्य के उपनिवेशों को विजय कर लेने का भी घटना है। उसने सिसिली के मुस्लिम आधिपत्य को भी चुनौती दी। इसी प्रकार एड्रियाटिक को पार कर प्राच्य रोमी साम्राज्य के हृदयस्थल की ओर भी अभियान किया—यद्यपि वह निष्फल रहा। प्रथम क्रूसेड या जिहाद (१०९५ ई०) के साथ एक ऐसा परमोत्कर्ष अथवा विजय इस्लाम की कीमत पर एन्तिओक एव एडेसा (फुरात के पार) म तक

क्योंकि हमारा मतलब इस उत्तर-पश्चिमीय भूखण्ड (अफ्रीका प्रायर—मुख्य अफ्रीका) मे उतना नहीं ज्यादा प्रभावशाली का मैं अलग करना है जितना भूमध्य सागर उस यूरोप से अलग करता है

यरूशलेम एव आजला (अकाबा खाडी के मुहाने पर जो लाल सागर मे खुलता है) तक सीरिया मे पाश्चात्य ईसाई सामन्ती राज्यो की एक शृखला-सी कायम कर दी।

भूमध्य जलद्रोणी मे इस मध्यकालीन पाश्चात्य ईसाई प्राधान्य का अनुवर्त्ती पतन भी हमारे सुदूरपूर्वीय पर्यवेक्षक को कुछ कम आश्चयजनक न लगता यदि वह प्रथम क्रूसेड के डेढ सौ वष वाद इस दृश्य का पुनरावलोकन कर सकता। उस समय तक पाश्चात्य आक्रमणकारियो ने सीरिया स्थित अपनी सम्पूण अरक्षणीय चौकियो को खो दिया था। दूसरी ओर आइबरी प्रायद्वीप मे मुस्लिम राज्य क्षीण होकर ग्रनाडा के इर्दगिर्द एक घेर (Enclave) मात्र रह गया और पाश्चात्यो ने सीरिया म हुई अपनी क्षतियो के बदले प्राच्य रोमी साम्राज्य के यूरोपीय उपनिवेशो को आक्रान्त एव विजय करके अपने को सन्तोष दे लिया। कुस्तुनतुनिया के रोमी सम्राट के नाम और पद पर एक फ्रैंकी राजकुमार दखल किये जा रहा था। बहुत दूर पूव मे एक महान मगोल साम्राज्य उठ खडा हुआ था और पाश्चात्य ईसाई स्वप्नद्रष्टा यह स्वप्न देख रहे थे कि इस नवीन विश्वशक्ति के शासको को ईसाई धम की पाश्चात्य शाखा म धम परिवर्तित करके इस्लाम को पीछे म धर पकडें। पोप द्वारा भेजे गये मिशनरियो ने कराकारम तक की लम्बी यात्राए की। मार्कोपोलो भी शीघ्र ही कुबला खा के दरबार म पहुचने के लिए चल पडा।

परन्तु इस साहस का कुछ भी परिणाम न हुआ और अपने काल्पनिक चीनी पयवेक्षक को हमने जो तिथि प्रदान की है उसके बाद शीघ्र ही कुस्तुनतुनिया क लातीनी साम्राज्य का हिलता हुआ महल ढह गया (१२६१ ई)। यूनानी परपरानिष्ठ ईसाई साम्राज्य पुन कायम हुआ यद्यपि वहा भी भविष्य यूनानियो के हाथ नही बल्कि ओथमन तुर्कों के हाथ म जाने वाला था। अब पाश्चात्य ईसाई जगत ने अपनी आक्रामक शक्तिया अपनी पूर्वोत्तर सीमा की ओर फेरी। टीटानी (Titanic) सामन्त सीरिया से भाग खडे हुए और व्रात्य प्रशन, लन एव इस्ट लोगो की कीमत पर विस्चुला तट पर अपनी किस्मत आजमाने पहुच गये। केवल आइबेरी प्रायद्वीप दक्षिण इटली एव सिसली मे मध्य युग के आरम्भ मे हुई प्रगति को उसके अन्तिम दिनो तक बढाया एव रक्षित रखा जा सका। मध्ययुगीन पाश्चात्य ईसाई जगत् का दक्षिण एव पूव की ओर अपनी सीमाए बढाने और उन सब भूखण्डो को ले लेने का प्रयत्न करना, जो कभी उसके यूनानी पूवजो के अधिकार म थे, असफल हो चुका था। यदि कोई धन, जनसख्या एव बुद्धिमत्ता म मध्ययुगीन पाश्चात्य ईसाई जगत् के भौतिक साधनो पर विचार करे तो दूसरे किसी परिणाम की आशा भी तो नही की जा सकती थी।

(२) मध्यकालीन पश्चिम और सीरियाई जगत

जब ईसाई सवत की ग्यारहवी शती म मध्यकालीन पाश्चात्य ईसाइयो ने सीरियाई जगत् पर अपना धावा शुरू किया तो उन्हें मालूम हुआ कि उसके निवासी दो मजहबो की निष्ठा म विभाजित हैं—एक ओर इस्लाम है दूसरी ओर ईसाई अपधम के व विविध रूप—मोनोफाइसाइटवाद नस्तोरीवाद एव अन्य—हैं जिन्हे सीरियाइयो द्वारा ईसाई धम का अ-यूनानी रूप देने का प्रयत्न कहा जा सकता है। अरबो-द्वारा

विजय क बाद प्रथम युग मे इन विजेता बबरो का विशिष्ट धम इस्लाम ही था —ठीक वस ज्से रोम साम्राज्य के विविध प्रान्तो क टीटानी विजेताओ मे से अधिकाश का धम एरियन (Arianism) था । आठवी नती की मुसलमानी विजय एव ग्यारहवी नती के अन्त म होन वाल प्रथम क्रूसड—जिहाद के बीच के काल मे अनेक कारणो स न्न दास जातिया म बराबर इस्लाम ग्रहण करने की प्रवृत्ति बढती गयी किन्तु इस युग के अत म भी वह पूणता को नही पहुच पायी थी । जिहादा का प्रभाव यह पडा कि वह बहाव एकदम भूभ्रन्श म बन्ल गया । अरबी एव ईरानी नवोत्पन्न इस्लामी समाज मृत सीरियाई जगत क विध्वस स उदित हुए ।

इसका विचार करत हुए कि मुसलमान एव ईसाई आधिकारिक तौर पर एक दूसरे की दृष्टि म नास्तिक (unbelievers) थे और ये दोना कट्टर अपवजनकारी *मनोवृत्तिप्रधान (exclusive minded) जूडाई (Judiac) धम कालक्रमानुसार एक* दूसर क प्रति युद्धरत थे हम यह देखकर आश्चय होता है कि इनके सनिको म एक दूसरे क लिए इतने सम्मान का भाव कसे आ गया था । इसी प्रकार उस सास्कृतिक पोषण का परिणाम एव महत्त्व देखकर भी हम आश्चय होता है जिस मध्ययुगीन पाश्चात्य ईसाई जगत न एक ऐसे सीरियाई स्रोत स ग्रहण किया था जिसके द्वारा अरबी काव्य की प्राणभावना एव रचना प्रक्रिया उनके पास तक रोमाक भाषा म पहुची थी—यह काय तद्युगीन फरासीसी (प्रावेंकी) चारणों-द्वारा सभव हुआ था । इसके *अलावा यूनानी दशन के विचार मुसलमान विद्वानो-द्वारा अरबी भाषा म लाय गय थे ।*

तलवार की दुनिया म शानो विरोधी दलो क वीरो के बीच जो सहानुभूति की भावना थी उसका उदय अप्रत्याशित बधुता क आविष्कार स हुआ । एदुलेशिया के समर क्षेत्र म अन्दलूसी मुसलमान तथा सामान्त के उस पार क आइबेरी ईसाई बबर तब एक दूसरे के प्रति उसस कही ज्यादा घनिष्ठ भ्रातृत्व का अनुभव करते थ जितना आईबरी ईसाई पाइरनीज क उस पार के अपन सहधर्मियों क प्रति अथवा आइबरी मुसलमान अपन उत्तरी अफ्रीका क सहधर्मियो क प्रति अनुभव करत थे । जिन तुर्की बबरो न सनाथा क राज्य को पदलित करन क काय म इस्लाम धम स्वीकार कर लिया था व सीरिया क समर क्षेत्रा म अपन उन शत्रु समकालीन ईसाई सामतो क प्रति सहानुभूतिपूण न थ जो रोमन साम्राज्य को दलित करते समय ईसाई बन अपन बबर पूवजो स सभ्यता क क्रम म कुछ ऊच न थ । जो नामन पश्चिमी आक्रमण क अगुआ थ व भी सलजूको की भाति ही बबरो म हाल म धम परिवतन करक आय थ ।

कलम की दुनिया म जिहादियो (क्रूसडरो) न सीरिया म जो अस्थायी विजय प्राप्त की थी उसन तथा उसस भी ज्यादा सिसली एव एँदुलेशिया म शान्नदारनाम की शासन पर प्राप्त उनकी विजयों न एक (विद्या) प्रसारक कड़ी का रूप ग्रहण कर लिया जिनके द्वारा मिस्लाम सीरियाई जगत् क आध्यात्मिक कोष मध्ययुगीन पाश्चात्य ईसाई जगत तक पहुच सके । धर्मिक सस्थाओ एव बौद्धिक जिज्ञासा क अनुकूल वातावरण न इस कारण सलजूको एव शासको क प्रति ईसाई विजेताओ को कुछ समय क लिए

एकान्तिक जीवन बिताना पड़ा। व्यापारियों ने उसे दूर लूटा। मदिरा अपेय थी और भोजन अखाद्य था। रक्तपीडित यूनानी बिशप समान रूप से असत्कारशील थे। शय्याएं पत्थर की भांति कठोर थीं और उन पर न तो दरियां थीं न तकिये थे। विदा होते समय उसने अपने आतिथेयों से खूनी लड़का की भांति बदला लिया और मकान की दीवारों और टेबुल पर लातीनी भाषा में गाली-गलौज से भरी पटपंक्तियां की लम्बी इबारतें खिचवा दीं जिनमें उसने इस बात पर बड़ा रूप प्रकट किया कि वह अन्तिम बार उस कभी के समृद्ध एवं विकासशील परन्तु इस समय अकाल-पीडित शपथ भंजक मिथ्याभाषी प्रवंचक लुण्ठनकारी, लोभी कृपण, रिक्तमुण्डक नगर को देख रहा है।

ल्यूतप्रद की जो बातचीत सम्राट निकेफोरस और उसके मंत्रियों से हुई उसमें दानों ओर से तिरस्कारात्मक व्यंग्यों की बौछार की गयी। बिशप की सबसे मार्मिक चोट यह थी— यूनानी ही हैं जो अधर्म की सृष्टि करते हैं पाश्चात्य लोग उनका नाश कर देते हैं। इसमें कोई शक नहीं कि बात सच है क्योंकि यूनानी बौद्धिक जीव थे और धर्मविद्या की महत्त्वहीन विवेचनाओं में सदियों से अपने मस्तिष्क का प्रयोग भयावह परिणामों के साथ करते आ रहे थे जब कि लातीनी (लटिन) कानूनी प्राणी थे और उनमें ऐसी बेतुकी बातों के लिए धैर्य नहीं था। ७ जून ९६८ के एक राजकीय भोज में ज्वलनशील शब्द रोमन ने जिसका दावा दोनों साम्राज्य करते थे दोनों ईसाई दुनियाओं के प्रतिनिधियों के बीच सदा धुधुवाते हुए असन्तोष को एक ज्वाला के रूप में प्रज्वलित कर दिया है—

> "निकी फोरोज ने मुझे अपना जवाब देने का अवसर देने से इन्कार कर दिया और अपमानपूर्वक कहा—'तुम लोग रोमन नहीं हो, लोम्बार्ड हो।' वह आगे भी कुछ कहना चाहता था और मुझे उसने चुप रहने का संकेत किया किन्तु अब मैं अपना धीरज खो बैठा और मैदान में उतर आया। मैंने घोषित किया—'यह एक कुख्यात ऐतिहासिक तथ्य है कि जिस रोमुलस के नाम पर रोमन पुकारे जाते हैं, वह भ्रातृहन्ता तथा एक वारांगना का पुत्र था--मेरा अर्थ है कि वह वैध विवाह से पैदा हुआ था—और उसने ऋण न चुकाने वाले ऋणियों, रोमन भगोड़े दासों खूनियों तथा अन्य साघातिक अपराध करने वालों के लिए एक अलसेशिया (Alsatia) का निर्माण किया था। वह इन अपराधियों को आश्रय देता उनकी भीड़ की भीड़ एकत्र करता और उन्हें रोमन नाम से पुकारता था। यही वह श्रेष्ठ आभिजात्य है जिससे तुम्हारे सम्राटगण उत्पन्न होते हैं। किन्तु हम—और हमसे मेरा मतलब है लोम्बार्ड, सैक्सन फ्रांसीसी, लोरेनर बवेरियन, स्वेवियन तथा बर्गंडियन —लोग रोमनों से इतनी ज्यादा घृणा करते हैं कि अपने शत्रुओं के साथ धैर्य खो बैठते हैं—हम केवल एक शब्द बोलते हैं—रोमन! क्योंकि हमारी बोली में यह अकेला ही दुर्नाम, नीचता, कायरता लोभ पतन, असत्य वादिता तथा अन्य सब पापों के सम्पूर्ण समूह को अपने में समेट लेता है।"[1]

[1] ल्यूतप्रदी रिलेशियो द लिगेशन कान्स्तन्तिनोपोलितानां, अध्याय १२

ल्युतप्रद को अपना धीरज खो देने के लिए सम्राट न जा उत्तेजना दी उसने उसके लटिन अतिथि को इस तरह डँस लिया कि उसको टीटानी भापाभापी सभी पाश्चात्यो के साथ एकता की घोषणा करते हुए सम्पूर्ण रोमनों के प्रति सुवनिष्ठ विरोध को व्यक्त करना पडा। एक तदनुवर्त्ती एव अधिक अनुकूल वार्त्तालाप म निकी फोरोन ने लटिन एव टीटन दोनो को शामिल करते हुए फ क शब्द का प्रयोग किया और यह प्रयोग ल्यूतप्रद के अभिव्यक्तिमय उदगार से उचित प्रमाणित हुआ। यद्यपि ल्यूनप्रद प्राचीन शास्त्रीय यूनानी साहित्य के लटिन सस्करण से पूणतया परिचित होने के कारण अपनी बौद्धिक मस्कृति म लातीनिया म लातीनी (लैटिना मे लटिन) था किन्तु एक उभयनिष्ठ यूनानी सास्कृतिक पाश्वभूमि ने उसके हृदय म उस सस्कृति के समकालिक यूनानी उत्तराधिकारियो के प्रति कोई सममोत्रता का भाव नही जगाया था। दसवी शती के इटालवी और दसवी शती के इन यूनानियो के बीच एक चौडी खाई पहिले से ही बन चुकी थी जबकि ल्यूतप्रद एव उसके सक्मन स्वामियो के बीच इस प्रकार की कोई खाई न थी।

ऊपर हमने जो कुछ उद्धृत किया है वह निश्चय ही ल्युतप्रद के व्यक्तित्व पर उतना ही प्रकाश डालता है जितना किसी और ज्यादा महत्वपूण वस्तु पर और सम्राट की उपस्थिति पर उसका भद्दा, परिहासपूण चित्रण और भी प्रकाश डालता है। लोम्बाड बिशप घटिया तन्तु का आदमी था और यदि उसके सामन फेंके हुए मोती केवल इमीटेशन (कृत्रिम) मोती थे तो इस तथ्य की स्थापना करने मे उसने अपन पर भी निश्चय रूप से यथाथ शूकर होने की छाप डाली है। सममामयिक फ्रँकों पर बजन्ताइन समाज की श्रेष्ठता की माप उस वपम्य स की जा सकती है जो ल्यूतप्रद के रिलेशिया और अना कामनना के वस्तुपरक एव विवेक-सम्मत चित्र के बीच दिखायी पडता है। अन्ना कामनना का यह चित्र नामन दुस्साहसी बोहेमुण्ड का है जो श्वणकेशी गौर रग वाला पशु था और जिसकी कलह प्रियता दगाबाजी एव महत्त्वाकाक्षा ने उसके सम्राट पिता को उससे कहीं ज्यादा कष्ट दिया था जितना सम्राट निकी फोरोज ने कभी ल्यूतप्रद एव उसके सैक्सन राजकीय मालिको को दिया होगा। नार्डिक मानव जिसका निर्माण पालीक्लीटस के आचरण नियम के अनुपात की रचना करता था – के इस सुन्दर नमूने की शरीरसम्पत्ति के सूक्ष्म वणन की भूमिका अन्ना ने बडी उदार स्तुति के साथ लिखी है—

> "उसके-जसा दूसरा कोई रोमानिया में दिखायी न पडता था। कोई बबर या यूनानी ऐसा नहीं जो उसकी समता कर सके। वह केवल दर्शनीय चमत्कार ही न था, वह एक पौराणिक व्यक्ति था जिसके केवल वर्णन से आपकी सास रुक जायगी।'

नारी-वाग्मिता के इस विस्फोट का दश उसके पुच्छ भाग म है—

> "उसके हृदय में जो महती भावना उबल रही थी उसके निष्क्रमण का मार्ग प्रकृति ने उसकी वीरभावपूर्ण नासिका को बना रखा था—क्योंकि हमें तो निश्चित रूप से स्वीकार कर लेना चाहिए कि इस मनुष्य की मुखाकृति में कोई

आकर्षक वस्तु अवश्य है—यद्यपि इसके प्रभाव में उस आतंककारी दबाव से बाधा ही पड़ती है जिसे समस्त गठन व्यक्त करने को उतावला हो। एक हिंस्र पशु की निष्ठुरता सारे मनुष्य के ऊपर स्पष्ट अक्षरों में लिखी हुई है उसकी दृष्टि में कुछ ऐसा है जिससे यह प्रकट हो जाता है। उसकी हंसी से, जो दूसरे आदमियों के कानों में शेर की दहाड़ के समान घुमती है, भी यह प्रकट होता है। उसका आध्यात्मिक एवं शारीरिक वर्ण ऐसा है मानो भयानकता एवं कामलिप्सा सदैव के लिए उसमें निरंकुश हो गयी हो तथा ये दोनों भावोद्वेग सनातन रूप में अपनी अभिव्यक्ति खोजते हों।'

अन्ना के समय के इस प्रमुख फ्रैंक के इस मनोरम चित्र के ही समान सजीव फ्रैंक समाज का एक सामूहिक चित्र हमें और मिलता है। इसमें अन्ना ने परंपरानिष्ठ ईसाई जगत् पर प्रथम क्रूसेड के अवतरण की भूमिका दी है—

"असंख्य फ्रैंक सेनाओं के बढ़ते आने के समाचार ने सम्राट एलेक्जियस को अत्यधिक चिंता में डाल दिया। वह फ्रैंकों की अप्रतिरोध्य जल्दबाजी, दिमागी फितूर एवं संकेत ग्राह्यता तथा पश्चिमी बर्बरों की प्राथमिक एवं गौण अन्य दुर्दम विशेषताओं से भली भांति परिचित थे। इसी प्रकार वह इन बर्बरों के कभी तृप्त न होने वाले उस लोभ से भी परिचित थे जिसने इन बर्बरों को इस बात के लिए बदनाम कर दिया था कि किस लापरवाही के साथ वे संधिपत्रों को फाड़ फेंकने के लिए बहाने ढूंढ लेते हैं। यह थी फ्रैंकों की स्थायी ख्याति, और उनके कार्य इसे पूर्णतः सिद्ध करते थे यह घटना तो उससे और भी ज्यादा अपशकुनकारी और भयानक सिद्ध हुई जितनी अपेक्षा की जाती थी। मालूम यह हुआ कि एड्रियाटिक के पश्चिम तट एवं जिब्राल्टर जलडमरूमध्य के बीच रहने वाले बर्बरों के सब कबीलों-सहित समस्त पश्चिम ने एक सामूहिक प्रवास आरम्भ कर दिया है और सामान सहित यूरोप के मध्यवर्ती भागों से होते हुए एशिया की ओर यात्रा पर चल पड़े हैं।"

इस प्रथम क्रूसेड के इधर से निकलने के कारण सब से ज्यादा मुसीबत जो सम्राट एलेक्जियस को भोगनी पड़ी यह थी कि इन अनचाहे मूढ़ एवं भावशून्य आगंतुकों ने एक व्यस्त प्रशासक के मूल्यवान समय पर बार-बार भेंट के लिए आ आकर अत्यधिक बोझ डाला।

"एलेक्जियस ने नियम-सा बना लिया है कि वह उषा के आगमन के साथ या कम से कम सूर्योदय के समय से, ही राजसिंहासन पर बैठ जाते हैं और यह घोषित करा देते हैं कि कोई भी पाश्चात्य बर्बर, उनसे मिलना चाहे सप्ताह में हर रोज, बिना किसी प्रतिबंध के उनके हुजूर में उपस्थित हो सकता है। उनका उद्देश्य यह था कि उन लोगों को अपने निवेदन सामने रखने का अवसर दिया जाय, बाह्य उद्देश्य यह था कि उनके साथ वार्तालाप के कारण जो विविध अवसर मिलते हैं उनके द्वारा वह उन्हें अपनी नीति के पक्ष में प्रभावित कर सकेंगे। इन पाश्चात्य बर्बर सामंतों के कुछ कवच राष्ट्रीय स्वभाव हैं—जिस

वासना का भूत उन पर सवार हो जाय उसकी पूर्ति में एक अविनयशीलता एक जल्दबाजी, एक प्रलुब्धता तथा आत्मानुशासन का अभाव—जिनमें वे ससार में सबसे आगे हैं। इसीलिए उन्होंने सम्राट की सुलभता का दुरुपयोग करने में स्वभावत अनुशासनहीनता का परिचय दिया।

"प्रत्येक सामत, सम्राट के सामने जाते समय, अपने साथ मनचाही सख्या मे पायद ले जाता, दूसरा पहिले का और तीसरा दूसरे का पदानुसरण करता—यहा तक कि लम्बी पक्ति सी बन जाती थी। इससे भी बुरा यह था कि जब वे सम्राट के सामने जाते तो अपनी बात क लिए समय की कोई सीमा नहीं निर्धारित करते थे—जसा कि ऐटिक वक्ता अपने बारे मे करते थे। कोई भी ऐरा गरा नत्थू खरा सम्राट से अपनी बातचीत के लिए जितना भी चाहे समय लेता था। जसे कि वे थे—अपनी असामान्य रूप से चुलबुलाती जिह्वा और सम्राट के प्रति अपनी सम्मान हीनता, समय के प्रति लापरवाही, उपस्थित अधिकारियों के असन्तोष के प्रति भावना का अभाव—के कारण अपनी पक्ति में खड़े दूसरे लोगों के लिए भी समय छोडने का मानों कोई विचार ही नहीं करता था, वे केवल बात करते जाते थे और अनवरत मांगें पेश करते जाते थे।

"पाश्चात्य बबरों के वार्तालाप का वाकचापल्य लोभपरायणता तथा तुच्छता निश्चय ही राष्ट्रीय चरित्र के समस्त छात्रों को ज्ञात हैं, किन्तु जिन लोगों को उक्त अवसरों पर उपस्थित रहने का दुर्भाग्य सहन करना पड़ा है उन्हें प्रत्यक्ष अनुभव ने पाश्चात्य बबरों क चरित्र के विषय म और भी विशद ज्ञान प्रदान किया है। जब कायक्रम पर सध्या का पर्दा गिर पडता तब अभागे सम्राट—जिन्होंने अपना अनशन तोडे बिना सारे दिन श्रम किया है—अपने सिंहासन से उठते और अपने निजी कक्षों की दिशा में गमन करने का सकेत करते, किन्तु यह विनम्र सकेत भी बबरो से तग किये जाने से उन्हें मुक्ति न दे पाता। वे एक दूसरे पर वरीयता प्राप्त करने के लिए मक्कारी करते जाते—और यह सब सिर्फ उन लोगों के द्वारा ही नहीं किया जाता था जो पक्ति में भेंट करने से बच जाते थे बल्कि जो दिन के समय भेंट कर चुके होते थे वे फिर लौटकर आ जाते और सम्राट से पुन बातचीत करने के लिए एक पर एक बहाने ढढ़ लेते थे, उधर उस गरीब (सम्राट) को अपने पाव पर खड़े-खड़े चारों ओर फली बबरो की भीड़ के कोलाहल को सहन करना पडता था। यह कर्त्तव्यनिष्ठ अ.लेट जिस सहिष्णुता एव प्रसन्नता से भीड़ के प्रश्नों का जवाब देता, वह एक देखने योग्य दृश्य होता था, फिर भी इस अनवसरिक वार्तालाप का कोई अन्त न होता था क्योंकि जब भी कोई राजप्रतिहारी बबरों को चुप कराने की चेष्टा करता तो उलटे वही सम्राट द्वारा चुप कर दिया जाता था क्योंकि सम्राट फ्रैंकों के झट बिगड़ जाने वाले स्वभाव मे परिचित थे और वह डरते थे कि कहीं कोई छोटी सी उत्तेजना एक ऐसा विस्फोट न पदा कर दे जिससे रोम साम्राज्य को गभीरतम क्षति पहुँचे।'

जहा दोनो ओर इस प्रकार की गभीर घृणा का भाव था वहा एक-दूसरे म सास्कृतिक प्रभाव ग्रहण करने की क्या सभावना हो सकती थी ? इतने पर भी करामीसा वजताइन भूखण्डों मे क्रूसेड के कुछ न कुछ फल तो निकले ही इस प्रकार उसके कारण सास्कृतिक पदार्थों म फ्रैंको और मुसलमानो क बीच का विनिमय चलता रहा।

यूनानी साहित्य भाण्डार से अरबी म जो अनुवाद हुए थे उनसे मुसलमानो से दार्शनिक एव वैज्ञानिक मसाला प्राप्त कर मध्ययुगीन पाश्चात्य ईसाइयो न अपनी मूल भाषाओ मे सुरक्षित सम्पूर्ण प्राचीन साहित्य (क्लासिक्स) स अपना यूनानी पुस्तकालय पूरा कर लिया। पश्चिम पर पूर्व का सास्कृतिक ऋण और भी अप्रत्याशित तरीके से था। तेरहवी शती मे जिन फ्रैंकों (फ्रैंकिश विजेताओ) ने कुस्तुनतुनिया और मोरिया पर विजय प्राप्त की थी उन्होने अपनी यूनानी प्रजाओ के प्रति वसी ही अनिच्छुक किन्तु उल्लेखनीय साहित्य-सेवा की जो अपने अभाव म चीन के समसामयिक मगोल विजेताओ ने चीनियो के प्रति की थी। चीन मे कनफ्यूशी शास्त्र का जो अस्थायी पराभव हुआ उसने जीवित देशी भाषाओ के दूबे हुए लोकप्रिय साहित्य को चीनी सामाजिक जीवन की उस सतह तक उठने का एक विलम्बित अवसर प्रदान किया जिस तक पहुचने और अपनी जीवनी शक्ति का ऐसा चुटीला प्रदर्शन करने का मौका उसे कनफ्यूशी भावना वाले सिविल अधिकारियो क सास्कृतिक दमनपूर्ण शासन मे कभी नही मिला था। बात यह थी कि ये कनफ्यूशी भावना वाले अधिकारी गण प्राचीन सिनाई क्लासिक के अचिकित्स्य रूप से निष्ठावान दास थे। वजर व्याप्त परपरानिष्ठ ईसाई जगत् मे भी उसी कारण ने लोकप्रिय गीतिकाव्य एव महाकाव्य की विकास प्रक्रिया म कुछ छोटे पमाने पर वही प्रभाव पदा किया। 'दि क्रानिकल्स आव दी मोरिया' के मोरियाती फ्रैंक (Moreot Frankish) ग्रथकार ने अपने को देशी यूनानी अक्षरबल युक्त छन्दो मे व्यक्त किया। यह क्लासिकी शृखलाओ से सर्वथा मुक्त था तथा प्रारम्भिक उन्नीसवी शती के यूनानी पद्य की एक झलक देता था।

मध्ययुगीन पाश्चात्य ईसाई जगत तथा समसामयिक प्राच्य परपरानिष्ठ ईसाई जगत के बीच जिन उपहारो का परस्पर आदान प्रदान हुआ उनमे सबसे महत्त्वपूर्ण प्राच्य रोमी साम्राज्य मे सन्निविष्ट सर्वसत्तापूर्ण राज्य की वह राजनीतिक सस्था थी जो पाश्चात्य उत्तराधिकारी राज्य मे एक जीवित सस्था की तरह पश्चिम को सप्रेषित की गयी। यह वही उत्तराधिकारी राज्य था जो ग्यारहवी शती मे नामन तलवारो से निर्मित किया गया था और जिसमे प्राच्य रोम साम्राज्य के अपूलिया एव सिसली स्थित पहिले वाले प्रदेश थे। फ्रेडरिक द्वितीय हाहेनस्टाफेन के व्यक्तित्व म समाहित यह राज सम्पूर्ण पाश्चात्य आशा के लिए ज्योतिरय सा बन गया—फिर चाहे वे उसके प्रति प्रशसा से भरी हो या घृणा से। इस चक्रवर्ती (फ्रेडरिक द्वितीय) ने अपनी नामन माता के कारण सिसली का राज्य तो प्राप्त किया ही था वह पाश्चात्य रोमी सम्राट भी बन गया। फिर वह प्रतिभाशाली भी था। इस विशाल निरकुशतावाद की

उत्तरकालिक सफलताओ तथा ईसाई सवत की बीसवी शती तक उसकी सवसत्तात्मक अभिव्यक्तियो के विषय मे हम इस अध्ययन मे पहिले ही लिख चुके हैं।

(ग) प्रथम दो पीढ़िया की सभ्यताओ के बीच टक्करें

१ सिकन्दरोत्तर यूनानी सभ्यता के साथ टक्करें

यूनानी इतिहास की सिकन्दरोत्तर यूनानी विचारदृष्टि में सिकन्दर की पीढ़ी के साथ अतीत से नाता टूटा और एक नया युग उतनी ही तेजी से आया जितनी तेजी से वह आधुनिक पाश्चात्य इतिहास व आधुनिक पाश्चात्य विचार मे आया — 'मध्यकालिक' युग से 'आधुनिक' का यह परिवतन पद्रहवी-सोलहवी शतियो के मोड पर हुई महत्त्वपूर्ण नयी प्रवृत्तियो के पुज के कारण उल्लेखनीय है। इतिहास के इन दोनो नये अध्यायो म वतमान की तुलना मे अतीत के मूल्य ह्रास का सबसे स्पष्ट कारण आकस्मिक शक्ति-वृद्धि की चेतना थी। इस शक्ति-वृद्धि म मनिक विजयो-द्वारा व्यक्त दूसरे मानव प्राणियो पर प्रभुत्व तथा भौगोलिक खोजो एव वनानिक आविष्कारों-द्वारा व्यक्त भौतिक प्रकृति पर प्रभुत्व दोनो सम्मिलित हैं। एकेमीनियाई को पराजित करने का मसिडोनी चमत्कार उतना ही आह्लादकारी था जितना इकाओ को उखाड फेंकने का स्पेनी चमत्कार था। किन्तु इतना ही सब कुछ न था। यदि तीसरी शती ईसा-पूव एक यूनानी या ईसाइ सवत् की सोलहवी शती को पछाही (वेस्टनर) से उस सवदन (sensation) का वणन करने को कहा जाता जिसके द्वारा एक नवीन युग सम्बन्धी उसकी चेतना जीवित रही तो शायद वह अपने समाज के मानसिक क्षितिज के विस्तार की भावना की अपेक्षा अपने समाज की भौतिक शक्ति वृद्धि की भावना को कम महत्त्व देता। अभी तक के औपाख्यानिक भारत की खोज के बाद मसीडोनियो ने एक महाद्वीप का उद्घाटन करते हुए उसकी ओर रास्ता बनाया तथा पाच्युगीजा ने समुद्र पर आधिपत्य करके उधर प्रस्थान किया। भारत की खोज के इस सवेदन मे शक्ति की भावना इसलिए और बढ गया कि इन दोना अवसरों पर एक चमत्कारिक विदेशी दुनिया के आविर्भाव क कारण यूनानी जगत मे, तथा यूनानी सस्कृति के रिनसा (युगान्तरकारी परिवत्तन) के कारण पाश्चात्य जगत म जो सवेदन उत्पन्न हुआ उसम भी नवीन ज्ञान जनित शक्ति की भावना इसी प्रकार एक बेबसी की अनुभूति क कारण धूमिल पड गयी। बेबसी की यह अनुभूति मानव के आपक्षिक अज्ञान के उस स्मरण से उत्पन्न हुई थी जिसका आना जगत के सम्बन्ध मे मानव की प्रत्येक ज्ञानवृद्धि के साथ अवश्यभावी है।

इन दो युगो की तुलना और आगे जा सकती है। हम जानते हैं कि आधुनिक पश्चिम का सघात विश्व व्यापक रहा है और हम बिना विचारे यह मान ले सकते हैं कि इस विषय म सिकन्दरोत्तर यूनानी सभ्यता अपेक्षाकृत गरीब सी दीखती है। किन्तु बात वैसी नही है। सिकन्दरोत्तर यूनानी सभ्यता का अन्तिम सघष सीरियाई हित्ती (हिट्टाइट), मिस्री बबिलोनी इडिक एव सिनाई (चीन) समाजो के साथ हुआ — मतलब सभ्यता के क्रम मे बढते जाने वाले और पुरानी दुनिया मे उस समय फले हुए प्रत्येक समाज के साथ।

किन्तु यहाँ आकर हम एक महत्त्वपूर्ण विभेद पर भी ध्यान देते हैं । उनने सम कालिकों पर आधुनिक पश्चिम के सघात का अध्ययन करने में हम अवगत आये हैं जब हमे प्रारंभिक आधुनिक युग, जिसम पश्चिम अपन धर्म-शासित अपनी सम्पूर्ण सस्कृति को प्रकाशित कर रहा था, और उस उत्तरकालिक आधुनिक युग म भेद करना पड़ा है जिसमें पश्चिम ने अपनी उस संस्कृति के नौतिक तत्त्व को प्रकाशित किया जिसमें से धार्मिक अंश अलग कर दिया गया था । यूनानी संस्कृति के विकिरण के सिकन्दरोत्तर इतिहास के अध्यायों का ऐसा कोई विभाजन नहीं है क्योंकि पश्चिम की तुलना में यूनानी सभ्यता बौद्धिक दृष्टि से असाधारण थी । यह—यूनानी सभ्यता—धर्म के क्षेत्र में बहुत छोटे धमस्व (endowment) बहुत छोटी पूंजी को लेकर चली थी और सिकन्दरी युग के एक पूरी शती पहिले अपने धार्मिक कीट-कोश से बाहर निकल आयी थी ।

आध्यात्मिक मुक्ति के इस यूनानी संकट में ओलिम्पस के बंजर पंथ की छिछली अनतिकता पर घृणा तथा आध्यात्मिक रूप से अधिक गहरे किन्तु कालिमामय उग्र धार्मिक जीवनस्तर से जुगुप्सा, जिसे रक्त और धरती के अधोलौकिक (Chthonic) सम्प्रदायों द्वारा थपकी दी जा रही थी शीघ्र ही आध्यात्मिक भोजन की अतृप्त बुभुक्षा से दब गयी । जब अपनी सनिक एव बौद्धिक विजयों की प्रगति के सिलसिले में सिकन्दरोत्तर यूनानी जोशीले गरयूनानी धर्मों के सम्पर्क में आये तो यूनानी हृदयों में उसके कारण जो मनोभाव उत्पन्न हुआ उसमें वचक पौरोहित्य के ठगों के प्रति अरुचि की अपेक्षा बहुमूल्य मोती के सुविधाप्राप्त मालिकों के प्रति चिन्तापूर्ण ईर्ष्या ही अधिक थी । यूनानी जगत को कष्टपूर्वक इस तथ्य का ज्ञान हुआ कि वह स्वयं धार्मिक रिक्तता से पीडित है । यूनानी सभ्यता ने जिन समाजों को बौद्धिक एव नतिक स्तर पर बन्दी बना लिया था उनके धर्मों के प्रति सिकन्दरोत्तर यूनानी विजेताओं की यह ग्रहणशील वृत्ति छः अन्य समाजों पर एक आक्रामक यूनानी सघात के महत्त्वपूर्ण धार्मिक परिणामों का एक कारण थी । यदि हम सिकन्दरोत्तर यूनानी सभ्यता के धार्मिक परिणामों को उनके ऐतिहासिक परिवेश में देखना चाहते हैं तो हम उस सभ्यता के ज्वारभाटे का माप लेना ही चाहिए ।

मसीडोनी एव रोमी सनिक आक्रान्ताओं का प्रथम लक्ष्य अपने शिकारों का आर्थिक शोषण था फिर भी वे यूनानी संस्कृति का प्रसार करने के श्रेष्ठतर लक्ष्य की जो बात करते थे वह कुछ मिथ्या न थी । इस बात से सिद्ध है कि उन्होंने अपने शब्दों को कितनी दूर तक कार्यरूप में परिणत कर दिखाया । यूनानी विजेताओं ने यूनानी संस्कृति की आध्यात्मिक सम्पत्ति के दान का जो आश्वासन दिया उसकी पूर्ति का प्रमुख साधन उन नगरराज्यों की गरकानूनी भूमि में निहित था जिनसे लेकर ही यूनानी नागरिक औपनिवेशिकों ने यूनानी सभ्यता की ज्योति जलायी । यह नीति खुद सिकन्दर ने भी बहुत बड़े पैमाने पर आरम्भ की थी और बाद में साढ़े चार सौ वर्षों तक—सम्राट हेड्रियन के जमाने तक—उसके मसिडोनी एव रोमी उत्तराधिकारियों ने उसका अनुसरण किया ।

फिर भी यूनानी विजेताओं द्वारा यूनानी संस्कृति का यह न्यूनाधिक उदार

प्रसार उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है जितना गैरयूनानियो द्वारा उसका स्वप्रमूत अनुकरण है और इसी का परिणाम यह हुआ कि सिकन्दरोत्तर यूनानी सस्कृति ने उस जमीन पर भी शान्तिपूर्ण विजय प्राप्त की जिस पर यूनानी सेनाए कभी अधिकार नही कर पायी थी, अथवा यदि कर भी पायी थी तो सिकन्दर की मृत्यु के बाद सिकन्दरी धारा मे जो भाटा आ गया उसके कारण उन्होने उसको शीघ्रता के साथ छोड दिया था। अन्तिम शती ईसा-पूर्व तथा प्रथम शती ईसानन्तर हिन्दूकुश के आर पार बक्ट्रियाई (बक्ट्रियन) यूनानी साम्राज्य का जो कुशाण उत्तराधिकारी राज्य स्थापित हुआ था उसमे यूनानी कला की और सल्यूसीद यूनानी साम्राज्य के सासानी (सासानियन) एव अब्बासाई उत्तराधिकारी राज्य मे यूनानी विज्ञान एव दर्शन की खेती तबतक अपनी फसल काटने के लिए रुकी रही जबतक यूनानी सनिक विजय के अनुभव न केवल आय बल्कि आकर चले भी गय। इसी प्रकार सीरियाई जगत ने यूनानी विज्ञान एव दर्शन म सहजात रुचि लेना तबतक आरम्भ नही किया जबतक कि नेस्तोरी एव मोनोफाइसाइट अपधर्मो के रूप म ईसाई धर्म का एक अपना ही सस्करण तयार करके एव सीरियाई भाषा के रूप म अपना एक साहित्यिक माध्यम निर्मित कर यूनानी दासता स उसने अपने को छुडा नही लिया।

यूनानी विजेताओ ने जिन भूखण्डो पर कभी पग नही रखा था वहा भी यूनानी सस्कृति का शान्तिपूर्ण प्रवेश वही शिक्षा देता है जो यूनानी सभ्यता की मरणोत्तर कलात्मक एव बौद्धिक सफलताए उसके सनिक उपनिवेश के पतन के बाद देती हैं और यह यूनानी पाठ समकालिक सभ्यताओ के बीच हुई टक्करो के सामान्य अध्ययन के लिए एक प्रकाश देता है। इस अध्ययन के लेखक की पीढी म इतिहास के छात्रो को यह प्रकाश इसलिए दिखायी पडा कि उनके सामने उसकी सारी कहानी थी—जबकि इसके प्रतिकूल आधुनिक पश्चिम के साथ होने वाली वतमान टक्करो के विषय म उनके ज्ञान की स्थिति ऐसी नही थी बात यह है कि यूनानी इतिहास के थोडे स अवशिष्ट आलेखो के अनुपात स बहुत ज्यादा ब्यौरेवार ज्ञान उसके सम्बन्ध म उपलब्ध होने पर भी सारी कहानी यहा सामने नही है भावी पर मानव अज्ञान का जो फौलादी पर्दा पडा हुआ है उसने कहानी को सहसा बीच मे ही काट दिया है।

जिस प्रकार सिकन्दरोत्तर यूनानी इतिहास मे यह सिद्ध हो गया कि समकालिको मे सास्कृतिक आदान प्रदान के क्षेत्र म शस्त्रबल निरर्थक है उसी प्रकार वह आधुनिक पाश्चात्य इतिहास स भी एक दिन सिद्ध होगा कि नही, इस प्रश्न का अबतक, १९५२ ई तक कोई उत्तर नही दिया जा सका है। और यह रहस्यमय प्रश्नबोधक चिह्न छात्र को स्मरण दिलाता है कि जो ऐतिहासिक घटनाए उसके लिए सब से कम दूर हैं जिनके सम्बन्ध म सर्वाधिक कागज-पत्र मौजूद है और जो उसके निकट सब से ज्यादा परिचित हैं वे ही मानवीय विषयों की प्रकृति एव सामान्य पथ विषयक उसकी जाच के काय म सबसे कम प्रकाश डालने वाली हैं। यूनानी समाज के साथ हुई टक्करो का बहुत दूर का और अपेक्षाकृत कम आलेखो से पूर्ण इतिहास इस सम्बन्ध म उसे कही ज्यादा सिखाने का आश्वासन देता है—विशेषत धार्मिक स्तर पर सभ्यताओ की

टक्करो क परिणाम के विषय म वह ज्यादा बतला सकता है।

बीसवी शती क पाश्चात्य इतिहासकार के सामने यह स्पष्ट था कि पाचवी शती क सिनाई (चीनी) जगत् म यूनानी कला तथा नवी शती क सीरियाई विश्व म यूनानी विज्ञान एव दर्शन को जो स्वत प्रेरित स्वीकृति मिली थी वह भी उसी समय तक, उसी प्रकार लुप्त हो गयी जिस प्रकार मसीडोनी एव रोमी सनाओ की चमत्कारपूर्ण सफलताए लुप्त हो गयी थी। सिकन्दरोत्तर यूनानी सभ्यता एव उसके सम कालिको क बीच सनिक एव राजनीतिक की नाइ जो कला-सम्बन्धी तथा बौद्धिक व्यापार हुए थे उनका हिसाब किताब इस समय तक बन्द हो चुका था। दूसरी ओर बीसवी शती की मानवजाति क जीवन पर इन टक्करो के परिणाम का जो सघात जारी था उसकी घोषणा मानव जाति की जीवित पीढी के अत्यधिक बहुमत न चार धर्मों —खीष्टीय इस्लाम महायान तथा हिन्दूधम—म स किसी न किसी के प्रति निष्ठा के रूप म की। इन धर्मों की एतिहासिक अवतरण तिथिया इस समय विलुप्त प्राच्य सभ्यताओ क साथ यूनानी सभ्यता की टक्करो के उपाख्यानो म खोजी जा सकती हैं। और यदि मानवीय घटनाओ की भावी धारा न इस सहज प्ररणा को सिद्ध कर दिया कि श्रेष्ठतर धर्मों को अपने म निहित करन वाले सावदेशिक चच मानवकम के लक्ष्य की ओर की अपनी तीर्थयात्रा म मानव प्राणियो के लिए सभ्यताओ की अपेक्षा सहायता देन वाल अधिक अच्छे वाहन हो सकते हैं तो इससे प्रकट हो जायगा कि सिकन्दरोत्तर यूनानीवाद की टक्करों ने इतिहास के किसी सामान्य अध्ययन के मुख्य प्रतिपाद्य बिन्दु पर जो प्रकाश डाला है वह आधुनिक पश्चिम की टक्करो न नही डाला।

२ प्राक सिकन्दरी यूनानी सभ्यता के साथ टक्करें

जिस नाटक म प्राक सिकन्दरी यूनानी समाज नायक था वह भी उसी भूमध्य सागरी नाट्यशाला मे अभिनीत हुआ जो लगभग अठारह सौ वर्षों बाद एक ऐसे नाटक का दृश्यस्थल बनने वाला था जिसम मध्यकालिक पाश्चात्य ईसाई जगत् को मुख्य भूमिका ग्रहण करनी थी और दो प्रतिद्वन्द्वी थे—एक थी उसकी भगिनी-तुल्य सीरियाई जाति और दूसरा था उस अकाल भग्न हित्ताई समाज का प्रस्तरीकृत अवशेष जिसने तारस के दुर्गों मे अपना अस्तित्व को सुरक्षित रखा था। भूमध्य जलद्रोणी पर अधिकार करने क लिए इन दोनो दलो क बीच जो प्रतियोगिता हुई उसमे सीरियाई समाज का प्रतिनिधित्व फोनीशियनो न किया तथा हित्ताई का प्रतिनिधित्व उन समुद्रयायी लोगो ने किया जो अपन समुद्र पार के क्षेत्रो म (जिनम उनके पाव जम च [illegible] र यूनानी प्रति द्वन्द्वियो क बीच यूनानी [illegible] तायरहीनियन एव ला[illegible] शब्द स परिचित थ।

छोर पर काली मिट्टी में उपजाऊ भूभाग तक पहुचा जा सकता था, एक और पुरस्कार था—वरुन नील से नुतनों आ रही मिस्र की भूमि जिसकी सभ्यता बुढ़ापे के उस बिन्दु तक पहुच चुकी थी जिसस वह किसी दूसरे विदेशी पडोसी की सहायता के बिना अब भी किसी पडोसी को दूर रखने म समथ न थी।

इन पुरस्कारा के लिए जो सघष था उसम यूनानियो को अपने अय दोनो प्रतिद्वद्वियो की अपेक्षा कई सुविधाए थी।

उनकी प्रथम स्पष्ट सुविधा तो भौगोलिक था। एजियन म उनका जो युद्ध का अड्डा था वह पाइचा य भूमध्य के निकट था, वह काला सागर के भी उससे कही ज्यादा निकट था जितना भूमध्यसागर के पूव छोर पर स्थित इत्रस्कन एव फोनिशियाई अड्ड उत्त जाना लग्या स थ। फिर यूनानिया का आबादी की दृष्टि से भी ज्यादा फायदा था क्योंकि यूनानी इतिहास के पूववर्ती अध्याय म हाईलडस (उच्च भूमि) पर लोलडस (नीची भूमि) की विजय के फलस्वरूप उसम काफी वृद्धि हो चुकी थी। हेलास या यूनानी जगत् म जीविका की वस्तुआ पर जब बढी हुई आबादी का भार बढ गया तथा यूनानिया की विस्तार भावना को माना एक विस्फोटक शक्ति प्राप्त हो गयी आर इस स्थिति न उन्ह समुद्रपार के देशो म व्यापार के नाके स्थापित करने को प्रोत्साहित किया तब उन्होन तजी के साथ यूनानी किसाना की बडी-बडी घनी बस्तिया बसाकर उस नयी दुनिया को 'बृहत्तर यूनान' (Magna Graecia) बना दिया। हम जो थोडा-सा साक्ष्य प्राप्त है उसम यह आभास मिलता है कि न तो इत्रस्कनो और न फोनेशियाइया के पास इतना मानव-बल था कि व उस युग म उसका इस प्रकार उपयोग कर सकत। कम स कम इतना तो स्पष्ट है ही कि दोनो म किसी ने नयी दुनिया म अपना बस्ती बसाकर उस अपना बना लन के यूनानी उदाहरण का अनुसरण नहीं किया।

यूनानिया की तीसरी सुविधा प्रथम सुविधा की भाति ही उनकी भौगोलिक स्थिति का परिणाम थी। बात यह थी कि इन तीनो प्रतियोगियो के बीच भूमध्य की इस प्रतियोगिता के शुरू होन की तिथि असीरियाई सनिकवाद की अन्तिम और निकृष्टतम शक्तिपरीक्षा (bout) के समय ही आ पडी। एशियाई मुख्य भूमि पर होने के कारण फोनीशियाइयो एव इत्रस्कना को इसम खतरा था जब कि यूनानी सुदूर पश्चिम म रहन के कारण कम भय स मुक्त थ।[1]

इन कठिनाइयो पर विचार करते हुए यह उल्लेखनीय है कि उस परिस्थिति म फोनीशियाई एव इत्रस्कन उतना भी कर सक जितना उन्होने किया। काला सागर के लिए जो दौड हुई उसम व, जसी कि कोई आशा करेगा, पूरी तरह हार गये। काला

[1] इसी प्रकार ईसाई सवत की सत्रहवीं शती मे भी द्वीपवासी अग्रेज अपने प्रतियोगी महाद्वीपीय डचों से महासागर पार के व्यापार के विषय मे इस तथ्य के कारण लाभ मे थे कि डच लोग हैप्सबग एव बोबन-जसे यूरोपीय साम्राज्य निर्माताओं की सनिक मार के खतरे मे थ जब कि अग्रेज नहीं थे।

सागर के यूनानी मालिको एव यूरेशियाई स्टेप्पी की महती पाश्चात्य खाडी के सीथियन स्वामियो न एक लाभदायक व्यापारिक साझेदारी कर ली। साझेदारी यह थी कि काली धरती से सीथियनो की निरुद्योगी प्रजाए जो खाद्यान्न पदा करगी उसे एजियन जलद्रोणी म बसी यूनानी नागरिक आबादियो को खिलान के लिए समुद्र पार निर्यात कर दिया जायगा और उसक बदले राजकीय सीथियनो की रुचि क अनुकूल यूनानी विलास सामग्री वहा स भेज दी जायगी।

पश्चिमी भूमध्य मे सघष ज्यादा अर्से तक चलता रहा उसम कितने ही उतार चढाव भी हुए पर वहा भी उसका अन्त यूनानी विजय म ही हुआ।

इसस छोटी जो दौड मिस्र के लिए हुई और जो तीन उद्देश्यो म एक थी तथा जिसम यूनानियो को भौगोलिक निकटता का लाभ नही प्राप्त था उसम भी सातवी शती न यूनानियो को पुरस्कार मार ले जाने दिया। इस बार यूनानियो ने उद्धारक फरो समतीचुन (Psammeti Chush) प्रथम को समुद्र स आये निलज्ज आदमियो अर्थात आयोनियाई (आयोनियन) एव करियाई (करियन) लोगो का उपहार देकर काम चला लिया। इन आदमियो को फरो ने ६५८ ६५१ ईसा पूव के वर्षो म निम्न नील घाटी म असीरियाई गरीजना को निकाल बाहर करने के काय क लिए भरती किया था।

छठी शती ईसा पूव के मध्य लगभग ऐसा मालूम पडा जसे यूनानियो ने न केवल भूमध्य जलद्रोणी के लिए होने वाली सामूहिक प्रतियोगिता मे विजय प्राप्त कर ली बल्कि दक्षिण पश्चिम एशिया म असीरियाई साम्राज्य की विरासत पाने मे भी बहुत कुछ सफलता पा ली। समतीचुन क यूनानियो स प्राप्त भाडे के टट्टुओ द्वारा असीरियाइयो को मिस्र से निकाल बाहर करने के लगभग आधी शती पूव ही इन सामरिक टाग अडाने वाले यूनानी समुद्र मे आय निलज्ज आदमियो द्वारा अपने राज्य क स्टलीसियाई तट पर धृष्ट विद्रोह करने पर सनाशेरीब (Sennacherib) क्रुद्ध हो उठा था। यदि हम यह मान ल कि किस्मत आजमाने वाले अन्य यूनानी सनिक उस लेस्बियाई (लस्बियन) एंटीमनीदास के साथ नबुचन्दनजर क अगरक्षको म थ जिसका नाम एव आलस्य भूय क गत्त म निमग्न हो जान स इसलिए बच गया कि वह सप्फा-का कवि भ्राता अल्कायस का भाई था तो एसा मालूम पडता है जस असीरियाई साम्राज्य क नव-बबिलोनियाई उत्तराधिकारी राज्य न भी यूनानी भाडे क टट्टुओ को भाडे पर रखन म मिस्र क उदाहरण का ही अनुसरण किया हो। सिकन्दर द्वारा एकेमीनियाई साम्राज्य विजय किय जान क पूव ही एकेमीनियाइयो ने इन यूनानी भाड क टट्टुओ का सामूहिक रूप स अपन यहा काम पर लगा लिया था। ऐसा लगता रहा होगा मानो स्वय सिकन्दर इतिहास क मच पर अपनी वास्तविक तिथि स दो सौ वष पहिले ही आ गया हो। किन्तु सत्य यह है कि मच सिकन्दर या किसी प्रत अग्रगामी क लिए नहीं वरन् एक मयास साइरस क लिए निर्मित किया गया था।

साइरस न लगभग ५४७ ईसापूव लीडियाई साम्राज्य पर और उसके उत्तराधिकारी कम्बायस न ५२५ ईसापूव मिस्र पर विजय प्राप्त की। इसक प्राय बीस साल क भीतर ही मिस्र तक भी पश्चिम एशिया म इस नाता क यूनानियो-द्वारा विजय

की जो सम्भावनाएं थी उनका अन्त हो गया। साइरस की जिस चोट ने अनातोलिया के पश्चिमी समुद्री तटवर्ती यूनानी नगर राज्यों पर एक विदेशी फारसी राज्य के आधिपत्य की स्थापना की वह दोनों में ज्यादा तेज और आश्चर्यजनक थी, किन्तु कबीसस की मिस्र विजय ने यूनानियों पर आगे और दोहरा आघात किया। उसने एक ओर तो निलज्ज मनुष्यों की मनिक मर्यादा को नीचा कर दिया, दूसरी ओर मिस्रस्थित यूनानी हितों को फारसियों की सदिच्छा और कृपा पर छोड दिया। फिर फारसी साम्राज्य निर्माताओं ने सीरियाई फोनेशियाइयों (Syro Phoenicians) को जो महत् एव आकस्मिक लाभ प्रदान किया उसके कारण ये यूनानी हार और भी गहरी हो उठी।

जिस एकेमीनियाई नीति ने यहूदियों को उनकी बेबिलोनियाई कैद से लौटने और अपने पूर्वजों के नगर यरूशलम में इद गिर्द राजनीतिक दृष्टि से अपदार्थ मन्दिर राज्य का निर्माण करने का अवसर दिया उसी ने समुद्री सीरियाई फोनेशियाई (साइरो फोनेशियन) नगरों को न केवल स्वायत्त शासन बल्कि एकेमानियाई आधिपत्य के नीचे परन्तु अन्य सीरियाई जातियों के ऊपर, प्रभुता करने वाला एक उपनिवेश भी प्रदान किया। इसमें वे यूनानी जगत के सबसे शक्तिमान् नगर राज्यों के समकक्ष हो गये। आर्थिक दृष्टि में तो उनकी उपलब्धियां और भी ज्यादा आकर्षक था उन्होंने अपने को एक ऐसे राष्ट्रमडल के भागीदार के रूप में पाया जो भूमि पर भूमध्य के उनके सीरियाई तट से महान् यूरेनियाई स्टेप्पी के सोगडियाई शुष्क तट पर स्थित खेतिहर मानवों (Homo Agricola होमो एग्रिकोला) की अत्यन्त दूरस्थ पूर्वोत्तर चौकियों तक फैला हुआ था।

इस बीच पश्चिम में एक फोनीशियाई बस्ती का उदय हो चुका था जो सम्पत्ति एव शक्ति में उस सीरियाई नगर से भी आगे बढ गयी थी जिससे उसका जन्म हुआ था—ठीक वैसे ही जैसे ईसाई सवत की बीसवी शती मे आधुनिक पश्चिम की प्रमुख अतलान्तोत्तर (ट्रांस एटलाण्टिक) बस्ती उन यूरोपीय राज्यों से आगे बढ गयी जिनमें निकलकर उसके नागरिक आये थे। फोनीशियाई प्रत्याक्रमण में कार्थेज ने नेतृत्व किया, जिसे यूनानी दृष्टिकोण से प्रथम प्यूनिक युद्ध की सज्ञा दी जा सकती है परन्तु जिसे इस रस्साकशी के नाटक के बहुत बाद के अक ने छीन लिया है। परिणाम निर्णायक नहीं निकला किन्तु इतना तो कहा जा सकता है कि छठी शती ईसापूर्व की समाप्ति होने के पहिले ही, प्रतियोगी समाजों के तीन सदस्यों के समुच्चय द्वारा यूनानी जगत का विस्तार प्रत्येक दिशा में रोक दिया गया। यह आशा की जा सकती थी कि इसके बाद सीरियाई जगत और यूनानी जगत के बीच के अबतक सचल प्राच्य एव पाश्चात्य सीमान्त अब उस सीमा रेखा पर स्थिर हो जायगे जिसे एकमीनियाई एव कार्थेजी साम्राज्य निर्माताओं ने निश्चित किया था।

किन्तु पाचवी शती ईसापूर्व का आरम्भ होने के साथ ही यह सन्तुलन भी विच्छिन्न हो गया अब हम इतिहास के एक अत्यन्त प्रसिद्ध युद्ध की दहलीज पर आ पहुचे है। इतिहासकार इस अत्यन्त आश्चर्यजनक रूपवाली दु खदायी परिणति का क्या

बता सकता है ? मानव विषयो का एक यूनानी विद्यार्थी इस सकट का कारण किसी अनतिक उच्छृखलता (hybris) म पतन के पूव पदा होन वाले अहकार म या उस उन्माद म ढूढ लेता जिसम देवगण उस आदमी को आच्छन्न कर देत हैं जिसे नष्ट करना चाहत हैं। और मानवीय स्तर पर अपनी जाच जारी रखते हुए भी एक आधुनिक पाश्चात्य शोधक शायद इस अधिप्राकृतिक स्पष्टीकरण का खण्डन करने से रुक जाता।

इस सघष के फिर से चल पडन का मानवीय कारण एकेमीनियाई राजमर्मज्ञता की एक त्रुटि थी, यह वही भ्रात गणना भ्रात अनुमान की त्रुटि थी जिस साम्राज्य निर्माता उस स्थिति म अक्सर कर गुजरते हैं जब वे पहिले के हृदयभेदी अनुभवो के कारण हताश आबादियो पर दूर दूर तक और तीव्र गति से विजय प्राप्त कर चुके होते है। ऐसी परिस्थितियो म साम्राज्य निर्माता भ्रम-वश अपनी सफलता का कारण केवल अपने विक्रम को समझ बठते हैं और अपने उन अग्रगामियो के ऋण को भूल जाते हैं जिन्होंने साम्राज्य निर्माता के मौके पर पहुचने और आसानी से फसल काट लेने के पहिले हल चलाकर धरती जोतने और मिट्टी तोडने का काम किया था। और अपनी अपराजेयता की इस मिथ्या भावना के कारण जो आत्मश्लाघा युक्त आत्मविश्वास उनम भर जाता है वह उन्हे अबतक दृढ एव अखण्डित लोगो पर भी बिना सोचे-समझे आक्रमण कर देने को बाध्य कर देता है। तब उन अखण्डित लोगो का सामना करने की भावना एव सामर्थ्य देखकर आश्चर्यचकित रह जाना पडता है। १८३८ ४२ ई म अफगानिस्तान मे भारत के टूटते हुए मुगल राज के परित्यक्त देशो के ब्रिटिश विजेताओ को जो दुदशा भोगनी पडी उसकी भी कुछ ऐसी ही कहानी है। अग्रेजो ने बडे हलकेपन से यह मान लिया था कि पूर्वी ईरान के निष्कलक हाईलण्डर उसी आसानी के साथ उसी पालतूपन के साथ हथियार डाल देंगे जिस आसानी के साथ उपमहाद्वीप की उस घायल आबादी ने डाल दिये थे जिसका विदेशी शासन की पाच शतियो का उत्साहभगकारी अनुभव अराजकता की एक शती की पीडा मे बदल गया था।

जब साइरस ने पहिले जमाने म लीडिया के अधिराजत्व को स्वीकार करने वाली एशियाई यूनानी जातियो को पराजित करके लीडियाई राज्यो की अपनी विजय को पूरा कर लिया तब सभवत उसने कल्पना की थी कि वह अपने उत्तराधिकारियो के लिए एक निश्चित पश्चिमोत्तर सामात छोडे जा रहा है। फिर भी लीडिया-नरेश क्रोसस के प्रति अपोलो की यह चेतावनी कि यदि वह हालीज नद को पार करेगा तो एक महती शक्ति को नष्ट कर देगा प्राचीन के विजेता साइरस को उस समय दी जानी चाहिए थी जब वह उसी नद के दूसरे तट पर, दूरागत दृश्यो को उतना ही पूर्वव्याप रखता हुआ ठहरा था क्योंकि लीडियाई साम्राज्य का विजय करने म साइरस अनजाने ही, अपने उत्तराधिकारियो के लिए यूनानी जगत् से टकराने की एक ऐसी स्थिति छोड जा रहा था जो अन्त म एकेमीनियाई साम्राज्य की मृत्यु का कारण बना।

पराजित लीडिया पर म हावी हुए अनातोलिया के तट तक अपने प्रभुत्व का विस्तार कर लीडिया (हाल में नष्ट) को अस तोषजनक सन्धि से साइरस मुक्त हो गया था, दारा (डरियस) ने सोचा कि एक स्वतत्र यूनानी अवशेष के साथ जो

अस-तोषजनक समुद्री सीमा है उससे छुटकारा पाने के लिए उसे सारे यूनानी जगत को अपने चक्रवर्तित्व के अन्दर कर लना ठीक हागा। जब ४६३ ईसापूव एशिया म यूनानी विद्रोह की अन्तिम लपटें बुझायी जा चुकी तो उसने तुरन्त ही यूरोप-स्थित यूनानिया के विरुद्ध सनिक कारवाई शुरू कर दी। परिणाम म उसे प्राप्त हुई ऐतिहासिक पराजयो की एक मालिका—मराथोन, सलामोज प्लेटिया एव माइक्ल नामक स्थाना पर। इन पराजया का यूनानियो के बीसवी शती वाले पाश्चात्य उत्तराधिकारी अपनी एतिहासिक विजया के रूप म आज भी याद करत हैं।

जब एशिया म दारा की यूनानी प्रजाओ न विद्राह किया तो उसका उत्तर उसन यूराप म उनके गोतिया और सहायको को विजय करने के निश्चय के रूप म दिया। किन्तु ऐसा करके उसन एक सप्तवर्षीय विद्रोह (४६६ ४६३ ईसापूव) को इक्यावन वप लबे युद्ध (४६६ ४४६ ई पूव) म बदल दिया जिसके अन्त म एकेमीनियाइयो को पश्चिमी अनातोलियाई समुद्रतट की हानि उठाकर चुप रह जाना पडा। इसी युग म सिसली के यूनानिया (हेलेनो) पर कार्येजियो ने आक्रमण कर दिया, जो आक्रामक के लिए और भी भारी सकट के रूप मे समाप्त हुआ, और पश्चिम मे भूमि पर यूनानिया की इस विजय के बाद ही एक दूसरी समुद्री विजय भी उनके हाथ लगी। विजय की यह घटना तब हुई जब इटली के पश्चिमी तट पर नेपुल्स स कुछ पश्चिम की आर क्यूमाथ म स्थित यूनानी जगत की कपेनियन चौकी पर इत्रस्कनो न हमला कर दिया।

४३१ इसापूव की *मारक तिथि पर यह स्थिति थी जब यूनानियो से* यूनानिया का भ्रातृघाती युद्ध—एथेनो पेलोपोनेशियाई युद्ध—शुरू हुआ। यूनानी समाज की छाती पर ही जो यह युद्ध आरम्भ हुआ उसने उसका विनाश कर दिया क्योकि बाच-बीच की अल्पकालिक सन्धियो के साथ यह तबतक चलता रहा जबतक कि ३३८ ईसापूव मसीडोन के सम्राट फिलिप न बलात एक समाधान नही करा दिया। जब यूनानियो का गृह युद्ध चल रहा था तब कार्येजियो और एकेमीनियाइयो दोनो को यह अदम्य प्रलोभन हुआ कि अपन यूनानी प्रतिद्वन्द्वियो के आत्मघाती उन्माद का लाभ उठा लें। इस प्रलोभन के आगे झुककर कार्येजियो को कुछ विशेष लाभ नहा हुआ किन्तु फारसियो न बहुत अधिक सफलता प्राप्त की हा अपनी सफलता का लाभ वे बहुत दिना तक न उठा सके, क्योकि यूनानी जगत म भ्रातृघाती युद्ध का परिणाम यह हुआ कि यूनानी वा हेलेन लोग युद्धकला के सिद्ध आचाय हो गये और ज्योही मसिडोनी और रोमी युद्धाधिकारियो न यूनानी जगत् के पुश्तनी दुश्मना क विरुद्ध नवीन यूनानी आयुधो का प्रयाग शुरू किया, एकेमीनियाई एव कार्थेजी साम्राज्य उनकी बाढ म बह गये।

इस प्रकार अपन पडोसियो के विरुद्ध यूनानी समाज क सैनिक एव राजनीतिक आक्रमण ने विशद क्षेत्र म प्रवेश किया—जिसका सर्वेक्षण पूव अध्याय म किया जा चुका है। किन्तु इसके साथ ही काय की एक सास्कृतिक योजना भी थी जिसन सिकन्दर महान् के पहिले और बाद मे भी स्थायी एव शान्तिपूण विजय प्राप्त की।

मिस्री सिपाही जिन्हें मकदूनी व्यूह के सहारे यूनानियों के अभिमान का सामना करने में कुछ उठा न रखा था उसी के साथ स्वेच्छा से अपने यूनानी आक्रमणकारियों की भाषा धर्म एवं कला को ग्रहण करते गये। यहाँ तक कि कार्थेजिया के साम्राज्य के पीछे जो प्रतिरक्षित क्षेत्र था और जिसके अन्दर कोई भी यूनानी सौदागर प्रवेश नहीं कर पाता था उसमें भी कार्थेज तथा यूनानी वस्तुओं का आयात करते रहे थे जो उनके द्वारा निर्मित वस्तुओं से अधिक आकर्षक होती थीं। यह बात ठीक उसी तरह की थी जैसे एक ओर तो नेपोलियनी फ्रांस की सरकार अपने बर्लिन राजपत्र द्वारा ब्रिटिश माल के बहिष्कार का तमाशा करती रही और दूसरी ओर चुपके चुपके नेपोलियनी सेना के उपयोग के लिए ब्रिटिश बूट और कोट का आयात करती रही।

एकेमीनियाई साम्राज्य के पश्चिमी प्रान्तों के निवासियों का यूनानीकरण साम्राज्य के अस्तित्व में आने के बहुत पहिले ही आरम्भ हो चुका था। यह काम लीडिया राज्य के द्वारा एशियाई यूनानी नगरों में विशिष्ट यूनानी संस्कृति के प्रचार में हो रहा था। हेरोडोटस के पृष्ठों में क्रोसस एक उत्साही यूनानीकरणकारी के रूप में आया है। किन्तु प्राक् सिकन्दरी यूनानीवाद की सर्वाधिक सफल सांस्कृतिक विजयें इत्रस्कनों तथा इटली के पश्चिमी तट के अन्य गैर यूनानी लोगों के मध्य सम्पन्न हुईं। इत्रस्कन स्वयं में यूनानी बन गये थे और यह उनके उन रोमी-साम्राज्य निर्माताओं की अधीनता में आने के पहिले ही हो चुका था जिन्होंने अपनी ही यूनानी सभ्यता का अधिकांश अपने इत्रस्कन पडोसियों से ग्रहण किया था।

यूनानियों ने इतिहास की किसी भी स्थिति में सबसे महत्त्वपूर्ण जो सांस्कृतिक विजय प्राप्त की वह थी रोम के यूनानीकरण की क्योंकि रोमनों की उत्पत्ति चाहे जिससे भी हुई हो उन्होंने एक ऐसा काम अपने जिम्मे ले लिया था जो उनके उत्तर की ओर पश्चिमी इटालवी तट पर बसे यूनानी उपनिवेशों तथा रोन (Rhone) डेल्टा के निकट बसे यूनानी सभ्यता के मसीलियाइ (Massilian) अग्रगामियों के बूते के बाहर था। जब इटालवी यूनानी (Italiot Greeks) आस्की (आस्कन) और इत्रस्कन कल्टी (केल्टिक) बर्बर प्रत्याक्रमणों के आगे परास्त हो गये तब रोमन यूनानी सभ्यता के लातीनी संस्करण (Latinized Hellenism) को एपेनाइन्स पार एवं आल्प्स के ऊपर पहुँचाने का काम तबतक करते ही गये जबतक कि उन्होंने महाद्वीपीय यूरोपियन अन्तर्देश (Continental European Hinterland) के उस पार डेन्यूबी डेल्टा से लेकर राइन के मुहाने तक और डोवर के जलडमरूमध्य के पार ब्रिटेन तक में उसकी जड नहीं जमा दी।

३ घास और गेहूँ

समकालिक सभ्यताओं की मुठभेडों[1] के हमारे सर्वेक्षण ने हमें इस तथ्य से

१ सीरियाई समाज के साथ हुई एवं 'लेट किंगडम' के युग में मिस्री समाज के साथ हुई मुठभेडों के अंश इस संक्षिप्त संस्करण से निकाल दिये गये हैं।

परिचित कर दिया है कि इन मुठभेडो मे एकमात्र फलप्रद परिणाम शाति व वाय है। हम अत्यन्त खोदपूवक यह भी जानते है कि जब दो या अधिक विभिन्न सस्कृतिया एक दूसरे म उलझती हैं तो उसी कारण मूर्खतापूण एव विनाशकारी जो सघष होत हैं उनकी तुलना म सजनात्मक रूप से शातिमय आदान प्रदान बडे दुलभ हैं।

यदि हम इस क्षेत्र का एक बार फिर पयवेक्षण करें तो हम देखेंगे कि इडिक एव सिनाई (चीनी) सभ्यताओ के समागम के बाच शान्तिपूण आदान प्रदान का एक उदाहरण ऐसा ह जो प्रथम दृष्टि म हिंसा व कलक स उतना ही मुक्त प्रतीत होता है जितना कि फलप्रद दीखता है। महायान भारतीय जगत् मे सिनाई (चीनी) दुनिया म प्रसरित हुआ और ऐसा दोनो समाजो म बिना किसी युद्ध क सभव हुआ। इस आदान प्रदान की शान्तिमयता जिसने इस ऐतिहासिक प्रभाव की सृष्टि की वह विनापन भारत स चीन का जाने वाले बौद्ध धमप्रचारको तथा चीन से भारत को आने वाले बौद्ध तीथयात्रिया ने किया। और ये धमप्रचारक तथा तीथयात्री समुद्र के रास्ते मलक्का के जलडमरूमध्य से होकर तथा जमीन क रास्ते तारिम जलद्रोणी से होकर ईस्वी सवत की चौथी से सातवी सदी तक आते जाते रहे। जैसा भी हो किन्तु जब हम इन दोनो मार्गो म स अधिक प्रचलित जमीन के रास्ते पर गौर करते हैं तो हम मालूम होता है कि इस रास्ते का उद्घाटन भारतीय अथवा चीनी शान्तियात्रियो-द्वारा नही हुआ बल्कि अनधिकार प्रवेशक हेलनी समाज के बैक्ट्रीरियाई (बक्ट्रियन) यूनानी अग्रगामियो तथा इन यूनानियो के कुषाण बबर उत्तराधिकारियो द्वारा हुआ था और उसे सनिक आक्रमण के लिए ही इन युद्ध पिपासु मानवो ने बनाया था—यूनानियो ने भारतीय मौय साम्राज्य के विरुद्ध और कुषाणो ने चीनी हान साम्राज्य के विरुद्ध ।

यदि हम समकालिक सभ्यताओ क बीच हुई आध्यात्मिक दृष्टि से फलप्रद किसी ऐसी मुठभेड या समागम की खोज म हैं जिसम किसी प्रकार के सबद्ध सनिक सघष की छाया न हो तो हम द्वितीय पीढी की सभ्यताओ के काल के बहुत पहिले उस काल की ओर दृष्टि डालनी होगी जब हाइक्सोस के आक्रमण क आघात से मिस्री सभ्यता का अपनी आयु की पूणता के बाद अप्राकृतिक जीवन-वृद्धि नही हुई थी। उसी पूववर्त्ती युग मे बाईसवी और इक्कीसवी सदी ईसा पूव क मोड से लेकर अठारहवी-सत्रहवी सदी ईसापूव क मोड तक हम मध्य राज्य (मिडिल किंगडम) के रूप मे एक मिस्री सावभौम राज्य तथा सुमेर एव अक्काद साम्राज्य के रूप मे एक सुमेरी सावभौम राज्य को साथ साथ जीवित और आपस म बारी बारी से सीरियाई भूमि सेतु (लण्ड ब्रिज) का नियत्रण करते देखते हैं और जहा तक मालूम है इस बात को लेकर उनमे कभी शस्त्रो की झनकार नही सुनायी पडी। किन्तु यह वाह्यत शान्तिमय समागम भी अनुवर ही निकला। तब हम जो कुछ खोज रहे हैं उसके लिए और पीछे जाना होगा।

सभ्यता के इतिहास के इतने आरभिक अध्याय की खोज करते समय आधुनिक पुरातात्त्विक अनुसधान के होते हुए भी बीसवी शती के इतिहासकार को ऐतिहासिक झुटपुट म ही उलझकर रह जाना पडता है फिर भी इस सावधानी के बावजूद भी हम अपनी अस्थायी उपलब्धि का स्मरण कर सकते हैं कि ईसिस एव ओसिरिस की

जिस उपासना ने मिस्री आध्यात्मिक जीवन में इतना उपकारी भाग लिया वह उस विघटनकाल सुमेर जगत् का ही एक उपहार थी जहाँ 'शोकमग्ना पत्नी' (sorrowing wife) या माता एवं उसके 'पीड़ित पति' (sorrowing husband) या पुत्र की हृदयविदारिणी एवं हृदय-सान्त्वनाकारिणी मूर्तियों ने ईश्वर एवं तम्मुज का नाम धारण कर सर्वप्रथम अवतार लिया था। यदि यह सत्य हो कि एक ऐसी उपासना जो अन्य सब श्रेष्ठतर धर्मों की अग्रदूत या सन्देशवाहक थी अपने को जन्म देने वाले समाज से एक समकालीन सभ्यता के बच्चों में बिना किसी झगड़े या रक्तपात के प्रसारित की जा सकी—उस रक्तपात के बिना जिससे बाद की भी समकालिक सभ्यताओं के जितने ही समागम दूषित हैं तो मानना होगा कि हमने उन सभ्यताओं के समागम के इतिहासों पर छाये बादलों के बीच इन्द्रधनुष की एक झलक पा ली है जिनमें मांस से मांस का युद्ध हुआ है।

समकालिको के मध्य सघर्ष का नाटक

(१) सघप की शृ खलाए (Cancatenations)[1]

यह खोज कि समकालिक ममाजो के बीच होने वाले सघप अकेले नही बल्कि अपने को शृखला या कारणानुबन्ध रूप म उपस्थित करते हैं पाचवी शती ईसापव हेरोडोटस ने उस समय की थी जब उसने महाद्वीपिक यूरोपीय यूनान के स्वतत्र यूनानी नगरराज्यो तथा एकेमीनियाई साम्राज्य के बाच होने वाल ताजे मघप का विवरण लिखना आरम्भ किया था। वह ताड गया कि अपनी कथा को समझने लायक बनाने के लिए उसे उमके ऐतिहासिक पूववृत्तो (antecedents) के विन्यास (setting) म रखना ही होगा, और इस दृष्टिकोण से देखते हुए उमे धारणा हुई कि यूनानी फारसी सघप समप्रकृति सघातो या टक्करा की काय-कारण शृखला की अन्तिम कडी भर है। किसी आक्रमण का असामी केवल अपनी रक्षा करके ही सन्तुष्ट नही हो जाता यदि उसका रक्षण-काय सफल हो जाता है तो वह प्रत्याक्रमण भी आरम्भ कर देता है। इसमें सन्देह नहीं कि कुतर्की आधुनिक पाठक को हेरोडोटीय नाटक के आरम्भिक अक ज्ञानवद्धक की अपेक्षा मनोरजक अधिक मालूम पडते हैं क्योकि उनकी विषय-वस्तु एक के बाद एक अत्यन्त मनोरम तरुणियो के अपहरण पर आधारित है। (जसी कि कथा के यूनानी सस्करण मे आशा की जाती है) फोनीशियाई (फोनीशियन) लोग यूनानी आयो (IO) का अपहरण कर झगडा आरम्भ करते हैं यूनानी लोग फोनेशियाई 'यूरोपा' का अपहरण कर उसका बदला ले लेते हैं। तब यूनानी कोल्चियन 'मीडिया' को भगा ले जाते हैं फिर टाजन लोग यूनानी 'हेलेन' का अपहरण कर लेते हैं ट्राय पर घरा डालकर यूनानी इसका बदला लेते हैं। यह मब बडा ही मूखतापूण था क्योकि यह बात साफ थी कि ये औरतें अपने को अपहृत होने नही देती यदि उनकी वसी इच्छा भी न

[1] 'कनकटेनेशन' शब्द का प्रयोग प्राय बडे शिथिल रूप मे होता है, इसलिए जो पाठक लटिन नहीं जानते उन्हें यह बता देना लाभप्रद होगा कि 'कटेना' का अथ है एक कडी या शृखला। इसलिए घटनाओं का कनकटेनेशन या कारणानुबन्ध एक घटना मालिका या शृखला सा है जिसमे एक घटना से दूसरी घटना नि सृत होती जाती है।

होती। और हर हालत में पेरिस अपनी नायिका को लौटा लाने में असमर्थ था, क्योंकि यह भी स्पष्ट था कि यदि ट्राजन लोग उसे वापिस करने की स्थिति में होते तो इस क्षण तक घेरे में रहने की जगह उसे अवश्य वापिस कर देते। कम से कम यह पुराणकथागत बौद्धिकता के अवगाहन से जो हेरोडोटस की अनेक प्रियकर विशेषताओं में से एक है इसी रूप में प्रकट होती है। जो हो यूनानियों द्वारा ट्राजन युद्ध आरम्भ करने पर प्रधान देवता के रूप में एफ्रोडाइट का स्थान ऐरेस ले लेता है और हम नारी अपहरणों की इस लम्बी श्रृंखला के प्रति चाहे जितने भी अविश्वासी हों, इतना तो मानना ही पड़ेगा कि यूनानी फोनेशियाई मुठभेड़ को उस कारणानुबन्ध या श्रृंखला का एक आरम्भिक अंक मानने में हेरोडोटस ने गहरी अन्तर्दृष्टि का परिचय दिया है जिसमें यूनानी फारसी युद्ध सम्मिलित है।

फारसी युद्धों तक जाने वाले इस कारणानुबन्ध (श्रृंखला) विशेष के विषय में हम अपने विचार ठहराने की आवश्यकता नहीं है इसकी जगह हम तुरन्त उन आक्रमणों तथा प्रत्याक्रमणों की श्रृंखला ढूँढने का कार्य आरम्भ करेंगे जो आगे हेरोडोटस के बाद काल तक जाती है और हमें कि हमारी खोज हम कहाँ ले जाती है।[1]

फारसी आक्रमणों में जो सनसनी पैदा करने वाली पराजय हुई वह तो उस हरजाने का प्रथम किस्त मात्र थी जो इस आक्रमण ने उसके कर्ताओं के सिर पर लादा था। अन्तिम प्रतिशोध तो था—एकेमीनियाई साम्राज्य को जीतकर नक्शा

शती के आरम्भ तक भी रोमन साम्राज्य अथवा उसके बिजीगोथिक उत्तराधिकारी राज्य के नियन्त्रण में था, मुक्त कर दिया था।

जो अरब खिलाफत एकेमीनियाई तथा कार्थेजी साम्राज्यो के पूर्व रणभेत्रा तक फैली हुई थी, उसके रूप म एक सीरियाई सावभौम राज्य की पुन प्रतिष्ठा ने तो मुठभेडो का इस शृ खला का अन्त ही कर दिया होता। दुर्भाग्य वश यूनानी आक्रमण का शिकार हो चुके सीरियाई समाज के अरब प्रतिशोधकर्ता आक्रमणकारी को उस क्षेत्र से निकाल बाहर कर ही सन्तुष्ट नही हुए जिसम उसने अनधिकृत प्रवेश कर लिया था उन्होने एक परणीय सीमा पर अपने को उपस्थित देखने की दारा की वही गलती दोहराई जिसम पीछे न हटने देने के लिए सीमा को निरन्तर आगे बढाते जाना पडता था। ६७३ ७७ तथा पुन ७१७ ई म कुस्तुनतुनिया को घेरने के लिए अरबो न तारस की प्राकृतिक सीमा रेखा पार की उन्होने ७३२ ई म फ्रास पर हमला करने के लिए पाइरेनीज की प्राकृतिक सीमा का अतिक्रमण किया तथा अगली शती म क्रीट मिसली एव एपूलिया को विजित करने तथा राम मे गरिगलियानो तक विस्तृत पाश्चात्य ईसाई राज्य के भूमध्यसागरीय तट पर मोर्चा स्थापित करने के लिए समुद्र की प्राकृतिक सीमा पार कर ली। समय आने पर इन अन्यायपूर्ण आक्रमणो का प्रतिशोध भी सामने आया।

जिस मध्यकालिक पाश्चात्य ईसाई राजक्षेत्र की प्रच्छन्न शक्तियो को ईसवी सवत की आठवी-नवी शतियो के मुस्लिम आक्रमणो ने उभार दिया था उसकी विस्फोटक प्रतिक्रिया क्रूसेडो क रूप म प्रकट हुई और फिर उस प्रतिक्रिया की प्रतिक्रिया हुई जिसकी उनके असामियो से आशा की जा सकती थी। सलादीन और उसके पहिले एव बाद के इस्लाम के वीरो ने फ्रैंकी जिहादियो का सीरिया से निकाल बाहर किया और उस्मानलियो ने उन्ह रोमानिया स भी निकाल बाहर करने के यूनानी परपरानिष्ठ ईसाइयो के अपूर्ण काय को पूरा कर दिया। जब विजेता उपाधिधारी ओथमन सम्राट मुहम्मद द्वितीय ने (राज्यकाल १४५१ ८१ ई) विघटित होते हुए यूनानी परपरानिष्ठ राजक्षेत्र को एक मुस्लिम सावभौम राज्य प्रदान करने का अपना जीवन काय पूरा कर दिया तब सन्तुलन के बिन्दु पर सघर्ष तोडने के लिए दूसरा अवसर भी उपस्थित हुआ किन्तु उसे भी अस्वीकार कर दिया गया। जैसे आठवी और नवी शती के अरबी मुसलमानो ने आठवी नवी शती म पाश्चात्य ईसाई राजक्षेत्र के फ्रास इटली तथा अन्य ऐसे स्थानो म अनधिकार प्रवेश किया था जहा होने की उन्ह जरूरत न थी, और जैसे उनके इस काय ने क्रूसेडो (धर्मयुद्धो) के रूप म एक शक्तिमान किन्तु अन्त मे असफल मध्ययुगीन पाश्चात्य प्रत्याक्रमण को जन्म दिया था वैसे ही सोलहवी सत्रहवी शतियो म भी तुर्की मुसलमानो ने उन स्थानो म अनधिकार प्रवेश किया जहा होने की उन्हे जरूरत न थी और डेन्यूब की पश्चिम की गृहभूमियो तक घुसते चले गये। इस बार पाश्चात्य प्रतिक्रिया और ज्यादा मौलिक एव शकुनकारी रूप म प्रकट हुई।

ओथमन बालचद्र द्वारा पाश्चात्य ईसाई राजक्षेत्र का घेरा, पाश्चात्यो को इस बात के लिए समझाकर तयार करने मे बहुत-कुछ सफलता प्राप्त करते करते रह गया

कि वे भूमध्यसागरीय बन्द गलियारे (Cul de Sac) की अपनी हानियों को कम कर लें और अपनी शक्तियों को सागर विजय मे लगायें जिनके द्वारा उन्हें समार का स्वामी होना था और पाश्चात्य-द्वारा इस काम का जो परमाश्चर्यकारी सफल उत्तर दिया गया वह ईसाई सवत् की बीसवी शती के मध्यभाग म अवस्थित पर्यवेक्षक को ऐसा लगा मानो एक अनुक्रिया (रिसपौंस), एक प्रत्युत्तर अथवा अनेक प्रत्युत्तरो का निर्माण किया जा रहा हो। अब हम 'आयो' एव यूरोपा' के अपहरणो से बहुत दूर चल आये हैं, पर अब भी अन्त नही हुआ है।

(२) अनुक्रिया (रिसपौंस) की विविधताए

सघर्षों का, मुठभेडो का हमारा सर्वेक्षण और शायद इससे भी स्पष्ट कहें तो, सघर्षों का सर्वेक्षण जिसे हमने उस मालिका के प्रकार के एक चिह्न या उदाहरण के रूप म ग्रहण किया है, सूचित करता है कि प्रत्येक मुठभेड म एक पक्ष म कोई आक्रमण कारी और दूसरे पक्ष मे उस आक्रमण का शिकार है। जो भी हो चूकि इन शब्दो मे एक नतिक फैसले का भाव निहित है इसलिए उनकी जगह नतिक दृष्टि से निरपेक्ष अभिकर्ता एव प्रत्यभिकर्ता (एजेन्ट एव रीएजेन्ट) शब्दो का प्रयोग करना ज्यादा अच्छा होगा या फिर ऐसे शब्दों का प्रयोग करना उचित होगा जिनसे इस अध्ययन के किसी पूववर्ती भाग मे हम परिचित हो चुके हैं अर्थात चनौती देने वाला पक्ष और चुनौती का उत्तर देने वाला पक्ष। अब हम उस प्रतिक्रिया या उत्तर—अनुक्रिया—पर विचार करेंगे और उनका वर्गीकरण करेंगे जो इस प्रकार चुनौती प्राप्त करन वाले समाजो मे उत्पन्न हुए हैं।

निश्चय ही इस बात की कल्पना की जा सकती है कि मूल अभिकर्त्ता (एजेन्ट) का प्रहार इतना जबदस्त हो सकता है कि प्रहारग्रस्त पक्ष बिना कोई प्रभावशाली प्रतिरोध किय ही अधीन हो जाय उसका नाम निशान भी मिट सकता है। निस्सन्देह उन अनेक आदिम समाजो के भाग्य म यह घटित हो चुका है जिनको दुर्भाग्यवश सभ्यताओ से प्रतिरोध करना पडा था। वे उसी प्रकार नष्ट हो गये जसे मारिशस मे आधुनिक पाश्चात्य मानव के प्रवेश पर डोडो पक्षी गायब हो गया था। दूसरे जो न्यूनाधिक डोडो से भाग्यवान् थे अपना क्षुद्र अस्तित्व लिये हुए किसी तरह मानवी जन्तुशालाओ या सुरक्षित स्थानो मे घिसटते रहे और मानवविज्ञानियो की दिलचस्पी की सामग्री बन गये। किन्तु हमारा सम्बन्ध सभ्यताओ से है और हम पहिले ही यह सन्देह करने का कारण प्राप्त कर चुके हैं कि क्या कोई भी सभ्यता यहा तक कि नाजुक और असमाधेय रूप से खण्डित मध्य एव ऐण्डियन अमेरिका की सभ्यताओ म से भी कोई इस प्रकार के भाग्य से पीडित हो चुकी हैं। हो सकता है कि एक लम्बी जीवन मे मत्यु के बाद फिर उनका उत्थान हो जसे सीरियाई समाज न यूनानी समाज के दुःस्वप्न के अधीन विलीन होन क हजार वष बाद पुन अपनी जीवन-यात्रा शुरू की थी।

किसी आक्रान्त सभ्यता के अन्दर विविध प्रकार की जो प्रतिक्रियाए होती हैं उनका सर्वेक्षण करने में हम आरम्भ उनक साथ करेंगे जो प्रकार म उस कारवाई के

मुहतोड जवाब के रूप में हैं जिससे उनकी उदभावना हुई है। और मुहतोड जवाब का सबसे प्रधान रूप है—सनिक बल का जवाब सनिक बल से देना। उदाहरणाथ आक्रामक ईरानी मुस्लिम सनिकवाद के हिंदू एव परम्परानिष्ठ ईसाई पीडितो ने स्वय भी सैनिक दृष्टि से उग्र होकर उसका तुर्की-बतर्की जवाब दिया। सिखों एव मराठो ने मुगलो को तथा यूनानियो एव सब राष्ट्रवादियों ने उस्मानलियो को ऐसा ही जवाब दिया था। इतिहास ऐसे दृष्टान्तो से भरा पडा है जिनम सैनिक दृष्टि से दुबल किसी पक्ष ने अपने आक्रामको के सनिक कौशल मे कुशलता प्राप्त करके उनका जवाब दिया है। स्वीडेन के चार्ल्स द्वादश के हाथों नार्वा में अपनी सेना की अपमान-कारक पराजय पर रूसी जार पीटर महान ने कहा था—'यह आदमी खुद ही बना देगा कि उसे कसे हराया जा सकता है ?' महत्त्व इस बात का नहीं है कि उसन सचमुच ये शब्द कहे या नही क्योकि तथ्य स्वय ही अपनी कथा कह देते हैं और तथ्य ये हैं कि चार्ल्स ने सिखाया था और पीटर ने सीखा था, और चार्ल्स हार गया।

पीटरी शासन के साम्यवादी उत्तराधिकारी पीटर से भी एक कदम आगे बढ गये। जमनी और सयुक्त राज्य जो द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद रूस के क्रमागत शत्रु बन गये थे की औद्योगिक एव सनिक प्रविधियों मे कुशलता प्राप्त करने तक पर सन्तोष न करके रूसी साम्यवादियो ने युद्ध के एक नये ही रूप की रचना की जिसमें शरीर-बल से लडने की पुरानी फैशन वाली प्रणाली का स्थान एक आध्यात्मिक सघष ने ले लिया। इस आध्यात्मिक सघष में प्रधान अस्त्र था वचारिक' प्रचार। लौकिक शक्ति की राजनीति के क्षेत्र मे एक नय अस्त्र के रूप मे साम्यवादियों ने जिस प्रचार-साधन से काम लिया वह उसके प्रयोक्ताओ द्वारा कोई शून्य में से नहीं निर्मित किया गया था। उस प्रथम रूप देने वाले महत्तर धर्मों के प्रचारक थे उसके बाद विक्रयकला के लिए आधुनिक पाश्चात्य समाज ने उसे अपनाया और इस्तेमाल किया था।

समकालिक पाश्चात्य व्यावसायिक विज्ञापन-कला ने अपनी सजावट म जो प्राचुय और 'बाजार-सम्बन्धी शोध' (मार्केट रिसच) में जो उद्यमशीलता प्रदर्शित की उससे आगे तो साम्यवादी प्रचार नही जा सका किन्तु उसने ऐसे परिणामो पर ध्यान केंद्रित किया और उनम सफलता भी प्राप्त की जो इनसे न केवल भिन्न थे वर अधिक महत्त्वपूण भी थे। उसन अपने बारे में सिद्ध कर दिया कि जो पाश्चात्य प्राणी आध्यात्मिक रूप से बुभुक्षा पीडित थे उनके एक लम्बे युग से मूर्छित उत्साह को फिर से जमाने की योग्यता उसम है। जिसके बिना आदमी जी नही सकता उस रोटी के लिए ये पाश्चात्य लोग इतन भूखे थे कि बिना यह पूछे कि य शब्द ईश्वर के हैं या नास्तिक के, साम्यवाद ने उन्हें जो कुछ दिया उसे वे निगल गये। साम्यवाद न ईसाई धर्मोत्तर मानव का आवाहन किया कि वह 'उचित रूप मे तिरस्कृत' परलोकवाद के स्वग की 'बालसुलभ गृहस्मृति से अपन को मुक्त कर ले और एक अस्तित्वहीन ईश्वर के प्रति उसकी जो निष्ठा है उसे वह अपने सामन उपस्थित मानवजाति क प्रति हस्तान्तरित कर द तथा पृथिवी पर ही स्वग प्राप्त करन क काय म अपनी सारी शक्तियां लगा दे। वस्तुत शीतयुद्ध भौतिक शस्त्रों क क्षत्र में उठ खड़ी चुनौती का

प्रचार के स्तर पर एक उत्तर था। और पुराने ढग की सनिक चुनौती न असनिक स्तर पर उत्तर की जो प्रेरणा दी, उसमे यह कोई पहिला ही उत्तर न था।

किन्तु जब पश्चिमवासी ने अपने को याद दिलाया—यदि उस याद दिलाने की जरूरत थी—कि यह वचारिक प्रचार एव ऐसी साम्यवादी शक्ति के शस्त्रागार का गौण अस्त्र मात्र है जिसने सनिक बल म पहिल से ही अपने को पूरी तरह सज्जित कर लिया है तो साम्यवादी रूस के प्रति आध्यात्मिक अनुक्रिया (रेसपॉस) आध्यात्मिक रूप मे उतनी आवश्यक नही रह गयी। अब हम ऐसे दृष्टान्ता को लेंग जिनम शरीर बल के जवाब के रूप मे शरीर-बल का पूणत बहिष्कार किया गया। किन्तु उनम किसी नतिक श्रेष्ठता की कल्पना करना गलत होगा। ऐसे दृष्टान्ता म आम तौर से यह दिखायी पडता है कि या तो शरीर-बल का पर्याप्त प्रयोग सम्भव न था या पहिले उसके प्रयोग मे असफलता प्राप्त हो चुकी थी।

सनिक चुनौती के शान्तिमय उत्तर का एक महत्त्वपूण दृष्टान्त एकमीनियाई युग मे सीरियाई समाज द्वारा बबिलोनी जगत के घेरे मे मिल जाता है। यह उन ईरानी बबरो के सास्कृतिक धमपरिवतन का परिणाम था जो एक सावभौम राज्य के शासक हो गये थे। इस प्रकार अपने बबिलोनी विजेताओ को सीरियाई संस्कृति के जिन मिशनरियो या धमप्रचारको ने पराजित कर दिया था वे न तो सनिक और न व्याव सायिक दुस्साहसी ही थे वे अपनी भूमि से उजडे हुए लोग थे जिन्ह असीरियाई या बबिलोनियाई समर-सामन्तो न इस उद्देश्य से निर्वासित कर दिया था कि उनके द्वारा उनके प्रियतम इसराइल या जूडा की सनिक एव राजनीतिक शक्ति का पुन स्थापन सदा-सदा के लिए असम्भव हो जाय, और जहा तक इस विषय का सम्बन्ध है उनके विजेताओ का हिसाब किताब ठीक निकला। जिस प्रतिक्रिया से बबिलोनियाई सनिक वादियो के सीरियाई पीडितो ने अपने उत्पीडको के हाथ से पहल (इनीशियेटिव) अपने हाथ मे छीन ली उसकी कल्पना भी उत्पीडको ने नही की थी। उत्पीडक सास्कृतिक स्तर पर कोई उत्तर देने की सम्भावना की कल्पना तक करने म इस पूणता के साथ असफल रहे कि अपने ही हाथो उन्होंने अपने पीडितो को सास्कृतिक प्रचार-क्षेत्र मे स्थापित कर दिया। यदि उन्हें उनकी इच्छा के विरुद्ध बलात् वहा नियुक्त न किया गया होता तो वे हर्गिज वहा की यात्रा न करते।

इस प्रकार उन गर-यहूदियो—जेंटाइलो म सास्कृतिक प्रभाव की छाप डालने के प्रयत्न म जिनके बीच विदेश मे वह फल गया था, सीरियाई दायसपोरा अपना साम्प्रदायिक अस्तित्व सुरक्षित रखने की चिन्ता से ही प्ररित हुआ था। यहूदो तथा दूसरे जड से विस्थापितो के इतिहासो म यही चिन्ता अपने को अलग और विच्छिन्न कर लेने की प्रतिकूल नीति के रूप म भी व्यक्त हुई। और उत्पीडन के उत्तर म यह आत्मविच्छेद उस प्रतिक्रिया के प्रकार का एक दूसरा रूप है जो कारवाई के एक दूसरे ही स्तर पर काम करती है—उस कारवाई के जिसका कि वह उत्तर है। 'पृथक्तावाद' की यह नीति तब अपने सरलतम रूप मे व्यक्त होती है जब ऐसे समाज द्वारा उसका आचरण किया जाता है जिसका निवास भौतिक गढ़ मे होता है। द्वीपवासी जपानी

समाज की जब प्राक औद्योगिक पश्चिम से पहिली मुठभेड हुई तब उसने अपने पुर्तगाली अनधिकार प्रवशकों के प्रति एसा ही रुख अपनाया था, प्राय इसी युग म इन्ही अनधिकार प्रवशको का अपने पर्वतीय दुर्गों के बीच अबीसीनिया वासियों ने भी ऐसा ही उत्तर दिया था। लुप्त भारतीय समाज के तत्त्ववादी महायान जीवाश्म के लिए तिब्बत का पठार ऐसा ही एक अगम्य गढ था। किन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से भौगोलिक तथ्यो स रक्षित दहिक पृथक्करण के एस किसी चमत्कार की तुलना उस मनोवज्ञानिक पृथकतावाद म नही की जा सकती जो अपने अस्तित्व के प्रति सकट उपस्थित होने पर डायसपोरा न उत्तर रूप म ग्रहण किया था। क्योकि इस डायसपोरा को इस सकट का सामना उन भौगोलिक परिस्थितियो मे करना पडा था जिन्होने उसको कोई सहायता पहुचाने की जगह उसे उलटे अपने पडोसियो की दया पर छोड दिया था।

एसा पृथकतावाद एक निपट निषेधात्मक कारवाई है और जहा भी इस किसी मात्रा म भी कोई सफलता प्राप्त हुई है वहा वहा उसके साथ सामान्यत और अधिक निश्चयात्मक प्रतिक्रियाए भी साथ लगी पायी जाती रही हैं। एक डायसपोरा के जीवन म उसका मनोवज्ञानिक आत्मविच्छेद असम्भव ही सिद्ध होगा यदि उसका आचरण करने वाले लोग उसके साथ साथ आर्थिक स्तर पर प्राप्य आर्थिक सुविधाओ का लाभ उठाने मे विशेष कुशलता प्राप्त करके न दिखला देंग। अलघ्य सीमाओ या सैनिक पराक्रम के कृत्रिम विकल्प मे अपने को सज्जित करने के लिए डायसपोरा के दो मुख्य साधन होते हैं—१ आर्थिक विशषज्ञता के लिए एक अप्राकृत कुशलता तथा २ परम्परागत विधि (कानून) की छोटी स छोटी बातो का निष्ठापूर्वक पालन।

सांस्कृतिक स्तर पर सनिक बल का उत्तर देने का उपाय भी उन समाजो-द्वारा प्रयुक्त होता रहा है जो किसी विदेशी शक्ति द्वारा यद्यपि डायसपोरा की असहाय स्थिति म नही पहुचाये गये किन्तु उसकी टक्कर का तीव्र आघात जिन्हे प्राप्त हुआ है। उस्मानलियो की परम्परानिष्ठ ईसाई रिआया और मुगलो की हिन्दू रिआया दोनो ने ही इन तलवारबाजो का तख्ता अपनी कलम से उलट दिया। भारत और परम्परानिष्ठ ईसाई जगत के मुस्लिम विजेता अपनी अतीत सनिक विजयो की मृग मरीचिका के कारण इतिहास क उस आगामी अध्याय की यथार्थताओ के प्रति अन्धे हो गये जिसमे उनका राज्य विभाजित होकर फ्रकों के हाथ मे चला गया। रिआया ने पश्चिम की आगामी विजय का आभास पा लिया और अपने को नया व्यवस्था के अनुकूल ढाल लिया।

किन्तु सनिक बल की चुनौती के जिन सब अहिंसक उत्तरो का अबतक पर्यवेक्षण किया गया है, महत्तर धर्म का निर्माण करने का अत्यन्त शान्तिपूर्ण पर साथ ही आत्यन्तिक रूप स विध्यात्मक—रचनात्मक—उत्तर उन सबको लाघ गया है। अपने प्राच्य समकालीनो पर यूनानी समाज के सघात का उत्तर साइबील पूजा, आइसिस पूजा, मिथ्रवाद, ईसाई धर्म एव महायान के अवतरण-द्वारा इसी प्रकार दिया गया था। इसी प्रकार सीरियाइयो पर बबिलोनी समाज का सनिक सघात जूडाधर्म और जरथुस्त्रीय धर्म के अवतार का कारण हुआ। किन्तु यह बात अवश्य है कि उत्तर का यह धार्मिक प्रकार हमारी वर्तमान जिज्ञासा की सीमा के बाहर चला जाता है। वह हम

ऐसे विविध मार्गों पर ले जाकर खडा कर देता है जो एक सभ्यता की चुनौती का दूसरी सभ्यता द्वारा उत्तर देने से निर्मित हुए है, क्योकि जब दो सभ्यताओ के बीच होने वाली टक्कर के कारण एक उच्चतर धम का उदय होता है तो उस नवीन अभिनेता का प्रागण मे प्रवेश एक नवीन अभिनेता मण्डली एव विषय-वस्तु वाले नवीन नाटक की सूचना देता है।

समकालिको के बीच सघर्ष के परिणाम

(१) असफल आक्रमणो का परिणाम

ममकालीन सम्यताओ के बीच होने वाले किसी सघष का परिणाम निश्चित रूप स दानो पक्षो के लिए विघ्नकारी होता है। यह बात अत्यत अनुकूल परिस्थितियों म भी घटित होती है असे उस समय भी जब कोई सम्यता अपनी विकासमान अवस्था मे होने के कारण सफलतापूवक आक्रमण का निराकरण कर देती है। इसका अत्यत महत्वपूण उदाहरण तब देखने को मिलता है जब एकेमीनियाई साम्राज्य-द्वारा किये गये आक्रमण का यूनानी समाज द्वारा निराकरण कर दिये जाने के बाद भी उस पर पडे प्रभाव की ओर हम दृष्टि डालत हैं।

इस सनिक विजय का प्रथम व्यक्त सामाजिक परिणाम यह हुआ कि हेलेनवाद या हेलेन सस्कृति को एक ऐसी स्फूर्ति प्राप्त हुई कि वह प्रत्यक कायक्षेत्र म पुष्पित हो उठी। फिर भी ५० वष के अदर ही इसी सघष का राजनीतिक परिणाम यह हुआ कि घोर सकट आया जिसे यूनानी पहिले तो दूर करने मे असमथ रहे फिर उसकी क्षतिपूर्ति करने मे भी उन्हे असफलता ही प्राप्त हुई। उनके इस सलामीनियनोत्तर (Post Salaminian) राजनीतिक सकट का मूल वही एथेंस का आकस्मिक रूप से गौरवपूण प्रवेश था जो सलामीनियनोतर यूनानी सास्कृतिक सफलताओ का भी मूल कारण रह चुका था।

हमने अन्यत्र इस अध्ययन म लक्ष्य किया है कि पूववर्ती फारसी महायुद्ध के काल म हलास (यूनान) ने एक ऐसी आर्थिक क्रान्ति मे सफलता प्राप्त की थी जिसके द्वारा उसने राजक्षेत्र मे वृद्धि न हाने पर भी वृद्धिशील जनसख्या का भार वहन किया था। पुरानी आर्थिक व्यवस्था म प्रत्येक यूनानी नगर राज्य आर्थिक रूप मे एक स्वतन्त्र घटक था उसकी जगह उन्होंने जो नयी अथव्यवस्था स्थापित की, विशेषतता तथा अन्तर्निभरता उसकी प्रमुख विशेषताए थी। इस आर्थिक क्रान्ति मे एथेंस ने निर्णायक भाग लिया था, किन्तु इस नयी अथव्यवस्था की रक्षा तबतक सम्भव न थी जबतक कि उसी प्रकार का राजनीतिक शासन-व्यवस्था के ढाचे म उसे समाहित न कर दिया जाता। छठी शती ईसापूव की समाप्ति होने के पहिले ही राजनीतिक एकीकरण का कोई न कोई रूप यूनानी जगत् की सबसे अनिवाय सामाजिक आवश्यकता था, और

ऐसा मालूम होता था कि उसका समाधान सोलन एव पीसीस्ट्रटस के एथेंस-द्वारा नही वर लिलान एव विलयामीस के स्पार्टा द्वारा प्राप्त होगा।

किन्तु दुख की बात यह थी कि दारा ने यूरोपीय एव एशियाई हेलास (यूनान) को एकमीनियाई शासन के अन्तर्गत लाने का जो दुर्भाग्यपूर्ण निश्चय कर लिया और उसके कारण हेलास के सामने जो सकट आ गया उसम प्रधान भूमिका का अभिनय स्पार्टा ने एथस के ऊपर छोड दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि जिस हेलास के एकीकरण द्वारा मुक्ति लाभ करने की आवश्यकता थी उसके अन्दर लगभग समान शक्ति वाले दो प्रतियोगी उद्धारको की उपस्थिति का सकट पैदा हो गया। इस स्थिति का विस्फोट हुआ एथस एव पेलोपोनेशिया के बीच युद्ध तथा उस युद्ध म निगत परिणामो म।

राजनीतिक ध्रुवण (Polarization) या खतरे के केन्द्रीकरण का यह सकट ही वह अदृष्ट था जिससे यूनानी जगत के उत्तराधिकारी परम्परानिष्ठ प्राच्य ईसाई जगत् (Orthodox Eastern Christendom) को, अपने जन्मकाल म ही एक ऐसे सीरियाई समाज पर और भी आश्चर्यजनक विजय के अनन्तर ही, पाला पड गया जो अरब खिलाफत के रूप म पुन प्रतिष्ठित हो गया था। ६७३ ७७ म कुस्तुनतुनिया पर अधिकार कर लने का जो प्रयत्न अरबो ने किया उसके बाद ही परम्परानिष्ठ ईसाई राज्य आत्मघात करते-करते रह गया। यह घटना उस समय हुई जब अनातोलियाई और आर्मीनियाई सनिक दलो म श्रेष्ठता के लिए भ्रातृघाती (fratricidal) सघष होने का खतरा पदा हो गया। खर, किसी तरह सम्राट लियो तृतीय एव उसके पुत्र कास्टटाइन पचम की प्रतिभा के कारण स्थिति से रक्षा हो गयी। इन दोनो सम्राटो ने प्रतियोगी सनिक दलो को समझाकर इस बात पर राजी कर लिया कि वे दोनो एक एकात्मक प्राच्य रोम-साम्राज्य म अपने को विलीन कर अपने झगडो को खत्म कर दें। यह बात दोनो दलो की निष्ठा की अपील कर गयी क्योकि इसमे मृत रोम के पुनरुत्थ की भावना थी। किन्तु किसी प्रेत (ghost) का उत्थान मुक्ति का कोई ऐसा साधन नही है जिसे बिना हानि उठाये ग्रहण किया जा सके, फिर एक बाल परपरानिष्ठ ईसाई राज्य को निरकुश सत्तावादी राज्य के दु स्वप्न से बोझिल करके लियो साइरस ने इस समाज के राजनीतिक विकास को दुर्भाग्यपूर्ण, और कालान्तर मे साघातिक मोड प्रदान किया।

यदि हम इतिहास के असफल आक्रमणो के परिणामो के उदाहरण लें—विजयी प्रत्याघियो के आक्रमणो के नही बल्कि असफल कर दिये गये आक्रमणकारियो के आक्रमणो के तो हम देखेंगे कि परिणामकारी चुनौती कठोर एव निर्णायक सिद्ध हुई है।

उदाहरण-स्वरूप हित्ताइतो ने चौदहवी एव तेरहवीं शती ईसापूर्व मिस्र के एशियाई राज्यक्षेत्रो को विजय कर लेने की जो असफल चेष्टा की उसके कारण वे अति प्रयास से इस बुरी तरह दुर्बल हो गये कि मिनोत्तर (Post Minoan) देशत्याग (वाल्कर-वान-डर-उग, Volkerwanderung) की तरगो म विलीन ही हो गये और उसके बाद केवल तारस के अगल-बगल प्रस्तरीकृत जातियो (Fossil Communities)

के झरमुट के रूप म रह गये । इसी प्रकार अपने फोनीशियाई एव इत्रस्कन प्रतियोगियो के विरुद्ध सिसिलियोत यूनानियो (Sicehot Greeks) न जो असफल आक्रमण किया उसने एक राजनीतिक पक्षाघात का अपभ्राकृत हलका रूप ग्रहण किया जिसके कारण उनकी कला सम्बन्धी एव बौद्धिक कमशीलता का अन्त नही हुआ ।

(२) सफल आक्रमणा के परिणाम

(क) समाज-सस्था पर प्रभाव

इस अध्ययन के किसी पूव भाग मे हम यह विचार प्रकट कर चुके है कि समकालीनो के बीच होने वाले जिन सघर्षो म आक्रामक के सघात का परिणाम आक्रामक के सास्कृतिक विकिरण-द्वारा आक्रान्त शरीर म सफलतापूवक प्रवश करने के रूप म होता है उनम मुठभेड करने वाले दोनो पक्ष यह सिद्ध कर देते हैं कि वहा पहिले स ही विघटन की प्रक्रिया चल रही थी । हम यह भी बता चुके है कि विघटन की एक कसौटी समाज सस्था का एक और एस अल्पमत के रूप म विभाजित हो जाना है जो सजनशील होने की जगह केवल प्रभविष्णु हो उठता है और दूसरी ओर एस श्रमजीवी वग के रूप म विभक्त होना है जो नतिक दृष्टि से अपने पूववर्त्ती नेताओ से विच्छिन्न हो गया है—उन नताओ से जो केवल मालिक बनकर रह गये हैं । इस तरह का सामाजिक विभेद प्राय ऐस समुदाय के समाज शरीर मे पहिले से ही हो जाता है जिसका सास्कृतिक विकिरण अपन पडोसी के समाज निकाय (बाडी सोशल) म सफलता पूवक प्रवश कर रहा हो । इस सदा ही दुर्भाग्यपूण एव प्राय ही अवाछित सफलता के सवप्रमुख परिणामस्वरूप सामाजिक रोगलक्षण समस्या को और जटिल बना देता है। आन्तरिक श्रमजीवी वग का विजातीयकरण सदा ही एस सकट उत्पन्न करता है।

श्रमजीवी वग आन्तरिक रूप से ही समाज म एक कदाकार तत्त्व होता है। जब उसका शुद्ध देशज निर्माण होता है तब भी यह तथ्य ऐसा रहता है, किन्तु जब उसकी सख्या बढ जाती है और उसका सास्कृतिक साचा विजातीय आबादी को ग्रहण कर लेन के कारण विविधतामय हो जाता है तब इस कदाकारता म तीव्र गति से वृद्धि हो जाती है । इतिहास ऐसे साम्राज्यो के आकषक उदाहरण प्रस्तुत करता है जो अपने विजातीय श्रमजीवी वग को बढाकर अपने लिए नयी समस्याए खडी करने के अनिच्छुक रहे हैं । रोमी सम्राट आगस्टस ने जान बूझकर अपनी सेनाओ को यूफ्रेटस के आगे अपनी सीमाए बढाने से मना कर दिया था । इसी प्रकार अठारहवी शती म और बाद म प्रथम विश्व महायुद्ध के पूर्वार्द्ध की जमन विजयो के युग मे आस्ट्रियन हैप्सबग साम्राज्य न अपनी सीमाए दक्षिण पूव की ओर बढाने और अपनी पहिले स ही बढी विविधतापूण आबादी मे स्लाव तत्त्वो की वृद्धि करने म अनिच्छा प्रकट की। इसी महायुद्ध की समाप्ति के पश्चात सयुक्त राज्य अमेरिका न बिलकुल दूसरे साधनो से अर्थात् १६२१ एव १६२४ इ के कानूनो-द्वारा विदेशो से आने वाले उन भावी आप्रवासियों (इम्मीग्रटस) की सख्या को बहुत घटाकर यही लक्ष्य सिद्ध किया। उन्नीसवी शती मे सयुक्त राज्य की सरकार ने उस आशावादितापूण सिद्धान्त पर चलने का प्रयास

किया था जिसे यहूदी उपन्यासकार इस्राइल जैंगविल ने 'द्रवणशील पात्र' (मेल्टिंग पाट) का व्यग्यपूर्ण नाम दिया है। उस समय यह मान लिया गया था कि सब आप्रवासी, या कम से कम यूरोप से आने वाले सब आप्रवासी आसानी से 'ऊन म रगे' (dyed in the wool) देशभक्त अमेरिकनो के रूप म बदल जायेंगे और इसीलिए कि यूजियन के विस्तृत क्षेत्र औद्योगिक दृष्टि से बहुत कम आबादी वाले थे। प्रजातन्त्र जितने ही ज्यादा उतने ही खुश वाले सिद्धान्त के अनुसार सबका स्वागत करने को अच्छा समझता था। प्रथम विश्व महायुद्ध के बाद इससे अधिक उल्लासहीन दृष्टिकोण का प्रसार हुआ। यह अनुभव किया गया कि 'द्रवणशील पात्र' पर बहुत ज्यादा बोझ बढ़ जाने का खतरा आ गया है। दूसरा प्रश्न यह आ खडा हुआ कि क्या विजातीय श्रमिकवर्गीय भौतिक सस्थाओ के बहिष्करण से विजातीय श्रमिकवर्गीय आध्यात्मिक विचारो—जपानी शब्दावली म 'खतरनाक विचार'—का भी निराकरण हो जायगा? इसका उत्तर 'नही' म प्राप्त हुआ।

किसी सफल आक्रामक सभ्यता को सामाजिक मूल्य चुकाना पडता है, वह है उसके विजातीय असामी की विदेशी सस्कृति का आक्रामक समाज के आन्तरिक श्रमजीवी वर्ग की जीवन धारा मे क्षरण और उस नैतिक खाई का आनुपातिक फैलाव जो इस विदेशीकृत श्रमजीवी वर्ग और भावी प्रभविष्णु अल्पमत के बीच पहिले से मुह बाये हुए खडी रहती है। रोमी व्यग्यकार जुवेनाल ने ईसाई सवत् की दूसरी शती मे लिखा था कि सीरियाई ओरोनतीज टाइबर म बह रहा है। जिस आधुनिक पाश्चात्य समाज ने वासयोग्य सारी पृथिवी पर अपने प्रभाव की किरणें फैला रखी हैं उसमे तो न केवल लघु ओरोनतीज वरं महती गगा एव महती यागत्सी भी टेम्स और हडसन नदियो मे बहकर मिलती दिखायी पडती हैं। इसके विरुद्ध डन्यूब ने अपनी दिशा बदल दी है और पहिले से ही आकण्ठ भरे वियना स्थित द्रवणपात्र मे रूमन, सर्ब बलगार एव यूनानी धर्मान्तरितो की सास्कृतिक जलोढ मिट्टी (Cultural alluvium) लाकर सचित कर दी है।

आक्रान्त पक्ष की समाज-सस्था पर सफल आक्रमण का प्रभाव कम घातक हुए बिना भी अधिक जटिल होता है। एक ओर तो हम देखगे कि समाज-सस्था मे जो सस्कृति-तत्त्व सहज-स्वाभाविक होकर निर्दोष या कल्याणकारी हो चुका है वही एक विदेशी निकाय म बलात् प्रवेश करके नया एव ध्वसक प्रभाव पैदा करता है। इसी नियम या कानून को एक लोकोक्ति म सक्षिप्त करके कहा गया है—एक मनुष्य का भोजन दूसरे के लिए विष है। दूसरी ओर हम यह भी देखते हैं कि कभी का विच्छिन्न सस्कृति-तत्त्व जब आक्रान्त समाज के जीवन मे एक बार बलात् प्रवेश पा लेने म सफल हो जाता है तो अपने पीछे वह उसी उद्गमस्थल से निकल दूसरे तत्त्वो को भी खीच ले आता है।

विजातीय सामाजिक वातावरण पर आक्रमण करने वाले एक निर्वासित सस्कृतितत्त्व के इस ध्वसकारी अभिनय के उदाहरण पहिले ही हमारे ध्यान म आ चुके है। जस उदाहरणस्वरूप हम कुछ ऐसी दुर्घटनाए देख चुके हैं जो विविध अ-पाश्चात्य

समाजो पर पाश्चात्य जगत् की अद्भुत राजनीतिक संस्था के सघात के कारण घटित हुई है। पाश्चात्य राजनीतिक विचारधारा का आवश्यक लक्षण रहा है—अपने राजनीतिक ससग क सिद्धात मे आवश्यक तत्त्व के रूप म भौगोलिक सगोत्रता (propinquity) की भौतिक घटना का ग्रहण। पाश्चात्य ईसाई समाज के जम पर विजीगाथिया म हमने इस आदश का उदय होते देखा जिसन स्थानीय यहूदी दायसपोरा का जावन असहनीय बना दिया। विजीगाथिया म जो विनाश हुआ उसन पाश्चात्य ईसाई राजक्षेत्र की मातृभूमि के बाहर की दुनिया को भी क्लेशित करना आरम्भ कर दिया। यह बात तब हुइ जब आधुनिक पाश्चात्य सास्कृतिक प्रभाव की एक अत्यत शक्तिमान तरग विश्व के एक क बाद दूसरे भाग मे प्रवाहित होती अपन साथ यह विचित्र पाश्चात्य राजनीतिक विचारधारा लेती गयी—यह विचार धारा जो ग्राम्य राज्यो म निहित प्रादेशिक प्रभुसत्ता की पुरातन सस्था पर लोकतत्र की नवीन भावना क सघात से ऊजस्वित हो उठी थी।

हमन देखा है कि १८१८ ई के साथ समाप्त होने वाले सौ वर्षों के बीच किस प्रकार भाषाई राष्ट्रवाद न डयूवीय हैप्सबग राजतत्र को विच्छिन्न कर दिया। राज नीतिक मानचित्र क इस क्रातिकारी पुन शोधन ने पोलण्ड लिथवेनिया के एक पूववर्ती सयुक्त राज्य की विलीन प्रजाओ पर क्षणभगुर राजनीतिक मुक्ति के सदेहास्पद आशीर्वाद की वर्षा भी की। पोलण्ड लिथवनिया का यह सयुक्त राज्य अठारहवी शती के अत के लगभग हैप्सबग होहजोलन एव रोमनोव साम्राज्य के बीच विभाजित हो गया था। १६१८ ई म तीनो विभाजक साम्राज्यो के पतन क बाद पोलण्ड मे यह महत्त्वोमादी (megalo maniac) आकाक्षा जग उठी कि सुविधाप्राप्त पोलिश राष्ट्र के वासस्थान (Lebensraum) के लिए उपवन प्राचीर (Park walls) के रूप मे १७७२ ई की सीमाओ को पुन स्थापित किया जाय। उसके इस महत्त्वोमाद का उन लियुवनियनो एव यूक्रेनियनो न बडा ही उद्वगपूण विरोध किया जो पहिले १५६६ ई म बने राष्ट्रोपरि वा अधिराष्ट्रीय राजमण्डल (Supra National Commonwealth) मे पोलो की प्रजा नहा वर उनके भागीदार रह चुक थे। आगामी वर्षो मे भाषाई राष्ट्रवाद की दुर्भावना से प्ररित इन तीनो राष्ट्रो की साघातिक लडाइया ने पहिले १६३६ मे नवीन रूस जमन विभाजन क लिए और अत मे, अत्यधिक वेदनाए सहन करन के बाद, १६४५ मे स्थापित रूसी साम्यवादी अत्याचार के लिए रास्ता तयार किया।

पारम्परिक पाश्चात्य सस्था (ट्रडीशनल वेस्टन इस्टिटयूशन) के आधुनिक पाश्चात्य परिष्कार (माडन वेस्टन रिफाइनमट) ने पाश्चात्य जगत् क प्राच्य यूरोपीय प्रयाणो (ईस्ट यूरोपियन मार्चेज) म जो ताण्डव किया वह भी इतना दु खदायी और करुण नहीं था जसा कि राष्ट्रवाद के उसी मत्रामक विष का वधमान राजनिकाय या समाज पर पडा प्रभाव था, क्योकि न तो अठारहवी शती वाले पोलण्ड लियुवेनिया की अव्यावहारिक अराजकता और न तो आस्ट्रियन हैप्सबग का आवेशजनक रूप से प्रबुद्ध राजतत्र भौगोलिक मिश्रण वाली ऐसी जातियो के लिए एक आचरणीय राजनीतिक विधान खोज निकालने की सामान्य समस्या के वकल्पिक समाधान के रूप मे

ओयमन मिल्लत प्रणाली के मूल्य म तुलना म ठहर सकना था, जो पाश्चात्य यूरोप की क्षत्रा अलग जातियों के साथ समानता रखन की अपेक्षा व्यापार एव धर्म म ज्यादा समानता रखती थी। जिन हिंसक उपायो स ओयमन मिल्लतो को मरोड़कर तथा खण्ड खण्ड करके सम्पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न स्वतन्त्र राष्ट्रीय राज्यो व विदेशी साथ म लाना गया उनकी चर्चा इस भाग के किसी पूर्व पृष्ठ म की जा चुकी है और उन्हे यहा दोहराने की आवश्यकता नही है। यहा हम इतना ही कहना है कि ब्रिटिश भारतीय साम्राज्य का जब परस्पर विरोधी भारत एव पाकिस्तान नामक 'राष्ट्रीय राज्यो' के रूप म विभाजन हुआ या जब ब्रिटेन सरक्षित फिलस्तीन का परस्पर विरोधी इस्राइल एव जार्डन राज्यो मे विभाजन हुआ तो उनके साथ जो लोमहर्षक विघटनाए हुई वे इस बात का उदाहरण हैं कि एक ऐसी सामाजिक परिस्थिति म विकीर्ण राष्ट्रवादिनी पाश्चात्य विचारधारा ने कसा घातक प्रभाव डाला है जहा मिल्लत म सघटित जातिया पहिले भौगोलिक रूप मे मिश्रित होकर एक साथ रहती आयी थी।

जब सस्कृति-तत्त्व अपने उचित चौखटे से विच्छिन्न किये जाकर किसी विजातीय सामाजिक वातावरण म प्रविष्ट किये जाते हैं तब उनसे जो विनाशात्मक क्षमताए प्रकट होती हैं वे आर्थिक स्तर पर भी उदाहरणो द्वारा चित्रित का जा सकती हैं। उदाहरणस्वरूप बाहर से लाये हुए पाश्चात्य उद्योगवाद का अनतिक प्रभाव दक्षिण पूर्व एशिया पर विशेष रूप स पडा देखा जा सकता है—उस दक्षिण-पूर्व एशिया पर जहा हठवादितापूर्ण पाश्चात्य आर्थिक क्रमशीलता-द्वारा गतिप्राप्त विजातीय औद्योगिक क्रान्ति न अपनी आर्थिक भट्ठी के लिए मानवीय इधन जुटाने के सिलसिल म सामाजिक रूप स अब भी परस्पर-कटु एव कठोर जातियो का एक भौगोलिक मिश्रण तयार कर दिया।

> आधुनिक विश्व मे हर जगह आर्थिक शक्तियों ने पूजी एव श्रम, उद्योग एव कृषि, नगर एव ग्राम के बीच के सम्बन्धों मे तनाव उत्पन्न कर दिया है, किन्तु आधुनिक पूर्व मे यह तनाव और भी ज्यादा है क्योंकि उनमे इसके साथ जातिगत दरार भी पड गयी है। विदेशी पूर्विया (foreign Oriental) न केवल यूरोपीय और देशी या मूलवासी (native) के बीच एक मध्यवर्ती (buffer) बनकर रह गया है वर वह देशज एव आधुनिक विश्व के बीच एक बाड भी बन गया है। कुशलता के पथ ने प्राच्य धरती पर केवल एक स्मरणीय पाश्चात्य गगनचुम्बी अट्टालिका निर्मित कर दी जिसमे देशजों ने नींव या तलगृह का स्थान ग्रहण किया। सब एक ही देश मे निवास करते थे परन्तु भवन एक दूसरी ही दुनिया का, आधुनिक दुनिया का था जिसमे देशज का प्रवेश निषिद्ध था। इस एकाधिक अथप्रणाली मे प्रतियोगिता उससे कहीं ज्यादा तीक्ष्ण है जितनी वह पाश्चात्य जगत् मे है। 'यहा भौतिकवाद, तर्कनावाद (Rationalism), व्यक्तिवाद तथा आर्थिक लक्ष्य पर केन्द्रीकरण उससे कहीं अधिक पूर्ण एव निरपेक्ष (Absolute) है जितना वह सजातीय पाश्चात्य देशों में है, विनिमय और बाजार में पूर्ण अवशोषण (Absorption), एक पूजीवादी विश्व जिसमे व्यवसाय-सस्था वासी है पूजीवाद का उससे कहीं

अधिक प्रतिरूप जितना कि कोई तथाकथित पूंजीवादी देशों के विषय मे सोच सकता है—उन पूंजीवादी देशो के विषय मे जो अतीत से धीरे धीरे निकलकर विकसित हुए हैं और अब भी अपनी सकडों जड मूलों सहित उसम जुडे हुए हैं।"[1] इस प्रकार, यद्यपि ये कतिपय पराधीन देश सूरत शक्ल मे पाश्चात्य रेखाओं पर पुनगठित हुए हैं किन्तु वस्तुत अथ प्रणालियों के रूप मे उत्पादन के लिए न कि सामाजिक जीवन के लिए उनका पुनगठन हुआ है। मध्ययुगीन राज्य, बिलकुल आकस्मिक ढग पर अत्यन्त तेजी के साथ आधुनिक कारखाने के रूप में परिवर्तित कर दिये गये हैं।'[2]

सास्कृतिक विकिरण एव ग्रहण का हमारा दूसरा कानून है सस्कृति के उस फर्मे (Pattern) की प्रवृत्ति जिसन विकिरणकारी समाज निकाय म अपन का स्थापित कर लिया है और उन अगभूत सस्कृति-तत्त्वो के पुन सकलन एव पुर्नमिलन के द्वारा ग्रहणशील समाज निकाय मे भी अपनी प्रभुता जमा ली है जो सचार प्रक्रिया म एक दूसरे से विच्छिन्न हो गये थे। इस प्रवृत्ति को आक्रान्त समाज की प्रतिरोध करने वाली विरोधी प्रवृत्ति का सामना करना पडता है किन्तु इस प्रकार के प्रतिरोध स सिवाय इसके और कुछ नही होता कि वह प्रक्रिया कुछ धीमी पड जाती है। जब हम अन्तःकरण या रिसने (infiltration) की इस यत्नबहुल प्रक्रिया को देखते है जो धीरे धीरे रास्ता बनाती हुई उसे उस दु खदायी अन्तिम बिन्दु तक ले जाती है जहाँ घेरा डालने वाला सम्पूण मीडियन दल घिरी हुई इस्राइल की रक्षा पक्ति मे प्रवेश कर जाता है तब स्पष्ट हो जाता है कि इस यन्त्रणादायक चमत्कार का आश्चयकारी पक्ष सुई की बाधाकारिता नही है वर ऊट की जिद है। बलात् प्रवश करने वाले सस्कृति तत्त्व इतनी आसानी म अलग नही किये जा सकते जितनी आसानी की कल्पना की जाती है, और फिर एक चीज दूसरे को रास्ता दिखाती है।

निश्चय ही आक्रान्त समुदाय सदा उन परिणामो के प्रति अन्ध नहीं होते जो ऊपर से देखने मे बहुत साधारण एव अहानिकर विजातीय सस्कृति-तत्त्व को भी प्रवेश की स्वीकृति देने पर पदा हो सकते हैं। हम पहिले ही चन्द ऐसे ऐतिहासिक सघर्षों का उल्लेख कर चुके हैं जिनम आक्रान्त समुदाय ने आक्रामक के आक्रमण को मार भगाने म सफलता प्राप्त की है यहाँ तक कि उसे अस्थायी रूप से भी टिकने का मौका नही दिया है और आत्म विसवाहन (Self insulation) की अनमनाय नीति का, जिसन ये दुलभ विजयें प्राप्त की दूसरे ऐसे मामलो मे भी प्रयोग किया जा चुका है जहा वह असफल सिद्ध हुई है। हमने इस नीति को जीलाटवाद' (Zealotism) कहा

[1] डा जे एच बोयके De Economiche Theorie der Dualistische Samenleving in De Economist 1935 p 78

[2] फर्निवाल, जे एस 'प्राग्रेस एण्ड वेलफेयर इन साउथईस्ट एशिया (न्यूयाक १९४१, सेक्रेटेरियट इन्स्टीट्यूट आफ पसिफिक रिलेशन्स) पृष्ठ ४२ ४४। उसी पुस्तक के पृष्ठ ६१ ६३ में इस उद्धरण की विस्तृत व्याख्या की गयी है।

है यह उस यहूदी दल के नाम पर ग्रहण किया गया है जिसने पवित्र भूमि (Holy land) से यूनानी संस्कृति को सम्पूर्णत अस्वीकृत एवं बहिष्कृत करने का प्रयत्न किया था। जीलाट का सहज स्वाभाविक बहिष्कार भावात्मक एवं अन्तःप्रज्ञ (Emotional and intuitive) है किन्तु इस नीति का अनुगमन सचेत बौद्धिक स्तर पर भी किया जा सकता है। इस दूसरी प्रकार का एक महत्त्वपूर्ण उदाहरण है—जापान एवं पाश्चात्य जगत के सम्बन्धों का विच्छेद जो बड़े गम्भीर विचार के बाद हिदेयोशी तथा उसके तोकूगवा उत्तराधिकारियों द्वारा १६३८ में समाप्त होने वाले ५१ वर्षों के बाद धीरे धीरे अग्रसर किया गया। किन्तु जब हम देखते हैं कि बलात् प्रवेश करने वाले विदेशी संस्कृति-साँचे के विविध तत्त्वों में जो प्रच्छन्न अन्तर्निर्भरता है उसके प्रति इसी प्रकार की तत्परता से इसी प्रकार के निष्कर्ष पर एक एकान्त एवं पिछड़े स्थान का अरब शासक भी पहुँचा था तो अधिक आश्चर्य होता है।

तर्कनावादी जीलाट की मनोदशा का एक सरस चित्र उस वार्तालाप में प्राप्त होता है जो १९२० ई में साना के जैदी इमाम यहिया और एक ब्रिटिश दूत के बीच हुआ था। दूत को इस कार्य के लिए भेजा गया था कि अदन के जिस ब्रिटिश संरक्षित प्रदेश पर १९१४-१८ के महायुद्ध में इमाम ने कब्जा कर लिया था उसे शान्तिपूर्वक वापिस कर दे। जब दूतमण्डली को मालूम हो गया कि उसके आगमन का उद्देश्य सफल नहीं होगा तो अंतिम साक्षात्कार में वार्तालाप को दूसरा मोड़ देने की इच्छा से ब्रिटिश दूत ने इमाम को उसकी नवीन सेना के सैनिक गठन पर बधाई दी। यह देखकर कि इमाम ने उसे सौजन्य एवं प्रसन्नता के साथ ग्रहण किया उसने आगे कहा —

मेरा खयाल है कि आप दूसरी पाश्चात्य संस्थाएँ भी जारी करेंगे।

'मैं तो ऐसा नहीं सोचता। इमाम ने मुस्कुराते हुए कहा।

सचमुच! इससे मेरी दिलचस्पी बढ़ गयी। क्या मैं श्रीमान् से इसके कारण पूछने की धृष्टता कर सकता हूँ?

ओह! मैं नहीं समझता कि मुझे दूसरी पाश्चात्य संस्थाएँ पसन्द करनी चाहिए। इमाम ने कहा।

जरूर! उदाहरणार्थ कौन सी संस्थाएँ?

'अरे जैसे कि पार्लमेण्ट है। मैं स्वयं सरकार बने रहना पसन्द करता हूँ। मुझे पार्लमेण्ट श्रान्तकारी लग सकती है। इमाम ने कहा।

वहाँ तक क्यों जाते हैं! मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि उत्तरदायी प्रतिनिधि-सत्तात्मक शासन हमारी पाश्चात्य सभ्यता का कोई अनिवार्य अंग नहीं है। इटली को देखिए। उसने उस शासन-पद्धति का त्याग कर दिया है फिर भी वह महती पाश्चात्य शक्तियों में से एक है। दूत ने कहा।

ओह पर मदिरा तो रह जाती है। इमाम ने कहा— मैं अपने देश में उसे फैलने नहीं देखना चाहता। यहाँ अभी तक वह प्रायः अज्ञात है।

बिलकुल स्वाभाविक है। किन्तु बात यदि वहाँ तक पहुँचती है तो मैं आपको

विश्वास दिला सकता हूं कि मदिरा भी पाश्चात्य सभ्यता का कोई अनिवार्य भाग नहीं है। अमेरिका को देखिए। उसने उसे छोड़ दिया है और वह भी महती पाश्चात्य शक्तियों में से एक है। अंग्रेज ने कहा।

"जो हो, मैं पालमेटो को पसन्द नहीं करता, शराब और उस तरह की चीजों को भी।" इमाम ने ऐसी मुस्कान के साथ कहा जो कहती थी कि वार्तालाप को अब समाप्त समझना चाहिए।

कथा से शिक्षा यह मिलती है कि अपनी अन्तर्दृष्टि की कुशाग्रता व्यक्त करने में इमाम ने निश्चित रूप से अपने अभिप्राय की दुर्बलता पर आरोप किया। अपनी सत्ता के लिए पाश्चात्य प्रविधि या तकनीक को अपनाकर उसने पच्चड की पतली धार का आरम्भ पहिले से ही कर दिया था उसने एक ऐसी सांस्कृतिक क्रांति शुरू कर दी थी जो अन्त में यमन-वासियों के सामने इसके सिवाय कोई विकल्प नहीं छोड़ती थी कि पाश्चात्य वस्त्रों की पूरी रेडीमेड—सिली सिलाई—पोशाक से अपनी नग्नता को ढकें।

यदि इमाम की भेंट अपने हिन्दू समकालिक महात्मा गांधी से हुई होती तो हिन्दू राजममज्ञ संत से उसे यही बात सुनने को मिली होती। अपने साथी हिन्दुओं को अपनी कपास हाथ से कातने और बुनने की पुरानी परिपाटी की ओर लौटने को कहकर गांधी उन्हें पाश्चात्य आर्थिक मकड़े के जालसदृश दीखने वाले फन्दे से निकालने का एक मार्ग दिखा रहे थे, किन्तु यह गांधीनीति दो कल्पनाओं या मान्यताओं पर आश्रित थी जो उनकी नीति के अपने लक्ष्य में सफल होने के लिए मुनासिब साबित होनी चाहिए थी। पहिली परिकल्पना या मान्यता तो यह थी कि इस नीति के कारण हिन्दुओं को जो आर्थिक बलिदान करने पड़ेंगे उनके लिए वे तैयार हो जायगे और निश्चय ही वे इसके लिए तैयार नहीं थे। किंतु अपने देशवासियों की आर्थिक अनासक्ति के मामले में गांधी को यदि निराशा न होती तो भी उनकी दूसरी अन्तर्हित मान्यता के मिथ्या होने के कारण उनकी नीति असफल हो गयी होती। बात यह है कि यह मान्यता आहूत आगन्तुक संस्कृति के आध्यात्मिक गुण के विषय में मिथ्याबोध या गलतफहमी के कारण थी। गांधी ने पिछली आधुनिक सभ्यता में उस लौकिक सामाजिक ढांचे के सिवा अपने को कुछ देखने न दिया जिसमें धर्म का स्थान प्रौद्योगिकी ने ले लिया था। स्पष्टतः उन्हें यह नहीं अनुभव हुआ कि राजनीतिक संघटन प्रकाशन और प्रचार के जिन समकालिक साधनों के कुशल प्रयोग के वह आचार्य हैं वे भी उतने ही पाश्चात्य हैं जितने वे पुतलीघर (कपड़े की मिलें) हैं जिन्हें झुकाने पर वह तुले हुए हैं। किन्तु हम तो इससे भी आगे जाकर कह सकते हैं क्योंकि गांधी स्वयं ही पश्चिम से आये सांस्कृतिक विकिरण की एक उपज थे। जिस आध्यात्मिक घटना ने गांधी के आत्मबल (Soul Force) को मुक्त किया वह आत्मा के मन्दिर में हिन्दू धर्म भावना एवं सोसाइटी आफ फ्रेंड्स (मित्र-समाज) के जीवन में निहित ईसाई धर्मोपदेश की भावना के बीच का संघर्ष था। संतोपम महात्मा और लड़ाकू इमाम दोनों ही एक और समान नाव में थे।

सभ्यताओं म जो स्तर होती है उसे सम्पक म सामान्य तरीका में कहा चाहे तो वह सकते हैं कि जब आक्रान्त पक्ष आक्रामक रूप से विघटनात्मक या रेडियो धर्मी (Radioactive) संस्कृति द्वारा अपने समाज निकाय में उसके एक भी संस्कृति तत्त्व को प्रवेश करने न देना सही पाता तो उसके जीवित रहने का सबसे एक ही सयाग रह जाता है—मनोवैज्ञानिक क्रांति करना । जीवन के बारे रंग छोड़ देने और उसके प्रतिकूल हेरोडियन वाला ढंग अपनाने अर्थात आक्रमणकारी के उन अस्त्रों से लड़ने की कला सीख लेने से वह उस अवस्था में भी अपने को बचा सकता है । निकट आधुनिक पश्चिम में उस्मानलियों का जो संघर्ष हुआ उसे हम उदाहरण रूप में ले सकते हैं। सुलतान अब्दुलहमीद द्वितीय पाश्चात्यकरण से चिढ़ता था उसकी नीति असफल हो गयी किन्तु वही मुस्तफा कमाल अतातुर्क की पूर्ण पाश्चात्यकरण की नीति ने मुक्ति का एक व्यावहारिक मार्ग खोज निकाला । यह कल्पना करना वाहियात है कि एक समाज अपनी सेना को तो पाश्चात्य ढंग पर संगठित कर किन्तु और बातों में पहिले की भाँति ही चलता रहे । ऐसी कल्पनाओं की निरर्थकता पीटर के रूस उन्नीसवीं शती के तुर्की और मुहम्मद अली के मिस्र में पहिले ही सिद्ध हो चुकी है । केवल इतनी ही बात नहीं है कि एक पाश्चात्य प्रणाली पर संघटित सेना को पश्चिमी विज्ञान एव उद्योग शिक्षा एव चिकित्सा का अवलम्ब चाहिए । सेना के अफसर तो अपने पेशे के कौशल से असम्बद्ध पाश्चात्य धारणाएं स्वयं ही ग्रहण कर लेते हैं—विशेषत उस अवस्था में जब वे सैनिक शिक्षण के लिए विदेश जाते हैं । उक्त तीनों देशों के इतिहास इस विरोधाभास को प्रकट करते हैं कि किस प्रकार सैनिक अफसरों के वर्गों ने उदार क्रांतियों का नेतृत्व किया । १८२५ ई की अल्पजीवी रूसी दिसम्बरी क्रांति में, १८८१ ई के अरबी पाशा द्वारा नियोजित मिस्री क्रांति में तथा १९०८ ई की कमिटी आफ यूनियन ऐण्ड प्राग्रेस (ऐक्य एव प्रगति समिति) की तुर्की क्रांति में, जो निष्फल न होने पर भी आरम्भ के दस वर्ष के अन्दर संकटग्रस्त हो गयी ये दृश्य दिखायी पड़ते हैं ।

(ख) आत्मा की अनुक्रियाएं (रिसपासेज ऑव दि सोल)

१ अमानवीकरण

समकालीनों के बीच होने वाले संघर्षों के सामाजिक परिणामों से मनोवैज्ञानिक परिणामों की ओर ध्यान करने में हमारे लिए यह सुविधाजनक होगा कि एजेण्ट एव रीजेण्ट (अभिकर्त्ता एव प्रतिकर्त्ता) आक्रामक एव आक्रान्त की विपरीत भूमिकाएं करने वाले पक्षों पर पड़ते तत्सम्बन्धी प्रभावों की अलग अलग विवेचना की जाय । और सबसे ज्यादा अच्छा यह होगा कि पहिले एजेण्ट (अभिकर्त्ता) पर पड़ने वाले प्रभाव की परीक्षा कर ली जाय क्योंकि वही है जिसने संघर्ष में पहल की है ।

आक्रामक रूप से रेडियोधर्मी जो सभ्यता विजातीय समाज निकाय में प्रवेश करने में सफल हो गयी है उसके प्रतिनिधि फरिसायों की नैतिक उच्छृंखलता के आगे कन्धा डाल देते हैं । यह फरिसी ईश्वर का धन्यवाद करता है कि वह दूसरे मनुष्यों की

तरह नही है। प्रभुताप्राप्त अल्पमत उन रगरूटो के प्रति जो पराजित एव गुलाम विदेशी समाज निकाय से आतरिक श्रमजीवी वर्ग म अनिवार्यत भर्ती कर लिय जाते हैं अधोमानव सवको की भाति दृष्टि रखने लगता है। नतिक उच्छृखलता की इस विशेष शिरा पर प्रतिशोध की जो वृत्ति छा जाती है वह अद्भुत रूप से व्यग्यपूर्ण होती है। उस क्षण के लिए अपनी दया पर निर्भर साथी मानव-जीव के साथ तिरस्कृत गुलामो की भाति आचरण करने मे मालिक अनजाने ही उस सत्य की पुष्टि कर रहा होता है जिसे मिथ्या सिद्ध करने की कामना रखता है। सत्य यह है कि सभी आत्माए अपने सिरजनहार की दृष्टि म बराबर हैं, और जो मनुष्य अपने साथियो से उनकी मनुष्यता को लूट लेने की चेष्टा करता है वह अपनी मनुष्यता भी खो देता है। किन्तु अमानवता की सभी अभिव्यक्तिया एक समान गर्हित नहीं हैं।

अमानवता के लघुतम अमानवी रूप का उस सफलतापूर्ण आक्रामक सभ्यता के प्रतिनिधि द्वारा प्रदर्शन होना स्वाभाविक है जिसकी सस्कृति के साचे म धर्म एक अधिशासी और अनुस्यापक तत्त्व है। ऐसे समाज म गुलाम या शोषित की मानवता की अस्वीकृति उसके धार्मिक वक्तव्य या शून्यता का रूप ले लेगी। प्रभुताप्राप्त ईसाई राज्य उसे बपतिस्मारहित म्लेच्छ (Heathen) कहकर कलकित करेगा और प्रभुताशाली इस्लाम उसे सुन्नतहीन काफिर कहकर। साथ ही यह भी मान लिया जायगा कि दास की लघुता का इलाज धार्मिक मत परिवर्तन द्वारा हो सकता है और बहुतेरे मामलो म प्रभुताशाली उच्चस्थ लोगो न इस इलाज के लिए बडा श्रम किया है, शायद अपने हितो के विरुद्ध जाकर भी।

चर्च की शक्तिमती सार्वभौमिकता मध्यकालिक ईसाई धर्मजगत की चाक्षुष कला (visual art) म मूर्त हुई—उस समागम म जिसके द्वारा तीन मागियो (Magi) म से एक को नीग्रो (हब्शी) के रूप मे चित्रित किया गया है। प्रारम्भिक अधुनातन पाश्चात्य ईसाई धर्म-जगत मे जिसने सामुद्रिक नौ परिवहन (Oceanic navigation) की कला म नपुण्य प्राप्त करके समस्त जीवित मानवीय समाजो पर अपनी उपस्थिति नाद दी थी चर्च की सार्वभौमिकता की सच्चाई स्पेनी एव पुर्तगाली विजेताओ (Conquistadores) की उस तयारी म दृष्टिगत हुई जो उन्होने आगे बढकर 'रग' की पर्वा न करते हुए विदेशात्मक रोमन कथलिक ईसाई धर्म स्वीकार करने वालो को अपनाकर और उनके साथ सामाजिक सम्पर्क स्थापित करके बल्कि विवाह करके भी, प्रकट की। पेरु और फिलीपाइस के स्पेनी विजेता अपनी भाषा की अपेक्षा अपने धर्म का प्रचार करने को इतने उत्सुक थे कि उन्होने पराजित जातियो का देशी भाषाओ को कैथलिक उपासना एव साहित्य के प्रचार का साधन बनाकर उन्हे कस्टीलियन भाषा का सामना करने की क्षमता प्रदान की।

इस प्रकार अपने धार्मिक विश्वास की सच्चाई प्रदर्शित करने म स्पेनी एव पुर्तगाली साम्राज्य-निर्माताओ की अगुवाई उन मुसलमानो ने की जो आरम्भ से ही प्रजाति (race) का विचार किये बिना अपने धर्म की नयी दीक्षा लेने वालो के साथ अन्तर्जातीय विवाह सबध स्थापित करते आये थे। इतना ही नहीं, वे इसमे भी आगे

गये। इस्लामी समाज को कुरान के पाठ म निहित एव धर्मानुगत परिगत म प्राप्त हुई थी एव स्वीकृति कि ऐसे गर इस्लामी मजहब भी हैं जो अपर्याप्त होने हुए भी दनी सत्य को प्रामाणिक परन्तु आंशिक रूप म प्रकट करत हैं। मूलत यह बात यहूदियो एव ईसाइयो के लिए कही गयी थी किन्तु बाद म जरथुस्त्री (पारसी) और हिन्दुओ पर भी लागू हो गयी। पर अपने धर्मावलम्बी सुन्नी और शिया सम्प्रदायो के बीच इस प्रबुद्ध स्तर पर उठने म मुसलमान बिलकुल असफल रहे। यहा उन्होंने अपने को उतने ही बुरे रूप मे व्यक्त किया जितना इन्ही परिस्थितियो म ईसाइयो ने किया था— फिर चाहे वे प्रारम्भिक चच वाले रहे हो या सुधारवादी युग (रिफार्मेशन पीरियड) म रहे हो।

प्रभुताप्राप्त वग द्वारा दलित वग की मानवता की अस्वीकृति का दूसरा कम से कम अनिष्टकर रूप है उस समाज म उसकी सास्कृतिक अपनायता का दावा, जो परपरागत धार्मिक कोष कीटावस्था को तोडकर बाहर निकल आया हो और लौकिक क्षेत्र म भी अपने मूल्यो को कायरूप म परिणत कर चुका हो। दूसरी पीढी की सभ्यताओ के सास्कृतिक आक्रमण के इतिहास म यूनानियो (हेलेनीज) और बबरो के बीच इसी प्रकार का भेदभाव था। बाद के आधुनिक पाश्चात्य जगत् म मानव जाति के सास्कृतिक द्विधात्व (dischotomy) की अभिव्यक्ति अठारहवी शती म उत्तरी अमेरिकी इडियनो के साथ तथा उन्नीसवी शती म मगरिबियो एव वीतनामियों के साथ, और बीसवी शती मे सहारा के दक्षिण-अफ्रीकी हब्शियो के साथ फरासीसियो के सम्बन्ध म हुई। डचो ने भी इन्दोनेशिया की अपनी मलय प्रजाओ के साथ यही व्यवहार किया, जब सेसिल रोडस ने जबेसी के दक्षिण प्रत्येक सभ्य मानव के समानाधिकार का अपना नारा बुलन्द किया तो उसने डच एव अग्रेजी भाषा भाषी दक्षिण अफ्रीकियो के हृदयो म वही सास्कृतिक आदर्श जगाने का यत्न किया था।

१९१० ई म यूनियन की स्थापना के बाद दक्षिण अफ्रीका म आदर्शवाद की यह चिनगारी सकुचित एव हिंसक अफ्रीकेनेर डच राष्ट्रवाद के विस्फोट से बुझा दी गयी। इस सकुचित राष्ट्रीयता म दक्षिण अफ्रीका के अपने स्वदेशवासी बन्टू इन्दोनेशियाई तथा भारतीय गोत्र वाले बन्धुओ के ऊपर प्रभुत्व जमाने की प्रवृत्ति थी। यह श्रेष्टता की भावना किसी सस्कृति या धम पर नही बल्कि जाति (रेस) पर निभर थी। दूसरी ओर फरासीसी अपनी सास्कृतिक निष्ठाओ को राजनीतिक रूप देने मे काफी दूर तक आगे बढ गये। उदाहरणस्वरूप अल्जीरिया म १८६५ ई से पूर्ण नागरिकता इस्लाम धर्मानुयायिनी मूलनिवासिनी प्रजाओ को इस शत पर प्राप्त थी कि वे फरासीसी दीवानी कानून (सिविल ला) के जिसमे वयक्तिक अधिनियम के नाम से प्रसिद्ध दीवानी कानून का महत्वपूर्ण विभाग भी सम्मिलित था अधिकार-क्षेत्र को स्वीकार करेंगी।

उत्तरकालिक आधुनिक पाश्चात्य सस्कृति के फरासीसी पाठ मे सफलतापूवक दीक्षा प्राप्त करने वाले प्रत्येक व्यक्ति के लिए सम्पूर्ण राजनीतिक एव सामाजिक द्वार खोल देने के अपने आदर्श को कायरूप म परिणत करने म फरासीसियो की सच्चाइ

एक ऐसी घटना म व्यक्त हो गयी, जिसका फरासीसियो की प्रतिष्ठा बनाये रखने के साथ ही द्वितीय विश्व युद्ध के परिणाम पर भी प्रभाव पडा। जून १९४० ई म फ्रास के पतन के बाद यह महत्त्वपूर्ण सवाल खडा हो गया कि विची सरकार और लडाकू फरासीसी आन्दोलन दोनो मे स कौन फरासीसी साम्राज्य के अफ्रीकी क्षेत्रो को अपने पक्ष मे लाने म सफल होता है। इस समय फरासीसी भूमध्य रेखान्तगत अफ्रीका (फ्रेंच इक्वेटोरियल अफ्रीका) क छन्द प्रान्त का गवनर नीग्रो अफ्रीकी जाति का एक फरासीसी नागरिक था और सास्कृतिक रूप से फरासीसी बन गये इस नीग्रो न अपने सरकारी दायित्व का प्रयोग करते हुए लडाकू फ्रेंच आन्दोलन क पक्ष म अपनी राय दी। इस प्रकार अबतक पूर्णत लन्दन पर आश्रित इस आन्दोलन को उसने पहिली बार फरासीसी साम्राज्य म खडे होने का स्थान प्रदान किया।

धार्मिक की भाति ही प्रभुताशाली वग एव दलित वग के बीच की विभाजक रेखा की सास्कृतिक कसौटी ऐसी है कि चाहे उस पर कितनी ही आपत्ति की जाय किन्तु वह मानव-कुटुम्ब को जिन दो भागो म विभाजित करती है उनके बीच कोई रागातीत खाई नही पैदा करती। 'म्लेच्छ (हीदेन) धमपरिवतन द्वारा विभाजक रेखा को पार कर सकता है 'बबर परीक्षा पास करके रेखा का अतिक्रमण कर सकता है। प्रभुताशाली वग के पतन की दिशा म निश्चयात्मक अधोगामी पग तब आता है जब वह दलित पर म्लेच्छ' या 'बबर' का नही बल्कि 'देशज या आदिवासी (Native) का लेबिल लगा देता है। एक विदेशी समाज के सदस्यो को उन्ही के घर मे आदिवासी के रूप म कलकित करके प्रभुताशाली या उच्च वग उनके राजनीतिक एव आर्थिक अनस्तित्व की घोषणा करता और इस प्रकार उनकी मनुष्यता से इनकार करता है। आदिवासी का नाम देकर वह उन्ह एक ऐसी कुमारी नयी दुनिया के अमानवी जन्तु एव वनस्पति वग म विलीन कर देता है जो अपने मानवीय आविष्कारको की प्रतीक्षा करता रहा है कि वे उसके अन्दर प्रवेश करके अपने अधिकार म ले लें। इन पूर्वोक्त तथ्यो के अनुसार जन्तु एव अपतृण मानकर उनका उन्मूलन करना होगा या फिर उन्ह ऐसे प्राकृतिक साधन के रूप म ग्रहण करना होगा जिनका रक्षण तथा दोहन किया जा सकता हो।

पूव सन्दर्भों मे हमने इस घृणित तत्त्वज्ञान के महत्त्वशाली अभ्यासियो को उन यूरेशियाई यायावर फिर्कों म अमल करते देखा है जिन्होने यत्र तत्र पराजित आलसी आबादियो पर अपना शासन स्थापित करने म सफलता प्राप्त की थी। अपने सगी मानवो के साथ ओयमन साम्राज्य निर्माता वैसा ही व्यवहार करते थे जैसे व कोई शिकार क जानवर या पशु हो, इस व्यवहार म व उतने हो निदयी एव भव्य रूप म तार्किकतापूर्ण थे जितने कि फरासीसी साम्राज्य निर्माता अपनी 'बबर प्रजाओ क प्रति थे और यद्यपि यह सत्य था कि बन्धनग्रस्त या अमुक्त फरासीसी प्रजाए ओयमन रिआया की अपेक्षा कही ज्यादा अच्छी स्थिति म थी और साथ ही यह भी सत्य था कि जिस मानव पारिवारिक पशु को उस्मानली चरवाहा सिखा-पढाकर मानव-पशु श्वान (Sheep Dog) के रूप म परिवर्तित कर देता था उसके लिए विशन होने या फरासीसी

अधिकारी बन जाने की अवस्था में अपनी विशेषज्ञता प्राप्त लोगों में भी उनके लिए प्रधान मान पेशे का क्षेत्र खुला हुआ था।

उत्तरकालीन आधुनिक युग में पाश्चात्य समाज के वर्णित विस्तार के अंग्रेजी भाषा भाषी प्रोटेस्टेण्ट पाश्चात्य यूरोपीय पर्यटक यायावर साम्राज्य निर्माताओं का यह पापाचार करने में सबसे बुरे अपराधों में जिनके अनुसार मनुष्य आदिवासी बन जाते थे, और एक पुराने अपराध के बार बार दोहराए जाने में सबसे भयानक बात अधोगामी सीढ़ी के सिरे तक जाने और आदिवासियों को निम्न जातियों के अन्य ... के नाम से तिरस्कृत कर उनकी राजनीतिक एवं आर्थिक असम्पन्नता के अपने इस वक्तव्य से चिपटे रहने की प्रवृत्ति थी।

जिन चार कलंकों से दलित वर्ग को उच्च वर्ग ने कलंकित कर रखा था उनमें से प्रजातीय हीनता (Racial inferiority) का यह कलंक सबसे अधिक विषाक्त (malignant) था। इसके तीन कारण थे। पहिली बात तो यह कि यह बिना किसी गुण वाले मानव प्राणी के रूप में दलित की अपदायता की घोषणा थी जबकि 'हीदेन' (हीदेन) बर्बर (बार्बेरियन) तथा 'आदिवासी (नेटिव) यद्यपि अनिष्टकारक थे किन्तु उनमें इस या उस विशेष मानवगुण की अस्वीकृति मात्र थी या फिर तदनुकूल विशिष्ट मानवाधिकार प्रदान करने से इन्कार भर था। दूसरी बात यह कि मानव जाति का यह प्रजातीय द्विधात्व (Racial Dichotamy of Mankind) एक अगम्य खाई पैदा करने में धार्मिक सांस्कृतिक एवं राजनीतिप्रधान आर्थिक द्विधाओं से भिन्न था। तीसरी बात यह कि यह प्रजातीय कलंक धार्मिक या सांस्कृतिक (यद्यपि राजनीतिप्रधान आर्थिक नहीं) से इस बात में भिन्न था। वह अपनी कसौटी के लिए मानव प्रकृति के लिए मानव प्रकृति के अतिबाह्य नगण्य एवं महत्त्वहीन पहलुओं को चुनता था—चमड़ी के रंग अथवा नाक की गढ़न।

(२) कट्टरपंथ (जीलाटिज्म) एवं हेरोदियाई सम्प्रदाय (हेरोडियनिज्म)

जब हम आक्रान्त पक्ष की प्रतिक्रिया की परीक्षा करते है तो हमें मालूम पड़ता है कि उसे अपने आचरण की दो विपरीत रेखाओं में से किसी एक को चुनने का विकल्प प्राप्त है। इन विपरीत आचरण रेखाओं के लिए हम नाम नवीन धर्मादेश (न्यू टेस्टामेण्ट) की गाथाओं से पहिले प्राप्त कर चुके हैं और इस अध्ययन के विविध खण्डों में उनका उपयोग भी करते आये हैं।

उस युग में हेलेनिज्म सामाजिक क्रम के प्रत्येक स्तर पर यहूदियों को दबा रहा था। कोई यहूदी हेलीन (यूनानी रंग रंजित) बनने या न बनने के प्रश्न को न तो टाल सकता था न उसकी उपेक्षा कर सकता था। ऐसा करने के लिए उसे कोई स्थान ही न था। कट्टरपंथी गुट ऐसे लोगों में से चुनकर बनाया गया था जिनका मनोभाव यह था कि आक्रामक को दूर भगाने या रोकने का यत्न किया जाय और स्वयं अपनी यहूदी विरासत के आध्यात्मिक गढ़ में प्रत्यावर्तन कर लिया जाय। जिस धर्मनिष्ठा से वे उर्जस्वित हुए थे वह उनका यह विश्वास था कि यदि वे अपने पूर्वजों की परम्परा का पालन करेंगे उसका पूर्णतया पालन करते हुए और कुछ न करेंगे तो उन्हें उनके

आध्यात्मिक जीवन के भली भांति सुरक्षित मोल से ऐसी अलौकिक शक्ति प्राप्त होगी जो आक्रामक को दूर भगाने में समर्थ होगी। इसके विपरीत हेरोडियाई गुट एक ऐसे अवसरवादी राजममज्ञ के समर्थकों-द्वारा निर्मित हुआ था जिसका ईडूमइयन मूल होने और उसकी अपनी प्रतिभा के कारण भी मक्केबियन राज्य के हाल में ही बने एक जेंटाइल प्रान्त की इस सन्तान के लिए इस समस्या का अपेक्षाकृत कम आसक्तिमय दृष्टिकोण रखना स्वाभाविक था। हीरोद महान की नीति यह थी कि हेलेनवाद से उसकी वे सब विशिष्टताएं एवं सफलताएं सीख लेना यहूदियों के लिए आवश्यक है जिनमें वे न्यायपूर्वक एवं व्यवहार-पक्ष में अपने पगों पर खड़े हो सकें और हेलेनवाद द्वारा प्रभावित उस संसार में न्यूनाधिक सुखमय जीवन व्यतीत कर सकें जो उनका अपरिहार्य सामाजिक वातावरण बन गया था।

हीरोद के समय के बहुत पहिले भी यहूदी हीरोदियाई (Jewish Herodians) वर्तमान थे। सिकन्दरिया के आप्रवासी यहूदी समुदाय में स्वेच्छापूर्वक यूनानी प्रभाव को ग्रहण करने का आरम्भ हम उस नगर के निर्माता की मृत्यु के बाद ही मतलब इस द्रवणपात्रोपम नगर के शैशवकाल से ही देख सकते है। यहां तक कि जूडिया के पावत्य प्रदेश में भी प्रधान धर्म पुरोहित जोशुआ जसन को देखा जा सकता है जो हीरोदियाई राजममज्ञता का एक प्रधान रूप हमारे सामने रखता है और जो १६० वर्ष ईसापूर्व से भी पहिले अपने शतानी कार्य (जैसा कि वह कट्टरपंथियों को दिखायी पडता था) में व्यस्त था। यह शैतानी कार्य था, अपने कनिष्ठ किशोर साथियों को मल्लशाला (Palaestra) में अपने शरीरों का गन्दा प्रदर्शन करने की ओर प्रलुब्ध करना तथा विशेष प्रकार की यूनानी टोपी (Petasus) से भद्दे तरीके पर अपना सिर ढकना। इस उत्तेजना से उस काल के कट्टरपंथियों में प्रतिक्रिया उत्पन्न हुई जिसका वर्णन मकाबियों की दो पुस्तकों में मिलता है। फिर ७० ई० में रोमनों द्वारा यरूशलेम की लूटपाट के सकट से भी यहूदी धर्मावलम्बियों की कट्टरता का अस्तित्व समाप्त नहीं किया जा सका, न सन १३५ ई० में इस लूट के भयानक पुनरावर्तन से ही उसका अन्त हो सका क्योंकि रब्बी जोहन बनजक्काई ने इस चुनौती का उत्तर यहूदी समाज को एक ऐसे निश्चल कठोर संस्थानिक ढांचे एवं निष्क्रिय हठपूर्ण मनोवैज्ञानिक गठन (habitus) में कसकर दिया जिसने राजनीतिक दृष्टि से अक्षम दायसपोरा की दुर्बल मनियारी बस्ती के अन्दर अपना एक विशिष्ट सामूहिक जीवन बनाये रखने में उसकी सहायता की।

हेलेनिज्म (हेलेनवाद या यूनानियत) की चुनौती के कारण हीरोदियाई एवं कट्टरपंथी दो सम्प्रदायों में विभक्त हो जाने वाली सीरियाई जातियों में केवल यहूदी ही नहीं थे। सिसिली में दूसरी शती ईसापूर्व बागानों के सीरियाई दासों द्वारा जो कट्टरपंथी विद्रोह हुए थे आगामी सामाजिक युग में हेलेनवाद को नूतन धर्म के रूप में अपना लेने वाले सीरियाई मुक्तदासों की धारा के हीरोदियाई आगमन द्वारा रोम में सन्तुलित कर दिये गये। इसके विपरीत सीरियाई समाज के अधिक समृद्ध और भ्रान्त स्तर की हीरोदियाई प्रवृत्ति को जिसे हेलेनी यूनानी प्रभुत्वशाली अल्पमत अपनी सामाजिक साझेदारी में ले लेने को तैयार था, यहूदी मत के अतिरिक्त अन्य महान

सीरियाई धर्मों की अनिवार्य सेवा लेकर सतुलित कर दिया गया। यह अनिवार्य सेवा आध्यात्मिक दृष्टि से जगत एव भण्डारी कन्ट्रल्या प्रमण्ड या फ्रेगीग (जीवार फेगीग ड्यूटी) के रूप म होती थी और इसमे एक धर्मनिरपेक्ष गार्हस्थि युद्ध चलाने के लिए उसके अस्त्र रूप म इसका प्रयोग किया जाता था। धर्म के मन्त रास्ते म हुए जान की आध्यात्मिक रूप म विनाशकारी इस विपथगामिता म जरथुस्त्री मत नस्तोरियाइ मत (नस्तोरियनिज्म) एकार्थी ईसाई मत (Monophysitism) तथा इस्लाम सभी ने यहूदी मजहब के नतृत्व का अनुसरण किया। फिर भी इन विहृत धार्मिक आदोलनो म से अन्तिम तीन ने यूनानी दर्शन एव विज्ञान के शास्त्रीय ग्रन्थो को अपनी धर्मभाषाओ म अनूदित करने के हीरोदियाई कार्य-द्वारा कट्टरपन्थी विपथ गामिता का प्रायश्चित्त कर लिया।

जब यदि हम इससे आगे बढ़कर, मध्यकालीन पाश्चात्य ईसाइ धर्म-जगत म टक्कर लेने वाले समाजो म व्यक्त मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रियाओ को देखे तो हम उन पूर्वकालिक स्कैंडीनेवियाई बर्बर आक्रामको म इतिहास को अयतक ज्ञात हीरोदियाई मत के सबसे पूर्ण एव कुशल अभ्यासियो के दर्शन होंगे जो एक प्राचीनतम एव अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पाश्चात्य विजय के फलस्वरूप पाश्चात्य ईसाई जीवन-पद्धति के नामन व्याख्याता एव प्रचारक रूप म परिवर्तित हो गये थे। इन नामनो ने करोलिगयाई (करोलिंगियन) साम्राज्य के गलित हृदय-देश म अपने लिए स्वय ही जो उत्तराधिकारी राज्य कायम कर लिया उसके रोमास भाषाभाषी देशज निवासियो के न केवल धर्म को वरन भाषा एव काव्य को भी उन्होंने अपनाना शुरू कर दिया। जब फरासीसी नामधारी नामन चारण तलेफर ने हैस्टिग्ज के युद्धक्षेत्र की ओर प्रस्थान करने वाले अपने साथी सामन्तो मे स्फूर्ति भरने के लिए अपनी आवाज उठायी तो उसने नार्स बोली म वीरगाथा (Volsungasaga) नहीं सुनायी बल्कि फरासीसी भाषा म उन्होंने रोलण्ड का गीत सुनाया और जब इगलण्ड के विजेता विलियम ने तलवार के बल पर जीत उस पिछड़े एव एकान्त प्रान्त म नवजात पाश्चात्य ईसाई सभ्यता को जबदस्ती बढावा दिया उसके पहिले अन्य नामन दुस्साहसियो ने एपूलिया कलेब्रिया एव सिसली मध्य परम्परानिष्ठ ईसाई धर्म जगत एव दारुलइस्लाम की कीमत पर विरोधी क्षेत्रो म पाश्चात्य ईसाई जगत की सीमाओ को बढाने का साहसपूर्ण कार्य किया था। इससे भी महत्त्वपूर्ण बात तो थी, अपने ही देश की सीमा म रहने वाले स्कैंडीनेवियाइयो द्वारा पाश्चात्य ईसाई सस्कृति का हीरोदियाई आलम्बन।

विजातीय सस्कृतियो के प्रति उत्तरवासियो (Northmen) की यह सग्रहणशील अभिवृत्ति कुछ पाश्चात्य ईसाई धर्म जगत् तक ही सीमित न थी। सिसली के नामनो पर बजेंतियाई (बजेंटाइन या पूर्वी रोम-साम्राज्य की राजधानी सिकन्दरिया की निकटवर्ती) और इस्लामी कला तथा सस्थाओ ने जो प्रभाव डाला उसमे भी हम इसे देखते है। इसी प्रकार हम उस सुदूर पश्चिमी ईसाई केल्टिक सस्कृति के उस पुट म भी देखते है जिसे आयरलण्ड म ओस्टमन लोगो तथा पश्चिमी द्वीपो के नार्स औपनिवेशिकों ने ग्रहण कर लिया था। नीपर (Dnieper) तथा नेवा (Neva) की जलद्रोणी (बेसिन) म स्लाव

बर्बरों के स्मा स्कन्दीनवियाई विजेताओं-द्वारा परम्परानिष्ठ ईसाई संस्कृति को स्वीकार करने में भी हम इसे देख सकते हैं।

और जिन समुदायों में मध्यकालीन पाश्चात्य ईसाई धर्म जगत की टक्कर हुई उनमें हम हीरोदियाई तथा धर्मान्धवादी (जीलाट) मनोवेगों को ज्यादा अच्छी तरह सन्तुलित पाते हैं। उदाहरणार्थ, जिहाद या क्रूसेड के विरुद्ध दारुलइस्लाम की कट्टर धर्मान्ध प्रतिक्रिया कुछ दूर तक पाश्चात्य ईसाई जीवन विधि को नया-नया ग्रहण करने वाले साइलेशियाई आमनी एकार्थी ईसाइयों के सामने वृत्तिशील हीरोदवाद ने उत्पन्न की थी।

परम्परानिष्ठ ईसाई धर्म जगत (आर्थोडाक्स क्रिश्चियनडम) तथा हिन्दू जगत की जो टक्करें ईरानी मुस्लिम सभ्यता के साथ हुईं उनके इतिहासों में भी परस्पर प्रतिकूल युग्म मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रियाओं के दर्शन कर सकते हैं। ओथमन साम्राज्यान्तर्गत परम्परानिष्ठ ईसाई धर्म-जगत के मुख्यांग में यद्यपि बहुमत अपने पूर्वजों के धर्म से चिपटा रहा किन्तु इस धार्मिक स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए उस विजातीय राजनीतिक शासन की अधीनता स्वीकार करनी पड़ी। इतने पर भी यह कट्टर धर्माभिमान, उस अल्पमत-द्वारा अंशतः विच्छिन्न कर दिया गया जो सामाजिक अथवा राजनीतिक महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए मुस्लिम हो गया था। इससे भी अधिक संख्या में लोगों ने अपने प्रभुओं की भाषा सीखने की प्रणाली और उनके वस्त्र विन्यास की नकल करने में हीरोदियाई प्रवृत्तियों को ग्रहण कर लिया। मुगल राज्य के प्रति हिन्दुओं की प्रतिक्रिया भी बहुत-कुछ इसी ढंग की हुई किन्तु भारत में विजेताओं के धर्म को ग्रहण करने की क्रिया ज्यादा विस्तृत परिमाण पर हुई, विशेषतः सामाजिक रूप से दलित लोगों में तथा पूर्व बंगाल के कुछ ही समय पूर्व हिन्दू धर्म ग्रहण करने वाले ग्रात्यों में। बीसवीं शती में इन्हीं की सन्तति से पाकिस्तान के विच्छिन्न पूर्वीय प्रान्त का निर्माण हुआ।

आधुनिक पश्चिम के साथ समकालिकों के जो संघर्ष हुए उनका वर्णन अध्ययन के इस भाग के किसी पिछले अध्याय में किया जा चुका है। यदि हम अपने वर्तमान मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से उनका पुनःपरीक्षण करना चाहें तो हम देखेंगे कि उन सभी में एक ओर धार्मिक कट्टरता (जीलाटिज्म) और दूसरी ओर हीरोदियाई मनोवृत्तियों की परस्पर विपरीतता और कभी-कभी संघर्ष वर्तमान है। एक बहुत स्पष्ट उदाहरण के रूप में जपान के सुदूरपूर्वीय समाज की बात ली जा सकती है। शुरू-शुरू में हीरोदियाई प्रवृत्तियों का स्वाद ले लेने के बाद जब ताकूगावा शोगुन शासन ने जपान एवं पश्चिम के बीच के सम्बन्ध तोड़ दिये तो जपानियों ने एक कठोर एवं सफलतापूर्वक सचालित कट्टरता की अवस्था में पदार्पण किया। फिर भी एक छोटा अल्पमत हीरोदियाई प्रवृत्तियों को ग्रहण किये ही रहा। यह अल्पमत उन प्रच्छन्न ईसाइयों (*Crypto Christians*) का था जो गोपनीय रूप से दो सौ से भी अधिक वर्षों तक अपने प्रतिबन्धित विजातीय धर्म के प्रति निष्ठावान बने रहे। १८६८ ई० की मीजी क्रांति के बाद कहीं जाकर उनके लिए खुले आम अपने धर्म के अनुसार आचरण करना

सम्भव हुआ । उक्त तिथि के कुछ ही पूर्व उनको एक दूसरे जापानी हीरोदियाई आन्दोलन से बल मिला । एक दूसरे आन्दोलन ने बहुत से ऐसे प्रच्छन्न अनुयायियों को बढ़ावा दिया जो डच भाषा के माध्यम से धमनिरपेक्ष उत्तरकालीन आधुनिक पश्चिम के नवविज्ञान का गुप्त रूप से अध्ययन कर रहे थे । मीजी क्रान्ति के बाद तो इन नूतन हीरोदियाइयों ने जपानी शासन-नीति पर ही प्रभुत्व स्थापित कर लिया । आगे चलकर इसका जो परिणाम हुआ उससे तो स्वयं पश्चिम तक भी चमत्कृत हो उठा ।

किन्तु क्या यह अन्तिम अवस्था (फेज) पूर्णत हीरोदियाई थी ? यहाँ हम अपनी तुलना की चुनी हुई शर्तों में से एक या शायद दोनों में निहित एक प्रकार की द्वैध वृत्ति (ambivalence) के सामने आ जाते हैं । धर्मान्धता (जीलाटिज्म) का एक लक्ष्य तो स्पष्ट है—यूनानियों के प्रबल दान या उपहार की अस्वीकृति । किन्तु उसके साधन अनेक हैं जो मकावियों की शैली में खुले युद्ध की धनात्मक (पाजिटिव) प्रणाली से लेकर आत्मविच्छेद या आत्मकान्तिकता (सेल्फ आसोलेशन) की ऋणात्मक (निगेटिव) प्रणाली तक फैले हुए हैं फिर यह आत्मविच्छेद चाहे जपान की भाँति सरकार द्वारा सीमा बन्द करके किया जाय अथवा फिर बिखराव वाले यहूदियों की भाँति व्यक्तिगत साहसिकता के साथ ऐसे व्यक्तियों की कार्यवाही में प्रकट हो जो किसी विशिष्ट जाति की विशिष्टता को सुरक्षित रखने के लिए की जाती है । इसके विपरीत हीरोदियनिज्म में साधन ज्यादा स्पष्ट होते हैं । उनको तो फैली भुजाओं से, हृदय से, यूनानियों के उपहार ग्रहण करना ही है—फिर चाहे वे धार्मिक हों या विद्युच्छक्ति यन्त्रों के रूप में हों । किन्तु लक्ष्य क्या है ? हीरोदियाइयों में सबसे नीतिमान् स्कन्दीनवियाइयों उत्तर वासियों (नार्थमन) या नार्मनों का लक्ष्य (भले अनजाने ही उसका अनुसरण किया गया हो पर जो प्रभावशाली रूप से उन्हें प्राप्त हुआ था) टकराने वाली सभ्यता के साथ पूर्ण विलयन है । मध्यकालीन पाश्चात्य इतिहास का यह एक बहुत सामान्य तथ्य है कि नार्मन लोग आश्चर्यजनक गति के साथ एक के बाद एक नवदीक्षा नेतृत्व तथा विलय की अवस्थाओं से गुजरे । इस अध्ययन के किसी पूर्व पृष्ठ पर हमने समकालिक पर्यवेक्षक एपूलिया के विलियम की निम्नलिखित पंक्तियाँ उद्धृत की थीं—

Moribus et lingua, quoscumque Venire Videbant
Informant propria gens efficiatur ut una

अर्थात जो उनके झण्डे तले आ जाते हैं उन्हें वे अपनी रीतियों और अपनी भाषा में दीक्षित कर लेते हैं, जिसका परिणाम होता है—जातिगत विलयन ।

किन्तु क्या हीरोदियाई लक्ष्य सदा यही रहता है ? यदि हमने हीरोद महान् की नीति की ठीक ठीक व्याख्या की है तो अपने सम्प्रदाय को अपने ही नाम से सुशोभित करने वाले (eponymous) हीरोदियनिज्म के इस नायक का यह विश्वास था यद्यपि विश्वास गलत था जैसा कि दूसरे उदाहरणों की परीक्षा करते समय हमने संकेत किया है—कि यूनानी सभ्यता अथवा हेलेनिज्म की एक होमियोपैथिक (सूक्ष्म) खुराक यहूदी समाज की अतिजीविता (Survival) का सर्वोत्तम साधन होगी और जपान का आधुनिक हीरोदियनवाद निश्चय ही नार्मनों के आचरण की अपेक्षा उस नीति के

अधिक निकट है जिसको हमने हीरोद की नीति बताया है। आधुनिक जपानी राजममना का मत था कि जपान को पाश्चात्य ढंग की महती शक्ति के रूप में परिवर्तित कर देने वाली एक प्रौद्योगिक क्रान्ति के बिना जपानी समाज के लिए अपनी स्वतन्त्र एवं भिन्न सत्ता को बनाये रखना सम्भव न हो सकेगा। यह हीरोदियाई साधन से धर्मान्ध या जीलाट साध्य तक पहुँचने का उपक्रम था। इस निदान की पुष्टि १८८२ ई० की उस डिगरी या आज्ञप्ति में होती है जिसके द्वारा प्रौद्योगिकीय रूप से अपना पाश्चात्यकरण करने वाली जपानी सरकार ने शिंटो राजधर्म की सरकारी संघटना की व्यवस्था की। इस राजधर्म में, पुनर्जीवित प्राक्-बौद्ध ग्राम्यवाद का उपयोग जीवित जपानी राष्ट्र जाति एवं राज्य के दैवीकरण के वाहन या साधन के रूप में किया जाने वाला था। सम्राट वंश ने जीर्ण सम्प्रदाय की प्रतीकवादिता को जिसमें उस वंश के सूर्यदेव से प्रादुर्भूत होने का विश्वास चला आ रहा था, फिर से जगाकर इसे सिद्ध कर लिया गया। इस सम्प्रदाय ने राज्य करने वाले सम्राट को देवता के शाश्वत अवतार के रूप में ग्रहण कर अपनी आनुवंशिक समूहगत दिव्यता की पूजा के लिए पथ प्रशस्त कर दिया।

हमारे विकल्प पदों के प्रयोग में निहित कठिनाइयाँ जो आरम्भ में एक बड़ा ही सरल द्विधात्व उपस्थित करती दिखायी देती थीं अब जहाँ भी हम जाते हैं, वहीं प्रकट हो जाती हैं। उदाहरण के लिए बतलाइए हम जायनिस्ट (नव्य यहूदी) आन्दोलन का वर्गीकरण किस प्रकार करें? इसे कर्मकाण्डी परम्परा वाले पवित्रतावादी, स्पष्टतः जीलाट एस भक्तों या पुजारियों का विरोध सहना पड़ा जिनकी दृष्टि में जायनिस्ट लोग अधम का अपराध कर रहे थे क्योंकि 'प्रतिज्ञात देश' (प्रामिज्ड लैंड—पैलेस्टाइन या वर्तमान इसरायल) में शारीरिक प्रत्यागमन को अपनी प्रेरणा से, बलात पूरा करने का आन्दोलन छेड़कर वे उस काम में हस्तक्षेप कर रहे थे जो स्वयं ईश्वर द्वारा अपने उचित समय पर होना था। किन्तु जायनवादियों को केवल यही विरोध नहीं सहना पड़ा उन्हें उन हीरोदियाई आत्मसात्करणवादियों (असामिलेशनिस्ट्स) के विरोध का भी सामना करना पड़ा जिन्हें इस अविवेकरहित विश्वास पर खेद था कि यहूदी कोई विशिष्ट जाति है और जो इस उत्तरकालीन आधुनिक उदार स्थापना को मानते थे कि दूसरे धर्मों की भाँति यहूदी धर्म भी एक कीटकोष है जो अपना प्रयोजन पूरा कर चुका है, अब उसकी आवश्यकता नहीं।

बीसवीं शती के दो महत्तम व्यक्ति—लेनिन और गांधी—भी हमारे सामने परेशान करने वाली एक पहेली के रूप में आते हैं क्योंकि दोनों रोमी देवता जनस की भाँति एक ही साथ दो दिशाओं में मुँह किये दिखायी पड़ते हैं। उनकी रचनाओं या लेखों से पश्चिम तथा उनके द्वारा किये गये सम्पूर्ण कार्यों के प्रति निन्दा की एक अनवरत सचयिका प्रस्तुत की जा सकती है फिर भी उनकी निष्ठाओं में पाश्चात्य परम्परा के तत्त्व समाविष्ट हैं। लेनिन की शिक्षा पर मार्क्स से निकला हुआ भौतिकवादी परम्परा का रंग है गांधी की शिक्षा क्वाज फाक्स के अनुयायियों द्वारा आचरित ईसाई परम्परा से प्रभावित है। जब गांधी हिन्दुओं की जाति-संस्था की निन्दा करते हैं

तो हिंदू सम्प्रदाय शब्द म जा बहुत अभिनन्दनीय नही है ऐसा पाश्चात्य धर्मोपदेश हा द रहे होते है।

एकाध सरल उदाहरणो को, जिनके साथ हमने यह चर्चा छेड़ी है, छोड दे ता आक्रान्त समुदाया के समाज निकायो के सदस्यो के लिए खुला वारिपर नीतिया के रूप म विचार करने पर जीलाटिज्म (कट्टर धमवादिता) और हीरोदियनिज्म आत्म विरोध के धुधलके म खोते स प्रतीत होते हैं। किन्तु हम स्मरण रखना चाहिए कि हमने समाज राजनीतिक—सोशिया पोलीटिकल- नीतिया के रूप म नही वरन् यक्तिगत मानवो की अनुक्रियाओ के रूप म उन पर विचार विमश आरम्भ किया था[1] इस दृष्टि से उन्हे क्रमागत वा एकान्तर प्रतिक्रियाओ (अल्टरनेटिव रीऐक्शस) के उदाहरण के रूप म लिया जा सकता है। इन्ही को हमने पुराणवाद (Archaism) एव रूढिविरोधी भविष्यवाद (Futurism) के नाम स पुकारा है और इस अध्ययन के किसी पिछले भाग म उस मानवात्मा के विच्छेद या विभेद (Schism in the Human Soul) पर विचार करते समय हम उनकी परीक्षा भी कर चुके हैं। जैसा कि हम लिख चुके है यह मानवात्मा का विभेद अपने को उन सभ्यताओ म व्यक्त करता है जो ध्वस्त हो चुकी है और जिनका विघटन हो चुका है। उस स दभ म हमने पुराणवाद की परिभाषा करते हुए कहा था कि वह एक ऐसी आनन्दपूण स्थिति म लौट आने का प्रयत्न है जिसके लिए सकटकाल (टाइमस आफ ट्रबुल्स) म अधिक तीक्ष्ण शोक प्रकट किया जाता है और वह पीछे जितनी ही दूर छूटती जाती है और अधिक अनतिहासिकता के साथ उसको उतना ही आदश मान लिया जाता है। यह परिभाषा जीलाटिज्म (धर्मान्धता) पर पूणत लागू होती है। उसी सदभ म हमने पुराणवाद के विषय म निम्नलिखित विचार प्रकट किये थे—

> 'असफलता का एक वातावरण, या जहां निश्चयात्मक असफलता नहीं है वहा व्यग्रता पुराणवाद के प्राय उन सब उदाहरणों के चुर्तदिक छायी रहती है जिनकी परीक्षा हम करते रहे हैं। और इसका कारण कहीं दूर खोजना नहीं है। पुराणवादी तो अपने साहसपूण काय के कारण ही तिरस्कृत होता है क्योंकि यह सदा अतीत एव वत्तमान का सामञ्जस्य करने की चेष्टा किया करता है। यदि वह वत्तमान का विचार किये बिना अतीत को पुन स्थापित करना चाहता है तो जीवन की गति, जो सदा आगे की ओर बढ़ती जाती है, उसकी अनम्य या बेलोच रचना के टुकड-टुकडे कर देगी। इसके विपरीत यदि वह अतीत को पुनर्जीवित करने की अपनी सनक वत्तमान को कायक्षम बनाने के प्रयत्न के अधीन कर देता है तब उसका पुराणपन्थ एक प्रवचना, एक पाखण्ड मात्र बनकर रह जायगा।'[1]

उसी सन्दभ म 'भविष्यवाद' की परिभाषा करते हुए कहा गया था कि वह अज्ञात एव अनिश्चय भविष्य म एक छलाग मारकर अरुचिकर वत्तमान स पलायन की चेष्टा

[1] इस सभापीकरण की प्रथम पुस्तक का पृष्ठ ५१३ मूल देखिए

है, इस प्रयत्न म भी सकट का सामना करना पडता है। जहा तक हीरादियनिज्म का प्रश्न है यह एक दूसर समाज की सस्थाओ एव लोकाचारा (Ethos) की मकण्डहैंड अनुकृति मात्र है, अपन अच्छ स अच्छ रूप म यह एक अयुत्कृष्ट मौलिक वृत्ति का हास्यानुकृति या पराडी है, जब कि अपन बुर स बुरे रूप म यह वमल तत्त्वा का विसवा ी सप्रयत्न मात्र है।

(३) इजीलवाद (Evangelism)

क्या जालाटिज्म (कट्टर धर्मवाद) एव हीरोदियनिज्म की समान आत्म पराजय इन टक्करा के आध्यात्मिक परिणामा पर प्रकाश डालन का अनुरोध करन पर इतिहास के भविष्यवक्ता-द्वारा कहा जान वाला अतिम शब्द था? यदि यह अन्तिम शब्द होता तो मानव जाति की सम्भावनाए निश्चय ही भयावह हो जाती क्योकि तब हम इस निष्कर्ष पर पहुचन के लिए बाध्य होते कि सभ्यता का हमारा वर्तमान साहसिक उपक्रम अनारोहणीय शिखर का लाघन का अव्यवहार्य प्रयत्न मात्र है।

तब हम याद आता है कि यह साहसिक उपक्रम एक नवीन वचारिक मोड क साथ शुरू किया गया था। इस मोड म मानव प्रकृति की कल्पना शक्ति और सर्वतोमुखी प्रतिभा की शक्तिया उस दिशा परिवर्तन म पग-पग पर आन वाली कठिनाइयो स लोहा लन म समर्थ हुई जिस मानव इतिहास की उस महत्त्वपूर्ण अवस्था म मानव जाति सिद्ध कर सकी थी। जिस आदिम मानव (Primitive Man) की गति अपनी पश्चाद्गामिनी अनुकरणवृत्ति के इपिमिथियन निर्देशन (Epimethean Direction) द्वारा रुक गयी थी और अपन दलदल से चिपटे गुरुजना तथा पूर्वजा की ओर अभिमुख थी उसन उसी सामाजिक रूप मे अपरिहार्य क्षमता को उन सजनात्मक व्यक्तित्वा की ओर पुन मोड दिया जो पथान्वेषी अग्रगामियो के रूप म उसके सामन आय और इस प्रकार अपनी प्रामीथियन स्फूर्ति (elan) का पुन मुक्त कर दिया। बाद के युग क एक अन्वेषक के मन म यह प्रश्न उठना अनिवार्य था कि यह नया कदम इन आदिम सस्कृति नायको के वशजा का कहा तक ले जायगा? और इस नवीन दिशा परिवर्तन का वेग समाप्त हो जान पर क्या व उक्त सजनात्मक कृत्य का पुन सपादन करक मानसिक ऊर्जा के प्रच्छन्न भाण्डार स लाभ उठा सकेगे? यदि इस अतिम प्रश्न का उत्तर नकारात्मक हो तो सभ्यता की प्रक्रिया म अर्द्धपक्व मानव के लिए बुरा ही हश्य होगा।

जोलाट वा धर्मान्ध ऐसा आदमी या जो पीछे की ओर देखता था हीरोदियाई — हागेल्यिन ऐसा व्यक्ति था जो सोचता था कि वह आग की ओर देख रहा है किन्तु वस्तुत वह अगल-बगल झाकन वाला एव अपने पडोसिया की नकल करन वाला था। क्या यही कहानी का अन्त था?

शायद सही जवाब यह था कि यदि सभ्यता के इतिहास म सम्पूर्ण कहानी समाविष्ट होती तो यही उसका अन्त हो सकता था किन्तु उस अवस्था म यह सम्भव न था जब सभ्यता के विषय म मानव का प्रयत्न मनुष्य एव ईश्वर के बीच के शाश्वत सघर्ष की कहानी का एक अध्याय मात्र था। बाइबिल के सृष्टि के आरम्भ वाले भाग (बुक आफ जेनसिस) म जलप्रलय की जो कथा है उसम कहा गया है कि महाप्लावन

के परिणामस्वरूप आदम के अडे-बच्चे सब कुछ अपन स्रष्ट निर्माता द्वारा नष्ट कर दिय जान क बाद, स्रष्टा न नूह (नोआ) और उनके द्वारा बचाये गय नाविका का आश्वासन दिया कि 'अब जल सम्पूर्ण माम क विनाश के लिए जलप्लावन का रूप नहा धारण करेगा, और निश्चय ही हम इसके पूव पुराणवाद एव भविष्यवाद का असफलता का विवरण लिखत समय यह अन्वेषण कर चुक हैं कि एकती सरी सम्भावना भी है।

जब कोई नवीन गत्यात्मक शक्ति अथवा अन्दर स उठन वाला सजनात्मक आन्दोलन जीवन का चुनौती देता है तब जीवित व्यक्ति या समाज उसके द्वारा घोर कलुष (जसा कि किसी पूव प्रसग म हमन उस कहा है) को स्थायी करके विच्छिन्न होन तथा क्रांति के विस्फोटन द्वारा विखण्डित होन के बीच किसी एक का निरथक चुनाव करने के लिए विवश नही किया जा सकता। उसके सामने मुक्ति का एक मध्य माग भी फला हुआ है जिसम पुरातन व्यवस्था एव नवीन मोड के बीच पारस्परिक समायोजन (ऐडजस्टमट) द्वारा उच्चस्तर पर एक सामजस्य स्थापित किया जा सकता है। सच पूछें तो ग्रन्थ के इस भाग म हमन सभ्यताओ क विकास पर बहस करते हुए, इसी प्रक्रिया का विश्लेषण किया है।

इसी प्रकार जब जीवन का किसी ऐसे विच्छेद या विघटन द्वारा चुनौती दी जाती है जो एक सिद्ध तथ्य के रूप म परिणत हो चुका है तो नियति के हाथ से जीवन युद्ध की पहल अपन हाथ म फिर स छीन लेने का प्रयत्न करने वाले व्यक्ति अथवा समाज का विवश नहा किया जा सकता कि वतमान का एक दम त्याग कर अतीत मे कूद जान तथा एक अप्राप्त भविष्य म पूणत झपट पडन के बीच किसी एक का निरथक चुनाव कर ल। उसके सामने एक मध्य माग खुला हुआ है। यह मध्य माग है अनासक्त गति-द्वारा निस्मृति और उसके बाद वह प्रत्यागमन जो अपने को (ईसा के) नवशरीर ग्रहण (Transfiguration) म व्यक्त करता है। यदि हम एक बार फिर ईसाई सवत् का प्रथम शती की ओर देख और रोमन साम्राज्य क उस धुधले होन पर नजर डालें जहा धमान्ध (जीलाट) तथा हीरोडियाइ (हारोडियन) नाग (जिनके दलगत नामा को हमन एक विशेष अथ प्रदान करन का चेष्टा का है) अपनी बन्द गलिया का ढूढते फिरते थ तथा यदि हम अब यहूदियों क इन वर्गों म स किसा पर ध्यान न केन्द्रित कर उनके समकालीना म स एक पर अपना ध्यान केन्द्रित करें ता उपयुक्त अमूत्त वा भावात्मक शब्दों को ठोस रूप दे सकत हैं।

पाल नास्तिक तारसुस म फरिसा अथवा सांस्कृतिक पृथकतावादी क रूप म पालित हुआ था और उसी काल एव स्थान म उसन यूनानी शिक्षा ग्रहण का तथा अपना का रोमा नागरिक क रूप म प्राप्त किया। इस प्रकार उसके सामन जीलाट एव हीरोडियन दोनो माग खुल हुए थ और एक तरुण क रूप म उसन जीलाटिज्म—धमान्धता का माग चुना। किन्तु जब दमिश्क क माग म अपना दिव्य दृष्टि क कारण वह दूषित आरम्भिक माग स विरत कर दिया गया तब वह हीरोडियन ता नहा बन गया। उस एक एम सजनात्मक माग का उद्बोध हुआ जो इन दोना मार्गों म १र जाता था।

वह रोमी साम्राज्य मे परिव्रजन करने लगा और यात्रा करते हुए वह न तो यूनानी धर्म (हेलनिज्म) के विरुद्ध यहूदी धर्म (जूडाइज्म) का उपदेश करता, न यहूदी धर्म के विरुद्ध यूनानी धर्म का उपदेश करता था। वह सबको जीवन के एक नूतन मार्ग का उपदेश करता था, जिसम बिना किसी प्रकार की द्वेषवृत्ति के दोनो प्रतिस्पर्धिनी संस्कृतियो का लाभ उठा लिया जाता था। इसलिए इस धर्मोपदेश के मार्ग मे कोई सास्कृतिक सीमा नही ठहर सकी, क्योकि ख्रीष्टीय चर्च उसी प्रजाति का कोई नूतन समुदाय मात्र नही था जैसी कि वे सभ्यताए थी जिनके परस्पर संघर्ष का अन्वेषण हम अभी तक करते रहे हैं, वह एक भिन्न ही प्रजाति का समाज था।

टिप्पणी

'एशिया' एवं 'यूरोप' तथ्य तथा कल्पनाए

अपने इतिहास की भूमिका मे हेरोडोटस उस प्रयोजन की फारसी व्याख्या उद्धृत करने की बात कहता है जिसने एकेमीनिदाई (Achaemenidae) को हेलेनो—यूनानियो के विरुद्ध आक्रमण करने को प्रेरित किया। उसके विवरण के अनुसार फारसियो का विश्वास था कि रक्त (का बदला लेने) का कुल-वैर उन्हे विरासत मे मिला है। वे समझते थे कि ट्राय के घेरे, लूट एवं ध्वस का बदला यूनानियो से लेने का कर्त्तव्य उन पर लदा हुआ है। इस प्रकार ट्रोजन एवं फारसी दोनो महायुद्ध, यूरोप एवं एशिया के बीच निरन्तर चल रहे ऐतिहासिक वैर की घटनाए हैं। कहने की आवश्यकता नही कि इतिहास के अनुसार फारस वालो को इस प्रकार के दायित्व या बन्धन का बिल्कुल ज्ञान नही था और यह कल्पना भी की जा सकती है कि होमर के विद्यार्थी न होने के कारण ट्रोजन युद्ध—यदि सचमुच ऐसी कोई ऐतिहासिक घटना हुई हो तो—उनके लिए अज्ञात ही रहा होगा। यह कहना भी फालतू सा है कि हेरोडोटस का चित्रण इतिहास की दृष्टि से काल्पनिक है क्योकि वह यह मानकर चलता है कि ट्रोजनो एवं फारसियो के बीच साथी एशियाई होने के रूप मे अनुभूतियो की एकता थी। हम यूरोप एवं अमेरिका के बीच के ऐतिहासिक वैर को बिल्कुल इसी प्रकार प्रस्तुत करने की कल्पना करके इस बात की निरर्थकता का चित्रण कर सकते हैं और कह सकते है कि मेक्सिको के विरुद्ध एगामेमनोन-कार्टेज के पूर्ववर्ती आक्रमण का बदला यूरोप से लेने के लिए ही डेवियस वाशिंगटन विवश हो गए थे।

फिर भी हेरोडोटस की पौराणिक गाथा मे दिलचस्पी और महत्त्व की इतनी बात अवश्य है कि उसने यूरोप एवं 'एशिया' की प्रतिद्वन्द्वी एवं परस्पर विरोधी सत्ताए होने की धारणा का प्रचार किया—सत्ताए जो आज भी हमारे नक्शो पर अपने बीच की उस महाद्वीपीय सीमा के साथ जीवित है जो यूराल पर्वतमाला के नाम से विख्यात महत्त्वरहित पहाड़ियो के लम्बे विस्तार के साथ साथ चली गयी है। यह धारणा हेरोडोटस की सृष्टि नहीं है क्योकि ४७२ वर्ष ईसापूर्व रचित एचालस की 'पर्साई (Persae) रचना मे एशिया फारसी साम्राज्य का पर्याय बन चुका था। हा, यूरोप एवं एशिया के बीच परम्परागत वैर' हेरोडोटस के ग्रन्थ का प्रधान एवं एकीभूतकारी

तकनीकी शब्द नहीं है और कोई देशज यूनानी शब्द है तो फिर उसका आशय इन द्वीपों के विपरीत 'विशालमुखी' दृढभूमि (terra firma) निकलेगा या फिर यह किसी गोजातीय (bovine) 'विशालमुखी' देवी का नाम हो।

जो भी बात हो, समुद्री नाविकों की निगाह में मुख्य भूमि एवं द्वीप के बीच जो अंतर था उसे ही ये दोनों (एशिया यूरोप) नाम प्रकट करते थे। वह मुख्य भूमि के एशियाई अथवा यूरोपीय तट के साथ-साथ उत्तर दिशा की ओर अपना मार्ग टटोलता हुआ उत्तरोत्तर तीन जलसन्धियों—डार्डनल्स या दर्रा दानियाल बास्फोरस तथा कच—से गुजरता हुआ अपनी यात्रा करता था, किन्तु जब वह अंतिम जलमधि में अपना जलयान आगे बढा ले जाता एवं एजोव सागर को पार कर लेता था और नदीकूल नौ परिवहन के लिए डॉन नद में आरोहण कर लेता था तब वह एक ऐसे स्थान पर पहुँचता था जहां विरोधी महाद्वीपों के भिन्न अस्तित्व का लोप हो जाता था क्योंकि काला सागर के उत्तर के भूमिवासियों के लिए फिर चाहे व यूरेशियाई स्टेप्पी के यायावर हों अथवा कार्पेथियस की पूर्वी ढलानों से लेकर अल्ताई की पश्चिमी ढलानों तक फैली काली मिट्टी वाली भूमि के यूरेशियाई किसान हों यूरोप एवं एशिया के बीच के विभेद का उसके लिए कोई समझने लायक अर्थ नहीं था।

यूनानी जगत् से आधुनिक पश्चिम ने जो रिक्थ ग्रहण किया उसमें यूरोप एवं एशिया का द्विधात्व सबसे कम उपयोगी था। 'यूरोपान्तगत रूस' एवं 'एशियान्तगत रूस' का स्कूली भेद सदा ही निरर्थक रहा किन्तु शायद उससे किसी की कोई हानि नहीं हुई। पर इसी के समानान्तर 'यूरोपान्तगत तुर्की' एवं 'एशियान्तगत तुर्की' के बीच का भेद अत्यधिक भ्रमात्मक विचारणा का स्रोत बन गया। सभ्यताओं की आवास भूमियों के बीच की वास्तविक सीमाओं का ऐसी पुरातन कल्पनाओं से कोई सम्बन्ध नहीं है। जिसे हम यूरेशिया कहते हैं उसमें एक प्रश्नातीत यथार्थता है। यह इतना बड़ा है और इसकी गठन इतनी अनियमित है कि हम अपनी सुविधा के लिए, इसमें अनेक उपमहाद्वीपों को खंडित करके रख सकते हैं। इनमें से अत्यन्त तीखी रेखाओं से सीमांकित भारत है। इसके लिए इसको हिमालयी भूमि सीमा का धन्यवाद करना चाहिए। निस्सन्देह यूरोप दूसरा खण्ड है किन्तु यूरोप की भूमि सीमा भारत की भांति नहीं है और इसीलिए वह सदा ही 'मोर्चे' (Limes) की अपेक्षा एक देहली (Limen) ही रही है और निश्चय ही वह यूराल पर्वतमाला के बहुत दूर पश्चिम की ओर स्थित है।

'रिनैसाओ' (नूतन विचारधाराओ के प्रवतन) का सर्वेक्षण

(१) प्रस्तावना--'रिनैसा'

फरासीसी लेखक ई जे देलाक्द्रुज (१७८१ १८६३ ई) शायद प्रथम व्यक्ति है जिसने एक विशिष्ट युग एव स्थान अर्थात् उत्तरमध्यकालिक उत्तरी एव मध्य इटली मे पाश्चात्य ईसाई धम जगत पर मृत यूनानी सभ्यता के सघात का वणन करने के लिए पहिली बार ला रिनसा[1] (पुनजन्म) शब्द का प्रयोग किया था। मृत का जीवित पर यह सघात या प्रभाव इतिहास म प्राप्त कोई एक ही उदाहरण नही है इसलिए यहा हम इस शब्द का प्रयोग ऐसी सब घटनाओ के सामान्य नाम के लिए करते हुए उनका परीक्षण करेंगे। ऐसा करते समय हम इस बात की सावधानी रखनी पडेगा कि जितनी घटनाओ पर हम विचार करना चाहते हैं उनसे अधिक इसम शामिल न हो जाय। जहा तक कला एव साहित्य (क्योकि अपने परम्परागत अथ म यह शब्द इन्हा तक सीमित है) क क्षेत्रो म इस यूनानी सस्कृति के इटली मे बजतियाई (बजेण्टाइन) विद्वानो के समग्र म आने का प्रश्न है यह कालान्तगत किसी मृत सभ्यता मे टक्कर के रूप म नही था वह एक दूरस्थित जीवित सभ्यता के साथ की टक्कर थी। इसलिए उसका सम्बन्ध इस अध्याय के पिछले भाग म विचारित विषयो के अन्तगत आता है। पुन जब 'यूनान न आल्पस पार किया और इतालवी रिनसा न फ्रास तथा आल्पस के पार या आल्पसोत्तर (ट्रासअल्पाइन) के अन्य पाश्चात्य देशो की कला एव साहित्य को प्रभावित किया तो यह प्रभाव जहा तक यह प्राचीन यूनान स सीधे न आकर समसामयिक इटली के द्वारा आया, विशुद्ध रूप म रिनसा नही था बल्कि एक समाज की अग्रगामी शाखा की उपलब्धियो का उसी समाज की दूसरी शाखाओ तक सचरण (transmission) मात्र था। इस दृष्टि से यह विकास या समुदय विषय के अन्तगत आता है और इसी सन्दभ म उस पर इस अध्ययन के तृतीय भाग मे विचार किया जा चुका है। किन्तु य तार्किक भेद बाल की खाल निकालने के समान है

[1] ओ ई डी में जो उदाहरण दिया गया है उससे पता चलता है कि अंग्रेजी मे इस शब्द का प्रयोग सबसे पहिले १८४५ ई मे हुआ। मथ्यू आनल्ड ने इस शब्द का आंग्लीकरण करके (renascence) लिखने की प्रथा शुरू की।

और समाचरण या अमल मे विशुद्ध रिनसा अर्थात मृत समाज व साथ गोणी टक्कर और उपयुक्त मिश्रित रिनसा के बीच भेद करना कठिन पर आवश्यक जान पडता है।

रिनैसाओ की खोज म डूबने के पूव हम यह भी कह देना चाहिए कि इस प्रकार की घटनाओ का वतमान एव अतीत क बीच होन वाली दो भिन्न प्रकार की टक्करो म भिन्न रूप म ग्रहण करना होगा। इनम स एक तो है मरणासुर या मृत सम्यता एव उसके भ्रूण अथवा शिशु उत्तराधिकारी के बीच उत्तराधिकार एव-सम्बद्धता (Apparentation and Affiliation) का सम्बध। यह एसा विषय है जिसके बारे मे हम पहिले ही विस्तारपूवक लिख चुके हैं और इसे एक सामान्य एव आवश्यक घटना के रूप म लना चाहिए जसा कि इस पर पितृत्व एव पुत्रत्व के उदाहरण के हमारे आरोपण मे सन्निहित है। इसके विपरीत रिनसा तो एक विकसित सभ्यता एव उसके बहुत पूव मरे हुए जनक के प्रेत (ghost) के बीच का सघात—टक्कर है। पर्याप्त रूप से सामान्य होते हुए भी असामान्य के रूप म उसका वणन होना चाहिए। परीक्षा करने पर प्राय वह अस्वास्थ्यकर निकलता है। वतमान एव अतीत क बीच दूसरा सघात, जिसमे रिनसाओ को भिन्न मानना चाहिए वह घटना या दृश्य प्रपच (फिनामेनन) है जिसे हमने पुराणवाद (आर्केइज्म) के नाम स पुकारा है और उसका प्रयोग समाज विकास की उस प्रारभिक अवस्था मे लौट जाने का प्रयत्न करने के अथ म किया है जिसम पुराणवादी स्वय रह रहे होते है।

वतमान और अतीत क बीच होने वाले सघात क तीन प्रकारो मे एक और अतर की स्थापना करना अभी शेष है। उत्तराधिकार एव सम्बद्धता के सम्बन्ध या रिश्ते म इतना तो स्पष्ट है कि जिन दो समाजो का सम्पक होना है वे विकास की बडी हो भिन्न बल्कि विपरीत श्रणियो म होती हैं। अपनी जरावस्था (dotage) म जनक तो विघटनशील समाज होता है सन्तति एक नवजात शिशु। फिर एक पुरोमुख व्यक्ति मामला की एक ऐसी स्थिति के मोह पाश म आबद्ध हो जाता है जो उसकी स्थिति से बहुत अधिक भिन्न होती है नहीं तो पुराणोमुख क्या हो? इसके विपरीत रिनसा मे प्रवेश करने वाला समाज अपने जनक के प्रेत (घोस्ट) को उस अवस्था वाला जनक मानकर पुकारता है जबकि जनक विकास की उस श्रणी म था जिसमे सन्तति अब पहुची है। यह वसी ही बात है जसे हैमलट वैसा पतृक प्रत चुन ले जिसका उस दिन को दातेदार दीवार पर सामना करना हो। या तो वह ऐसा पिता हो जिसकी दाढी उत्तरध्रुवीय नक्शे का भाति रजतवर्णी हो या फिर एक एसा पिता हो जो अपने पुत्र की ही आयु का हो।

(२) राजनीतिक विचारो एव सस्थाओ वाले रिनसा

यूनानी मत (हैलेनिज्म) के उत्तरमध्यकालिक इतालवी रिनसा न पाश्चात्य जीवन के राजनीतिक स्तर पर उससे कहीं अधिक स्थायी प्रभाव डाला जितना उसन साहित्य अथवा कला क स्तरो पर डाला था। इसके सिवा, राजनीतिक अभिव्यक्तिया

न केवल सौन्दर्यानुभूति सम्बन्धी अभिव्यक्तियों की समाप्ति के बाद भी जीवित रही बल्कि पूर्वानुमान कर उनके पूर्व ही जम गयी। उनका आरम्भ तब हुआ जब लोम्बाड नगरों पर से उनके बिशपों का नियन्त्रण जाता रहा और वे उन पंचायतों (Communes) के हाथ में चले गये जिन पर नागरिकों के प्रति उत्तरदायी मजिस्ट्रेटों के बोर्डों (मण्डलों) का प्रशासन था। ग्यारहवीं शती के इटली में नगर राज्य (सिटी स्टेटस) की यूनानी संस्था का यह पुनर्जीवीकरण पाश्चात्य ईसाई धर्मजगत के आल्पस के पार वाले (ट्रान्सअल्पाइन) प्रान्तों में इतालवी संस्कृति के विकिरण के फलस्वरूप ही गतिमान हो सका। इतालवी संस्कृति के विकिरण का उद्देश्य पाश्चात्य सामन्ती राज्यों की जनता पर भी वैसा ही प्रभाव डालना था। अपने प्रारम्भिक एवं संकुचिततर तथा अपने उत्तरकालिक एवं विशद क्षेत्र में इस यूनानी भूत प्रेत (revenant) का प्रभाव एक समान था। उसका ऊपरी प्रभाव ऐसे संवैधानिक शासन सम्प्रदाय का प्रचार करना था जो *अंततोगत्वा अपने को ही डेमोक्रेसी (प्रजासत्तात्मक राज्य) की यूनानी उपाधि* (हलेनिक टाइटिल) प्रदान कर दे किन्तु संविधानवाद की कठिनाइयों एवं असफलताओं ने अन्यायी (टाइरेंट) की वैसी ही यूनानी मूर्ति के लिए भी राह खोल दी। ऐसा उसने पहिले तो इतालवी नगर राज्यों में किन्तु बाद में और व्यापक फलत और अधिक विनाशकारी पैमाने पर अन्यत्र किया।

जब ८०० ई में क्रिसमस के दिन (बड़े दिन) पोप लियो तृतीय ने सेंट पीटर्स में शार्लमेन को रोमनी सम्राट के रूप में ताज पहिनाया तो मध्यकालिक मंच पर दूसरा हेलेनी प्रेत सामने आ गया। इस संस्था के पीछे भी एक लम्बा इतिहास पड़ा था। इन प्रेत सम्राटों में सबसे भक्तिपूर्ण दभी यूनानीकरणकारी (Hellenizer) सम्राट सक्सन ओटो तृतीय (राज्यकाल ९८३ ई से १००२ ई तक) था। इसने अपनी राजधानी रोम में ऐसे स्थान पर हस्तांतरित कर दी जहाँ उस समय दोनों ईसाई धर्मराज्यों की सीमाएं एक दूसरे पर चढ़ी हुई थीं। पहिले के इस साम्राजिक नगर (इम्पीरियल सिटी) में अपने को स्थापित करने में ओटो तृतीय ने आशा की थी कि इस प्रकार वह पाश्चात्य ईसाई धर्मजगत् द्वारा आतंकित साम्राज्य शक्ति की जाली नकल का बलवान बना पायेगा और बजेंतियाई टकसाल का एक सुदृढतर धातु के द्वारा उसको खूब मजबूत बना सकेगा। जैसा कि हम एक दूसरे प्रसंग में देख चुके हैं, ओटो तृतीय का प्रयोग, जो उसके शीघ्र ही कालकवलित हो जाने के कारण खत्म हो गया दो शतियों से अधिक समय के पश्चात्, पहिले से कहीं अनुकूल परिस्थितियों में दोहराया गया। इस प्रयोग को दोहराने वाला एक प्रतिभावान व्यक्ति था—फ्रेडरिक द्वितीय होहेनस्टाफेन और उसे कहीं ज्यादा आतंककारी सफलता भी मिली।

कई शताब्दियों पश्चात् रूसो ने हेलेनिज्म के प्लूटार्की (प्लूटार्कन) पाठ (वर्जन) को लोकप्रिय बनाया। फलत सोलन एवं लाईकर्गस की ओर इशारा करने से फरासीसी क्रान्तिवादी कभी न थकते थे और अपनी महिलाओं तथा निदेशकों (डाइरेक्टरों) दोनों को ऐसे वस्त्रों से विभूषित करते थे जिन्हें 'क्लासिकल (परिनिष्ठित) परिधान समझा

जाता था। उधर नेपोलियन प्रथम ने कौंसल[1] पद के ऊपर नाम था स्वयं को सम्राट कहना शुरू कर दिया और अपने पुत्र तथा उत्तराधिकारी को 'रोम के राजा (किंग आफ रोम) की उपाधि दे दी। इससे अधिक स्वाभाविक बात और हो ही क्या सकती थी? उपाधि पवित्र रोम साम्राज्य (होली रोमन इम्पायर) के मध्य कालिक पाश्चात्य पद के उम्मीदवारों को तब मिलती थी जब पोप द्वारा रोम में उनका राज्याभिषेक होता था (उनमें से बहुत से इस पवित्रीकरण के संस्कार से वंचित रह जाते थे)। जहाँ तक द्वितीय (पाखण्डी—Soi Disant—तृतीय) नेपोलियन का सवाल है उसने जूलियस सीजर का जीवनचरित्र या तो सचमुच लिखा या फिर अपने नाम से प्रकाशित कराया। अन्त में हिटलर ने बर्कटेसगेडन (Berchtesgaden) स्थित एक मुख्य बारबरोसा की पवित्र गुफा के ऊपर झूलती हुई ढलुवा चट्टान पर अपना ग्राम्य निवास बनाकर तथा हैप्सबर्ग म्यूजियम से चुराये हुए शार्लमेन के राजचिह्नों को धारण कर प्रेत के प्रेत को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की।

किन्तु पाश्चात्य ख्रीष्टीय राजतंत्र (वेस्टर्न क्रिश्चियन मोनार्की) संस्था के इर्द गिर्द एक दूसरा और अधिक कृपालु प्रेत मण्डरा रहा है। जब पोप द्वारा अभिषिक्त होने के कारण एक फ्रैंक बादशाह को रोमी सम्राट बनाया गया और इस प्रकार ८०० ई० में क्रिसमस के दिन पश्चिम में रोम साम्राज्य के औपचारिक पुनःप्रवर्तन (फार्मल रिवाइवल) को धार्मिक अनुशास्ति प्रदान की गयी तो इसको हेलेनी अथवा यूनानी इतिहास में कोई पूर्व उदाहरण प्राप्त नहीं था। फिर भी उस दिन रोम में जो अनुष्ठान किया गया उसका एक औद्धत्यपूर्ण पूर्व उदाहरण ७५१ ई० में स्वायसंस (Soissons) स्थान पर किये गये उस अनुष्ठान में प्राप्त था जिसमें आस्ट्रेशियाई (आस्ट्रेशियन) प्रधान गृहप्रबन्धक (Major Domo) पेपिन को पोप जकरियास के प्रतिनिधि सेंट बोनीफेस द्वारा दीक्षित एवं अभिषिक्त होने के कारण फ्रैंकों का राजा बना दिया गया था। पौराहितिक पवित्रीकरण की यह पाश्चात्य प्रथा—जो विजियागाथिक अर्थात् पश्चिमी गाथिक स्पेन में तबतक प्रचलित हो चुकी थी—नबी समुएल एवं किंग्स के गाथा (Books of Samuel and Kings) में उल्लिखित एक इसराइली परम्परा का पुनःप्रचलन मात्र थी। पैगम्बर समुएल द्वारा किये गये राजा डेविड तथा पुरोहित जाडोक एवं पैगम्बर नेथान द्वारा किये गये राजा सालोमन के पवित्रीकरण संस्कार पाश्चात्य धर्मराज्य के राजाओं एवं रानियों के सम्पूर्ण राज्याभिषेकों के लिए पूर्वोदाहरण रूप है।

(३) विधि-प्रणालियों में रिनसा

हम पहिले ही देख चुके हैं कि रोमी कानून (रोमन ला), जो जस्टीनियन द्वारा उसके संहिताकरण (Codification) के साथ समाप्त होने वाली दस शतियों की लम्बी

[1] फ्रांसीसी गणतंत्र के तीन प्रमुख अधिकारियों की उपाधि। इन तीन में से नेपोलियन प्रथम कौंसल था।

अवधि के बीच आरम्भ म रोमन जनता एव बाद म सम्पूण हेलेनी समाज की आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए धीरे धीरे और बडे श्रम से विस्तृत एव परिष्कृत होता गया उस जीवन प्रणाली के भग हो जाने के बाद तजी म सकटग्रस्त हो गया जिसे अनुशासित एव नियमित रखने के लिए उसका निर्माण हुआ था। यह बात न केवल हेलेना जगत के पाश्चात्य वर प्राच्यार्द्ध म भी घटित हुई। क्षय के इन लक्षणो के बाद, राजनीति का भांति विधि (कानून) के क्षेत्र म भी नवजीवन के चिह्न प्रकट हुए। एक जीवित समाज के लिए जीवित विधि की व्यवस्था करन की प्ररणा आरम्भ म उस रोमी विधि का पुनर्जीवित करन के आन्दोलन के रूप म नही प्रकट हुई जो ईसाई सवत् के आठवी शती म अपन समय के मस्तिष्का के ऊपर उसी भांति प्रतिष्ठित हो गया था जस लुप्त हेलनी सस्कृति के शक्तिमान चत्य या समाधि पर हजरत नूह की नौका हो। दोना ईसाई समाजो प्राच्य एव पाश्चात्य म स प्रत्यक न भावी ईसाइयो के लिए पहिले एक ख्रीष्टीय विधि (क्रिश्चियन ला) के निर्माण द्वारा खीष्टीय धम विधान म अपनी आस्था की सचाई का प्रदशन किया। किन्तु दोना ईसाई धम राज्यो म इस नवीन मोड के बाद रिनसा का आगमन हो गया। रिनसा न पहिले धम ग्रन्थो म निहित उस मूसाई विधि (Mosaic Law) का प्रभावित किया जिस ईसाई धम जगत न यहूदियो म उत्तराधिकारस्वरूप प्राप्त किया था और फिर जस्टीनियन सहिता (Code of Justinian) में अश्मीकृत (Petrified) रोमी विधि पर ध्यान दिया।

परम्परानिष्ठ ईसाई धम जगत (प्राच्य) के अन्तगत इस नये मोड की घोषणा प्राच्य रोम-साम्राज्य के दो सीरियाई प्रतिष्ठापको लियो तृतीय तथा उसके पुत्र कान्स्टटाइन पचम के सयुक्त शासन मे हुई। ७४० ई म एक खीष्टीय विधिग्रन्थ के प्रख्यापन या ऐलान द्वारा यह काय चरितार्थ हुआ। यह ग्रन्थ क्या था खीष्टीय सिद्धान्त लागू करके साम्राज्य की विधि प्रणाली को बदलने का जान बूझकर किया हुआ प्रयत्न[1] था। जो भी हो यह प्राय अनिवाय था कि नवीन खीष्टीय विधि के जन्म के बाद उस यहूदी विधि मे भी रिनसा का आगमन होता जिसे खीष्टीय धमसघ या चच ने शायद अविवेकपूवक और निश्चय ही पूण प्रसन्नता के साथ तो नही ही अपने पवित्र ग्रन्थो के धमसूत्रा या धर्मादेशो (Canons) म स्वीकार करन पर बल दिया था। फिर चाहे मूसाई हो या खीष्टीय, सीरियाई सम्राटो द्वारा स्थापित विधि प्रणाली बजतियाई समाज की बढ़ती हुई जटिलताओ का सामना करन मे अधिकाधिक असमर्थ होती जा रही थी और ८७० ई के बाद के वर्षों म मैसीडोनियाई (मसिडोनियन) राजवश के सस्थापक बसिल प्रथम तथा उसके पुत्रो एव उत्तराधिकारियों न स्पष्ट कर दिया कि उ होन ईसारियाइयों (Isaurians) द्वारा प्रख्यापित मूढ़ताओ को पूणत अस्वीकार एव परित्याग कर दिया है। यहां इसारियाइयो से अभिप्राय पूर्वोक्त

[1] जे बी बरी एडवड गिबन के दि हिस्ट्री आफ डिक्लाइन ऐण्ड फाल आफ दि रोमन इपायर भाग ५ के अपने संस्करण में (लन्दन १९०१ मैथुएन) परिशिष्ट २ पृष्ठ ५२६

मीरियाई सम्राटो से ही है। अपने पूर्ववर्त्तियो की इस हार्दिक उपेक्षा के साथ ही मसिडोनियाई सम्राटो ने जस्टीनियन संहिता में जीवन डालने का प्रयत्न किया। ऐसा करने में उन्होने कल्पना की कि वे यथार्थत रोमन हैं—ठीक वैसे ही जैसे वास्तुकला के क्षेत्र में उन्नीसवी शती के गाथिक पुनरुद्धारवादियो (गाथिक रिवाइवलिस्टस) ने अपने विषय में कल्पना कर ली कि वे सच्चे गाथिक है। किन्तु सभी पुनरावर्तनो (रिवाइवल्स) एवं रिनसाओ के विषय में सकट तो यह होता है कि व न तो प्रामाणिक पदार्थ होते हैं न हो हो सकते है। वे प्रामाणिक पदार्थों से उसी प्रकार अत्यधिक भिन्न होते है जैसे मदाम तुसाऊ (Madame Tussaud) की मोमी कलामूर्तियाँ घुमावदार पशुप्रतिषेधक द्वार (टर्नस्टाइल्स रास्ते का वह ढाचा जिससे मनुष्य जा सकें परन्तु पशु नही) से उनको देखने के लिए आने वाले आदमियो से भिन्न होता है।

कानून नाटक की विषयवस्तु—प्लाट—को, जिसमे मूसा एवं जस्टीनियन के क्रमानुसार उत्थापित प्रतो-द्वारा नवीन ख्रीष्टीय परिवर्तन को दृढ किया गया, पाश्चात्य मच पर भी उसी प्रकार अपना स्थान बनाते देखा जा सकता है। इस (पाश्चात्य) मच पर लियो साइरस का अभिनय शालमन द्वारा किया जाता है।

"करोलिंगियाई विधि निर्माण (लेजिस्लेशन) पाश्चात्य ईसाई धर्मजगत में नवीन सामाजिक चेतना के आगमन का सूचक है। इसके पूर्व तक पाश्चात्य राज्यो का विधि निर्माण पुरातन बर्बर कबायली संहिताओं का ख्रीष्टीय परिशिष्ट मात्र था। अब, पहिली बार, अतीत से पूर्ण विच्छेद किया गया और ईसाई धर्म जगत ने अपने कानून खुद बनाये। ये कानून चर्च एवं राज्य की सामाजिक कार्यशीलता से सम्पूर्ण क्षेत्र को आच्छादित करते थे और सब बातो पर ख्रीष्टीय लोकनीति (ethos) के एक ही मान के सन्दर्भ मे विचार सम्भव हुआ। इसकी प्रेरणा न तो जर्मन न रोमी पूर्वोदाहरण से प्राप्त हुई थी।"[1]

फिर भी परम्परानिष्ठ प्राच्य की भाति ही पाश्चात्य ईसाई धर्मजगत में मूसा का प्रेत ईसाई धर्म प्रचारको एवं इजीलवादियो (Apostles and the Evangelists) का पीछा बराबर करता रहा—

'करोलिंगियाई सम्राटो ने पुरानी बाइबिल (ओल्ड टेस्टामेंट) के बादशाहों एव विचारपतियो की स्पिरिट मे समस्त ईसाई जनता को कानून प्रदान किया था। उन्होने ईश्वर की प्रजा को ईश्वर का कानून दिया। चार्ल्स को उसके राज्यकाल के आरम्भ मे कैथाल्फ ने जो पत्र लिखा था उसमे लेखक बादशाह को पृथिवी पर ईश्वर का प्रतिनिधि बताता है और चार्ल्स को सलाह देता है कि वह 'दैवी विधि पुस्तक' (दि बुक आफ डिवाइन लॉ) को अपने शासन की 'नियम-पुस्तिका' (मैन्युएल) मानकर चले और ड्यूटरोनोमी (इंजील की प्रथम पाँच पुस्तको) के १७,१८ २० वाले उन आदेशों का अनुसरण करे जिनमे कहा गया है कि बादशाह को पुरोहितो

[1] डासन क्रिस्टोफर रिलीजन एण्ड दि राइज आफ वेस्टर्न कल्चर, (लन्दन १९५०, शीड एण्ड वार्ड) पृष्ठ ९०

की पुस्तकों से कानून की एक प्रति तयार करनी चाहिए, उसे सदा अपने साथ रखना चाहिए और बराबर पढते रहना चाहिए जिससे वह प्रभु (लाड) से भय करना सीखे और उसके कानूनों का पालन कर, नहीं तो उसका हृदय गव से अपने बधुओं के ऊपर उठ जायगा और वह कभी दायें कभी बायें घूम जायगा।"[1]

फिर भी परम्परानिष्ठ की भाति पाश्चात्य ईसाई धमजगत म भी पुनर्जीवित मूसा को पुनर्जीवित जस्टीनियन ने जा पकडा।

ईसाई सवत् की ग्यारहवी शती के बीच १०४५ ई म सरकार-द्वारा कुस्तुनतुनिया म जो साम्राजिक विधि विद्यालय (इम्पीरियल ला स्कूल) स्थापित हुआ उसका प्रतिरूप पाश्चात्य ईसाई धम जगत के बोलोग्ना स्थान म दिखायी पडा। वहा स्वय स्फूत एक स्वायत्तशासी विश्वविद्यालय का जन्म हुआ। इस विश्वविद्यालय म जस्टीनियन के न्यायविधान सग्रह (Corpus Juris) का अध्ययन होता था और यद्यपि पाश्चात्य ईसाई धमजगत म पुनरुज्जीवित रोमन विधि (रोमन ला) पुनरुज्जीवित रोम-साम्राज्य को सहारा देने के उद्देश्य म अन्ततोगत्वा असफल हो गयी किन्तु वह पाश्चात्य भूमि पर एक सवप्रभुता सम्पन्न स्वतत्र ग्राम्यराज्य (सावरेन इडिपेंडेंट परोकियल स्टेट) नाम की उसस पहिले की हलेनी (यूनानी) राजनीतिक सस्था को पुनरुज्जीवित करने के दूसरे विकल्प को पल्लवित करने म भलाभाति सफल हुई। जिन दीवानी वकीलो न बोलोग्ना तथा उसकी दुहिता यूनिवर्सिटियो म शिक्षण प्राप्त किया था व प्रगामक हुए निष्फल व अपवत्र पाश्चात्य पवित्र रोम साम्राज्य के नहा वरं क्षमताशाली पाश्चात्य सवप्रभुतासम्पन्न ग्राम्य राज्यो के और उनकी पेशेवर सेवाओ की कुशलता हो राजनीतिक सघटना के अन्य रचनात्मक रूपो पर जो पाश्चात्य ईसाई जगत के मूल सामाजिक ढाचे म प्रच्छन्न थे इस सस्था की प्रगतिशील विजय का एक कारण थी।

जब बोलोग्ना के सिविलियन—असनिक नागरिक—उत्तर एव मध्य इटली के नगरो को ऐसा प्रगामन दे रहे थे जिसकी कुशलता के कारण कम्यून या पचायत अपने राजा बिशपो (प्रिंस बिशप्स) को उखाड फेंकने और नागरिक स्वायत्त शासन का सेवा का पेशा आरम्भ करने म समथ हुई तब धर्मादेशवादी (कैननिस्ट) ग्रेटियन के डिक्रीटम नामक महाग्रन्थ के प्रकाशन के बाद (११४० ई०) म चच-सम्बन्धी कानून के भ्रातृ-समाज (सिस्टर फकल्टी) द्वारा दीवानी कानून का बोलोग्ना प्रणाली का अनुपूर्ति करने लग थ। धमशास्त्रवादियो न ग्रामीण धम निरपेक्ष राज्य के विकास म भी योग दिया—यद्यपि उनकी दृष्टि विपरीत दिशा की ओर थी। उनकी वास्तविक सफलता निश्चय ही इनोसेण्ट का कुसस्थायी व्याख्यात्मक क्रिया म स एक थी।

यह कहा जा सकता है कि 'सेनो सो (बडे पादरियों के अधिकार पत्र) न धर्मशास्त्रवादियो को पद री (पोपतन्त्र) के धमनिरपेक्ष प्रतिद्वन्द्वी 'पवित्र रोम-साम्राज्य

[1] डासन, क्रिस्टोफर रिलीजन एण्ड दि राइज आफ वेस्टन कल्चर (लन्दन १९५० शीड एण्ड वाड) पृष्ठ ९० ९१।

सार्वभौम राज्य के पतन के कारण कनफ्यूशियाइयों की प्रतिष्ठा भतिग्रस्त हो गयी था (क्योंकि वे सार्वभौम राज्य के अंगरूप हो गये थे) तब ताव धर्मियों एव बौद्धों को कनफ्यूशियाइयों की जगह लेने का एक अवसर हाथ आया था किन्तु उन्होंने उस अवसर को हाथ से निकल जाने दिया।

बौद्ध महायान की इस राजनीतिक असफलता एवं पश्चिमी यूरोप में प्राप्त राजनीतिक सुअवसरों को पकड़कर उनका लाभ उठा लेने में ख्रीष्टीय चर्च की सफलता के बीच जो वैषम्य है उससे यह तथ्य सामने आ जाता है कि ईसाई धर्म की तुलना में महायान राजनीतिक दृष्टि से एक अयोग्य धर्म था। संयुक्त सिन (Tsin) साम्राज्य के पतन के बाद की तीन शतियों के अधिकांश भाग में उस उत्तरी चीन के ग्राम्य राजाओं से जो संरक्षण प्राप्त हुआ था उसका महायान के लिए ज्यादा मूल्य एवं उपयोग नहीं था, जितना सम्राट कनिष्क का शक्तिमान संरक्षण इसके किसी पूर्व युग में रह चुका था। किन्तु सुदूरपूर्वीय भूमि में होने वाला महायान एवं कनफ्यूशियाई सम्प्रदायों के बीच का यह संघर्ष ज्यों ही राजनीतिक क्षेत्र से उठकर आध्यात्मिक स्तर पर चला गया तो उनके बीच के प्रायः रक्तहीन युद्ध का भाग्य एक दम पलट गया। इस विषय के एक आधुनिक चीनी विशेषज्ञ ने हमें बताया है कि नव कनफ्यूशियाई (Neo Confucianists) ताव मत एवं बौद्ध धर्म के मौलिक विचारों का उससे कहीं अधिक निष्ठापूर्वक पालन करते हैं जितना स्वयं तावधर्मी एवं बौद्ध करते हैं।[1]

जब हम सुदूरपूर्वीय इतिहास में मिलाई कनफ्यूशियन दर्शन के रिनसां से निकलकर पाश्चात्य ख्रीष्टीय इतिहास के यूनानी अरस्तू दर्शन के रिनसां तक पहुँचते हैं तो नाटक की कथा वस्तु का एक दूसरा ही मोड़ देखते हैं। जहाँ नवकनफ्यूशियाई मत आध्यात्मिक रूप से महायान के सामने बैठ गया वहाँ नव अरस्तूवाद ख्रीष्टीय चर्च के धर्मदर्शन (थियोलाजी) के ऊपर छा गया मजा यह कि ख्रीष्टीय चर्च की दृष्टि में अरस्तू एक नास्तिक था। दोनों में से प्रत्येक मामले में सत्ताधारी दल एक ऐसे विरोधी द्वारा पराजित हुआ जिसके पास अपनी आन्तरिक योग्यता के सिवा और कुछ न था। सुदूरपूर्वीय मामले में एक दर्शनात्मक सिविल सर्विस विजातीय धर्म की भावना के आगे पराजित हो जाती है पाश्चात्य उदाहरण में एक स्थापित चर्च एक विजातीय दर्शन की भावना के आगे घुटने टेक देता है।

पाश्चात्य ख्रीष्टीय धर्मजगत में अरस्तू ने प्रेत ने वही आश्चर्यकारी बौद्धिक शक्तिमत्ता प्रदर्शित की जो जीवित महायान ने सुदूरपूर्वीय दुनिया में दिखायी थी।

"यह बात नहीं है कि (रोमी परम्परा से) उस (पाश्चात्य) यूरोप ने आलोचनात्मक प्रज्ञा एवं वैज्ञानिक अन्वेषण की वह अस्थिर भावना ग्रहण की हो जिसने पाश्चात्य सभ्यता को यूनानियों का दायाद (heir) एवं उत्तराधिकारी (successor) बना दिया है। सामान्यतः इस नवीन तत्त्व के आगमन का आरम्भ

[1] **फुंग यू-लान 'ए शार्ट हिस्ट्री आफ चाइनीज फिलासफी' (न्यूयार्क १९४८, मैकमिलन) पृष्ठ ३१८**

(इतालवी) रिनसां से और यूनानी अध्ययन के पुनरुद्धार का आरम्भ पन्द्रहवीं शती से माना जाता है किन्तु वास्तविक परिवर्तन बिन्दु को तीन शती और पहिले रखना होगा। एबीलार्ड (Vivebat १०७६ ११४२ ई) एव जान आफ सलिसबरी (Vivebat circa १११५ ११८०) के समय पेरिस म इ ग्रामर पद्धति के लिए उत्साह एव दार्शनिक चिन्तन की भावना पहिले से ही (पाश्चात्य) ईसाई धर्म-जगत के बौद्धिक वातावरण को रूपान्तरित करने लगी थी, और उस समय के आगे उच्चतर अध्ययन तार्किक विवेचन (the quaestio) तथा उस सार्वजनिक विवाद की तकनीक द्वारा नियंत्रित एव शासित हो चला था जिसने मध्यकालीन (पाश्चात्य) दर्शन (यहाँ तक कि उसके महत्तम प्रतिनिधियों) की शली का बहुत अंशों मे निर्णय किया। सारबोन के रावर्ट का कथन है—"कोई भी ऐसी बात पूर्णत ज्ञात नहीं है जो विवाद या हुज्जत के दांतों से चबाई न गयी हो," और बिलकुल स्पष्ट से लेकर बिलकुल अमूर्त या गूढ़ तक, प्रत्येक प्रश्न को इस चर्वणक्रम के हाथ सौंपने की प्रवृत्ति ने न केवल बुद्धि कौशल की तत्परता तथा विचार की यथार्थता को उत्तेजन दिया बल्कि सब के ऊपर, आलोचना एव विधियुक्त सशय की उस भावना को विकसित किया जिसका बहुत अधिक ऋण पाश्चात्य संस्कृति एव आधुनिक विज्ञान पर है।"[1]

अरस्तू के जिस प्रेत न पाश्चात्य विचार की भावना (स्पिरिट) तथा रूपाकृति (फार्म) पर स्थायी प्रभाव डाला वह उसके तत्वाश वा आशय (सब्सटस) पर भी एक क्षणिक प्रभाव डालता गया। और यद्यपि इस विषय म उसकी छाप कम स्थायी थी फिर भी वह इतनी गहराई तक ता प्रवेश कर ही गयी कि उसके अनुवर्ती निराकरण के मूल्य रूप मे मानसिक सघर्ष के एक लबे एव दुष्कर आन्दोलन की आवश्यकता पडी।

'ब्रह्माण्ड के सम्पूर्ण चित्र मे (जसा कि उसे मध्यकालीन पाश्चात्य आखों ने देखा) खीष्ट धर्म की अपेक्षा अरस्तू का ही भाग अधिक है। यह अरस्तू और उसके उच्चाधिकारियों की ही क्षमता थी जो इस शिक्षा की उन विशेषताओं के लिए उत्तर दायी थी जिनके कारण हमे ऐसा लग सकता था मानो उनमे चर्च विषयक धर्म की भी गध है —जसे स्वर्गों का तारतम्य परिक्रामी गोलक (Revolving Spheres) ग्रहों को गति देने वाली प्रज्ञाएँ श्रेष्ठता के अनुसार तत्वों का क्रमनिर्धारण, और यह दृष्टि कोण कि खगोलीय पिण्ड एक अच्युत पचम सार तत्व से निर्मित हैं। निश्चय ही हम यह भी कह सकते हैं कि टालेमी (Ptolemy) की अपेक्षा यह अरस्तू ही था जिसे सोलहवीं शती मे उखाड फेंकने की आवश्यकता हुई और यह अरस्तू ही था जिसने कोपर्निकन सिद्धान्त (Copernican Theory) के मार्ग मे महत अवरोध उपस्थित किया।'[2]

[1] डासन क्रिस्टोफर रिलीजन एण्ड राईज आफ वेस्टन कल्चर (लन्दन १६५० शीड, ऐण्ड वाड) पृ० २२६—२३०

[2] बटरफील्ड एच न्नि ओरिजिस आफ माडन साइस, १३०० १८००। (लदन १६४६, बेल) पष्ठ २१ २२

ख्रीष्टीय सवत् की सत्रहवी शती तक जब कि पश्चिम की देशी बौद्धिक प्रतिभा बेकन के पद चिह्नो पर चलकर अर्थात् प्रकृति जगत् का अन्वेषण एव आविष्कार करने म लगकर पुन अपनी मान्यता स्थापित कर रही थी चर्च की धर्मविद्या अरस्तूवाद मे इतनी उलझ गयी थी कि उसके कारण गियार्दन ब्रूनो को अपने जीवन से हाथ धोना पडा और गैलीलियो को उन वैज्ञानिक अपसिद्धान्तो के लिए चर्च की निन्दा सहनी पडी जिनका नयी बाइबिल (न्यू टेस्टामेंट) म व्यक्त ईसाई धर्म से किसी प्रकार का सम्बन्ध नही था।

सत्रहवी शती के पूर्व आल्पसपार—ट्रांसअल्पाइन—पाश्चात्य वैज्ञानिको एव दार्शनिको ने पाठशालाइयो (स्कूलमन) पर इसलिए आक्रमण किया था कि वे अरस्तू के गुलाम बन गये थे। बेकन ने अरस्तू को उनका तानाशाह या डिक्टेटर ही कहा था जबकि पन्द्रहवीं शती के इतालवी मानववादियो ने उन पर यह कहकर आक्रमण किया था कि उनकी लटिन भद्दी है। किन्तु अरस्तू धर्म-दर्शन शास्त्रीय (क्लासिकल) शैली के पारंगियो के उपहासो के प्रति अभेद्य बना रहा। उनका उस पर कोई असर नही था। यह सत्य है कि इन आलोचको ने प्रसिद्ध अरस्तूवादी विद्वान डस स्कोतस (Duns Scotus) के नाम मे से अपकर्षकारी शब्द 'डस (जडमति) निकाल लिया, जिससे किसी अज्ञान व्यक्ति का नहो वरन ज्ञान की परित्यक्त प्रणाली के भक्त का बोध होता था, किन्तु लिखने के समय तक मानववादियो की बारी आ गयी। ईसाई सवत की बीसवी शती मे, जब कि प्राकृतिक विज्ञान एव प्रौद्योगिकी की धारा अपने सामने पडने वाली सब चीजो को बहाये लिये जाती दीखने लगी तब तो ऐसा मालूम पडा मानो डसो (मूढा, जडमतियों) की खोज एक समय चारो ओर छाये हुए शास्त्रीय पक्ष (क्लासिकल साइड) के मिटते हुए ध्वसावशेष म ही करनी चाहिए।

(५) भाषाओ एव साहित्यो-सम्बन्धी रिनसा

जीवित भाषा प्रधानत वाणी का एक प्रकार है जिसका इस तथ्य से सकेत मिलता है कि यह शब्द स्वय ह्वा टग (जिह्वा) के लातीनी पर्याय से उद्भूत हुआ है। साहित्य जैसा कि होना ही चाहिए, उसका उपजात (By Product) है। किन्तु जब भाषा एव साहित्य के प्रेत मत से जीवित कर दिये जाते हैं तो दोनो के बीच का यह सम्बन्ध उलट जाता है। तब भाषा की जानकारी साहित्य पढन के लिए कष्टप्रद पूर्वावश्यकता मात्र बन जाती है। जब अधेरे मे किसी टेबुल-पद स टकराकर हमारे पाव की उगली चोटीली हो जाती है और मुह से एक उद्गार (Vacative mensa O table) निकल पडता है तब हम अपनी अनुभूतियो की अभिव्यक्ति के लिए नया शब्द भाण्डार नही अर्जित करते किन्तु वर्जिल, होरेस एव दूसरे श्रेष्ठ लटिन साहित्य के अध्ययन के सुदूर लक्ष्य की दिशा म प्रथम लघु पद रखते हैं। हम भाषा को बोलने का यत्न नहीं करते और जब हम उसे लिखने की चेष्टा करते हैं तो केवल इसलिए कि हम पुराकाल के महान् कृतिकारो की कृतियो को और अच्छी तरह समझ सकें।

बहुत दिनों से परित्यक्त साहित्यिक साम्राज्य पर अधिकार करने की दिशा म

प्रथम पग रखना पर ऐसा काय है, जिसके लिए जीवित राजनीतिक सामाज्य के साधनो की लामबन्दी (mobilisation) की आवश्यकता पड सकती है। प्रथम चरण म किसी साहित्यिक रिक्थ का प्राचीन (क्लासिकल) स्मारक कोई चयनिका (anthology), ग्रन्थ-सग्रह (Corpus) ज्ञान कोश (thesaurus), अभिधान (lexicon) अथवा किसी राजा के आदेश म विद्वमण्डल द्वारा सगृहीत सपादित विश्वकोश आदि होता है और प्राय महत्त्वाकाक्षापूर्ण पाण्डित्य की ऐसी कृतियो का सरक्षक किसी एक पुनरुज्जीवित सावभौम राज्य का राजा या शासक हो बन जाता है जो स्वय भी राजनीतिक रिक्थ की ही उपज होता है। इस प्रकार (साइप) के पाच प्रतिनिधिक उदाहरण—असुर बनीपाल कान्स्टेन्टाइन पारफाइराजेनिटस, युग लो, काग ह्सी तथा च्यो इन लुग (Chi en Lung) है जिनम स अन्तिम चारो इसी प्रकार की उपज थ। किसी मृत श्रेष्ठ पुरा साहित्य (डेड क्लासिकल लिटरेचर) की बची हुई कृतियो के सकलन, सम्पादन टिप्पणीकरण तथा प्रकाशन के इस काय म सिनाई सावभौम राज्य अपन सब प्रतिस्पर्धियो को बहुत पीछे छोड गया था।

यह सत्य है कि जिन आधुनिक पुरातत्त्वज्ञो ने निनवा के मदान म खुदाई करते हुए कुछ फलक (tablets) उपलब्ध कर दो महत्त असीरियाई सग्रहो को जोडने बिसरने की विद्या प्राप्त की थी उनको भी असुर बनीपाल के सन्त सुमर तथा अक्कादी पुरासाहित्य के दो मतिका पुस्तकालयो के आकार एव परिमाण का पूरा ज्ञान नही हो पाया क्योकि राजपण्डित की मत्यु के शायद सोलह वष के अदर ही उसके दोनो पुस्तकालयो की सामग्रियाँ उस घणित नगर के ध्वसावशेषो म चारो ओर बिखरा दी गयी जो ६१२ ईसापूव आक्रान्त होकर लुट चुका था। यह हो सकता है कि असुर बनीपाल का सग्रह उन सिनाई क्लासिक के कनफ्यूशियाई धमसूत्रो स अधिक रहा हो जो सरलतापूवक मुलायम मिट्टी पर छापे जाने की जगह ताग राजवश की साम्राज्यिक राजधानी सी नगान (Si Ngan) म ८३६ एव ८४१ ई के बीच कठोर पत्थरों पर बडे श्रमपूवक उत्कीण किये जाते थ और जो एक शती बाद, सभाष्य ग्रन्थ के रूप म १३० भागो में एक सस्करण म मुद्रित किये गये। फिर भी हम कुछ विश्वास के साथ इसका अनुमान कर सकते हैं कि असुर बनीपाल के सग्रह की कीलाक्षरी लिपि की अक्षर सख्या उस सग्रह के सिनाई अक्षरो की सख्या स बहुत कम होगी जिसे मिग राजवश के द्वितीय सम्राट युग लो ने १४०७ ई की अवधि मे एकत्र किया था क्योकि वह २२ ८७७ पुस्तको के ११ ०९५ भागो म था और यह बडी सहश विषय सूची के अतिरिक्त थी। इसकी तुलना म प्राच्य रोमी सम्राट कान्स्टेन्टाइन पोर्फी रोजनिटस (राज्यकाल ९१२ ५९ ई) का यूनानी सग्रह विपुल अपदाथ हो जाता है यद्यपि पाश्चात्य मस्तिष्क के लिए वह भी हैरान कर देने वाली सख्या है।

जब हम इन प्रारम्भिक कारवाइयो स गुजरते हुए क्लासिकल साहित्यो की वे अनुकृतियाँ (स्मीटेशन) निर्मित करने के बिन्दु तक पहुचते है जिनपर उसन परिश्रम किया है तब हम यह निश्चय करने का भार मनीषियो पर छोड देना चाहिए कि उन चीनी साम्राजिक नागरिक सवापरीक्षाओ के उम्मीदवारो-द्वारा सिनाई (चीनी)

क्लासिक्ल शली मे लिखे निबन्धो की सख्या क्या है जो ६२२ ई मे अपने पुन प्रच लनकाल से लेकर १६०५ ई मे बन्द किय जान क समय तक अर्थात १२८३ वर्षो की लम्बी अवधि म लिखे गये और उनकी सख्या उन लेखाम्यामा से कम है या अधिक जो पन्द्रहवी शती से लेकर इस लेखन काल तक पाश्चात्य जगत् के विद्वानो एव छात्रो द्वारा लटिन तथा ग्रीक गद्य पद्य मे रचे गय। किन्तु गहन साहित्यिक उद्देश्यो के लिए पुनरुज्जीवित क्लासिक्ल भाषाओ के उपयोग म न तो पश्चिम न सुदूर पूव ही बजेंतियाई इतिहासकारो की तुलना मे पक्ति म खडे हो सकते है। यहा हम इन बजेंतियाई इतिहासकारो म दसवी शती के लियो ग्रायाकोनम एव द्वादश शती के अन्ना कामनेना जैसे उन श्रेष्ठ कलाकारो की भी गणना कर लते है जिनका ऐटिक यूनानी बोली 'क्वाइने' (Koine) के रिनसा म साहित्यिक अभिव्यक्ति का माध्यम प्राप्त हो गया था।

शायद पाठका के मन मे यह बात उठ रही होगी कि हमा साहित्यिक रिनसाओ के विषय मे अबतक जो कुछ लिखा है वह उस वास्तविक साहित्यिक रिनसा पर बिल्कुल ही लागू नही होता—वास्तविक रिनसा जो उनके अपने मन के अग्रभाग को आच्छादित किये हुए है। निश्चय ही उत्तर माध्यमिक काल म यूनानी साहित्य का जो इतालवी रिनसा आया उस लोरजो दाई मेडिसी जैस राजनीतिक सामन्तो का सरक्षण भले ही प्राप्त हुआ हो किन्तु वस्तुत या तरवत वह माध्यनारहित विद्वत्ता का एक स्वयस्फूत्त आन्दोलन था। शायद बात यही थी यद्यपि पन्द्रहवी शती के पोपो विशेषत पोप निकोलस पंचम (१४४७ ५५ ई) क सरक्षण का मूल्य भी कम नही किया जा सकता। पोप निकोलस पचम ने तो पुरानी हस्तलिपियो के सैकडा विद्वानो एव प्रतिलिपिकारो को वेतन देकर रखा था इसने लटिन पद्य मे होमर के एक अनुवाद के लिए दस हजार गुल्डेन (सत्रह आने अर्थात वतमान १ रुपया ६ पस के मूल्य के बराबर का एक सिक्का) दिये थ, उसने नौ हजार ग्रन्थो का एक पुस्तकालय निर्मित किया था। जो हो यदि हम अपन मन को पाश्चात्य इतिहास की पूवावधियो की ओर ले जाते हैं और रिनसा काल के कई शतियो पहिले तक चले जाते हैं तो हम लोग जिन उदाहरणों पर अभी विचार करते रहे हैं उनके बहुत निकट की चीजें हम वहा मिल जायगी। वहा हमारी भेंट शालमेन से होगी जो एक मृत सभ्यता के सावभौम राज्य का पुनरुज्जीवनदाता था और जो अपने को अस्थायी रूप से असुर वनीपाल, युग लो तथा कस्टन्टाइन पोर्फीरोजेनिटस के समकक्ष स्थापित करता है।

पाश्चात्य ईसाई धमजगत् मे हेलेनिज्म (यूनानियत) के साहित्यिक रिनसा का प्रथम निष्फल प्रयत्न पाश्चात्य ईसाई सभ्यता के जन्म क साथ हो हुआ था। जब इस्लाम ने प्राच्य परम्परानिष्ठ ईसाई राजतत्र पर विजय प्राप्त कर ली तो वहाँ से भागकर आय हुए एक यूनानी शरणार्थी तासुस के आर्कबिशप थियोडोर ने सातवी शती के अन्त म आग्ल चच का सघटन किया। इसी प्रकार पश्चिम म हलेनी रिनसा का पगम्बर एक नाथम्ब्रियाई (नाथम्ब्रियन) श्रद्धेय—वेनरबुल—ब्रीड (६७३ ७३५ ई) था। एक दूसरा नाथम्ब्रियाई अलक्यूईन आफ याक (७३५ ८०४ ई) शालमन के

प्रथम पग रखना पर ऐसा जान है, जिसमे निए जीवित राजनीतिक साम्राज्य के साधना की लामबन्दी (mobilisation) की आवश्यकता पड सकती है। प्रथम चरण म किसी साहित्यिक रिक्तों का प्रारूपिक (टिपिकल) स्मारक काइ चयनिका (anthology), ग्रन्थ-सग्रह (Corpus) ज्ञान कोश (thesaurus), अभिधान (lexicon) अथवा किसी राजा के आश्रय म विद्वमण्डल द्वारा सगृहीत सपादित विश्वकोश आदि होता है और प्राय महत्त्वाकाक्षा पाण्डित्य की ऐसी कृतिया का सरक्षक किसी एक पुनरुज्जीवित सावभौम राज्य का राजा या शासक ही बन जाता है जो स्वय भी राजनीतिक रिक्तता की ही उपज होता है। इस प्रकार (टाइप) के पाच प्रतिनिधिक उदाहरण—असुर बनीपाल कान्स्टन्टाइन पारफाइरोजेनिटस युग लो, काग ह्सी तथा त्सीन लुग (Chi en Lung) है जिनम स अन्तिम चारो इसी प्रकार की उपज थ। किसी मृत श्रेष्ठ पुरा साहित्य (डेड क्लासिकल लिटरेचर) की बची हुई कृतिया के सकलन सम्पादन टिप्पणीकरण तथा प्रकाशन के इस काम म सिनाई सावभौम राज्य अपन सब प्रतिस्पर्धिया को बहुत पीछे छोड गया था।

यह सत्य है कि जिन आधुनिक पुरातत्त्वज्ञा ने निनवा क मदान म खुदाइ करते हुए कुछ फलक (tablets) उपलब्ध कर दो महत असीरियाइ सग्रहा को जोडन बिखरने का विद्या प्राप्त की थी उनको भी असुर बनीपाल क समय सुमर तथा अक्कादी पुरासाहित्य के इन मृत्तिका पुस्तकालयो क आकार एव परिमाण का पूरा ज्ञान नहा हो पाया क्योकि राजपण्डित की मृत्यु के पश्चात सोलह वर्ष के अन्दर ही उसके दोनो पुस्तकालयो की सामग्रियाँ उस घणित नगर क ध्वसावशेषो मे चारो ओर बिखरा दी गयीं जो ६१२ ईसापूव आक्रान्त होकर लुट चुका था। यह हो सकता है कि असुर बनीपाल का सग्रह उन सिनाई क्लासिक के कनफ्यूशियाई धमसूत्रो स अधिक रहा हो जो सरलतापूर्वक मुलायम मिट्टी पर छापे जान की जगह ताग राजवश की साम्राजिक राजधानी सी नगान (Si Ngan) म ८३६ एव ८४१ ई के बीच कठोर पत्थरो पर बडे श्रमपूर्वक उत्कीर्ण किय जान थ और जो एक शती बाद सभाष्य ग्रन्थ क रूप म १३० भागो के एक सस्करण म मुद्रित किय गय। फिर भी हम कुछ विश्वास के साथ इसका अनुमान कर सकत हैं कि असुर बनीपाल के सग्रह की कीलाक्षरी लिपि की अक्षर सख्या उस सग्रह के सिनाई अक्षरो की सख्या स बहुत कम होगी जिस मिंग राजवश के द्वितीय सम्राट युग लो न १४०३ ७ ई की अवधि म एकत्र किया था क्योकि वह २२ ८७७ पुस्तको के ११ ०९५ भागो म था और यह बडी भारी विषय सूची क अतिरिक्त थी। इसकी तुलना म प्राच्य रोमी सम्राट कान्स्टन्टाइन पार्फी राजनिट्स (राज्यकाल ९१२ ५९ ई) का यूनानी सग्रह कि हुन अपन्याय हो जाता है यद्यपि पाश्चात्य मस्तिष्क क लिए वह भी हैरान कर दन वाली सख्या है।

जब हम इन प्रारम्भिक कारवाइयो स गुजरते हुए क्लासिकल साहित्यो की व अनुकृतियो (इमिटेशन) निर्मित करन क विद्वत्दभ तक पहुचत हैं जिनपर उनने परिश्रम किया है तब हम यह निश्चय करने का भार सम्भावितो पर छोड देना चाहिए कि उन चानी साम्राजिक नागरिक सेवापरीक्षाओ क उम्मीदवारो-द्वारा सिनाई (चीनी)

क्लासिकल शली मे लिखे निबन्धो की सख्या क्या है जो ६२२ ई मे अपने पुन प्रच लनकाल से लेकर १६०५ ई म बन्द किये जाने के समय तक अर्थात १२८३ वर्षों की लम्बी अवधि मे लिखे गये और उनकी सख्या उन लेखाभ्यासो से कम है या अधिक जो पन्द्रहवीं शती से लेकर इस लेखन काल तक पाश्चात्य जगत के विद्वानो एव छात्रो द्वारा लटिन तथा ग्रीक गद्य पद्य मे रचे गये। किन्तु गहन साहित्यिक उद्देश्यो के लिए पुनरुज्जीवित क्लासिकल भाषाओ के उपयोग म न तो पश्चिम न सुदूर पूव ही बजेंतियाई इतिहासकारो की तुलना म पक्ति म खडे हो सकते हैं। यहा हम इन बैजेंतियाई इतिहासकारो मे दसवी शती के त्रियो दायाकोनस एव द्वादश शती के अन्ना कामनेना जसे उन श्रेष्ठ कलाकारो की भी गणना कर लेते है जिनको ऐटिक यूनानी बोली 'क्वाइन' (Koine) के रिनसा म साहित्यिक अभिव्यक्ति का माध्यम प्राप्त हो गया था।

शायद पाठको के मन म यह बात उठ रही होगी कि हमने साहित्यिक रिनसाओ के विषय मे अबतक जो कुछ लिखा है वह उस वास्तविक साहित्यिक रिनसा पर बिल्कुल ही लागू नही होता—वास्तविक रिनसा जो उनके अपने मन के अग्रभाग को आच्छादित किये हुए है। निश्चय ही उत्तर माध्यमिक काल म यूनानी साहित्य का जो इतालवी रिनैसा आया उसे लोरेंजो दाई मेडिसी जसे राजनीतिक सामन्तो का सरक्षण भले ही प्राप्त हुआ हो किन्तु वस्तुत या तत्वत वह मान्यतारहित विद्वत्ता का एक स्वयस्फूर्त आन्दोलन था। शायद बात यही थी यद्यपि पन्द्रहवी शती के पापा विशेषत पोप निकोलस पंचम (१४४७ ५५ ई) के सरक्षण का मूल्य भी कम नही किया जा सकता। पोप निकोलस पचम ने तो पुरानी हस्तलिपियो के सैकडो विद्वानो एव प्रतिलिपिकारो को वेतन देकर रखा था इसने लैटिन पद्य मे होमर के एक अनुवाद के लिए दस हजार गुल्डेन (सत्रह आने अथात् वतमान १ रुपया ६ पसे के मूल्य के बराबर का एक सिक्का) दिये थ उसने नौ हजार ग्रन्थो का एक पुस्तकालय निर्मित किया था। जो हो यदि हम अपने मन को पाश्चात्य इतिहास की पूर्वावधियो की ओर ले जाते हैं और रिनसा काल के कई शतियो पहिले तक चले जाते हैं तो हम लोग जिन उदाहरणों पर अभी विचार करते रहे हैं उनके बहुत निकट की चीजें हमे वहा मिल जायगी। वहा हमारी भेंट शालमेन से होगी जो एक मृत सभ्यता के सावभौम राज्य का पुनरुज्जीवनदाता था और जो अपने को अस्थायी रूप से असुर वनीपाल, युग लो तथा कॅंस्टटाइन पोर्फीरोजेनिटस के समकक्ष स्थापित करता है।

पाश्चात्य ईसाई धमजगत् म हेलनिज्म (यूनानियत) के साहित्यिक रिनसा का प्रथम निष्फल प्रयत्न पाश्चात्य ईसाई सभ्यता के जन्म के साथ हो हुआ था। जब इस्लाम ने प्राच्य परम्परानिष्ठ ईसाई राजक्षेत्र पर विजय प्राप्त कर ली तो वहा से भगकर आये हुए एक यूनानी शरणार्थी, तासुस के आर्कबिशप थियोडोर ने सातवीं शती के अन्त म आग्ल चच का सघटन किया। इसी प्रकार पश्चिम म हलेनी रिनसा का पगम्बर एक नार्थम्ब्रियाइ (नार्थम्ब्रियन) श्रद्धेय—वेनरेबुल—बीड (६७३ ७३५ ई) था। एक दूसरा नार्थम्ब्रियाई अलक्यूईन आफ याक (७३५ ८०४ ई) शालमेन के

व्यापार के बीज अपने साथ ले आया और स्कैंडिनेविया से उठने वाली बर्बरता की बाधा के द्वारा उसे अकाल में ही नष्ट कर दिए जाने के पूर्व उसकी बुवाई करने वालों ने नार्दर्न परिधान में हैलेनी साहित्यिक संस्कृति को न केवल पुनर्जीवित करना शुरू कर दिया था बल्कि ग्रीक का हलका-सा ज्ञान भी प्राप्त कर लिया था। अलकुईन ने यह स्वप्न देखने का साहस किया था कि वह शार्लमैन से संरक्षण के समर्थित हो फ्रांकलैण्ड की धरती पर एथेंस के प्रेत को खडा कर देने में समर्थ होगा। यह एक क्षणिक स्वप्न था और जब पाश्चात्य ईसाई धर्मजगत् उस स्थिति में पुनः बाहर आने लगा जिसे नवम शती का उपचार कहा गया है तो देखा गया कि जिस प्रेत को प्रवेश दिया गया है वह हलेनी क्लासिकल साहित्य का प्रेत नहीं है बल्कि अरस्तू एवं उसके दर्शन का प्रेत है। अलकुईन की स्वप्नसिद्धि में छाया की शताब्दियों की शर्ता दया आयी और चली गया।

यदि हम इस बिन्दु पर यह सोचने के लिए ठहर जायँ कि क्यों इतना शतियों के लिए अलकुईन एवं उसके मित्रों की आशाओं की पूर्ति रुक गयी तो हम देखेंगे कि दिगन्तरीय संघर्षों जिनका वर्णन विवेचन हम इस अध्ययन के पूर्व भाग में करते रहे हैं तथा कालान्तगत संघर्षों जिन पर हम इस समय विचार कर रहे हैं में अन्तर है। दिगन्तर में जो संघर्ष होता है वह दिगन्तर में होने वाली एक भिडन्त या टक्कर (collision) है और टक्करें प्रायः सायोगिक घटनाएं (accidents) होती हैं। सैनिक पराक्रम अथवा समुद्र सन्तरण के नवीन कौशल अथवा स्टेप्पी का सूखना (desiccation) सांस्कृतिक दृष्टि से ऐसे अप्रासंगिक कारण हो सकते हैं जो एक समाज को दूसरे पर आक्रमण की ओर अग्रसर करते हैं और फिर उसके जो सांस्कृतिक परिणाम होते हैं उनका वर्णन ऊपर हमने किया है। इसके विपरीत कालान्तगत संघर्ष (रिनेसा) प्रेत साधना (necromancy) का कार्य है जिसमें प्रेत का आवाहन किया जाता है और प्रेत-साधक को प्रेतोत्थान में तबतक सफलता नहीं मिल सकती जबतक कि उसे अपने व्यवसाय के हस्तलाघव या दाव-पेंच न मालूम हों। दूसरे शब्दों में पाश्चात्य ईसाई धर्मजगत् तबतक किसी हेलेनी प्रेत अथवा अतिथि को अपने में प्रविष्ट नहीं कर सकता था जब तक कि उसका अपना भवन आगन्तुक का स्वागत करने योग्य न हो। यह ठीक है कि हेलेनी लाइब्रेरी वस्तुगत रूप में सदा ही उपस्थित थी किन्तु जब तक पश्चिमवासी (वस्नर) उसके अन्तर्गत प्राप्त सामग्री को पढ़ने के योग्य न हो जाय प्रामाणिक रूप से उसे खोला नहीं जा सकता था।

उदाहरणार्थ ऐसा कोई समय न था यहाँ तक कि पाश्चात्य अंधकारयुग के अधस्तम पतनबिन्दु में भी नहीं जब कि पाश्चात्य ईसाई समाज के कब्जे में वस्तुगत रूप से वर्जिल का कृतित्व न रहा हो या उसे लैटिन का इतना ज्ञान न रहा हो कि उसके वाक्यों का अर्थ न लगा सके। फिर भी कम से कम मानवता से चौसरी तक अर्थात् आठ शतियाँ लगी बीत गयीं जिनके बीच वर्जिल का काव्य अत्यन्त प्रतिभाशाली पश्चिमी प्रशंसकों द्वारा भी समझ के भी बाहर रहा—यदि समझ के मानी से हमारा मतलब उस अध्याय को ग्रहण कर सकने की योग्यता से हो जिसे वर्जिल व्यक्त करना

चाहता था और जिसे उसके सदृश मनस्वी समकालीनों-द्वारा ग्रहण किया गया था अथवा जिसे सेण्ट आगस्टाइन तक भविष्य की पीढ़िया ग्रहण करती गयी। यहा तक कि जिस दान्ते की भावना—प्रेरणा पर हेलेनवाद के इतालवी रिनेसा की प्रथम आभा उदित होने लगी थी उसने भी वर्जिल मे एक ऐसी आत्मा का दर्शन किया जिसे ऐतिहासिक वर्जिल ने स्वय अपने मानवीय रूप के लिए नहीं वरन् आर्फियस जैसे किसी महान पुराण कल्पित व्यक्तित्व के लिए लिया समझा होता।

इसी प्रकार ऐसा समय कभी नहीं आया जब पाश्चात्य समाज के पास हेलेनी विद्वान बोथियस (४८० ५२४ ई) द्वारा अत्यन्त योग्यतापूर्वक लटिन मे अनूदित अरस्तू की दार्शनिक कृतिया न रही हो, फिर भी बोथियस की मृत्यु से गणना करें तो छ शतिया ऐसी बीत गयी जिनके बीच उसके द्वारा किये गये अनुवाद अत्यन्त गभीर पाश्चात्य ईसाई विचारकों की भी समझ के बाहर रहे। अन्त मे जब पाश्चात्य ईसाई अरस्तू के लिए तयार भी हुए तो उन्होंने उसे चक्करदार रास्ते से जाकर अरबी अनुवादकोंके माध्यम से ग्रहण किया। छठी शती के ईसाई जगत को अरस्तू के अपने अनुवादको का उपहार देने म बोथियस ने उस दयालु किन्तु विचारहीन काका की भाति आचरण किया जो, जसे मान लीजिए, श्री टी एस इलियट की कविताए अपने भतीजे को उसकी तेरहवी वर्षगाठ के अवसर पर उपहारस्वरूप देता है, भतीजा, उलट पुलट कर पुस्तक अपने पुस्तकालय के अधतम कोने म रख देता है और बडी समझदारी के साथ उसके बारे म सब कुछ भूल जाता है। छ वर्ष बाद—जो व्यक्तिगत किशोर के सक्षिप्त काल माप के अनुसार छ शतियो के बराबर है—भतीजे की आक्सफोर्ड के उपस्नातक—अण्डरग्रेजुएट—के रूप मे इन कविताओ से पुन भेंट होती है। तब उस पर उनका जादू सवार हो जाता है और वह उन्हे मेसस बी एच ब्लैकवेल से खरीद लाता है। जब छुट्टियो म घर लौटता है तो यह देखकर कृत्रिम आश्चर्य प्रकट करता है कि पुस्तक तो इन सारे दिनो उसके आले म पडी रही है।

जो बात वर्जिल और अरस्तू के साथ हुई वही बजेंतियाई पुस्तकालयो म सुरक्षित ग्रीक साहित्य की उन महती कृतियो के साथ भी घटित हुई जिन्हे साहित्यिक पक्ष म इतालवी हेलेना रिनसा का मुख्य भोजन बनना था। कम से कम ग्यारहवी शती के बाद से, पाश्चात्य ईसाई धर्मजगत का बजेंतियाई विश्व के साथ घनिष्ठ सम्पर्क था। तेरहवी शती के प्रथमार्द्ध म कुस्तुनतुनिया एव यूनान (ग्रीस) पर फ्रैंकी विजेताओं का वास्तविक कब्जा था। परन्तु उस समय इसका कोई सास्कृतिक परिणाम नहीं निकला क्योंकि पश्चिम म उस समय भी क्लासिकल (वरेण्य पुरा साहित्य) बन्दर के लिए अदरक के समान ही था। इसकी व्याख्या म यह कहा जा सकता है कि ये सम्पर्क विरोधपूर्ण सम्पर्क थे और वे पाश्चात्यो को हेलेनी साहित्य की बजेंतियाई लाइब्रेरी के प्रति अनुकूल प्रेरणा देने म असमर्थ थ। किन्तु इसका जवाब यह होगा कि पन्द्रहवी शती के राजनीतिक एव धार्मिक सम्पर्क भी कुछ कम विरोधभावपूर्ण नहीं थे पर उस समय रिनसा तो अपनी पूरी जवानी पर था। सास्कृतिक परिणामो म जो अन्तर दिखायी पडा उसका कारण तो स्पष्ट है। किसी मत सम्प्रदाय का रिनसा तभी घटित

होगा जब सम्बद्ध समाज ने उस सांस्कृतिक स्तर तक आने को उसे लिया जाता जिस स्तर पर उसका पूर्ववर्ती तब खड़ा रहा हो जब वह अपनी उन सिद्धियों को प्राप्त करने में लगा था जो अब पुरातत्त्वज्ञों की प्रशंसा में हैं।

जब हम पाश्चात्य ईसाई धर्मजगत् तथा चीन के साहित्यिक सिनसाओं की मृत्यु पर विचार करते हैं तो हमें मालूम पड़ता है कि तथाकथित उनका प्रभाव अन्त तक बना रहा जबतक कि उस आधुनिक पाश्चात्य सभ्यता के रूप में आकर्षक विदेशी विजातीय अतिक्रमी (इन्ट्रूडर) ने उन्हें उखाड़कर फेंक नहीं दिया। इस आधुनिक पाश्चात्य सभ्यता ने ईसाई सम्वत की सत्रहवीं शताब्दी में पाश्चात्य ईसाई धर्मजगत् के प्राणों पर और उन्नीसवीं एवं बीसवीं शताब्दियों के मोड़ पर चीन के प्राणों पर अपनी मोहिनी डाल दी। पाश्चात्य समाज बिना किसी बाह्य हस्तक्षेप के अपने हेलेनी प्रेत से कुश्ती लड़ने के लिए छोड़ दिया गया था किन्तु सत्रहवीं एवं अठारहवीं शताब्दियों के मोड़ पर पुस्तिकाओं (पम्फ्लेट्स) का जो युद्ध शुरू हुआ और जिसे स्विफ्ट ने बैटिल ऑफ बुक्स (पुस्तक-समर) के नाम से पुकारा है तथा जिसमें प्रतिस्पर्द्धी प्राचीनों एवं आधुनिकों की आनुपातिक योग्यता के प्रश्न पर बहस कर रहे थे उसने दिखा दिया कि हवा का रुख किधर है। उस समय बहस का मुख्य सवाल यह था कि पाश्चात्य संस्कृति वहीं की धरती में बद्धमूल और प्राचीनों की अनुवर्ती या पूर्वव्याप्तिमूलक (retrospective) प्रशंसा एवं अनुकृति में पंगु बनकर रहे या फिर प्राचीनों को पीछे छोड़कर अज्ञात (भविष्य) की दिशा में आगे बढ़ चले? इस प्रकार जो प्रश्न सामने आया उसका एक ही विवेकोचित उत्तर सम्भव था किन्तु प्रश्न ने खुद एक दूसरा पूर्ववर्ती प्रश्न उठा दिया और वह यह था कि क्या प्राचीनों की प्रशंसा एवं अनुकृति--जिसे हम शब्द के विशदतम अर्थ में आधुनिक पाश्चात्य क्लासिकल शिक्षण कह सकते हैं—ने सचमुच आधुनिक विकास को पंगु कर दिया है?

इस प्रश्न का उत्तर स्पष्टतः प्राचीनों के अनुकूल था, और यह भी एक महत्त्वपूर्ण बात थी कि यूनानी—हेलेनी अध्ययन के कुछ अग्रगामी उदाहरणार्थ पेट्राक एवं बोकेशियो भी जनपदीय इतालवी साहित्य की सवृद्धि के प्रमुख ज्योतिधर थे। देशी या जनपदीय भाषाओं के साहित्य की प्रगति अवरुद्ध करने के बजाय हेलेनी अध्ययन के रिनसा ने उसे उलटे नयी प्रेरणा प्रदान की। इरेसमस ने सिसरोनियन लटिन में जो अधिकार प्राप्त किया था उसने उसके साथी पाश्चात्यों को अपनी मातृभाषाओं की साहित्यिक समृद्धि से विमुख करने में सफलता नहीं प्राप्त की। साध्य एवं साधन कारण एवं परिणाम उदाहरणार्थ आंग्ल षोडश शतीक हेलेनी अध्ययन तथा उसी शती के अन्त में अनुपमेय ज्योति से पूर्ण अंग्रेजी कविता के विस्फोट के बीच के सांस्कृतिक सम्बन्ध (nexus) को तौलना बिल्कुल असंभव है। क्या शेक्सपियर के 'थोडी लटिन एवं कम ग्रीक' ने उसके नाटकों की रचना में सहायता की थी? कौन बता सकेगा? यह सोचा जा सकता है कि मिल्टन के पास लटिन एवं ग्रीक की बहुत बड़ी सम्पदा थी किन्तु यदि उसके पास इन दोनों में से कोई भी चीज न होती तो हम परेडाइज लास्ट (खोया स्वर्ग) एवं सम्सन एगोनाइस्टस भी न प्राप्त होते।

(६) चाक्षुप कलाओ वाले रिनैसा

किसी मृत सभ्यता की उत्तराधिकारिणी व इतिहास म किसी न किसी चाक्षुप कला का रिनसा एक सामान्य घटना है। उदाहरणस्वरूप हम 'पुराना राज्य (Old Kingdom) के स्थापत्य एव चित्रकला की शलियो के उस रिनसा को ले सकते हैं जो ईसापूव की सातवी एव छठी शतिया म सय्यत युग (Saite Age) के उत्तर कालिक मिस्री जगत मे, दो हजार वर्षों के बाद घटित हुआ था। इसी प्रकार ईसापूव की नवी, आठवी एव सातवी शतिया के बबिलोनियाई जगत म पत्थर की कम उभरी खुदाई की तक्षणकला (carving in bas relief) की सुमेरु शली के रिनसा या फिर ईसाई सवत की दसवी, ग्यारहवी एव बारहवी शतिया के वजतियाई हाथी-दांत के पत्रद्वय म बने मोडदार चित्रो (ivory of Byzantine diptychs) पर 'बास रिलीफ' (पत्थर मे किञ्चित उभरी) तक्षणकला की हेलेनी शली (जिसक सर्वोत्तम उदाहरण ईसापूव की पाचवी एव चौथी शतियो की अताई—ऐटिक—श्रेष्ठ कृतिया हैं) के रिनसा को लिया जा सकता है। किन्तु इन तीना चाक्षुप रिनैसाओ न जितने क्षेत्र तक अपना विस्तार किया था, पाश्चात्य ईसाई धमजगत (वेस्टन क्रिश्चियनडम) म होने वाले चाक्षुप कलाओ के हलेनी रिनसा ने उन्हे कही पीछे छोड दिया। पाश्चात्य ईसाई धमजगत् के इस रिनसा का प्रथम अवतरण उत्तर मध्यकालीन इटली मे हुआ और वहा से वह शेष पाश्चात्य जगत म फल गया। हेलेनी चाक्षुप कलाओ के प्रेत के इस आवाहन की साधना स्थापत्य तक्षणकला एव चित्रकला तीनो क्षत्रो म की गयी और इनमे से प्रत्येक क्षेत्र म प्रेत शली (revenant style) न अपनी प्रतिस्पर्धिनियो को इस तरह उखाडकर फेंक दिया कि उसके सिवा कही किसी का नामलेवा न रहा। और जब उसकी शक्ति समाप्त हो गयी तो वहा सौन्दर्यानुभव क स्तर पर ऐसी रिक्तता उत्पन्न हो गयी जिससे पाश्चात्य कलाकारो के लिए यह समझना कठिन हो गया कि वे अपनी इतने लम्बे काल तक डूबी हुई देशी प्रतिभा की अभिव्यक्ति किस रूप म करें।

पाश्चात्य चाक्षुप कलाओ के इन तीन क्षेत्रो म से प्रत्यक की वही विचित्र कहानी है—आगन्तुक प्रेता के निमम हाथा स घर की पूरी सफाई क बाद अलकृत करने की कहानी। किन्तु इन तीना म भी मूर्तिकला के क्षेत्र मे पश्चिम का धरती की अपनी प्रतिभा पर हेलेनी प्रेत की विजय की कथा अत्यन्त असाधारण है क्योकि इस क्षेत्र म एक मौलिक पाश्चात्य शली के तेरहवी शती के उत्तरी फरासीसी व्याख्याताओ ने हेलेनी, मिस्री एव महायानी बौद्ध शैलियो की सर्वोत्तम कृतिया जसी ही विशेषताए रखने वाली कृतियो का निर्माण किया, जबकि चित्रकला के क्षेत्र म पाश्चात्य कलाकार परम्परानिष्ठ ईसाई समाज की कहीअधिक अकालपक्व कला के सरक्षण से मुक्त न हो पाय। इसी प्रकार स्थापत्य के क्षेत्र मे भी रामनेस्क (Romanesque या रोम प्रभावित स्थापत्य) शला (जो जसा कि इसका उत्तरकालिक लेबिल बताता है एक पूवगत हेलनी सभ्यता के सबसे पीछे क युग से उत्तराधिकार मे प्राप्त विषय वस्तु का एक प्रकार मात्र थी) एक आक्रामक गाथिक शली से पहिल ही आतकित एव पराजित

हो चुकी थी। जसा कि हम पहिले [illegible] चुके हैं इस गाथिक [illegible] जन्म अज्ञागाई एव ए दस्लूनियाई [illegible] जगत् म हुआ था।

बीसवी शती के [illegible] बाद के लिए [illegible] वास्तुकला तथा उसके मीरियाई एव हलेनी [illegible] (recultants) [illegible] होने वाले घातक सघर्ष के जो योद्धा थे [illegible] वेस्टमिनस्टर अबे मे [illegible] — [illegible] कला म बुत बने अब भी [illegible] है। [illegible] उत्तरयुगीन विजय है। उच्च कोटि की [illegible] मूर्तियां [illegible] म जो नीचे की समाधियो पर बनी अधलेटी (recumbent)) [illegible] मूर्तियां की ओर देख रही हैं देशी पाश्चात्य ईसाई तरुण कला की आत्मगौरव (टॉम अपाल्ट) शली अपने स्तभित ओठो म मानो मौन हुगगान गा रहा हो। मध्य के मध्यभाग म तोरी गियानी (१४७२ ई स १५२२ ई) की हलनवादिनी—यूनानी प्रभाव पदा करने वाली—वरेण्य कृतिया रखी हुई हैं। तोरी गियानी ने उस कुत्सित वातावरण की घृणापूर्ण उपेक्षा की जिसम रहकर उस अपनी श्रेष्ठ कृतिया का निर्माण करना हो था। वह अपने चतुर्दिक आत्मतृप्ति के साथ देख रहा था और अत्यन्त विश्वासपूर्वक आशा करता था कि फ्लोरेंटाइन कलाकार के निर्वासित के ये पन्न प्रत्येक आल्पसोत्तर दृश्य दशक की आखो के लिए ज्योतिरुप बन जायेंगे। क्योंकि बनवनुतो सलिनो की आत्मकथा से हमे मालूम पडता है कि यह तोरी गियानी अत्यन्त अहकार वाला व्यक्ति था और प्राय उन पशु अग्रजो के बीच अपने वीर कृत्यो[1] पर शेखी बघारा करता था।

इस प्रकार जो गाथिक स्थापत्य लन्दन म सोलहवी शती के प्रथम चतुर्थांश तक और आक्सफोर्ड मे सत्रहवी शती के प्रथमार्द्ध तक अपना सिक्का जमाये रहा उस समय के बहुत पहिले ही उत्तरी एव मध्य इटली से दूर भगा दिया गया था जहा कि रोमनेस्क शली के स्थापत्य को स्थानच्युत करके स्वय अधिकार ग्रहण कर लेने के कार्य म वह कभी उतना समर्थ नही हुआ जितना आल्पसोत्तर यूरोप म हुआ था।

स्थापत्य के क्षेत्र म हेलेनवाद के रिनेसा के कारण पाश्चात्य प्रतिभा जिस बध्यता या अनुर्वरता से ग्रस्त हो गयी थी औद्योगिक क्रान्ति की प्रसव पीडा म कोई लाभ न उठा सकने की असफलता ने उसकी घोषणा की। औद्योगिक तकनीक या कौशल म जिस उत्परिवर्तन (mutation) ने लौह गडर को जन्म दिया था उसी ने पाश्चात्य भवन निर्माता या स्थापत्यकार के हाथो म अतुलनीय रूप से परिवर्तनक्षम एक ऐसी वास्तु सामग्री (बिल्डिंग मटेरियल) ऐसे समय दे दी जब *यूनानीकरण की स्थापत्यपरम्परा स्पष्ट रूप स समाप्त हो गयी थी*। फिर भी उन स्थापत्यकारो को जिनको लोहार ने लौह गडर का उपहार प्रदान किया था तथा नियति को अपनी स्वच्छ लेखन पटटिका के साथ रिक्तता भरने का इससे अच्छा कोई

[1] बनविनुतो सेलिनो आटोबाइग्राफी (आत्मकथा) जे ए साइमण्डस-द्वारा कृत अंग्रेजी अनुवाद (*लन्दन, १९४० फायडोन प्रेस*) *भाग १, अध्याय १२ पृष्ठ १८*

रास्ता नही सूझा कि गाथिक पुनरुज्जीवन द्वारा हेलेनी रिनसा का अवरोध किया जाय।

पहिला पश्चिमी जिसने लौह गडर के भद्देपन पर बिना किसी लज्जा के कोई गाथिक पर्दा न डालकर काम लेने की बात सोची कोई पेशेवर स्थापत्यकार नही था वर एक कल्पनाशील अव्यवसायी—अमेच्योर—था और यद्यपि वह सयुक्त राज्य अमेरिका का एक नागरिक था किन्तु जिस स्थल पर उसने अपनी एतिहासिक इमारत का निर्माण किया वह हडसन नही बास्फोरस के तटो के सामने पडता था। राबर्ट कालेज की आरम्भिक इमारत—विजेता मुहम्मद के कसिल आफ यूरोप (यूरोप गढी) के ऊपर सिर उठाये हैमलिन हाल—का निर्माण १८६६ ७१ ई म साइरस हैमलिन द्वारा किया गया था फिर भी हैमलिन ने जो बीज बोया था उसका फल उत्तरी अमेरिका एव पाश्चात्य यूरोप म अगली शती के पूर्व नही दिखायी पडा।

पश्चिम की कला सम्वर्धिनी प्रतिभा का वध्यकरण चित्रकला एव मूर्तिकला के क्षेत्र म भी कुछ कम स्पष्ट नही था। दान्ते के समकालीन गायो तो (मृत्यु १३३७ ई) की पीढी स लेकर अर्द्ध सहस्राब्दी स अधिक समय तक, आधुनिक पाश्चात्य चित्रकला का स्कूल जिसने हेलेनी चाक्षुषकला के प्रकृतिवादी आदर्शों को उनकी पुरातनोत्तर (post archaic) अवस्था मे सशयरहित रूप मे ग्रहण कर लिया था एक के बाद एक करके प्रकाश एव छाया स निर्मित चाक्षुष प्रभावो को प्रकट करने की अनेक विधियो का तब तक प्रयोग करता रहा जबतक कि क्रमागत तकनीक की आश्चर्यजनक कृतियो म फोटोग्राफी के प्रभाव उत्पन्न करने का यह लम्बा प्रयास स्वय फोटोग्राफी के आविष्कार मे निरर्थक नही हो गया। इस प्रकार जब आधुनिक पाश्चात्य विज्ञान की ही एक प्रक्रिया-द्वारा उनके पावो तले से जमीन खिसक गयी तो चित्रकारो ने अपने द्वारा बहुत दिनो स तिरस्कृत वर्ण्य बजेनियाई कलाकारो की ओर उन्मुख प्राक रफेलाई आन्दोलन (Pre Raphaelite movement) चला दिया। उन्होने यह काय मनोविज्ञान के उस नवीन जगत का आविष्कार करने की ओर ध्यान देने क पूर्व किया जो विज्ञान ने स्वाभाविक रूपाकृति वाले पुरातन विश्व के उनसे चुराकर फोटोग्राफी को दे डालने के बाद उन्हे विजय के लिए प्रदान किया था। इस प्रकार पाश्चात्य चित्रकारों का एक इल्हामी (apocalyptic) स्कूल पैदा हुआ जिसने चाक्षुष प्रभावो की जगह आध्यात्मिक अनुभवो को प्रकट करने के लिए स्पष्टत रग का उपयोग कर सचमुच एक नया मोड दिया और फिर तो पाश्चात्य मूर्तिकला भी अपने माध्यम की सीमा म रहते हुए एसी ही उद्दीपक शोध की दिशा मे चल पडी।

(७) धार्मिक आदर्शो एव रीतियो से सम्बधित रिनसा

यहूदी धर्म के साथ खीष्ट मत का सम्बन्ध यहूदियों की दृष्टि म अपने शाप कारी रूप म उतना ही स्पष्ट था जितना वह खीष्टीय अन्तर्विवेक के लिए असमजस-कारी रूप म अस्पष्ट था। यहूदियो की आखो म खीष्टीय चर्च एक स्वधर्मत्यागी यहूदी मत था जिसने अपने ही धर्मसूत्र (Canon of Scripture) के अनधिकृत परिशिष्ट के

साक्ष्य के आधार पर विपथगामी तथा अभागे गलीलियाई फरिसी (Galilean Pharisee) की शिक्षाओं के विरुद्ध पापाचरण किया था और फिर उस मत के द्रोहियो ने बेहयाई के साथ निरर्थक ही उसका नाम ग्रहण कर लिया था। यहूदियो की दृष्टि म हलनी समाज पर खीष्टीय मत का जादूभरा वशीकरण वस्तुत प्रभु का काय नही था। जिस यहूदी रब्बी या उसके अनुयायियो-द्वारा नास्तिक प्रणाली म प्रणाम किया गया और उसे एक मानवी माता क गभ स जन्मा देवपुत्र बताया गया उसकी मरणोत्तर विजय कुछ उसी तज का शाक्य लाघव था जसा कि डायोनाइसस एव हराक्लिज जस उसी प्रकार क पुराणोक्त अधन्यो की प्रारम्भिक सफलताए थी। यहूदी मत (जूडाइज्म) न आत्म प्रशसा म यह मान लिया कि यदि वह ईसाई मत क स्तर पर नीचे उतर आता और झुककर विजय करना चाहता तो वह उस (ईसाई मत) की विजय का पूवरूप बन सकता था। यद्यपि ईसाई धम न कभी यहूदी धमग्रन्थो की प्रामाणिकता को अस्वीकार नही किया—बल्कि उसन अपन धमग्रन्थो क साथ उस सम्बद्ध कर लिया—किन्तु जसा कि यहूदियो का लगा, उसन दो आधारभूत जूडाई सिद्धान्तो का त्याग करके ही अपनी सुगम विजय प्राप्त की। ये सिद्धान्त थ दस धर्मादेशो म से प्रथम एव द्वितीय—एकेश्वरवाद (Monotheism) तथा मानवरूपेतर देवपूजा (Aniconism) अर्थात् यह सिद्धान्त कि ईश्वर की कोई मानवी प्रतिकृति नही हो सकती। इसलिए अब खीष्टीय मत क आवरण क नीचे स्पष्ट दिखायी पडन वाले अनुतापशू य हेलेना शाक्यवाद क आग यहूदियो का प्रत्ययवचन या दलगत नारा यही हो गया कि प्रभु के शाश्वत वचन (वड) के साक्ष्य धारण काय म डटे रहो।

यह धयपूण गभीर अवज्ञा, जिसके साथ अत्यन्त चमत्कारिक ढग पर सफल खीष्टीय मत की ओर अप्रभावित एव अविचल यहूदी समाज देखता था ईसाइयो के लिए कुछ कम न्यप्रकारी होती यदि ईसाई मत न स्वय एकेश्वरवाद एव मानवाकृति म दवपूजा के विरोध (एनीकोनिज्म) की यहूदी विरासत क प्रति सच्ची सद्धान्तिक निष्ठा क साथ हलेनी धर्मान्तरितो क उस बहुदेववाद (Polytheism) एव मूर्तिपूजा क प्रति व्यावहारिक सहूलियतो को मिला न दिया होता, जिसके लिए यहूदी आलोचको द्वारा उसकी इतनी निन्दा की जाती है। खीष्टाय चच ने यहूदी धमग्रन्थ को ईसाई धम की पुरानी बाइबिल (ओल्ड टेस्टामट) कहकर जो पुन पवित्रता प्रदान कर दी वही इसाई धम के कवच म दुबल छिद्र था जिसके द्वारा यहूदी आलोचना के बाण खीष्टीय अन्त करण को बधते रहते थे। ओल्ड टेस्टामट या पुरातन इजील नीव के उन पत्थरो म से एक थी जिन पर खीष्टीय भवन खडा था किन्तु यही बात तो त्रत सिद्धान्त (डाक्ट्रिन आफ ट्रिनिटी), सन्त-सम्प्रदाय तथा चाक्षुषकला की उन त्रि-आयामी (थ्रीडाय मन्शनल) ही नही द्वि-आयामा कृतियो म भी थी जो न केवल सन्ता का बल्कि देवा त्रिमूर्तिया (थ्री परसस) का भी प्रतिनिधित्व करती थी। तब भला खीष्टीय पक्ष समथक इस यहूदी व्यग्य का क्या उत्तर दे सकते थे कि चच का हेलेना आचरण उसकी जूडाई उपपत्ति (थियरी) स बमल है? कोई ऐसा उत्तर आवश्यक था जो ईसाइयो के मन का यह विश्वास दिला दे कि इन यहूदी तर्कों म कोई सार नही है, क्योकि इन

तर्कों का प्रभावकारिता पाप के उस सवेदनशील विश्वास म निहित है जो वे खीष्टीय आत्माओ म जगाते है।

जब खीष्टीय सवन् की चतुथ शती व मध्य हेलेनी जेंटाइल (मूर्ति-पूजक या काफिर) विश्व का नाम मात्र के लिए सामूहिक धमपरिवतन हो गया तब चच क अन्दर ही जो घरेलू विवाद पदा हुआ उसमे ईसाइयो एव यहूदियो के बीच की वितण्डाए दब गयी, किन्तु पाचवी शती का अन्त होते होते फिलिस्तीनी यहूदी समाज मे घर की कट्टरतापूण सफाई शुरु हुई। जान पडता है कि उसके परिणामस्वरूप छठी एव सातवा शतियो म इस पुरान मदान म फिर धार्मिक युद्ध उठ खडा हुआ। यहूदी समाज का यह घरेलू झगडा, जो यहूदी उपासनागृहो का भित्तिचित्रो म अलकृत करन की खीष्टीय दुबलता का लकर शुरू हुआ था यहूदी ईसाई युद्धक्षेत्र पर भी प्रभाव डालने का कारण बन गया। किन्तु जब हम *खीष्टीय चच क अन्तगत प्रतिमा-पूजको (icnophiles) एव* प्रतिमा विरोधियो (icnophobes) के बीच के समानान्तर विवाद पर दृष्टि डालते हैं तो उसकी हठवादिता एव व्यापकता देखकर दग रह जाते हैं। हम उस अदम्य सघष को ईसाई धमजगत् के प्राय प्रत्यक क्षेत्र म और ईसाई सवत् का प्रत्यक अनुवर्ती शती म तूफानी वग से प्रकट होते देखते है। यहाँ उन उदाहरणो की लम्बी सूची देना अनावश्यक है जो एलविए का परिषद् (लगभग ३०० ११ ई) के छत्तीसवें धर्मादेश से, जिसके अनुसार चर्चो मे चित्रो का प्रदशन वर्जित है, आरम्भ होते है।

खीष्टीय सवत की सातवी शती के अन्दर विवाद म एक नय तत्त्व का समावेश हुआ—एक ऐसे नवीन अभिनेता के रूप मे, जिसका एतिहासिक रगमच पर चमत्कारिक एव ज्योतिमय दशन हुआ। जसे खीष्टीय धम पैदा हुआ था उसी प्रकार यहूदी *सम्प्रदाय के श्रोणि भाग से परन्तु इस बार पूण वयस्क एक दूसरा धम पदा हो गया।* इस्लाम उतनी ही कट्टरता क साथ एकेश्वरवादी एव प्रतिमोपासना विरोधी था जितनी कि कोई यहूदी कामना कर सकता था। इसके भक्तो ने सनिक और शीघ्र ही धमप्रसार के क्षेत्र मे जो सनसनी पदा करनेवाली सफलता पायी उसने ईसाई जगत को एक नयी चीज सोचने के लिए दी। जसे साम्यवाद क भक्तो की सनिक एव मिशनरी विजयो न आधुनिक पाश्चात्य प्राणियो को परम्परागत सामाजिक एव आर्थिक व्यवस्थाओ के हृदयवेधकारी पुनमूल्याकन के लिए विवश कर दिया उसी प्रकार आदिवासी मुस्लिम अरब विजेताओ की सफलताओ ने विवादो की उस आग को भडकने के लिए नया इधन दे दिया जो खीष्टीय प्रतिमापासना की समस्या के इद गिद न जाने कब से घुधुवा रही थी।

प्रतिमोपासना विरोध का जो प्रेत बहुत दिनो से गलियारो मे मडरा रहा था उस महान् प्राच्य रोमी सम्राट लियो साइरस क प्रतिमा विरोधी राज्यादेश (Icnoclastic Decree) द्वारा ७२६ ई म मच के बीचोबीच लादा गया। राजनीतिक सत्ता द्वारा धार्मिक क्षेत्र मे बलात रिनसा लाने का यह प्रयत्न असफल सिद्ध हुआ। पोप तन्त्र (पेपसी) न बड उत्साह से लोकप्रिय मूर्ति-पूजक विरोध पक्ष का साथ दिया और इस प्रकार अपने को भी बैजेंतियाई सत्ता स मुक्त करने की दिशा म एक लम्बा पग

*

रखा। इसके बाद पश्चिम म शालमन ने लिया साइरस की नीति की दिशा म सम्भवत बेदिली क साथ जो कदम उठाया उस पर उस पोप हैड्रियन प्रथम स स्पष्ट लताड खानी पडी। अपन जूडाई रिनसा के लिए पश्चिम का ओर आठ शतियो तक प्रतीक्षा करनी पडी और जब वह आया तो नीच स ऊपर की ओर होन वाले आन्दोलन के रूप म आया उसका लिया साइरस मार्टिन लूथर था।

पाश्चात्य ईसाई धम जगत म जो प्रोटेस्टेंट 'रिफार्मेशन (धमक्षत्र म सुधार का एक विशेष आन्दोलन) चला उसमे मानवप्रतिमोत्तर दवपूजा या एनीकानिज्म ही एक मात्र जूडाई प्रेत नही था जिसन अपन को फिर स प्रतिष्ठित कर लेन म सफलता प्राप्त की। उसी के साथ एक जूडाई विश्रान्तिवाद (Sabbatarianism=शनिवार विश्राम दिवस के रूप म मनान क यहूदी विश्वास) न भी रोमन कथोलिक चच का त्याग करने वालो को मुग्ध किया और जूडाई मत क इस दूसरे तत्त्व-सम्बन्धी रिनसा को स्पष्ट करना उतना सरल नही है क्योकि निर्वासनोत्तर (पोस्ट एक्जाइलिक) यहूदी सम्प्रदाय जिस आग्रहपूर्ण सतकता क साथ अपने सबथ (विश्राम दिवस) को मनाता था वह एक विशिष्ट चुनौती का एक विशिष्ट समाज द्वारा दिया जान वाला जवाब था वह अपन साधिक अस्तित्व को बनाय रखन के लिए यहूदी डायसपोरा के तकनीक का एक अश था। प्रोटेस्टेटो का घोषित लक्ष्य था आदिम चच क पुरातन आचार की ओर लौटना किन्तु हम देखते यह है कि व आदिम ख्रीष्टीय धम (प्रिमिटिव क्रिश्चियनिटी) तथा जूडाई मत के बीच के उस अन्तर का मिटान मे लग है जिस पर आदिम चच इतना जोर देता था। क्या ये बाइबिल क्रिश्चियन धर्मोपदेश (गास्पेल) क उन बहु सख्यक पदो एव वाक्यो स अपरिचित थ जिनम यीशु न सबटेरियन वजना का तिरस्कार किया था? क्या यह बात उनकी दृष्टि से ओझल हो सकती थी कि जिस पाल का सम्मान करन म व प्रसन्नता का अनुभव करते थ उसी न मूसाई धमविधि की निन्दा करन म सुप्रसिद्धि प्राप्त की थी? इसका खुलासा यह है कि जमनी इग्लण्ड आदि तथा दूसर स्थानो म फले हुए य धर्मोत्साही जन एक अत्यन्त शक्तिशाली रिनसा की पकड म थ और अपन को उसी प्रकार कृत्रिम यहूदी (इमीटेशन ज्यूज) बनान पर तुल हुए थे जस उत्साही इतालवी कलाकारो एव विद्वानो न अपन को नकली एथिनियाई—इमीटेशन एथानियस—बनाने पर कमर कस ली थी। बपतिस्मा क समय अपन बच्चो पर पुराना बाइबिल म प्राप्त कुछ अत्यन्त अटपटानी (अनटाटानिक) ध्वनि वाले निजवाचक नामो का थापन था उनका आचार मृत जगत को जीवित करन क उनक पागलपन का एक अभिव्यजक लक्षण था।

हम पाश्चात्य प्रोटेस्टेंट मत क जूडाई रिनसा म फलिताथ रूप म एक तीसर तरह का प्रवल पन्नि हा करा चुक हैं अर्थात इजाल-पूजा का अथवा दूसर शब्दो म कहें तो पवित्र प्रतिमाओ क मूर्तीकरण क स्थान पर पवित्र ग्रन्थ क प्रतिमाकरण का। इसम कोई सन्देह नहीं कि देशी भाषाओ म बाइबिल का अनुवाद हो जाने क कारण और उन सा धारण लोगो की पादरियो-द्वारा उनका सतत पाठ होन क कारण जो और कुछ बहुत कम पढ़ पाते हैं न केवल निष्ठावान् प्रोटेस्टेंटो अथवा पवित्रतावादियो (प्यूरिटस)

को बल्कि पश्चिम के सर्वसाधारण को भी बड़ा सांस्कृतिक लाभ पहुँचा। इसके कारण देशी भाषाओं के साहित्य को असीम समृद्धि प्राप्त हुई और जन शिक्षण को भी बड़ा बल मिला। बाइबिल की कथाओं का धार्मिक मूल्य चाहे जो रहा हो किन्तु इस मूल्य के अतिरिक्त भी वे ऐसी लोक-कथाएं (फाक लोर) बन गयीं जो पाश्चात्य मानव को देशी स्रोतों से प्राप्त होनेवाली और किसी भी चीज से मानवी अभिरुचि में कहीं ज्यादा बनी हुई थी। ज्यादा कुलवर्गी या कृत्रिम अल्पमत के लिए भी पवित्र ग्रन्थ के आलोचनात्मक अध्ययन ने उस उच्चतर समीक्षा के लिए अभ्यास का काम दिया जिसका प्रयोग विद्वत्ता के सभी क्षेत्रों में किया जा सकता था और सविधि किया भी गया। इसी के साथ-साथ पवित्र धर्मग्रन्थों के दैवीकरण का बौद्धिक प्रतिसाद प्रोटेस्टेन्ट का एक ऐसा दासवृत्ति थी जिससे अब पुरोहितवाच्छन्न व्रतवादी (ट्रीडेंटाइन) क्योलिक मत मुक्त था। जबकि पुरानी बाइबिल के बारे में अधिकाधिक स्पष्ट होता जा रहा था कि वह धार्मिक एवं ऐतिहासिक विशिष्टता की विविध कक्षाओं वाली मानवी रचनाओं का संकलन या मिश्रण मात्र है तब उसे ईश्वर की अच्युत वाणी मानने की दृढ़ता ने हठपूर्ण मूढ़ता बढ़ाने वाली धार्मिक उत्तेजना पैदा की, जिसके कारण मैथ्यू अर्नाल्ड ने अपने ही विक्टोरियाकाल के धर्मनीत मध्यम वर्ग पर हिब्रूकारी तत्त्वों में जीवित रहने का दोषारोप किया।

११ इतिहास में विधि (कानून) और स्वतन्त्रता

होने के योग्य है। उन लोगों के लिए जिनकी मानसिक दृष्टि में मानवीय विधिनिर्माता का अस्तित्व उस विधि से बड़ा है जिसे वह कार्यान्वित करता है जगत् को शासित तथा नियमित करने वाली तत्वज्ञानिक विधि सर्वशक्तिमान ईश्वर का कानून है। दूसरों के लिए जिनकी दृष्टि में विधिकर्त्ता या शासक की छवि भी उस विधि या धारणा से आच्छादित है जिसका वह कार्यान्वयन करता है जगत् का नियमन करने वाला तत्वज्ञानिक विधान एक एकरूपी एवं अनम्य प्रकृति के निर्वैयक्तिक विधि (कानून) के रूप में ग्रहण किया जाता है।

इन प्रत्ययों (Concepts) में से प्रत्येक में सान्त्वनाप्रद एवं भयजनक नाना प्रकार के लक्षण पाये जाते हैं। प्रकृति के कानूनों का भयजनक लक्षण है उनकी निष्ठुरता। फिर भी यह निष्ठुरता अपने साथ उसका क्षतिपूर्ति भी ले आती है। चूंकि ये कानून निष्ठुर हैं वे मानव बुद्धि से जानने योग्य होते हैं। प्रकृति का ज्ञान मानव की मानसिक पकड़ में है और यह ज्ञान शक्ति है। मनुष्य प्रकृति के कानूनों को जान कर उस (प्रकृति) का अपने प्रयोजन के लिए विनियोग कर सकता है। इस कार्य में मानव को आश्चर्यकारी सफलता प्राप्त हुई है। उसने सचमुच ही अणु का भेदन किया है। और परिणाम क्या हुए हैं?

एक मानवीय आत्मा जो पाप की अपराधिनी सिद्ध हो चुकी है और जिसे इसका विश्वास हो चुका है कि वह ईश्वरीय कृपा की सहायता के बिना अपना सुधार नहीं कर सकती डेविड की भांति, अपने को प्रभु के हाथों सौंपना ही पसन्द करेगी। मनुष्य के पाप को दण्डित करने और उसकी पोल खोलने में निष्ठुरता को जो प्रकृति के कानूनों का अंतिम निर्णय है ईश्वर के कानून के अधिकारक्षेत्र को स्वीकार करके ही वश में किया जा सकता है। इस आध्यात्मिक निष्ठा के हस्तान्तरण का मूल्य उस सही एवं निश्चायक बौद्धिक ज्ञान का अपवर्तन (forfeiture) है जो मानवात्माओं का भौतिक पुरस्कार एवं आध्यात्मिक भार है—उन मानवात्माओं का जो प्रकृति की दासता की कीमत चुकाकर उसका स्वामी बनने में सन्तुष्ट हैं। जीवन्त ईश्वर (लिविंग गाड) के हाथों में पड़ जाना एक भयंकर बात है, क्योंकि यदि ईश्वर कोई 'स्पिरिट' (सूक्ष्मात्मा) है तो मानवीय आत्माओं के साथ उसका आचरण अदृष्ट एवं अचिन्त्य होगा। ईश्वर के कानून या विधि का आवाहन करने में मानवीय आत्मा को आशा एवं भय का आलिंगन करने के लिए निश्चयात्मकता का त्याग करना पड़ेगा क्योंकि जो कानून किसी संकल्प की अभिव्यक्ति है वह एक ऐसी आध्यात्मिक स्वतन्त्रता से उद्दीप्त होता है जो प्रकृति की एकरूपता के सर्वथा विपरीत है और एक मनमाना कानून प्रेम या घृणा किसी से भी प्रेरित हो सकता है। ईश्वर के कानून पर अपने को छोड़ने में एक मानवात्मा वही पाती है जो वह उसके लिए लाता है। इसीलिए ईश्वर के विषय में मनुष्य के मनोभाव ईश्वर को पिता के रूप में देखने से लेकर ईश्वर को अत्याचारी के रूप में देखने तक मिलते हैं। और दोनों ही दृष्टियां ईश्वर की उस प्रतिमा के अनुरूप हैं जिसके व्यक्तित्व के पुरुषविध छद्मवेश (anthropomorphic guise) के उस पार तक ज्ञान में मानव कल्पना असमर्थ है।

(२) आधुनिक पाश्चात्य इतिहासकारों की स्वेच्छाचारिता

'ईश्वर के कानून' का विचार बेबिलोनियाई एवं सीरियाई इतिहास की चुनौतियों के उत्तर रूप में इसरायली और ईरानी पैगम्बरों की आत्माओं की गहरी पीड़ा द्वारा निर्मित हुआ था जबकि प्रकृति के नियमों की अवधारणा की श्रेष्ठ व्याख्या को हिन्दा (इंडिक) एवं हेलेनी जगत के विघटन के दार्शनिक प्रेक्षकों ने रूप दिया था। किन्तु ये दोनों विचारधाराएं तात्विक दृष्टि में एक दूसरे के विरुद्ध नहीं हैं और इसकी कल्पना भी भलीभांति की जा सकती है कि ये दोनों प्रकार के कानून साथ-साथ अगल-बगल चलते रहें। 'ईश्वर का कानून' एक व्यक्तित्व की प्रज्ञा एवं सकल्प द्वारा अनुसरण किये जाने वाले एक मात्र एवं निरन्तर के ध्येय को अभिव्यक्त करता है। 'प्रकृति के कानून' एक पुनरावर्तक स्पन्दन या गति की नियमितता का प्रदर्शन करते हैं ठीक वैसे ही जैसे पहिया अपनी धुरी के चारों ओर घूमता रहता है। यदि हम चक्रकार के सृजनात्मक कार्य के बिना ही किसी चक्र—पहिया के अस्तित्व में आने की और फिर बिना तात्पर्य की पूर्ति किये उसके निरन्तर घूमते रहने की कल्पना कर सकें तो ये पुनरावर्तन निश्चय ही निरर्थक सिद्ध होंगे और यही निराशाजनक निष्कर्ष उन भारतीय एवं यूनानी दार्शनिकों ने निकाला भी थे जिन्होंने कि अस्तित्व के दुःखपूर्ण चक्र को निरन्तर शून्य में (in Vacuo) घूमते हुए देखा। यथार्थ जीवन में हम चक्रकार के बिना कोई चक्र चलता हुआ दिखायी नहीं देता इसी प्रकार चक्रकार भी उन चालकों (ड्राइवरों) के बिना निष्क्रिय हैं जो इन निर्मितियों को पहिये बनाने और उन्हें छकड़ों में फिट करने का काम इस दृष्टि से सौंपते हैं कि पहियों की पुनरावर्तिनी गति छकड़ों को उद्दिष्ट स्थान तक पहुंचा सके। इसी प्रकार प्रकृति के कानून भी तभी सार्थक प्रतीत होते हैं जब हम उनकी कल्पना उन पहियों के रूप में करते हैं जिन्हें ईश्वर ने स्वयं अपने रथ में फिट कर लिया हो।

यह विश्वास कि जगत् का सम्पूर्ण जीवन ईश्वर के कानून-द्वारा शासित है जूडाई मत से विरासत में मिला जिसे ईसाई एवं मुस्लिम समाजों ने ग्रहण कर लिया। यह विश्वास दो आश्चर्यजनक रूप में समान किन्तु पूर्णतः स्वतंत्र प्रतिभापूर्ण कृतियों में प्रकट हुआ—सन्त आगस्टाइन के 'दे सिवितेत दाई' (De Civitate Dei) एवं इब्न खल्दून के बर्बर इतिहास के उपोद्घात (Prolegomena) में। इतिहास के जूडियाई दृष्टिकोण का आगस्टाइनियन पाठ हजार वर्ष से अधिक समय तक पाश्चात्य ईसाई विचारकों द्वारा बिलकुल ठीक मानकर ग्रहण किया जाता रहा और यह १६८१ ई० में प्रकाशित बासुए (Bossuets) के ग्रन्थ 'डिस्कोर्स सर ल हिस्तोयर यूनिवर्सेल' में अन्तिम बार प्रामाणिक रूप में व्यक्त हुआ।

पिछले ढाई सौ वर्षों में आधुनिक पाश्चात्य विचारधारा ने इस ईश्वर-केन्द्रित (Theocentric) इतिहास-दर्शन (फिलासफी आफ हिस्ट्री) का जो बहिष्कार कर दिया उसका स्पष्टीकरण किया जा सकता है और क्षमा भी किया जा सकता है क्योंकि बासुए द्वारा उपस्थित चित्र का जब निरीक्षण किया गया तो मालूम पड़ा कि उसकी सीमाएं से कोई धर्म के साथ बंधी हैं न सामान्य बोध के साथ।

[illegible] गयी के [illegible] कालिंगवुड । इसकी त्रुटियों को प्रकट करने में कोई कसर [illegible]
र नहीं रखी है। इस प्रकार का इतिहासकार एक [illegible] दोनों रूपों में
[illegible] ख्याति मिला।

'खीष्टीय सिद्धान्तों पर लिखा गया कोई भी इतिहास, आवश्यक रूप
से सार्वदेशिक, दैवी इलहामी (apocalyptic) एवं युग प्रवर्तक होगा ... यदि
मध्यकालीन इतिहासकार को इसका स्पष्टीकरण करने की चुनौती दी जाती कि
उसे कैसे मालूम हुआ कि इतिहास में कोई पक्षातमूलक योजना निहित है तो वह
उत्तर देगा कि ईश्वरीय वाणी या इलहाम-द्वारा उसे इसका ज्ञान हुआ है ... खीष्ट
ने मानव को ईश्वर के सम्बन्ध में जो कुछ बताया है उसका यह एक भाग है।
और यह इलहाम केवल यह जानने की कुंजी ही नहीं है कि ईश्वर ने भूतकाल में
क्या किया है, यह इसे भी हमारे सामने प्रकट करता है कि ईश्वर भविष्य में क्या
करने जा रहा है। इस प्रकार खीष्टीय इलहाम अतीत में जगत की सृष्टि से
लेकर भविष्य में उसका अंत होने तक, ईश्वर की कालातीत एवं शाश्वत दृष्टि
से देखा हुआ, विश्व का समस्त इतिहास हमारी आँखों के सामने रखता है। इस
प्रकार मध्यकालीन इतिहास लेखन आगे इतिहास के अन्त की ओर देखता था
और समझता था कि यह ईश्वर-द्वारा पूर्वनियोजित है तथा मानव को ईश्वर
वाणी या इलहाम द्वारा पूर्वज्ञात है। इस तरह इसके अन्दर ही एक प्रकार का
प्रलयविज्ञान या परलोकशास्त्र का ज्ञान (eschatology) निहित था ...

'मध्यकालीन विचारधारा में ईश्वर के वस्तुनिष्ठ प्रयोजन तथा मनुष्य
के आत्मनिष्ठ प्रयोजन के बीच के पूर्ण विरोध की कल्पना कुछ इस रूप में की
गयी थी कि मनुष्य का आत्मनिष्ठ प्रयोजन चाहे जो हो, ईश्वर का प्रयोजन
इतिहास पर एक ऐसी वस्तुनिष्ठ योजना के बलात लागू करने के रूप में दिखायी
पड़ता है जो हमें अनिवार्यतः इस धारणा तक ले जाती है कि मनुष्य के प्रयोजन
या इच्छा से इतिहास की गति में कोई अन्तर पड़ने वाला नहीं है और एक मात्र
शक्ति जो उसका निर्धारण करती है, ईश्वरीय प्रकृति है।'[1]

इस तरह खीष्टीय इलहाम का गलत रूप में उपस्थित कर मध्यकालीन
[illegible]नम वाले प्रारम्भिक अधुनातन पाश्चात्यकार अपने ऊपर स्वयं ही पिछले सेव की
[आ]धुनिक वैज्ञानिक कट्टरता तथा उत्तरकालीन आधुनिक अनीश्वरवादी समयधारा दोनों
आक्रमण को निमंत्रित कर रहे थे। ये इतिहासकार (यदि हम पुनः कॉलिंगवुड को
[उद्]धृत करें) यह समझने की गलती में पड़ गये कि वे भविष्य का पूर्वानुमान लगा
[सक]ते हैं और इतिहास का सामान्य योजना को जान लेने की अपनी आतुरता
और अपने इस विश्वास में कि यह योजना ईश्वर की है मानव की नहीं वे
[इ]तिहास का तत्त्व इतिहास के बाहर जाकर खोजने को प्रवृत्त हुए और ईश्वर की

[1] कॉलिंगवुड दि आइडिया आफ हिस्ट्री (आक्सफर्ड १९४६, क्लेयरेन्डन प्रेस)
पृष्ठ ४९, ५४, ५५

योजना की जानकारी प्राप्त करने के लिए मनुष्य के कार्यों से दूर हटकर खोज मे लगे।

"फलत मानवीय कर्मों का वास्तविक ब्यौरा उनके लिए अपेक्षाकृत महत्त्वहीन हो गया, और उन्होंने वस्तुत घटना क्या घटी इसकी शोध मे असीम कष्ट उठाने की जो तत्परता इतिहासकार का प्रधान कर्तव्य है, उसी की उपेक्षा की। यही कारण है कि मध्यकालीन इतिहास-लेखन (Historiography) अपनी समीक्षात्मक प्रणाली में इतना दुर्बल है। यह दुर्बलता कोई आकस्मिक घटना नहीं थी। यह विद्वानों के सामने उपस्थित स्रोतों एवं सामग्रियों के सीमित होने पर निर्भर न थी। यह वे क्या कर सकते हैं इसके सीमित होने पर निर्भर न थी बल्कि इस बात के सीमित होने पर निर्भर थी कि वे करना क्या चाहते हैं। वे इतिहास के वास्तविक तथ्यों का ठीक एवं वैज्ञानिक अध्ययन नहीं करना चाहते थे बल्कि दैवी गुणों का, धर्मतत्त्व का सही एवं वैज्ञानिक अध्ययन करना चाहते थे जिससे उन्हें इस बात का पूर्वानुमान हो जाय कि ऐतिहासिक क्रम मे क्या अवश्य घटित होना चाहिए था और क्या निश्चित रूप से होने वाला है।

इसके परिणामस्वरूप जब मध्यकालीन इतिहास-लेखन को केवल विद्वान इतिहासकार की दृष्टि से देखा जाता है—उस प्रकार के इतिहासकार के दृष्टिकोण से जो केवल तथ्यों की शुद्धता को छोड और किसी बात की पर्वाह नहीं करता, तो लगता है कि वह न केवल असन्तोषजनक है किन्तु जान-बूझकर बडे घृणित रूप मे दुराग्रहपूर्ण है, और उन्नीसवीं शती के (पाश्चात्य) इतिहासकार, जिन्होंने सामान्यत इतिहास की प्रकृति का केवल विद्वत्तापूर्ण दृष्टिकोण लिया, अत्यन्त सहानुभूतिशून्य दृष्टि से उस पर विचार करते रहे।"[1]

मध्यकालिक अवधारणा के प्रति यह विरोधभाव केवल उन पिछले लेवे के इतिहासकारों की पीढी की ही विचित्रता नही थी जिसके आत्मतुष्ट अनीश्वरवाद मे उनके जीवन की मोदकारी शान्ति प्रतिबिम्बित होती थी। और ऊंचे तापमान म उनके पूर्ववर्ती तथा उत्तराधिकारी भी सजीव हो उठते थे। पहिले हम पिछली श्रेणी को लें बीसवी शती की जो पीढी अपनी प्रजाओ पर पचवर्षीय योजनाए लादने वाले मानवी तानाशाहो-द्वारा दर-दर भगाये जाने के दुखद अनुभव का स्वाद चखती रही वह इस सुझाव के विरुद्ध निश्चय ही खीझकर विद्रोह करती कि किसी तानाशाह देव या ईश्वर-द्वारा छ हजार वर्ष की योजना उन पर लादी जाने को है। जहा तक अठारहवी शती के उस पाश्चात्य मानव का बात है जिसके निकट पूर्ववर्त्तियो ने मध्यकालीन अवधारणाओं के प्रति अपनी निष्ठा का मूल्य अपने ऊपर धर्मयुद्धो का सताप लादकर चुकाया था वह बाबुए के दाव को हास्यास्पद एव पुराने फैशन का मूढ विश्वास कह कर नही हटा सकता था। उसके लिए यह शत्रु था और वाल्तेयर के युग का प्रहरी

[1] कोलिंगउड, आर जी दि आइडिया आफ हिस्ट्री (आक्सफर्ड १९४६, क्लेरेंडन प्रेस), पृष्ठ ५५, ५६

स्वर (वाचवड) उसन विरुद्ध था। जो आस्तिक या देववादी (Deists) केवल इस बात पर ईश्वर का अस्तित्व मानने को तयार थे कि वह ग्रेट ब्रिटेन के हनोवर वंशी बाद शाह की तरह राज्य करे किंतु शासन न करे, उनमे और उन नास्तिको मे कोई तात्विक अंतर नहीं था जिन्होने प्रकृति की स्वतंत्रता की घोषणा के भूमिका-स्वरूप ईश्वर का ही समाप्त कर दिया था। अब मे प्रकृति के कानून पूर्णत अपरिवर्तनशील बनने के लिए स्वतंत्र हो गये और फलत पूर्णतया ज्ञेय होने के उपक्रम मे आ गये। यह न्यूटन के आत्मसमजनकारी (सेल्फएडजस्टिंग) जगत—यूनिवर्स—और पेले वाले उस दवी घडी साज का युग था जिसने अपनी घडी और अपने व्यवसाय दोनो का वन्द कर दिया था।

इस प्रकार 'ईश्वर का कानून' अन्धकार का एक भ्रम मानकर विसर्जित कर दिया गया—अन्धकार जिसमे उत्तरकाल का आधुनिक पाश्चात्य मानव निकल रहा था, किन्तु जब विज्ञान के आदमियो ने उस इस्टेट पर कब्जा करने की तयारी की जिससे ईश्वर निकाल बाहर किया गया था तब उन्होने देखा कि अभी तक एक प्रांत ऐसा रह गया है जिसमे उनका प्रादेश (Writ) अर्थात प्रकृति का कानून नहीं चलाया जा सकता। विज्ञान मानवेतर प्रकृति (नान ह्यूमन नेचर) का स्पष्टीकरण दे सका वह मानवशरीर की प्रक्रियाओ की भी व्याख्या कर सका क्योकि मानव शरीर बहुत कुछ अन्य स्तनपायी जीवो के शरीर की ही भांति है किन्तु जब मानव जाति के कार्य-कलाप का प्रश्न उठा सभ्यता के क्रम के बढते मानवो न कि पशुओ का तब विज्ञान सहम गया। यहा एक ऐसी दुर्व्यवस्था (chaos) थी जो उसके कानूनो से ठीक न की जा सकती थी, घटनाओ का निरंतर ऐसा अर्थहीन आगमन, जिसे बीसवी शती के अग्रज उपन्यासकार ने जो राजकवि भी था ओडता (odtaa) अर्थात 'एक के बाद एक वाहियात वस्तु' कहकर पुकारा। विज्ञान उसका कोई अर्थ न बता सका इसलिए उसे कुछ कम महत्त्वाकांक्षिणी बिरादरी, इतिहासकारो के लिए छोड दिया गया।

अठारहवी शती के तत्त्वमीमासक मानचित्रकारो (Metaphysical cartographers) ने जगत का विभाजन कर लिया था। उनकी विभाजक रेखा की दूसरी ओर उनको अमानवी विषयो का एक ऐसा व्यवस्थाप्रिय प्रांत मिला जिसमे विश्वास किया जाता था कि प्रकृति के कानून चल रहे हैं, इसलिए जो संचित बौद्धिक प्रयास से मानवीय शोध के लिए अधिकाधिक अधिगम्य (accessible) था। दूसरी ओर उन्होने मानवीय इतिहास का ऐसा अज्ञात प्रदेश छोड लिया जिसमे जसा उन्होने उसे समझा ऐसी दिलचस्प कहानियो के अलावा और कुछ भी नहीं निकाला जा सकता था जिन्हे बुद्धिगत परिशुद्धता के साथ लिखा तो जा सकता था किन्तु जिनमे कुछ सिद्ध नहीं होता था और यही वह आशय था जिसे किसी ने (कहा जाता है कि अमरीकी मोटर निर्माता हेनरी फोर्ड ने) यह कहकर प्रकट करना चाहा था कि इतिहास तो धोखा (bunk) मात्र है। इसके बाद हमारे निबंध तक जो काल आया उसकी मुख्य विशेषता यह थी कि विज्ञान ने मानव के उन अनुल्लंघनीय प्रान्तो पर भी सफलता की विभिन्न

अक्षम हैं कि तु मुदित मन से कल्पना किये हुए हैं कि उनका अपना कोई पूर्वाग्रह या पूव मा यता नहीं है।'[१]

यह उस व दी का चित्र है जिसे अपनी ही शृखलाओ की चेतना नहा है। इस स दभ म हम दूसरी बार एक लम्बा उद्धृत करन का लाभ सवरण नहा कर सकत। यह लेखाश एक ऐसी पुस्तक की भूमिका से लिया गया है जो अपनी भद्रता एव उत्कृष्टता के कारण नि ध निष्ठाहीनता की एक वरेण्य—क्लसिक—उक्ति है—

"एक बौद्धिक उत्तेजना से मुझे वचित कर दिया गया है। मुझसे अधिक विवेकवान एव अधिक विद्वान आदमियो ने इतिहास में एक कथावस्तु (प्लाट), एक लय, एक पूव निर्दिष्ट ढांचे का दशन किया है। ये समस्वरताए मुझसे छिपी हुई हैं। जसें लहर पर लहर उठती है वसे ही मैं एक आपात (इमर्जेंसी) पर दूसरे आपात को अनुसरण करते देखता हू। केवल एक ही महत तथ्य ऐसा है जो अप्रतिम है इसलिए जिसके बारे में कोई सामा यीकरण नहीं किया जा सकता। इतिहासकार क लिए केवल एक ही सुरक्षित नियम है कि वह मानवीय नियति के विकास में अनिश्चित एव अदृश्य के अभिनय को स्वीकार करे।"[२]

फिर भी जिस इतिहासकार न सावजनिक रूप से स हठधर्मिता के प्रति अपनी निष्ठा की घोषणा की कि 'इतिहास बस एक क बाद दूसरी वाहियात बात है' उसी ने अपने ग्र थ को यूरोप का इतिहास नाम देकर अपने को एक ऐसे पूवनिर्दिष्ट साचे का समथक स्वीकार कर लिया जिसमे एक अपरिजिय महाद्वीप क इतिहास को समस्त मानव जाति के इतिहास के साथ समीकृत कर दिया गया हो। और इस उत्तरकालीन आधु निक पाश्चात्य ऐतिहासिक रूढि पर पहुचने के लिए उन्हें एक प्रचलित पाश्चात्य इतिहास धम (religio historici) के नियमो को अजान हा स्वीकार करना पडा। यूरोप के अस्तित्व म विश्वास करन के लिए जिन बसुध मानसिक क्रियाकलापा की आवश्यकता थी वे इतन विस्तत थे कि चुपचाप स्वीकृत नियमा की सख्या ही उनतालीस थी।

[१] बारफील्ड हरबट 'क्रिश्चियनिटी ऐण्ड हिस्ट्री' (ल दन, १९४९ बेल) पृष्ठ १४० एव १४६

[२] फ़िशर एच ए, एल 'ए हिस्ट्री आफ यूरोप' (ल दन, १९३५, आयर ऐण्ड स्पाटिसवुड) भाग १, पृष्ठ ७

'प्रकृति के कानूनों' के प्रति मानवीय कार्यव्यापार की वश्यता
(The Amenability of Human Affairs to 'Laws of Nature')

(१) साक्ष्य का सर्वेक्षण

क व्यक्तियों के निजी मामले

आइए हम अपनी जाँच के प्रयोजन के लिए यह मानकर आरम्भ करें कि यह सवाल विचार करने के लिए खुला हुआ है कि प्रकृति के नियम या कानून सभ्यता की प्रक्रिया में चलते हुए मानव के इतिहास में कोई महत्त्व रखते हैं या नहीं। इसके बाद हम मानवीय कार्य-व्यापार के विभिन्न क्षेत्रों की परीक्षा यह पता लगाने के लिए करेंगे कि क्या गहरी छानबीन के बाद यह सिद्ध होता है कि उक्त प्रश्न निष्पक्ष विचार के लिए उससे कम खुला हुआ है जितना हमने मान रखा है। यदि हम व्यक्तिगत जनों के सामान्य मामलों पर पहिले विचार करें तो इसमें ज्यादा सहूलियत होगी, क्योंकि यह विषय ऐसा है कि जिस पर सामाजिक इतिहास शीर्षक के अन्तर्गत आधुनिक इतिहासकारों की बड़ी महत्त्वपूर्ण देन है। यहाँ यह कठिनाई भी नहीं है जो सभ्यताओं के इतिहासों को नियन्त्रित करने वाले नियमों की खोज में हमारे सामने आती है। जिन सभ्यताओं के लिखित विवरण मिलते हैं उनकी संख्या साधारणीकरण के लिए असुविधाजनक रूप में छोटी है। शायद वे दो दर्जन से भी कम होंगी। फिर इनमें से भी कुछ के विषय में हमारा ज्ञान बहुत खण्डित है। इसके विपरीत व्यक्तिगत जन लाखों की संख्या में हैं और आधुनिक पाश्चात्य परिस्थितियों में उनके आचरण का विशद सांख्यिक विश्लेषण किया गया है। इस विश्लेषण के आधार पर व्यवहारदक्ष लोगों ने भविष्यवाणियाँ की हैं। इन भविष्यवाणियों के लिए उन्होंने न केवल अपनी ख्याति को वरन् धन को भी दाँव पर चढ़ा दिया है। जो लोग उद्योग एवं व्यवसाय पर नियन्त्रण रखते हैं वे विश्वासपूर्वक मान लेते हैं कि अमुक-अमुक बाजार में अमुक-अमुक वस्तुओं की अमुक परिमाण में आमद होगा। सम्भव है कभी-कभी उनके अनुमान गलत भी हो जाते हों किन्तु ऐसा प्राय नहीं होता अन्यथा उन्हें व्यापार से बाहर निकल जाना पड़ता।

एक व्यापारिक कार्य जो व्यक्तियों के मामलों में औसत के नियम का

व्यवहार्यता को बड़े स्पष्ट ढंग से प्रदर्शित करता है बीमा-व्यवसाय है। हम मानवीय वाय "यापार शब्द" का जिस अर्थ में प्रयोग कर रहे हैं उस पर प्रकृति के नियमों की व्यवहार्यता के तर्क के समर्थन में जल्दबाजी न करते हुए बीमा के सब रूपों या प्रकारों को शामिल कर लेने में प्रति हमें सावधान रहना होगा। जीवन-बीमा का सम्बन्ध मानवीय देह की सम्भावनाओं तथा और शरीर-क्रियाविज्ञान (Physiology) या स्वास्थ्य विज्ञान के राज्यक्षेत्र के अन्तर्गत है। इसके साथ ही इस बात से भी इनकार नहीं किया जा सकता कि आत्मा का भी इस विषय पर कुछ अधिकार है क्योंकि विवेक-द्वारा भौतिक जीवन की सीमा बढ़ायी और अविवेक द्वारा घटायी भी जा सकती है। मूर्खतापूर्ण पराक्रम से लेकर पतनतापूर्ण कामुकता तक इस अविवेक के अनेक रूप हो सकते हैं। इसी प्रकार जहाजों एवं उनके माल से समुद्री बीमा में ऋतुविज्ञान (Meteorology) के अध्ययन की आवश्यकता पड़ी। यह भी विज्ञान का ही एक भाग है यद्यपि इस समय यह कुछ विद्रोही स्वभाव की हो गया है। किन्तु जब हम चोरी या अग्निकाण्ड के विरुद्ध किये जाने वाले बीमा के क्षेत्र में आते हैं तो स्पष्ट प्रतीत होता है कि बीमा कम्पनियाँ औसत के उन नियमों के आधार पर जुआ खेल रही हैं जो अपराधियों एवं असावधानी की विशिष्ट मानवी दुर्बलताओं पर लागू होते हैं।

(ख) आधुनिक पाश्चात्य समाज के औद्योगिक मामले

विक्रेताओं एवं ग्राहकों के बीच के व्यवहार में माँग एवं पूर्ति के उतार चढ़ाव के जो सांख्यिक साँचे या नमूने प्राप्य हैं वे अपने को तेजी (boom) और 'मन्दी' (slum) की तरंगों के रूप में व्यक्त करते रहते हैं, किन्तु हमारे लिखने के समय तक व्यवसाय चक्र के साँचों का पर्याप्त दृढ़ता के साथ ऐसा ऊहापोह नहीं हो पाया है कि बीमा कम्पनियाँ अपने व्यापार की एक नयी शाखा इसके लिए खोल सकें और उनकी भयानक अनिश्चितताओं एवं खतरों के विरुद्ध प्रीमियम की दर बतायें। हाँ वैज्ञानिक शोधकर्ताओं ने इस विषय पर बहुत कुछ जानकारी अवश्य प्राप्त कर ली है।

औद्योगिक पाश्चात्य समाज के बौद्धिक इतिहास में व्यापार चक्र की इस दृश्य घटना का पता अपने प्रत्यक्ष सामाजिक पर्यवेक्षण के आनुभविक रूप में (empirically) पहिले हुआ और बाद में संख्याओं द्वारा उसकी पुष्टि हुई। इसका सबसे प्रारम्भिक ज्ञात विवरण पहिले के एस ज ब्वायड और बाद के लार्ड आवरस्टोन नामक एक ब्रिटिश पर्यवेक्षक द्वारा १८३७ ई का लिखा हुआ है। व्यापार चक्र के एक अमरिकी छात्र डब्लू सी मिचेल ने १९२७ ई में प्रथम बार प्रकाशित पुस्तक में अपना विश्वास प्रकट करते हुए लिखा—'ज्यों ज्यों आर्थिक संघटन का विकास होगा त्यों-त्यों व्यापार चक्र की विशेषताओं में परिवर्तन की आशा होती जायगी।' एक दूसरे अमरिकी विद्वान डब्लू एल थार्प ने असांख्यिक साक्ष्य से व्यापार-गाथा का संकलन किया जिसके आधार पर एक तीसरे अमरिकी शोधक एफ सी मिल्स ने हिसाब लगाया है कि उद्योगीकरण की प्रथमावस्था में 'लघु' व्यापार चक्र की तरंग लम्बाई का मध्यमान या औसत ५ ८६ वर्षों का तीव्र परिवर्तन की अनुवर्तिनी अवस्था में ४ ०६ वर्षों का और तुलनात्मक स्थिरता के बाद वाले काल में ६ ३६ वर्षों का होता है।

द हम रूस स्वीडेन युद्ध को स्पेनी उत्तराधिकारी युद्ध का परिशिष्ट मान ले तो र भी इसमे आ जाता है। तीसर (नेपोलियनी) दाव म प्रमुख युद्धकारी (बलीगरेंट) ज्य था रूस और यदि १८१२ के युद्ध को नेपोलियनी युद्ध का उपसहार मान लिया ाय तो सयुक्त राज्य अमेरिका को भी इसम शामिल किया जा सकता है। चतुथ म, मेरिका प्रमुख युद्धकारी राज्य के रूप म आता है और युद्ध की सामान्य विशेषता ा तथ्य म व्यक्त होती है कि इसके अनुवर्ती शक्ति परीक्षणो को प्रथम एव द्वितीय श्वयुद्ध के नाम से पुकारा गया है।

आधुनिक पाश्चात्य मान्यदेशिक राज्य की स्थापना क निवारण क लिए हुए ा चार युद्धो म स प्रत्येक अपने उत्तराधिकारी तथा अपन पूवगामी स लगभग एक ती की कालावधि पर घटित हुआ। यदि हम युद्धान्तरीय तीन शतियो की परीक्षा रना आरम्भ कर तो उनम से हर एक क विषय मे हमे जो बात ज्ञात होगी उस माग ा मध्य या अनुपूरक युद्ध या युद्ध समूह कहा जा सकता है। इनम से प्रत्येक मामले सब मिलाकर पश्चिमी यूरोप म नही बल्कि मध्य क्षत्र जमनी पर अपना प्रभुत्व थापित करने का प्रयत्न हुआ था। चूकि य युद्ध प्रमुखत मध्ययूरोपीय थे, ग्रेट ब्रिटेन नम से किसी म पूणतया शामिल नहा हुआ कुछ म तो उसन जरा भी हस्तक्षप नही या। फलत य सब युद्ध पुस्तको म इस तरह शामिल नही किय गय कि प्रत्यक कूली छात्र (निश्चय हा अथ है प्रत्यक स्कूली आग्ल छात्र) इन्हे जानता हो। माध्य मक युद्धो म स प्रथम तो त्रिशवर्षीय युद्ध (थर्टी इयस वार—१६१८ १६४८ ई) था, सरा अधिकाशत प्रशा के फ्डरिक महान क युद्धो स सम्बधित (१७४० ६३ ई) था और तीसरा, यद्यपि उसम और भी बहुतेरे तत्त्व है बिस्माक स सम्बद्ध है और उसका ाल १८४८ ७१ तक है।

अन्त म यह दावा भी किया जा सकता है कि चार अको वाल इस नाटक का एक पूवरग (overture) भी था और यह इस तथ्य मे निहित है कि नाटक का आरम्भ स्पेन क फिलिप द्वितीय स नहा होता बल्कि दो पीढियो के पूव हैप्सबग वलोय (Hapsburg Valois) क इतालवी युद्धो से होता है। फ्रास के सम्राट चाल्स अष्टम न इटली पर जो निरथक परन्तु सनसनीखज रूप स अनिष्टकारी आक्रमण किया था उन्ही से इनका आरम्भ हुआ था और इसकी तिथि अर्थात् १४९४ का शिक्षाविशेषज्ञो न उत्तर मध्यकाल तथा पूव आधुनिक काल को अलग करन के लिए एक सुविधाजनक कठिन रेखा के रूप म, प्रयोग किया है। यह स्पेन के अन्तिम अवशिष्ट मुसलमानी क्षेत्र पर स्पेनीय विजय तथा वस्ट इडाज म कोलम्बस के प्रथम पदारोहण के दो वष बाद की तिथि है।

इन सबको सारणाबद्ध किया जा सकता है। अलक्जेंद्रोत्तर हलनी इतिहास[1] (पास्ट-अलक्जड्राइन हलनिक हिस्ट्री) तथा कनफ्यूशियोत्तर सिनाई इतिहास[1] (पास्ट

[1] इन बातो की जानकारी के लिए पाठक को 'ए स्टडी आफ हिस्ट्री' पूण, असक्षिप्त, सस्करण क नवें भाग को पढ़ना चाहिए।

कनफ्यूशियन सिनिक हिस्ट्री) के युद्ध एव शान्ति चक्रो के परीक्षण से ऐसे ऐतिहासिक नमूना—साचा का आविष्कार हुआ जो अपन गठन एव अपनी कालावधि म आधुनिक पाश्चात्य इतिहास के सिलसिल म यहा बताये हुए गठन एव कालावधि स अद्भुत समानता रखत है।

घ सभ्यताओ का विघटन

यदि हम क्षण भर के लिए पीछे की आर देखन हुए आधुनिक पाश्चात्य समाज के युद्धा के अपन चक्रिक नमून का ख्याल कर तो इस तथ्य म चकित हो उठेंग कि यह सिफ किसी पहिय क शून्य म चार बार घूमन और हर बार उसी बिन्दु पर आ जान का मामला नही है जिससे उसने आरम्भ किया था। यह एक विशेष अपशकुनकारी दिशा म जान वाल माग पर आग बढ़ने जान वाल पहिय का भी मामला है। एक आर तो अत्यन्त पराक्रमशाली एव धृष्ट पडोसी स अपनी रक्षा करने और उस यह दिखा दन क लिए कि उसका अहकार उसे पतन की ओर ले जा चुका है राज्यो क परस्पर सगठित होन के चार मामने है दूसरी ओर एक एसा बिन्दु भी है जिस चक्रिक नमूना बाहर नही ले आता, किन्तु जिस इतिहास का बहुत हो आरम्भिक ज्ञान व्यक्त कर देता है। युद्ध के इन चारो शक्ति प्रदशनो म से प्रत्येक अपन पूववर्ती की अपेक्षा ज्यादा विस्तृत, ज्यादा तीव्र एव भौतिक तथा नतिक दृष्टि से अधिक विनाशक रहा है। हेलेनी (यूनानी) एव सिनाई (चीनी) जस दूसरे समाजो के इतिहासो म युद्ध के ऐसे शक्ति प्रदशनो की समाप्ति एक को छोड अन्य सभी प्रतियोगी अगो के विलुप्त हो जान के रूप म हुई है। और वही बच रहा एक बाद म एक सावभौमिक राज्य की स्थापना करता है।

आधुनिक एव आधुनिकोत्तर पाश्चात्य इतिहास मे युद्ध एव शान्ति चक्र की अनुक्रमिक घटनाएँ

	अवस्था (फेज़)	पूवरग (ओवचर) (१४९४ १५६८ ई)	प्रथम नियमित चक्र (१५६८ १६७२ ई)	द्वि० नियमित चक्र (१६७२ १७९२ ई)	तृ० नियमित चक्र (१७९२ १९१४ ई)	चतुर्थ नियमित चक्र (१९१४ ई)
१	पूवसूचक (प्रीमानिटरी) युद्ध (भूमिका)			१६६७ ६८[१]		१९११ १२[१]
२	सामान्य युद्ध	१४९४ १५२५ ई [३]	१५६८ १६०९[४]	१६७२ १७१३ ई[५]	१७९२ १८१५ ई[६]	१९१४ ४५[१]
३	विराम अवकाश (ब्रीदिंग स्पेस)	१५२५ ३६	१६०९ १८	१७१३ ३३	१८१५-४८	
४	पूरक युद्ध उपसहार एपीलाग)	१५३६ ५९[७]	१६१८ ४८	१७३३ ६३[८]	१८४८ ७१[६]	
५	सामान्य शान्ति	१५५९ ६८	१६४८ ७२	१७०३ ९२	१८७१-१९१४	

नोट —इस सारणी की पादटिप्पणियाँ पृ ३१८ पर देखिए।

चूंकि लय (साइक्लिक रिदम) का यह आत्मशोधन (self amortization) जो ग्राम्य राज्यों के बीच अस्तित्व रक्षा के लिए होने वाले संघर्षों का प्रधान प्रवृत्ति है सभ्यताओं के विघटन का अध्ययन करते समय पहिले ही हमारे सामने आ चुका है। और व्यक्त रूप में एक-दूसरे के साथ सम्बद्ध दोनों प्रक्रियाओं के बीच की इन तालों या लयों में यह अनुरूपता कोई आश्चर्य की वस्तु नहीं है। उन विभंगों (ब्रेकडाउंस) के अध्ययन से जिनमें विघटन आरम्भ होते हैं हम मालूम हो चुका है कि विभंग के पुनरावर्त्तन या लक्षण का कारण ऐसे ग्राम्य राज्यों के बीच एक अत्युग्र युद्ध का छिड़ जाना रहा है जिनसे समाज बना होता है। इसके बाद प्रतियोगी राज्य हट जाते हैं और उनके स्थान पर व्यापक ईसाई साम्राज्य (ओक्यूमेनिकल इम्पायर) आ जाता है। किन्तु ऐसा हिंसापूर्ण विस्फोटों के पूर्णत बन्द हो जाने के कारण नहीं होता वरं गृहयुद्धों या सामाजिक उथल पुथल में उनके नये रूपों में अवतीर्ण होने के कारण होता है। इसलिए अस्थायी रूप से रुक जाने पर भी विघटन की प्रक्रिया चलती ही रहती है।

हमने यह भी देखा है कि ग्राम्य राज्यों की भांति ही विघटन भी लयात्मक उतार चढ़ाव का एक मालिका के बीच अपनी यात्रा समाप्त कर चुकते हैं और अनेक उदाहरणों की परीक्षा करके हमने पता लगाया है कि पराभव एव-समाहरण (रूट एंड

१ स्पेनी नेदरलण्ड्स पर लुई चतुर्दश का आक्रमण।
२ १९११ १२ का तुर्क इतालवी युद्ध १९१२ १३ की तुर्की बाल्कन लड़ाइयां।
३ १४९४ १५०३, १५१० १६ एव १५२१ ५५।
४ स्पेनी हैप्सबर्ग राजशासन मे १५६८ १६०९ ई, फ्रांस मे १५६२ से १६०९ ई।
५ १६७२ ७८, १६८८ १६९७ एव १७०२ १३।
६ १७९२ १८०२, १८०३ १४ एव १८१५।
७ १५३६ ३८, १५४२ ४४ (१५४४ ४६ एव १५४९ ५०, इगलण्ड बनाम फ्रांस) (१५४६ ५२ पवित्र रोम साम्राज्य के प्रोटेस्टेंट राजाओं का श्मालकाल्ड सघ (Schmalkald League of Protestent Princes in Holy Roman Empire) बनाम चार्ल्स पचम, १५५२ ५९।
८ १७३३ ३५, १७४० ४८ एव १७५६ ६३।
९ १८४८ ४९, १८५३ ५६, १८५९ (१८६१ ६५, सयुक्त राज्य मे गृहयुद्ध, १८६२ ६७, मेक्सिको पर फरासीसी कब्जा), १८६४, १८६६ एव १८७० ७१।
१ १९३९ ४५ का पुन प्रवसनशील सामान्य युद्ध पूर्वबोधक युद्धों की फड़फड़ाहट के साथ आया, १९३१ मे मचूरिया मे चीन पर जापान का आक्रमण, १९३५ ३६ का इतालवी-अबीसीनियाई युद्ध, स्पेन में १९३६ ३९ का युद्ध, एव ७ मार्च १९३६ को राइनलण्ड में एक दिन का निर्णयात्मक अभियान जिसे अपनी रक्त हीनता के लिए १९३९-४५ के वर्षों की महाबलि के रूप में मिश्र ब्याज सहित क्षतिपूर्ति करनी पड़ी।

रली) की चक्रिक लय ने, जिसम विघटनो मुख प्रभविष्णु प्रवृत्ति ने प्रतिरोधात्मक गति सहित अपनी लम्बी लडाई लडी है सभ्यता के विभग से लेकर उसके अतिम विघटन तक की ऐतिहासिक यात्रा पूरी करन म साढ़े तीन फेरिया या गश्तें (बीटस)—पराभव, समाहरण, रोगावतन (रिलप्स) ममाहरण रोगावतन समाहरण, रोगावतन—नगायी है। प्रथम पराभव खण्डित समाज को सकटकाल मे झोक देता है जिसका निवारण प्रथम समाहरण स होता है। उसके बाद ही द्वितीय एव अधिक तीव्र आवेग या दौरा (Paroxysm) आ जाता है। इस रोगावत्तन का अनुसरण एक अधिक स्थायी द्वितीय समाहरण करता है और सावभौम राज्य की स्थापना म उसकी अभियक्ति होती है। इसके बाद फिर रोगावतन और रोग शमन की बारी आती है। फिर अतिम रोगशमन के बाद अतिम विघटन आ जाता है।

अब तक क अभिनय के आधार पर निणय किया जाय तो मालूम होगा कि सामाजिक विघटन के नाटक की कथावस्तु शक्ति सतुलन के नाटक की कथावस्तु की अपेक्षा अधिक परिशुद्ध एव नियमित है, और यदि हम सावभौम राज्यो की अपनी सारणी का अध्ययन करे तो हमे पता चलेगा कि (जिन मामलो मे घटनाओ की धारा विजातीय सामाजिक निकायो के सघात से बाधाग्रस्त नही है) प्रारम्भिक विभग से लेकर सावभौम राज्य की स्थापना तक के इस पराभव ममाहरण एव अधिक प्रभावशाली समाहरण की यात्रा मे चार सौ वर्षों की कालवधि लग जाती है, और सावभौम राज्य की स्थापना स लेकर उसके विघटन तक बाद के पुनरावत्तक रोगावत्तन (रेकरेंट रिलेप्स) अतिम समाहरण तथा अतिम रोगावत्तन मे भी लगभग इतना ही लम्बा समय लग जाता है। किन्तु सावभौम राज्य मुश्किल स मरता है और ३७८ ई म एडियानोपुल के सकट के बाद ही सामाजिक रूप से पिछडे पश्चात्य प्रान्तो मे जो रोम साम्राज्य (आगस्टस द्वारा अपनी स्थापना के ठीक चार सौ वर्षों बाद) टुकडे टुकडे हो गया उसी के मध्य एव पूर्वी प्रान्तो म ५६५ ई मे जस्टीनियन की मृत्यु के बाद तक भी ऐसी दशा नही हुई। इसी प्रकार जिस हान साम्राज्य को १८४ ई म दूसरा चाट लगी और जो उसके बाद तीन राज्यो म विखडित हो गया था उसने अतिम विघटन क पूव त्स दन (२८० ३१७ ई) क साम्राज्य के रूप म कुछ समय के लिए अपने को पुनगठित करने मे सफलता प्राप्त की।

(घ) सभ्यताओ की अभिवृद्धि

जब हम सामाजिक विघटन से सामाजिक अभिवृद्धि की ओर दृष्टि फेरते हैं तो हमारा ध्यान इस अध्ययन की पूर्वावस्था म प्राप्त इस जानकारी की ओर जाता है कि विघटन की भाति अभिवृद्धि भी एक चक्रिक लय की गति (साइक्लिकली रिथमिक मूवमट) से चलती है। जब भी किसी चुनौती का सफल उत्तर मिलता है। तभी अभिवृद्धि होती है। वह सफल उत्तर आगे एक दूसरी चुनौती का जन्म देता है। यद्यपि आज हमारे लिखन क समय तक जो सभ्यताए अस्तित्व म आयी हैं उनम स अधिकाश ऐतिहासिक तथ्य की दृष्टि से सामन आने वाली चुनौतिया का प्रभावशाली उत्तर न दे सकने और एक ऐसा नयी चुनौती को जन्म देन म असमय होन क कारण जिसका

एक दूसरा ही सफन उत्तर देने की आवश्यक्ता थी, असफल हो गयी। किन्तु इसमे हमें कोई ऐसा आतरिक कारण नही निखायी पडता कि क्यो यह प्रक्रिया अपने को अनिश्चित काल तक दोहराती न रहे।

उदाहरणाथ, हमने हेलेनी (यूनानी) सभ्यता क इतिहास म देखा है कि अराजक बबरता की प्रारम्भिक चुनौती न नगर राज्य नाम की एक नवीन राजनीतिक सस्था के रूप मे प्रभावशाली उत्तर का आविर्भाव किया और हमने यह भी दखा है कि इस उत्तर की सफलता न एक नयी चुनौता का जम दिया। यह चुनौती इस बार आबादी के बढते हुए दबाव के रूप म आर्थिक स्तर पर आयी। इस दूसरी चुनौती न असमान प्रभाव वाले परस्परानुवर्त्ती उत्तरा या अनुक्रियाआ को जन्म दिया। एक उत्तर था विनाशकारी स्पार्टाई उत्तर जो स्पार्टा ने अपन यूनानी पडोसियो की खाद्य उवरा भूमि को जबदस्ती छीन लेकर दिया इसी प्रकार उपनिवेशीकरण के अस्थायी रूप से प्रभावशाली कोरिंथियाई एव चल्सेडियाई (कोरिंथियन एव चल्सीडियन) उत्तर थे जिनमे यूनानियो के लिए भूमध्यसागर की पाश्चात्य जल द्रोणी (बेसिन) के ज्यादा पिछडे हुए निवासिया से जोत के लिए छीन ली गयी विदेशी भूमियो की विजय निहित थी, और फिर आया वह प्रभावशाली एथीनियन उत्तर जिसम इस अभिवर्द्धित हेलेनी जगत की मकलित उत्पादन-क्षमता को बढाने का यत्न था। यह उस समय की बात है जब यूनानियो का भौगोलिक विस्तार फोनेशियाई एव तायरहीनियाई (फोनेशियन एव तायरहीनियन) प्रतियोगियो न एक ऐसी क्रान्ति-द्वारा रोक दिया जिसम जीवनोपयोगी खाद्यद्रव्यो की कृषि का स्थान नकद पसा देन वाली खेती ने तथा प्रमुख खाद्य द्रव्य एव कच्चे माल के आयात के बदले भेजे जाने वाल औद्योगिक उत्पादना न ले लिया था।

जसा कि हम देख चुके हैं कि आर्थिक चुनौती के इस सफल उत्तर से राज नीतिक स्तर पर एक दूसरी चुनौती का उदय हआ क्योंकि जो यूनानी जगत आर्थिक दृष्टि से अयो याश्रयी हो चुका था उसके लिए व्यापक पमाने पर कानून एव व्यवस्था वाले एक राजनीतिक शासन की आवश्यकता थी। अभी तक ग्रामीण नगर-राज्यो मे जो शासन व्यवस्था प्रचलित थी और जिसन प्रत्येक मदानी भाग मे एक निरकुश कृषि अथनीति को उत्तेजन दिया था वह एक ऐसे यूनानी समाज के लिए पर्याप्त राजनीतिक सान्त्वना देने में असमथ थी जिसका आर्थिक ढाँचा अब एकात्मक (युनिटरी) हो चुका था। किन्तु यूनानी सभ्यता की उन्नति को विभग द्वारा कट जाने मे बचाने के लिए इस तीसरी चुनौती का समय पर उत्तर नही दिया जा सका।

पाश्चात्य सभ्यता के समुदाय मे हम ऐसी अनुवर्तिनी चुनौतियो को भी देख सकते हैं जिनके सफल उत्तर दिय गय। यह मालिका यूनानी सभ्यता वाली मालिका स ज्यादा लम्बी है क्योंकि इसमे प्रथम एव द्वितीय चुनौती का सफल उत्तर तो दिया ही गया किन्तु तीसरी चुनौती का उत्तर देन म भी सफलता प्राप्त हुई।

प्रारम्भिक चुनौती राज्यान्तरकाल की वही अराजक बबरता वाली चुनौती थी जिसका सामना यूनानियो को करना पडा था किन्तु उसका उत्तर कुछ दूसरे प्रकार का था। यह उत्तर हिल्डरबेंडाइन पपसी (पोप शासन) के रूप मे एक व्यापक धम

तन्त्र के निर्माण-द्वारा किया गया। इसमे एक दूसरी चुनौती सामने आ गयी क्योंकि तब अभिवृद्धिगत पाश्चात्य ईसाई धर्मजगत ने धर्मोपासना-सम्बन्धी एक्य प्राप्त कर लेने के बाद यह देखा कि अब उसे राजनीतिक एवं आर्थिक दृष्टि से कुशल ग्राम्य राजप्रणाली की आवश्यकता है। इस चुनौती का सामना इटली एवं फ्लैण्डर्स मे नगर राज्य की हेलेनी संस्था को पुनर्जीवित करके किया गया। यह उपाय यद्यपि कुछ क्षेत्रों में काफी कारगर साबित हुआ किन्तु क्षेत्रीय दृष्टि से विस्तृत सामन्ती राजतन्त्रों की आवश्यकताओं की पूर्ति मे असफल हो गया। तब क्या पाश्चात्य राजनीतिक एवं आर्थिक जीवन के लिए कुशल ग्राम्य साधनों की रचना वाला समाधान जिसकी इटली एवं फ्लैण्डर्स में नगर राज्य प्रणाली द्वारा उपलब्धि हो चुकी थी सारे पाश्चात्य जगत के लिए भी इस इतालवी तथा फ्लेमिश कुशलता को राष्ट्रव्यापी बनाकर प्राप्त करा देना आवश्यक है?

यह समस्या इंगलैण्ड में पहिले राजनीतिक स्तर पर पार्लमेंट की आलसोत्तर मध्यकालिक संस्था में दक्षता का सन्निवेश करके और आर्थिक स्तर पर औद्योगिक क्रान्ति के द्वारा हल कर ली गयी। हेलेनी इतिहास की एथीनियाई (एथीनियन) आर्थिक क्रान्ति के सदृश इस पाश्चात्य औद्योगिक क्रान्ति ने भी एक ग्रामीण आर्थिक आत्मनिर्भरता का अपहरण करके उसकी जगह व्यापक आर्थिक अन्योन्याश्रयता की स्थापना कर दी। इस प्रकार तीसरी चुनौती का सफल उत्तर देने के फलस्वरूप पाश्चात्य सभ्यता ने अपने को पुन उसी नूतन चुनौती के सामने खड़ा पाया जो हेलेनी सभ्यता के सामने द्वितीय चुनौती के प्रति उसके सफल उत्तर के बाद आ खड़ी हुई थी। आज ये पंक्तियाँ लिखते समय जब बीसवीं शती की आधी आयु बीत चुकी है इस राजनीतिक चुनौती का कोई सफल उत्तर पाश्चात्य मानव नहीं दे सका है किन्तु इतना अवश्य हुआ है कि वह उसके अभिप्राय के प्रति तीव्र रूप से सचेत हो गया है।

दो सभ्यताओं की ये संक्षिप्त झाँकियाँ यह दिखाने के लिए तो पर्याप्त हैं कि चुनौती एवं उत्तर के उन अनवरत (इटरलाकिंग) आवर्तनों की शृंखला की अनेक कड़ियों के सम्बन्ध में उनके इतिहासों में कोई एकरूपता नहीं है जिनके द्वारा सामाजिक विकास के बाद में गत्यात्मकता प्राप्त हुई है और जिसके निश्चित विवरण पर्याप्त परिमाण में मिलते हैं ऐसी दूसरी सब सभ्यताओं के इतिहासों की परीक्षा करने से उस निष्कर्ष की पुष्टि होती है। इसलिए हमारी वर्तमान खोज का तर्क यह निकलता है कि सभ्यताओं की अभिवृद्धि के इतिहासों में प्रकृति के कानूनों की प्रक्रिया उतनी ही अस्पष्ट है जितना कि वह उनके विघटन के इतिहासों में स्पष्ट है। आगे के किसी अध्याय में हम मालूम हो जायगा कि यह कोई आकस्मिक घटना नहीं है बल्कि इसका अभिवृद्धि का रहस्य एवं विघटन प्रक्रिया के बीच के आन्तरिक भेद में निहित है।

(९) भाग्य के विरुद्ध कोई कवच नहीं

सभ्यताओं के इतिहासों में प्रकृति के कानूनों की प्रक्रिया का अध्ययन करते हुए हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि जिस सीमा में ये कानून अपने को प्रकट करते हैं वह अनुमान [illegible] के बाद के समय में उत्पन्न होती है। इस प्रकार [illegible]

पर नही। अपनी समस्त कट्टरता एव प्रमाण लेशहीन नियतिवाद के साथ भी, स्पगलर ने इस बात का विचार ही नही किया।

फिर भी इतिहास मे कानून (नियम) तथा स्वतन्त्रता के वाद के अन्त भी पुन सवाल पर बिना किसी प्रकार के पक्षपात के अपने तक को आगे बढाने के पूर्व, हम कुछ और उपाख्यानो पर विचार कर लेना चाहते हैं जिनमे किसी प्रवृत्ति ने अपने विरुद्ध बार-बार होने वाले विद्रोहो के विरुद्ध अपने को पुन प्रतिष्ठित किया है। प्रतियोगिनी शक्तियो के विलय के ऐसे उदाहरणो मे स्पगलर भाग्य या नियति का हाथ देखता है किन्तु उसकी अनिवार्यता का सिद्धान्त सही है या गलत इसे सिद्ध करने का वह जरा भी प्रयत्न नही करता। सैनिक पराक्रम द्वारा दक्षिण-पश्चिम एशिया मे हेलेनी प्रभुत्व की स्थापना से जो परिस्थिति पैदा हुई उससे हम अपने विचार का आरम्भ करेगे।

हेलेनी प्रभुत्व यद्यपि ईसाई सवत् की सातवी शती मे कुछ हजार वर्ष पुराना हो चुका था और जो अरब मुस्लिम सैनिक दल द्वारा उखाड फेका गया वह तारस के दक्षिण कभी एक विदेशागत विजातीय सस्कृति से अधिक नही बन सका वह अन्य रूप से सीरियाई या मिस्री देहातो मे पद हेलेनी या हेलेनी प्रभाव-दीक्षित नगरो की चौकियो से अपनी क्षीण ज्योति फैलाता रहा। जब सेल्यूसीद हेलेनी सभ्यता प्रचारक (हेलेनाइजर) एन्तिओक्स एपीफेनस (राज्यकाल १७५ १६३ ईसापूर्व) ने यरूशलेम को भी एन्तिओक बना देने का प्रयत्न किया तो हेलेनिज्म की सामूहिक धर्म परिवर्तन करने की क्षमता की परीक्षा हो गयी। सास्कृतिक सैनिक अभियान की इस अनुनादी पराजय ने आक्रामक सस्कृति की अन्तिम पूर्ण समाप्ति के अपशकुन की घोषणा की। इसका दुर्बल रुग्ण अस्तित्व जो शताब्दियो तक बना रह गया उसका कारण यह तथ्य था कि शक्तिहीन होते हुए सेल्यूसीदियो तथा टालमियो से रोमनो ने उसका नियन्त्रण अपने हाथो मे ले लिया।

सीरियाई एव मिस्री समाजो पर यूनानी प्रभुत्व शस्त्रबल से थोपा एव जारी रखा गया था। और जबतक पराधीन समाजो ने जवाब मे उसी अस्त्र का प्रयोग किया वे बराबर हारते रहे। कथा के दूसरे अध्याय मे अर्थात ईसाई सवत की तीसरी शती मे पूर्वी प्रान्तो की आबादी का ईसाई मत मे जो सामूहिक धर्म परिवर्तन हुआ उससे ऐसा लगा कि जो कुछ एन्तिओकस करना चाहता था और जिसमे वह असफल हो गया था हेलेनी प्रभाव के लिए शायद उसकी पूर्ति हो गयी। इन प्रान्तो मे कथोलिक ईसाई चर्च ने पराधीन देशी किसान जनता एव नागरिक हेलेनी प्रभाव दोनो को एक समान मुग्ध कर लेने मे सफलता प्राप्त की और चूकि ईसाई मत अपनी विजयपूर्ण यात्रा एक हेलेनी परिधान मे कर रहा था इसलिए ऐसा लगा मानो प्राच्यो ने ईसाईयत के ससर्ग मे, असावधानी से ऐसी सस्कृति प्राप्त कर ली जिसे उन्होने इतने जोशो खरोश के साथ तब रद्द कर दिया था जब वह उन्हे अमिश्रित और अप्रच्छन्न रूप मे दी गयी थी। किन्तु ऐसा अनुमान गलत था। यूनानी ईसाइयत को ग्रहण कर लेने के बाद प्राच्यो ने एक के बाद एक अपसिद्धान्त अपनाकर अपने धर्म का अहेलेनीकरण

करना शुरू कर दिया। इन अपसिद्धान्तों मे नेस्तोरियाईवाद (नेस्तोरियनिज्म) प्रथम था। इस प्रकार धार्मिक विवाद के असनिक रूप मे हेलेनवाद के विरुद्ध एक प्राच्य आन्दोलन को पुन जारी करके प्राच्यो ने सास्कृतिक युद्धकला के एक ऐसे नवीन तकनीक—प्रविधि—को जन्म दिया जिससे अन्त मे वे विजयी हुए।

इस यूनानियत विरोधी सास्कृतिक अभियान ने अपने को कई शताब्दियो तक उस चक्रिक साचे के रूप मे उपस्थित किया जिससे हम परिचित हो चुके है। नस्तोरियाई लहर उठी और गिरी किन्तु उसके बाद ही मोनोफाइसाइट लहर आ गयी जिसका अनुसरण मुस्लिम लहर ने किया और यह मुस्लिम लहर जो कुछ उसके सामने पडा सबको बहा ले गयी। यह कहा जा सकता है कि मुस्लिम विजय सनिक विजयो की अनगढ प्रणाली की ओर प्रत्यावर्तन मात्र थी। निश्चय ही यह सत्य है कि मुस्लिम अरब लडाकू दलो को तात्पताय एव गाधी के अहिंसक या अप्रतिरोध वाले सिद्धान्तो का पूर्वानुभावक (Anticipators) नही माना जा सकता। उन्होंने सीरिया फिलिस्तीन और मिस्र को ६३७-४० ई की अवधि मे जीत लिया किन्तु वह विजय बहुत कुछ उसी श्रेणी की थी जसी कि १८६० ई मे प्राप्त गरीबाल्डी की वह विजय थी जिसम लाल कुर्ती वाले १००० स्वयसेवको की सहायता से उसने सिसली एव नेपुल्स पर कब्जा कर लिया था और जिसमें केवल दो ऐसी तोपो का प्रयोग किया गया था जो गोला बारूद से बिल्कुल खाली थी। सिसली द्वय का राज्य इतालिया यूना (इतालवी ऐक्य) के सनिक मिशनरी-द्वारा इसलिए विजय कर लिया गया कि वह विजित होना चाहता ही था और रोम साम्राज्य के पूर्वी प्रान्तो की जनसख्या की भावना भी उससे कुछ ज्यादा भिन्न नही थी जो सिसली वालो की गरीबाल्डी के प्रति थी।

हमने अभी-अभी जो उदाहरण दिया है उसमें हम एक अवाञ्छित एकरूपता के प्रति नास्तिक विरोधो का अनुवत्तन—बार बार आगमन—देखते हैं। इनम से तीसरा विरोध सफल हुआ। ईसाई सवत् की बारहवी शताब्दी स फ्रास का इतिहास उसी नमूने को एक दूसरे ही सन्दर्भ में उपस्थित करता है। उस शताब्दी से फ्रास का रोमन कथोलिक चच एसे सघष मे लगा रहा जो कभी अस्थायी रूप से कुछ ज्यादा सफल नही हुआ। यह सघष एक कथोलिक देश के रूप मे फ्रास म चच-सम्बन्धी या धर्माचार की एकता स्थापित करने के लिए हो रहा था और अलगाव की उस भावना के विरुद्ध था जिसकी प्रत्येक अभिव्यक्ति दबा दिये जाने के बाद किसी दूसरे नय रूप मे उभर आती थी। बारहवी शती के दक्षिणी फ्रांस मे कथोलिक ईसाई मत के विरुद्ध जो विद्रोह उठ खडा हुआ था और जिसने प्रथम विस्फोट म कथारिज्म (परिशोधनवाद पवित्रतावाद)[1] का रूप ग्रहण कर लिया था उस तेरहवीं शती मे कुचल दिया गया। किन्तु उसी प्रदेश मे वही विद्रोह फिर सोलहवी शती मे काल्विनिज्म (काल्विन मत)[2] के रूप मे

[1] एक ईसाई सम्प्रदाय जो द्वत मनीशियन दृष्टिकोण से चच एव वतमान समाज व्यवस्था का विरोध करता था।—अनुवादक

[2] काल्विनिज्म—फ्रांसीसी धमज्ञानी एव सुधारक जान काल्विन (१५०९ ६४) के

पुनरवतीण हुआ और जब काल्विन मत पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया तो वह तुरन्त जानसेनिज्म (जानसेनवाद)[1] के रूप म सामने आ गया। यह जानसेनिज्म यथासम्भव मत मे सम्भव काल्विनिज्म का निकटतम प्रवेश था। जब जानसेनिज्म को निषिद्ध किया गया तो वह डीइज्म (आस्तिकवाद)[2] रेशनलिज्म (तर्कवाद) एग्नास्टिसिज्म (अनीश्वरवाद) एव एथेइज्म (नास्तिकवाद) इत्यादि के रूपो म पुनरवतीण होता गया।

दूसरे प्रसगो म हम जूडाई एकेश्वरवाद (Judaic Monotheism) के भाग्य का अवलोकन कर चुके है जो बार बार उदित होने वाले बहुदेववाद (Polytheism) से निरन्तर विक्षुब्ध रहा। इसी प्रकार एक गत्येश्वर (वन ट्रू गाड) के अनुभवातीत (टासेंडेंस) की सगोत्री जूडाई कल्पना भी बार बार अवतारी ईश्वर (गाड इनकारनेट) की लालसाओ से प्रताडित होती रही। एकेश्वरवाद ने बाल (Baal)[3] एश्तोरेथ[4] की पूजा खत्म कर दी। किन्तु ईर्ष्यालु यहावा के निषिद्ध प्रतिद्वन्द्वी कट्टर यहूदी सम्प्रदाय मे प्रभु के शब्द (Word) प्रज्ञा (Wisdom) एव देवदूत या फरिश्ते के मानवीकरण के छद्मवेश मे पुन झाकने लगे इतना ही नही बाद म तो वे पवित्र त्रिमूर्ति (होली ट्रिनिटी) तथा ईश्वरीय देह एव रक्त (गाडस बाडी ऐण्ड ब्लड) ईश्वरीय माता (गाडस मदर) एव सता के सिद्धा त के रूप मे कट्टर ईसाई सम्प्रदाय म भी प्रविष्ट हो गये। बहुदेववाद के पुन बलात प्रवेश के इन उदाहरणो के कारण इस्लाम मे पूरी हार्दिकता के साथ एकेश्वरवाद की पुन प्रतिष्ठा की गयी प्रोटेस्टण्ट मत म भी उसकी पुन स्थापना की घोषणा हुई यद्यपि वह इतनी पूण नही थी जितनी

धम सिद्धान्त, जो प्रमुखत पाँच हैं—१ (ईश्वर द्वारा मुक्ति के लिए) वरण या प्रारब्ध (Election or Predestination) २ सीमित परिशोधन या प्रायश्चित्त (Limited Atonement), ३ नितान्त पतितावस्था (Total Depravity), ४ अनुग्रह की दुर्निवारिता (Irresistability of grace) और ५ सन्तों की चिरसाधुता (Persevarance of Saints)। यह मत मुख्यत विभूति के लिए ईश्वर की सवप्रभुता को अगीकार करता है। —अनुवादक

[1] जानसेनिज्म=कार्नेलिस जानसेन (१५८५ १६३८) से सम्बद्ध आन्दोलन का सिद्धान्तवाद। काल्विन के सिद्धान्तों को मानने के अतिरिक्त नैतिक आचरण के कठोरतापूवक पालन में विश्वास करने वाला, जेसुइट्स का घोर विरोधी। सत्रहवीं अठारहवीं शती म फ्रांस में फला।—अनुवादक

[2] डीइज्म=जगत के स्रष्टा के एव मनुष्यों के अन्तिम निणयदाता के रूप मे साकार ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास। लाड हर्बट द्वारा स्थापित।—अनुवादक

[3] बाल=प्राचीन सेमिटिक जातियो विशेषत सीरिया एव फिलिस्तीन के स्थानीय देवसमूह में से कोई। अपने ही स्थान के नाम से विख्यात पशुधन एव कृषि के देवता। हिब्रू में 'पक्षिराज'। —अनुवादक

[4] एश्तोरेथ (हिब्रू)=फोनेसियाई देवी अस्तार्ते—उपज, सन्तति एव युद्ध की देवी।—अनु०

इस्लाम की। किन्तु जगत म प्राकृतिक शक्तियों का जो प्रतीयमान द्वन्द्व या बहुत्व है उसको प्रतिबिम्बित करने वाले बहुदेववाद के प्रति आत्मा की अदम्य बुभुक्षा इन दोनो पवित्रतावादी आन्दोलनो को सदा ही प्रताडित करती रही।

(२) इतिहास मे 'प्रकृति के नियमों' के प्रचलन के सम्भव स्पष्टीकरण

यदि ये पुनरावर्तन एव एकरूपताए जिनकी हमने इस अध्ययन म खोज की है, सत्य मान ली जाय तो इनके दो ही सम्भव स्पष्टीकरण दिये जा सकते हैं। इनको नियन्त्रित करने वाले नियम या तो वे नियम होगे जो मनुष्य के अमानवीय पर्यावरण म प्रचलित होते हैं और बाहर स इतिहास की धारा पर अपने को आरोपित करते है या फिर वे नियम—कानून—मानव प्रकृति की मनोरचना एव प्रक्रिया मे ही अन्तर्हित रहते हैं। पहिले हम प्रथम परिकल्पना (hypothesis) पर विचार करेंगे।

उदाहरणार्थ दिवस निशा चक्र स्पष्ट ही सामान्य जनो के दैनन्दिन जीवन को प्रभावित करता है किन्तु वर्तमान प्रसग मे हम, विचार के लिए उसको छोड सकते हैं। मनुष्य ज्यो ज्यो आदिमकालीन अवस्था से आगे बढता जाता है त्यो-त्यो वह अपनी आवश्यकतानुसार रात को दिन मे बदल देने मे अधिकाधिक समर्थ होता जाता है। दूसरा ज्योतिश्चक्र या सौरचक्र (Astronomical cycle), जिसने मनुष्य को एक दिन दास बना रखा था ऋतुओं का वार्षिक चक्र था। लेंट[1] स्रीष्टीय उपवास एव आत्मसयम की एक ऋतु बन गया क्योकि स्रीष्ट धर्म के उदय के असख्य पीढियो पहिले से शिशिर का उत्तर भाग एक ऐसा मौसिम होता था जब मनुष्य को अपनी खाद्य-मात्रा म कमी करनी ही पडती थी, फिर चाहे वह आध्यात्मिक दृष्टि से उसके लिए अच्छा हो या न हो। किन्तु यहा भी पाश्चात्य एव पाश्चात्यकरणप्रिय मानव ने अपने को प्रकृति के नियम बन्धन से मुक्त कर लिया। शीतागार (Cold Storage) एव पृथिवी-मण्डल के प्रौद्योगिकीय रूप से एकीभूत तल पर द्रुत परिवहन के साधनो द्वारा किसी प्रकार के शाम शाक-सब्जी, फल अथवा फूल को अब वर्ष की किसी भी ऋतु म और ससार के किसी भी भाग म किसी भी आदमी द्वारा जो उसका दाम चुकाने की क्षमता रखता हो क्रय किया जा सकता है।

फिर अपना यह परिचित वर्षचक्र ही एक मात्र ऐसा सौरचक्र नही था जिसकी अधीनता म पृथिवी का पादप जगत (Flora) रहा हो और जिसके परिणाम स्वरूप अपनी जीविका के लिए कृषि पर निर्भर करने वाला मानव भी, अप्रत्यक्ष रूप से उसका दास बन गया हो। वर्तमान ऋतुविज्ञानियो ने इससे कहीं अधिक लम्बी कालावधि वाले ऋतुचक्रो पर प्रकाश डालने म सफलता प्राप्त की। यायावरो अथवा पशुचारी खानाबदोशो द्वारा मरुस्थल स निकलकर 'रोपणस्थली (Sown') पर किये जाने वाले धावो के अनुसन्धान मे हमे ऐसे एक ऋतुचक्र का अप्रत्यक्ष प्रमाण मिला

[1] ईस्टर के पहले के चालीस दिन जिनमें रविवार के अतिरिक्त अन्य दिनों में ईसा मसीह के निमित्त उपवास किया जाता है।—अनुवादक

जिसकी कालावधि ६०० वर्ष लम्बी थी अर्थात् गुप्तता एवं आर्द्रता के एक तरकाल मे से प्रत्येक की उक्त आयु थी। जब हम ये पंक्तियाँ लिख रहे हैं तब यह परिकल्पित चक्र उतना सुप्रमाणित या सुस्थापित नहीं रह गया है। इसी वर्ग के उसकी अपेक्षा अधिक प्रमाणित ऋतुचक्रों का पता चला है जिनकी तरंग लम्बाई या दो या एक अंकों वाली है। ये ऋतुचक्र आधुनिक स्थितियों में कृत्रिम रूप से बोयी एवं काटी जाने वाली फसलों के उत्पादन के उतार चढाव को नियमित करते हैं। कहा जाता है कि इन ऋतु एवं उपज चक्रों, तथा कतिपय अर्थशास्त्रियों द्वारा अभियोजित अर्थोद्योगिक चक्रों में कोई सम्बन्ध है। किन्तु वर्तमान विज्ञप्ति का बहुमत इस दृष्टिकोण के विरुद्ध है। अन्वेषण के क्षेत्र के एक विक्टोरियन अग्रगामी स्टेनली जेवस का बुद्धिमत्तायुक्त सुझाव था कि ये व्यापार चक्र सूर्य के धब्बों के उदय एवं अस्त में व्यक्त विज्ञापित सूर्य की रेडियोधर्मिता या विकिरणशीलता के उतार चढाव के परिणाम हो सकते हैं। किन्तु यह सिद्धान्त अब अपनी लोकप्रियता खो चुका है। बाद के वर्षों में स्वयं जेवस ने भी स्वीकार किया कि (व्यापार के) पुनरावर्ती आपतन (पीरियाडिक कोलेप्सेज) अपनी प्रकृति में वस्तुतः मानसिक है और अवसाद आशावादिता उत्तेजन निराशा एवं आतंक की मात्राओं पर निर्भर करते हैं।[1]

१९२९ ई में कैम्ब्रिज के अर्थशास्त्री ए सी पिगाउ ने यह प्रकट किया था कि औद्योगिक कार्यशीलता में जो उतार चढाव होते हैं उनका निर्णय करने वाले घटक (फैक्टर) के रूप में उपज सम्बन्धी फेरफार का महत्व उसके लिखने के समय उसकी अपेक्षा बहुत ही कम था जितना कि वह पचास या सौ वर्ष पहिले रहा होगा। पिगाउ के बारह वर्ष बाद लिखते हुए जी हेबलर ने भी इसी प्रकार का दृष्टिकोण अपनाया था। और इन पंक्तियों के लिखते समय इस सम्बन्ध में जो पारम्परिक या कट्टर आर्थिक मत है उसके नमूने के रूप में हम उसे यहाँ दे रहे हैं —

"अभिवृद्धि की भांति ही, सम्पत्ति का क्षय भी बाहर के विघ्नकारी कारणों के प्रभाव पर नहीं वरं स्वयं व्यवसाय जगत के अन्दर नियमित रूप से प्रधावित प्रक्रियाओं पर निर्भर करता है।

"(इन उतार चढ़ावों वाले) इस विषय में रहस्यमय बात यह है कि ऋतु-सम्बन्धी स्थितियों के कारण फसल की खराबी या बीमारियों आम हड़तालों तालाबन्दियों, भूकंपों, अंतर्राष्ट्रीय व्यापारिक स्रोतों में आकस्मिक अवरोध या ऐसे ही अन्य 'बाह्य' कारणों से उनका स्पष्टीकरण नहीं किया जा सकता। उपज के परिणाम वास्तविक आय अथवा फसल नाशक युद्ध, भूकंप अथवा उत्पादक प्रक्रियाओं के इसी प्रकार के अन्य भौतिक विघ्नों के फलस्वरूप रोजगार धंधे में भयंकर कमी का, सब मिलाकर, अर्थ प्रणाली पर बहुत कम असर पड़ता है और तकनीकी या प्राविधिक अर्थ में व्यवसाय चक्र के

[1] जेवस, डब्लू स्टेनली 'इनवेस्टिगेशंस इन करेंसी ऐण्ड फाइनेंस', द्वितीय संस्करण (लंदन १९०९, मैकमिलन) पृष्ठ १८४

सिद्धांत की मंदी या अवपात (डिप्रशन) से हमारा आशय उत्पत्ति के परिमाण, वास्तविक आय तथा रोजगार की उन लम्बी एव स्पष्ट गिरावटों से होता है जिनका स्पष्टीकरण स्वय अर्थ प्रणाली के अन्दर से उत्पन्न होने वाले हेतुओं से ही होता है, और जो प्रथमत मुद्रा की मांग की अपर्याप्तता तथा मूल्य एव लागत के बीच पर्याप्त अन्तर के अभाव से पैदा होती है।

'विविध कारणों से व्यवसाय चक्र के स्पष्टीकरण मे, यह वाछनीय मालूम पड़ता है कि वाह्य विघ्नो या व्याघातों के प्रभाव को यथासम्भव कम से कम महत्व दिया जाय। व्यवसाय चक्र के निर्माण में आपातत (Prima Facie) व्यवसाय प्रणाली की अनुक्रियाए वाह्य आघातों से अधिक महत्वपूर्ण जान पड़ती हैं। दूसरे ऐतिहासिक अनुभव इस प्रदर्शित करता है कि चक्रिक गति उन स्थानों मे भी बनी रहने की प्रवृत्ति रखती है जहां कोई ऐसे प्रमुख वाह्य प्रभाव कार्यशील नहीं होते जिन्हें युक्तिसंगत रूप से उत्तरदायी ठहराया जा सके। इसमे यह भी झलकता है कि हमारी अर्थ प्रणाली मे कोई अन्तर्निहित अस्थिरता है, एक या दूसरी दिशा में गतिशील कोई प्रवृत्ति है।"[1]

एक दूसरा बिल्कुल भिन्न, प्राकृतिक चक्र भी है जिसे दृष्टि से ओझल नहीं किया जा सकता। यह है जन्म वृद्धि सन्तानोत्पत्ति जरा और मरण का मानवयोनि चक्र। इतिहास के एक विशिष्ट क्षेत्र मे इसका महत्त्व इस अध्ययन के लेखक के लिए बडे सजीव रूप मे एक वार्तालाप-द्वारा चित्रित हुआ। यह वार्तालाप १९३२ ई म न्यूयार्क स्टेट क ट्राय नगर के एक सावजनिक प्रीति भोज म हुआ था। इस प्रीतिभोज म उसने देखा कि वह लोक शिक्षण के स्थानीय निदेशक के बगल म ही बैठा हुआ है। तब उसने उनसे पूछा कि 'आपके पेशे सम्बन्धी विविध कर्त्तव्यों म कौन-सा काय आपको सबस दिलचस्प मालूम पडता है? उसने तुरन्त उत्तर दिया— बाबा दादाओ क लिए अंग्रेजी सिखाने की कक्षा का सगठन करना।' ब्रिटिश आगन्तुक बिना किसी विचार के यो ही पूछता गया— यह तो एक अंग्रेजी भाषा भाषी देश है फिर यहा कोई बाबा-दादा बिना अग्रजी जाने कैसे आने की व्यवस्था कर सका? निदेशक न कहा— जनाब, यो समझिए। सयुक्त राज्य म ट्राय क्षौम ग्रवेय (Linen coller) निर्माण का प्रधान केन्द्र है और १९२१ तथा १९२४ के आप्रवास प्रतिबन्ध कानूनो (इम्मीग्रेशन रिस्ट्रिक्शन एक्ट्स) क पूर्व वहा क अधिकांश मजूर विदेशी आप्रवासियों तथा उनके कुटुम्बो म स भरती किय जाते थे। तब जो आप्रवासी प्रधान आप्रवासी निर्यातक देशो म स हर एक से आये, व यथाशक्ति अपने परिचित अतीत स चिपटे हुए तथा अपने सगोत्र जनो से घुल मिलकर चलने वाले थे। एक ही राष्ट्रीय स्रोत से निकलकर आये आप्रवासी न केवल एक ही कारखाने मे साथ साथ काम करत थे बल्कि व एक ही बस्ती के घरो म अगल-बगल रहते भी थ। इसलिए जब उनके अवकाश

[1] हेबलर जी प्रास्पीरिटी ऐण्ड डिप्रेशन' (जिनेवा १९४१ लीग आफ नेशस) पृष्ठ १०

ग्रहण करने का समय आया तब भी उनमें से अधिकांश उससे ज्यादा अंग्रेजी न जान पाये जितना वे उस समय जानते थे जब उन्होंने पहले-पहल अमरीका के तट पर पाँव रखे थे। अपने जीवन के अमरीकी अध्याय में इस बिन्दु तक उन्हें और कुछ जानने की आवश्यकता ही नहीं पड़ी क्योंकि उन्हें अपने देश में पैसा दुभाषिया की सराए उपलब्ध हो गया। उनके बच्चे जब अमेरिका आये तब इतने छोटे थे कि अपनी बारी कारखाने में प्रवेश करने के पूर्व उन्हें सार्वजनिक पाठशालाओं में जाना ही पड़ा और अमरीकी शिक्षा तथा इतालवी बचपन का संयोग हो जाने के कारण वे प्रवीण द्विभाषी हो गये। वे कारखाने सड़क एवं भण्डारगृहों में अंग्रेजी तथा अपने परिवार के घर में इतालवी बोलते थे। उन्हें इसका ध्यान भी न रहता था कि वे निरन्तर एक भाषा बोलते-बोलते दूसरी बोलने लग जाते हैं। उनका प्रयासहीन एवं ईर्ष्यारहित द्विभाषा ज्ञान उनके वृद्ध माता पिताओं के लिए बड़ा ही सुविधाजनक था। बल्कि इसमें उन्हें इस बात की थाह मिलती थी कि कार्यमुक्त होने के बाद कारखाने में काम करते हुए थोड़ी सी जो अंग्रेजी वे जानते थे उसे भी भूल जाय। जो भी हो, पर यही कथा का अन्त नहीं है क्योंकि समय आने पर रिटायर हुए आप्रवासी श्रमिकों के बच्चों ने भी शादी की और उन्हें भी अपने बच्चे हुए। तीसरी पीढ़ी के इन प्रतिनिधियों की भाषा घर और स्कूल दोनों में अंग्रेजी हो गयी। चूंकि उनके पालकों या माता पिताओं ने संयुक्त राज्य में ही शिक्षा प्राप्त करने के बाद विवाह किये थे और उनके माता पिता में से कोई न कोई प्रायः गैर इतालवी स्रोत का होता था, अंग्रेजी ही वह भाषा थी जिसमें माता पिता एक दूसरे से अपने विचार प्रकट करते थे। इस प्रकार द्विभाषी माता पिताओं से अमेरिका में उत्पन्न बच्चे अपने बाबाओं की इतालवी मातृभाषा से अपरिचित रह गये, फिर उनके लिए उसकी कोई विशेष उपयोगिता भी न थी। तब वे एक ऐसी विदेशी भाषा सीखने का यत्न क्या करते जो उन्हें गैर अमरीकी स्रोत का सिद्ध करती उस स्रोत का जिसका निराकरण करने और जिसका निर्वाण कर देने के लिए वे उत्सुक थे? अब दादा बाबाओं ने देखा कि उनके नाती पोते उनके साथ एक ऐसी भाषा में बातचीत करने के लिए उत्सुक या प्रवृत्त नहीं होंगे जिसे उनके दादा बाबा गण आसानी से बोल सकते थे। इस प्रकार अपनी वृद्धावस्था में सहसा उनके सामने यह सम्भावना उपस्थित हो गयी कि अपने ही जीवित वंशजों से कोई मानवीय सम्पर्क बनाये रखने में वे असमर्थ भी हो सकते हैं। इतालवी एवं दूसरे आंग्लेतर भाषा भाषी महाद्वीपीय यूरोप निवासियों के लिए जिनमें कौटुम्बिक एकता की तीव्र भावना होती है यह सम्भावना असहनीय थी। जीवन में पहिली बार उन्हें अपने अपनाये हुए देश की एक ऐसी भाषा सीखने की प्रेरणा हुई जो अभी तक उनके लिए अनाकर्षक थी। पिछले ही साल उनके मन में मुझसे सहायता माँगने का विचार आया। मैं तो उनके लिए विशेष कक्षाएँ चलाने को उत्सुक था ही और यद्यपि यह बात प्रसिद्ध है कि ज्यों-ज्यों मनुष्य [illegible] जाता है उसके लिए विदेशी भाषा सीखने का प्रयास [illegible] होता जाता है [illegible] विश्वास दिला सकता [illegible] दादा-बाबाओं के [illegible] विभाग-द्वारा वि[illegible] में एक बहुत

ही सफल एवं पुरस्करणीय कार्य सिद्ध हुआ है।

ट्राय की यह कहानी बताती है कि कैसे दो अनुक्रमिक विरामों के पुंजीभूत प्रभाव द्वारा तीन-तीन पीढ़ियों की मालिका का ऐसा कायापलट हो सकता है जो एक ही पीढ़ी के प्रतिनिधियों द्वारा एक ही जीवनावधि में नहीं हो सकता था। जिस प्रक्रिया से एक इतालवी कुटुम्ब ने अपने को अमरिकी कुटुम्ब में रूपान्तरित कर लिया उसका एक जीवन की सीमा में समझने लायक विश्लेषण या वर्णन नहीं किया जा सकता। इसे लाने के लिए तीन पीढ़ियों के बीच की अन्तःक्रिया आवश्यक थी। और जब हम राष्ट्रीयता के परिवर्तन से धर्म एवं वर्ग परिवर्तन की ओर विचार आरम्भ करते हैं तो देखते हैं कि यहाँ भी व्यक्ति नहीं बल्कि कुटुम्ब ही बोधगम्य घटक है।

वर्गचेतना में पूर्ण आधुनिक इंग्लैण्ड में, जो १९५२ ई० में इस लेखक की आँखों के आगे ही बड़ी तेजी के साथ मिटता जा रहा था मजदूर वर्ग या निम्न मध्यमवर्ग के एक कुटुम्ब को सभ्य जन (जेंटिल फाक) बनने में सामान्यतया तीन पीढ़ियाँ लग गयीं। धर्म के क्षेत्र में भी मानक तरंग दैर्घ्य (स्टैन्डर्ड वेव लेंग्थ) प्रायः यही रहा है। हम रोमन जगत् से ब्रात्यवाद (पेगनिज्म) के निराकरण के इतिहास में देखते हैं कि असहिष्णु रूप में निष्ठावान ईसाई के रूप में पैदा होने वाले सम्राट थ्यूदोशियस प्रथम ने पूर्व-ब्रात्य धर्मान्तरित कान्स्टेंटाइन प्रथम का अनुसरण तो किया परन्तु दूसरी पीढ़ी में नहीं बल्कि उससे अगली पीढ़ी में किया। इसी प्रकार सत्रहवीं शती के फ्रांस से प्रोटेस्टेंट ईसाइयत का जो निर्मूलन हुआ उसमें भी असहिष्णु धर्माचारी कैथोलिक रूप में पैदा हुए लुई चतुर्दश एवं उसके प्राक् कालिवनवादी दादा हनरी चतुर्थ के बीच इतना ही अन्तर था। उन्नीसवीं एवं बीसवीं शतियों के मोड़ या संगम पर फ्रांस में सरकारी तौर पर धर्मान्तरित बुर्जुआ नास्तिकों या अनीश्वरवादियों के पोते नातियों में से यथार्थतः निष्ठावान कैथोलिक ईसाई पैदा करने का जो प्रयोग सफल हुआ उसमें भी इतनी ही पीढ़ियाँ लग गयीं। इन लोगों ने फिर से कैथोलिक मत का आलिंगन इसलिए कर लिया कि चर्च ने एक परम्परागत संस्था के रूप में उनके लिए एक नवीन मूल्य महत्त्व प्राप्त कर लिया था। उनका ख्याल था कि कैथोलिक चर्च शायद समाजवाद की बढ़ती बाढ़ तथा उन विचार धाराओं से उन्हें बचा लेने के लिए एक रोक, एक दीवार का काम करे जो बुर्जुआ एवं श्रमिक वर्ग के बीच आर्थिक असमानता को नष्ट करने पर तुली हुई है। पुनः हम देखते हैं कि उम्मायद खलीफाओं के अधीन सीरियाई जगत् में भी जिन भूतपूर्व जरथुस्त्री पितामहों ने आदिम मुस्लिम अरब शासक वर्ग की अनुकूलता प्राप्त करने के लिए इस्लाम ग्रहण कर लिया था उनके वंशजों में से यथार्थतः निष्ठावान मुसलमानों की सृष्टि करने में भी तीन ही पीढ़ियाँ लग गयीं। जो उम्मायद शासन विजेता के प्रभुत्व का उद्घाटक था, उसकी अवधि भी तीन पीढ़ी वाले काल द्वारा ही निश्चित हुई थी। मूलतः धर्मान्तरित लोगों के मुस्लिम रूप में पैदा हुए नाती पोतों को इतिहास के मंच पर लाने के लिए तीन पीढ़ियों की इस कालावधि का विक्षेप आवश्यक था। जब इस्लामी धार्मिक सिद्धान्तों के नाम पर उदासीन धर्मान्तरितों के धर्मपरायण मुस्लिम नाती पोतों ने लावदीशियाई (Laodicean) मुस्लिम अरब विजेताओं के लावदीशियाई मुस्लिम नाती

पोता का जेर करना चाहा तो अरब सताराहृण के उम्मायद गजट समस्त मुसलमाना की समानता के अब्बासाई व्याख्यानाआ द्वारा आरम्भ कर लिय गए।

यदि इस प्रकार यह सिद्ध हो जाता है कि तीन पीढ़िया का कारणानुबन्ध धम, वग एव राष्ट्रीयता के तीना क्षत्रा म सामाजिक परिवतन का नियमित मानसिक वाहन है ता यह देखकर भी आश्चय नही होना चाहिए कि इसी तरह का अभिनय चार पीढ़ियो के कारणानुबध या शृङ्खला न अन्तर्राष्ट्रीय क्षत्र म भी किया है। हम पहिले ही मालूम हो चुका है कि सभ्यता के बीच होने वाले सघर्षों के क्षत्र म एक बुद्धिजीवी वग की सृष्टि और अपने निर्माताओ के प्रति उसके विद्रोह क बीच की कालावधि का औसत ३ ४ उदाहरणो के आधार पर, प्राय १३७ वष का रहा है और यदि यह मान लें कि सामान्य युद्ध की वेदना चित्त (Psyche) पर उसस ज्यादा गहरी छाप डालती है जितना अनुपूरक युद्धो का अपक्षाकृत कोमल आगमन उस पर डालता है ता यह दखना कठिन नही होगा कि कसे चार पीढ़िया का कारणानुबन्ध भी एक युद्ध एव शान्ति चक्र की तरग-लम्बाई का निणय कर सकता है।

किन्तु यदि हम इस विचार का आधुनिक पाश्चात्य यूरोप क युद्ध एव शान्ति चक्रो पर लागू करें तो हम एक दीवार से टकरा जायगे और हम मालूम होगा कि 'अनुपूरक युद्ध अर्थात त्रिशवार्षिक युद्ध यद्यपि भौगोलिक अथ म मध्य यूरोप तक सीमित था किन्तु अपनी सकुचित भौगोलिक सीमा म वह सम्भवत कम नहीं बल्कि उससे अधिक विध्वसकारी था जितने कि वे सामान्य युद्ध थ जो इससे पूव एव बाद मे हुए।

जिन बाह्यत वास्तविक यद्यपि अनिश्चित नियमितताओ एव पुनरावतना का स्पष्टीकरण हम खोजना है यह युद्ध एव शाति ग्रह उनम से न तो अतिम है न दीघतम है। इनम से प्रत्येक शतवार्षिक या लगभग इतने ही वर्षों का चक्र ऐसी मालिका म एक अवधि—मीयाद—मात्र है जो सब मिलाकर किसी सभ्यता के भग हो जाने के बाद आने वाले सकटकाल का निमाण करती है और यह सकट काल अपनी बारी म एक सावभौम राज्य का निमाण करता है जसा कि हम हेलेनी एव सिनाई इतिहास म देखत ह। यह सावभौम राज्य भी उन लयो को प्रदर्शित करता है जिनक बारे म हम लिख चुके है। आरम्भ से अन्त तक सम्पूण प्रक्रिया म आठ सौ स लेकर हजार वर्षों तक की अवधि लग जाती है। क्या मानवीय व्यापार की नियमितताओं की मनोवैज्ञानिक व्याख्या जिससे अब तक हमारा काम अच्छी तरह चलता रहा है, यहा भी हमारे काम की सिद्ध होगी ? यदि हमारी दृष्टि म चित्त का बौद्धिक एव सकल्पात्मक तल ही चित्त का सवस्व होता तो हमारे जवाब का निषेधात्मक होना निश्चित ही था।

पाश्चात्य जगत म लेखक की पीढ़ी म मानसशास्त्र का पाश्चात्य विज्ञान अभी अपन शैशव म ही था फिर भी अगुवाओ न सर्वेक्षण इतनी पर्याप्त सीमा तक कर लिया था कि उनमे सी जी जुग यह सूचित करने मे सक्षम हुए कि जिस अवचेतन गहन या अगाध (Sub-conscious abyss) की सतह पर प्रत्यक व्यक्तिगत मानवीय व्यक्तित्व की सचेतन प्रज्ञा एव सकल्प तरते रहते है, वह कोई अमिश्र या अनन्तरित विप्लव

(Undifferentiated chaos) नही है वर एक ग्रथिल विश्व है जिसम मानसिक सक्रियता की एक तह के नीचे दूसरी तह मिलती जाती है। इनम मे जो तह उपरितल या सतह के निकटतम ज्ञात होती है वह है किसी भी स्त्री या पुरुष के अद्यनन जीवन माग म चलते हुए प्राप्त व्यक्ति व के व्यक्तिगत अनुभवा द्वारा निक्षपित यक्तिगत अवचेतन (Personal Subconscious)। एसा लगता है कि अभी तक जिस गहनतम तल तक अ वेषक पहुच पाये हैं वह है एक जातीय अवचतन (Racial Subconscious) जो किसी यक्ति की विशेषता नहीं है वर जो समस्त मानवप्राणिया मे प्राप्त है—यहा नक कि उसम जो आद्य बिम्ब (Primordial Images) अर्तहित है वे भी मानव जाति क उन सवनिष्ठ अनुभवो का प्रतिबिम्बित करन हैं जा यदि मनुष्य क पूणत मानवीय बनने के पूव नही ता कम स कम मानव जाति के शशव म पुजीभूत हो गये थे। इतना देख लन के बाद यह अनुमान करना कदाचित् बेतुका न होगा कि अवचेतन का सबक ऊपर एव सबके नाचे वाली जिन तहो का पता अबनक पाश्चात्य वज्ञानिक लगा पाये हैं उनके बीच एमी मध्यवर्ती तहें भी हो सकती ह जा न ता जातीय (रेशल) और न व्यक्तिगत अनुभवो द्वारा एकत्र का गयी हो, बल्कि किसी अधिवयक्तिक (Supra personal) किन्तु अधोजातिक (Infra racial) विस्तार के सामूहिक अनुभव न उन्ह वहां एकत्र किया हो। अनुभव की एसी तहें हो सकती हैं जो एक कुटुम्ब के लिए सामान्य हा एक समुदाय के लिए सामान्य हा अथवा एक समाज के लिए सामान्य हो और यदि आद्य बिम्बो के ऊपर क अगल स्तर पर समस्त मानव जाति क लिए सामान्य वा सवनिष्ठ अनुभव की तहें भी हो तो वे निश्चय हा ऐसे बिम्ब प्रमाणित हागी जो एक विशेष समाज की विशिष्ट लोकनीति (ethos) को यक्त करती हो। चित्त पर इनकी छाप सम्भवत अवधि की उस दीघता का कारण होगी जो कतिपय सामाजिक प्रक्रियाओ को अपना अभि यक्ति क लिए आवश्यक समझती हो।

उदाहरणाथ, जो सभ्यता वद्धि के उपक्रम मे हो उसक बच्चो क अवचेतन मानसिक जीवन पर अपनी गहरी छाप अकित करने म प्रकटत सक्षम एक एसा सामाजिक बिम्ब था ग्राम्य अधिराट राज्य की मूर्ति। और फिर तुरन्त यह कल्पना की जा सकती है कि जब इस मूर्ति न अपन भक्तो स ऐस कठोर मानवीय बलिदान लेने शुरू कर दिये जस कार्थेजियाइया (Carthaginians) न कभी बाल हैमन को अथवा बगालिया न जगन्नाथ (के रथ) को दिय हागे तो उसक हाथ का शिकार बन जिन लागा न खुद ही दानव का उत्पन्न किया था उन्ह अपन हृदया स इस दूषित मूर्तिपूजा को पकडकर बाहर फेकन क लिए तीन पीढियो के चक्र के एक हा कारणानुबन्ध या शृ खला के कटु अनुभवा की ही नही वर लगभग ४०० वर्षो की कालावधि के कटु अनुभवो की आवश्यकता थी। सहज ही यह कल्पना भी का जा सकती है कि जिस सभ्यता क विभग एव विघटन को 'सकट काल' न प्रकट कर दिया था उसक समस्त उपकरण से अपन का अलग कर लेने और उसी जाति के अथवा महत्तर धर्मो द्वारा उपस्थित भिन्न जातिया क किसी दूसरे समाज की छाप ग्रहण करने के लिए अपन को तयार करने म उन्ह ४०० वर्षो की ही नही बल्कि ८०० वर्षो या १०००

वर्षों की आवश्यकता भी हो जाती है। क्योंकि सम्भवत अवचेतन वितको एक सम्यता का बिम्ब उसम कही ज्यादा शक्तिमान प्रेरणा प्रदान कर सकता है जितना किसी ऐसे ग्रामराज्य का बिम्ब कर सकता है जिसम सम्यताए राजनीतिक स्तर पर तबतक प्रचलित होकर जुडी रहती हैं जबतक कि ये किसी सावभौम राज्य म प्रविष्ट नही हो जाता। इसी प्रकार मानव दृष्टि के इस कोण से हम समझ सकते हैं कि किस प्रकार सावभौम राज्य एक बार स्थापित हो जाने के बाद अपनी वारी कभी कभी भूतपूव प्रजाओ पर भी अपना प्रभाव बनाये रखने म सफल हो जाते हैं। यहाँ तक कि कोई कोई सावभौम राज्य अपनी उपयोगिता तथा शक्ति खो देने के बाद, और ठीक वस ही सतापकारी रूप म बोझिल दुस्वप्न बन जाने के बाद, जस पूववर्ती वे ग्राम्यराज्य थे जिन का अत करने के लिए उसने जन्म धारण किया था, अपने वास्तविक उच्छेदकों के हृदयों पर पीढ़ियों तक, और कभी-कभी शताब्दियों तक अपना प्रभाव छोड जाते हैं।

> 'एक वयस्क पोढ़ी के प्रतिनिधिगण जिन बाह्य चिन्ताओ का अनुभव करते हैं—चिन्ताएँ जो अनुभवकर्ताओं की सामाजिक स्थिति से सीधे सीधे प्रभावित होती हैं—उनमें और इन लोगों की उदीयमान पोढ़ी की सन्तति की अन्तमुख, स्वप्नग्रस्त चिन्ताओ के बीच जो सम्बन्ध होता है वह एक विस्तृत क्षेत्र में असंदिग्ध रूप से एक महत्वपूण दृश्यप्रपच (फिनामेना) है। व्यक्ति के मानसिक विकास एवं ऐतिहासिक परिवतन की गति दोनों पर एक के बाद एक आने वाली पीढ़ियों की मालिका की जो छाप पडती है वह कुछ ऐसी वस्तु है कि उसे आज की अपेक्षा तब ज्यादा अच्छी तरह समझने लगेंगे जब हम पीढ़ियों की लम्बी शृंखला की दृष्टि से पयवेक्षण करने के और अपनी ऐतिहासिक चिन्तना के लिए आज से अधिक समथ हो जायेंगे।'[1]

यदि सम्यताओ के इतिहासो म प्रचलित सामाजिक कानून अवचेतन मन के किसी अवव्यक्तिक (इन्फ्रा पसनल) स्तर को नियन्त्रित करने वाले मनोवज्ञानिक नियमो के प्रतिबिम्ब हैं तो इससे भी इसका स्पष्टीकरण हो जाता है कि क्या ये सामाजिक नियम जसा कि हमने भी इन्ह देखा है किसी विखडित सम्यता के इतिहास की विघटनशील अवस्था मे उससे कही ज्यादा स्पष्ट और कही अधिक नियमित होने है जितना कि वे उसकी पूवगामी उदयावस्था म होते हैं।

यद्यपि उदयावस्था तथा विघटनावस्था दोनो का चुनौती एव उत्तर के शक्ति परीक्षणों की एक मालिका के रूप म विश्लेषण किया जा सकता है, किन्तु चाहे हम चुनौतियों की अनुक्रमिक अभिव्यक्तियो के मध्यान्तर की माप करें अथवा उनके प्रभाव

[1] इलियास, एन 'यूबरडेन प्रोजेस डर सिविलाइजेशन' (Uberden Prozess der Civilisation, Vol II Wandlungen der Geselschaft Entwurf ZU einer Theovie der Civilizatiors (Basel 1939 Haus Zum Falken) p 441

कारी उत्तरो क मिलने के बीच के काल की माप कर इतना तो हमन दख लिया है कि किसी एसी मानक-तरग नम्बाइ को खोज निकालना असम्भव है जो उन सब अनु क्रमिक शक्ति परीक्षणो मे एक समान निहित हो जिनके बीच से होकर सामाजिक विकास की क्रिया होती है। फिर हमन यह भी दख लिया है कि उदयावस्था म य अनुक्रमिक चुनौतिया और उनक अनुक्रमिक उत्तर असीमित रूप से विविध होत हैं। इसक विपरीत हमन यह भी देखा है कि विघटनावस्था की अनुक्रमिक श्रणिया एव एसी ही समान चुनौती को बार बार उपस्थित करती रही हैं। यह चुनौती बार बार इसीलिए उपस्थित होती है कि विघटनशील समाज उसका सामना करने म बराबर असफल रहता है। हमने यह भी मालूम किया है कि सामाजिक विघटन के सभी अतीतकालिक मामलो म, जिनका हमन सकलन किया है वही अनुक्रमिक अवस्थाए उसी क्रम म बार बार उपस्थित होती हैं और प्रत्यक अवस्था (स्टेज) लगभग उतनी ही काला वधि की होती है। इसलिए सब मिलाकर विघटनावस्था प्रत्यक मामल मे एक सी कालावधि वाली एक सी प्रक्रिया हमार सामन उपस्थित करती है यहा तक कि सामाजिक विभग क घटत ही उदयावस्था की विविधता एव विभेदो मुखी प्रवृत्ति का स्थान एक ऐसी एकरूपता का प्रवृत्ति ले लेती है जो बाह्य हस्तक्षप एव आन्तरिक अवज्ञा दोनो पर देर-सबर विजय प्राप्त करके अपनी शक्ति का परिचय देती है।

उदाहरणाथ, हमन यह भी दखा है कि जब पहिले सीरियाई एव बाद मे भारतीय सावभौम राज्य अकाल म ह्रा, सावभौम राज्य का मानक जीवनावधि के पूण हान क पहिल ही, आक्रामक यूनानी सभ्यता द्वारा विखण्डित कर दिय गय तो किस प्रकार विजातीय समाज निकाय के विक्षोभकारी प्रभावा क होत हुए भी आप्लावित समाजो का तब तक अन्त नही हुआ जबतक कि उन्होन भजित समाज के विघटन की नियमित मजिल पूरी नही कर ली। क्रम भगावस्था म पुन प्रवेश करक तथा पुनगठित सावभौम राज्य के रूप म व्यक्त होकर वे एसा तबतक करत रह जबतक कि उनकी सामान्य कालावधि पूण नही हो गयी।

सामाजिक विघटन क इस दृश्य प्रपच की नियमितता एव एकरूपता तथा सामाजिक उत्थान क दृश्य प्रपच की अनियमितता एव विविधता के बीच की इस आश्चयजनक विपरीतता का इस अध्ययन म एतिहासिक तथ्य के रूप म बार बार उल्लख किया जा चुका है किन्तु अभी तक उसक स्पष्टीकरण का कोई प्रयत्न नहीं हुआ है। वतमान खण्ड म जिसका विषय मानवीय व्यापार म नियम (कानून) एव स्वतन्त्रता के बीच का सम्बन्ध है, हमारे लिए समस्या का ऊहापोह करना आवश्यक हो गया है। चित्त या मन की सतह पर के चेतन व्यक्तित्व और उसक नीचे प्रच्छन्न मानसिक जीवन के अवचेतन स्तरो की प्रवृत्तियो म जो अन्तर है उसी मे इस समस्या के समाधान की कुजी ढूढी जा सकती है।

चेतना क उपहार रूप म जो विशिष्ट शक्ति प्रदान की गयी है वह है चुनाव करन की स्वतन्त्रता और जब हम मानत हैं कि समानुपातिक स्वतन्त्रता उत्थान काल की एक विशेषता है तो जहा तक इन परिस्थितियो म अपन भविष्य का निणय करने

मे मानव प्राणी रहते हैं वहा तक यही आशा की जाती है कि वे जिस मार्ग का अनुसरण करेंगे वह वस्तुत और जैसा कि दिखायी भी पड़ता है स्वरूपत अनियमित होगा। मानव यह कि वह प्रकृति के नियम-कानून की अवज्ञा करनेवाला होगा। इस प्रकार स्वतन्त्रता का दावा प्रकृति नियम को अपने से दूर ही रखता है परन्तु जहा तक यह दो कठोर बातो की पूर्ति पर स्थिर है वहा तक वह भी पराश्रयी है। इनमे से पहली बात यह है कि चेतन व्यक्तित्व मन के अवचेतन अधोजगत् को सतत एव प्रभावी के नियन्त्रण मे रखे। दूसरी बात यह है कि जो होमोसेपियन (Homo Sapiens) मानव यात्रा के पूर्व सामाजिक प्राणी था और सामाजिक प्राणी बनने के भी पूर्व यौन जीव (Sexual Organism) था उसके भाग्यवान् जीवन मे उसे जिन अन्य चेतन व्यक्तियो के साथ जीना था 'उनके साथ एकता मे ही निवास करने का उपाय करना आवश्यक था। परन्तु सच पूछे तो स्वतन्त्रता के प्रयोग के लिए ऊपर जो दो बातें बतायी गयी हैं वे वस्तुत एक-दूसरे से अविच्छेद्य हैं, क्योंकि यदि यह सत्य है कि जब धूर्त लड़ते हैं तो ईमानदार आदमी होश मे आ जाते हैं तो यह भी कुछ कम सत्य नही कि जब लोग लड़ते हैं तो अवचेतन मन उनमे से प्रत्येक एव सबके ही नियन्त्रण से बाहर चला जाता है।

इस प्रकार चेतना का जो दान हमे मिला है उसका नियुक्त कार्य—'मिशन' तो है मन की अवचेतन गहराइयो पर शासन करनेवाले प्रकृति के नियम-कानून से मानवात्मा को मानव प्रेरणा को मुक्त करना किन्तु यह एक व्यक्तित्व के विरुद्ध दूसरे व्यक्तित्व के घातप्रतिघात संघर्ष मे अस्त्र रूप बन जाने के कारण, जो स्वतन्त्रता उसका मूल प्रयोजन (raison d etre) है उसका दुरुपयोग करके अपने को ही पराजित कर देती है। इस दु खद विपर्यय की व्याख्या के लिए हम बासुए (Bossuet) की उस अपवित्र कल्पना का सहारा लेने की आवश्यकता नही जिसमे कहा गया है कि एक सर्वशक्तिमान किन्तु ईर्ष्यालु ईश्वर के विघ्नकारी हस्तक्षेप के कारण मानवेच्छाए एक दूसरे को निरस्त करके शक्तिरहित या निष्फल कर देती है इसका स्पष्टीकरण मानव चित्त या मन की सरचना एव प्रक्रिया से ही हो जाता है।

(३) इतिहास मे प्रचलित प्रकृति नियम अनम्य है या नियन्त्रणीय?

यदि हमारे उपर्युक्त सर्वेक्षण ने हमे विश्वास दिला दिया है कि मानवीय व्यापार प्रकृति के कानून के अधीन हैं और इस क्षेत्र मे कानूनो का प्रचलन होने की बात की, कम से कम कुछ दूर तक तो व्याख्या की ही जा सकती है, तो हमे अब इस बात की जाच शुरू करनी चाहिए कि प्रकृति के जो नियम कानून मानव इतिहास मे प्रचलित हैं वे अननुनम्य अपरिवर्तनशील है या उन पर नियन्त्रण स्थापित किया जा सकता है। यदि हम यहा मानवीय प्रकृति के कानूनो पर विचार करने के पूर्व मानवेतर प्रकृति के कानूनो पर विचार करने की अपनी पूर्व कार्य प्रणाली का पालन करें तो हमे मालूम होगा कि जहा तक मानवेतर प्रकृति के कानूनो का सम्बन्ध है हम पूर्व अध्याय मे ही प्रश्न का उत्तर दे चुके है।

सक्षिप्त उत्तर यह है कि यद्यपि मानवेतर प्रकृति के किसी कानून की धाराओ को सशोधित करने या उसकी प्रक्रिया स्थापित करन म मानव अक्षम है किन्तु जिस रेखा पर चलने से, ये कानून स्वय उसके आशय क साधक बन जाते हैं उस पर चल कर वह इन कानूनो का बोझ कम अवश्य कर सकता है। जब कवि ने लिखा था—

When Men of Science find out omething more,
We shall be happier than we were before

जब कुछ और प्राप्त कर लेंगे विज्ञानों के नेतागण।
पहिले से कुछ और सुखी तब हो जायेंगे हम सब जन।।

तब उसका यही अभिप्राय था।

अपने मामला म मानवेतर प्रकृति क कानूना के बोझ को कम करने मे पाश्चात्य मानव ने जो सफलता पायी है उसका प्रमाण बीमा के प्रीमियम की दरो मे कमी हो जान मे मिलता है। नक्शो म सुधार हो जाने तथा जहाजा पर बेतार के तार एव राडार (सवदर्शी यत्र) लग जाने के कारण उनके डूबने टकराने-टूटने का खतरा कम हा गया है, दक्षिण कलीफोर्निया के धुवादानो एव कनेक्टीकुट घाटी के पारदर्शी आवरणो ने तुषारपात से होने वाली फसल की हानियो को कम कर दिया है, टीका लगाने तथा कीटाणुनाशक तरल पदार्थों के छिडकाव के साधना से फसल वृक्षा एव पशुओ को कीडों से पहुचनेवाली हानि कम हो गयी है। अनेक प्रणालियो से मनुष्य की बीमारियाँ भी कम की गयी हैं और जीवनावधि की सीमा बढ गयी है।

जब हम मानवीय प्रकृति के नियमो के क्षेत्र की ओर आते हैं ता देखत है कि यहा भी यही कहानी, किंचित् शिथिल वाणी म कही जा रही है। शिक्षण एव अनुशासन मे सुधार हो जाने के कारण अनक प्रकार की दुघटनाआ के खतरे कम हो गये हैं, चोरिया भी अब उस सामाजिक वातावरण के अनुसार घटती बढती पायी जाती हैं जिसमे चोरा का जीवन व्यतीत होता है इसलिए व भी सामाजिक सुधार क विविध उपायो-द्वारा दूर की जा सकती है।

जब हम पाश्चात्य आर्थिक क्रियाशीलता के उन एकान्तर ज्वारभाटों पर विचार करते हैं जिन्हें व्यवसाय चक्र (ट्रेड साइक्लिस) के नाम से पुकारा गया है, तो हम उनके पेशेवर छात्रो,को नियन्त्रणीय एव अनियन्त्रणीय घटका (फक्टस) क बीच विभेद रेखा खाचत हुए देखत हैं। एक विचार के लाग तो बढकर यहा तक कहते थे कि चक्र साहूकारो—बकरो के जान-बूझकर किये हुए कार्यों के परिणाम हैं। हा बहुमत इसी पक्ष म था कि साहूकारो के तात्त्विक कार्यों ने इस पर उससे कही कम प्रभाव डाला है जितना कि मानस के अवचेतन अधस्तरो से उमडने वाली कल्पना एव अनुभूति के अनियन्त्रित अभिनय ने डाला है। बक की वृत्ति की अपेक्षा हमारी अधिक परिचित नारीवृत्ति से उस दिशा का अधिक उत्तम सकेत प्राप्त होता है जिधर इस क्षेत्र के कुछ सर्वोच्च विशेषज्ञो के मस्तिष्क प्रभावित थे—

"धनार्जन की तुलना में धन-व्यय के पिछडी कला होने का एक कारण तो यह है कि अब भी धन व्यय करने की सघटना का सबसे प्रभावशाली घटक,

कुटुम्ब ही बना हुआ है जबकि धनार्जन के क्षेत्र में एक अधिक संघटित घटक-द्वारा कुटुम्ब को अनेक अंशो में अपदस्थ कर दिया गया है। जो गृहिणी ससार की अधिकाश खरीददारी करती है, वह कुछ व्यवस्थापिका के रूप में अपनी कुशलता के कारण नहीं चुनी जाती, न अपनी अकुशलता के कारण वह पदच्युत ही की जाती है। और यदि वह अपनी कुशलता सिद्ध ही कर दे तो भी इसके कारण दूसरे कुटुम्बों पर उसका नियन्त्रण स्थापित होने का कोई सयोग नहीं उपस्थित होता। यह आश्चर्य की बात नहीं है कि खपत की, उपयोग की कला मे ससार ने जो कुछ सीखा है उसमें खपत करने वालों या उपभोक्ताओ की अभिक्रमशीलता की अपेक्षा अपनी चीजों के लिए बाजार पर कब्जा करने के लिए प्रयत्नशील निर्माताओं की अभिक्रमशीलता की ही देन अधिक रही है।"[1]

इन विचारो से पता चला कि व्यापार कार्य मे जो उतार चढाव होते हैं उन पर तब तक नियन्त्रण नही स्थापित किया जा सकता जबतक कि कुटुम्ब उपभोग या खपत के घटक बने रहेंगे और उत्पादन के घटक स्वतन्त्र प्रतियोगिता करने वाले ऐसे व्यक्ति फर्म या राज्य बने रहेंगे जिनके परस्पर विरोधी सकल्पो के कारण आर्थिक क्षेत्र अवचेतन मानसिक शक्तियो के अभिनय के लिए खुला रहेगा। साथ ही इसके लिए कोई कारण नही दिखायी पडता कि हाइक्सोस शासन के अन्तिम दिनो मे अधिक उपज के समय आगामी दुष्काल के लिए व्यवस्था करके हिब्रू पद्रियार्क जोजेफ ने जो महती सफलता प्राप्त की थी उसका अनुकरण उत्तरकाल के आर्थिक रूप से पश्चिमीकृत उस ससार मे क्यो न किया जाय जो समस्त धरती पर फैल गया है। इसका कोई कारण नही जान पडता कि क्या एक दिन कोई एतिहासिक अमेरिकन या रूसी जोजेफ मानव के आर्थिक जीवन की समग्र राशि पर ऐसा केन्द्रीय नियन्त्रण न स्थापित कर जो शुभ हो या अशुभ पर जो अपनी प्रभावकारिता की दृष्टि से मूसाई या मार्क्सवादी कल्पना की बडी से बडी उडानो को भी पीछे छोड जायगा।

जब हम चन्द वर्षों की अवधि वाले व्यवसाय चक्रो से तिहाई या चौथाई शती वाले पीढियो के चक्रो (जेनेरेशन साइक्लिस) मे प्रवेश करते है तो दिखायी पडता है कि प्रत्येक सास्कृतिक उत्तराधिकार मे जिस अपचय या छीजन की प्रवृत्ति होती है उसमे भी भौतिक स्तर पर मुद्रण दुर्लभ पाडुलिपियो या अभिलेखो के मशीन द्वारा फोटो अनुरूपण तथा अन्य प्रविधियो ने और आध्यात्मिक स्तर पर शिक्षण प्रसार ने बहुत कमी कर दी है।

अभी तक तो हमारी वर्तमान जाच के परिणाम उत्साहवर्द्धक रहे है किन्तु जब हम विभग एव विघटन के आठ या दस शती तक घूमने वाले दु खपूर्ण चक्र जैसे बहुत लम्बी तरग लम्बाइयो के सामाजिक उपक्रमो पर विचार आरम्भ करते हैं तो हमारे सामने एक ऐसा प्रश्न उठ खडा होता है जो एक ही पीढी के अन्दर होने वाले द्वितीय विश्व

[1] मिचेल, डब्लू सी 'बिजनेस साइक्लिस दि प्राब्लेम ऐंड इट्स सेटिंग' (न्यूयार्क, १९२७, नेशनल ब्यूरो आफ इकोनामिक रिसर्च, इक) पृष्ठ १६५ ६६

युद्ध के बाद पाश्चात्य जगत के अधिकाधिक मस्तिष्कों के सामने बार बार खड़ा होता रहा है। जब कोई सभ्यता टूट जाती है तो क्या गलत मोड का कटु अन्त तक अनुसरण करना ही उसकी किस्मत मे बदा होता है ? या वह वापिस लौट सकती है ? इस लेखक के पाश्चात्य समकालीनो ने सभ्यता के उपक्रम मे गतिमान मानव इतिहास के तात्विक अध्ययन मे असदिग्ध रूप से जो दिलचस्पी ली थी उसका शायद सबसे शक्तिशाली व्यावहारिक हेतु यह था कि वे अपनी ही सभ्यता के इतिहास मे ऐसे अवसर पर अपना एतिहासिक अभिनय करना चाहते थे जिसे वे परावर्तन बिन्दु (टर्निंग प्वाइंट) मानते थे। इस सकट मे पाश्चात्य राष्ट्र, और शायद अमेरिका राष्ट्र सबसे अधिक, जिम्मेदारी का बोझ महसूस करते थे, और पथ प्रदर्शन के लिए प्रकाश हेतु अतीत अनुभवो की ओर देखने मे वे प्रज्ञान (विज़डम) के एक मात्र एसे स्रोत की ओर उन्मुख थे जो मानव जाति की सेवा के लिए उपलब्ध रहा है। किन्तु उन्हे किस प्रकार काम करना चाहिए इसके बारे मे वे प्रकाश के लिए इतिहास की ओर तबतक नहीं देख सकते थे जबतक कि एक आरम्भिक सवाल न पूछ लेते क्या इतिहास न उन्हे कोई ऐसा आश्वासन दिया है कि वे सचमुच निर्णय करने मे स्वतन्त्र हैं ? अन्त मे तो इतिहास की शिक्षा यह नही जान पडती कि एक चुनाव दूसरे से अच्छा ही होगा बल्कि यह जान पडती है कि चुनाव करने मे स्वतन्त्र होने की उनकी भावना एक भ्रममात्र है और वह अवसर यदि कभी ऐसा अवसर रहा हो तो, जब चुनाव प्रभावशाली सिद्ध हो सकते थे अब बीत गया और उनकी पीढी एच ए एल फिशर की उस अवस्था से बाहर निकल चुकी है जब किसी भी चीज के बाद कोई भी चीज घटित हो सकती थी और जिसे उमर खयाम ने अपनी निम्नलिखित पक्तियो मे चित्रित किया है—

(अंग्रेजी)

दि मूविंग फिंगर राइटस, एण्ड हैविंग रिट,
मूव्स आन नार आल दाई पाइटी नार विट
शैल ल्योर इट बैक टु कैंसिल हाफ ए लाइन,
नार आल दाई टियर्स वाश आउट ए वर्ड आफ इट।[1]

(हिन्दी)

चपल अगुली अचल लेख लिख, अविचल आगे बढ जाती
शुचिता या पटुता तेरी सब मोहित उसे न कर पाती,
अकित अर्द्ध पक्ति परिवर्तन का न कभी प्रस्तुत होती,
अविरल अश्रु धार भी तेरी अक्षर एक नहीं धोती।[2]

यदि हम सभ्यताओ के इतिहासो-द्वारा प्रदत्त अद्यतन साक्ष्य के प्रकाश मे इस प्रश्न का उत्तर देने की चेष्टा करें तो हमे कहना होगा कि अवरोध या विभग (ब्रेकडाउन) के चौदह स्पष्ट मामलो मे से हम एक भी ऐसे उदाहरण की ओर इगित नही कर सकते

[1] फिटजेरल्ड कृत रुबाइते उमर खयाम के अंग्रेजी अनुवाद से।
[2] स्व० केशवप्रसाद पाठक कृत रुबाइयात के हिन्दी अनुवाद से।

जिसमे भातृघाती युद्ध की व्याधि युद्धकारी राज्या म से एक की छोड और सबक निर्मूलन स रम कठोर साधन-द्वारा दूर की जा सकी हो। किन्तु इस भयाार तथ्य का स्वीकार करत हुए भी हम उसक कारण निराश नही होना चाहिए क्योकि तक का आगमनात्मक प्रणाली (Inductive method) एक निषेधात्मक साध्य का सिद्ध करने के लिए अत्यन्त कुख्यात अपूर्ण साधन है। फिर इसम सिद्धावलोकन क लिए जितना ही कम घटनाएं होती है यह उतना ही दुबल होता है। ६००० से अधिक वर्षों की कालावधि म प्राय चौन्ह सभ्यताओ का जो अनुभव हम हुआ है उसम इस सम्भावना के विरुद्ध कोई बडा शक्तिमान पूर्वानुमान् नही स्थापित हो सकता कि जहा चुनौती का उत्तर देने म य अग्रगामी सभ्यताए दुदशा को प्राप्त हुई वहा समाज म अपेक्षाकृत इस नवीन रूप का कोई दूसरा प्रतिनिधि किसी दिन एक अभूतपूर्व आध्यात्मिक विराम क लिए अभी तक अज्ञात माग खोज निकालने म सफलता प्राप्त कर लगा और यह सफलता उससे कही कम खर्चीले साधन द्वारा प्राप्त करेगा जितना खर्चीला कि भातघाती युद्ध के सामाजिक रोग का शमन करने क लिए एक सावभौम राज्य का बलात् लागू किया जाना है।

यदि इस सम्भावना को मन मे रखते हुए हम एक बार पुन पीछे की ओर घूमकर उन सभ्यताओ क इतिहासो पर दृष्टि डालें जो अवरोध स लेकर अन्तिम विघटन तक व्यथामाग की सम्पूण लम्बाई को नाप चुकी हैं तो हम देखेग कि कम से कम उनमे से कुछ ने तो एक रक्षा करने वाले विकल्प समाधान क ध्यान कर लिये हैं, यद्यपि किसी को उसे प्राप्त करने में सफलता नही मिली है।

उदाहरणाथ हलेनी या यूनानी जगत् म होमोनोइया (Homonoia) या मेल जोल की दृष्टि दिखायी पडती है,—जो वह कर सकती थी जिसे हिंसक बल कभी न कर सकता था। यह मत्री दृष्टि ४३१ ४०४ ईसा-पूव एथीनो-पेलोपोनाशियाई युद्धारम्भ क साथ आन वाले सकटकाल के आध्यात्मिक दबाव के कारण कतिपय दुलभ हेलेनी आत्माओ द्वारा असन्दिग्ध रूप से ग्रहण की गयी थी। आधुनिकोत्तर पाश्चात्य जगत् म वही आदश १९१४ १८ के महायुद्ध के बाद राष्ट्रसघ (लीग आफ नेशस) क रूप मे तथा १९३९ ४५ क युद्ध क बाद सयुक्त राष्ट सघटन के रूप म मूर्तिमान हुआ। विघटन क बाद *सिनाई समाज म प्रथम समाहरण हुआ। इस समाहरण के बीच सिनाई इतिहास म* आचार एव अनुष्ठान की पारस्परिक सहिता के पुनरुदय क हेतु कनफ्यूशियस न जो पवित्र उत्साह प्रदर्शित किया तथा जिस प्रकार ऊ वाइ (wu wei) की अवचेतन शक्तिया की स्व प्रसूत प्रक्रिया क लिए मुक्त क्षेत्र छोड देने मे लाओ त्जे क शान्तिवादी विश्वास ने काम किया वह अर्थात दोना ही बातें अनुभूति के ऐसे स्रोता को स्पश करने की लालसा से प्रेरित हुई थी जो आध्यात्मिक सामञ्जस्य की मगलकारिणी शक्ति के द्वार खोल दे। उस समय इन आदर्शो का कायशील संस्थाओ एव रीतियो क रूप मे मूर्तिमान करने के एकाधिक प्रयत्न किये गये थे।

राजनीतिक स्तर पर उद्देश्य था दोनो कठोर अतियो के बीच अर्थात् ग्राम्य राज्या क वीरान कर देनेवाले झगडो एव तीव्र आघात द्वारा बलात लागू की गयी

वीरानी की शान्ति के बीच एक मध्य भाग की खोज करना। जिन वज्रकठोर 'साइम्पुलगेडो (Symplegades)'[1] के टकराते जबडो ने उनके जलयात्रा क लिए प्रयत्नशील प्रत्येक जलयान को ध्वम्न कर दिया था उनका सामना करने की सफलता का पुरस्कार शायद वही आर्गोनाटो (Argonauts) का अबतक मानव जाति द्वारा नौपरिवहन के लिए अपरिचित खुले समुद्रो म फट पडना था। किन्तु इतना तो स्पष्ट हो गया था कि यह समस्या किसी सघीय विधान (फेडरल कास्टिटयूशन) के जादुई अभिलेख से हल नही की जा सकती। समाज निकाय के ढाचे पर लागू की जाने वाली निपुण से निपुण राजनीतिक इजीनियरी भी आत्माओ की आध्यात्मिक मुक्ति के विकल्प का स्थान नही ले सकती। राज्यों के युद्ध अथवा वर्गों क सघर्ष के निकटस्थ कारण एक आध्यात्मिक व्याधि के लक्षण मात्र थ। अनुभव की पुजीभूत पूजी ने बहुत पहिले ही यह प्रदर्शित कर दिया था कि दुष्टात्माओ के स्वय अपने को और एक दूसरे को दु ख पहुँचाने से कोई सस्था या रीति रोक नही सकती। यदि सभ्यता की प्रक्रिया म ढलते मानव का भविष्य, सिर पर चमकते एक अनुपलब्ध एव अदृश्य शिला फलक (ledge) के सामने खडी खतरनाक सीधी चट्टान पर कठोर उत्क्रमण के लिए इस शिखर के नष्ट नियन्त्रण की पुन उपलब्धि पर ही निभर है तो यह भी उतना ही स्पष्ट है कि इस समस्या का निणय मनुष्य के अपने साथ एव अपने सगी मानवो क साथ के सम्बन्ध पर ही निभर नही है वर सबसे अधिक उसके उद्धारक ईश्वर पर निभर है।

1 साइम्पुलगेडस काला सागर के प्रवेश द्वार पर स्थित दो चट्टानें थीं, जो बीच-बीच में एक दूसरे से टकरा-टकरा जाती थीं किन्तु आर्गो जहाज क गुजरते समय अपन अपने स्थान पर स्थिर हो जाती थीं। दो प्रतियोगी व्यक्तियों या पक्षों के बीच का माग। —अनुवादक

प्रकृति के नियमो के प्रति मानव-स्वभाव की उदासीनता

[दि रिकालसिटरस आफ ह्यूमन नेचर टु लाज आफ नेचर]

अपने मामलो पर नियन्त्रण रखने की मनुष्य की योग्यता के बारे म हमने जो साक्ष्य एकत्र किये हैं—फिर चाह वे प्रकृति क नियमो की प्रवचना के रूप मे हो अथवा अपनी सेवा म उनका उपयोग कर लेने के रूप म हो—उनस यह प्रश्न उठ खडा होना है कि क्या ऐसी कुछ परिस्थितियाँ नही हो सकती जिनम मानवीय व्यापार पर प्रकृति के नियम-कानून का बिल्कुल प्रभाव नही पडता। हम इस सम्भावना का अन्वेषण सामाजिक परिवतन की गति या दर की जाँच के रूप म आरम्भ करेंगे। यदि यह सिद्ध हो जाता है कि गति के वेग मे विभिन्नता है तो इसस एक सीमा तक प्रमाणित हो जायगा कि कम से कम काल आयाम (टाइम डाइमेंशन) मे तो मानवीय व्यापार प्रकृति के नियमो के प्रति विमुख हैं।

यदि यह सिद्ध हो जाता है कि इतिहास का वेग सब परिस्थितियों मे एक-सा, स्थिर रहता है—मेरा मतलब है इस अथ मे कि प्रत्येक युग या शताब्दी मनोवैज्ञानिक एव सामाजिक परिवतन की एक निश्चित एव समान प्रमात्रा (क्वटम) ही उत्पन्न करती दिखायी जा सके—तो इससे यह निष्कर्ष निकल आयेगा कि हम या तो मनोवैज्ञानिक सामाजिक मालिका की प्रमात्रा का मूल्य मालूम कर लें या फिर काल मालिका मे कालावधि का मूल्य निकाल लें तो हम दूसरी मालिका की सम्बन्धित अज्ञात मात्रा के विस्तार का हिसाब लगाने योग्य हो जायेंगे। यह धारणा मिस्री इतिहास के कम से कम एक प्रतिष्ठित छात्र द्वारा प्रकट की गयी है। उन्होने ज्योतिष द्वारा उपस्थित की गयी कालक्रमानुसारिणी निथि (क्रानोलाजिकल डेट) को इस आधार पर अस्वीकार कर दिया कि उस स्वीकार करन का अथ, उनके लिए इस असाध्य बात को स्वीकार कर लेना होगा कि मिस्री जगत् म सामाजिक परिवर्तन का वेग बाद वाले दो सौ वर्षों के युग मे उससे कही अधिक गतिमान था जितना कि वह इतने ही लम्बे इसके ठीक पहिले वाले युग म था। किन्तु यह प्रदर्शित करने के लिए अनेक परिचित उदाहरण सामन रखे जा सकते है कि जिस परिकल्पना से वह मिस्री विद्या का विशेषज्ञ कतराता था वह वस्तुत एक ऐतिहासिक तथ्य है।

उदाहरण लीजिए हम जानते हैं कि एथेंस का पार्थेनन पाँचवी शती ईसापूव

में हैड्रियन का ओलिम्पियन ईसा की दूसरी शती म और कुस्तुनतुनिया का सट सोफिया गिर्जाघर छठी शती ईसवी मे निर्मित किये गय थे। जिस सिद्धात पर हमारे उक्त मिस्री विशेषज्ञ ने अपना पक्ष खडा किया है उसके अनुसार तो इन प्रथम एव द्वितीय भवनो के निर्माण मे उसस कही लघु मध्यान्तर होना चाहिए जितना कि दूसरे एव तीसरे भवनो के निर्माण काल के बीच है क्योकि पहिले और दूसरे भवन जबकि बहुत कुछ एक ही शली के हैं तब दूसरे एव तीसरे बिल्कुल भिन्न शलियो पर बनाये गय हैं। किन्तु कतिपय अखण्डनीय तिथियां बताती है कि इस मामले मे दो मध्यान्तरो म म अपेक्षाकृत लघु मध्यान्तर विभिन्न शलियो पर बनी दूसरी-तीसरी इमारतो के बीच ही था।

यदि हम पश्चिम में साम्राज्य के अन्तिम दिनो के रोमी सनिक पवित्र रोमन सम्राट ओटो प्रथम के सवसन सनिक एव बेयू (Bayeux) चित्र-यवनिकाओ पर अकित नामन सरदारा के उपस्करणा (equipments) के बीच के कालान्तरो का हिसाब लगान मे पहिले से ही मान लिये गये इस सिद्धात का विश्वास करें तो इसी प्रकार विपथगामी हो जायगे। इस बात का विचार करते हुए कि ओटो के वीरो के गोलक बर्म एव चतुष्कोण रिम वाले कलगीदार शिरस्त्राण पिछले रोमन सम्राट मजोरियन के सनिको के उपस्करणो के ही रूपान्तर मात्र थे, जबकि विजेता विलियम क सनिक सर्मेशियाई शकुकाकार (conical) शिरस्त्राणो शल्ककवच (scale armour) के कोटो तथा पतगाकृति ढालो से सज्जित थे। परिवतन की गति मे अपरिवतनीयता की परिकल्पना यहाँ भी हम, तथ्यो के होते हुए, इस अनुमान की ओर ल जायगी कि ओटो प्रथम (राज्यकाल ९३६ ७३ ई) और विजेता विलियम (नामण्डी म राज्यकाल १०३५-८७ ई) के बीच का अन्तर निश्चय ही उससे ज्यादा होना चाहिए जितना मेजोरियन (राज्यकाल ४५७ ६१ ई०) एव ओटो के बीच का है।

इसी प्रकार जो कोई १७०० ई एव १९५० ई म पहिने जाने वाले मानव नागरिक पाश्चात्य पुरुष परिधान का सिंहावलोकन करेगा वह एक ही झलक मे देख लेगा कि १९५० के कोट, वेस्टकोट टाउजर (पतलून) एव छाता १७०० ई के कोट, वेस्टकोट, ब्रिचेज एव खड्ग के रूपान्तर मात्र हैं और दोना १६०० इ के डबलेट एव ट्रक होज परिधानो से बिल्कुल भिन्न हैं। इस उदाहरण म, जो पहिले के दोनों उदाहरणा से विपरीत प्रकार का है प्रथम एव लघुतर कालावधि उत्तरकालिक एव लम्बे युग की अपेक्षा कही ज्यादा परिवतन का प्रदशन करती है। ये भावनाकारिणी कथाए हम चेतावनी देती हैं कि परिवतन की गति की अपरिवतनीयता वाली परिकल्पना को उम समयान्तर का अनुमान करने का आधार नहीं बनाना चाहिए जो मानवीय अधिवास के मलबे की अनुक्रमिक तहो या परतो को किसी ऐसे प्रदेश मे पुजीभूत होने मे लगेगा जिसका इतिहास, लिखित विवरणो द्वारा प्रस्तुत कालानुसार तिथियो के अभाव मे, केवल पुरातत्त्वविद् के फावडे स निकाली हुई सामग्री के आधार पर ही लिखा जाना है।

इस परिकल्पना पर हमनें जो प्रारम्भिक आक्रमण किया है उसकी पुष्टि अब हम कुछ उदाहरण देकर करेंगे। पहिले हम तीव्र गति वाले फिर पिछडी गति वाले एव

अन्त मे ऐसे उदाहरण लेंगे जिनमे गति क्षिप्रता एव शिथिलता के बीच घूमा करती है।

क्षिप्र गति का एक परिचित उदाहरण है—क्रान्ति की घटना। जसा कि हम इस अध्ययन मे किसी पूर्व सन्दर्भ म देख चुके हैं यह दो एस समुदायो के बीच होने वाली टक्कर से उत्पन्न एक सामाजिक गतिशीलता है जिनम से एक दूसरे की अपेक्षा मानवीय कमशीलता के किसी न किसी क्षेत्र म आगे बढ़ा होता है। उदाहरणाथ १७८९ की फरासीसी क्रान्ति, अपनी प्रथमावस्था म उस मवधानिक प्रगति के समकक्ष होने के लिए रह रहकर उठने वाले या दौरे के रूप म आने वाले प्रयत्न की भाति थी जो पडोसी ब्रिटेन पिछली दो शतियो मे धीरे धीरे करता रहा था। यहा तक कि जिस महाद्वीपीय पाश्चात्य उदारवाद (कान्टिनेंटल वेस्टन लिबरलिज्म) ने उन्नीसवीं शती म न जाने कितनी, अधिकाश निष्फल या अकालजन्मा क्रान्तियो को जन्म दिया था उसे कुछ महाद्वीपीय इतिहासकार ऐंग्लोमनिया (आग्लोन्माद) नाम से पुकारने लग थे।

त्वरण (Accelaration) का एक सामान्य प्रकार सभ्यता की सीमा मे जरा-जरा आने वाले सीमान्तवासियो (मार्चमन) अथवा सीमा के बाहर वाले बबरों के आचरण मे दिखायी पडता है, जो अपने ज्यादा विकसित पडोसियो के बराबर होने के लिए सहसा उत्साहित हो उठते हैं। इस अध्ययन के लेखक को वह छाप अच्छी तरह याद है जो १९१० ई म स्टाकहाल्म के नारदिस्का मसीत को देखकर उस पर पडी थी। कमरो मे स्कन्देनेवियाई पुरा पाषाणयुगीन (Palaeolithic) नव पाषाण युगीन (Neolithic), कास्ययुगीन तथा प्राक्खीष्टीय लौहयुगीन सस्कृतियो के नमूने दिखाये गये थे। इन्हे देखता हुआ जब मैं उस कमरे मे पहुचा जिसम इतालवी रिनसा की शैली की स्कन्देनेवियाई कलाकृतिया प्रदर्शित की गयी थी तो मैं चमत्कृत हो उठा। इस पर आश्चय करते हुए कि कैसे मध्यकाल की कृतियो को देखने मे असफल रहा, मैं पीछे घूम गया। वहा निश्चय ही एक मध्यकालिक कक्ष था किन्तु वहा की सामग्री बहुत मामूली थी। तब मैंने अनुभव किया कि स्कन्देनेविया एक ही झपट्टे मे, उस उत्तर लौह युग के पार निकल गया है जिसमे वह अपनी एक विशिष्ट सभ्यता का अजन करने ही लगा था और अब वह प्रारम्भिक आधुनिक युग म आ गया है, जिसमे वह मानकीकृत इतालवी पाश्चात्य खीष्टीय सस्कृति (स्टण्डर्डाइज्ड इटालियनेट वेस्टन क्रिश्चियन कल्चर) का अविशिष्ट भागीदार बन गया है। क्षिप्रगतिशीलता के इस चमत्कार का आशिक मूल्य उसे उस सास्कृतिक ह्रास के रूप म चुकाना पडा है जिसका उदाहरण नारदिस्का मसीत ने हमारे सामने प्रस्तुत कर दिया था।

खीष्टीय सवत् की पन्द्रहवी शती मे स्कैन्देनेविया की जो हालत हुई थी वही लेखक के अपने समय मे पश्चिम की अन्धाधुन्ध नकल करनेवाले समस्त पाश्चात्येतर जगत् की हुई है। उदाहरण स्वरूप यह कहना बहुत सामान्य सी बात होगी कि अफ्रीकी जनता, एक या दो पीढी मे ऐसी राजनीतिक सामाजिक एव सास्कृतिक प्रगति को उपलब्ध करने की चेष्टा कर रही है जिसे प्राप्त करने मे उन पश्चिमी यूरोपीय राज्यों को हजार या उससे भी ज्यादा वष लग गये जिनकी नकल और प्रतिरोध दोनो अफ्रीका के लोग कर रहे हैं। वे अफ्रीका म हुई वास्तविक प्रगति को

बहुत बढा चढाकर कहते हैं ठीक वैसे ही जैसे कि पाश्चात्य दर्शक उनको घटाकर बताता है।

यदि क्रान्तिया इस तीव्र गतिशीलता की आकस्मिक अभिव्यक्तिया हैं तो गति हीनता की दृश्य घटना को समूह से अलग पड जाने वाले यात्री के मुख्य दल की चाल के साथ चलते रहने से इन्कार करने के रूप में लिया जा सकता है। ब्रिटिश साम्राज्य के पश्चिमी भारतीय द्वीपो मे दासप्रथा के समाप्त कर दिये जाने के एक पीढी बाद भी उत्तरी अमरीकी सघ (नार्थ अमेरिकन यूनियन) के दाक्षिणात्य राज्यो में हठपूर्वक उसे बनाये रखना इसी प्रकार का एक उदाहरण है। और भी उदाहरण उन उपनिवेशको (कालोनिस्टस) के वर्गो द्वारा उपस्थित किये गये जो 'नवीन देशो' में प्रवास कर गये थे और वहा भी वही मान वही जीवन प्रणाली कायम कर रहे थे जो अपने देश का त्याग करते समय उनके घरो में प्रचलित थी यद्यपि उनके 'पुराने देश' के बन्धुओ ने उन मानो का त्याग कर दिया था और आगे बढ गये थे। इस तरह की बातें परिचित हैं और यहा सिर्फ बीसवी शती के क्वेकर एपेलेशियन अधित्यका (Appalachian highlands) तथा ट्रासवाल का जिक्र कर देना पर्याप्त है। इनकी तुलना इसी काल के फ्रास, अलस्टर एव नेदरलैंडस से करने पर उक्त चित्र स्पष्ट हो जाता है। इस ग्रन्थ के पूर्व पृष्ठो में गतिशीलता या त्वरण एव गतिहीनता या मन्दन (Retardation) दोनो के ही अनेक उदाहरण प्राप्त हैं। पाठक उन्हें स्वय ही स्मरण कर सकते हैं। उदाहरणार्थ, यह स्पष्ट है कि जिसे हमने हीरोदियाई मत (हीरोदियनिज्म) कहा है वह त्वरण का और जिसे हमने धर्मान्धता (जीलाटिज्म) कहा है वह मन्दन का पर्याय है। यह भी स्पष्ट है कि चूकि परिवर्तन अच्छा और बुरा दोनो हो सकता है इसलिए त्वरण का हर हालत मे अच्छा होना या मन्दन का हर हालत में बुरा होना आवश्यक नही है।

केवल दो नही निश्चित रूप से तीन बल्कि सम्भवत चार चार युगो तक जाने वाले गति के एकान्तर परिवर्तनो (अल्टरनेटिंग चेंजेज) की शृखला का एक उदाहरण पोत निर्माण एव नौपरिवहन (जहाजरानी) की कलाओ के आधुनिक पाश्चात्य इतिहास में पाया जाता है। कथा का आरम्भ उस आकस्मिक त्वरण के साथ होता है जिसने १४४० ९० ई तक के पचास वर्षों की अवधि में इन कलाओ मे क्रान्ति उपस्थित कर दी। इस त्वरण के बाद ही मन्दन का युग आया जो सोलहवी, सत्रहवी एव अठारहवी शतिया तक बना रहा और जिसके बाद, अर्थात् बडी लम्बी निष्क्रियता के बाद, १८४० ९० के पचास वर्षों में पुन आकस्मिक त्वरण का एक युग आया। १९५३ ई के वर्ष मे आगे की अवस्था की बात करना कठिन है क्योकि अभी तक वह युग चल ही रहा है किन्तु एक सामान्य मनुष्य की आखो से तो यही दिखायी पडता है कि यद्यपि उस काल के बाद भी महत्त्वपूर्ण प्रौद्योगिक प्रगति होती रही है किन्तु वह विक्टोरियाई अर्द्धशती की क्रान्तिकारिणी उपलब्धियो की तुलना में बहुत कम ठहरती है।

"पन्द्रहवीं शती मे पोत निर्माण में तेज एव महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुआ।

पचास वर्षों के समय में समुद्र सतरणकारी पोत एक मस्तूल से तीन मस्तूल वाले हो गये जिनम पाच या छ पाल लगाये जाते थ।"[1]

इस प्रौयोगिकाय क्रान्ति न उसक निर्माताओ को न कवल पृथिवी मण्डल क सम्पूण क्षत्रो म जान की सुविधा प्रदान की, उमन उन सब पाश्चात्यतर नाविको पर उनका वचस्व भी स्थापित कर दिया जिनसे उनका सामना हो सकता था। नवीन पोत जिस विशिष्ट योग्यता म अपन पूवगामियो एव अपन उत्तराधिकारियो दोनो से बहुत आगे निकल गया था वह थी असीमित अवधि तक बिना किसी बदर पर डरा डाले सागर म रह सकने की उसकी शक्ति। अपन जीवनकाल (flovuit) म यह जहाज सर्वोत्कृष्ट कहा जाता था। यह विविध प्रकार क एस पारस्परिक ढाचो एव पाल मस्तूलो क बीच एक सुखद सम्मेलन क फलस्वरूप निर्मित हुआ था जिनम स हर एक की अपनी अपनी विशषताए एव सीमाए थी। १४४० एव १४६० ई क बीच *जिस पाश्चात्य पोत का जन्म हुआ उसम बहुत दिनो से चल आत भूमध्यसागरीय* पतवार प्रचलित लम्ब पोत (लाग शिप) उपनाम गली (जिसम तीन विशिष्ट प्रकार के पाल वाल जहाज सम्मिलित थे), समकालिक सरल मस्तूलवाले भूम यसागरीय गोल पोत (राउन्ड शिप) उपनाम करक त्रिभुजाकार पाल वाल भारतीय महासागरीय पोत कारावेल (जिसका एक बहुत प्राचीन रूप महारानी हत्शेपसुत—१४८६ ६८ ईसापूव—क राज्यकाल म पूर्वी अफीका के पुत प्रदेश पर हुए मिस्री समुद्री अभियान के चाक्षुष अभिलखो मे मिलता है) तथा वृहदाकार अतलान्त सागरीय पाल प्रचलित पोत (जिस पर बाद मे ब्रिटानी नाम क विख्यात प्रायद्वीप पर अधिकार करत समय ५६ ईसापूव सीजर की निगाह पडी थी) सब क श्रेष्ठ गुणो का समन्वय किया गया था। उपर्युक्त चारो प्रकार के पोतो के सर्वोत्तम गुणो स युक्त जहाज का वह नया नमूना प द्रहवी शती क अन्त तक तयार हो गया था और उस समय क समुद्र म चलन वाल सवश्रेष्ठ जहाजो तथा नलसन के काल क जहाजो म तत्त्वत विशेष अन्तर नही था।

फिर साढे तीन शतियो क मन्दन क पश्चात पोतनिर्माण की पाश्चात्य कला मे त्वरण का दूसरा उभार आया और इस बार दो समानान्तर रेखाओ पर एक साथ रचना का काम तजी के साथ हुआ। *एक ओर तो पाल पोत का स्थान वाष्प पोत* (स्टीम इजिन) न ल लिया साथ ही साथ पाल प्ररित जहाजो क निर्माण की कला भी अपनी लम्बी नीद स जग उठी और उसन पुरान ढग के पोत का एक एसी नवीन और अबतक अकल्पित पूणता पर पहुचा दिया जिसके कारण पाल प्रेरित पोत पूरी रचनात्मक अद्धशती (१८४०–६० ई) म वाष्प पोत की प्रतियोगिता मे खडा रह सका।

य त्वरण एव मन्दन गति की उस एकरूपता क आश्चयजनक व्यतिक्रम हैं जिनकी

[1] बेसल-लाउफ ज डब्लू ऐंड हालड जी 'शिप्स ऐंड मेन (लन्दन, १६४६ हेरप) पृष्ठ ४६

आन्ना प्रकृति के नियमा मे पूणत नियन्त्रित समाजा म की जाती है। अब यदि हम इन त्वरणा एव मन्दना का स्पष्टीकरण ढूढना चाहे तो वह हम चुनौती एव उत्तर (चलेंज ऐंड रिसपास) क उम सूत्र म प्राप्त हो जायगा जिसका परीक्षण एव निरूपण हम इम अध्ययन के किमी पूवभाग म कर चुके हैं। उस समय हमने जिस अन्तिम मामले अर्थात् पाश्चात्य पोत निमाण एव नौपरिवहन के इतिहास के दो महत त्वरणो एव उन के बीच मन्दन का एक लम्बी कालावधि का वणन किया था उस ही ले लीजिए।

१४४०–६० की अद्धशनो क बीच जिस चुनौती ने आधुनिक पाश्चात्य पोत की सृष्टि को प्रेरणा दी वह राजनीतिक थी। मध्ययुग की समाप्ति के लगभग पाश्चात्य खीष्टीय जगत न कवल दक्षिणपूव दिशा म दारुल इस्लाम (मतलब जिहाद या क्रूसेडस) म फट पडने क अपने प्रयत्न म असफल हो गया अपितु डन्यूब एव भूमध्यसागर के मार्गों स होने वाल तुर्कों क प्रत्याक्रमण स गभीर सकट म पड गया। इस समय इस तथ्य क कारण पश्चिम की स्थिति के लिए खतरा बढ़ गया कि पाश्चात्य खीष्टाय समाज ने यूरेशियाई महाद्वीप के प्रायद्वीपा म से एक के सिरे पर अपना अधिकार जमा रखा था ऐसी खतरनाक स्थिति म पडे समाज का देर सबेर पुरानी दुनिया के हृदय देश से बाहर की ओर फलती अधिक प्रबल शक्तियो क दबाव स, समुद्र म धकेला जाना स्वाभाविक ही था। यदि समय रहत आक्रान्त समाज अपनी रुद्ध गली को तोडकर दूसरे विस्तृत मदानो मे निकल जाने की दूरदर्शिता न दिखाता तो खतरा और बढ़ जाता और इस्लाम के हाथो उसे वही दुदशा भोगनी पडती जो अनेक शतियो पूव उसन स्वय सल्टिक किनारे (सल्टिक फ्रिज) के अकालप्रसूत सुदूर पाश्चात्य खीष्टीय जगत पर गिरायी थी। जिहादो—क्रूसेडस म लातीनी ईसाइयो ने भूमध्यसागर का अपने युद्धमाग के रूप म चुना और परम्परागत भूमध्यसागरीय ढाँचे के जलपोतो से उसे पार किया। यह सब उन्होने इसीलिए किया कि वे अपन खीष्टीय धम का जन्मभूमि को हस्तगत करने की कामना स परित थे। वे असफल हो गये और इसके बाद इस्लाम का जो भयप्रद अग्रसरण हुआ उसने इस्लाम के असफल पाश्चात्य शत्रुओ को कुवा और खाई शतान एव गहन समुद्र के बीच म डाल दिया। उन्होने गहन समुद्र को चुना और नवीन पात का जन्म दिया। इसका जो परिणाम हुआ वह पोचुगीज राजकुमार हनरी नौ परिवाहक (हनरी दि नेवोगेटर) के सबसे आशावादी शिष्यो की उन्मत्त कल्पनाओ से भी आगे निकल गया।

इस्लाम की चुनौती का पन्द्रहवी शती क पाश्चात्य पात निर्माता ने जा उत्तर दिया उसकी आत्यन्तिक सफलता ही उन लम्बे मन्दन का स्पष्टीकरण उपस्थित करती है जो पाश्चात्य पोत निर्माता क व्यवसाय मे आ गया था। इस क्षत्र मे दूसरी बार जो त्वरण का ज्वार आया उसका एक बिल्कुल ही दूसरा कारण था—अर्थात वह नयी आर्थिक क्रान्ति जिसन अठारहवी शती क अन्तिम भाग म पाश्चात्य यूरोप के भागो को प्रभावित करना आरम्भ कर दिया था। इस क्रान्ति की दो मुख्य बातें थी—बढ़े हुए वेग से जनसख्या की आकस्मिक वद्धि और कृषि की अपेक्षा व्यापार तथा निर्माणशील उद्योगो का अधिक विकास। यहा हम उन्नीसवी शती क उस पाश्चात्य औद्योगिक

विस्तार तथा समकालिक जनसंख्या-वृद्धि की जटिल परन्तु सुपरिचित कहानी के फेर मे पडने की आवश्यकता नही समझते जिसने न केवल पश्चिम की पश्चिमी यूरोपीय पुरानी दुनिया मे विविध मातृभूमियो के अधिवासियो की संख्या गुणित कर दी वर पाश्चात्य अग्रगामियो ने जिन नवीन देशो पर अधिकार कर लिया था उनके खुले मैदानो को भरना एव बसाना भी शुरू कर दिया। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि यदि पोत निर्माताओ ने चुनौती का वैसा ही हार्दिक और प्रभावशाली उत्तर न दिया होता जैसा उन्होने चार सौ साल पहिले दिया था तो सामुद्रिक परिवहन उलटा गत्यवरोधकारी सिद्ध होता और उसने इन विकास कार्यों का गला घोट दिया होता।

हमने अपना उदाहरण मानव व्यापार के मौलिक क्षेत्र से चुना है एक उद्योग विशेष मे आने वाली कतिपय चुनौतियो व कतिपय अनुक्रमिक प्रौद्योगिकीय उत्तर जिनमे से प्रथम राजनीतिक एव मनिक और दूसरा आर्थिक एव सामाजिक है। किन्तु समस्त माप रेखा के ऊपर और नीचे चुनौती एव उत्तर का सिद्धान्त एक ही रहा है—फिर चाहे वह रोटी के लिए चीखते खाली पेटो की चुनौती रही हो या ईश्वर के लिए छटपटाती भूखी आत्माओ की चुनौती रही हो। परन्तु वह चाहे जो हो, चुनौती सदा ही मानवात्माओ के लिए ईश्वर की ओर से चुनाव की स्वतन्त्रता का उपहार रही है।

ईश्वर का कानून

इस अध्ययन के वतमान भाग मे हम उस सम्बध का अन्तदशन करन का प्रयत्न कर रहे हैं जो इतिहास के अतगत विधि (कानून) और स्वतन्त्रता के बीच है और यदि हम अपने सवाल की ओर लौटते हैं तो मालूम पडता है कि हम जवाब पहिले ही मिल चुका है। स्वतन्त्रता का कानून से क्या सम्बध है ? हमार साक्ष्य की घोषणा यह है कि मनुष्य सिफ एक ही कानून के नीचे जीवन नही बिताता वह दो कानूनो के शासन म रहता है, और दोनो मे से एक है ईश्वर का कानून, जो एक दूसरे तथा अधिक प्रकाशपूण नाम के साथ स्वय स्वतन्त्रता ही है।

जसा कि सत जेम्स अपने धम-पत्र म कहते हैं स्वतन्त्रता का पूण नियम प्रम का नियम भी है, क्योकि मानव की स्वतन्त्रता मानव को एक एस ही ईश्वर द्वारा दी जा सकती थी जो प्रेम की मूर्ति हो। और मत्यु तथा अमगल की जगह जीवन एव मगल को चुनने के लिए, मनुष्य द्वारा इस दैवी उपहार का उपयोग तभी किया जा सकता है जब मनुष्य भी अपनी ओर से ईश्वर स प्रम करने के लिए प्ररित हो और ईश्वरच्छा को अपनी इच्छा बनाकर अपने को उसके प्रति समर्पित कर द।

Our wills are ours, we know not how
Our wills are ours, to make them thine ?[1]

"हमारी इच्छाए हमारी हैं हम नहीं जानते कि किस प्रकार, जो इच्छाए हमारी हैं, उन्हे तुम्हारी बना दें।"

ये जो सफल कामनाए है मेरी, हे मेरे प्रभुवर!
नही जानता कसे उनको कर पाऊगा मैं सत्वर —
ये जो सब मेरी इच्छाए मुझ मे ही रहती तत्पर
वे कसे हो जायें तुम्हारी, यही बता दो हे ईश्वर।[2]

"इतिहास और सब बातो के ऊपर, एक पुकार है एक आह्वान है एक भगवद्विधान है जिसे स्वतन्त्र मानव सुनते हैं और उसका उत्तर देत है सक्षप म

[1] टेनीसन 'इन मेमोरियम इन्वोकेशन (आवाहन) में
[2] अनुवादक कृत अनुवाद

वह ईश्वर एव मनुष्य के बीच की अन्त क्रिया है ।"[१] प्रमाणित यह होता है कि इतिहास मे कानून एव स्वतन्त्रता दोनो एक ही वस्तु है—इस अर्थ मे कि मानव की स्वतन्त्रता अन्त मे ईश्वर का कानून ही सिद्ध होती है, उस ईश्वर का कानून जो प्रेम-स्वरूप है। किन्तु इस उपलब्धि से हमारी समस्या हल नही होती, क्योकि अपने मूल प्रश्न का जवाब देते हुए हमने एक नया प्रश्न खडा कर दिया है। इस जानकारी के द्वारा कि स्वतन्त्रता कानून की दो सहिताओ मे से एक का समरूपिणी है हमने यह सवाल खडा कर दिया कि दोनो सहिताओ का परस्पर क्या सम्बन्ध है ? प्रथम दृष्टि से देखने पर इसका उत्तर यह दीख पडता है कि प्रेम का कानून और अवचेतन मानव प्रकृति का कानून, जिन दोनो का मानवीय कार्य-व्यापार पर शासन है न केवल भिन्न हैं वरन् परस्पर प्रतिकूल, यहा तक कि एक दूसरे के लिए असगत भी हैं क्योकि अवचेतन मानस का कानून उन आत्माओ को बन्धन मे रखता है जिन्हे ईश्वर ने स्वतन्त्रतापूर्वक अपने साथ कार्य करने का आदेश कर रखा है। जितनी ही अन्वेषणकारिणी वृत्ति से हम दोनो कानूनो की तुलना करते है उतना ही नतिक भेद दोनो के बीच दिखायी पडता है। जब हम प्रेम के कानून के मान पर प्रकृति के कानून को तौलते हैं और प्रकृति ने जो कुछ निर्माण किया है उसे प्रेम की आँखो से देखत है तब वह सब बडा बुरा दीख पडता है।

Ay look high Heaven and Earth all from the prime foundation
All thoughts to rive the heart are here and all are vain [२]

देखो, उधर स्वर्ग ऊचा सा और धरित्री का अचल।
आद्यनीव से व्यथित कर रहे है जीवन को ये प्रतिपल।
हृदय विदारण करने वाली चिन्ताए एकत्र यहा
जो कुछ है वह सभी वृथा है जीवन मे आनन्द कहा ? [३]

जगत् की नतिक बुराई के मानवीय पर्यवेक्षको ने जो निष्कर्ष निकाले हैं उनमे से एक यह है कि यह विभीषिकाओ का कक्ष किसी प्रकार ईश्वर की कृति नहीं हो सकता। एपीक्यूरियनो (इन्द्रियसुखानुरागियो) का विचार था कि यह अविनाशी अणुओ के आकस्मिक सगम का अलिखित निष्कर्ष है। इसके विपरीत ईसाई अपने को इन दोनो विकल्पो मे से किसी एक को ग्रहण करने के लिए लाचार पाता है और दोनो ही विकल्प दारुण रूप से व्यग्रकारी हैं या तो जो ईश्वर प्रेम (रूप) है वही इस प्रकटत अस्वस्थ जगत् का स्रष्टा है या फिर यह जगत् किसी दूसरे ईश्वर द्वारा रचित हुआ होगा जो प्रेम का ईश्वर नही है।

ख्रीष्टीय सवत् की दूसरी शती के प्रारम्भ मे नास्तिक मार्किओन (Marcion) और उन्नीसवी शती के प्रारम्भ मे कवि ब्लक ज्योना ने ही इन विकल्पो मे से पिछले

१ सम्पट, ई दि एपाकलाइप्स आफ हिस्ट्री (लन्दन १९४८, फेबर) पृष्ठ ४५
२ हाउसमन ए ई 'ए श्रोपशायर लड' ४८
३ अनुवादक-द्वारा हिन्दी पद्यान्तर

विकल्प का ग्रहण किया। इस नतिक समस्या के लिए उनका समाधान सृष्टि का एक ऐसे ईश्वर स सम्बद्ध कर देना था जा न तो प्रेम करने वाला है और न प्रेम किये जाने योग्य है। जबकि त्राता ईश्वर (Saviour God) प्राणियो पर प्रम से विजय प्राप्त करने वाला है, स्रष्टा ईश्वर अपना एक कानून बलात् लागू करने वाला है और उस कानून के भग के लिए कठोर दण्ड ने वाला है। यह व्यथाकारी और कठोरता के साथ काम लेने वाला ईश्वर, जिसे मार्किओन न मूसाई जेहोवा (Mosaic Jehovah) क रूप मे देखा था और जिस ब्लेक यूरीजेन (Urizen) नाम दता है, तथा 'नोबोडडी' (परमपिता) उपनाम से पुकारता है यदि अपने सीमित ज्ञान के अनुसार कुशलतापूर्वक अपना कत्त य पालन करता है तो निश्चय ही काफी बुरा है किन्तु वह अपने कत्तव्य पालन मे असफल रहने क लिए कुख्यात है और उसकी असफलता या तो उसकी अयोग्यता के कारण होनी चाहिए या फिर उसके दौरात्म्य के कारण। प्रकटत तो विश्व के पापा एव विश्व क स्रष्टो के बीच किसी प्रकार का समझ मे आने लायक सम्बन्ध नहा जान पडता।

इस बात की पुष्टि करने म कि सृष्टि बुराई के साथ बँधी हुई है मार्किओन दृढ भूमि पर स्थित है किन्तु जब वह कहता है कि उसका भलाई और प्रेम से किसी प्रकार का भी सम्बन्ध नही है तब वह बडी दुबल भूमि पर खडा दिखायी पडता है। क्योंकि सत्य तो यह है कि ईश्वर का प्रेम ही मानव की स्वतन्त्रता का उद्गम है, और जो स्वतन्त्रता सृष्टि की ओर प्रेरित करती है वह वसा करके पाप का द्वार खाल देती है। प्रत्येक चुनौती को समान रूप से ईश्वर की ओर स आवाहन या असुर (डेविल - ख्रीष्टीय मत म ईश्वरविमुखता का प्रतीक) क प्रलोभन के रूप मे लिया जा सकता है। ईश्वर के एक्य को अस्वीकार करक ईश्वर के प्रेम के प्रतिपादन का जो प्रयत्न मार्किओन ने किया वह तो आरिनेइयस के उस विचार स भी ज्यादा गलत मालूम पडता है जिसम उसने स्रष्टा एव उद्धारकर्ता (क्रियेटर ऐंड रिडीमर) के ऐक्य का प्रतिपादन करके ईश्वरत्व के दो ऐस प्रकाशावतरणा (Epiphany) का एक समझ लिया है जो मानवाय दृष्टिकोण स, नतिक रूप म सवथा बेमल हैं। फिर तार्किक एव नतिक विराधाभास के सत्य क सम्बन्ध मे ईसाई मत क अनुभव का जा प्रमाण है, आधुनिक पाश्चात्य विज्ञान न भी आश्चयजनक रूप से उसकी पुष्टि कर दी है। ईश्वर के दो बेमेल रूपा का मिला देन क प्रयत्न की जिस यन्त्रणा ने एक ऐस पूववर्ती सघष म पहिले ही अवचेतन मानस का पीडित किया था जिसके बीच स भावी सत एव विद्वान क नतिक व्यक्तित्व की उपलब्धि मूलत उस प्राथमिक शशवावस्था मे हुइ थी जिसम आत्मा के जगत् म ईश्वर का भावी स्थान शिशु सन्तान का माता ने ग्रहण कर लिया था।

> 'अपने प्रसवोत्तर जीवन के दूसरे साल के आरम्भ में, ज्यों ही शिशु अपने और बाह्य वास्तविकताओं के बीच भेद करना शुरू करता है, तो यह माँ ही होती है जो बाह्य जगत् का प्रतिनिधित्व करती है और शिशु के साथ उसके सम्पर्कों का माध्यम बन जाती है। किन्तु यह माँ शिशु की उभरती हुई चेतना पर दो

वह ईश्वर एव मनुष्य के बीच की अन्त क्रिया है ।"[1] प्रमाणित यह होता है कि इतिहास मे कानून एव स्वतन्त्रता दोनो एक ही वस्तु है—इस अर्थ मे कि मानव की स्वतन्त्रता अन्त मे ईश्वर का कानून ही सिद्ध होता है उस ईश्वर का कानून जो प्रेम-स्वरूप है। किन्तु इस उपलब्धि से हमारी समस्या हल नहीं होती, क्योंकि अपने मूल प्रश्न का जवाब देते हुए हमने एक नया प्रश्न खडा कर दिया है। इस जानकारी के द्वारा कि स्वतन्त्रता कानून की दो सहिताओ मे से एक की समरूपिणी है हमने यह सवाल खडा कर दिया कि दोनो सहिताओ का परस्पर क्या सम्बन्ध है ? प्रथम दृष्टि से देखने पर इसका उत्तर यह दीख पडता है कि प्रेम का कानून और अवचेतन मानव प्रकृति का कानून, जिन दोनो का मानवीय कार्य व्यापार पर शासन है, न केवल भिन्न हैं वरन् परस्पर प्रतिकूल, यहा तक कि एक दूसरे के लिए असगत भी हैं क्योंकि अवचेतन मानस का कानून उन आत्माओ को बन्धन मे रखता है जिन्हे ईश्वर ने स्वतन्त्रतापूर्वक अपने साथ कार्य करने का आदेश कर रखा है। जितनी ही अन्वेषणकारिणी वृत्ति से हम दोनो कानूनो की तुलना करते हैं उतना ही नैतिक भेद दोनो के बीच दिखायी पडता है। जब हम प्रेम के कानून के मान पर प्रकृति के कानून को तौलते हैं और प्रकृति ने जो कुछ निर्माण किया है उसे प्रेम की आखो से देखते हैं तब वह सब बडा बुरा दीख पडता है।

Ay look high Heaven and Earth all from the prime foundation
All thoughts to rive the heart are here and all are vain [2]

देखा उधर स्वर्ग ऊचा सा और धरित्री का अचल ।
आद्यनीव से व्यथित कर रहे है जीवन को ये प्रतिपल ।
हृदय विदारण करने वाली चिन्ताए एकत्र यहा
जो कुछ है वह सभी वृथा है जीवन मे आनन्द कहा ? [3]

जगत् की नैतिक बुराई के मानवीय पर्यवेक्षकों ने जो निष्कर्ष निकाले हैं उनमे से एक यह है कि यह विभीषिकाओ का कक्ष किसी प्रकार ईश्वर की कृति नही हो सकता। एपीक्यूरियनो (इन्द्रियसुखानुरागियो) का विचार था कि यह अविनाशी अणुओ के आकस्मिक सगम का अलिखित निष्कर्ष है। इसके विपरीत ईसाई अपने को इन दोनो विकल्पो मे से किसी एक को ग्रहण करने के लिए लाचार पाता है और दोनो ही विकल्प दारुण रूप से व्यग्रकारी है या तो जो ईश्वर प्रेम (रूप) है वही इस प्रकटत अस्वस्थ जगत् का स्रष्टा है या फिर यह जगत् किसी दूसरे ईश्वर द्वारा रचित हुआ होगा जो प्रेम का ईश्वर नही है।

खीष्टीय सवत् की दूसरी शती के प्रारम्भ मे नास्तिक मार्किओन (Marcion) और उन्नीसवी शती के प्रारम्भ मे कवि अनेक ल्गोना ने हा इन विकल्पो मे से पिछले

[1] सम्पट, ई वि एपोकलाइप्स आफ हिस्टी (लन्दन १९४८, फेबर) पृष्ठ ४५
[2] हाउसमन ए ई 'ए श्रोपशायर लड ४८
[3] अनुवादक-द्वारा हिन्दी पद्यान्तर

विकल्प को ग्रहण किया। इस नैतिक समस्या के लिए उनका समाधान सृष्टि को एक ऐसे ईश्वर से सम्बद्ध कर देना था जो न तो प्रेम करने वाला है और न प्रेम किये जाने योग्य है। जबकि त्राता ईश्वर (Saviour God) प्राणियों पर प्रेम से विजय प्राप्त करने वाला है, स्रष्टा ईश्वर अपना एक कानून बलात् लागू करने वाला है और उस कानून के भंग के लिए कठोर दण्ड देने वाला है। यह न्यायकारी और कठोरता के साथ काम लेने वाला ईश्वर, जिसे मार्किओन ने मूसाई जहोवा (Mosaic Jehovah) के रूप में देखा था और जिसे ब्लेक यूरीजेन (Urizen) नाम देता है, तथा 'नोबोडडी' (परमपिता) उपनाम से पुकारता है यदि अपने सीमित ज्ञान के अनुसार कुशलतापूर्वक अपना कर्त्तव्य पालन करता है तो निश्चय ही काफी बुरा है किन्तु वह अपने कर्त्तव्य पालन में असफल रहने के लिए कुख्यात है और उसकी असफलता या तो उसकी अयोग्यता के कारण होनी चाहिए या फिर उसके दौरात्म्य के कारण। प्रकटतः तो विश्व के पापों एवं विश्व के कष्टों के बीच किसी प्रकार का समझ में आने लायक सम्बन्ध नहीं जान पड़ता।

इस बात की पुष्टि करने में कि सृष्टि बुराई के साथ बँधी हुई है, मार्किओन दृढ़ भूमि पर स्थित है किन्तु जब वह कहता है कि उसका भलाई और प्रेम से किसी प्रकार का भी सम्बन्ध नहीं है तब वह बड़ी दुर्बल भूमि पर खड़ा दिखायी पड़ता है। क्योंकि सत्य तो यह है कि ईश्वर का प्रेम ही मानव की स्वतन्त्रता का उद्गम है, और जो स्वतन्त्रता सृष्टि की ओर प्रेरित करती है, वह वैसा करके पाप का द्वार खोल देती है। प्रत्येक चुनौती को समान रूप से ईश्वर की ओर से आवाहन या असुर (डेविल खीष्टीय मत में ईश्वरविमुखता का प्रतीक) के प्रलोभन के रूप में लिया जा सकता है। ईश्वर के ऐक्य को अस्वीकार करके ईश्वर के प्रेम के प्रतिपादन का जो प्रयत्न मार्किओन ने किया वह तो आरिनेइयस के उस विचार से भी ज्यादा गलत मालूम पड़ता है जिसमें उसने स्रष्टा एवं उद्धारकर्ता (क्रियेटर ऐंड रिडीमर) के ऐक्य का प्रतिपादन करके ईश्वरत्व के दो ऐसे प्रकाशावतरणों (Epiphany) को एक समझ लिया है जो मानवीय दृष्टिकोण से नैतिक रूप में सर्वथा बेमेल हैं। फिर तार्किक एवं नैतिक विरोधाभास के सत्य के सम्बन्ध में ईसाई मत के अनुभव का जो प्रमाण है, आधुनिक पाश्चात्य विज्ञान ने भी आश्चर्यजनक रूप से उसकी पुष्टि कर दी है। ईश्वर के दो बेमेल रूपों को मिला देने के प्रयत्न को जिस यन्त्रणा ने एक ऐसे पूर्ववर्ती संघर्ष में पहिले ही अवचेतन मानस को पीडित किया था जिसके बीच से भावी सत एवं विद्वान के नैतिक व्यक्तित्व की उपलब्धि मूलतः उस प्राथमिक शैशवावस्था में हुई थी जिसमें आत्मा के जगत् में ईश्वर का भावी स्थान शिशु सन्तान की माता ने ग्रहण कर लिया था।

> 'अपने प्रसवोत्तर जीवन के दूसरे साल के आरम्भ में, ज्यों ही शिशु अपने और बाह्य वास्तविकताओं के बीच भेद करना शुरू करता है तो यह माँ ही होती है जो बाह्य जगत का प्रतिनिधित्व करती है और शिशु के साथ उसके सम्पर्कों का माध्यम बन जाती है। किन्तु यह माँ शिशु की उभरती हुई चेतना पर दो

१२ पाश्चात्य सभ्यता की सम्भावनाएं

इस अनुसन्धान की आवश्यकता

इस अध्ययन के वतमान खण्ड को लिखने के लिए जब लेखक ने कलम पकडी तभी से वह अपने इस स्वेच्छाकृत काय के प्रति एक प्रकार की अरुचि का अनुभव करता रहा है। यह अरुचि विषय की किन्हीं काल्पनिक कठिनाइया के कारण उत्पन्न होने वाली स्वाभाविक झिझक से कुछ अधिक है। इतना तो स्पष्ट था कि १९५० ई मे की हुई भविष्यवाणिया, पाण्डुलिपि के मुद्रित एव प्रकाशित होने के बहुत पहिले ही, घटनाआ-द्वारा मिथ्या प्रमाणित हो सकती हैं। फिर भी यदि अपने को हास्यास्पद बना लेने के खतरे की भावना लेखक के मन मे प्रधान होती तो उसने निश्चय ही उसको इस अध्ययन का कोई भी खण्ड लिखने मे विरत कर दिया होता। और ग्यारह बधको (Hostages=यहा पुस्तक के खण्डा या भागा के प्रति सकेत है) को भाग्य के भरोसे छोड देने के बाद उसने जो बारहवा भाग लिखने की जिम्मेदारी अपने कधे पर उठायी है उसम केवल इस विचार न उसके हृदय को बल दिया है कि आज की तिथि मे पाश्चात्य सभ्यता की सम्भावनाए उससे कही कम स्पष्ट रह गयी हैं जितनी वे उस समय थी जब १९२९ ई के प्रारम्भिक महीनों में इस भाग के लिए वह वे मूल टिप्पणिया लिख रहा था जो उसकी कुहनियो के नीचे पडी हुई हैं। उस समय जो महती मन्दी (दि ग्रेट डिप्रेशन) द्वितीय विश्व-युद्ध और अपने अनेक परिणामो के साथ शुरू होने ही वाली थी १९५० के बहुत पहिले ही उस भ्रम को पूणत बहा ले गयी जो १९२९ ई मे प्रचलित था और जिसके अनुसार यह धारणा प्रचलित हो गयी थी कि सामान्यत १९१४ के पूव वस्तुआ की जो स्थिति थी उससे तत्कालीन स्थिति कुछ बहुत भिन्न नही है।

इसलिए यदि यह भविष्य कथन कि कठिनाइयो से त्राण पाने की ही बात होती तो इतिहास के दो दीप्तिकारी युगा के अन्त कालिक अवस्थान से बहुत कुछ दूर हो गयी होती। किन्तु उसकी अनिच्छा का पाश्चात्य सभ्यता की सम्भावनाओ के अनुमान की कठिनाई से या तो बहुत कम सम्बन्ध है या कुछ भी सम्बन्ध नही है। इसकी जड तो इस अध्ययन म अपनाये गये माग के एक मुख्य सिद्धान्त को त्याग देने की उसकी हिचकिचाहट मे है। वह इस भय से पीडित है कि उसकी समझ से जिस दृष्टि कोण को अपनाकर ही समाज की उन प्रजातिया क समस्त इतिहास को यथाय सदश

(पसपक्टिव) मे देखना सम्भव था, पाश्चात्य सभ्यता जिसकी एक प्रतिनिधि थी, उसे शायद वह छोड रहा है। और इस पाश्चात्य दृष्टिकोण के औचित्य म उसका विश्वास, उसकी अपनी प्रज्ञा के अनुसार उन दो युगो के परिणामो से और पुष्ट ही हुआ है जिनम वह एक पाश्चात्येतर दृष्टिकोण से इतिहास के मानचित्र को पढने का प्रयत्न करता रहा है।

जिस एक उद्दीपन ने लेखक को वतमान अध्ययन का भार उठाने को प्रेरित किया, वह पिछले खेवे की उस आधुनिक पाश्चात्य परम्परा के प्रति विद्रोह था जिसमे पाश्चात्य समाज के इतिहास को दीर्घाक्षरो म अकित इतिहास (History) शब्द का समरूप मान लिया गया था। उसे लगा कि यह परम्परा एक ऐसे विकृतिकारी अहकेंद्रिक भ्रम (डिस्टार्टिंग ईगोसैंट्रिक इल्यूजन) की सन्तति है जिसके पाश मे अय सब ज्ञात सभ्यताओ तथा आदिमकालिक समाजो के बच्चो की भाति पाश्चात्य सभ्यता के बच्चे भी फँस गये हैं।[1] इस अहकेंद्रिक मायता के त्याग का सर्वोत्तम

[1] जब १६३५ ई० मे इस सक्षिप्त सस्करण का सम्पादक किलीमजारो शिखर की ढलान पर ठहरा हुआ था तो उसे प्रथम विश्व युद्ध का यह कारण बताया गया जो उस पवत के दक्षिण भाग मे रहने वाले छग्गा कबीले द्वारा समझा जाता था। किलीमजारो पर पहिली बार एक जमन डा हसमेयर ने १८८६ ई में चढ़ने मे सफलता प्राप्त की थी। जब वह चोटी के सिरे पर पहुँच गया तो उसे वहाँ पवत का देवता मिला। वह खुशामद से, जो पहिले उसे कभी न मिली थी, इतना प्रसन्न एव सन्तुष्ट हुआ कि योग्य जमन पवतारोही एव उसके सगी देश वासियों को सारा छग्गा देश ही दे दिया। परन्तु उसकी एक शत थी कि आरोही के देशबन्धुओं मे से किसी न किसी को हर वष (या प्रति पाँचवें वष) पवत पर आरोहण करना होगा और उसके प्रति सम्मान प्रदर्शित करना होगा। सब कुछ ठीक तरह से चलता गया। जमनों ने जमन पूर्वी अफ्रीका पर अधिकार कर लिया और जमन पवतारोहियों का एक दल उचित मध्यान्तर पर आरोहण करता रहा। यह क्रम १६१४ के पहिले तक चलता रहा। १६१४ ई में इस विषय में एक अत्यन्त दुर्भाग्यपूण कतव्य-च्युति हो गयी। ठीक ही पवत का देवता बडा उत्तजित हुआ और उसने अपना उपहार वापिस ले लिया और वह देश जमनों के शत्रुओं को दे दिया। इन लोगों ने जमनों के प्रति युद्ध की घोषणा कर दी और उन्हें निकाल बाहर किया। विश्व के पूर्वी अफ्रीकी हृदय में छिडे इस आंग्ल जमन युद्ध ने युद्धों के माग के अनुसार ही, प्रसगवश, अपेक्षाकृत महत्वरहित सुदूर क्षत्रों में लडाई के कुछ गौण शक्ति-परीक्षण का प्रदशन किया।

प्रथम विश्व युद्ध का छग्गाओं द्वारा दिया गया यह विवरण इसके दूसरे विवरणों जितना ही ठीक है। बल्कि वह कुछ से अच्छा है,—इस बात में कि कम से कम वह इतिहास में धम द्वारा किये गये अभिनय के महत्व को स्वीकार तो करता है।

उपाय उसे यह लगा कि वह इसके विपरीत यह मान्यता ग्रहण कर ले कि समाज की किसी प्रजाति के समस्त प्रतिनिधि दार्शनिक दृष्टि से एक दूसरे के बराबर हैं। तब लेखक ने विपरीत मान्यता को ग्रहण कर लिया और वर्तमान अध्ययन के प्रथम छः भागों तक तो उसे यही अनुभव होता रहा कि उसके प्रति उसकी निष्ठा उचित है। अपने सातवें भाग मे एक ऐसे परीक्षण के माध्य पर सभ्यताओं के मूल को उसने अपर्याप्त पाया जिसमें धर्म के इतिहास मे उनके विभंगो एवं विघटनो द्वारा किये गये अभिनय को कसौटी के पत्थर के रूप मे प्रयोग किया गया था, किन्तु इस जाच का परिणाम था उसी पाश्चात्य सभ्यता की फिर से प्रशंसा करना। इसके विपरीत परीक्षण से मालूम यह होता था कि सबसे उच्चस्तरीय एवं गौरवशाली सभ्यताएं द्वितीय पीढ़ी की—सीरियाई, इंडिक हेलेनी और सिनाई—सभ्यताएं थीं। यह बात मैं एक ऐसे पर्यवेक्षक के दृष्टिकोण से कह रहा हूं जिसने इस जगत से गुजर रही मानवात्माओं के लिए आध्यात्मिक सुविधाओ की सयोजना मे निरन्तर वृद्धि को ही इतिहास की पथदर्शन रेखा के रूप म देखा हो।

इस दृष्टिकोण को ग्रहण कर लेने के बाद एक मात्र पाश्चात्य सभ्यता का विशेष वर्णन करने के प्रति लेखक के मन मे मूलतः जो हिचकिचाहट थी वह और दृढ हो गयी। फिर भी जो खाका मूलत १९२७ २९ मे खींचा गया था १९५० म उसका पालन करने के निर्णय मे लेखक उन तीन तथ्यों के तर्क के आगे सिर झुका रहा है जिनका औचित्य बीच के इन वर्षो मे जरा भी नष्ट नही हुआ है।

इन तीन तथ्यो मे से एक यह है कि खीष्टीय संवत की बीसवी शती के द्वितीय चतुर्थांश मे पाश्चात्य सभ्यता ही अपनी प्रजाति की ऐसी एकमात्र विद्यमान प्रतिनिधि थी जिसके विघटन की प्रक्रिया मे होने के कोई निर्विवाद लक्षण नही दिखायी पड़ते थे। दूसरी जो सात सभ्यताएं थी उनमे से पाच (परम्परानिष्ठ सनातन ईसाई धर्मक्षेत्र की मुख्य सस्था एवं उसकी रूसी उपज, सुदूरपूर्वीय सभ्यता की मुख्य सस्था एवं उसकी कोरियाई तथा जपानी शाखाएं तथा हिन्दू सभ्यता) न केवल अपनी सार्वभौम राज्य वाली अवस्था मे प्रविष्ट हो चुकी थी बल्कि उससे गुजर चुकी थी और ईरानी तथा अरबी मुस्लिम सभ्यताओ के इतिहासो की जाच से पता लगा कि ये दोनो समाज भी भग हो चुके थे। केवल पाश्चात्य सभ्यता ही अबतक अपनी विकासावस्था म थी।

दूसरा तथ्य यह था कि पाश्चात्य समाज के प्रसार एवं पाश्चात्य संस्कृति के प्रकाश या विकिरण ने अन्य सब प्रचलित सभ्यताओं तथा वर्तमान आदिम समाजो को पाश्चात्य रंग चढ़ाने वाले एक ही विश्वव्यापी दायरे म ला खड़ा किया है।

तीसरा तथ्य जिसने इस अनुसन्धान को आवश्यक बना दिया यह आतंकित करने वाला तथ्य था कि मानव जाति के इतिहास मे पहली बार सम्पूर्ण मानवता के अंडे एक ही मूल्यवान् और अनिष्टकर टोकरी म एकत्र कर दिये गये हैं।

Gone are the days when madness was confined
By seas or hills from spreading through Mankind

When though a Nero fooled upon a String
Wisdom still reigned unruffled in Peking
And God in welcome smiled from Buddha's face
Though Calvin in Geneva preached of grace
For now our linked up globe has shrunk so small
One Hitler in it means mad days for all
Through the whole world each wave of worry spreads
And Ipoh dreads the war that Ipsden dreads [1]

बीते वे दिन जब पागलपन सीमित था युद्ध घरों म
सागर नग के कारण यह जगती म फल न पाता था।
यद्यपि अपनी वीणा को ले नीरो त्रुटियां करता था
किन्तु चीन मे तब भी अक्षत प्रज्ञा शासन करती थी।
अब यह गति है भले जिनेवा मे कालिन उपदेश करें
करुणा और दया का, पर है धरती इतनी सिकुड गयी
हिटलर उसमे एक किन्तु सब जग प्रमाद स आन्दोलित।
चिन्ता की प्रत्येक लहर अब दुनिया पर छा जाती है
एक छोर पर छिडा समर जगती सारी डर जाती है।[2]

आणविक एव कीटाणु-गर्भित अस्त्रा के द्वारा जो तृतीय विश्व युद्ध होगा उसम यह सम्भव नही जान पडता कि मृत्यु का फरिश्ता मनुष्य के पार्थिव निवास के उन सुदूर कोनो को भी भूल जाय जो हाल तक या तो अनाकर्षक या अगम्य होन के कारण, या दोनो ही कारणा स अपन दीन, दुबल पिछड हुए निवासिया को सभ्य सनिकवादियो की अशुभ दृष्टि स बचा पान म समथ रहे हैं। रूस के दबाव के विरुद्ध यूनान एव तुर्की को अमरिकी सहायता देन के ट्रूमन सिद्धान्त की घोषणा (१२ माच १९४७) के ठीक तीन सप्ताह पूव प्रिंसटन मे एक वार्ता के सिलसिले मे लेखक न यह कल्पना की थी कि यदि पश्चिमी रग म रगती जान वाली दुनिया अपने को ततीय विश्व युद्ध मे पतित होने का अवसर देती है तो उसके परिणाम स्वरूप शायद प्लेटो की वह पुराण कथा वास्तविक जीवन म चरिताथ हो उठे जिसम एथेनियाई दाशनिक कल्पना करता है कि एक पुरातन सभ्यता सावधिक जलप्रलयो म से अन्तिम जल प्रलय के आघात म डूबकर नष्ट हो चुकी है और अब वीरान क्षेत्र म एक नवीन सभ्यता का निर्माण करने के लिए अपने गढो से निकल निकलकर पवतीय पशुचारक बीच बीच म आते रहे हैं। सामूहिक अवचेतन मानस की कल्पना सृष्टि म पशुचारक यूनान की उन बची हुई एव अविकृत आदिम मानवी क्षमताओ के द्योतक है जिन्ह ईश्वर न तब

[1] स्किनर, मार्टाइन 'लेटस टु मलाया १ एव २ (लन्दन १९४१, पुटनम) पृष्ठ ३४ ३५

[2] अनुवादक कृत पद्य रूपान्तर

भ ।सुरक्षित रख छोडा है जब उसने मानव जाति के भ्रष्ट बहुमत को प्रलोभन मे फँसा दिया है ऐसे प्रलोभनो म जिसने कृषक केन का उसके पुत्र नगर निर्माता इनाक का तथा उनके उत्तराधिकारी लोहार टयूबल कन का विनाश कर दिया है। जब भी सभ्यता के उपक्रम मे चलता हुआ मनुष्य इस बिल्कुल हाल क और शायद आज तक के मानवीय साहस के कार्यो म सबस कठिन काय का प्रतिपादन करते हुए विपत्ति ग्रस्त हुआ है तब-तब सदा ही उसन अपने उन्ही आदिमकालिक बन्धुओ म प्रच्छन्न सुरक्षित शक्ति की सहायता पा लने पर भरोसा किया है जिन्ह उसन धरित्री के श्रेष्ठ अशो को अपना क्षेत्र बताकर दूर भगा दिया था और उन्ह भेड बकरियो के चमडे म अपन अग ढककर मरुस्थलो एव पवतो म विचरन क लिए छोड दिया था। और अतीत काल मे एबेल को अपेक्षाकृत निरीह अवशिष्ट सतानें, केन की सतानो क ऊपर उनके पापो का बदला चुकाने के लिए आक्रमण करने वाल उनके खूनियो की सहायता म आग बरसाने आती रही हैं। हेलीकान पवत की तराई मे स्थित अस्कारा के एक पशुचारक ने हेलेनी इतिहास की दु खातक घटना का प्राक्कथन किया था और अरब मरुस्थल के सिरे पर स्थित नगब के पशुचारको ने बतुलहम म ख्रीष्टीय मत क पालन की रक्षा की थी। प्लेटो मुख प्रेरणा का प्रयोग करते हुए १९४७ ई म वतमान लेखक ने सुझाव दिया था कि यदि पाश्चात्य सभ्यता जिसमे वह और उसके श्राता सब फस गये हैं विश्वव्यापी धम पर कोई भारी सकट ले आयी तो जो सास्कृतिक प्रयास पिछले पाच या छ हजार वर्षो तक अपने पैरो पर खडा रहा है उसे फिर से आरम्भ करने का काम शायद उन तिब्बतियो के कधो पर आयगा जो अभी तक अपन पठार की प्राचीरो के पीछे सुरक्षित रहे हैं या फिर वह इस्किमोओ (Esquimaux) पर पडेगा जो निर्दोष रूप से निष्ठुर उस तुषार किरीट की छाया म सुरक्षापूण आश्रय लेते रहे हैं जो किसी भी गृहवासी मानव की अपेक्षा कम विश्वासघाती पडोसी है। उस व्याख्यान की और उसी यूनिवर्सिटी नगर की शान्त परिधि म इन पक्तियो के लेखन के बीच साढे तीन वर्ष बात गये हैं और इस अवधि म ये अस्थायी कल्पनाए एतिहासिक घटनाओ के प्रमाण-द्वारा ग्रस्त एव आक्रान्त हो गयी हैं। १९५० ई के दिसम्बर म, जब मैं ये पक्तिया लिख रहा हू खबर आयी है कि एक चीनी साम्यवादी आक्रामक सेना तिब्बत पर आक्रमणाथ ल्हासा क रास्ते पर है और जो इस्किमो पहिल भूत प्रकृति के अतिरिक्त और कोई शत्रु मित्र न होन पर प्रमुदित थ उन्होने अपने को कोगा एव मिसीसिपा जलप्राणियो क बीच ध्रुवोत्तर वन माग पर तथा बहरिंग जलसन्धि के हिमवाहो (ice floes) के पार एशियान्तगत रूस क पूर्वोत्तर छोर क आदिमकालिक निवासियो क किसी समय एकान्त छिटफुट फली आवासभूमियों स उस अलस्का तक जाने वाले *बगवान (Ventre a terre) आक्रमण माग पर पाया जो महाद्वापीय सयुक्त* राज्य के मुख्याग स केवल एक कनाडियन पालिश या पानडी गलियार (Polish Corridor) द्वारा विभाजित कर दिया गया था।

इस प्रकार समस्त मानव जाति का भाग्य इस समय एक सव यापा पाश्चात्य समाज की मुट्ठी म था जब कि खुद पश्चिम का अपनी किस्मत मास्काउ के एक तथा

पूर्वानुमानित उत्तरो की सन्दिग्धता

१९५५ ई म पाश्चात्य सभ्यता की जीवनाशा कितनी है ? इतिहास का विद्यार्थी प्रथम विचार म प्रकृति क सुपरिचित अपव्यय का ध्यान रखते हुए सम्भवत पश्चिम की प्रचलित आशाओ-सम्भावनाओ को नीची दर पर आकना चाहेगा। आखिर पाश्चात्य सभ्यता अपनी प्रजाति की २१ प्रतिनिधियो मे से एक प्रतिनिधि होने के अलावा और क्या है ? तब जो असफलता अन्य बीस सभ्यताओ के भाग्य म रही है उससे कसौटी पर चढ़ी इक्कीसवी को बचा लेने की आशा करना क्या बुद्धिसगत है ? पृथिवी पर जीवन का जो विकास हुआ है उसके अतीत इतिहास म प्रत्येक महगी सफलता के लिए बहुसख्यक असफलताओ की जो कीमत चुकानी पडी है उसका विचार करने पर यह असभाव्य लगेगा कि उन सभ्यताओ की भाति तरुण प्रजाति के इतिहास म तीसरी पीढ़ी का कोई प्रतिनिधि अनिश्चित काल तक जीवित रहने एव विकसित होते जाने का अभी तक अपघटित माग ढूढ निकालने को चुना जायगा या फिर उसे ऐसा उत्परिवतन करने क लिए कहा जायगा जो समाज की एक नवीन प्रजाति को जन्म द सके।

और फिर भी मानव-स्तर पर नही, प्राकमानवीय स्तर पर जीवन के अनुभव से ऐसी अनुभूति निकाली ही जा सकती है। यह सत्य हो सकता है कि जब प्रकृति आरम्भिक शरीरागो के विकास म लगी थी तो वह लाखो नमूने तयार करती जा रही थी इसलिए कि शायद इस तरह उसे कोई नवीन एव ज्यादा अच्छी डिजाइन बनाने का मौका मिल जाय। वनस्पति, कीटाणु मत्स्य तथा दूसरे जीवो के विकास मे प्रकृति को अपने काय के लिए बीस नमूनो की सख्या हास्यास्पद रूप से कम लगती। किन्तु यह मान लेना निश्चय ही एक अनुचित मान्यता होगी कि विकास के जो नियम पशु या वनस्पति के जीवांगो पर लागू होते हैं वही सभ्यता की प्रक्रिया मे पडे हुए मानवीय समाजो-जसे सवथा भिन्न नमूनो पर भी लागू होगे। इसलिए तथ्य तो यह है कि इस प्रसग म प्रकृति के अपव्यय वाला तक कोई तक हो नही है। हमने इसका त्याग कर देने के लिए ही इसे खडा किया है।

इसके पहिले कि हम स्वय सभ्यताओ के प्रमाण वा साक्ष्य की परीक्षा करना आरम्भ करें दो ऐसे भावात्मक पूर्वानुभूत (इमोशनल एप्रियोरी) उत्तर रह जाते हैं जिन पर विचार कर लना चाहिए। ये दोनो भावात्मक उत्तर परस्पर विरोधी हैं और

इस अध्ययन का लेखक, जो १८८९ ई म पैदा हुआ था, यह देखन क लिए जीवित रहा है कि पश्चिम इन दोनो भावनाओ म स एक को छोडकर दूसरी क पास लौट आया है।

उन्नीसवी शती क अ त म ग्रेट ब्रिटन क मध्यम वग क लोगो म जो दृष्टिकोण प्रचलित था उस एक हास्यानुकृति (परोडी) स एक अश उद्धत करके बहुत अच्छी तरह प्रकट किया जा सकता है। यह परोडी दो स्कूली अध्यापको द्वारा लिखी गयी है और इसम इतिहास के सम्ब ध म परीक्षा मे लिखे उत्तर क आधार पर एक स्कूली लडके का रुख चित्रित किया गया है। इस परोडी का शीषक है १०६६ तथा और सब (टेन हडड सिक्सटीसिक्स ऐंड आल दट) —

'इतिहास अब अपने अ त को पहुच चुका है इसलिए यह इतिहास अन्तिम है। अंग्रेज मध्यमवग का यही दृष्टिकोण आधुनिक पाश्चात्य युद्धो क सब स ताज शक्ति परीक्षण म विजयी जमनो एव उत्तरी अमेरिकनो क बच्चे भी रखत थे। १७९३ १८३५ की लाम लडाई के इस परिणाम के लाभानुभोगियो न तबतक इस विषय म अपने अंग्रेज प्रतियोगियो से ज्यादा सशय करना आरम्भ नही किया था कि पाश्चात्य इतिहास का आधुनिक युग एक ऐसे आधुनिकोत्तर (पोस्ट माडन) युग के उद्घाटन क लिए समाप्त हो गया है जिसमे दु खदायी अनुभव निहित है। तबतक व यही कल्पना कर रहे थे कि उनक लाभ के लिए कालातीत वतमान म एक सुस्थ, सुरक्षित सन्तोषजनक आधुनिक जीवन का चमत्कारिक आगमन स्थायी रूप स रहने के लिए हुआ है। उदाहरणाथ, साठ वष लम्बे विक्टोरियन युग पर कालातीत होने का यह भाव छा गया था, यद्यपि महारानी की हीरक जयन्ती के अवसर पर प्रकाशित साठ वष तक रानी (सिक्सटी इयम ए क्वीन) ग्र थ के चित्रो का सरसरी अवलोकन भी यह प्रदर्शित करन के लिए काफी था कि प्रौद्योगिकी स वस्त्र विन्यास तक जीवन की प्रत्येक शाखा मे किस तेजी स परिवतन हुआ है।

उस समय आंग्ल मध्यमवग के अनुदार लोग (कजरवेटिव्स) जिनके लिए स्वण-युग आ चुका था तथा आंग्ल मध्यमवग क उदार (लिबरल) जिनक लिए स्वण युग पास आ पहुचा था इस बात को जानत थ कि मध्यमवग की समृद्धि म आंग्ल श्रमिक वग को बहुत ही कम हिस्सा मिला है। वे इस बात से भी परिचित थ कि यूनाइटेड किंगडम क अधिकाश उपनिवेशो एव अधीन राज्यो की ब्रिटिश प्रजाए उस स्वायत्त शासन का उपभोग नही कर रही हैं जिसका उपभोग यूनाइटेड किंगडम तथा ब्रिटिश ताज के कुछ उपनिवेशो के उनके साथी प्रजाजन कर रहे है। किन्तु उदार (लिबरल) लोग तो इन विषमताओ का यह कहकर उडा देते थे कि उनका इलाज किया जा सकता है, अनुदार लोग यह कहकर चुप बठ जात थे कि वे तो अनिवाय हैं। इसी प्रकार सयुक्त राज्य क उत्तरी भागो क समकालीन नागरिक भी इस बात को जानते थे कि आर्थिक समृद्धि म दक्षिण के नागरिक बन्धुओं को हिस्सा नही मिल रहा है। जमन रीख की समकालीन प्रजाओ को भी यह पता था कि फ्रास स जो 'रीशलण्ड छीन लिया गया है उसके अधिवासी अभी तक हृदय स फरासीसी ही बने हुए हैं और अपने शरीर के इस

अग विच्छेद पर फरामीमी राष्ट्र अभी तक क्षुब्ध है, फरासीसी अभी तक प्रतिशोध (revanche) की भावनाओ से पूण हैं और अल्समलोरेन की गुलाम आबादी अब भी अपनी मुक्ति के वही सपने देख रही है जो स्लसविक, पोलड मसीडानिया एव आयर लड का दास आबादिया दखती रही हैं। इन पीडित जना ने इस विश्वास के आगे सिर नही झुकाया कि 'इतिहास का अत हो चुका है।' फिर भी उनका यह अदम्य विश्वास कि उनके लिए, यह असहनीय स्थापित प्रथा देर सबेर काल की सतत प्रवाहित धारा' म बह जायगी उस समय प्रभुताशाली शक्तिया के प्रतिनिधिया की अवसन्न कल्पना पर कुछ विशेष प्रभाव न डाल सका। बिना किसी सशय के यह बात कही जा सकती है कि १८९७ ई में कोई ऐसा जीवित स्त्री पुरुष राष्ट्रीय वा समाज वादी क्रान्ति क पक्के पगम्बरो मे भी नही था जिसने यह स्वप्न देखा हो कि राष्ट्रीय आत्मनिणय की माग, अगले पच्चीस वर्षों के अन्दर हैप्सबग, होहेजोलन और रोमनोव साम्राज्यो तथा ग्रेट ब्रिटेन एव आयरलड के यूनाइटेट किंगडम को तोडकर रख देगी, या यह कि पाश्चात्य विश्व के वनिपय अकालपक्व औद्योगिक प्रान्ता के शहरी श्रमिक वग स निकलकर सामाजिक लोकतन्त्र की माग मैक्सिको एव चीन के किसानो तक फल जायगी। गाधी (जन्म १८६९ ई) और लेनिन (जन्म १८७०) उस समय तक अज्ञातनामा थे। 'साम्यवाद' (कम्यूनिज्म) शब्द एक मलिन किन्तु अल्पकालिक तथा प्रकल्पित असगत अतीत आख्यान का द्योतक था जिसे इतिहास के समाप्त ज्वालामुखी का अतिम विस्फोट मान लिया गया था। १८७१ ई मे पेरिस के गुप्त जीवन म बबरता के इस अपशकुनकारी विस्फोट की, एक आश्चयजनक सनिक दुघटना के आघात की पतक रोगानुवर्त्तिनी (atavistic) प्रतिक्रिया मानकर, उपेक्षा कर दी गयी, और लोगो ने यह समझ लिया कि अब ऐसे अग्निकाण्ड की पुनरावृत्ति का कोई दिखायी दे सकने वाला भय नही रह गया है जिसे एक बूर्जो यड रिपब्लिक के आद्र आवरण के नीचे चतुथाश शती तक रखकर बुझाया जा चुका है।

यह आत्मतुष्ट मध्यवर्गीय आशावादिता महारानी विक्टोरिया को हीरक जयन्ती के समय कोई नयी बात नही थी। हम इसके १०० वष पूव गिबन के शानदार युग से तथा टर्गोट के उस १७५० म सारबोन स्थान के द्वितीय प्रवचन (Second Discourse) म देखते हैं जो उसने खीष्ट मत की स्थापना से मानव जाति को हुए लाभ' पर दिया था। इसके भा सौ वष और पहिले देखें तो वह हमे पेपीज के स्फुट विचारो म मिलता है। इस विचक्षण डायरी-लेखक ने राजनीतिक एव आर्थिक बॅरोमीटर म बढ़ती रेखा को पहिचाना था '१६४९ तथा और सब', जिसम सत बार्थोलोम्यू का कत्लेआम तथा स्पेनी इनक्विजिशन शामिल थे पुराना किस्सा हो चुका था। बल्कि पेपीज की पीढी वह पीढी थी जिससे हम उत्तर आधुनिक युग (लट माडन एज १६७५ १८७५) का आरम्भ मान चुके हैं और यह उत्तर-आधुनिक युग निष्ठा के महान युगो मे से एक था—प्रगति एव मानवीय परिपूणता म निष्ठा का युग। पेपीज से दो पीढियो पूव हम इस निष्ठा (फेथ) के अधिक उद्घोषपूण प्रवक्ता के रूप म फ्रांसिस बेकन के दशन होते हैं।

तीन सौ वर्षों तक जीवित रहने वाली निष्ठा जरा मुश्किल म मरती है और १९१८ मे इसे जो बाह्यत साघातिक आघात लगा था उसक भी दस वप बाद हम उसकी अभि यक्ति उग "याख्यान म पाते हैं जा प्राक जलप्लावनाय (Prediluvian) पीढ़ी के प्रतिष्ठित इतिहासकार एव जन-सवक गर जम्स हेडलाम मार्ले (१८६३ १९२९) ने दिया था—

इस (पाश्चात्य) सस्कृति का हमने जो विश्लेषण किया है उसमे हम पहिला महान् तथ्य यह पाते हैं कि यद्यपि सम्पूण पाश्चात्य यूरोप का निश्चय ही एक सामा य सवनिष्ठ इतिहास एव सामा य सभ्यता है, कि तु जनता किसी जाग्ते के राजनीतिक सघ मे सयोजित नहीं थी और न तो यह प्रदेश कभी एक सामा य शासन के अ तगत ही था। एक क्षण के लिए यह मालूम जरूर पडा था कि शालमेन सम्पूण क्षेत्र पर अपनी सत्ता स्थापित कर लेगा कि तु हम सब जानते हैं कि आशा निराशा में परिणत हो गयी, एक नवीन साम्राज्य को ज"म देने का उसका प्रयत्न असफल हो गया। उसके बाद किये गये सब प्रयत्न भी विफल हो गये। बाद के साम्राज्य द्वारा, स्पेन एव फ्रास के शासकों द्वारा एक महान राज्य या साम्राज्य के अ तगत समस्त पाश्चात्य यूरोप के एकीकरण का प्रयत्न बार-बार किया गया। सदा हम यही बात देखते हैं कि स्थानीय देशभक्ति तथा वयक्तिक स्वत त्रता एक एसे प्रतिरोध को प्रेरित करती है कि प्रत्येक विजता का प्रयत्न टूटकर रह जाता है। इसलिए यूरोप मे एक ऐसा स्थायी गुणधम उत्प न हो गया है जिसे आलोचक गण 'अराजकता' (Anarchy) के नाम से पुकारते हैं, क्योंकि एक सवनिष्ठ वा सामा य शासन के अभाव का अथ है—सघष, मुठभेड और युद्ध, राजक्षेत्र तथा अपनी प्रभुता के लिए शासन के प्रति योगी घटको के बीच, एक दूसरे के विरुद्ध निर तर चलने वाली अशा ति।

'यह एक एसी स्थिति है जो बहुतो को गहरी पीडा पहुचाती है। इसमें क्या स देह है कि इसमे ऊर्जा का अत्यधिक अपव्यय होता है, धन का बहुत ज्यादा नाश होता है और समय-समय पर जीवन का भी बहुत नाश होता है। फलत एसे बहुत से लोग हैं जो किसी एक ही सामा य शासन की क्रमिक स्थापना को वरीयता देते हैं और जो यूरोप के इतिहास की तुलना मे साम्राजिक रोम अथवा वतमान समय में सयुक्त राज्य (अमेरिका) को पेश करते हैं। दाते के समय से आगे, ऐसे बहुत से लोग मिलते हैं जो एक ऐसे व्यवस्थित शासन के लिए लालायित रहे हैं जो दवी विधान की सच्ची प्रतिकृति एव अस्त्र के रूप मे व्यक्त हो। न जाने कितनी बार हम यह सुनते हैं कि यदि अमेरिका की धरती पर अग्रेज और इटालियन, पोल और रूमानियन, जमन एव स्क डेनेवियन सब शाति एव तृप्तिपूवक, साथ-साथ रह सकते हैं तो फिर वे अपने मूल गृह मे उस तरह क्यों नहीं रह सकते ?

'म आज भविष्य के आदर्शों पर बहस करने नहीं आया हू यहां हमारा सम्ब ध अतीत के साथ है और हमें केवल इतना ही करना है कि हम इस

तथ्य को स्वीकार करें कि यह अराजकता, यह युद्धप्रियता, यह प्रतियोगिता ऐसे समय भी वर्तमान थी जब महाद्वीप की शक्तियां अपने सर्वोच्च बिन्दु पर थीं। आइए, हम इस बात को भी नोट करें कि भूमध्यसागरीय जगत (मेडीटेरेनियन वर्ल्ड) की शक्तियां—जीवनमयी प्रेरणा, कलामयी भावना, एवं बौद्धिक कुशलता—धीरे धीरे परन्तु निरन्तर ह्रासोन्मुखी होती गयीं और यह ह्रास एक सर्वनिष्ठ या सामान्य शासन की स्थापना के साथ ही आरम्भ हुआ। क्या ऐसा नहीं हो सकता कि अशान्ति एवं संघर्ष वस्तुतः केवल शक्ति विनाश ही नहीं, वरन् वह कारण भी रहा हो जिससे शक्ति या ऊर्जा उत्पन्न हुई ?'[1]

जो इंगलैण्ड एक इलहामी बिगुल का भयावनी ध्वनि से गूंज रहा था उसमें गिबन की आशाप्रद वाणी की प्रतिध्वनि सुनना अद्भुत-सा लगता है। जो भी हो १९२४ तक आघातपीडित पाश्चात्य जगत् में वह प्रतिकूल भावना, जो पूर्ववर्त्ती हेलेना सभ्यता के ह्रास एवं पतन के महत्व के एक भिन्न पाठ में व्यक्त हुई थी, प्रभावशालिनी हो चुकी थी।

हेडलम मार्ले-द्वारा उक्त भाषण दिये जाने के पांच वर्ष पहिले, पाल वेलेरी ने बड़ी वाग्मिता के साथ घोषणा की थी कि सभी सभ्यताएं मरणशील हैं। उस समय स्पेंगलर भी यही बात कह रहा था। अब हम देख सकते हैं कि प्रगति का सिद्धान्त अनेक भ्रमात्मक मान्यताओं पर आश्रित था। परन्तु क्या यह मान लेते ही हम इसके लिए बाध्य हो जाते हैं कि विनाश के सिद्धान्त (डाक्ट्रिन आफ डूम) को भी स्वीकार कर लें ? यह तो बड़ा बचकाना तर्क होगा। इस तरह तो कोई यह तर्क भी कर सकता है कि चूंकि हवाई दिमाग रखने वाला अर्थात् हवाई कल्पनाएं करने वाला ज्ञानी निराशा के गर्त्त में गिर पड़ा है इसलिए उससे बाहर निकलने का कोई रास्ता हो नहीं हो सकता। वेलेरी का निराशावाद एवं गिबन का आशावाद, दोनों ही एक समान ऐसे मनोभावों के युक्तिकरण (rationalisation) हैं जो उनके अपने अपने जीवन के लघु विस्तार में, बाह्य दृष्टि से देखने में उचित जान पड़ते थे।

[1] जे डब्लू हेडलम-मार्ले ई एच कार्टर-सम्पादित 'दि न्यू पास्ट ऐण्ड अदर एसेज आन दि डवलपमेंट आफ सिविलाइजेशन' में 'दि कल्चरल यूनिटी आफ वेस्टर्न यूरोप' (आक्सफोर्ड १९२५ ब्लैकवेल, पृष्ठ ८८ ८९)

४१

सभ्यताओं के इतिहासो का साक्ष्य

(१) पाश्चात्येतर दृष्टान्त सहित पाश्चात्य अनुभव

इस अध्ययन के आरम्भिक भागो म हमने सम्बद्ध ऐतिहासिक तथ्यो के सर्वेक्षण द्वारा सभ्यताओं के भग होने के कारणो और उनके विघटन प्रक्रमो के सम्बन्ध मे अन्तर्दृष्टि प्राप्त करने की चेष्टा की है। और उनके विघटन का अध्ययन करते समय हमने देखा कि हर मामले मे कारण आत्म निर्णय का कोई न कोई वफल्य ही रहा है। कोई भी टूट गया समाज अपने ही द्वारा निर्मित किसी मूर्ति की दासता म गिरकर क्षमकारी वरण स्वातत्र्य की शक्ति खो देता है। खीष्टीय सवत् की बीसवी शती के मध्य भाग म पाश्चात्य समाज स्पष्टत अनेक मूर्तियो की पूजा मे फस चुका था, किन्तु इन सब मे एक और सबके ऊपर थी—ग्राम्य राज्य की पूजा। आधुनिकोत्तर पाश्चात्य जीवन की यह बात दो कारणो से भयावह अपशकुन की द्योतक थी। इसका पहिला कारण तो यह था कि यह मूर्तिकरण पाश्चात्य रग म रगती दुनिया के निवासियो के बहुमत का सच्चा यद्यपि अघोषित, धम था दूसरा इसलिए कि यह मिथ्याधर्म लेखाकित २१ सभ्यताओ मे से १४ बल्कि शायद १६, का विनाश साधक रह चुका था।

सदा वृद्धिशीला हिंसा से पूर्ण भ्रातृघाती लडाई ही तीनो पीढियो की सभ्यताओ की मृत्यु का सर्वनिष्ठ कारण रही है। पहिली पीढी मे इसने निश्चित रूप से सुमेरु तथा ऐन्दियाई (ऐंदियन) सभ्यताओ का और सभवत मिनोन सभ्यता का भी विनाश साधन किया। दूसरी पीढी मे इसने बेबिलोनी इडिक, सीरियाई हलेनी सिनाई (चीनी) मक्जियाई तथा यूकेतियाई (मक्जिक ऐंड यूकेतिक) सभ्यताओ को उदरस्थ कर लिया। तीसरी पीढी मे वह परम्परानिष्ठ कट्टर ईसाई (मुख्य सस्था और उससे उत्पन्न रूसी शाखा दोनो) सुदूरपूर्व की जपानी शाखा हिन्दू तथा ईरानी सभ्यताओ को खा गयी। इनके बाद पाश्चात्य के सिवा जो पाच सभ्यताए बच जाती हैं उनमे से भी हम सन्देह है कि प्रस्तरीकृत मिस्री जगत के विरुद्ध पूर्णत झुक जाने के पहिले घर के भ्रातघाती युद्ध के द्वारा हित्ताई (हिताइत) ने भी विनाश को निमन्त्रण दिया तथा अन्त म एक बर्बरीय बोल्कर वान डर उग के सामने भहरा पडी। हा, अभी तक माया सभ्यता म ऐसे भ्रातघाती युद्ध का कोई भी प्रमाण नही है। ऐसा जान पडता है कि मिस्र तथा चीन की सुदूरपूर्वीय सभ्यताओं ने एक दूसरी ही मूर्ति अर्थात निरन्तर

परापजीविनी होती जाने वाली नौकरशाही (ब्यूरोक्रेसी) के साथ चल रही विश्वव्यापी धमनीति के लिए प्राण त्याग किया। अब सिर्फ अरबी समाज का एक नमूना रह जाता है जो शायद किसी अ यायावरीय जगत का परोपजीविना यायावर-संस्था—मिस्री मामलूकों के प्रभुताप्राप्त गुलामों—द्वारा नष्ट हो चुका होता, यदि वह किसी विजातीय आक्रमणकारी द्वारा विनष्ट हो जाने का एक मात्र दृष्टान्त नहीं उपस्थित करता।

इसके अलावा, पाश्चात्य इतिहास के आधुनिकोत्तर अध्याय में प्रभुतासम्पन्न ग्राम्य राज्यों के प्रतिमोपासन (idolization) का विनाशकारी प्रभाव एक दानवी झटके में बढ गया था। सार्वभौम चर्च का नियन्त्रणकारी प्रभाव हट गया था। राष्ट्रीयता के रूप में लोकतन्त्र के संघात ने, बहुधा किसी नवानुरागिनी विचार धारा के साथ मिलकर, युद्ध को और कटु बना दिया, तथा उद्योगवाद एवं औद्योगिकी द्वारा दिये गये प्रोत्तेजन ने अधिकाधिक विनाशकर होने जाने वाले अस्त्रों से युद्धार्थियों को सज्जित कर दिया।

जिस औद्योगिक क्रान्ति ने ख्रीष्टीय संवत् की अठारहवीं शती में पाश्चात्य जगत् को प्रभावित करना शुरू किया था वह उस आर्थिक क्रान्ति की प्रतिमूर्ति थी जिसने छठी शती ईसापूर्व हेलेनी जगत् को आच्छन्न कर लिया था। दोनों ही मामलों में जो समुदाय अपनी जीविका, न्यूनाधिक, एकान्त में गुजर बसर भर की खेती करके चला लेते थे, अब एक दूसरे के साथ मिलकर एक-दूसरे के साथ हिस्सेदार बनकर अपनी उपज एवं आय बढाने के लिए विशेष वस्तुएं पैदा करने और उनका विनिमय करने लगे। ऐसा करने के कारण वे अब आत्मनिर्भर तथा आर्थिक रूप से स्वतन्त्र (autarkic) नहीं रह गये, अब यदि वे चाहते तो भी अपनी आर्थिक स्वतन्त्रता कायम नहीं रख सकते थे। दोनों ही मामलों में इसका परिणाम यह हुआ कि आर्थिक स्तर पर समाज का एक नया ढांचा बन गया जो उसके आर्थिक स्तर वाले ढांचे से बेमेल था और हेलेनी समाज का सामाजिक संरचना की त्रुटि का जो साघातिक परिणाम हुआ उसके बारे में हम पहिले ही एकाधिक बार लिख चुके हैं।

आधुनिक पाश्चात्य इतिहास का एक निराशाजनक लक्षण, पहिले प्रशा तथा बाद में जर्मनी में एक ऐसे सैनिकवाद का अवतरण था जो अन्य सभ्यताओं के इतिहास में साघातिक सिद्ध हो चुका था। यह सैनिकवाद पहिले पहल प्रशन राजा फ्रेडरिक विलियम प्रथम तथा फ्रेडरिक महान (१७१३ ८६) के राज्यकाल में ऐसे समय आया जबकि उत्तरकालिक पाश्चात्य इतिहास के सभी युगों से युद्ध-संचालन सर्वाधिक औपचारिक तथा उसकी विनाशकता सबसे कम रह गयी थी। अपनी अन्तिम अवस्था में, हमारे लिखने के समय तक, राष्ट्रीय समाजवादी (नेशनलिस्ट सोशलिस्ट) जर्मनी के उन्मत्त सैनिकवाद की तुलना सिर्फ उस असीरियाई कोहराम (Furor Assyriacus) से की जा सकती है जो उसका तापमान टिगलथ-पाइलेसर तृतीय (राज्यकाल ७४६ ७२७ ईसापूर्व) द्वारा तीसरी डिग्री तक पहुचा दिये जाने के बाद घटित हुआ था। हमारे लिखने के समय तक यह बात और ज्यादा सन्देहास्पद हो गयी है कि (हिटलर के) राष्ट्रीय समाजवादी समर-यन्त्र के अभूतपूर्व निष्ठुर संहार ने पाश्चात्य रंग में रंगी

दुनिया के सभी भागो से सनिकवाद के गवल्प को नष्ट कर दिया है या नही।

परन्तु इन अपशकुनो के साथ-साथ कुछ अनुकूल लक्षण भी दिखायी पड रहे थे। एक ऐसी प्राचीन प्रथा वा प्रणाली से पाश्चात्य सम्यता मुक्त हो गयी है जो युद्ध से कुछ कम बुरी न थी। जिस समाज ने दास प्रथा को समाप्त कर दने म सफलता पायी है वह एक खीष्टीय आदश की इस अभूतपूव विजय मे युद्ध की समवयस्का सस्था को खत्म कर देने के लिए भी साहस सचित कर सकता है। जब से समाज की इस प्रजाति का जन्म हुआ तभी से दासता एव युद्ध सम्यता के दो नासूर रहे हैं। इनम से एक पर हुई विजय दूसरे के विरुद्ध हाने वाले अभियान की सम्भावनाओ क लिए शुभ शकुन है।

फिर जो पाश्चात्य समाज अब भी युद्ध से जजर किया जा रहा है अन्य आध्यात्मिक मोर्चों पर के अपने रेकड या काय से प्रोत्साहन प्राप्त कर सकता है। उद्योगवाद के सघात से वैयक्तिक सम्पत्ति की परम्परा को जो चुनौती प्राप्त हुई थी उसका उत्तर देने मे पाश्चात्य समाज ने अनेक देशो मे सफलता पायी है और एक अप्रतिबन्धित आर्थिक व्यक्तिवाद के साइला[1] तथा राज्य-द्वारा निरकुशतापूवक नियन्त्रित आर्थिक काय क्लाप के चरीबदिस[2] के बीच एक रास्ता निकालने का काम कुछ आग बढा है। शिक्षण से लोकतन्त्र की जो टक्कर हुई है उसे सभालने म भी कुछ सफलता मिली है। जो बौद्धिक कोषागार सम्यता के उष काल से एक बहुत छोटे अल्पमत की बडी हिफाजत के साथ रक्षित और निष्ठुरतापूवक उपभोग की जाने वाली बपौती-सी था उसके द्वार सबके लिए खोलकर लोकतत्र की आधुनिक पाश्चात्य प्रेरणा न मानव जाति को एक नवीन आशा का दान किया है, यद्यपि इससे एक नया खतरा भी उसके सामने आ गया है। यह खतरा उस सुविधा में है जो एक प्रारम्भिक सावभौम शिक्षा ने प्रचार के लिए उपस्थित कर दी है। वह उस कौशल एव चरित्रशून्यता मे भी है जिसके साथ इस सुविधा का लाभ विज्ञापन विक्रेता सवाद-समितिया, अनुचित दबाव डालने वाले वग, राजनीतिक दल तथा निरकुश वा एकदलीय सरकारें उठा रही है। आशा इस सम्भावना मे है कि अद्ध शिक्षित जनता के ये शोषणकर्ता अपने शिकार को इतना ज्यादा अनुकूलित करने मे समथ न हो पायेंगे कि उनकी शिक्षा की गति को उस बिन्दु की ओर जाने से रोक सकें जहा पहुचकर वे ऐसे शोषण से सुरक्षित हो जाय।

किन्तु जिस मैदान म निर्णायक आध्यात्मिक लडाई लडी जाने की सम्भावना है वह न तो सनिक है न सामाजिक न तो आर्थिक है न बौद्धिक क्योकि १९५५ ई मे पाश्चात्य मानव के सामने जो उत्कट प्रश्न खडे हैं वे सब धार्मिक हैं।

जूडियाई धम घोर रूप से रचनात्मक थे किन्तु उन्होंने अपनी ही उक्तियो को मिथ्या सिद्ध करने वाली असहिष्णुता के जो अभियोगी उदाहरण सामने रखे उनसे वे बदनाम हो गय हैं। क्या यह बदनामी की क्षति अपूरणीय है? क्या उस धार्मिक

[1] साइला (Scylla)—यूनानी पुराण का षडानन दानव।—अनु०

[2] ओडसी महाकाव्योक्त राक्षस जो समुद्र पीकर उलट देता था। अनु०

सहिष्णुता में कोई पुण्य, कोई सुकृत था जिसमें एक निराश पाश्चात्य जगत सत्रहवीं शती के अन्तिम भाग मे ठडा पड गया था ? बिना धम के चलते जाना पाश्चात्य आत्माएं कब तक सहन करती रहेगी ? और जब आध्यात्मिक रिक्तता की पीडा ने उन्हे राष्ट्रवाद, फसिज्म एव साम्यवाद जसे दानवो के द्वार खोलने को प्रलुब्ध कर दिया है तो सहिष्णुता मे उनका पिछला विश्वास कबतक टिका रह सकेगा ? जिस शिथिल उत्साहहीन युग मे पाश्चात्य खीष्टमत की विविध शाखाए पाश्चात्य हृदयो एव मस्तिष्को पर अपने अधिकार खो चुकी थी और लोगो को अपनी हताश एव निष्फल हो रही भक्ति के लिए दूसरे आस्पद प्राप्त नहीं हुए थे तब सहिष्णुता सरल थी। आज तो जब वे दूसरे देवों की मूर्ति के पीछे दीवाने हैं तब क्या इस बीसवीं शती की मतान्धता के आगे अठारहवी शती का सहिष्णुता खडी हो पायेगी ?

जो सन्तानें पाश्चात्य जगत मे अपने उन पूर्वजो के एक सत्य परमेश्वर से भटककर दूर चले गये है जिन्होने भ्रममोचनकारी अनुभवो से सीखा था कि साम्प्रदायिक चर्चों की भाति ग्राम्य या सकुचित राज्य भी ऐसी ही प्रतिमाए हैं जिनकी पूजा शान्ति नहीं, तलवार ले आती है शायद प्रतिमोपासना के विकल्प के रूप म समष्टि मानवता (कलेक्टिव ह्यूमनिटी) को ग्रहण करने के लिए लालायित हो जाय। जिस 'मानवता धम' की उस कोमतीय प्रत्यक्षवाद (Comtian Positivism) के शीतल सांचे मे आग से भेंट नही हुई वही जब माक्सवादी साम्यवाद की तोप के मुह से छोडा गया तो उसने सारी दुनिया मे आग लगा दी। 'दिया रोमा (देवी रोमा) तथा दियस सीजर (देव सीजर) के पन्थ मे मूत्त सामूहिक मानवता की हेलेनी पूजा के विरुद्ध आत्माओं की मुक्ति के लिए खीष्टधम ने अपने यौवनकाल मे जो जीवन या-मरण का युद्ध छेडा था और उसम विजय प्राप्त की थी, उसे दो हजार वर्षों के बाद रूसी विशाल दत्य (लिवियेथन) की पूजा के किसी उत्तरकालिक मूर्त्त रूप के विरुद्ध क्या फिर से छेडना पडेगा ? हेलेनी नजीर इस सवाल को पैदा तो करती है, किन्तु उसका उत्तर नही देती।

यदि हम पश्चिमी दुनिया के विभग के लक्षणो को छोड अब उसके विघटन के लक्षणों पर आते हैं तो हम याद करना होगा कि समाज निकाय म विच्छेद के अपने विश्लेषण से हमे पता लगा था कि उत्तरकालिक पाश्चात्य जगत् मे प्रभुताशाली अल्पमत, आन्तरिक श्रमजीवी वग तथा बाह्य श्रमजीवी वग वाले स्वभावानुरूप त्रिस्तरीय विभाजन के असन्दिग्ध चिह्न मिलते हैं।

पाश्चात्य जगत् के बाह्य श्रमजीवी वग के विषय में हमें ज्यादा लिखने की जरूरत नही है, क्योकि पहिले वाले बबर मूलोच्छेदन-द्वारा नही बल्कि उस पाश्चात्य आन्तरिक श्रमजीवी वग म स्थानान्तरित होकर समाप्त होते जा रहे थे जिसने मनुष्य जाति की जीवित पीढी के बहुत बडे बहुमत को आत्मसात् कर लिया था। इस प्रकार जो बबर बलात् घरेलू या पालतू बना लिये गये वे वस्तुत उन मानवदलो मे सबसे छोटे सबसे अल्पसख्यक थे जिनसे पाश्चात्य समाज का यह बीसवीं शती वाला आन्तरिक श्रमजीवी वग गठित था। उसम इससे कही ज्यादा सख्या तो पाश्चात्येतर सभ्यताओं के उन बच्चो की थी जो विश्वव्यापी पाश्चात्य जगत् मे फँस गये थे। एक तीसरा दल,

दुनिया के सभी भागों से सैनिकवाद ने मनुष्य को नष्ट कर दिया है या नहीं।

परन्तु इन अपशकुनों के साथ-साथ कुछ अनुकूल लक्षण भी दिखायी पड़ रहे थे। एक ऐसी प्राचीन प्रथा या प्रणाली से पाश्चात्य सभ्यता मुक्त हो गया है जो युद्ध से कुछ कम बुरी न थी। जिस समाज ने दास प्रथा का समाप्त करने में सफलता पायी है वह एक खीष्टीय आत्मा की इस अभूतपूर्व विजय से युद्ध की समस्या को खत्म कर देने के लिए भी साहस संचित कर सकता है। जब से समाज की इस प्रजाति का जन्म हुआ तभी से दासता एवं युद्ध सभ्यता के दो नासूर रहे हैं। इनमें से एक पर हुई विजय दूसरे के विरुद्ध होने वाले अभियान की सम्भावनाओं के लिए शुभ शकुन है।

फिर जो पाश्चात्य समाज अब भी युद्ध से जर्जर किया जा रहा है अन्य आध्यात्मिक मोर्चों पर वह अपने स्वत्व या शक्ति से प्रोत्साहन प्राप्त कर सकता है। उद्योगवाद के सघात से वैयक्तिक सम्पत्ति की परम्परा को जो चुनौती प्राप्त हुई थी उसका उत्तर देने में पाश्चात्य समाज ने थोड़ी देर में सफलता पायी है और एक अप्रतिबन्धित आर्थिक व्यक्तिवाद के साइला[1] तथा राज्य-द्वारा निरंकुशतापूर्वक नियन्त्रित आर्थिक कार्य-कलाप के करीबदिस[2] के बीच एक रास्ता निकालने का काम कुछ आगे बढ़ा है। शिक्षण से लोकतन्त्र की जो टक्कर हुई है उसे सभालने में भी कुछ सफलता मिली है। जो बौद्धिक कोषागार सभ्यता के उपकाल से एक बहुत छोटे अल्पमत की बड़ी हिफाजत के साथ रक्षित और निष्ठुरतापूर्वक उपभोग की जाने वाली बपौती-सी था उसके द्वार सबके लिए खोलकर लोकतन्त्र की आधुनिक पाश्चात्य प्रेरणा ने मानव जाति को एक नवीन आशा का दान किया है, यद्यपि इससे एक नया खतरा भी उसके सामने आ गया है। यह खतरा उस सुविधा में है जो एक प्रारम्भिक सार्वभौम शिक्षा ने प्रचार के लिए उपस्थित कर दी है। वह उस कौशल एवं चरित्रशून्यता में भी है जिसके साथ इस सुविधा का लाभ विज्ञापन विक्रेता सवाद-समितियाँ अनुचित दबाव डालने वाले वर्ग, राजनीतिक दल तथा निरकुश या एकदलीय सरकारें उठा रही हैं। आशा इस सम्भावना में है कि अर्द्ध शिक्षित जनता के ये शोषणकर्त्ता अपने शिकार को इतना ज्यादा अनुकूलित करने में समर्थ न हो पायेंगे कि उनकी शिक्षा की गति को उस बिन्दु की ओर जाने से रोक सकें जहाँ पहुँचकर वे ऐसे शोषण से सुरक्षित हो जायँ।

किन्तु जिस मैदान में निर्णायक आध्यात्मिक लड़ाई लड़ी जाने की सम्भावना है वह न तो सैनिक है, न सामाजिक न तो आर्थिक है न बौद्धिक क्योंकि १९५५ ई० में पाश्चात्य मानव के सामने जो उत्कट प्रश्न खड़े हैं, वे सब धार्मिक हैं।

जूडियाई धर्म घोर रूप से रचनात्मक थे किन्तु उन्होंने अपनी ही उक्तियों को मिथ्या सिद्ध करने वाली असहिष्णुता के जो अभियोगी उदाहरण सामने रखे उनसे वे बदनाम हो गये हैं। क्या यह बदनामी की क्षति अपूरणीय है? क्या उस धार्मिक

[1] साइला (Scylla)=यूनानी पुराण का षडानन दानव।—अनु०

[2] ओडसी महाकाव्योक्त राक्षस जो समुद्र पीकर उलट देता था। अनु०

सहिष्णुता मे कोई पुण्य, कोई सुकृत था जिसमे एव निराश पाश्चात्य जगत सत्रहवी शती के अन्तिम भाग मे ठडा पड गया था ? विना धर्म के चलते जाना पाश्चात्य आत्माए कब तक सहन करती रहेगी ? और जब आध्यात्मिक रिक्तता की पीडा ने उन्हें राष्ट्रवाद, फसिज्म एव साम्यवाद-जैसे दानवो के द्वार खोलने को प्रलुब्ध कर दिया है तो सहिष्णुता मे उनका पिछला विश्वास कबतक टिका रह सकेगा ? जिस शिथिल उत्साहहीन युग मे पाश्चात्य खीष्टमत की विविध शाखाए पाश्चात्य हृदयो एव मस्तिष्को पर अपने अधिकार खो चुकी थी और लोगो को अपनी हताश एव निष्फल हो रही भक्ति के लिए दूसरे आस्पद प्राप्त नही हुए थे तब सहिष्णुता सरल थी। आज तो जब वे दूसरे देवों की मूर्ति के पीछे दीवाने हैं तब क्या इस बीसवीं शती की मताधता के आगे अठारहवी शती का सहिष्णुता खडी हो पायेगी ?

जो सैलानी पाश्चात्य जगत मे अपने उन पूवजो के एक सत्य परमेश्वर से भटककर दूर चले गये हैं जिन्होने भ्रममोचनकारी अनुभवो से सीखा था कि साम्प्रदायिक चर्चों की भाति ग्राम्य या सकुचित राज्य भी ऐसी ही प्रतिमाए हैं जिनकी पूजा शान्ति नहीं, तलवार ले आती है, शायद प्रतिमोपासना के विकल्प के रूप मे समष्टि मानवता (कलेक्टिव ह्यूमैनिटी) का ग्रहण करने के लिए लालायित हो जाय। जिस 'मानवता-धम' की उस कोमटीय प्रत्यक्षवाद (Comtian Positivism) के शीतल साचे में आग से भेंट नही हुई वही जब मार्क्सवादी साम्यवाद की तोप के मुह से छोडा गया तो उसने सारी दुनिया मे आग लगा दी। दिया रोमा (देवी रोमा) तथा दियस सीजर' (देव सीजर) के पन्थ मे मूत सामूहिक मानवता की हेलेनी पूजा के विरुद्ध आत्माओ की मुक्ति के लिए खीष्टधम ने अपने यौवनकाल मे जो जीवन या-मरण का युद्ध छेडा था और उसमे विजय प्राप्त की थी, उसे दो हजार वर्षों के बाद रूसी विशाल दत्य (लेवियेथन) की पूजा के किसी उत्तरकालिक मूर्त रूप के विरुद्ध क्या फिर से छेडना पडेगा ? हेलेनी नजीर इस सवाल को पैदा तो करती है, किन्तु उसका उत्तर नहा देती।

यदि हम पश्चिमी दुनिया के विभग के लक्षणो को छोड अब उसके विघटन के लक्षणों पर आते हैं तो हमे याद करना होगा कि समाज निकाय मे विच्छेद के अपने विश्लेषण से हम पता लगा था कि उत्तरकालिक पाश्चात्य जगत् मे प्रभुताशाली अल्पमत, आन्तरिक श्रमजीवी वग तथा बाह्य श्रमजीवी वग वाले स्वभावानुरूप त्रिस्तरीय विभाजन के असन्दिग्ध चिह्न मिलते हैं।

पाश्चात्य जगत् के बाह्य श्रमजीवी वग के विषय में हमे ज्यादा लिखने की जरूरत नही है क्योंकि पहिले वाले बबर, मूलोच्छेदन-द्वारा नही बल्कि उस पाश्चात्य आतरिक श्रमजीवी वग म रूपातरित होकर समाप्त होते जा रहे थे जिसने मनुष्य जाति की जीवित पीढी के बहुत बडे बहुमत को आत्मसात् कर लिया था। इस प्रकार जो बबर बलात् घरेलू या पालतू बना लिये गये वे वस्तुत उन सैन्यदलों में सबसे छोटे सबसे अल्पसख्यक थे जिनमे पाश्चात्य समाज का यह बीसवी शती वाला आन्तरिक श्रमजीवी वग गठित था। उनम इससे कही ज्यादा सख्या तो पाश्चात्येतर सभ्यताओं के उन बच्चों की थी जो विश्वव्यापी पाश्चात्य जगत् मे फँस गये थे। एक तीसरा दल,

तीनो म सबमे दुखी और इसीलिए सब मे सक्रिय विरोधी, विविध उद्गमो से आये ऐसे पाश्चात्य तथा पाश्चात्येतर लोगो का था जो विभिन्न सीमाओ तक अवपीडित थे। इनमे उन नीग्रो दासो की सतति थी जिनको बलात् अतलान्तसागर के पार ले जाकर प्रतिरोपण कर दिया गया था इनमे उन भारतीय एव चीनी गिरमिटिया मजूरो के बच्चे थे जिनका समुद्र पार आप्रवासन प्राय उतना ही अस्वच्छिक था जितना अफ्रीकी दासो का था। फिर दूसरे एस भी थे जो समुद्र सतरण किये बिना ही निमूल कर दिये गये थे। श्रमजीवीकरण (प्रोलतरियाइजेशन) के सबसे सगीन उदाहरण तो 'प्राचीन दक्षिण (ओल्ड साउथ) सयुक्तराज्य अमेरिका और दक्षिण अफ्रीकी सघ (यूनियन आफ साउथ अफ्रीका) के गिरोह गोरे थे जो अपने ज्यादा सफल सगी उपनिवेशियो (कालोनिस्टस) द्वारा आयात किये गये या देशज ही अफ्रीका भूमिदासो के स्तर तक गिर चुके थे। कि तु इन सब प्रमुख अभागे वर्गों से बढकर और उनके भी ऊपर जहा कहा ग्राम या नगर मे ऐसे लोग समूहो मे रह रहे थे जो अनुभव करते थे कि पाश्चात्य समाज व्यवस्था उन्हें वह सब नही दे रहा है जिसको पाना उनका अधिकार है वही आतरिक श्रमजीवी वग बन गया था। क्योकि इस अध्ययन म श्रमजीवी वग (प्रोलेतेरियत) की हमारी परिभाषा, शुरु से अखीर तक मनोवैज्ञानिक रही है और हमने निरतर उन लोगो के लिए इसका प्रयोग किया है जो अनुभव करते थे कि जिस समाज म वे शरीरत सम्मिलित कर लिये गये हैं आध्यात्मिक रूप से वे उसके अतगत नही हैं।

एक प्रभुत्वशाली अल्पमत के विरुद्ध श्रमजीवीवर्गीय प्रतिक्रिया की हिंसक अभिव्यक्ति मध्ययुगीन कृषक युद्धो से लेकर फरासीसी क्रांति व जकोबिनिज्म[1] तक विविध युगो एव विविध स्थानो म होती आयी थी। ख्रीष्टीय सवत की बीसवी शती के मध्य भाग म वह अपने को पहिले स कही ज्यादा प्रबल रूप म अभिव्यक्त कर रही थी। यह अभिव्यक्ति दो रूपो म हो रही थी। जहा शिकायतें मुख्यत आर्थिक थी वहा वे साम्यवाद के रूप म प्रकट हुई जहा वे राजनीतिक या जातीयताबोधक थी वहा उनकी

[1] १७८६ ई में फ्रांस में जो क्रांति हुई उसमें रडिकल डमोक्रटस (उग्र लोकतन्त्र वादियों) ने एक सस्था बनायी थी जिसका नाम 'क्लब ब्रोटेन' था और सदस्यगण उसे सोसाइटी आफ दि फ्रेंडस आव दि कास्टिट्यूशन (विधान क मित्रों की सभा) कहते थे। किन्तु जो उनके विरोधी थे वे उसको उसी नाम के चच क निकट स्थित होने क कारण जकोबिस कहने लगे। बाद में इस सस्था पर उग्र आन्दोलनकारियो ने कब्जा कर लिया और रोब्सपीरी क नेतत्व में उन्होंने चतुर्दिक आतक का राज्य कायम कर दिया। बाद में उसक पतन के साथ ही यह सोसाइटी भी खण्डित हो गयी, यद्यपि निश्चित रूप में १७९९ तक चलती रही। इन्हीं फ्रासीसी जकोबिनों के सिद्धान्त का नाम जकोबिनिज्म पड गया। व्यवस्थित सरकार के उग्र विरोध या उग्रपंथियों (रडिकलिज्म) क लिए इस शब्द का प्रयोग किया जाता है।

—अनुवादक

अभि यक्ति उपनिवेशवाद के विरुद्ध राष्टीय विद्रोह के रूप मे हुई।

१९५५ ई मे पाश्चात्य सभ्यता के लिए रूसो चीनी साम्यवादी गुट की जो धमकी थी वह बडी स्पष्ट एव भयप्रद थी कि तु इसके साथ ही दूसरे पक्ष के खाते म ऐसी अनेक रकम दज थी जो यद्यपि इनसे कम सनसनी पैदा करने वाली थी कि तु कुछ कम महत्त्वपूण न थी।

पहिली बात जो एक सकटग्रस्त पाश्चात्य सभ्यता के पक्ष म कही जा सकती है यह है कि जिस जागतिक साम्यवाद ने पाल जसे जोश के प्रदशन के साथ कहा था कि वह यहूदी एव यूनानी के बीच के समस्त विषाक्त भेदो के ऊपर उठ चुका है, उसी म रूसी राष्ट्रवाद की खोटी धातु का मिश्रण हो गया। अनिष्ठा की यह शिरा साम्यवादी क नलिक अस्त्रागार की एक त्रुटि थी। जब प्राच्य एशिया मे पाश्चात्य हितो पर गहरा सकट छा गया था तब यदि कोई ऐसा पाश्चात्य पारेंद्रियज्ञानी (telepathist) होता जो क्रमलिन के वद्धोष्ठ राजममज्ञो के हृदय क अन्दर देख सकता तो देखता कि वे अपने चीनी मित्रो की अदभुत सफलताओ को मिश्रित भावनाओ (खुशी और रज दोनो) के साथ देख रहे हैं। आखिरकार मचूरिया मगोलिया एव सिक्यिाग का भविष्य चीन और रूस दोनो के लिए ही उससे कही ज्यादा महत्त्वपूण है जितना कि इडोचाइना, हागकाग और फारमोसा का भविष्य उनके लिए है। इसकी भी कल्पना की जा सकती है कि मलेनकोव या उसका उत्तराधिकारी ख्रुश्चेव या उसका भी सम्भव उत्तराधिकारी जो अभी क्षितिज के नीचे है द्वितीय टीटो बन जाय और जब जमनी और जपान पश्चिम द्वारा तथा चीन रूस द्वारा शस्त्र सज्जित हो चुकें तब शायद एक भीन पश्चिम एक भीन रूस की दलित मानव की आशा के रूप म जय जयकार करने लगे। जो कमर विल्हेल्म द्वितीय अब से बहुत पहले अनादृत हो चुके हैं उन्हीं ने पहिले पीत सकट (Yellow Peril) की ओर ध्यान आकर्षित किया था और तब उन्हें अपने इस प्रयास के लिए मूख कहकर पुकारा गया था किन्तु उस अवस्था मे भी कुछ लेखक अपने इस विचार को दृढतापूवक प्रकट करते रहे कि वह न केवल एक शुभाकाक्षी वर विचक्षण व्यक्ति भी थे और इस एक बात मे तो हिटलर ने भी कमर की विवेक बुद्धि की प्रशसा की थी।

प्रथम दृष्टि म अविश्वासजनक भी दिखायी पडने वाली यह ऋतु सम्बन्धी भविष्यवाणी (Prognostication) दो निर्विवाद एव दृढ तत्त्वो पर आधारित थी। रूस की गोरी जाति' के पितदाय का एक मात्र मुख्य क्षेत्र था जिसम बीसवी शती मे भी आबादी उसी गति से बढ रही थी जिस गति से वह पाश्चात्य यूरोप एव उत्तरी अमेरिका मे उन्नीसवी शती मे बढी थी। फिर रूस 'गोरी जाति' के पितृदाय का एसा प्रात भी था जो चीन एव भारत की महाद्वीपीय सीमाओ तक फला हुआ था। मान लीजिए इनम से कोई एक या दोनो एसे उपमहाद्वीप जिनम स हर एक म सम्पूण मनुष्य जाति की चौथाई आबादी बसती है पश्चिमीकरण की प्रक्रिया को इस सीमा तक पूण करने म सफल हो जाते है कि समाज के सामरिक एव राजनीतिक पक्के चिट्ठे या तलपट—बलेंसशीट— म उनका स्थान उनकी जनसख्या के अनुरूप हो जाता है तो फिर

यह उम्मीद तो का ही जा सकती है कि बलात्तेजित भीम (समसन) अवतक ससार मे हुए अत्यन्त विषम एव अन्यायपूर्ण प्रदेशगत तथा प्राकृतिक सम्पत्ति के वतमान विभाजन म सशोधन की माग करेगा। उस स्थिति म, अपने ही अस्तित्व की रक्षा के लिए यत्नशील रूस उसके आश्रय मे सुखपूवक सुरक्षित पाश्चात्य जगत् के लिए शायद अनिच्छापूवक प्रतिरोधक (बफर) की वसी ही अपुरस्करणीय सेवा करने को विवश हो जाय जसी एक दिन उसी पाश्चात्य के लिए परम्परानिष्ठ ईसाई धमराज्य की प्रमुख शाखा न तब की थी जब विस्फोट का केन्द्र भारत या चीन नही था बल्कि गतिशील आदिम कालिक मुस्लिम अरबो के नेतत्व मे सयुक्त एव सगठित दक्षिण-पश्चिम एशिया था।

ये सब एक एसे भविष्य के विषय मे अनुमानाश्रित भविष्यवाणिया हैं जिसका अभी तक दशन नही हुआ है। प्रोत्साहन के लिए इससे ज्यादा सुदृढ भूमि तो शायद यह तथ्य है कि जिस पाश्चात्य समुदाय की कोरिया म चीनियो से प्रबल भिडत हो गयी और जो इडोचीन मे बुरी तरह फँस गया था उसने जापानियो के चगुल म इडोनशियनो के मुक्त होते ही उनके साथ समझौता कर लिया और फिलिपिनो सीलोनियो बर्मियो भारतीयो तथा पाकिस्तानियो के ऊपर से अपना राज्य स्वेच्छापूवक समाप्त कर दिया। जिस एशिया का प्रतिनिधित्व ब्रिटिश राज की भूतपूव विविध प्रजाए करती थी उनके तथा उत्तरकालीन आधुनिक पाश्चात्य साम्राज्यवाद के ब्रिटिश प्रतिपादको द्वारा प्रतिनिधित्व करने वाले पाश्चात्य समाज के बीच यह जो फिर से मेल हो गया है उससे कम से कम आशिक रूप मे, इस सम्भावना के द्वार खुल गये हैं कि विश्व विस्तत पाश्चात्य आन्तरिक श्रमजीवीवग का विशाल एशियाई दल जो पाश्चात्य प्रभुताशाली अल्पमत से अलग होने की ओर बढता जा रहा था आशिक रूप मे ही सही अपना रास्ता बदल दे और उसके बदले अपने भूतपूव पाश्चात्य स्वामियो के साथ समानता की शर्तों पर आश्रित साझेदारी के लक्ष्य को स्वीकार कर ले।

इसी तरह की किसी बात की आशा इस्लामी जगत के एशियाई एव उत्तरी अफ्रीकी प्रान्तो तथा सहारा के दक्षिणस्थित अधिकाश अफ्रीका के लिए भी की जा सकती है। इनकी अपक्षा अधिक विषम असमाधेय समस्या तो उन क्षेत्रो द्वारा उपस्थित की गयी जिनम जलवायु की अनुकूलता ने पाश्चात्य यूरोपीय को न केवल अपना शासन स्थापित करने बल्कि अपना घर बना लेने के लिए भी प्ररित किया था। यही समस्या उन क्षत्रो म कुछ कम सकटजनक रूप म, उठी जहा गोरो के लिए अप्रिय आरम्भिक काय करने को बाहर से कालो का आयात किया गया। गोरो के दृष्टिकोण क अनुसार विभीषिका की मात्राओं के बीच जो अन्तर था वह स्थानीय आबादी की जातीय रचना (रेशियल कम्पोजिशन) क आकडो म व्यक्त हुआ। दक्षिण अफ्रीका की भाति जहा अश्वेत या काला देशज था उसकी सख्या सामान्यत प्रभुताशालिनी गोरी जाति स बहुत अधिक थी। पर जहा सयुक्त राज्य (अमरिका) का भाति उसका बलात् आयात किया गया वहा बात इसस उलटी हुई।

हमारे लिखन क समय सयुक्त राज्य (अमेरिका) म रगभेद की जो प्रवृत्ति भारतीय प्रणाली वाल जातिभेद क रूप म कठोर होता जा रहा थी उसका प्रतिरोध

खीष्टमत की भावना विपरीत प्रक्रिया द्वारा कर रही थी, और यद्यपि अभी तक यह कहना असम्भव है कि यह खीष्टीय प्रत्याक्रमण निराधार आशा है या भविष्य की लहर' है फिर भी यह शुभ शकुन है कि भारत की भाति हा सयुक्त राज्य (अमरिका) मे भी दानो ही पक्षो म परित्राणकारी भावना सक्रिय है। प्रभुताशाली श्वेत बहुमत के हृदयो म जिस खीष्टीय अन्त करण न नीग्रो दासता का समाप्त कर देने का आग्रह उत्पन्न किया उसका यह अनुभव हो गया है कि केवल अदालती या कानूनी मुक्ति ही पर्याप्त नही है, और दूसरी ओर रगीन श्रमजीवी अल्पमत न भी इसी प्रकार की भावना प्रदर्शित कर उसका उत्तर दिया है।

जैसा कि हमन इस अध्ययन के पूव भाग म देखा है आ तरिक श्रमजीवी वग का पृथक्करण किसी भी सभ्यता के विघटन का सबसे प्रमुख लक्षण है और उसका ध्यान रखत हुए हम इस बात पर विचार करते रहे है कि खीष्टीय सवत की बीसवी शती क मध्यभाग मे पाश्चात्य समाज की जो स्थिति है उसम पथक्करण वा वियोजन और पुन मैत्री दोनो के सम्ब ध म क्या साक्ष्य उपल ध हो सकते है। अभी तक हम श्रमजीवी वग के उन तत्वो पर विचार करते रहे हैं जो स्वय ही अपने उद्गम मे पाश्चात्येतर थे कि तु जो पश्चिम के विश्वव्यापी प्रसार के कारण पाश्चात्य समाज की सीमाओ मे आ गये। यह कहना साथक है कि यहा श्रमजीवी वग का वह सब अश रह गया जो अपने प्रभुताशाली अल्पमत के साथ जातीय रूप मे अविभेद्य था इसी प्रकार यह कहने की भी आवश्यकता नही कि पाश्चात्य स्त्री पुरुषा का बहुत बडा बहुमत ऐसा था जिसको उन्नीसवी शती के पाश्चात्य सुविधाप्राप्त अल्पमत म उत्पन्न श्रेष्ठ जना ने श्रमिकवग निम्नवग, प्राकृतजन, लोकसमूह', यहा तक कि अपमान एव विद्रूप म महन अधौत (दि ग्रेट अनवाश्ड) के नाम से पुकारा। विषय की विशालता हतोत्साह करने वाली है। इतना ही कह देना पर्याप्त होगा कि लगभग समस्त पाश्चात्य देशो म और विशेष रूप से अत्य त उद्योग प्रधान तथा पूरी तरह से आधुनिक बन गये पाश्चात्य देशा मे, पिछली अधशती मे जीवन के प्रत्येक विभाग मे सामाजिक याय की ओर अत्यधिक व्यावहारिक प्रगति हुई है। जिस राजनीतिक क्रान्ति के द्वारा भारत ने ब्रिटिश राज से मुक्ति प्राप्त की वह ग्रेट ब्रिटेन म हुई सामाजिक क्रान्ति स ज्यादा विलक्षण नही थी। यहा मैं उस सामाजिक क्रान्ति की बात कर रहा हू जिसके द्वारा एक पाश्चात्य देश ने अपने को एक ऐसे समुदाय म रूपान्तरित कर लिया जिसमे लघुतम व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के बलिदान की कीमत पर बहुत बडी मात्रा म सामाजिक याय प्राप्त किया जा चुका था। यहा इस पर भी ध्यान रखना चाहिए कि इस पाश्चात्य देश म शक्ति सम्पत्ति और अवसर अपनी याद म अब भी एक अत्यन्त घृणित रूप से लघु तथा कुख्यात रूप मे अत्यधिक सुविधाप्राप्त अल्पमत की बपौती था।

ऊपर जिन तथ्यो का सर्वेक्षण किया गया है उनम से कुछ कहते हैं कि आतरिक श्रमजीवीवग के पृथक्करण म पाश्चात्य सभ्यता के सकटग्रस्त होनेकी सम्भावना नहा है जबकि दूसरे कुछ तथ्यो का निर्देश है कि उसके सकटग्रस्त होन की सम्भावना

है। जो हो, इस सर्वेक्षण से दो स्थायी निष्कर्ष निकलते हैं। पहिली बात तो यह है कि हेलेनी समाज के इतिहास की तद्विध (करेस्पान्डिंग) स्थिति में जो तद्विध शक्तियां सक्रिय थीं उनसे मेरी की मेलजोल की शक्तियां इसमें अधिक प्रबल दिखायी पड़ती हैं। दूसरी बात यह है कि पाश्चात्य जगत के पक्ष में जो यह अन्तर है वह प्रधानत उस ख्रीष्टीय धर्मभावना की अब भी जारी प्रतिक्रिया के कारण है जिसका प्रभाव पाश्चात्य स्त्री पुरुषों के हृदयों में कभी नष्ट नहीं हुआ भले ही उनके मस्तिष्कों ने उस मतवाद का त्याग कर दिया हो जिसमें ख्रीष्टीय धर्म के शाश्वत सत्य प्राच्य हेलेनी दर्शन की भंगभंगुर भाषा में अनूदित किये गये थे।

जिस महत् धर्म ने कीटडिम्भीय (laival) पाश्चात्य समाज को उसका कोश-कीट (क्राइसलिस) प्रदान किया था उसकी यह अटल जीवन शक्ति एक ऐसी बात थी जिसका और सब प्रकार से तुलनीय हेलेनी स्थिति में स्पष्टत अभाव था और इसका अनुमान किया जा सकता है कि ख्रीष्टीय धर्म के आध्यात्मिक सार की इस प्रकट अजेयता तथा इस समय पाश्चात्य रंग में रंगी दुनिया में जहां तहां धर्मों की जो नयी फसल सिर उठा रही है उसकी दरिद्रता एवं अनुर्वरता के बीच कुछ न कुछ सम्बन्ध जरूर है।

इसलिए हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि पाश्चात्य सभ्यता के भविष्य के सम्बन्ध में पाश्चात्येतर पूर्वोदाहरणों के नजीरों का जो साक्ष्य है वह निर्णयकारी नहीं है।

(२) अदृष्टपूर्व पाश्चात्य अनुभव

हम अभी तक आधुनिकोत्तर पाश्चात्य स्थिति के उन तत्त्वों की परीक्षा करते रहे हैं जिनकी तुलना अन्य सभ्यताओं के इतिहासों के तत्त्वों के साथ की जा सकती है किन्तु इसमें ऐसे भी तत्त्व हैं जिनके समानान्तर तत्त्व दूसरी सभ्यताओं के इतिहासों में प्राप्त नहीं होते। ऐसी दो अतुल्य विशेषताएं हमारी आंखों के सामने चमक रही हैं। पहिली है वह विराट प्रभुता जो पाश्चात्य मानव ने मानवेतर प्रकृति के ऊपर प्राप्त की है दूसरी है सामाजिक परिवर्तन की वेगवर्धिनी शीघ्रता जो यह प्रभुता ला रही है।

जब से मानव ने प्रौद्योगिक प्रगति की निम्न पुरापाषाणकालिक (Lower Palaeolithic) अवस्था से उच्च पुरापाषाणकालिक (Upper palaeolithic) अवस्था की ओर अपनी यात्रा आरम्भ की तभी से मानवजाति धरती पर इस अर्थ में सृष्टि की स्वामिनी रही है कि उस समय के आगे जड़ प्रकृति के लिए अथवा मानवेतर किसी और प्राणी के लिए कभी यह सम्भव नहीं हुआ कि वह मानव जाति का निर्मूलन कर दे—यहां तक कि मानवप्रगति को रोक भी दे। तब से धरती पर कोई भी चीज मानव को रोक टोक नहीं सकी न मनुष्य का नाश कर सकी। हां एक अपवाद जरूर है और वह अपवाद भयानक है। यह अपवाद मनुष्य स्वयं है। जैसा कि हम देख चुके हैं चौदह या पन्द्रह सभ्यताओं के अनावरण में मनुष्य ने खुद अपने को सर्वग्रस्त किया

है। अन्ततोगत्वा, १९४५ ई म अणबम क विस्फोट ने यह स्पष्ट कर दिया है कि मनुष्य ने अब मानवेतर प्रकृति पर इस सीमा तक नियन्त्रण स्थापित कर लिया है कि दुनिया म अपनी ही लायी हुई दो बुराइया की चुनौती से मुह मोड लेना उसके लिए असम्भव हो गया है। सभ्यता के उपक्रम म चल रहे समाजो के रूप म, अपने को समाज की एक नयी प्रजाति देने के प्रयत्न म ही उससे य बुराइया पदा हुइ। य दोना बुराइया भी युद्ध की एक ही बुराई की दो भिन्न अभिव्यक्तिया हैं परन्तु दोना को अलग अलग नाम देकर उनको पहिचानना ज्यादा सुविधाजनक होगा—१ युद्ध, जिस सामान्य अथ म वह लिया जाता है, तथा २ वग-युद्ध। दूसरे शब्दा म इन्ह क्षनिज युद्ध (Horizontal War) तथा ऊर्ध्वाधर वा लम्ब युद्ध (Vertical War) या पडा और खडा युद्ध कह सकते है।

यह एक एसी स्थिति है जिसका सामना करने के लिए मानव जाति की कोई विशेष तयारी नही जान पडती। इसकी सम्भावनाओ का विचार करत समय यदि हम इनका अलग अलग विचार करें अर्थात पहिले औद्योगिकी युद्ध एव सरकार तथा बाद म औद्योगिकी वग सघष एव रोजगार (इमप्लायमेट) तो हमारा काम कुछ सरल हो जायगा।

आद्योगिकी, युद्ध तथा सरकार

(१) तृतीय विश्व-युद्ध की सम्भावनाए

दो विश्व-युद्धा के फल-स्वरूप महाशक्तियो की पहिले वाली सख्या घटकर वल दो रह गयी है—सयुक्त राज्य (अमेरिका) और सोवियत सघ। सोवियत सघ ने पूर्वी जमनी तथा पूववर्त्ती हैप्सबग एव ओथमन साम्राज्या के उन उत्तराधिकारा राज्यो म से अधिकाश पर अधिकार कर लिया जिन्हे द्वितीय विश्व युद्ध के बाच क्षण भगुर राष्ट्रीय समाजवादी जमन तृतीय रीख ने कुचलकर रख दिया था। पाश्चात्य जमनी तथा आस्टियन गण राज्य अपने पडौसियो के अनुकरण पर १६५६ ई० तक ना रूस के पेट मे नही गये उसका एक मात्र कारण यह था कि इस बीच वे सयुक्त राज्य तथा अपने पाश्चात्य यूरोपीय मित्रो के सरक्षण म आ चुके थे। इस समय (१६५६) तक यह स्पष्ट हो चुका था कि एक अरक्षणीय स्वतन्त्रता के स्थान पर सयुक्त राज्य के सरक्षित राज्य का रूप अगीकार कर लेना उस रूसी (अथवा चीनी) प्रभुत्व के विरुद्ध एक मात्र बीमा है जो अपनी लम्बी दौड म ससार म कही भी, किसी भी रूप म प्रभावशाली होने का आश्वासन प्रदान करता है।

पुरानी दुनिया म सयुक्त राज्य (अमेरिका) के लिए यह एक नयी भूमिका थी यद्यपि नयी दुनिया म उसके लिए यह भूमिका बहुत दिनो से परिचित थी। पवित्र मैत्री' (होली अलायस) के दिना स लेकर थड रीख' के समय तक मुनरो सिद्धात ने अमेरिकान्तगत स्पेनी एव पोर्च्युगीज साम्राज्या के उत्तराधिकारी राज्या को किसी यूरोपीय शक्ति के नियत्रण मे चले जाने स बचाया था और स्पेनी या पोर्च्युगीज औपनिवेशिक शासन की जगह सयुक्त राज्य का प्रधानता स्थापित कर दी थी। उपकार करने वाले क्वचित् ही लोकप्रिय होत है और जबतक उनके उपकार पूणतया स्वार्थरहित न हो तबतक उनका ऐसा भाग्य उचित ही है। १६४५ ई० म सयुक्त राज्य के प्रति भाव की भावना उसस कुछ ज्यादा भिन्न नही रहा है जसा पिछले सौ वर्षों के अन्दर ब्रजीलियना का रहा है।

जो भी हो १६५६ ई० म पृथिवी मण्डल पर सोवियत सघ और सयुक्त राज्य ये दो ही महाशक्तिया शेष रह गयी थी। दोना एक दूसरे के सामने खडी थी और किसी भी अन्तर्राष्ट्रीय शक्ति-सन्तुलन म दो की सख्या का कष्टकर होना अनिवाय है।

यह सच है कि बीस वर्ष पहिले के विपरीत इस समय जर्मनी और जपान दोनों आर्थिक दृष्टि से 'तुष्ट' (sated) देशों में गिने जा रहे हैं और इससे उनकी सम्पूर्ण जन शक्ति युगों तक शान्तिपूर्ण रोजगार में, अपने क्षेत्रों को समृद्ध करने में, लगी रह सकती है किन्तु अतीत के इतिहास ने यह प्रदर्शित कर दिया है कि युद्धोन्मुख आक्रमण के लिए भय भी उतना ही शक्तिशाली स्रोत है जितना आर्थिक अभाव है। रूसी एवं अमेरिकी जनता एक दूसरे को समझने के लिए भलीभांति साधन सम्पन्न नहीं है। रूसियों का अभ्यस्त स्वभाव तितिक्षा या समर्पण (docile resignation) का है और अमेरिकन असाध्य अधैर्य (obstreperous impatience) वाले होते हैं। दोनों का यह स्वभाव भेद निरंकुश शासन के प्रति उनके आचरण में व्यक्त होता है। रूसियों ने अनिवार्य मानकर उसके सामने सिर झुका दिया, जबकि अमेरिकनों ने अपने ही इतिहास से यह सीखा कि यह एक ऐसी बुराई है जिसे कोई भी राष्ट्र अपनी इच्छानुसार उखाड़ फेंक सकता है। अमेरिकनों ने अपना परमार्थ ऐसी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता में देखा जिसे उन्होंने विचित्रतापूर्वक समानता का पर्याय समझ लिया, जबकि रूसी साम्यवादी प्रभुताशाली अल्पमत ने अपने परमार्थ (Summum Bonum) या निःश्रेयस को एक ऐसी सैद्धान्तिक—प्रणाली समानता में देखा जिसे उन्होंने और भी ज्यादा बुरी तरह से स्वतन्त्रता मान लिया।

इस स्वभावगत एवं सैद्धान्तिक भेदों के कारण दोनों राष्ट्रों के लिए एक दूसरे को समझना और एक दूसरे का विश्वास करना कठिन हो गया। इस पारस्परिक अविश्वास ने भय को जन्म दिया। जिस क्षेत्र में दोनों एक दूसरे का सामना करते हैं वह औद्योगिकी के अभूतपूर्व वेग के साथ हुई प्रगति के कारण ऐसा रूप धारण कर चुका है कि पहिचानने में नहीं आता और इस प्रौद्योगिक प्रगति ने एक समय के विशाल विश्व को ऐसे आयामों में संकुचित कर दिया है कि अब दोनों प्रतियोगियों के लिए कठिन हो गया है कि बिना सीधे निशाने की मार में आये खड़े हो सकें।

इस प्रकार जो दुनिया औद्योगिकीय रूप से एकीभूत हो गयी है उसमें ऐसा लगता है कि सोवियत संघ एवं संयुक्त राज्य के बीच विश्व शक्ति होने की प्रतियोगिता का निर्णय अन्त में जाकर मानव जाति की वर्तमान पीढ़ी के उन तीन चौथाई लोगों के मत प्रकाश द्वारा होगा जो सभ्यता के उदय के पांच या छः हजार वर्षों बाद भी जीवन के मौलिक स्तर पर नवपाषाण युग या उत्तर-पाषाण युग में रह रहे हैं परन्तु जिन्हें इतना पता चल गया है कि इसकी अपेक्षा उच्चतर जीवन मान सम्भव है। अब उनके सामने अमेरिकी या रूसी जीवन मार्ग में से एक को ग्रहण करने के जो विकल्प हैं उनमें से अबतक डूबा हुआ पर अब जग रहा यह बहुमत बहुत करके उसी को चुनेगा जिससे उसकी क्रान्तिकारिणी आकांक्षाओं की पूर्ति की सम्भावना होगी। फिर भी, यद्यपि अन्तिम शब्द अबतक जलमग्न मानव जाति के पाश्चात्येतर बहुमत पर ही निर्भर करता है किन्तु यह भी सम्भव जान पड़ता है कि छोटी दौड़ में रूसी-अमेरिकी तुला के पलड़ों पर निर्णायक बाट विश्व की जन संख्या का यह तीन चौथाई भाग नहीं होगा बल्कि विश्व के वर्तमान औद्योगिक समरसाधन वाला वह चौथाई भाग होगा जो

अभी तक पाश्चात्य यूरोप म स्थित है। सार्वभौम इस्यपट पर इस महाद्वीपीय (कान्टिनेंटल) एव सयुक्त राज्य द्वीपीय (insular) शक्ति के रूप म प्रकट होते है—ठीक वस ही जसे पाश्चात्य इतिहास के 'आधुनिक' काल के यूरोपीय अन्तर्ग्राम्य युद्धो (यूरोपियन इन्टर परोकियल वार्स) म ब्रिटेन ने द्वीपीय शक्ति का और स्पेन फ्रास एव जमनी न ब्रिटेन के क्रमागत शत्रुओ की भूमिका का अभिनय किया है। आधुनिकोत्तर विश्व प्रागण म पश्चिमी यूरोपीय क्षेत्र अब भी बडा महत्त्वपूर्ण और निर्णायक है क्योकि यह द्वीपीय शक्ति की महाद्वीपीय मोर्चाबन्दी है। बीत हुए जमाने म फ्लडस पाश्चात्य यूरोप का अखाडा (cockpit) रहा है जिसम असाध्य रूप से युयुत्सु ग्राम्य राज्यो ने अपनी लडाइया लडी थी। अब दूसरा व्यापक युद्ध होने की अवस्था म सम्पूर्ण पाश्चात्य यूरोप पाश्चात्य रग म रगी दुनिया का अखाडा होगा। सामरिक मानचित्र के इस रूपान्तरण म शायद एक काव्यात्मक न्याय है किन्तु इसके कारण १९४९ म अखाडे म निवास करने की दुस्थिति पाश्चात्य यूरोपीयो के लिए उससे कम अमगलकारिणी नही है जितनी वह पन्द्रहवी शती की समाप्ति के पूर्व फ्लमिंग्स के लिए थी।

मानवीय कार्य व्यापार की धारा से ऊपर मानवीय भावनाओ का जो प्रभुत्व है उसको नष्ट करने का कोई शक्ति औद्योगिकी की प्रगति म नही है। सनिक बात औद्योगिकी का नही मनोविज्ञान का—लडने की इच्छा का विषय है। जब युद्ध अन्यत्र और दूसरे लोगो द्वारा लडे जाते हैं तो आह्लादकारी होते हैं और जब वे समाप्त हो जाते हैं तब शायद सबसे अधिक आह्लादकारी प्रतीत होते है। सभी सभ्यताओ के इतिहासकारो ने परम्परा से ही अपने क्षेत्र का सबसे दिलचस्प विषय उन्हे ही माना है। अतीत काल म अधिकाश सेनाए अपेक्षाकृत छोटी होती थी और अधिकाश एसे लोगो से बनी होती थी जो लडने को और सब पेशो म ज्यादा अच्छा समझते थे। किन्तु क्रान्तिकारी फ्रास म १७९२ ई की सामूहिक भरती के बाद से आधुनिक पाश्चात्य युद्ध-कला बहुत ज्यादा गम्भीर बात हो गयी है और भविष्य का युद्धकला उससे भी ज्यादा गम्भीर बनने को उद्यत जान पडती है। अब युद्ध उसको अनुभव करने वालो के मनोविकार को नष्ट करने की ओर उन्मुख है और लोक सकल्प एक ऐसी शक्ति है जिसके सामने किसी निरकुश शक्ति को भी, अन्त म झुकना ही पडता है। जिन देशो ने प्रथम विश्व युद्ध म सबसे ज्यादा सकट झेला था उनम से फ्रास ने दूसरे महायुद्ध को सहन करने म लाचारी स्वीकार हो कर लिया। हिटलर ने मनोविकार की एक और धारा या शक्ति-परीक्षण के लिए जमनो को उत्तेजित करने म सफलता प्राप्त की किन्तु १९४९ ई म यह सन्दिग्ध लगता है कि दूसरा हिटलर—यदि अभी भी दूसरे हिटलर का पदा होना है—पुन वही आकर्षण के हाथ लिया सकेगा। यह बात उल्लेखनीय है कि साम्यवादी अधिनायको का प्रिय पारस्परिक विनाश शान्ति प्रेमी है। नेपोलियन ने शतरजना म युद्ध का सुन्दर खजा कहा था किन्तु स्पष्ट सत्य है कि यदि वह आज भी जीवित रहता तो अणु युद्ध के लिए भी इस शब्द का प्रयोग करता।

ये विचार मुख्यतः ऊँची सभ्यता वाले उन राष्ट्रों पर लागू होते हैं जिन्हें बीसवीं शती की युद्ध कला का सीधा अनुभव हो चुका है। दूसरी ओर एशिया के जनसमाज का परंपरागत वश्यता अनादि काल से निरंकुश सरकारों व सामन्त निष्क्रिय आज्ञाकारिता की राजनीतिक प्रणाली का रूप धारण करती रही है और जबतक पाश्चात्यकरण की सांस्कृतिक प्रक्रिया केवल पाश्चात्य सैनिक प्रविधि का ज्ञान प्राप्त करने की प्रारम्भिक सफलताओं से बहुत आगे न बढ़ जाय तबतक एशियाई किसान सैनिक, एक ऐसे आक्रामक युद्ध में भी अपने जीवन का बलिदान करने के आदेश पर आपत्ति करने या उनका तिरस्कार करने का आरम्भ न करेगा जिसका व्यक्तिगत रूप में उसके लिए कोई अर्थ नहीं है। किन्तु मध्य बीसवीं शती की एशियाई सरकार कबतक अपनी प्रजाओं की इस स्वभावगत वश्यता का सैनिक अभिप्राय के लिए उपयोग कर पायेंगी? पाश्चात्य दृष्टि को ऐसा दिखायी पड़ सकता है कि मानो चीनी एवं रूसी किसान सैनिक ने अपने जीवन के ऊपर अपनी सरकार को सादा चेक दे रखा है (उन्हें जीवन के साथ चाहे जो करने का अधिकार दे रखा है)। किन्तु इतिहास ने इस बात को प्रदर्शित कर दिया है कि एक ऐसी सीमा भी है जिसके आगे न तो चीनी न रूसी सरकार बिना क्षति उठाये जा सकती है। त्सि इन से लेकर क्वाउ मिन ताग तक जिन चीनी सरकारों ने पेंच को जरा ज्यादा घुमाने का दुस्साहस किया उनको इस तरह की ज्यादती का मूल्य पुनः पुनः शासनाधिकार से वंचित हो जाने के रूप में चुकाना पड़ा। रूसी इतिहास में भी यही कथा मिलती है।

जिस जारशाही ने क्रीमिया युद्ध में रूसी जनता का कष्ट देखकर १८६० ई० के सुधारों द्वारा उनका काटा दूर करने का विवेकपूर्ण कार्य किया उसी को भावी संकट के लिए पहिले से कोई व्यवस्था न कर सकने तथा बाद की सैनिक पराजयों के लिए तत्सम हरजाना देने से इनकार कर देने के हठ का कीमत अपने प्राण के रूप में चुकानी पड़ी। मेरा मतलब एक तो उस पराजय से है जो १९०४-५ के जापानी युद्ध में झेलनी पड़ी और जिसके कारण बाद के वर्ष में निष्फल रूसी क्रांति हो गयी। दूसरी पराजय उसके बाद के प्रथम विश्व युद्ध में हुई जिसने १९१७ की दोहरी क्रान्ति को जन्म दिया। उस समय ऐसा लगा कि एक सीमा है जिस पर जाकर रूस की या किसी भी कृषक देश का नैतिक साहस पराभूत हो जाता है। फिर भी सम्भावना यह जान पड़ती है कि सोवियत संघ की सरकार संयुक्त राज्य को कोई ऐसी राजनीतिक छूट देने को तैयार न होगी जो रूसियों की दृष्टि में अमरिका प्रभुत्व की द्योतक हो। इसकी जगह वह युद्ध की विभीषिकाओं का सामना करना ज्यादा पसन्द करेगा।

यदि इस प्रकार की सम्भावना है कि कतिपय परिस्थितियों में सोवियत संघ अपनी बराबरी की किसी शक्ति के साथ युद्ध करने के लिए उतारू हो सकता है तो क्या ऐसी ही भविष्यवाणी संयुक्त राज्य (अमरिका) के लिए नहीं की जा सकती? १९५६ ई० में तो इस प्रश्न का उत्तर स्वीकारात्मक ही मालूम पड़ता है। प्राचीनतम तरह औपनिवेशिक बस्तियों के प्रथम न्यायबद्ध के बाद से अमरिकन राष्ट्र अत्यन्त असैनिक रहा है किन्तु इसी के साथ वह पाश्चात्य जगत् के राष्ट्रों में सब से ज्यादा

साम्रामिक (martial) रहा है । व लोग अतातिर इग जय म र है ति उाम सनिर अनुशासन के प्रति आत्मापण करन म अरुचि रहा है और यह सनिर महत्वाकांक्षा भी नहा रही है ति उनका देश अपन तिए सनिक गौरव प्राप्त कर । व साम्रामिक इस अथ म रह हैं वि १८६० ई क लगभग सीमा बन्द होने की तिथि तक व सभी अपना अन्दर ऐसे सीमावासियो के सनिक दल का गिनता करत रह जो न केवल शस्त्र ग्रहण करन म अभ्यस्त थ बल्कि अपन निजी प्रयासा क अनुगमन म अपना बुद्धि क अनुसार उनस काम लेना भी जानते थ । यह एक ऐसी स्थिति था जो पाश्चात्य यूरोप क अधिकाश भागा म बहुत पहिले मिट चुकी थी । जब पहिली बार ब्रिटिश द्वीप स आन वाल गोर अमरिका क तटा पर उतरे थ तब स अमरिकी सामासीसियो (फ्रान्टियरमन) का दस पीढियो की साम्रामिक ऊर्जा का किसी भी समय उत्तरी अमरिका इण्डियन (अमेरिका के आदिवासी) स्वीकार करन स इकार नहा कर सकत । इसी प्रकार अठारहवी शता क अग्रज औपनिवेशिका क फरासीसी प्रतियोगी तथा उन्नासवीं शता म इन सीमावर्ती सनिको के मक्सिकी शिकार भा उनकी साम्रामिकता को स्वीकार करग । और उत्तरी अमेरिका पर कब्जा क लिए ऐसा अमरिका जनता अपवाद तथा अस्थायी रूप म अपन को एस अनुशासन म रखन क लिए तयार था जिसके बिना फ्रांटियरमन का वयक्तिक साहस एव पराक्रम अपन ही सांस्कृतिक स्तर क शत्रुओ क विरुद्ध विजयी होन म असमथ रहता ।

सब मिलाकर अमरिका जनता म जो सनिक गुण अन्तर्निहित है उनका पता उनक जमन शत्रुओ को १९१७ १८ तथा १९४१ ४५ के जमन अमरीकी युद्धा म लगा था किन्तु अमरीकी शौय, अनुशासन, सनानायकत्व एव सहनशीलता का सबस प्रभावशील प्रदशन उस युद्ध म हुआ था जिसम अमरीका खुद अमरीका क विरुद्ध लड़ थ । १८६१ ५ का जो युद्ध यूनियन और कानफेडरेसी (राज्यसघ) क बीच हुआ वह सबस लम्बा, सबस अदम्य था उसम सबस ज्यादा व्यक्ति हताहत हुए और नपोलियन क पतन स लेकर प्रथम विश्व युद्ध के आरम्भ तक पाश्चात्य जगत् म होन वाल युद्धा म स इस युद्ध म सबस अधिक प्रौद्योगिकीय नवीनताए देखन मे आयी । इसक अलावा जिन दो विश्व युद्धो न हमारी याददाश्त म जमनी एव जमनी के रूसी तथा पाश्चात्य यूरोपीय आखेटो को उसी कठोरता के साथ तहस नहस कर दिया जिस कठोरता क साथ अमरीकी गृह युद्धा न दक्षिण को ध्वस्त कर दिया था, उनम म सयुक्त राज्य अनाहत निकल आया । एक ही जीवनावधि मे दो विश्व युद्धो न पाश्चात्य यूरोपीय क नतिक साहस पर जो मनोवैज्ञानिक प्रभाव डाला वह अतलान्त महासागर क अमरीकी पक्ष को कुछ अधिक स्पश नहा कर सका और १९५६ ई म यह स देह नहा किया जा सकता कि अमरीका जनता सोवियत सघ का कोई ऐसी छूट दन के स्थान पर जो उनकी दृष्टि म रूसी प्रभुता क सामन आत्म-समपण सा मालूम पडता हो युद्ध की विभीषिका का सामना करना ज्यादा पसन्द करगा ।

किन्तु ऊपर हमन जो ऐतिहासिक साक्ष्य दिय हैं और जिनस इसका सकत मिलता है कि कुछ ऐसी परिस्थितिया भी हो सकता हैं जिनम अमरीकी एव रूसी राष्ट्र

मे युद्ध की इच्छा जागरित हो उठे, उनका प्राक्कलन या अनुमान आणविक युद्धकला की प्रगति और इस प्रगति के मनोवैज्ञानिक प्रभाव के प्रकाश म करना चाहिए क्योंकि यह ऐसा प्रभाव है जो मध्य बीसवी शती की परिस्थितियो म स्वय प्रौद्योगिकीय प्रगति के ज्यादा पीछे नही रह सकता। यदि इस बात का पूर्ण निश्चय हो जाता है कि एक सवग्रामी विभीषिका मे देशभक्त के साथ उसका देश और हेतुभक्त के उसका हेतु भी नष्ट हो जायगा तो देश या हेतु के लिए मरना निष्प्रयोजन तथा निरथक हो जाता है।

(२) भावी विश्व व्यवस्था की ओर

१९४५ ई तक युद्धो मूलत वस्तुत, अनिवाय हो गया किन्तु तबतक उसका उन्मूलन सम्भव नही है जबतक कि आणविक शक्ति का नियत्रण किसी एक ही राजनीतिक सत्ता के हाथो म केन्द्रित न हो जाय। युग के इस ब्रह्मास्त्र के नियन्त्रण का यह एकाधिकार निश्चय ही उस सत्ता को सक्षम एव विवश करेगा कि वह विश्व शासन की भूमिका ग्रहण करे। १९५२ ई० म जसी परिस्थिति है उसमे एसी विश्व सरकार का प्रभावशाली केन्द्र या वाशिंगटन हो सकता है या मास्काउ, किन्तु न तो सयुक्त राज्य (अमरिका), न सोवियत सघ अपने को दूसरे की दया पर छोड सकता है।

एसी वद्व स्थिति मे लघुतम मनोवज्ञानिक प्रतिरोध का परम्परागत रास्ता युद्ध-द्वारा निपटारा करने के पुरातन शैली वाले उपाय के रूप म ही हो सकती है। जसा कि हम दख चुके हैं साघातिक प्रहार ही वह साधन रहा है जिसके द्वारा एक के बाद एक भजित सभ्यता अपने सकटकाल से गुजरकर अपनी सावभौम अवस्था मे पहुचती रही है। किन्तु इस अवसर पर तो एसा लगता है कि साघातिक प्रहार न केवल विरोधी का, बल्कि विजेता, रेफरी, घूमेबाजी के अखाड़े, यहा तक कि सब दशको का भी अन्त कर देगा।

एसी परिस्थितियो म मानव जाति के भविष्य का सर्वोत्तम आशा इसी सम्भावना म है कि सयुक्त राज्य (अमेरिका) और सावियत यूनियन की सरकारे एव जनता एक एसी नीति का अनुसरण करने का धय रखगी जिसे शान्तिमय सह अस्तित्व (पीसफुल को एक्जिसटेंस) नाम से पुकारा जाने लगा है। मानव-जाति के कल्याण बल्कि उसके आगे के अस्तित्व के लिए भी सबसे बडा अभिशाप आणविक आयुधो का आविष्कार नहा है बल्कि जीवित मानवात्माओ के स्वभाव म एक एसी उत्तेजना की वृद्धि है जो कि १५६० ई के पाश्चात्य धम युद्धो के छिड़ने से लेकर लगभग सौ वर्षो तक प्रारभिक अधुनातन पाश्चात्य जगत म फैला हुई थी। बीसवी शती के द्वितीयाध के आरम्भ के समय अपने कथोलिको एव प्रोटेस्टेण्ट पूर्ववर्तियो की भाति ही उसम पूजीवादी एव साम्यवादी अनुभव कर रहे थ कि समाज की निष्ठा को अनिश्चित समय तक के लिए विभक्त रखना और उसे सच्चे (अर्थात उनके) धम एव निन्दनीय (अर्थात उनके विरोधी के) अपधम के बीच बाट दना न केवल अव्यावहारिक बल्कि असहनीय भी है। किन्तु पाश्चात्य धमयुद्धो का इतिहास इस बात का साक्षी है कि आध्यात्मिक समस्याओ का निर्णय और समाधान शस्त्र-बल से नहीं किया जा सकता और मानव जाति द्वारा

अणु आयुधो की प्राप्ति चेतावनी रही है कि कैथोलिको एव प्रोटेस्टेण्टो की भांति सशस्त्र लडाई लडकर धर्मयुद्धो की निरर्थकता का ज्ञान प्राप्त करने का अनुभविक मार्ग अब पूजीपतियो एव साम्यवादियो के लिए खुला नही रह गया है क्योंकि कैथोलिको एव प्रोटेस्टेण्टो की लडाई उस युग म हुई थी जब मनुष्य के युद्ध के दूर अस्त्र तोडे-दार बन्दूक, खड्ग और भाले थ।

जब परिस्थिति इतना अनिष्टकर एव धूमिल है तो आशावादी आशावाद उतना ही अनुचित तथा असमर्थनीय है जितना कि आशावी निराशावाद है और मानव जाति की वतमान पीढी के सामने इसके सिवा दूसरा विकल्प नहीं कि वह यह समझ ले कि उसके सामने एसी समस्याए है जिनम स्वय उसका अस्तित्व ही खतरे म है और जिसका परिणाम क्या होगा इसका अनुमान करना भी असम्भव है। १९५१ म नूह की डोंगी म चढ हुए वतमान पीढी के य स्थायात्म से गृहहीन जन ठीक उसी स्थिति म है जिसम थार हेयर दहल एव उसके पाच साथी वाईकिंगो या जलस्युओ न ७ अगस्त १९४७ की सुबह अपने को लट्ठो से बनी नौका पर पाया था। जो पश्चिमी मुखी धारा उनकी नौका (रफ्ट) कोन तिकी को प्रशान्त महासागर म ४,००० मील तक ले आयी थी वही उस दुर्भाग्यपूर्ण प्रभात म उसे ररोरिया जलमाल (रीफ) की ओर लिये जा रही थी। ये समुद्रयात्री देख रहे थ कि उस सीमा का छलकाता फेनिल तरगो के पार खजूरवृक्ष की पत्रयुक्त चोटिया है और व जानते थ कि व वृक्ष शान्त भील म स्थित प्रवालद्वीप को सुशोभित करते है, किन्तु उनके और इस शरणस्थली के बीच तो फेनिल एव गरजती हुई शैलमाला क्षितिज स क्षितिज तक एक पंक्ति म फैली हुई है।[1] और धारा एव वायु की गति समुद्रयात्रियो को प्रदक्षिणा करते हुए नौका सुरक्षित निकाल ले जाने का कोई अवसर नहीं द रही है। एक अनिवाय सकट की ओर व बलात बहे जा रहे थे और यद्यपि वे जान सकते थे कि इस सकट के समय किसी समुद्र यात्री के सामने क्या विकल्प हो सकते हैं किन्तु इसका अनुमान करना उनके लिए सभव नहीं था कि खुद उनकी कहानी का अन्त किस विकल्प म जाकर होगा।

यदि नौका उत्तुग तरगो म टूट जाती है तो छुरे की नोक-जसी प्रवालिका माझियो के टुकडे टुकडे करके रख देगी, हा, यदि उसके पूव ही वे डूब जाते है तो भले ही उस अधिक वेदनापूर्ण मृत्यु स बच सकते है। यदि नौका विखडित नही होती और माझी तबतक उससे चिपटे रहते है जबतक कि उत्तुग तरग स्वय ही अपने विद्वेष को पराजित कर नौका को किसी ऊचे एव सूखे पवतशृग पर बहाकर फेंक देती है तो यह सम्भव है कि जाण नौका के आरोही उसके पार फैली शान्त भील को तरकर किसी तमाल मडित द्वीप तक जीवित पहुच जाय। यदि पवत पर नौका के पहुचने का समय ठीक वही होता है जबकि उच्च ज्वार की वह बाढ आती है जो बीच बीच मे पवत को इतनी गहराई तक डुबा देती है कि उत्तुग तरग खुद शान्त हो जाती हैं तो सारे साथी

[1] हेयर दहल थोर 'कोन तिकी' (शिकागो १९५०, रेंड मक्नली) पृष्ठ २४२

तिक सकटो के बाद भा कोन तिका मृत्यु रेखा पार कर शान जल म प्रवश कर सकता है और इस भयाक मकट मे अक्षत पार निकल जा सकती है। इम मामल म भी उच्च ज्वार समय पर आया और उसन उस जजर तरी को कुछ दिना बाद, पवत स उठाकर भील म डाल दिया जिसे प्रचण्ड लहरा ने एक नग तुग त प्रवालिकाखण्ट पर पहुचा दिया था। किन्तु ७ अगस्त १६४७ को कान तिकी पर बठा हुआ कोइ आदमी यह नहा कह सकता था कि उसकी नियति उस किस विकल्प पर पहुँचायगा।

इन छ स्कैंडिनेवियाई समुद्रयात्रियो को उस समय जो अनुभव हुआ था वही उस सकट काल का एक महा रूपक है जो खाष्टीय सवत् का बामवी शती के द्वितीयार्द्ध के आरम्भ म मानव जाति के सामन है। सभ्यता की जो नौका इतिहास क समुद्र म पाच छ हजार वर्षों के काल की दूरी को पार कर आया है एक एस जल गल की ओर चली जा रही है जिसस घुमाकर नाव को सुरक्षापूवक ले जा की क्षमता माझियो म नही है। जो विश्व अमरीकी एव रूसी प्रभाव क्षत्रो म बट गया है उसक और जो सयुक्त विश्व एक राजनीतिक सत्ता के नियत्रण मे होगा और जिसे आणविक आयुधो के युग म देर-सबर इस ओर या उस ओर सत्ता क वतमान विभाजन को समाप्त करना ही पड़ेगा, उसक बीच जो सकटपूण सक्रान्ति काल है वही हमार सामन फैला सबसे बडा खतरा है। यह सक्रमण (टाजिशन) शान्तिपूवक होगा या विपत्तिपूवक होगा ? और यदि विपत्तिपूवक होगा तो विपत्ति निरतिशय एव असमाध्य—ला इलाज होगी या कवल आशिक होगी और अपन पीछे एस तत्त्व छाड जायगी जिनक द्वारा अ त म म दगामी एव कष्टपूण पुन स्वास्थ्यलाभ सम्भव हो सकेगा ? जब ये शब्द लिखे जा रह है तब कोई पहिल से नही जान सकता कि जिस सकट की ओर ससार बढा चला जा रहा है उसका परिणाम क्या होगा ?

किन्तु दुघटना हो जान के बाद का सहजप्राप्त प्रज्ञा की प्रतीक्षा किय बिना भी एक पयवेक्षक सम्भवत आने वाली वस्तुओ की रूपाकृति के विषय म तबतक कुछ उपयोगी अनुमान लगा ही सकता है जबतक वह भावी विश्व व्यवस्था के विचार को उन तत्त्वो तक सीमित रखता है जो सयुक्त राज्य के और सोवियत सघ क चतुर्दिक रूप धारण कर रही दोनो अद्ध-पार्थिव व्यवस्थाओं क साथ ही एक सावभौम अर्थ व्यवस्था म भी उपलब्ध हो।

जहा तक परिवहन के क्षेत्र म प्रौद्योगिकी सुविधाएँ दे सकती थी और जहा तक उसने दी भी है वहा तक विश्व सरकार अब भी बहुत व्यावहारिक प्रस्ताव है किन्तु ज्यो ही हम प्रौद्योगिकी क स्तर से ऊपर उठकर—या नीचे उतर कर—मानव स्वभाव के स्तर तक पहुचते हैं तो देखते हैं कि जिस पार्थिव स्वग को होमोफेबर (Homo Faber) की विचक्षणता न बड़ी कुशलतापूवक सयोजित किया था उस 'होमो पालिटिकस' (Homo Politicus) वा राजनीतिक मानव की पथभ्रष्टता न मूर्खों के स्वग के रूप म परिवर्तित कर दिया है। जिस पालमेन्ट आफ मन (मानव समद या विश्व ससद) क उद्घाटन की कल्पना भविष्यदर्शी टनीसन न प्राय वायुयान के आविष्कार के साथ साथ की थी वही अब सयुक्त राष्ट्र सघटन या यूनाइटड नेशस

आर्गनिजेशन में ज्यादा महात्मा नाम में देह धारण कर चुका है, और यह संयुक्त राष्ट्र संघटन या यू० एन० ओ० उतना अप्रभावशाली तो नहीं जितना जितना कभी कभी उसके आलोचक दावा करते रहे हैं। किंतु दूसरी ओर यह भी स्पष्ट है कि संयुक्त राष्ट्र संघटन विश्व सरकार का भ्रूण बनने के अयोग्य है। सत्ता के विभाजन की वास्तविकताएं उसके उस विधान के अनाडीपन में न प्रतिबिम्बित होतीं जिसने एक राज्य एक वोट के सिद्धांत को ग्रहण किया है और उसे ग्रहण करके भी राज्यों की कल्पित समानता को निष्ठुर यथार्थ के समक्ष लाने का इससे अच्छा दूसरा साधन ढूंढने में असमर्थ रहा है कि पांच महती शक्तियों को विशेष दर्जा—अधिकार दे दिया जाय अर्थात् उन्हें ऐसा निषेधाधिकार (वीटो) दे दिया गया जो उनके नाम मात्र के समकक्षों को प्राप्त नहीं है। इन पांच महती शक्तियों में से दो तो अब चोटी के पहलवानों के स्तर पर उतार दी गयी हैं। संयुक्त राष्ट्र संघटन के लिए जो सर्वोत्तम सम्भावना आशा के सामने है वह यह है कि यह एक वादपीठ (forum) बनने की जगह एक राज्यसंघ (कानफेडेरेसी) के रूप में विकसित होने की चेष्टा करे किंतु स्वतन्त्र राज्यों के राज्यसंघ (कानफेडेरेसी) और ऐसी प्रजाओं के राज्यसंघ में अंतर है जिनकी एक केन्द्रीय सरकार हो—एक ऐसी सरकार जिस संघ के प्रत्येक नागरिक की निजी निष्ठा पर दावा हो और जो उसे सीधे-सीधे प्राप्त हो और यह बात तो कुख्यात ही है कि राजनीतिक संस्थाओं के इतिहास में ऐसा कोई उदाहरण नहीं है जिसमें यह खाई सिवा क्रांति के किसी और उपाय से पार की गयी हो।

ऊपर हमने जो कुछ प्रदर्शित किया है उससे तो यही मालूम होता है कि संयुक्त राष्ट्र-संघटन वह सांस्थिक केन्द्र या अन्तर्बीज (institutional nucleus) नहीं हो सकता जिससे अंतत अनिवार्य किसी विश्व सरकार का उद्भव हो सके। सम्भावना तो यह है कि यह संयुक्त राष्ट्र संघटन के नहीं अपितु दो प्राचीनतर एवं दृढ़तर राजनीतिक चालू संस्थाओं (गोइंग कनसर्न) संयुक्त राज्य की सरकार अथवा सोवियत संघ की सरकार के विकास से साकार हो सकेगा।

यदि मानवता की जीवित पीढ़ी इनमें से किसी एक को चुनने के लिए स्वतन्त्र होती तो किसी भी पाश्चात्य पर्यवेक्षक के मन में इसके लिए कोई संदेह नहीं होता कि इस समस्या पर फैसला देने के योग्य सम्पूर्ण जीवित स्त्री-पुरुषों का निर्णायक बहुमत सोवियत संघ की अपेक्षा संयुक्त राज्य (अमरिका) की प्रजा बनना ज्यादा पसंद करता। जिन गुणों के कारण संयुक्त राज्य अतुलनीय रूप से वरीयता दिये जाने के योग्य है वह साम्यवादी रूसी पक्ष के ऊपर स्पष्ट ही चमकते हैं।

अमरिका का प्रधान गुण उसकी वर्तमान एवं भावी प्रजाओं की आंखों में यह है कि उसमें इस भूमिका को अभिनय करने के लिए खींचे जाने के प्रति पारदर्शक रूप से सच्ची हिचकिचाहट है। अमरीकी नागरिकों की वर्तमान पीढ़ी तथा जो स्वयं आप्रवासी नहीं थे ऐसे सब अमरीकी नागरिकों के पूर्वजों को भी पुरानी दुनिया की अपनी जड़ें उखाड़ डालने और नयी दुनिया में पुन जीवन का आरम्भ करने की प्रेरणा इस लालसा के कारण हुई थी कि वे एक ऐसे महाद्वीप के मामले से अपने को मुक्त कर सकें

जिसकी धूल अपने परो से उन्होने प्रकटत ही झाड दी थी, और आशा की जितनी उत्फुल्लता के साथ उन्होने पुरानी दुनिया छोडी थी दुख की उतनी ही तीक्ष्णता के साथ अमरीकियो की वर्तमान पीढी अनिवायत प्रत्यावतन कर रही है। जैसा कि हम देख चुके हैं यह अनिवार्यता उस दूरी के समुच्छेदन (एनीहिलेशन आफ डिसटस) स उत्पन्न हुई है जो पुरानी एव नयी दुनिया को एक एव अविभाज्य करता जा रहा है। यद्यपि यह अनिवार्यता यह बाध्यता दिन दिन अधिकाधिक स्पष्टता के साथ समझ मे आती जा रही है किन्तु इससे उस विमनता, उस अनिच्छा मे कोई कमी नही आ रही है जिसके साथ लोगो ने इसे स्वीकार किया है।

अमरीकियो का दूसरा प्रधान गुण उनकी उदारता है। सयुक्त राज्य एव सोवियत सघ दोनो ही परितृप्त शक्तिया हैं किन्तु उनकी आर्थिक एव सामाजिक परिस्थितिया केवल इस सामान्य अर्थ म समान हैं कि अमरिका की भाति रूस को भी विशाल अविकसित साधन उपलब्ध हैं। अमरिका के अनुरूप रूस ने १९४१ ई० म जमनी द्वारा आक्रान्त होने के पूर्व बारह वर्षों मे अपनी क्षमता का उपयोग मुश्किल से ही शुरू किया था और इतने मानवीय प्रयास एव दुख की कीमत पर वह जो विकास कर सका था उसका अधिकाश आक्रमण से ध्वस्त हो गया। इसके बाद रूस ने अपने को विजयी पक्ष मे पाये जाने का अनुचित लाभ उठाया और जमनो ने रूसी औद्योगिक यन्त्रो का जो विनाश कर डाला था उसकी पूर्ति रूसियो ने न केवल अपराधी जमनो से वरन् पूर्वी एव मध्य यूरोप के उन देशो से भी उन्हे उठा लाकर की जिन्हे नाजियो के हाथ से मुक्ति दिलाने का दावा वे कर रहे थे। यही बात उन्होने मचूरिया के उन चीनी प्रान्तो मे भी दोहरायी जिन्हे जपान के हाथ से मुक्त करने की बात थी। यह सब उस अमरीकी युद्धोत्तर पुनर्निर्माण नीति के विपरीत था जो माशल योजना तथा अन्य उपायो म प्रवर्तित की गयी और जिसके द्वारा उन अनेक देशो को पुन अपने पाव पर खडे होने का अवसर मिला जिनका जीवन युद्ध के कारण विशृखल हो गया था। इसके लिए उस अमरीकी करदाता की सदिच्छा से वाशिंगटन स्थित काग्रेस (अमरीकी ससद) ने धन की सहायता मजूर की जिसकी जेब से सब रकम आनी थी। अतीत काल म विजयी शक्तिया की परम्परा तो उलटे लेने का थी देने की नही थी और सोवियत सघ की नीति म भी इस बुरी प्रथा का त्याग नही किया गया। मार्शल योजना ने एक ऐसा नया उदाहरण कायम किया जिसकी जोड का दूसरा उदाहरण इतिहास म उपलब्ध नही था। कहा जा सकता है कि दूर एव बुद्धिमत्तापूर्ण दृष्टि से यह उदार नीति स्वय अमरीका के अपने हित मे थी किन्तु सरकम इसलिए कम अच्छे नही रह जाते कि वे अच्छे होने के साथ ही बुद्धिमत्तापूर्ण भी हैं।

किन्तु अब पश्चिमी यूरोपीय देशो के नागरिक इस भय से परेशान हैं कि कही अमरीका ने कोई ऐसा निश्चय कर लिया जिसम उनसे कोई राय नही ली गयी और रूसी उत्तेजना के जवाब म अमर्ष के कारण कोई अनिच्छित अमरीकी काय ऐसा हो गया कि उसके परिणाम-स्वरूप उनके सिरो पर रूसी अणु आयुध फट पडे तो क्या

होगा ? यद्यपि अनेक विषयों में अमरीकी संघ के आश्रित राज्यों को कार्य करने की ईर्ष्या योग्य स्वतन्त्रता प्राप्त है, जो सोवियत संघ के आश्रित राज्यों को प्राप्त नहीं है किन्तु जिन्दगी और मौत के इन मामलों में वे भी अपने को उसी असहाय स्थिति में पाते हैं।

ब्रिटिश गायना एवं वेनेजुएला के बीच सीमा निर्धारण के प्रश्न को लेकर जो झगड़ा उठा था उसके बारे में अमरीकी वैदेशिक मन्त्री (सेक्रेटरी आफ स्टेट) रिचर्ड ओल्नी ने एक सुन्दर खरीता भेजा था जिसने उसके नाम को वह अमरता प्रदान की जो आज भी उसके साथ लगी हुई है—

'आज इस महाद्वीप में संयुक्त राज्य प्राय सर्वप्रभुताशाली है, और उसका अधिकार प्रजाजनों के लिए वे कानून हैं जिनकी सीमा के अन्तर्गत ही वह किसी प्रकार का हस्तक्षेप करता है। क्यों ? इसलिए नहीं कि वह उनके लिए विशुद्ध मैत्री या सदिच्छा का अनुभव करता है। यह सभ्य राज्य के रूप में केवल उसके उच्च चरित्र के ही कारण नहीं है और न इसी कारण है कि विवेक न्याय और सुनीति संयुक्त राज्य के आचरण की अपरिवर्तनीय विशिष्टताएं हैं। यह इसलिए है कि अन्य कारणों के अलावा, अपनी एकान्त स्थिति के साथ इसके असीम साधनों ने इसे परिस्थिति का स्वामी तथा किसी भी शक्ति अथवा अन्य सब शक्तियों के विरुद्ध लगभग अमोघ बना दिया है।"

इस कथन में जो औचित्य है वह लटिन अमरीका से एक बड़े क्षेत्र में उसके नायकत्व को लागू करने की स्थिति में जरा भी कम नहीं होता। और यद्यपि एक गैर अमरीकी इस तथ्य के प्रति आत्मसमर्पण कर सकता है कि अमरीकी कोड़े रूसी बिच्छुओं पर तर्जीह दिये जाने योग्य हैं गिब्बन की भाषा में एक दार्शनिक को अपने विचार विकसित करने का अवसर देना चाहिए। वह कहेगा कि जिन नीतियों पर आश्रित राज्यों के लोगों का जीवन एवं भाग्य निर्भर करता है उनके निर्णय एवं पालन पर किसी भी अधिराज (परामाउंट पावर) के एकाधिकार में एक ऐसी वैधानिक समस्या गर्भित है जिसका समाधान किसी प्रकार के फेडरल संघ से ही हो सकता है। एक अधिराष्ट्रीय अथवा अन्तर्राष्ट्रीय (Supra National) व्यवस्था के आगमन से जो संवैधानिक समस्याएं उत्पन्न होंगी उनका समाधान सम्भवतः सरलता अथवा शीघ्रता के साथ नहीं होगा फिर भी यह मंगल शकुन का द्योतक है कि संयुक्त राज्य स्वयं अपने इतिहास द्वारा संघ सिद्धान्त (फेडरल प्रिंसिपुल) की स्वीकृति के प्रति वचनबद्ध है

की प्रगति से होने वाले लाभों को नष्ट कर देने पर तुली हुई है। इसी प्रकार उत्पादन की क्षमता की प्रत्येक वृद्धि के समतुल्य श्रमिक-संघों (ट्रेड यूनियन) की प्रतिबन्धात्मक रीतियों को अपनाकर औद्योगिक श्रमिक औद्योगिकी से होने वाले लाभों को निरर्थक करने का भय उत्पन्न कर रहे हैं।

(२) यन्त्रीकरण और निजी उद्योग

आर्थिक-सामाजिक स्तर का सबसे प्रधान लक्षण है वह रस्साकशी (टग आफ वार) जो अभियन्त्रित उद्योग-द्वारा बलात लागू किये जाने वाले एकमार्गीकरण (Regimentation) और इस प्रकार एकमार्गीकृत होने की आग्रही मानवीय अनिच्छा के बीच होती है। इस स्थिति की जटिलता तो इस तथ्य में है कि यन्त्रीकरण और पुलिस दुर्भाग्य से अवियोज्य हैं। पर्यवेक्षक जिस प्रकाश मे दृश्य को देखता है उससे उसकी धारणा प्रभावित होती ही है। तकनीशियन (प्रविधिज्ञ) के दृष्टिकोण से दुराग्रही औद्योगिक श्रमिक का रुख बच्चों की भांति अविवेकपूर्ण मालूम हो सकता है। क्या ये लोग सचमुच ही नही जानते कि हर एक वांछनीय पदार्थ का अपना कुछ मूल्य होता है ? क्या ये सोचते हैं कि जिन शर्तों के पालन के बिना उनकी माग पूरी नही की जा सकती उनका पालन किये बिना ही वे अभाव से मुक्ति पा सकते हैं ? किन्तु एक इतिहासकार इस दृश्य को दूसरी ही नजर से देखता है। वह स्मरण करेगा कि औद्योगिक क्रान्ति अठारहवी शती के ब्रिटेन में ऐसे समय और ऐसे स्थान पर शुरू हुई थी जब और जहा एक अल्पमत एकमार्गीकरण से मुक्ति का बहुत अधिक मात्रा में उपभोग कर रहा था और इस अल्पमत के सदस्य ही अनियन्त्रित उत्पादन प्रणाली के जनक थे। प्रयास की जो प्राक्-औद्योगिक स्वतन्त्रता उद्योगवाद के इन अग्रगामी नेताओं ने पूर्ववर्ती समाज-व्यवस्था से विरासत मे पायी थी वही उस नवीन व्यवस्था की प्रेरणा एवं प्राण रक्त थी जिसे उनकी पहल (इनीशियेटिव) ने अस्तित्व प्रदान किया था।

इसके अलावा औद्योगिक प्रयासकर्त्ता की स्वतन्त्रता का प्राक् औद्योगिक भावना ही, जो औद्योगिक क्रान्ति का मुख्य स्रोत थी, कहानी के अगले अध्याय में भी उसकी प्रेरक शक्ति बनी रही। इस प्रकार यद्यपि, कुछ समय तक, उद्योगों के नेता अपने ही द्वारा निर्मित स्टीम रोलर में कुचल दिये जाने से बचे रहे किन्तु नूतन नागर औद्योगिक श्रमिकों के लिए तो यह भाग्य जन्मजात ही था क्योंकि मानवेतर प्रकृति को वशीभूत करने में विजयिनी प्रौद्योगिकी की सफलता का मानव जीवन पर कुचल देने वाला प्रभाव वे शुरू से ही अनुभव करने लगे थे। किसी पूर्व सन्दर्भ में हम देख चुके हैं कि प्रौद्योगिकी ने मनुष्य को किस प्रकार रात्रि दिवस चक्र और ऋतु चक्र के अत्याचारों से मुक्त किया किन्तु इन पुरातन दासताओं से उसे मुक्त करने में उसने उन्हें नवीन दासता के अधीन कर दिया।

नूतन औद्योगिक श्रमिक वर्ग ने समाज की नूतन रचना को निज मजदूर-संघ संगठनों का उपहार दिया है वे उसी निजी प्रयास के प्राक् औद्योगिक न्याय की विरासत

हैं जिसने उद्योग के नताओ को पदा किया था। अपन मालिकों के साथ क सघष म श्रमिकों को अपन पक्ष पर दृढ़ रहन यान अस्त्रा क रूप म रगता पर मालूम हाता है कि ये सगठन भी उसी समाज-व्यवस्था की उपज थ जिसम उनक पूजीवादी विरोधी पदा हुए थे। स्वभाव वनिष्टय की यह एकरूपता इस तथ्य म भी देखा जा सकता है कि साम्यवादी रूस म निजी मालिका क निमूलन क बाद ही मजूरसघा क एकमार्गीकरण की बारी आ गयी जब कि राष्ट्रीय समाजवादी जमनी म मजूर सघा क निमूलन का अनुसरण निजी मालिकों क एकमार्गीकरण न किया। इसक विपरीत ग्रट ब्रिटेन म १९४५ के सामान्य निर्वाचन क बाद एक एसा मजूर सरकार आ गयी जिसक कायक्रम म निजी स्वतन्त्रता म हस्तक्षेप किय बिना व्यक्तिगत हाथा स औद्योगिक प्रयासा का स्वामित्व ल लेना शामिल था। किन्तु वहा राष्ट्र अधिकृत उद्योगा क श्रमिको न अपन मजूरसघो को समाप्त करने अथवा उन सब साधना स इन सघो क सदस्यो के हितवधन क अधिकार का त्याग करन की बात कभी नही सोची जिनका प्रयोग उन्होंने अपने परित्यक्त निजी मुनाफाखोरो के विरुद्ध किया था। सिफ तटस्थ घोषित करके इस काय प्रणाली का समाप्त नही किया जा सकता क्योंकि मजूरसघो का प्रयोजन एकमार्गीकरण का प्रतिरोध करना था फिर चाहे वह निजी पूजीपति द्वारा लागू किया गया हो या राष्ट्रीय परिषद (नेशनल बोड) द्वारा।

दुर्भाग्यवश मालिक के हाथो किय गये एकमार्गीकरण के प्रति श्रमिको क प्रतिरोध ने उन्ह खुद ही अपने को एकमार्गीकृत करने पर बाध्य कर दिया। कारखाने म यन्त्रमानव के रूप म परिवर्तित हो जाने के भाग्य के विरुद्ध लडते हुए उन्होने खुद अपने ऊपर मजूरसघ म यन्त्रमानव के रूप म सेवा करने का भाग्य लाद लिया। इस भाग्य से मुक्ति पाने की कोई सम्भावना भी नही रह गयी। इस तथ्य म भी उनके लिए कोई आश्वासन की चीज नहीं थी कि उनके पुरान समय वाल परिचित शत्रु निजी प्रयासकर्ता का अब स्वय ही एकमार्गीकरण और इस सीमा तक यन्त्रमानवीकरण कर दिया गया है कि उसका अस्तित्व ही मिट गया है। अब प्रतिपक्षी कोई बोधगम्य मानवी उत्पीडनकर्ता नहीं था जिसकी आँखो को, रोष की भावना जगन पर अभिशप्त किया जा सकता था या जिसकी खिडकिया तोडी जा सकती थी। अब तो श्रमिको का आखिरी दुश्मन एक निराकार सामूहिक शक्ति थी—ऐसी शक्ति जो किसी अधम इसलिए पहिचानन योग्य मानवप्राणी से कही अधिक प्रबल और कही अधिक छलनापूर्ण—पकड मे न आन योग्य थी।

यदि औद्योगिक मजूरा का यह बन्धनकारी आत्म एकमार्गीकरण (सेल्फरेजीमेंटेशन) एक निराशाजनक अपशकुन था तो यह देखना भी बडा भयप्रद था कि पाश्चात्य मध्यवग ने उसी माग पर चलना शुरू कर दिया है जिस पर पाश्चात्य औद्योगिक मजूरवग एक अरसे से चलता रहा है। १९१४ ई के साथ समाप्त होने वाली शताब्दी पाश्चात्य मध्यवग का स्वण युग थी किन्तु नये युग ने इस वग को भी बारी आने पर उसी दु स्थिति मे गिरते देखा जिसमे औद्योगिक क्रान्ति न औद्योगिक श्रमिका को पहुँचा दिया था। सोवियत रूस मे मध्यवग (बूर्जो) का निमूलन एक

सनसनीखेज अपशकुन था, किन्तु आगे आने वाली बातों का इससे भी सही संकेत तो ग्रेट ब्रिटेन एवं अन्य अंग्रेजी भाषा भाषी उन देशों के समकालीन सामाजिक इतिहासों मे पाया जा सकता है जिनमे कोई राजनीतिक क्रान्ति नहीं हुई।

औद्योगिक क्रान्ति एवं प्रथम विश्व युद्ध के आरम्भ के बीच वाले युग मे शारीरिक एवं क्लर्कीय दोनो प्रकार के मजूरों के वशिष्ट्य के विपरीत पाश्चात्य मध्यवर्ग का भेदकारी वशिष्ट्य था—काम करने की उसकी भूख। मैनहटटन द्वीप पर निर्मित पूंजीवाद के दुर्ग में, अभी हाल ही १९४९ तक मे दोनो वर्गों के बीच का यह अन्तर एक क्षुद्र परन्तु महत्त्वपूर्ण उदाहरण में दिखायी पड़ा। उस वर्ष वालस्ट्रीट की साहूकार कोठियाँ (फाइनेंशल हाउसेज) अपने शीघ्रलिपिक टाइपिस्टो को ऊंची ओवर टाइम दर से विशेष पारिश्रमिक देकर उन्हें अपने इस सामूहिक निर्णय पर पुनः विचार के लिए प्रेरित कर रही थी कि आगे से वे शनिवार की सुबह काम पर न आया करेंगे। इन टाइपिस्टो के मालिक देख रहे थे कि यदि वे अपना साप्ताहिक कार्यकाल और छोटा कर देते हैं तो उनके मुनाफे में भी कमी आ जायगी इसलिए वे खुद शनिवार की सुबह काम करने को तैयार थे। किन्तु जबतक शीघ्रलिपिक टाइपिस्ट उनके काम मे सहायता करने को कार्यालयो में उपस्थित न हो तबतक वे अपना काम करने में असमर्थ थे, और वे अपने धनार्जन के व्यवसाय मे अपने उन अपरित्याज्य सहकारियो को यह समझाने में असफल रहे कि शनिवार को काम करना उनके लिए भी लाभजनक है। शीघ्रलिपिक टाइपिस्टो का कहना था कि एक दिन अथवा आधे दिन का भी अतिरिक्त अवकाश उनके लिए किसी भी आर्थिक लाभ के प्रलोभन से अधिक महत्त्वपूर्ण है। उनकी जेबो में अतिरिक्त रकम का आना उनके लिए बेमतलब था यदि वे अतिरिक्त अवकाश के त्याग की कीमत पर उसे प्राप्त करते हैं क्योंकि तब उस अतिरिक्त धन को खर्च करने का समय हो उन्हें कब मिलेगा? धन एवं जीवन के बीच के इस विकल्प में, उन्होंने धन निकल जाने की कीमत चुकाकर भी, जीवन के विकल्प को चुना और उनके मालिक लोग उन्हें अपना मत बदलने को राजी न कर सके। १९५६ ई. तक यह प्रतीत होने लगा कि वालस्ट्रीट के साहूकारो का दृष्टिकोण अतिरिक्त धन प्राप्ति के प्रलोभन-द्वारा टाइपिस्ट ग्रहण करें इसकी जगह खुद वे साहूकार ही आर्थिक संकट के कारण टाइपिस्टो का दृष्टिकोण ग्रहण करने को बाध्य होते जा रहे हैं क्योंकि इस समय तक वालस्ट्रीट को भी उस भय का अनुभव होने लगा था जिसके कारण इसके पहिले ही लोम्बार्ड स्ट्रीट के कभी आशा से पुलकित हृदय ठिठुरकर बैठ चुके थे।

ख्रीष्टीय संवत की बीसवी शती में लाभप्रद व्यवसाय करने के अवसर पाश्चात्य मध्यवर्ग के लिए पूंजीवादी क्रियाशीलता के एक के बाद दूसरे पाश्चात्य केन्द्र से मिटते जा रहे हैं। और ये आर्थिक विफलताएं मध्यमवर्ग के स्वभाव-वशिष्ट्य पर निराशाजनक प्रभाव डालती हैं। इस वर्ग में काम करने की जो परम्परागत ललक थी वह निजी प्रयास का क्षेत्र दिन दिन घटते जाने के कारण समाप्त होती जा रही है। अध्यवसायपूर्ण कमाई एवं मितव्ययजनित बचत के इसके परम्परागत गुणो का

मुद्रास्फीति एव करवृद्धि ने निरथक कर दिया है। एक ओर तो जीवन यापन का व्यय बढता जा रहा है और दूसरी ओर जीवन यापन का मान भी गिरता जा रहा है। इसस मध्यवग अपने कुटुम्ब का आकार छोटा करने को विवश हो गया है। उसम जो पेन की कुशलता थी वह निजी पारिवारिक सेवा उपलब्ध न होने के कारण गिरती जा रही है। अवकाश न मिलने के कारण इसकी सस्कृति का ह्रास हो रहा है। अगा कि बीसियो जीवनियो से व्यक्त होता है वह माँ जिस पर उच्च मध्यवग के मात मुख्यत आश्रित थे वही माँ वही मध्यवर्गीय स्त्री आज मध्यवर्गीय पुरुष से भी ज्यादा कठोर आघात पा रही है।

मध्यवग निरन्तर अधिकाधिक सख्या म निजी प्रयोगो से निकलकर सार्व जनिक या सरकारी नौकरियों या उनके मनोवैज्ञानिक प्रतिरूप महत्‌ अनामराय निगमो मे चला जा रहा है। उसके इस बहिर्गमन से पाश्चात्य समाज को लाभ भी हुआ है और हानि भी हुई है। सबसे बडा लाभ यह हुआ कि मुनाफाखोरी का प्रेरक हेतु लोक सेवा के परहितवादी मुख हेतु के अधीन हो गया है। इस परिवर्तन के सामाजिक मूल्य का मापन अन्य सभ्यताओ के इतिहासो म हुए समवर्ती परिवत्तनो के परिणामो से किया जा सकता है। उदाहरणार्थ हेलेनी, सिनाई एव हिन्दू सभ्यताओ के इतिहासो म सावभौम राज्यो की स्थापना-द्वारा उद्घाटित सामाजिक समाहरण बहुत बडे परिमाण मे लोक-सेवा के प्रति उस समय तक लूटपाट करने वाले एक वग की क्षमताओ के पुनर्निर्देशन द्वारा ही प्राप्त किया गया था। लुण्ठक रोमन व्यापारियो म से ही आगस्टस एव उसके उत्तराधिकारियो ने अच्छे लोकसेवको का निर्माण किया था, हान ल्यू पैंग और उसके उत्तराधिकारियो ने लुण्ठक सामन्त वग से उन्ह बनाया था कानवालिस एव उसके उत्तराधिकारियो ने ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी के लुण्ठन कारी व्यावसायिक एजेंटो मे से उनकी रचना की थी। फिर भी प्रत्येक उदाहरण म जो परिणाम निकले उन्होंने विविध ढग से उनकी स्वाभाविक दुबलताओ को व्यक्त किया और उनकी चरम असफलता का स्पष्टीकरण सिविल सर्विस की आचरण नीति की उस द्वधवृत्ति मे देखा जा सकता है जिसम एक ओर ईमानदारी का महान् सद्गुण था तो दूसरी ओर पहल करने या खतरा उठाने की उमग का अभाव या उसके प्रति अनिच्छा थी। अब यही विशेषताए बीसवी शती के पाश्चात्य मध्यवर्गीय अधिकाश लोकसेवको (सिविल सर्वेंटस) या सरकारी नौकरो म दिखायी पड रही है। उनके सामने देर-सबेर से जो महत्‌ कर्त्तव्य उपस्थित होने वाला है—विश्व शासन को सघटित एव सचालित करने का कत्तव्य उसका सफलतापूवक निर्वाह करने का उनकी सम्भावनाओ के लिए यह कोई अच्छा लक्षण नही है।

जब हम सिविल सर्विस की इस आचरण-नीति के कारणों पर विचार करते हैं तो हमे पता चलता है कि यह उस मशीन द्वारा किये जाने वाले दबाव की चुनौती का उत्तर है जो मानसिक के स्थान पर धात्विक सामग्री से बनी होने के कारण मानवा त्माओं के प्रति कुछ कम कठोर नही थी। लाखो प्रजाओ का प्रशासन करने वाले एक अतिसघटित राज्य के यन्त्र की देखरेख उतना ही आत्मविनाशक काय था जितनी

किसी कारखाने में वैज्ञानिक रूप से व्यवस्थित भौतिक गतिया थी। बल्कि वस्तुत लाल फीता लोहे का अपक्षा सकुचित करने वाला सिद्ध हो सकता है और वह लाल फीता अब सिविल सर्वेंट की, सरकारी नौकर की आत्मा में प्रवेश कर गया है और कायश्लथ नागरिक सवा (सिविल सर्विस) मे जाब्ते एव नियम की कारवाइयो द्वारा सम्पादित भूमिका अब अत्यधिक काय भार से दबे निर्वाचित विधान मण्डलो म अधिकाधिक कठोर एव अनुशासनात्मक होती जाने वाली दलगत प्रणाली द्वारा अभिनीत की जाने लगी है।

प्रचलित 'पूजीवादी व्यवस्था की सम्भावनाओ के लिए इन सब प्रवृत्तियो के महत्व का अनुमान करना कुछ कठिन नही है। पाश्चात्य मध्यवग के पास प्राक्-औद्योगिक काल म मानसिक ऊर्जा का जो कोश था वही पूजीवाद का प्रेरक बल था। यदि वह ऊर्जा आज शिथिल एव शक्तिहीन की जा रही है और साथ ही निजी प्रयासो स हटाकर सरकारी सेवा की ओर मोडी जा रही है तब निश्चय ही यह उपक्रम पूजीवाद का काल सिद्ध होगा।

> 'पूजीवाद निश्चय ही आर्थिक परिवतन का एक प्रक्रम है नवोन्मेष के बिना कोई प्रयासी, कोई अ यवसायी नहीं, बिना आध्यवसायिक सफलता के कोई पूजीवादी लाभ नहीं, कोई पूजीवादी उमग नहीं। प्रगति का—औद्योगिक क्रांति का वातावरण हो ऐसा होता है जिसमे पूजीवाद जी सकता है। स्थिर पूजीवाद अपने आप मे विरोधाभासक है।' [1]

ऐसा दिखायी पडता था कि औद्योगिक प्रविधि या औद्योगिक प्रौद्योगिकी (इण्डस्ट्रियल टेकनालिजी) द्वारा थोपा हुआ एकमार्गीकरण निजी प्रयास की प्राक् औद्योगिक प्रेरणा के प्राण ले लेगा और इस सम्भावना ने एक और सवाल खडा कर दिया। क्या अभियन्त्रित उद्योग की प्राविधिक प्रणाली निजी प्रयास की सामाजिक प्रणाली के बाद भी जीवित रह सकेगी ? और यदि वसा नही कर सकेगी तो क्या उस अभियन्त्रित उद्योग की मृत्यु के पश्चात स्वय पाश्चात्य सभ्यता टिक सकेगी, जिसके आगे उसने अपने को बाधक रख छोडा है क्योकि यन्त्रयुग मे उसने जन-सख्या को इस सीमा तक बढने का अवसर दिया है जहा तक कोई औद्योगिकेतर अर्थ प्रणाली उसका भार वहन नही कर सकती।

यह बात निर्विवाद है कि औद्योगिक प्रणाली तभी तक काम कर सकती है जबतक उसे सचालित करने के लिए सजनात्मक मानसिक ऊर्जा का कोई कोष होता है, और यह प्रेरक शक्ति मध्यवग ही प्रदान करता रहा है। इसलिए अन्तिम प्रश्न तो यह खडा हो जाता है कि क्या इन्ही आर्थिक प्रयोजना के प्रयोग म आने योग्य मानसिक ऊर्जा का कोई दूसरा स्रोत है जिससे मध्यवग की ऊर्जा के अक्षम हो जाने या किसी दूसरी दिशा म लगा दिये जाने के बाद पाश्चात्य रग मे रगता जाने वाला विश्व अपने

[1] शुमपीटर, जे ए 'बिजिनेस साइक्लिस' (न्यूयार्क १६३६, मक्ग्रा हिल २ भाग), भाग २ पृष्ठ १०३३

लिए शक्ति ग्रहण करता रहे ? यदि कोई ऐसा व्यावहारिक विकल्प पहुँच का सामा के अन्दर है तो विश्व पूजावादी प्रणाली का मृत्यु की ओर स्थिर चित्त से देख सकता है कि तु यदि ऐसा कोई विकल्प नही है तो फिर सम्भावना व्यग्रकारी है। यदि यन्त्रीकरण से एकमार्गीकरण होता है और इस एकमार्गीकरण ने औद्योगिक मजूरवर्ग की प्ररणा खत्म कर दी है और उनके बाद मध्यवर्ग को भी निर्जीव कर दिया है तो फिर क्या किसी मानव के लिए इस सर्वशक्तिशाली यन्त्र (मशीन) को हानि उठाये बिना, हाथ लगा सकना सम्भव है ?

(३) सामाजिक सामञ्जस्य के वकल्पिक माग

मानव जाति के सामने जो सामाजिक समस्या उठ खडी हुई है उस पर विभिन्न देशो म विभिन्न दृष्टिकोणो से विचार किया जा रहा है। एक दृष्टिकोण उत्तरी अमरीका म अपनाया गया है दूसरा सोवियत सघ म और एक तीसरा पश्चिमी यूरोप म।

उत्तरी अमरीकी दृष्टिकोण नयी दुनिया म एक पार्थिव स्वग की रचना करने के आदर्श से अनुप्राणित है। यह पार्थिव स्वग निजी प्रयास की एक ऐसी प्रणाली पर आश्रित है जिसके बारे में उत्तरी अमरीकियो (इस शब्द के अ तगत अग्रेजी भाषा भाषी, कनाडा-वासी और सयुक्त राज्य के लोग दोनो ही शामिल हैं) का ख्याल है कि दुनिया म और कही जो कुछ हो अपने यहा वे उसे पूर्ण स्वास्थ्य की दशा म रख सकते है। उनका विचार है कि वे मजूरी करने वाले वर्गों के आर्थिक एव सामाजिक मान को मध्यवग के स्तर तक उठाकर और इस प्रकार जिसे हमने पूर्व अध्याय मे औद्योगिक यन्त्रीकरण का स्वाभाविक मनोवैज्ञानिक प्रभाव बताया है उसे प्रभावहीन बनाकर ऐसा कर सकते है। यह बडा प्ररणादायी विश्वास है पर तु जरूरत से ज्यादा सरल है क्योकि यह अनेक भ्रान्तियो पर आधारित है। इन सब भ्रान्तियो को एक मूल भ्रान्ति सरल पार्थक्यवाद (आसोलेशनिज्म) या अलगाव म घटाकर रखा जा सकता है। नयी दुनिया उतनी नयी नही रह गयी है जितना उसके प्रशसक चाहते हैं। मानव स्वभाव जिसम मूल वासना या पाप (ओरीजिनल सिन) शामिल है प्रथम आप्रवासियो और उनके सम्पूर्ण उत्तराधिकारियो के साथ अतलान्त महासागर को पार कर गया था। उन्नीसवी शताब्दी म भी जब पार्थक्यवाद राजनीतिक स्तर पर साध्य-सा लगता था इस पार्थिव स्वग म सापो की बहुतायत हो चुकी थी और ज्यो-ज्यो बीसवी शती आगे बढती और गहरी होती गयी त्यो-त्यो यह अधिकाधिक स्पष्ट होता गया कि विश्व का द्वैतभाव पुराना और नया एक ऐसी परिकल्पना है जो तथ्यो से मेल नही खाती। अब तो मानव जाति 'सब की सब एक ही नाव मे थी और ऐसा जीवन-दर्शन जो सब पर लागू न होता हो किसी एक भाग पर भी ज्यादा दिनो तक लागू नही किया जा सकता।

वर्ग-सघर्ष का रूसी दृष्टिकोण भी अमरीकी की भाति ही एक पार्थिव स्वर्ग की रचना करने के आदर्श से अनुप्राणित हुआ और अमरीकी नीति की भाति ही वह

वग भेद क निमूलन द्वारा वग-सघप से मुक्ति पान की नीति म मूत्त हुआ। किन्तु दोनो क बीच का साम्य यहा आकर समाप्त हो गया। जहा अमरीकी औद्योगिक मजूरवग को मध्यवग म निमज्जित कर लेने का प्रयत्न कर रहे थ वहा रूसिया न मध्यम वग का ही अन्त कर दिया। न केवल पूजीवादिया क लिए बल्कि मजूर सघों के लिए भी निजी प्रयास की सम्पूण स्वतन्त्रता पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया।

साम्यवादी रूसी नीति मे कुछ ऐसे प्रवल विचार बिन्दु या मुद्दे थे जिनकी उपक्षा सोवियत सघ के पाश्चात्य प्रतिरोधी नही कर सकते थे, और इस परिमपत्ति (असेन्स) मे पहिली और सबसे बडी चीज तो थी स्वय साम्यवाद की लाकनीति (ईथोज)। लम्बी दौड म यह विचार धारा धम के लिए एक असन्तोपप्रद विकल्प प्रमाणित हो सकती है किन्तु थोडी अवधि के लिए तो रिक्त एव शून्य किसी भी प्राणी को जिसका घर रिक्त, शून्य और ऋणग्रस्त था, उसने मनुष्य की एक गहनतम आर्थिक आवश्यकता अर्थात तुच्छ वैयक्तिक उद्देश्या से ऊपर उठाकर जीने का एक प्रयोजन प्रदान करके सन्तुष्ट कर दिया। ससार को साम्यवाद म धर्मान्तरित करने का मिशन उससे ज्यादा उल्लासकारी था जितना कि मुनाफा उठान या हडताल करने के अधिकार क लिए दुनिया को सुरक्षित रखने का मिशन था। पवित्र रूस' 'सुखी अमरीका' की अपेक्षा अधिक उत्तजक सामरिक नारा था।

रूसी अभिगम (एप्रोच) या माग का दूसरा शक्तिमान बिन्दु यह था कि रूस की जो भौगोलिक स्थिति थी उसमे रूसियो के लिए पाथक्यवाद की भ्रान्ति को ग्रहण करना असम्भव था। रूस की कोई प्राकृतिक सीमा नही थी। इसके अलावा क्रेमलिन[1] द्वारा उपदिष्ट मार्क्सवाद चीन से पेरू और मक्सिको से ट्रापिकल अफ्रीका तक विश्व की कृषक जनता को बहुत भाया। अपनी सामरिक एव आर्थिक स्थिति म रूस की मानव जाति की उस दलित तीन चौथाई लोक सख्या के साथ सयुक्त राज्य (अमेरिका) की अपेक्षा अधिक घनिष्ठ सगोत्रता थी जिसकी निष्ठा प्राप्त करने के लिए दानो शक्तिया होड कर रही थी। रूस यह दावा कर सकता था, और उसका दावा ऊपर से सच्चा भी दिखायी पडता था कि उसने अपन कठोर प्रयत्नो से ही अपनी रक्षा की है और अपन उदाहरण द्वारा ससार के शेष प्रोलतेरियत (मजदूर वग) की भी रक्षा करेगा। इस मजदूर वग का एक अश खुद सयुक्त राज्य के अन्दर ही निवास करता था, और इस मार्क्सी प्रेरणा की शक्ति के प्रति साम्यवाद विरोधी अमरीकियो के कतिपय वर्गों की चिन्ता छिपी नही रह सकी बल्कि कही कहीं तो वह अभिव्यक्तियो म उन्मादोन्मुख (हीस्टारिकल) तक हो गयी।

वग-सघप की समस्या के समाधान के निमित्त पाश्चात्य यूरोपीय माग या अभिगम—वह अभिगम जो ग्रेट ब्रिटेन एव स्कडीनेवियाई देशों मे बहुत अधिक दिखायी पडा—अमरीकी या रूसी अभिगमा से इस बात म भिन्न था कि वह दोनो की अपेक्षा

[1] मास्को स्थित जार का राजभवन जो अब साम्यवादी रूसी शासन का केन्द्र है। —सम्पादक

[illegible] (doctrinaire) या कम अव्यावहारिक था। जो देश अपनी शक्ति एव [illegible] [illegible] पाश्चात्य जगत् के छोरों पर स्थित उन्नीसवीं सीमा म हाथ [illegible] जब उनके स्थानीय औद्योगिक मजूर 'नयी व्यवस्था पर जोर [illegible], [illegible] पाश्चात्य यूरोपीय मध्यवग के लिए स्पष्टत असम्भव था कि वह मजूरों [illegible] जीवन मान एवं व्यक्तिगत महत्वाकाक्षाओं की तुष्टि के अवसर प्रदान [illegible] उसकी अमरीकी मध्यमवग का अनुसरण करना। और पाश्चात्य यूरोपीय [illegible] वग को किसी निरकुश शासन के तग वास्कट—वेस्टकोट—का उपहार प्रदान [illegible] और अधिक अव्यावहारिक होता। तदनुसार प्रचलित आग्ल स्कैण्डिनेवियाई अभिगम (एप्रोच) इन दोनों के बीच एक मध्यमाग खोज निकालने का यत्न था। उन्होंने [illegible] प्रयास तथा सामाजिक न्याय के हित म शासकीय एकमार्गीकरण निकालन इन दोनों का मेल कराने, का प्रयोग किया। इस नीति को प्राय समाजवाद के नाम से पहिचाना गया। यह (समाजवाद) ऐसा शब्द था जो उसके ब्रिटिश प्रशसकों के मुह म स्तुतिबोधक और उसके अमरीकी आलोचकों के मुह म निन्दात्मक प्रतीत होता था। जहा तक ब्रिटिश कल्याणराज्य (वेलफेयर स्टेट) प्रणाली का सम्बन्ध है वह टुकडे-टुकडे करके और बिना किसी पूर्वाग्रह के सभी राजनीतिक दलों की वधानिक देनों से बनायी गयी थी।

(४) सामाजिक न्याय की सम्भव लागत

व्यक्तिगत स्वतन्त्रता एव सामाजिक न्याय की किसी न किसी व्यवस्था के बिना मनुष्य के लिए सामाजिक जीवन असम्भव है। बुरी या भली किसी भी मानवीय सफलता के लिए व्यक्तिगत स्वतन्त्रता एक अनिवाय शत है इसी प्रकार मानवीय अन्त सम्पक के लिए सामाजिक न्याय प्रधान नियम है। किन्तु अनियन्त्रित वा असयमित व्यक्तिगत स्वतन्त्रता दुबलतम को नष्ट कर देती है और सामाजिक न्याय उस स्वतन्त्रता के दमन बिना पूरी तरह लागू नही किया जा सकता, जिससे रहित होकर मानवीय आचरण रचनात्मक हो ही नही सकता। जितने भी ज्ञात सामाजिक सविधान हैं वे सब इन्ही दो सैद्धान्तिक अतियों के बीच कही न कही स्थापित किये गये हैं। उदाहरणाथ सोवियत यूनियन तथा सयुक्त राज्य दोनों के कानूनी प्रतिमानों मे

धूमावरण मात्र था। इन दोनों विरोधी आदर्शों के बीच एक मात्र सत्य-समाधान भ्रातृत्व (फ्रेटर्निटी) के माध्यम आदश मे ही प्राप्य था। और यदि मानव की सामाजिक मुक्ति उसके इस उच्चतर आदश को वास्तविकता मे परिणत करने की सम्भावना पर निभर करती तो उसे मालूम हो जाता कि राजनीतिज्ञ की विचक्षणता उसे बहुत दूर तक नही ले जाती, क्योंकि तबतक भ्रातृत्व की उपलब्धि मानव प्राणियो की पकड के बाहर रहती है जबतक कि वे क मात्र अपनी ही शक्तियो पर विश्वास रखते हैं। मानव का भ्रातृत्व ईश्वर के पितृत्व से ही उत्पन्न होता है।

जिस हिलती हुई तराजू के पलडो पर व्यक्तिगत स्वतन्त्रता एव सामाजिक न्याय एक दूसरे के प्रतिकूल, तुलने के लिए रखे हुए है उसम औद्योगिकी का डण्डा स्वातन्त्र्य विरोधी स्तर मे फेंक दिया गया है। इस निष्कष का चित्रण और समथन समाज की आगामी अवस्था के एक पयवेक्षण से हो सकता है जो यद्यपि दिखायी पडने लगा है किन्तु अभी पहुँच के बाहर है। तक के लिए मान लीजिए कि सवशक्तिमती औद्योगिकी अपने कायक्रम—एजेण्डा—के दूसरे प्रधान काय को पहिले ही पूरा कर चुकी और मनुष्य के हाथो मे अणुबम धकेलकर उसने उसे युद्ध को समाप्त कर देने को मजबूर कर दिया, इसके साथ ही मान लीजिए कि सब वर्गों एव सब प्रजातियो को निरोधात्मक औषध के लाभ देकर उसने मृत्यु का औसत भी अभूतपूव रूप से कम कर दिया। यह भी मान लीजिए—जो सम्भावना के अन्तगत है—कि जीवन की भौतिक परिस्थितियो मे ये विलक्षण सुधार इस तेजी से हुए कि सास्कृतिक परिवतन उसका साथ न दे सके। तो फिर ये मान्यताए हमे यह कल्पना करने को भी विवश करेंगी कि मानव जाति की तीन चौथाई कृषक जनता जीविका के साधनो की सीमा तक सन्तति उत्पन्न करते जाने की अपनी आदत को नही छोड पायी होगी। फिर यह कल्पना हम एक दूसरी कल्पना करने को मजबूर करती है कि जो ऐसी विश्वव्यापी व्यवस्था अपनी स्थापना के साथ शान्ति, पुलिस स्वास्थ्य विज्ञान तथा खाद्यद्रव्य की उपज पर विज्ञान के प्रयोग की सुविधाए ले आयी है उसने विराट कृषक जनता को जीवन निर्वाह के जो अतिरिक्त साधन सुलभ कर दिये हैं उनका उपयोग और व्यय वह अपनी बढी हुई सख्या पर ही कर डालेगी।

ऐसी भविष्यवाणियाँ विचित्र नही हैं वे बहुत दिनो से प्रचलित प्रवृत्तियो के भावी प्रक्षेपमात्र हैं। उदाहरणाथ चीन को लीजिए। वहाँ सोलहवी शती मे अमरीका से आये ऐसे खाद्यान्नो की फसलें उगायी जाने लगी जो पहिले अज्ञात थे। इससे तथा सत्रहवी शती मे माचुआना की शान्ति (Pax Manchuana) की स्थापना से जीवन निर्वाह के साधनो म काफी वृद्धि हुई किन्तु वह सब जनसख्या की वृद्धि के पेट मे समा गया। लगभग १५५० ई म मक्का लगभग १५६० ई मे मीठे आलू तथा चन्द वर्षों बाद मटर के देशीकरण के कारण १५७८ ई के जनगणना विवरणों मे घोषित आबादी ६३५६६५४१ से बढकर १६६१ ई मे १०,८३,००,००० हो गयी। इसके बाद भी वह बढती ही गयी। १७४१ ई मे १४,३४,११,५५६ उन्नीसवी शती क मध्य तक ३०,०० ०० ००० तथा बीसवी शती के मध्य तक लगभग

६० ००,००,००० पहुच गया। य सख्याए वजन वृद्धि का हा मात्र नग करता किन्तु बराबर बढती ज्यामितिक प्रगतिशीलता की ओर भी इगित करती है—और मजा यह कि ऐसी आश्चयजनक वृद्धि बीच बीच म प्लेग महामारी, दुर्भिक्ष युद्ध हत्या एव आकस्मिक मृत्यु क होते हुई है। भारत इन्दोनेशिया तथा अयत्र भी जनसख्या की समकालिक गति यही कहानी कहती है।

यदि ऐसी बात कल (अतीत म) होता रही है ता आगामी कल (भविष्य म) किस बात की आशा का जानी चाहिए ? यद्यपि विज्ञान के कलाकृ ा न एस उपज बाहुल्य की सृष्टि भी का है जिसने अबतक माल्थस का निराशा को मिथ्या सिद्ध किया है किन्तु पृथ्वी मण्डल की सतह क क्षेत्रफल की अपराजेय सीमितता क कारण मानव जाति की खाद्यपूर्ति की प्रगतिशील वृद्धि की एक सीमा ता होनी हा चाहिए और ऐसा मालूम पडता है कि कृषक वग की हर दर्जे की मन्तानोत्पादन की शक्त पर नियन्त्रण स्थापित किय जान के पूव हा हम इस सामा पर पहुच जायग।

इस प्रकार माल्थस का आशाआ की मरणानन्तर पूर्ति की भविष्यवाणी करन के बाद हमे यह भविष्यवाणी भा करनी पड़ेगा कि महत् दुर्भिक्ष क समय तक कोई न कोई विश्वव्यापी सत्ता सामने आ जायगी जा अपने पृथ्वीमण्डल का सम्पूण आबादी की प्रारम्भिक भौतिक आवश्यकताआ की देखरेख की जिम्मेदारी अपने ऊपर ले लगी। उस अवस्था म बच्चे पदा करना पत्नियां एव पतिया का निजी मामला न रह गया होगा और वह एक विश्वव्यापी अवयक्तिक अनुशासक सत्ता की सावजनिक चिन्ता का विषय हा चुका होगा। व्यक्तिगत जीवन के आन्तरिक पवित्र कक्ष म बलात प्रवेश करने की ओर अभी जहा तक सरकारें आयी है वह यह है कि जब श्रम के लिए या तापो का चारा बनने के लिए अधिकारियो को मानव की सख्या बढाने की आवश्यकता पडती है तब असामान्य रूम स बड कुटुम्बा के माता पिताआ के लिए विध्यात्मक पुरस्कारो की योजना की जाती है किन्तु उन्होंने कभी अपनी प्रजाआ कुटुम्ब क आकार को सीमित करने की निषधाज्ञा लगाने का सपना नही देखा ठीक उसी प्रकार जस उन्हाने उनका सन्तति-वृद्धि क लिए विवश करन की कल्पना नही की। निश्चय ही सन्तान पदा करन या न करन की स्वतन्त्रता इतनी लापरवाही के साथ स्वीकृत मान ली गयी थी कि १९४१ ई तक मे राष्ट्रपति रूजवेल्ट को यह नही सूझा कि अपन एटलाटिक चाटर— घोषणापत्र—म पावनीकृत स्वत सिद्ध मानवीय स्वतन्त्रताओ की सख्या चार स पाच तक बढाकर इसे बिलकुल स्पष्ट कर देते कि अपन कुटुम्बो क आकार का निश्चय करना माता पिताओ का पवित्र अधिकार है। परन्तु अब तो ऐसा लगता है कि भविष्य यह सिद्ध कर देगा कि इस विषय पर रूजवेल्ट के निश्छल मौन म कोई अनिच्छित तक निहित था मालूम यह पडता है कि अन्त म मानव जाति को नूतन अभाव मुक्ति का गारण्टा तबतक नही दी जा सकेगी जबतक कि सन्तानोत्पादन का परिचित स्वतन्त्रता उसस छीन न ली जायगी। इसे कसे किया जाय यह समस्या कुछ बड़े नाजुक प्रश्न खड़े कर दती है।

यदि एसा ही समय आता है जब सन्तानोत्पादन किसा बाह्य सत्ता द्वारा

नियन्त्रित कर दिया गया हो तो वयक्तिक स्वतन्त्रता म कमी किये जाने के इस कृत्य को एक ओर मानव जाति के कृषक बहुमत तथा दूसरी ओर एक ऐसे अल्पमत द्वारा किस रूप मे ग्रहण किया जायगा जिसे औद्योगिक प्रौद्योगिकी (इण्डस्ट्रियल टक्नालिजी) कृषकों की पराधीनता से पहिले ही मुक्ति दिला चुकी है? मानव जाति की इन दो शाखाओ के बीच का विवाद सम्भवत कटु होगा क्योकि दोनो को एक दूसरे के विरुद्ध शिकायत होगी। औद्योगिक मजदूर इस मान्यता पर नाराजी प्रकट करगे कि कृषक मुखो की सख्या म अप्रतिवर्धित वृद्धि होते जाने पर भी उनको जीवन निर्वाह की सामग्री देने की नतिक जिम्मेदारी उन पर है। दूसरी ओर कृषक वग अपनी जाति को ज म देन के अपन परम्परागत स्वातन्त्र्य पर सिफ इसलिए प्रतिबन्ध लगाये जाने का विरोध करेगा कि भुखमरी का एक मात्र विकल्प यही है, क्योकि इस त्याग की माँग उनस उस समय की जा रही है जब उनके दरिद्र जीवन मान क बीच की खाई आज सदा से अधिक चौडी हो गयी है।

यदि हमारी यह भविष्यवाणी ठीक है कि जिस समय विश्व का खाद्य-उत्पादन अपन शिखर पर पहुँच रहा होगा उम समय भी कृषक-समाज सामग्री की अतिरिक्त पूर्ति या आमद (सप्लाई) का अधिकाश अपनी सख्या की वृद्धि मे खच कर देगा और औद्योगिक मजूर अपनी आय का अधिकाश अपने जीवन मान को ऊचा करने म खच करते जायेंगे तो इसके कारण दोनो वर्गों के बीच की खाई बराबर चौडी होती जायगी। इस स्थिति मे कृषक जनता यह समझने म असमथ रहेगी कि उसके मानवाधिकारो म मबसे पवित्र अधिकार का त्याग करने को कहे जाने क पूव समृद्ध अल्पमत को अपनी उत्तेजक फालतू सामग्रियो का अधिकाश भाग छोडने को क्यो न कहा जाय। दूषित पाश्चात्य विशिष्ट वग को यह माँग अनैसर्गिक रूप से विवेक रहित मालूम पडेगी। पर पाश्चात्य या पाश्चात्य रग मे रगा विशिष्ट वग जिसकी समृद्धि उसकी बुद्धि और दूरदर्शिता का परिणाम थी, कृषक जनता के अदूरदर्शितापूर्ण यौन असयम की कीमत चुकाने को दण्डित क्यो किया जाय? जब इस बात का ख्याल किया जाता है कि पाश्चात्य मानक (स्टण्डड) के बलिदान स विश्व यापी दुर्भिक्ष की प्रेतछाया नष्ट न की जा सकेगी बल्कि बहुत थोडी ऐसी अवधि के लिए कुछ दूर रखी जा सकेगा जिसमे यह बलिदान सबसे आगे बढ़े लोगो का भी फिसड्डी बनाकर छोड देगा तो यह माग और भी अयुक्तिपूर्ण मालूम पडती है।

ऐसी कठोर प्रतिक्रिया मे समस्या के समाधान म कोई सहायता नही मिलेगी और निश्चय ही इसका पूर्वानुमान किया जा सकता है कि जसी भविष्यवाणी ऊपर हमने की है यदि अन्त मे वसा ही खाद्य सकट पैदा होता है तो पाश्चात्य मानव की मुख्य प्रतिक्रिया एस सहानुभूति शून्य ढग की नही होगी। प्रबुद्ध आत्म-हित का, निरुद्वेग परिकलन, कष्ट निवारण की मानवीय कामना और मतवादी हठ के साथ परित्यक्त ईसाइयत के अवशिष्ट आध्यात्मिक दाय रूप नतिक दायित्व की भावना—*मतलब प्रेरक हेतुओ का एसा समवाय जो एशिया एव यूरोप के देशो म* जीवन-मान ऊंचा करने के अनेक अन्तर्राष्ट्रीय प्रयत्नो को जन्म दे चुका है—पाश्चात्य मानव को

पुरोहित या पादरी की भूमिका के स्थान पर संकट में दौड़ पहनजान प्राणी की भूमिका पूरी करने के लिए प्रेरित करेगी।

यदि कभी यह विवाद छिड़ेगा तो उसके अर्थशास्त्र एवं राजनीति में स्तर से उठाकर धर्म के स्तर पर ले जाये जाने की सम्भावना है और इसके कई कारण हैं। पहिली बात तो यह है कि कृषक समुदाय में अपनी खाद्य-आपूर्ति की सीमा तक सन्तानोत्पादन का जो आग्रह है वह एक ऐसे धार्मिक विश्वास का सामाजिक प्रभाव है जिसे उसकी धार्मिक वृत्ति एवं दृष्टिकोण में परिवर्तन हुए बिना सुधारा नहीं जा सकता। जिस धार्मिक दृष्टिकोण ने उसकी सन्तानोत्पत्ति की आसक्ति को तर्क के विरुद्ध इतना प्रतिरोधपूर्ण बना दिया है वह शायद मूल रूप में इतना तर्कहीन इतना अयुक्त नहीं रहा होगा क्योंकि यह समाज की उस आदिमकालीन अवस्था का अवशेष है जिसमें कुटुम्ब कृषि उत्पादन का प्रशस्ततम सामाजिक तथा आर्थिक घटक था। अभियन्त्रित औद्योगिकी ने जब उस सामाजिक एवं आर्थिक पर्यावरण को दूर कर दिया है जिसमें कौटुम्बिक उर्वरता की पूजा कोई आर्थिक एवं सामाजिक अर्थ रखती थी, किन्तु जब उसमें कोई अर्थ शेष नहीं रह गया है तब भी उस पूजा के आग्रह का कारण यह है कि बुद्धि एवं इच्छा शक्ति का जिस तेजी के साथ विकास हुआ है उसकी तुलना में अवचेतन स्तर पर मानसिक विकास की गति बड़ी धीमी रही है।

जबतक कृषक की आत्मा में धार्मिक क्रान्ति नहीं होती तबतक संसार की जन संख्या की समस्या का हल होना कठिन ही जान पड़ता है किन्तु भावी संकट को मानव जाति के लिए सुखद अन्त में बदलना है तो इस स्थिति में केवल कृषक-समाज ऐसा पक्ष नहीं है जिसका हृदय परिवर्तन होना है। क्योंकि यदि यह सत्य है कि मनुष्य केवल रोटी के बल पर जीवित नहीं रह सकता तो एक आत्मतुष्टिपूर्ण समृद्ध पाश्चात्य अल्पमत को कृषक-समुदाय के लोकाचार में निहित अपार्थिव प्रवृत्तियों से भी कुछ सीखना होगा।

अपने भौतिक सुखों की वृद्धि के प्रयत्न में सनसनी पैदा करने की सीमा तक सफल प्रयास पर केन्द्रित हो जाने के कारण पाश्चात्य मानव के लिए अपनी आत्मा को खो देने का खतरा उत्पन्न हो गया है। यदि उसे मुक्ति प्राप्त करनी है तो वह इसे अपनी भौतिक सफलताओं के फल या लाभ में मानव जाति के अपने भौतिक दृष्टि से कम सफल बहुमत को हिस्सा देकर ही पा सकता है। सन्तानोत्पत्ति नियन्त्रक अनीश्वरवादी इंजीनियर को भी असंयमी एवं अन्धविश्वासी कृषक से उतना ही सीखना है जितना कृषक को इंजीनियर से सीखना है। इन दोनों पक्षों के प्रबोध एवं उन्हें परस्पर निकट लाने में संसार के ऐतिहासिक महत् धर्म किस भूमिका का अभिनय करते हैं यह एक ऐसा प्रश्न है जिसका अभी कोई उत्तर नहीं दिया जा सकता।

(५) इसके बाद क्या सदा सुखी रहेंगे ?

यदि हम एक ऐसे विश्व-समाज की कल्पना कर सकें जिसमें मानव-जाति ने पहिले अपने को युद्ध एवं वर्ग-संघर्ष से मुक्त कर लिया हो और फिर आबादी की

समस्या हल करने मे प्रगति की हो तो हम यह कल्पना भी कर सकते हैं कि मानव जाति की दूसरी समस्या यह होगी कि अभियन्त्रित समाज के जीवन मे अवकाश की क्या भूमिका हो ?

अवकाश इतिहास म पहिले ही प्रधान महत्त्व की भूमिका का अभिनय कर चुका है, क्योंकि यदि आवश्यकता सभ्यता की माता रही है तो फुसत (अवकाश) उसकी धात्री—नस का काय करती रही है। सभ्यता का एक विशिष्ट गण यह तीव्र वेग है जिसके साथ जीवन की इस नूतन प्रणाली ने अपनी क्षमताओ का विकास किया है। और सभ्यताओ को यह प्ररणा एक अल्पमत के अल्पमत ने—एक ऐसे विशेषा धिकारप्राप्त वग के चन्द प्रयोजनशाल लोगो ने प्रदान की है जिनका विशेषाधिकार अवकाश का उपभोग करना ही रहा है। कला एव विज्ञान के क्षेत्र मे मनुष्य न जितनी भी महती सफलताए प्राप्त की हैं वे सब इसी सजनशील अल्पमत द्वारा अवकाश के लाभजनक उपयोग का परिणाम हैं। कि तु औद्योगिक क्रान्ति ने—कई विभिन्न रूपो मे—अवकाश एव जीवन के पूव सम्बन्ध को विच्छिन्न कर दिया है।

इन परिवतनो मे सबसे महत्वपूण तो मनोवैज्ञानिक परिवत्तन है। यन्त्रीकरण ने औद्योगिक मजूर के मन मे अपने काम के प्रति उसकी भावना और अवकाश के प्रति उसकी भावना के बीच एक ऐसा तनाव पदा कर दिया है जिसका प्राक्-औद्यो गिकी युग म न तो कृपक बहुमत को न विशेषाधिकारप्राप्त अल्पमत को कोई अनुभव था। खेतिहर समाज मे जो ऋतु चक्र कृपक मानव का पचाग (कलेंडर) था उसी ने अवकाश वाले अल्पमत के लिए दरबार लगाने और युद्ध को जाने या पालमेण्ट मे बठने और शिकार खेलने या मछली मारने के बीच के समय या बटन—वितरण भी कर दिया था। दिवस रजनी तथा ग्रीष्म शिशिर के निरन्तर प्रवत्तमान चक्र-द्वारा मुखरित बीन एव-याग लय म कृपक समाज एव उसके शासक वग दोनो ने ही काय तथा अवकाश की प्रत्यावर्तिनी अवस्थाओ को निश्चित मान लिया था। प्रत्यक अवस्था दूसरी से राहत देती थी। किन्तु काय एव अवकाश की यह प्राक्-औद्योगिक अन्तर्निभरता एव समानता उस समय विशृ खल हो गयी जब श्रमिक ऐसी मशीनो के परिचर (टेंडर) के रूप म बदल गया जो रात दिन पूरे साल चलती रह सकती हैं। अब मशीन एव अपने मालिको-द्वारा काम कराते-कराते मार डालने के भय स अपनी रक्षा करने के लिए वह श्रमिक जीण औद्योगिक युद्ध-कला को अपनाने पर मजबूर हो गया। उसने मशक्कत की उस जिन्दगी के प्रति अपन मन को शत्रुता या विरोध की भावना से भर लिया जिसे सहनशील कृषकों न स्वाभाविक मानकर ग्रहण कर लिया था और काय के प्रति इस नये रुख न अवकाश क प्रति भी एक नया रुख पदा कर दिया क्योंकि यदि काय आन्तरिक रूप स बुरा है तो निश्चय ही अवकाश का अपना अबाधित मूल्य होगा।

बीसवी शती के मध्य तक कारखाने और आफिस की नित्य चर्या (रूटीन) क प्रति मानवस्वभाव की प्रतिक्रिया इतनी दूर तक चली गयी थी कि काय के अत्यधिक बोझ से मुक्ति पाने का मूल्य उस आय के मूल्य स कहीं ज्यादा माना

जाने लगा जो पूरी तरह छटने के बाद काम करने वाले को प्राप्त होती था। किन्तु इसी समय औद्योगिकी की अभी तक बेरोक प्रगति अपना मानवीय विनाश के साथ न्यायपूर्ण असली मजाक भी करती जा रही थी। जब वह उन्हें काम करता था मौत तक पहुँचाने से विरत होती थी तो उन्हें बेकारी या बेरोजगारी की स्थिति में पहुँचा कर छोड़ देती थी। अब मजूरसंघों की जो प्रतिरक्षात्मक क्रियाएं मशीन के मार्ग आघात पर ब्रेक लगाने के लिए संगठित अकुशलता के एक प्रकार के रूप में सोची गयी थी उनसे श्रमिकों के इस अतिरिक्त प्रयोजन का भी काम लिया जाने लगा कि जो कुछ रोजगार बच गया है और जो मानव के हाथों में बिलकुल ही छिनता जा रहा है[1] उसे प्रसरित करने का मौका मिले। एक ऐसे पार्थिव स्वर्ग का पुनर्प्राप्ति (Earthly Paradise Regained) का पूर्वदर्शन सम्भव हो गया जिसमें पूर्ण रोजगार (फुल इम्प्लायमेंट) का शासन काल ऐसा होगा कि उसके अन्दर जो कुछ परिमित काम प्रत्येक व्यक्ति को दिया जायगा उसे करने में उसके दिन का जरा सा हिस्सा ही खर्च होगा और उसे प्राय उतना ही अवकाश रहेगा जितना बहुत पहिले निर्मूल आलसी धनिक विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग को था—उस वर्ग का जिसका तिरस्कार करने की शिक्षा इन श्रमिकों के पूर्वजों को दी गयी थी। ऐसी परिस्थितियों में अवकाश का उपयोग निश्चय ही उससे कहीं ज्यादा महत्त्वपूर्ण होगा ही जितना कि वह पहिले कभी भी था।

मानव जाति इस सम्भवित सार्वदेशिक अवकाश का किस रूप मे उपयोग करेगी? ३१ अगस्त १९३२ ई को ब्रिटिश एसोसिएशन के सामने बोलते हुए सर अलफ्रेड ईविंग ने इस परेशानी पैदा करने वाले प्रश्न को उठाया था—

> 'कुछ लोग एक ऐसे दूरागत कल्पना स्वर्ग (utopia) की बात सोचते हैं जिसमें श्रम एवं श्रमजन्य परिणाम के बीच पूर्ण समंजन (एडजेस्टमेंट) होगा—रोजगार मजूरी तथा मशीन द्वारा उत्पन्न सभी वस्तुओं का न्याययुक्त विस्तार होगा। किन्तु तब भी यह प्रश्न तो रह ही जायगा कि मनुष्य ने अपना प्राय सम्पूर्ण भार एक अथक यान्त्रिक दास पर डालकर जो अवकाश प्राप्त किया है उसे वह कैसे खर्च करेगा? क्या वह ऐसी आध्यात्मिक श्रेष्ठता की आशा करता है जो उसे इस अवकाश का सदुपयोग करने योग्य बना देगी? ईश्वर उसे इसके लिए यत्न करने और उसे प्राप्त करने की शक्ति दे। खोजने से ही वह उसे पा सकता है। मैं यह सोच भी नहीं सकता कि मानव जाति के भाग्य में अपक्षय (atrophy) लिखा है और वह अपनी ईश्वरदत्त शक्तियों में से एक प्रमुख शक्ति—इंजीनियर की सर्जनात्मक प्रतिभा के विकास के कारण मिट जायगी।'

[1] समुएल बटलर लिखित 'ईरे होन' में जो १८७० ई में प्रकाशित हुआ था इस विचार को विनद अभिव्यक्ति मिलती है कि मशीन विकसित होते होते अपने मानवीय सहायकों को कार्यमुक्त कर देगी।

मानवीय अस्तित्व के लिए रोमन शान्तिवाद (पक्स रोमना) ने जो सुविधाएं प्रदान की थी वे उस भविष्य की जिसकी हम इस समय कल्पना कर रहे हैं सुविधाओं की तुलना मे बहुत कम और पिछडी जान पडती है। फिर भी शैली म उदात्त भावना (Sublimity in Style) नामक अपने प्रब ध म लेखक ने राम साम्राज्य के गौरवयुग मे किसी अनिर्णीत तिथि पर लिखते हुए यह अनुभव किया था कि हेलेनी सावभौम राज्य की स्थापना से तनाव मे जो कमी आयी थी उसके कारण मानवीय गुण का ह्रास हुआ—

"जो प्राणी वतमान पीढी मे उत्पन्न हुए हैं उनके आध्यात्मिक जीवन का एक कसर—वियाक्त ककट—वह निम्न आध्यात्मिक तनाव भी है जिसमें हममे से कुछ चुने हुए लोगों को छोड सब अपने दिन बिता रहे हैं। अपने काय एव मनोरजन दोनों मे ही हमारा एक मात्र ध्येय केवल लोकप्रियता और सुखोपभोग ही रहता है। हमे उस सच्ची आध्यात्मिक सम्पदा पर अधिकार करने की कोई चिन्ता नहीं होती जो अपने द्वारा किये जाने वाले काय में अपना हृदय उँडेल देने और एसी मान्यता की विजय से प्राप्त होती है जो सचमुच 'विजय करने योग्य है।"

हेलेनी आलोचक की इन बाता का समथन पाश्चात्य इतिहास के आधुनिक युग के आरम्भ मे, आधुनिक भावना के एक पथदशक ने भी किया। निम्नलिखित अश एडवान्समेन्ट आफ लर्निंग नामक पुस्तक मे मिलते हैं जिसे फ्रान्सिस बेकन ने १६०५ ई मे प्रकाशित कराया था—

"जसा कि अच्छी तरह देखा जा चुका है कि जब गुण का विकास हो रहा हो तब समृद्ध होने वाली कलाए सनिक कलाए होती हैं, और जबतक गुण अपनी गरिमा मे होते हैं, तबतक वे उदार होते हैं, और जब गुण अधोमुख होते हैं तब विषयी हो जाते हैं इसलिए मैं सन्देह कर रहा हू कि ससार का यह युग चक्र (पहिये) के अधोगमन के समान है। विषयिनी कलाओं के साथ म हास्यात्मक आचारों को जोडता है क्योंकि ईर्ष्यो की छलन मे भी ईर्ष्यो का एक सुख है।'

बेतार के तार एव दूरदशन—टेलीविजन—के इस युग म हास्यात्मक आचार के अन्दर अवकाश के उपयोग का अधिकांश आ जाता है। श्रमिक वग का मध्यवग के भौतिक मान तक उठान म मध्यवग के एक बहुत बडे भाग के जीवन का आध्यात्मिक स्तर पर श्रमजावीकरण भी हो जाता है।

मायाविनी (circe) के प्रीतिभाज म आय अतिथियों न शीघ्र अपने को मायाविनी के शूकरबाडे मे पाया। खुला सवाल तो यह था कि क्या वे वहा अनिश्चित काल तक बने रहेंगे? क्या यही वह भाग्य वह नियति है जिसके आगे मानवीय जाति ने कन्धा डाल दिया है? मानव जाति क्या सचमुच उस वीर नव जगत म अव म सन्तुष्ट रहकर सन्तुष्ट हो जायगी जिसमे नीरस अवकाश की उकताहट को केवल अनियन्त्रित काय की उकताहट म परिवर्तित किया जा सकता है? एस भविष्य-कथन म

निश्चय ही उस सृजनात्मक अल्पमत का ध्यान नहीं रखा गया है जो इतिहास के सभी युगों में धरित्री का शृंगार रहा है। 'गली की सभ्यता (सवनाइगिटी आफ ग्लोब)' पर उत्तरकालिक हेलेनी प्रबंध के लेखक के उनासी मर निरान ने अपनी आशा के सामने फली परिस्थिति में सबसे महत्त्वपूर्ण तत्त्व की ओर ध्यान ही नहीं दिया लगता है कि उसे खीष्टीय शहीदों का पता ही न था।

प्रौद्योगिकीय बेरोजगारी की सम्भावना से लगर एक दूसरे पन्तेकास्ट पिरा (यहूदियों का एक त्योहार) की आगमाशा तक बहुत लम्बा व्यवधान मालूम पड़ता है और निश्चय ही ऐसा है भी, और पाठक संशयवादियों की भांति पूछना चाहेगा ये बातें कैसे हो सकती हैं? खीष्टीय संवत् की बीसवीं शती के मध्य बिन्दु पर पहुँचकर यह कहना सम्भव नहीं जान पड़ता कि ये कैसे होंगी, फिर भी कुछ ऐसी बातें तो अब तक कह ही दी जानी चाहिए थीं जिनसे मालूम हो जाता कि ऐसी आशा मन का लड्डू (कल्पना मात्र) नहीं है।

जिस एक युक्ति से जीवन अपने को जीवित रखने का चातुर्यपूर्ण कार्य करता है वह है एक विभाग की कमी या आधिक्य की पूर्ति दूसरे विभाग के आधिक्य या कमी से करना। इसलिए हम यह आशा कर सकते हैं कि जिस सामाजिक वातावरण में स्वतन्त्रता की कमी और आर्थिक एवं राजनीतिक स्तर पर एकमार्गीकरण का आधिक्य होता है उसमें प्रकृति के ऐसे नियम का फल होगा धर्म के क्षेत्र में एकमार्गीकरण में ढिलाई और स्वतन्त्रता की वृद्धि। रोमी साम्राज्य के दिनों में घटनाओं का ऐसा ही क्रम रहा था।

इस हेलेनी कथा से एक शिक्षा यह मिलती है कि जीवन में एक अलघुकरणीय न्यूनतम (इरिडयूसेबिल मिनिमम) मानसिक ऊर्जा तो सदा रहती ही है और वह ऊर्जा एक या दूसरे मार्ग से बाहर निकलने का प्रयास करती रहती है किन्तु यह भी उतना ही सत्य है कि जीवन के खाते में जो मानसिक ऊर्जा होती है उसकी मात्रा की भी एक अधिकतम सीमा है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि यदि किसी एक काम में अधिक तेजी लाने के लिए ऊर्जा की शक्ति में वृद्धि करने की आवश्यकता है तो आवश्यक अतिरिक्त पूर्ति दूसरे स्थानों पर ऊर्जा की बचत करके ही की जा सकती है। जीवन जिस युक्ति से ऊर्जा की बचत या उसके खर्च में कमी करता है वह है यन्त्रीकरण। उदाहरणार्थ, हृदय के स्पन्दन एवं फेफड़ों की श्वास निश्वास की एकान्तरण क्रिया को स्वचालित बनाकर जीवन ने शारीरिक शक्ति के निरन्तर परिचालन की क्षण-क्षण चिन्ता करने से मानवीय विचार एवं इच्छा को मुक्त करके अन्य क्षेत्रों में उसके उपयोग का अवसर प्रदान किया है। यदि प्रत्येक क्रमागत श्वास और प्रत्येक क्रमागत हृदय-स्पन्द के लिए विचार या इच्छा को निरन्तर सोचने-समझने की जरूरत होती तो किसी तरह अपने को जीवित रखने के सिवा किसी भी मानव प्राणी के पास बौद्धिक या सांकल्पिक ऊर्जा और कामों के लिए बचती ही नहीं। इसी बात का और सही ढंग पर यों कह सकते हैं कि तब कोई अवमानव (sub-suman) कभी मानव बनने में सफल नहीं होता। मनुष्य के भौतिक निकाय के जीवन में ऊर्जा की बचत का जो सृजनात्मक प्रभाव पड़ता

है उसके इस उदाहरण के प्रकाश म हम यह कल्पना भी कर सकत है कि उसके सामाजिक निकाय के जीवन मे धम तबतक भूखा रहेगा जबतक कि विचारणा एव इच्छा अयक्षेत्र मे न्यस्त रहेगी (जसी कि औद्योगिक क्रान्ति के बाद से वे पश्चिम म रही हैं) या राजनीति मे विलीन रहेगी (जसी कि देवभावित हेलनी राज्य के पाश्चात्य रिनसा के बाद से वे पश्चिम मे रही हैं)। इसे उलटकर हम यह निष्कष भी निकाल सकते है कि इस समय पाश्चात्य समाज के आर्थिक एव राजनीतिक जीवन पर जो एकमार्गी करण थोपा जा रहा है प्रतीत होता है कि वही, ईश्वर के यशोगान द्वारा और एक बार पुन उसके उपभोग द्वारा मनुष्य के सत्य लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए पाश्चात्य प्राणियो को मुक्त कर देगा।

यह सुखद आध्यात्मिक भविष्य कम स कम एक ऐसी सम्भावना तो है ही जिसमें पाश्चात्य स्त्री पुरुषो की अवसन्न पीढी उदार प्रकाश की एक किरण फूटती दख सकती है।

१३ निष्कर्ष

यह पुस्तक कैसे लिखी गयी

लोग इतिहास का अध्ययन क्यो करते हैं ? वतमान लेखक का निजी उत्तर यह होगा कि अन्य ऐसे किसी प्राणी की भाति जिसको जीवन म एक लक्ष्य रखने का आन द प्राप्त हो, एक इतिहासकार को भी ईश्वर का यह आह्वान मिला कि वह उसकी भावना करे और उसे प्राप्त करे। असख्य दृष्टिकोणो मे से एक दृष्टिकोण इतिहास का भी है। इसकी विशिष्ट देन है—ईश्वर की गतिमती सजनात्मक कायशीलता के दृश्य को ऐसे फ्रेम या चौखटे मे हमारे सामने उपस्थित करना, जिसमे हमारे मानवीय अनुभव के अनुसार, छ आयाम हैं। ऐतिहासिक दृष्टिकोण हम भौतिक जगत को दिग त-काल (स्पेस टाइम) के चतुरायामी फ्रेम मे अपकेंद्रिक (centrifugal) गति से चलता हुआ दिखाता है, यह हमे दिखाता है कि हमारे पृथिवी ग्रह पर जो जीवन है वह जीवन काल दिग त के पचायामी फ्रेम मे किस प्रकार विकासमान होता हुआ चल रहा है, वह हमे ऐसे मानव प्राणियो के भी दशन कराता है जो अ तरात्मा के प्रसाद मे छठे आयाम पर उठकर, अपनी आध्यात्मिक स्वत त्रता के नियतिनिर्दिष्ट प्रयोग-द्वारा या तो अपने स्रष्टा की ओर जा रहे हैं या फिर उससे दूर हटते जा रहे हैं।

यदि हम इतिहास मे ईश्वर की सृष्टि की गतिशीलता का दृश्य देखने मे ठीक हैं तो हमे यह जानकर आश्चय न होगा कि यद्यपि इतिहास की छाप या प्रभाव के प्रति मानव मनो की सहज ग्रहणशीलता सदा प्राय एक ही औसत वाली होती है कि तु उस प्रभाव या छाप की वास्तविक शक्ति, उपलब्धिकर्ता की ऐतिहासिक परिस्थितियो के अनुसार, भिन्न भिन्न हो जाती है। ग्रहणशीलता को उत्कण्ठा स शक्तिमान बनाना पडता है और उत्कण्ठा दृढ तभी होगी जब कि सामाजिक परिवत्तन का उपक्रम स्पष्ट एव प्रबल रूप मे व्यक्त होगा। आदिमकालीन कृषक-समाज कभी ऐतिहासिकमना (हिस्टारिकल माइण्डेड) नही रहा, क्योकि उसके सामाजिक पर्यावरण ने सदा उससे इतिहास की बात न कहकर प्रकृति की बात कही है। उसके त्यौहार कभी चतुथ जुलाई, गाई फाक्स दिवस या युद्ध विरामदिवस नही रहे बल्कि अनतिहासिक प्रवतमान कृषि वष के भले बुरे दिन रहे हैं।[1]

[1] लेखक ने पश्चिम की दृष्टि से ये उदाहरण दिये हैं। हमारे यहां भी यही बात है। होली, दिवाली, सक्रान्ति इत्यादि प्राकृतिक परिवतनों के ही त्यौहार हैं, ऐतिहासिक नहीं।—अनु०

यह पुस्तक कैसे लिखी गयी

लोग इतिहास का अध्ययन क्यों करते हैं? वर्तमान लेखक का निजी उत्तर यह होगा कि अन्य ऐसे किसी प्राणी की भांति जिसको जीवन में एक लक्ष्य रखने का आनन्द प्राप्त हो, एक इतिहासकार को भी ईश्वर का यह आह्वान मिला कि वह उसकी भावना करे और उसे प्राप्त करे। असंख्य दृष्टिकोणों में से एक दृष्टिकोण इतिहास का भी है। इसकी विशिष्ट देन है—ईश्वर की गतिमती सर्जनात्मक कार्यशीलता के दृश्य को एक फ्रेम या चौखटे में हमारे सामने उपस्थित करना, जिसमें हमारे मानवीय अनुभव के अनुसार, छः आयाम हैं। ऐतिहासिक दृष्टिकोण हमें भौतिक जगत को दिगन्त-काल (स्पेस-टाइम) के चतुरायामी फ्रेम में अपकेंद्रिक (centrifugal) गति में चलता हुआ दिखाता है, यह हमें दिखाता है कि हमारे पृथिवी-ग्रह पर जो जीवन है वह जीवन-काल दिगन्त के पंचायामी फ्रेम में किस प्रकार विकासमान होता हुआ चल रहा है, वह हमें ऐसे मानव प्राणियों के भी दर्शन कराता है जो अन्तरात्मा के प्रसाद से छठे आयाम पर उठकर, अपनी आध्यात्मिक स्वतन्त्रता के नियतिनिर्दिष्ट प्रयोग-द्वारा या तो अपने स्रष्टा की ओर जा रहे हैं या फिर उससे दूर हटते जा रहे हैं।

यदि हम इतिहास में ईश्वर की सृष्टि की गतिशीलता का दृश्य देखने में ठीक हैं तो हमें यह जानकर आश्चर्य न होगा कि यद्यपि इतिहास की छाप या प्रभाव के प्रति मानव मनों की सहज ग्रहणशीलता सदा प्रायः एक ही औसत वाली होती है, किन्तु उस प्रभाव या छाप की वास्तविक शक्ति उपलब्धिकर्ता की ऐतिहासिक परिस्थितियों के अनुसार, भिन्न भिन्न हो जाती है। ग्रहणशीलता को उत्कण्ठा से शक्तिमान बनाना पड़ता है और उत्कण्ठा दृढ़ तभी होगी जब कि सामाजिक परिवर्तन का उपक्रम स्पष्ट एवं प्रबल रूप में व्यक्त होगा। आदिमकालीन कृषक-समाज कभी ऐतिहासिकमना (हिस्टारिकल माइण्डेड) नहीं रहा, क्योंकि उसके सामाजिक पर्यावरण ने सदा उससे इतिहास की बात न कहकर प्रकृति की बात कही है। उसके त्यौहार कभी चतुर्थ जुलाई, गाई फाक्स दिवस या युद्ध विरामदिवस नहीं रहे बल्कि अनैतिहासिक प्रवर्तमान कृषि वर्ष के भले बुरे दिन रहे हैं।[1]

[1] लेखक ने पश्चिम की दृष्टि से ये उदाहरण दिये हैं। हमारे यहां भी यही बात है। होली, दिवाली, संक्रान्ति इत्यादि प्राकृतिक परिवर्तनों के ही त्यौहार हैं, ऐतिहासिक नहीं।—अनु०

जिस अल्पमत के सामाजिक वातावरण म इतिहास उनसे वास्ता था उसम भी एतिहासिक सामाजिक पर्यावरण क विरिरण का यह उद्घाटन, इतिहासकार को उत्साहित करने के लिए पर्याप्त नहीं था। उत्कण्ठा या जिज्ञासा क सजनात्मक आलोडन क बिना, इतिहास क सर्वाधिक परिचित एव श्रेष्ठ स्मारक भी अपना वाणीमय मूक तमाशा बिना किसी प्रभाव क करत रह जायग क्योकि जिन नयनो स व बोल रह होग व कुछ स्प ही न पायग। यह सत्य कि सजनशाला चिनगारी बिना उत्तर और चुनौती क नहीं जलायी जा सकती आधुनिक पाश्चात्य दार्शनिक यात्री वोलना (Bolney) को तब प्रत्यक्ष हो गया था जब उसन १७८३ ८५ म मुस्लिम जगत् की यात्रा की थी। वोलना एक ऐसे दश से आया था जा हनीवाली युद्ध के जमान म, मतलब अभी हाल ही, सभ्यताओ क इतिहास की धारा म खिच आया था जब कि जिस क्षेत्र की वह यात्रा कर रहा था वह काल की अपक्षा ३-४ हजार वष स भी अधिक इतिहास का रगमच रह चुका था और उसी अनुपात स उसम अतीत क स्मरणीय अवशेषो का भाण्डार भी था। फिर भी खीष्टीय सवत की अठारहवी शती के अन्तिम चतुर्थाश म मध्यपूव का जीवित पीढी यद्यपि विनष्ट सभ्यताओ क इन अद्भुत खडहरो म फैली हुई थी किन्तु उसक हृदय म यह प्रश्न नहा उठता था कि य स्मारक क्या है, जब कि यही प्रश्न वोलना का उसकी अपनी जन्मभूमि फ्रास स मिस्र खीच ल गया। प द्रह वष बाद बोनापाट क सनिक अभियान का लाभ उठाकर और भी बहुतर फ्रासीसी विद्वानो न उसका पदानुसरण किया। जब इम्बाबाह क निर्णायक युद्धक्षत्र म, धावा बोलन क पूव नपोलियन न अपन सनिका को सम्बोधित करत हुए कहा था कि इन पिरामिडो से इतिहास की चालीस शताब्दियाँ उनकी ओर दख रही है तब वह जानता था कि वह एक ऐसी तान छड रहा है जो उसकी सना क अशिक्षित सनिका को स्पश किय बिना न रहगी और जिसका व निश्चय ही उत्तर देंगे। हम निश्चित रूप से कह सकत हैं कि विरोधी मामलूक सना क अधिपति मुराद ब न अपन अनुयुक्त साथियों क सामन इस प्रकार का कोई आवाहन करन म अपन स्वाग का अपव्यय करने की आवश्यकता नहीं अनुभव की।

आधुनिक पाश्चात्य समाज म विजय करने की जो अनापणीय उत्कण्ठा है उसक लिए इतिहास का एक नूतन आयाम ढूढ़कर नपोलियन क पीछे पाछ आन वाले फरासीसी आचार्यों ने अपन को अमर कर लिया। और उस समय स कम स कम ग्यारह खोयी एव विस्मृत सभ्यताओ को पुन जीवन दान दिया जा चुका है—पुरानी दुनिया का मिस्री, बबिलोनियाई सुमेरु मिनाई हित्ताई सभ्यताए तथा सि धु सस्कृति एव नाग सस्कृति और नयी दुनिया की माया यूक्ताई, मक्सी एव एन्डियाई सभ्यताए।

जिज्ञासा क प्रोत्तजन क बिना काई इतिहासकार नहीं हो सकता किन्तु इतना हा अपन म पर्याप्त नहा है क्योकि यदि वह अनिश्चित है तो निरुद्देश्य सवज्ञता के पीछे चला जायगी। जितन भी महान इतिहासकार हुए हैं उनम स प्रत्येक का जिज्ञासा सवदा अपनी पीढ़ी क लिए व्यावहारिक महत्त्व रखन वाल किसा न किसी प्रश्न क

समाधान की ओर ही प्रवाहित रही है। इस वृत्ति को सामान्य भाषा मे यो कह सकते है— उससे यह बात कमे निकल आयी।' जब हम महान इतिहासकारो के बौद्धिक इतिहासो का सर्वेक्षण करते हैं तो हम नात होता है कि अधिकाश मामलो मे किसी महत्त्वपूण, साथ ही दारुण सावजनिक घटना की चुनौती का उत्तर ही ऐतिहासिक निदान के रूप मे व्यक्त हो गया है। यह घटना ऐसी भी हो सकती है जिसे उन्होने स्वय ही देखा हो यहा तक कि उसम सक्रिय भाग भी लिया हो जसा कि थुसीडाइडस न महत एथीनोपेलोपोनीशियाई युद्ध म तथा क्लयरेंडन ने महान विद्रोह (ग्रट रिबेलियन) म भाग लिया था, या वह कोई बहुत पुराना एमा घटना भी हो सकती है जिसकी प्रतिध्वनि किसी सवदनशील ऐतिहासिक मन म एक उत्तर वा अनुक्रिया उत्पन्न कर सके, जसा कि रोम-साम्राज्य के ह्रास एव भावोद्वेगजनक चुनौती से शताब्दियो बाद राजधानी के ध्वसावशेषो मे विचरण करते हुए गिबन प्रेरित हुआ था। एक ऐसी महत्त्वपूण घटना भी जो सन्तोषजनक दीखती हो सजनात्मक प्रोत्तेजन का रूप ग्रहण कर सकती है। उदाहरण-स्वरूप उस मानसिक चुनौती को देखिए जो हेरोडोटस का फारस युद्ध से प्राप्त हुई थी। किन्तु अधिकाश मामलो मे इतिहास की महती विपत्तियो ने ही मानव की स्वाभाविक आशावादिता को चुनौती देकर, इतिहासकार के सर्वोत्तम प्रयासो को प्रेरित किया है।

मेरे जैसा एक इतिहासकार जो १८८९ ई मे पैदा हुआ और अभी १९५५ ई तक जीवित है परिवतन के उस नम्रे निनाद को सुन चुका है जो इतिहासकार के तात्त्विक प्रश्न— उससे यह बात कसे निकल आयी से टकराकर उत्पन्न हुआ था। उसके मन मे सबस पहिला और सबसे मुख्य प्रश्न यह उठा कि उससे पहिले जो पीढी गुजर चुकी है उसकी विवेकपूण आशाओं को इस बुरी तरह भग होती देखने के लिए मैं क्यो बच गया? लोकतान्त्रिक पाश्चात्य देशो म, १८६० ई के लगभग जन्मी पीढी क उदारमना मध्यवग म यह बात उन्नीसवी शती की समाप्ति तक निश्चित-सी लगने लगी थी कि विजयिनी के रूप मे आगे बढती हुई पाश्चात्य सभ्यता ने मानवीय प्रगति को एसे बिन्दु पर पहुचा दिया है कि शीघ्र ही दूसरे मोड पर पहुचते-पहुचते वह पार्थिव स्वग को प्राप्त कर लेगी। तब उस पीढी को बुरी तरह निराश क्यों होना पडा? सचमुच क्या गलती हो गयी? नयी शताब्दी अपने पीछे युद्ध एव दौजन्य की जो गडबडी ले आयी उसमे राजनीतिक मानचित्र पहिचान के बाहर इस रूप मे कसे बदल गया और कसे आठ महती शक्तियों का मगल भ्रातृत्व दो ऐसी शक्तिया मे बदल गया जो पाश्चात्य यूराप के बाहर की थी?

इन प्रश्नो की सूची को चाहे जितना लम्बा किया जा सकता है और वे वैसे ही बहुसख्यक ऐतिहासिक अनुसन्धानो का जन्म भी देते हैं। चूकि वतमान लेखक एसे सकट-काल म पैदा हुआ जो इतिहासकार का स्वग होता है इसलिए वतमान घटनाओ ने उसके सामने जितनी ऐतिहासिक पहेलिया उपस्थित की सभी म उसकी दिलचस्पी हो गयी। किन्तु उसके पैदा होने का सौभाग्य यही तक समाप्त नही हुआ। वह ठीक ऐसे मौके पर पदा हुआ था कि हेलनवाद मे विशुद्ध प्रारम्भिक अधुनातन पाश्चात्य रिनैसा

शिक्षण (अर्ली माडर्न वेस्टर्न रिनसां एजूकेशन) प्राप्त कर सका। १६११ की गर्मियों तक उसे लटिन का अध्ययन करते हुए पन्द्रह और ग्रीक का अध्ययन करते हुए बारह वर्ष बीत चुके थ, और इस पारम्परिक शिक्षण न प्राप्तिकर्ताओं पर ऐसा मगल प्रभाव डाला था कि व उग्र सांस्कृतिक राष्ट्रीयता के रोग से प्रतिरक्षित हो चुके थे। हलनी ढग पर शिक्षित पाश्चिमात्य, पाश्चात्य ईसाई धमजगत को सर्वोत्तम सम्भव क्षेत्र मान लन की गलती म नही पड सकता था, न वह अपने ही समकालीन पाश्चात्य सामाजिक वातावरण द्वारा उसके सामन उपस्थित ऐतिहासिक प्रश्नो पर विचार करते समय उस *यूनान की भविष्यवाणियो को भुला सकता था जिसको उसने अपनी आध्यात्मिक गृह* क रूप म प्राप्त किया था।

उदाहरण के लिए अपन उदारमना अग्रजो की आशाओ के भग होने की बात पर विचार करते समय वह पेरिक्लियाई अत्ती लोकत त्र (Periclean Attic Democracy) के प्रति प्लेटो की निराशा का स्मरण किये बिना नही रह सकता था। १६१४ म जो विश्व-युद्ध आरम्भ हुआ उसके अनुभवो के बीच वह तबतक नही जी सकता था जबतक कि वह इस सत्य को न देख लेता कि ४३१ ईसापूव में जो युद्ध छिड गया था वह भी थूसीडाइड्स के लिए ऐसे ही अनुभवो का उपहार ले आया था। जब अपने अनुभवो स उस प्रकाश मिला तो पहिली बार उसने देखा कि थूसीडाइडस क जिन शब्दो एव वाक्यो को इसके पूव उसने निरथक समझा था या बहुत कम महत्त्व *दिया था उनमे एक गहराई है, तब उसने समझा कि एक दूसरी ही दुनिया मे २३००* वर्षों स भी पहिले लिखी उसकी पुस्तक उसके लिए ऐसे अनुभवो का कोष सिद्ध हो सकती है जो उसके पाठक का दुनिया मे पाठक की पीढी को अभी-अभी ग्रस्त करने लग हैं। एक अथ म १६१४ तथा ४३१ ईसा-पूव दोनो तात्विक दृष्टि से समकालिक ठहरते हैं।

इसस पता चला कि वतमान लेखक के सामाजिक वातावरण मे दो ऐसे तत्त्व थ और दोनो ही वयक्तिक नही थ जो इतिहास के अध्ययन क उसके दृष्टिकोण पर अत्यधिक प्रभाव डालत थ। पहिला था खुद उसके पाश्चात्य विश्व का वतमान इतिहास और दूसरा था उसका हलनी शिक्षण। चूंकि दोनो तत्त्वो की निरतर एक दूसर पर प्रतिक्रिया होती रहती थी इसलिए इतिहास क विषय म लेखक का दृष्टिकोण *द्विनत्री (binocular) हो गया। जब भी इतिहासकार का मौलिक प्रश्न* यह बात उसम कम निकल आयी इस लेखक के सामने किसी वतमान सकट की घटना ने रखा तथा उसक दिमाग म उस सवाल का रूप यह हो गया— पाश्चात्य एव हेलनी दोनो हो इतिहासो म यह बात उससे कम निकल आयी ?' इस प्रकार उसन इतिहास का दो युगो की तुलना क रूप म ग्रहण कर लिया।

इतिहास के इस द्विनत्री दृष्टिकोण का उन सुदूरपूर्वीय समकालिको द्वारा अनुमोदन एव पुष्टिकरण सम्भव था जिनके परम्परागत शिक्षण मे एक पूववर्ती सभ्यता का पुराण ग्रन्थो एव साहित्य न हमारे ही उदाहरण की तरह बडा महत्त्वपूर्ण अभिनय किया था। वतमान लेखक की भांति ही एक कनफ्यूशियाई पण्डित भी एक बीती

घटना पर समानातर किसी ऐसी प्राचीन घटना का स्मरण किये बिना विचार नही कर सकता, जो उसके लिए अधिक मूल्यवान और शायद बाद वाली उस घटना स अधिक वास्तविक भी हो जिसन उसे परिचित सिनाई पुराण-साहित्य को चबाने के प्रिय काय की आर प्रेरित किया है। इस उत्तरकालिक चिग कनफ्यूशियनमना पडित और उसके उत्तरकालिक विक्टोरियन हेलनीमना अग्रेज समकालिक के बीच प्रधान अन्तर यह हो सकता है कि मानवीय घटनाओ का चीनी विद्यार्थी अपनी एतिहासिक तुलनाओ को दो ही युगो तक सीमित रखकर सतुष्ट हा सकता है जब कि उत्तरकालिक विक्टोरियन अग्रेज एक बार एतिहासिक दृष्टि स दो युगो पर विचार का आरम्भ करके फिर अपन सास्कृतिक सरगम (gamut) को और विस्तृत क्षत्र तक ले जाये बिना नही रह सकता।

बात यह है कि खीष्टीय सवत की उन्नीसवी शती के अतिमाश म अपनी परम्परागत शिक्षा पाने वाले चीनी छात्र को यह विचार फिर भी अदभुत प्रतीत होगा कि सिनाई सभ्यता और उसकी सुदूरपूर्वीय उत्तराधिकारिणी के अलावा दूसरी सभ्यता भी गभीर विचार का विषय हो सकती है, किन्तु उसी पीढी के किसी पाश्चिमात्य के लिए एसी धुधली दृष्टि असम्भव है।

असम्भव इसलिए है कि जिस पाश्चात्य समाज का वह सदस्य है उसने इसके पहिले के चार सौ वर्षो म पुरानी एव नयी दुनिया की अपनी प्रजाति की आठ प्रतिनिधि सभ्यताओ से सम्पक स्थापित किया है। इसलिए पाश्चात्य मस्तिष्क के लिए अपनी एव हेलेनी के अलावा अन्य सभ्यताओ के अस्तित्व एव महत्त्व से इकार करना द्विगुणित रूप से असम्भव है। इसलिए भी कि जिन अतोपणीय जिज्ञासा वाले पाश्चिमात्यो ने कोलम्बस एव दि गामा क पदचिह्नो पर चलकर पहिले के अक्षत सागर पर विजय प्राप्त कर ली थी उन्होने ही पूव मे दफनाये हुए अतीत को भी खोद निकाला था। जिस पीढी ने ऐसा विशद एतिहासिक क्षितिज प्राप्त कर लिया है उसमे का एक पाश्चात्य इतिहासकार जिसकी हेलेनी शिक्षा ने दो युगा की एतिहासिक तुलना की ओर उसे प्ररित किया है तबतक सतोष नही प्राप्त कर सकता जबतक अपने तुलनात्मक अध्ययन के लिए वह समाज की प्रजाति के उतने नमून न प्राप्त कर ल जितन प्राप्त किय *जा सकते हैं हेलेनी एव पाश्चात्य तो उस समाज प्रजाति क दो ही प्रतिनिधि हुए।*

जब उसने इस युग-तुलना को बढाकर दसगुनी कर लिया तब उसके लिए उस प्रधान प्रश्न की उपेक्षा करना सम्भव न रहा जो दो युगो की उसकी मूल तुलना न पहिले ही उठा दिया था। हेलेनी सभ्यता के इतिहास मे सबसे अमगलसूचक तथ्य है एक ऐसे समाज का विघटन, जिसका भग ४३१ ईसा पूव महान एथीनो पेलोपोनेशियाई युद्ध के साथ ही आरम्भ हो चुका था। यदि पाश्चात्य इतिहासो के बीच तुलना करन की लेखक की प्रणाली का कोई औचित्य है तो उसस यह निष्कष भी निकलता है कि पाश्चात्य समाज भी वसी ही नियति की सम्भावना से सुरक्षित नही है, और जब लेखक, और विस्तृत क्षेत्र म अध्ययन करत हुए पाता है कि उसके सभ्यताओ के समुदाय म से अधिकाश पहिले ही मर चुकी हैं तो वह यह निष्कष निकालन को विवश हो

जाता है कि प्रत्यक सम्यता जिसम उसकी सम्यता भा शामिल है व सामन मृत्यु की सम्भावना खडी है

यह मृत्यु द्वार क्या है, जिसके भीतर एक समय पल्लवित-पुष्पित इतना सम्यताए विलीन हो गयी ? इसी सवाल न लखक को सम्यताओ क विभग एव विघटन का अध्ययन करन को प्रेरित किया उसके बाद वह उनके स्रोत एव उदय के सपूर्तिकारी अध्ययन म भी लग गया। इस तरह यह इतिहास का अध्ययन' लिखा गया है।

ग्रन्थ-सक्षेप

[१]

प्रस्तावना

१ ऐतिहासिक अध्ययन की इकाई

एतिहासिक अध्ययन की बोधगम्य इकाइया राष्ट्र अथवा युग नही है अपितु समाज है। जब हम आग्ल इतिहास का एक एक अध्याय लेकर परीक्षण करते हैं तो पता लगता है कि स्वय अपने ही अन्दर की वस्तु के रूप मे वह बोधगम्य नही है, वह कवल एक वहत्तर सम्पूण (लाजर होल) के एक अश के रूप मे हा बोधगम्य है। इस सम्पूण म उसके ऐसे अश (यानी इगलड फ्रास नदरलडस) समाये हुए हैं जिनके सामने एक से प्रोत्तेजन या चुनौतिया आती है किन्तु जो विभिन्न रूपो मे उनका उत्तर देते हैं। हेलेनी इतिहास का एक उदाहरण लेकर इसका निदशन किया गया है। जिस 'सम्पूण' या समाज के अतगत इगलैण्ड है उसकी पहिचान पाश्चात्य ईसाई धम जगत (वस्टन क्रिश्चियेंडम) के रूप मे की गयी है। विभिन्न समयो मे उसका जो विस्तार दिगन्त में हुआ है और काल आयाम म उसके जो उद्गम हैं उनकी माप की गयी है। वह अपने अगो की आडबन्दी से पुराना है किन्तु कुछ ही पुराना है। उसक आरम्भ की खोज म ही एक दूसरे समाज का पता लगता है जो अब मृत है अर्थात यूनानी रोमी (ग्रीको रोमन) अथवा हेलनी समाज। हमारा समाज इसी से सम्बद्ध है। यह भी स्पष्ट हो जाता है कि और भी कई जीवित समाज हैं—परम्परानिष्ठ ख्रीष्टाय (आर्थोडाक्स क्रिश्चियन) इस्लामी हिन्दू तथा सुदूरपूर्वीय समाज। इनके अलावा कुछ ऐसे समाजो के अश्मीकृत (फासिलाइज्ड) अवशेष भी हैं जिनकी इस समय तक ठीक शिनाख्त नही हो सकी है जैसे यहूदी एव पारसी।

२ सभ्यताओ का तुलनात्मक अध्ययन

इस अध्याय का तात्पय उन सब समाजो की बल्कि सभ्यताओ की—क्योकि आदिमकालिक एव मभ्यनर समाज भी ता है—पहिचान परिभाषा एव नामोल्लख करना है जो अततक अस्तित्व मे आ सकी हैं। अन्वेषण क लिए अपनायी गयी प्रथम

प्रणाली यह रही है कि जिन वर्तमान सभ्यताओं की पहिचान हो चुकी है उनके मूलों या उद्गमों का परीक्षण करना और यह देखना कि क्या हम इस समय लुप्त उन सभ्यताओं का पता लगा सकते हैं जिनके साथ वर्तमान सभ्यताएं सम्बद्ध हैं—जैसे कि पाश्चात्य ईसाई धर्म-जगत् हेलेनी सभ्यता से सम्बद्ध पाया गया है। इस सगोत्रता के लक्षण है—(क) एक सार्वभौम राज्य (यानी रोम साम्राज्य) जो स्वयं किसी सङ्कट-काल (टाइम आफ ट्रबुल्स) की उपज है फिर उसका अनुसरण करने वाला (ख) एक राज्य-हीन काल (इण्टररेगनम) जिसमें (ग) चर्च एवं (घ) वीर युग में बर्बरों के सामूहिक प्रवास (बोल्कर वान्डेरुङ्ग) का आविर्भाव होता है। फिर यह चर्च और सामूहिक प्रवास क्रमश एक मरणशील सभ्यता के आन्तरिक एवं बाह्य श्रमजीवीवर्ग की उपज है। इन सूत्रों के सहारे चलते हुए हमें पता चलता है कि—

परम्परानिष्ठ ईसाई समाज हमारे अपने पाश्चात्य समाज की भांति ही हेलेनी समाज के साथ सम्बद्ध है।

जब हम पीछे इस्लामी समाज के उद्गम की खोज करते हैं तो देखते हैं कि वह (उद्गम) स्वयं ही दो मूलतः भिन्न समाजों—ईरानी एवं अरबी का मिश्रण है। इन सबके स्रोत की खोज में पीछे की ओर चलते हुए हमें हेलेनी प्रवेशन (हेलेनिक इंट्रूजन) के हजार वर्ष पूर्व एक लुप्त सभ्यता का पता लगता है। इसे हम सीरियाई समाज नाम देते हैं।

हिन्दू समाज के पीछे जाने पर हमें इण्डिक (सिन्धु ?) समाज का पता चलता है।

सुदूरपूर्वीय समाज के पीछे हम सिनाई (चीनी) समाज के दर्शन होते हैं।

अश्मावशेषों के बारे में पता लगता है कि वे अबतक पहिचाने हुए लुप्त समाजों में से ही किसी न किसी के अवशेष हैं।

हेलेनी समाज के पहिले, उसके पृष्ठ भाग में मिनोई (मिनोन) समाज खड़ा दिखायी पड़ता है किन्तु यह भी देख सकते हैं कि अबतक पहिचाने अन्य सम्बद्ध समाजों के असदृश हेलेनी समाज ने अपने पूर्ववर्ती समाज के आन्तरिक श्रमजीवीवर्ग द्वारा आविष्कृत किसी धर्म को अंगीकार नहीं किया। इसलिए उसे अपने पूर्ववर्ती समाज के साथ ठीक ठीक सम्बद्ध नहीं कहा जा सकता।

सिनाई समाज के पीछे हमें शांग संस्कृति दिखायी पड़ती है।

इण्डिक सुसायटी (सिन्धु समाज ?) के पीछे हमें सिन्धु संस्कृति के दर्शन होते हैं जिसका समसामयिक सुमेरु समाज से कुछ न कुछ सम्बन्ध दिखायी पड़ता है।

सुमेरु समाज की सन्तति के रूप में हम दो और समाजों का पता चलता है—हित्ताई एवं बबिलोनियाई (हित्ताइत एवं बबिलोनिक) समाज।

मिस्री समाज का न कोई पूर्ववर्ती समाज था न कोई उत्तराधिकारी ही था।

नयी दुनिया में हम चार समाजों की शिनाख्त कर सकते हैं ऐंदियाई (ऐंदियन) यूकेती (यूकेटिक) मक्सी (मक्सिक) तथा मय या माया समाज।

इस प्रकार हमारे पास, सब मिलाकर सभ्यताओं के २१ नमूने हो जाते हैं।

और यदि हम परम्परानिष्ठ ईसाई समाज को परम्परानिष्ठ बैजतियाई (अनातोलिया एव बाल्कन मे प्रचलित) तथा परम्परानिष्ठ रूसी एव सुदूरपूर्वीय को चीना एव जपानी-कोरियाई समाजो मे विभाजित कर देते है तो हमारे पास तेईस सम्यताए हो जाती है।

३ समाजा की तुलनात्मकता

(१) सम्यताए एव आदिमकालीन समाज

सम्यताओ म एक बात सामान्य वा सवनिष्ठ होती है—वे आदिमकालीन समाजो से एक भिन्न वग की होती हैं। अन्तिम (आदिमकालिक समाज) बहुसख्यक होते हैं किन्तु व्यक्तिगत रूप मे अलग अलग बहुत छोटे होते है।

(२) सम्यता के ऐक्य की गलत धारणा

इसमे इस गलत धारणा की जाच की गयी है कि केवल एक ही सम्यता है हमारी अपनी। जाच के अनन्तर इसका त्याग कर दिया गया है, इस विस्फोट सिद्धान्त का भी परीक्षण एव त्याग किया गया है कि सब सम्यताओ का उद्गम मिस्र मे है।

(३) सम्यताओं की तुलनात्मकता का मामला

सापेक्ष दृष्टि से कहे तो सम्यताए मानव इतिहास की बहुत हाल की घटनाए हैं। इनमे से प्राचीनतम को पदा हुए छ हजार वष से अधिक नही हुए। उन पर एक ही प्रजाति (स्पीशी) के दार्शनिक दृष्टि मे समकालिक सदस्यो के रूप मे विचार करने का प्रस्ताव है। इतिहास अपने को दोहराता नही (हिस्टरी डज नाट रिपीट इटसेल्फ) की उक्ति के रूप म जो अद्धसत्य प्रचलित है वह इस प्रस्तावित प्रणाली के माग मे कोई उचित आपत्ति नही उपस्थित करता।

(४) इतिहास, विज्ञान एव कथा-साहित्य

ये 'हमारे विचारो के जो विषय हैं उन्हे तथा उनके द्वारा जीवन के दृश्य प्रपच को दखन एव उपस्थित करने की तीन भिन्न प्रणालिया है। यहा इन तीन विधियों के बीच की भिन्नताओ का परीक्षण किया गया है और इतिहास के विषय को उपस्थित करने मे विज्ञान एव कथा-साहित्य की उपयोगिता पर विचार किया गया है।

[२]

समस्याओं का उद्गम

४ समस्या और उसका समाधान न करने का उपाय

(१) समस्या का वणन

हमार तेईस सभ्य समाजो मे से सोलह तो पूववर्ती सम्यताओ से सम्बद्ध हैं किन्तु छ सीधे आदिमकालिक जीवन मे उद्भूत हुए हैं। आज जो आदिमकालिक समाज

जीवित हैं वे स्थतिक (स्टैटिक) हैं किन्तु इतना तो स्पष्ट है कि मूलत वे गत्यात्मक रूप मे प्रगतिशील रहे होगे । सामाजिक जीवन मानव जाति से भी पुराना है, वह कीडा मकोडो तथा पशुओ म भी पाया जाता है और निश्चय ही आदिमकालिक समाजों की छत्रछाया मे ही अवमानव (sub human) मानव के स्तर तक उठा, और यह उसमे कही बडी प्रगति है जो आजतक किसी भी सभ्यता ने प्राप्त की है । फिर भी जिस रूप मे हम इन आदिमकालिक समाजो को जानते है उस रूप म वे स्थैतिक है । समस्या यह है क्या और कसे यह आदिमकालिक परम्परा तोडी गयी थी ?

(२) जाति (रेस)

जिस तथ्य को हम ढूढ रहे हैं वह निश्चय ही उन मानव प्राणियो का कोई विशेष गुण होगा जिन्होने सभ्यताओ का आरम्भ किया या वह उस समय क उनके पर्यावरण का कोई विशिष्ट तत्त्व होगा । वह उनके एव उनके पर्यावरण क बीच की कोई अन्त क्रिया भी हो सकती है। इनमे से पहिली विचार धारा क अनुसार कोई-कोई जाति ससार म सहज ही श्रेष्ठ होती है (जसे नार्डिक जाति) और वही सभ्यताओ को जन्म देती है । यहा इस विचार धारा की परीक्षा की गयी है और उसको अस्वीकार कर दिया गया है ।

(३) पर्यावरण

इस विचार का कि कतिपय पर्यावरण ऐसे होते है जो जीवन की सरल सुखद स्थिति पदा कर सभ्यताओ को जन्म देते हैं परीक्षण किया गया है और उसे भी छोड दिया गया है ।

५ चुनौती और उत्तर

(१) पौराणिक सकेत चिह्न

ऊपर जिन दो विचारो की परीक्षा की गयी और उनका परित्याग कर दिया गया है, उनम भी दोष यह है कि वे एक ऐसी समस्या पर जो वस्तुत आध्यात्मिक है उन विज्ञानो की प्रक्रिया का आरोपण करते हैं जो भौतिक पदार्थों के प्रति व्यवहार करने के लिए हैं । जिन महत पुराणो म मानव जाति का प्रज्ञान सुरक्षित है उनका सर्वेक्षण करन स इस सम्भावना का सकेत मिलता है कि मनुष्य किसी श्रेष्ठ शरीर सम्पत्ति या भौगोलिक परिस्थिति क कारण सभ्यता की उपलब्धि नही करता किन्तु किसी विशेष कठिनाई की स्थिति म जो चुनौती उसक सामन उपस्थित होती है उसका उत्तर देन के रूप म करता है इसी चुनौती का उत्तर दन क लिए वह अभूतपूर्व प्रयास करता है ।

(२) समस्या पर पुराण का आरोपण

सभ्यता क प्रभात के पूर्व अफ्रोशियाइ स्टेप्पी (सहारा एव अरब मरुस्थल) जल म सुसिंचित शाद्वल भूमि थी । वह लम्बे समय तक बराबर यह हरा भरी भूमि सूखती गयी और इस प्रलम्ब शोषण क्रिया न वहा के प्राणिया क सामन जो चुनौती उपस्थित की उसका उन्होन विभिन्न रूपों म उत्तर दिया । कुछ अपनी भूमि स चिपटे तो रह

परन्तु उन्होने अपनी आदतें बदल ली और इस प्रकार जीवन की यायावरीय (खा बदोश) प्रणाली का विकास कर लिया। दूसरे जमीन के सूखने से पीछे हटती हरियाली के साथ साथ उष्ण कटिबन्ध की ओर हटते गये और इस प्रकार अप आदिमकालीन जीवन प्रणाली को सुरक्षित रखा— और आज भी वे अपनी वही जीव प्रणाली निभाते जा रहे है। दूसरो ने नील घाटी के दलदला एव जगलो मे प्रवेश कि और अपने सामने उपस्थित चुनौती का उत्तर देने के लिए उन्हे रहने योग्य बनाय इन्ही ने मिस्री सभ्यता का विकास किया।

इसी ढग पर और इन्ही कारणो से दजला फुरात घाटी म सुमेरु सभ्यता और सिधु घाटी म सिधु सस्कृति का उद्भव हुआ।

पीत नदी की घाटी मे शाग सस्कृति उद्भूत हुई। वह कौन सी चुनौती जिससे इसका जन्म हुआ यह अबतक अज्ञात है। किन्तु इतना तो निश्चित ही है परिस्थितिया सरल की जगह कठोर ही अधिक रही होगी।

माया या मय सभ्यता उष्ण कटिबन्धीय जगल की चुनौती के जवाब में प हुई इसी प्रकार ऐंदियाई (ऐंदियन) का उन्भव वीरान पठार की चुनौती के उत्त रूप मे हुआ था।

मिनोई या मिनोन सभ्यता सागर की चुनौती के उत्तर रूप मे उदभूत हुई। इस सस्थापक अफ्रीका के सखते हुए तटो से भागकर आने वाले वे शरणार्थी थे जिन्हो जलभत्र को ग्रहण कर क्रीट एव दूसरे एजियन सागरीय द्वीपो मे आश्रय लिया था व एशिया एव यूरोप की अपेक्षाकृत निकटतर मुख्य भूमियो से नही आये थे।

सम्बद्ध सभ्यताओ को लेते हैं तो जिस चुनौती ने उन्हे अस्तित्व प्रदान किय वह मुख्यत भौगोलिक तत्त्वो से नही बल्कि उनके मानवीय पर्यावरण से ही आय थी---अर्थात् वह उन प्रभविष्णु अल्पमता से आयी थी जिनके साथ वे सम्बद्ध हैं प्रभविष्णु अल्पमत परिभाषा की दृष्टि स एक ऐसा शासक वग है जिसने नेतृत्व करन तो छोड दिया है और उत्पीडक हो गया है। असफल सभ्यता के आन्तरिक एव बाह श्रमजीवीवग इस चुनौती का उत्तर उससे सम्बन्ध विच्छेद करने और इस प्रकार एव नयी सभ्यता की नीव डालने के रूप में देते हैं।

६ विपत्ति के गुण

पिछले अध्याय म सभ्यताओ के उदगम की जो व्याख्या की गयी है वह इस परिकल्पना पर आश्रित है कि सरल की अपेक्षा कठोर परिस्थितियाँ ही इन सफलताओ का कारण होती हैं। जब हम उन बस्तियो के उदाहरण लेते है जहाँ कभी सभ्यता फूली फली किन्तु बाद म असफल हो गयी और जहाँ भूमि अपनी मूल स्थिति म लौट आयी है तो उस परिकल्पना की सिद्धि के अधिक निकट पहुच जाते हैं।

जो प्रदेश कभी मय (माया) सभ्यता का हृदयपट था वह अब पुन उष्ण कटि बन्धीय वन रूप मे बदल गया है।

सीलोन की इण्डिक सभ्यता द्वीप के वर्षारन्ति अद्धभाग मे विकसित हुई

जीवित हैं वे स्थगित (स्टैटिक) हैं किन्तु इतना तो स्पष्ट है कि शुरू में सत्तात्मक रूप में प्रगतिशील रहे होंगे। सामाजिक जीवन मानव जाति से भी पुराना है, यह कीड़े मकोड़ों तथा पशुओं में भी पाया जाता है और निश्चय ही आदिमकालिक समाजों की छत्रछाया में ही अवमानव (sub human) मानव के स्तर तक उठा, और यह उसकी कहीं बड़ी प्रगति है जो आजतक किसी भी सभ्यता ने प्राप्त की है। फिर भी जिस रूप में हम इन आदिमकालिक समाजों को जानते हैं उस रूप में वे स्थगित हैं। समस्या यह है क्यों और कैसे यह आदिमकालिक परम्परा तोड़ी गयी थी ?

(२) जाति (रेस)

जिस तत्त्व को हम ढूंढ रहे हैं वह निश्चय ही उन मानव प्राणियों का कोई विशेष गुण होगा जिन्होंने सभ्यताओं का आरम्भ किया था या उस समय के उनके पर्यावरण का कोई विशिष्ट तत्त्व होगा। वह उनके एवं उनके पर्यावरण के बीच की कोई अन्त क्रिया भी हो सकती है। इनमें से पहली विचार धारा के अनुसार कोई-कोई जाति संसार में सहज ही श्रेष्ठ होती है (जैसे नार्डिक जाति) और वही सभ्यताओं को जन्म देती है। यहां इस विचार धारा की परीक्षा की गयी है और उसको अस्वीकार कर दिया गया है।

(३) पर्यावरण

इस विचार का कि कतिपय पर्यावरण ऐसे होते हैं जो जीवन की सरल सुखद स्थिति पैदा कर सभ्यताओं को जन्म देते हैं परीक्षण किया गया है और उसे भी छोड़ दिया गया है।

५ चुनौती और उत्तर

(१) पौराणिक संकेत चिह्न

ऊपर जिन दो विचारों की परीक्षा की गयी और उनका परित्याग कर दिया गया है उनमें भी दोष यह है कि वे एक ऐसी समस्या पर जो वस्तुत आध्यात्मिक है, उन विज्ञानों की प्रक्रिया का आरोपण करते हैं जो भौतिक पदार्थों के प्रति व्यवहार करने के लिए हैं। जिन महत् पुराणों में मानव जाति का प्रज्ञान सुरक्षित है उनका सर्वेक्षण करने से इस सम्भावना का संकेत मिलता है कि मनुष्य किसी श्रेष्ठ शरीर सम्पत्ति या भौगोलिक परिस्थिति के कारण सभ्यता की उपलब्धि नहीं करता किन्तु किसी विशेष कठिनाई की स्थिति में जो चुनौती उसके सामने उपस्थित होती है उसका उत्तर देने के रूप में करता है इसी चुनौती का उत्तर देने के लिए वह अभूतपूर्व प्रयास करता है।

(२) समस्या पर पुराण का आरोपण

सभ्यता के प्रभात के पूर्व अफ्रेशियाई स्टेप्पी (सहारा एवं अरब मरुस्थल) जल से सुसिंचित शाद्वल भूमि थी। बड़े लम्बे समय तक बराबर यह हरी भरी भूमि सूखती गयी और इस प्रलम्ब शोषण क्रिया ने वहां के प्राणियों के सामने जो चुनौती उपस्थित की उसका उन्होंने विभिन्न रूपों में उत्तर दिया। कुछ अपनी भूमि से चिपटे तो रहे

परन्तु उन्होंने अपनी आदतें बदल दीं और इस प्रकार जीवन की यायावरीय (खाना बदोश) प्रणाली का विकास कर लिया। दूसरे जमीन के सूखने से पीछे हटती हुई हरियाली के साथ साथ उष्ण कटिबन्ध की ओर हटते गये और इस प्रकार अपनी आदिमकालीन जीवन प्रणाली को सुरक्षित रखा— और आज भी वे अपनी वही जीवन प्रणाली निभाते जा रहे हैं। दूसरों ने नील घाटी के दलदलों एव जगलो मे प्रवेश किया और अपने सामने उपस्थित चुनौती का उत्तर देने के लिए उन्हें रहने योग्य बनाया। इन्ही ने मिस्री सभ्यता का विकास किया।

इसी ढग पर और इन्ही कारणों से दजला फुरात घाटी मे सुमेरु सभ्यता का और सिन्धु घाटी मे सिन्धु सस्कृति का उद्भव हुआ।

पात नदी की घाटी मे नाग सस्कृति उद्भूत हुई। वह कौन सी चुनौती थी जिससे इसका जन्म हुआ, यह अबतक अज्ञात है। किन्तु इतना तो निश्चित ही है कि परिस्थितियाँ सरल की जगह कठोर ही अधिक रही होंगी।

माया या मय सभ्यता उष्ण कटिबन्धीय जगल की चुनौती के जवाब मे पैदा हुई, इसी प्रकार ऐंदियाई (ऐंदियन) का उद्भव वीरान पठार की चनौती के उत्तर रूप में हुआ था।

मिनोई या मिनोन सभ्यता सागर की चुनौती के उत्तर रूप मे उदभूत हुई। इसके सस्थापक अफ्रीका के सूखते हुए तटों से भागकर आने वाले वे शरणार्थी थे जिन्होंने जलक्षेत्र को ग्रहण कर क्रीट एव दूसरे एजियन सागरीय द्वीपो मे आश्रय लिया था। वे एशिया एव यूरोप की अपेक्षाकृत निकटतर मुख्य भूमियो से नहीं आये थे।

सम्बद्ध सभ्यताओ को लेते है तो जिस चुनौती ने उन्हें अस्तित्व प्रदान किया वह मुख्यत भौगोलिक तत्त्वो से नहीं बल्कि उनके मानवीय पर्यावरण से ही आयी थी—अर्थात् वह उन प्रभविष्णु अल्पमतो मे आयी थी जिनके साथ वे सम्बद्ध हैं। प्रभविष्णु अल्पमत परिभाषा की दृष्टि से, एक ऐसा शासक वर्ग है जिसने नेतृत्व करना तो छोड दिया है और उत्पीडक हो गया है। असफल सभ्यता के आन्तरिक एव बाह्य श्रमजीवीवर्ग इस चुनौती का उत्तर उससे सम्बन्ध विच्छेद करने और इस प्रकार एक नयी सभ्यता की नीव डालने के रूप मे देते हैं।

६ विपत्ति के गुण

पिछले अध्याय मे सभ्यताओ के उदगम की जो व्याख्या की गयी है वह इस परिकल्पना पर आश्रित है कि सरल की अपेक्षा कठोर परिस्थितियाँ ही इन सफलताओं का कारण होती हैं। जब हम उन बस्तियो के उदाहरण लेते हैं जहाँ कभी सभ्यता फूली फली किन्तु बाद मे असफल हो गयी और जहाँ भूमि अपनी मूल स्थिति मे लौट आयी है तो उस परिकल्पना की सिद्धि के अधिक निकट पहुँच जाते हैं।

जो प्रदेश कभी मय (माया) सभ्यता का हृदयपट था वह अब पुन उष्ण कटिबन्धीय वन रूप मे बदल गया है।

सीलोन की इण्डिक सभ्यता द्वीप के वर्षारहित अर्द्धभाग मे विकसित हुई

थी। अब यह क्षेत्र बिलकुल वीरान हो गया है यद्यपि [illegible] के ध्वंसावशेष अब भी उस सभ्यता के प्रमाण उपस्थित कर रहे हैं जो कभी यहाँ फूली फली थी।

पेत्रा एवं पाल मीरा के ध्वंसावशेष अरब मरुस्थल के मधु मरुद्यान में फैले हुए हैं।

प्रशान्त महासागर के सुदूरतम स्थानों में से एक है ईस्टर द्वीप। उसमें जो मूर्तियाँ पायी मिलती हैं उनसे सिद्ध होता है कि यह कभी पोलीनेशियाई सभ्यता का केन्द्र रहा होगा।

जिस न्यू इंगलैंड के यूरोपीय उपनिवेशियों ने उत्तरी अमेरिका के इतिहास में बड़ा ही प्रभावपूर्ण भाग लिया था, वह उस महाद्वीप के सबसे ऊजड़ एवं वीरान प्रदेशों में से एक है।

रोमी अभियान (Roman Champagna) के सम्बन्ध में अभी कुछ दिन पूर्व तक मलेरिया प्रधान ऊजड़ प्रदेश थे किन्तु उनका रोमन सभ्यता के उदय में बड़ा बड़ा अंश रहा है। इसके विपरीत कपुआ की स्थिति कहीं ज्यादा अनुकूल थी किन्तु उसका अभिनय नगण्य रहा। इस अध्याय में हेरोडोटस, थ्यूसीडाइडीस तथा यहूदी धर्मग्रन्थ (बुक आफ एक्जोडस) से भी उदाहरण लिये गये हैं।

जिस न्यासालैंड में जीवन-यापन की स्थिति सरल है वहाँ के मूल निवासी आदिमकालीन जंगलियों के रूप में ही तबतक पड़े रह गये जबतक कि निष्ठुर जलवायु वाले सुदूर यूरोप से वहाँ आक्रमणकारियों का आगमन नहीं हुआ।

७ पर्यावरण की चुनौती

(१) कठोर प्रदेशों का उद्दीपन

समीपवर्ती पर्यावरणों की युगल मालिकाएँ उपस्थित की जाती हैं। प्रत्येक उदाहरण में पूर्ववर्ती अधिक कठोर देश है और सभ्यता के किसी न किसी रूप के उदभावक या संस्थापक के रूप में उसकी भूमिका वही शानदार रही है। पीत नदी घाटी यांगत्सी घाटी, अत्तिका एवं बोयशिया, बर्जेंतियम एवं कालछेदन, इसराइल फोनीशिया फिलिस्तिया, ब्रडनबर्ग एवं राइनलैंड, स्काटलैंड एवं इंगलैंड तथा उत्तरी अमरिका के यूरोपीय उपनिवेशियों के विविध वर्गों के उदाहरण दिये गये हैं।

(२) नवीन भूमि का उद्दीपन

हम देखते हैं कि अक्षत भूमि (वर्जिन स्वायल) उस भूमि की अपेक्षा कहीं अधिक शक्तिशाली उत्तरों—अनुक्रियाओं की उदभावना करती है जो पहिले से ही तोड़ी जाती जाकर पूर्ववर्ती सभ्य अधिवासियों-द्वारा सरलतर (सुखद) बना दी गयी है। इस प्रकार जब हम सम्बद्ध सभ्यताओं में से एक एक को लेते हैं तो देखते हैं कि उन्होंने उन स्थानों में अपनी सबसे अधिक आकर्षक प्रारम्भिक अभिव्यक्तियाँ छोड़ी हैं जो अभिभावक (पेरेंट) सभ्यता द्वारा अधिकृत क्षेत्र के बाहर थे। नवीन भूमि ने जो अनुक्रिया उत्पन्न की उसकी वरेण्यता तब सबसे अधिक स्पष्ट हो जाती है जब हम

सागर पथ से नवीन भूमि पर पहुचते है। इस तथ्य के लिए कारण दिये गय है। यह भी समझाया गया है कि क्या नाटक गृहदेशो (होमलंडस) म और महाकाव्य मागरान्त बस्तिया म विकसित होते हैं।

(३) आघातों का उद्दीपन

हलेनी एव पाश्चात्य इतिहास स विविध उदाहरण यह दिखाने के लिए दिये गये है कि कोई आकस्मिक दलनकारी पराजय पराजित दल का इसके लिए उद्दीप्त कर सकती है कि वह अपना घर व्यवस्थित करे और विजयपूर्ण उत्तर देने की तयारी करे।

(४) दबावो का उद्दीपन

विविध उदाहरणो से प्रकट होता है कि जो जनता सीमान्त प्रदेशो मे रहती है और जिस पर सदा आक्रमण की सम्भावना बनी रहती है उसका अधिक सुरक्षित स्थिति मे रहने वाले अपने पडोसियो से कही शानदार विकास होता है। पूर्वी रोम साम्राज्य की सीमाओ स टकराने वाले उस्मानलियो ने अपने पूर्व के करामनलियो से ज्यादा सफलता पायी। जिस आस्टिया पर ओथमन तुर्कों के लम्बे आक्रमण होते रहे उसका इतिहास बवेरिया की अपेक्षा ज्यादा शानदार रहा। इस दृष्टिकोण से रोम के पतन एव नामन विजय के बीच के काल मे ब्रिटेन म रहने वाले विविध समुदायो की स्थिति एव भाग्य की परीक्षा की गयी है।

(५) शास्तियो का उद्दीपन

कतिपय वर्ग एव जातिया ऐसी हैं जो दूसरे ऐसे वर्गों या जातियो द्वारा बलात् थोपी गयी शास्तियो (Penalizations) के कारण शताब्दियो तक कष्ट उठाती रही है जिन्होने उन पर अपनी प्रभुता स्थापित कर ली थी। दण्डित वर्ग एव जातिया कतिपय सुविधाओ एव अवसरो से वचित कर दिये जाने की इस चुनौती का उत्तर प्राय इस रूप मे देती रही हैं कि उनके लिए काय की जो दिशाए छोड दी गयी थी उनमे उन्होने अपनी असामान्य ऊर्जा का सन्निवेश किया और अपनी विशेष क्षमता का परिचय दिया। यह ठीक वैसा ही हुआ जसे अन्ध व्यक्ति अपनी श्रवण शक्ति को असाधारण रूप से विकसित कर लता है। दासता शायद सबसे भारी शास्ति है किन्तु हम देखते हैं कि ईसापूर्व की दो अन्तिम शतिया मे पूर्वी भूमध्य (ईस्टन मेडेटेरेनियन) से इटली मे दासो के जो दल आयात किये गये थे उन्ही म से मुक्त दासो (फ्रीडमेन) के एक ऐसे वर्ग की उत्पत्ति हुई जो भयावह रूप म शक्तिमान् सिद्ध हुआ। इसी दास जगत् से आन्तर श्रमिकवर्ग के नवीन धर्मों का भी उदभव हुआ। इन धर्मों मे से एक ख्रीष्टीय धर्म भी था।

इस दृष्टिकोण से उस्मानलियो के शासन काल मे पराजित इसाई जन-समूह के विविध वर्गों—विशेषत फनारियोत यूनानियो के भाग्य का परीक्षण किया गया है। इस उदाहरण तथा यहूदियो के उदाहरण का उपयोग यह सिद्ध करने के लिए किया गया है कि तथाकथित प्रजातीय विशिष्टताए (racial characteristics) वस्तुत प्रजातीय बिलकुल नही हैं वर उन समुदायो के ऐतिहासिक अनुभवो के कारण हैं।

८ मध्य भाग

(१) पर्याप्त एव अत्यधिक

क्या हम सीधे सीधे यह कह सकते है कि जितनी ही कठोर चुनौती होती है उतना ही श्रेष्ठ उत्तर होता है ? या कोई अत्यन्त कठोर ऐसी भी चुनौती होती है जो उत्तर को जन्म देती है ? इसमे तो कोई सन्देह नही कि एक या एकाधिक पक्षो को पराजित करने वाली कुछ चुनौतिया ऐसी हैं जिनके कारण अन्त म एक विजयपूर्ण उत्तर का उदभव हुआ है। उदाहरणार्थ प्रसरणशील हेलेनवाद का चुनौती केल्टो (Celts) के लिए बहुत बडी सिद्ध हुई किन्तु उन्ही के उत्तराधिकारी टीटनो न उसका विजयपूर्ण उत्तर प्रदान किया। सीरियाई जगत म जो बलात हलेनी प्रवश हुआ, सीरियाइयो की ओर से उसके अनेक असफल उत्तर मिले जिनम जरथुस्त्रीय यहूदी (मक्काबियाई) नेस्तोरियाई एव मोनोफाइसाइट आदि उत्तर शामिल है। किन्तु इस्लाम की ओर से मिला पाचवा उत्तर सफल सिद्ध हुआ।

(२) चुनौतियों की तुलना

किन्तु इतना तो साबित किया ही जा सकता है कि चुनौती बहुत ही कठोर हो सकती है। आशय यह कि सर्वाधिक चुनौती सदा सर्वाधिक उत्तर का उदभव नही करती। नार्वे से जो वाइकिंग आप्रवासी आये थे उन्होने आइसलड की कठोर चुनौती का बहुत अच्छा उत्तर दिया। किन्तु वे ही ग्रीनलड की कठोरतर चुनौती के सामने असफल रहे। यूरोपीय उपनिवेशको के सामने मैसाचुसेटस न उससे ज्यादा कठोर चुनौती रखी जो डिक्सी ने रखी थी फिर भी उससे ज्यादा अच्छे उत्तर का जन्म हुआ। किन्तु जब लेबराडोर ने उसके सामने उसमे भी कठोरतर चुनौती उपस्थित की तो वह उसके लिए बहुत ज्यादा सिद्ध हुई और वे उसका उत्तर न दे सके। और भी उदाहरण आते हैं जिनसे साबित होता है कि आघातो का उद्दीपन अत्यधिक कठोर हो सकता है विशेषत उस स्थिति मे जब वह लबे काल तक चलता है। इटली पर हनीबाल युद्ध के प्रभाव को इसके उदाहरण मे पेश किया जा सकता है। मलाया म जा बसने मे जो सामाजिक चुनौती निहित है उससे चीनी उद्दीप्त हुए किन्तु एक श्वेत जाति के देश अर्थात कैलीफोर्निया की उससे अधिक कठोर चुनौती के सामने वे पराजित हो गये। अन्त मे निकटवर्ती बबरो के प्रति सभ्यताओ की चुनौती की विविध मात्राओ का परीक्षण किया गया है।

(३) दो अकालप्रसूत सभ्यताए

पूर्व प्रकरण म जो अन्तिम उदाहरण आया है उसी का सिलसिला इस प्रकरण म भी चलता है। पाश्चात्य ईसाई धर्मजगत के इतिहास के प्रथम अध्याय म उसकी सीमाओ पर बबरो के जो दो वर्ग थे उनको इतना उद्दीपन प्राप्त हुआ कि उन्होने अपनी प्रतियोगिनी सभ्यताओ का निर्माण करना आरम्भ कर दिया। य सभ्यताए थीं—(आयरलैंड एव आयोना के) केल्ट ईसाइयो की सुदूरपश्चिमी तथा स्कन्डानवियाई वाकिंग लोगो का। मुकुलित अवस्था म ही इन्हें नष्ट कर दिया गया। इस प्रकरण में इन दोनो मामलो के साथ ही उन परिणामो पर भी विचार किया गया है जो

रोम एव राइन प्रदेश से अपनी किरणें फेंकने वाली ख्रीष्टीय सभ्यता द्वारा उनका उदरस्थ एव निमग्न न कर दिये जाने पर उत्पन्न हो सकते थे।

(४) ईसाई धर्मजगत पर इस्लाम का संघात

पाश्चात्य ईसाई धर्मजगत पर इस संघात का प्रभाव बहुत ही अच्छा पडा और मध्य युगो की पाश्चात्य संस्कृति ने मुस्लिम आइबेरिया से बहुत कुछ प्राप्त किया। बजेंतियाई ईसाई धर्मजगत पर यह संघात बहुत कठोर था और उसने सीरियाई ईसाइयों के अधिनायकत्व तले रोमन साम्राज्य के दलनकारी पुनरुत्थान के रूप में उसका उत्तर दिया। यहा मुस्लिम जगत द्वारा चारो ओर से घिरे हुए दुर्ग में अवस्थित एव ईसाई जीवाश्म अबीसीनिया के मामले पर भी विचार किया गया है।

[३]

सभ्यताओ का विकास

६ अवरुद्ध सभ्यताए

(१) पोलीनेशियाई, ऐस्किमो एव यायावर

देखने मे लगता है कि जब एक सभ्यता का प्रादुर्भाव हो जाता है तब उसकी उन्नति की धारा चलती रहती है किंतु बात ऐसी नहीं है। जब हम देखते हैं कि कई सभ्यताएं ऐसी है कि अस्तित्व मे आकर भी विकसित होने में रह गयी तो हमारी यह बात ठीक सिद्ध होती है। इन अवरुद्ध सभ्यताओं की नियति इतनी ही थी कि उन्होंने उस सीमान्त रेखा पर पहुचकर चुनौती का उत्तर दिया जो सफल उत्तर को जन्म देने वाली कठोरता की मात्रा और पराजित कराने वाली उसकी अत्यधिक मात्रा के बीच होती है। तीन ऐसे उदाहरण सामने आते है जिनमें इस प्रकार की चुनौती भौतिक पर्यावरण से आयी है। और हर मामले में उत्तरदाता ने अपनी सारी योग्यता एव क्षमता अपने इसी कार्य में खर्च कर दी—यहाँ तक कि आगे विकास के लिए उसमें कोई शक्ति ही शेष नहीं रह गयी।

पोलीनेशियाइयों ने प्रशान्त महासागर के द्वीपों के बीच अन्तर्द्वीपीय जल यात्राओं में बडी योग्यता प्राप्त की किन्तु अंत में उसी विशेषता ने उन्हें पराजित करके छोडा और वे इन एकाकी विलग पड़े द्वीपों में आदिमकालिक जीवन के स्तर पर गिरकर रह गये।

ऐस्किमो लोगों ने असाधारण कौशलपूर्ण तथा विनिष्णातप्राप्त वार्षिक चक्र की उपलब्धि की किन्तु वे आर्कटिक के तटों के अनुकूल जीवन विधि ग्रहण कर रह गये।

अर्द्धमरुस्थली स्टेप्पी पर पशुचारको के रूप में नामको—यायावरों ने भी इसी प्रकार के वर्षचक्र की उपलब्धि की थी। उपर्युक्त सागर एव शाद्वल सम्युक्त मरुस्थल में बहुत सी बातें समान हैं। यहाँ धरती के जनसाधारण एव उतार ज्ञात जान के युगों में यायावरीय जीवन के विकास का विश्लेषण किया गया है। यह तथ्य नोट

८ मध्य भाग

(१) पर्याप्त एव अत्यधिक

क्या हम सीधे सीधे यह कह सकते हैं कि जितनी ही कठोर चुनौती होगी है उतना ही श्रेष्ठ उत्तर होता है ? या कोई अत्यन्त कठोर ऐसी भी चुनौती होती है जो उत्तर को जन्म देती है ? इसमे तो कोई सन्देह नही कि एक या एकाधिक पक्षों को पराजित करने वाली कुछ चुनौतिया ऐसी हैं जिनके कारण अन्त म एक विजयपूर्ण उत्तर का उद्भव हुआ है। उदाहरणार्थ प्रसरणशील हेलेनवाद की चुनौती कल्टो (Celts) के लिए बहुत बडी सिद्ध हुई किन्तु उन्ही के उत्तराधिकारी टीटनो ने उसका विजयपूर्ण उत्तर प्रदान किया। सीरियाई जगत् म जो बलात हलनी प्रवश हुआ, सीरियाइयो की ओर मे उसके अनेक असफल उत्तर मिले, जिनम जरथुस्त्रीय, यहूदी (मक्काबियाई) नेस्तोरियाई एव मोनोफाइसाइट आदि उत्तर नामित हैं। किन्तु इस्लाम की ओर स मिला पाचवा उत्तर सफल सिद्ध हुआ।

(२) चुनौतियों की तुलना

किन्तु इतना तो साबित किया ही जा सकता है कि चुनौती बहुत ही कठोर हो सकती है। आशय यह कि सर्वाधिक चुनौती सदा सर्वाधिक उत्तर का उदभव नही करती। नार्वे से जो वाइकिंग आप्रवासी आये थे उन्होने आइसलंड की कठोर चुनौती का बहुत अच्छा उत्तर दिया। किन्तु वे ही ग्रीनलड की कठोरतर चुनौती के सामने असफल रहे। यूरोपीय उपनिवेशको के सामने मसाचुसेटस ने उससे ज्यादा कठोर चुनौती रखी जो डिक्सी ने रखी थी फिर भी उससे ज्यादा अच्छे उत्तर का जन्म हुआ। किन्तु जब लेब्राडोर ने उसके सामने उससे भी कठोरतर चुनौती उपस्थित की तो वह उसके लिए बहुत ज्यादा सिद्ध हुई और वे उसका उत्तर न दे सके। और भी उदाहरण आते हैं जिनसे साबित होता है कि आघातों का उद्दीपन अत्यधिक कठोर हो सकता है विशेषत उस स्थिति मे जब वह लबे काल तक चलता है। इटली पर हनीबाल युद्ध के प्रभाव को इसके उदाहरण म पेश किया जा सकता है। मलाया म जा बसने म जो सामाजिक चुनौती निहित है उससे चीनी उद्दीप्त हुए किन्तु एक श्वेत जाति के देश अर्थात कैलीफोर्निया की उसमे अधिक कठोर चुनौती के सामने वे पराजित हो गये। अन्त मे निकटवर्ती बर्बरो के प्रति सम्यताओ की चुनौती की विविध मात्राओ का परीक्षण किया गया है।

(३) दो अकालप्रसूत सभ्यताए

पूर्व प्रकरण म जो अन्तिम उदाहरण आया है उसी का सिलसिला इस प्रकरण म भी चलता है। पाश्चात्य ईसाई धर्मजगत के इतिहास के प्रथम अध्याय म उसकी सीमाओ पर बर्बरो के जो दो वर्ग थे उनको इतना उद्दीपन प्राप्त हुआ कि उन्होने अपनी प्रतियोगिनी सभ्यताओ का निर्माण करना आरम्भ कर दिया। य सभ्यताए थीं—(आयरलैंड एव आयोना के) केल्ट ईसाइयो की सुदूरपश्चिमी तथा स्केण्डानवि याई वाइकिंग गाथा का। मुकुलित अवस्था म ही इन्हे नष्ट कर दिया गया। इस प्रक रण में इन दोनो मामलो के साथ ही उन परिणामो पर भी विचार किया गया है जो

रोम एव राइन प्रदेश से अपनी किरणे फेंकने वाली खीष्टीय सभ्यता द्वारा उनका उदर स्थ एव निमग्न न कर लिय जान पर उत्पन्न हो सकते थे ।

(४) ईसाई धमजगत पर इस्लाम का सघात

पाश्चात्य ईसाई धमजगत पर इस सघात का प्रभाव बहुत ही अच्छा पडा और मध्य युगो की पाश्चात्य सस्कृति ने मुस्लिम आइबरिया से बहुत कुछ प्राप्त किया । बजेंतियाई ईसाई धमजगत पर यह सघात बहुत कठोर था और उसने सीरियाई लियो के अधिनायकत्व तले रोमन साम्राज्य के दलनकारी पुनरुत्थान के रूप म उसका उत्तर दिया । यहा मुस्लिम जगत द्वारा चारा ओर स घिरे हुए दुग म अवस्थित एक ईसाई जीवाश्म अबीसीनिया के मामले पर भी विचार किया गया है ।

[३]

सभ्यताओ का विकास

६ अवरुद्ध सभ्यताए

(१) पोलीनेशियाई, ऐस्किमो एव यायावर

देखने म लगता है कि जब एक सभ्यता का प्रादुर्भाव हो जाता है तब उसकी उन्नति की धारा चलती रहती है किन्तु बात ऐसी नही है । जब हम देखत हैं कि कई सभ्यताए ऐसा हैं कि अस्तित्व में आकर भा विकसित होने स रह गयी तो हमारी यह बात ठीक सिद्ध होती है । इन अवरुद्ध सभ्यताओ की नियति इतनी ही थी कि उन्होने उस सीमान्त रेखा पर पहुचकर चुनौती का उत्तर दिया जो सफल उत्तर का जन्म देने वाली कठोरता की मात्रा और पराजित कराने वाली उसकी अत्यधिक मात्रा के बीच होती है । तीन ऐसे उदाहरण सामने आते है जिनम इस प्रकार की चुनौती भौतिक पर्यावरण से आयी है । और हर मामले मे उत्तरदाता ने अपनी सारी योग्यता एव क्षमता अपने इसी काय म खच कर दी— यहाँ तक कि आगे विकास के लिए उसम कोई शक्ति ही शेष नहीं रह गयी ।

पोलीनेशियाइयो ने प्रशान्त महासागर के द्वीपो के बीच अन्तर्द्वीपीय जल यात्राओ म बडी योग्यता प्राप्त की किन्तु अन्त म उसी विशेषता ने उन्हे पराजित करके छोडा और वे इन विषय विलग पड द्वीपो म आदिमकालिक जीवन के स्तर पर गिरकर रह गये ।

एस्किमो लोगो ने असाधारण कौशलपूण तथा विशिष्टताप्राप्त वार्षिक चक्र की उपलब्धि की किन्तु व आकटिक के तटो के अनुकूल जीवन विधि ग्रहण कर रह गये ।

अद्धमरुभूमी स्टेप्पी पर पशुचारको के रूप म नोमडो—यायावरो ने भी इसी प्रकार के वषचक्र की उपलब्धि की थी । द्वीपयुक्त सागर एव शाद्वल खण्डयुक्त मरुस्थल म बहुत सी बात समान हैं । यहाँ धरती के जलशोषण एव ऊसर होने जाने के युगों मे यायावरीय जीवन के विकास का विश्लेषण किया गया है । यह तथ्य नोट

किया गया है कि पहिले शिकारी कृषक बनते हैं और उसके बाद ही यायावरीय जीवन ग्रहण करने के लिए कदम उठाते हैं। केन एव एबेल क्रमश कृषक एव यायावर के ही प्रतिरूप हैं। सभ्यताओ के क्षेत्र में यायावरो का प्रयास सदा ही दो कारणो से होता है—या तो इसलिए कि भूमि के जलशून्य एव शुष्क हो जाने से यायावर स्टेप्पी के बाहर जाने को विवश होता है, या फिर किसी सभ्यता के विघटन से एसी रिक्तता पदा हो जाती है कि वह (रिक्तता) सामूहिक प्रवास मे शामिल होने के लिए यायावर को खींच ले आती है।

(२) उस्मानली लोग

जिस चुनौती का उत्तर ओयमन प्रणाली थी उसमे एक यायावरीय समुदाय को ऐस पर्यावरण म हस्तान्तरित कर दिया गया था जिसमे उसे स्थिर जातियो पर शासन करना था। उन लोगो ने अपनी नयी प्रजाओ के साथ मानव पशुओ के रूप मे व्यवहार कर अपनी समस्या हल कर ली उन्होंने अपन यायावरीय जीवन के 'लघु श्वानो' (शीप डाग्स) के मानवीय प्रतिरूप की भाति उन्ह विकसित किया और प्रशासको एव सनिको का 'गृहदास' (हाउसहोल्ड स्लेव) बना डाला। इस प्रकरण म दूसरे यायावरीय साम्राज्यो—जसे मामलूको के साम्राज्य—का भी उल्लेख किया गया है। कुशलता एव अवधि म उस्मानली प्रणाली और सबसे आग निकल गयी किन्तु जिस शाश्वतिक अनम्यता (रिजिडिटी) के कारण स्वय यायावरीय जीवन का पतन हुआ उसी के कारण उस्मानली प्रणाली का भी विघटन हो गया।

(३) स्पार्टावासी

हेलेनी जगत् म आबादी की अत्यधिक वृद्धि की चुनौती का उत्तर स्पार्टा वासियों ने भी एक ऐसी काय प्रणाली विकसित करके दिया जो बहुत सी बातो म उस्मानली प्रणाली से मिलती जुलती थी एक ही भिन्नता यह थी कि स्पार्टा म तो स्वय स्पार्टन अभिजात वग ने ही सनिक दल की भूमिका ग्रहण कर ली थी। फिर भी वे एक प्रकार के दास ही थे जिन्होंने साथी यूनानियो की आबादी को निरन्तर रोक रखने के आत्मनिर्धारित कत्तव्य क प्रति अपने को दास बना लिया था।

(४) सामान्य चारित्रिक विशिष्टताए

एस्किमो एव यायावर (नोमड) उस्मानली एव स्पार्टा इन सब म दो बातें सर्वनिष्ठ थीं विशिष्टता एव जाति या फिर्का (प्रथम जाति म स्थान छतीय मग—

यूटोपिया के विषय मे विचार किया गया है और यह दिखाया गया है कि सामान्य सारे यूटोपिया ह्रासमान सभ्यताओं की उपज होते हैं, जहा तक उनके व्यावहारिक कार्यक्रम का सम्बन्ध है, वे समाज के तत्कालीन स्तर को खूटे से बाधकर इस ह्रास को रोकना चाहते हैं।

१० सभ्यताओ के विकास की प्रकृति

(१) दो मिथ्या लोकें

विकास तभी होता है जब कि एक विशिष्ट चुनौती का उत्तर न केवल अपने मे सफल होता है बल्कि एक और ऐसी चुनौती की सष्टि करता है जो पुन एक सफल उत्तर पा जाती है। ऐसे विकास की माप हम कैसे करेंगे ? क्या समाज के बाह्य पर्यावरण पर अधिकाधिक नियन्त्रण की स्थापना-द्वारा हम उसे नापेंगे ? बढता हुआ यह नियन्त्रण दो प्रकार का हो सकता है एक तो है मानवीय पर्यावरण पर वृद्धिशील नियन्त्रण जो सामान्यत निकटवर्ती जन-समूहो पर विजय प्राप्त करने का रूप ग्रहण कर लेता है, और दूसरा है भौतिक पर्यावरण पर वृद्धिगत नियन्त्रण, जो भौतिक कार्यविधियो की प्रगति एव सुधार के रूप मे व्यक्त होता है। इसके बाद ऐसे उदाहरण दिये गये हैं जिनसे प्रकट होता है कि इन दोनो मे से कोई भी बात सच्चे विकास की सन्तोषजनक कसौटी नही है अर्थात न तो राजनीतिक एव सनिक प्रसार, न तो प्रविधि या प्रक्रिया की प्रगति ही उसकी कसौटी मानी जा सकती है। सनिक प्रसार प्राय सनिकवाद का परिणाम होता है और सनिकवाद स्वय ही ह्रास का एक लक्षण है। कृषि सम्बन्धी एव औद्योगिक प्रक्रिया मे सुधारो का सच्ची उन्नति से बहुत कम सम्बन्ध दिखायी पडता है या फिर कुछ भी सम्बन्ध नही दिखायी पडता। बल्कि यह हो सकता है कि प्रविधि या प्रक्रिया म उस समय सुधार हो रहा हो जब सच्ची सभ्यता ह्रास के पथ पर हो। इसी प्रकार इसके विपरीत यह भी हो सकता है कि जब सच्ची सभ्यता की उन्नति हो रही हो तब प्रविधि या प्रक्रिया म ह्रास हो रहा हो।

(२) आत्म निर्णय की ओर प्रगति

सच्ची प्रगति ऐसे प्रक्रम (प्रासेस) म निहित पायी जाती है जिसे 'वायवीकरण या अलौकिकीकरण (etherialization) का नाम दिया जाता है अर्थात् भौतिक कठिनाइयो पर ऐसी विजय जो समाज की ऊर्जा को इस प्रकार मुक्त कर देती है कि वह उन चुनौतियो का उत्तर दे सके जो बाह्य की अपेक्षा आन्तरिक और भौतिक की अपेक्षा आध्यात्मिक अधिक होती हैं। हेलेनी एव आधुनिक पाश्चात्य इतिहास से उदाहरण देकर इस वायवीकरण की प्रकृति पर प्रकाश डाला गया है।

११ विकास का विश्लेषण

(१) समाज एव व्यक्ति

समाज एव व्यक्ति के सम्बन्ध के बारे मे दो परम्परागत दृष्टिकोण प्रचलित है एक समाज को केवल आणविक व्यक्तियो का सम्पूर्ण योग मानता है दूसरा समाज

का जीवागी (आर्गेनिज्म), और व्यक्तियों को उसका अंग समझता है —उसके लिए यक्ति उस समाज के सदस्य या परमाणु हैं जिनसे अन्दर वे हैं, और किसी रूप में अकल्पनीय है। इस प्रकरण में यह दिखाया गया है कि य ज्ञाता हो दृष्टिकोण अम तापग्रस्त है। सच्चा दृष्टिकोण यह है कि समाज व्यक्तियों के बीच के सम्बन्धों की प्रणाली है। अपने साथियों के प्रति किसी अन्तःक्रिया का उद्भव किये बिना मानव प्राणी वह हो नहीं सकते जो कि वे हैं और समाज अनेक मानव प्राणियों के लिए सर्वनिष्ठ कर्म का क्षेत्र है। किन्तु कर्म का उद्गम तो व्यक्तियों में ही है। सम्पूर्ण वृद्धि सृजनशील व्यक्तियों अथवा व्यक्तियों के लघु अल्पमत में जन्म लेती है, और इन व्यक्तियों का प्रयास द्विविध होता है —एक तो उनका प्रेरणा अथवा आविष्कार फिर वह चाहे जो हो की सफलता दूसरा जिस समाज में वे रहते हैं उस ढंग नये जीवन मार्ग की दीक्षा देना। सिद्धान्त यह धर्म-परिवर्तन दो में से एक न एक राह में किया जाता है या तो समष्टि को भी उस वास्तविक अनुभव में ले जाकर, जिसने उन सृजनशील व्यक्तियों का रूपान्तरण किया है या फिर अपने से बाहर के लोगों के अनुकरण अर्थात दूसरे शब्दों में अनुहारी वृत्ति (मिमसिस) द्वारा। व्यवहार में मानव जाति के एक लघु अल्पमत को छोड़कर और सबके लिए यह दूसरा मार्ग ही एक मात्र विकल्प है। अनुहारी वृत्ति नजदीक का मार्ग है, लघुपथ है किन्तु यही राह है जिस पर सामान्य जन ठट्ट के ठट्ट या सामूहिक रूप से नेताओं का अनुकरण कर सकते हैं।

(२) प्रत्याहरण एवं प्रत्यावर्तन व्यक्ति

सृजनशील व्यक्तियों के कार्य का वर्णन प्रत्याहरण एवं प्रत्यावर्तन (विदड्राल ऐंड-रिटर्न) की दोहरी गति के रूप में किया जा सकता है प्रत्याहरण अपने निजी ज्ञान के लिए और प्रत्यावर्तन अपने सगी मानवों को ज्ञान देने के लिए। इसका चित्र प्लेटो का कन्दरा वाली दृष्टान्त-कथा, सन्त पाल के बीज वाले रूपक बाइबिल की कथा तथा अन्य स्थानों में मिलता है। फिर उसे सन्त पाल, सन्त बेनेडिक्ट सन्त ग्रीगोरी महान, बुद्ध, मुहम्मद, मैकियावेली दान्ते इत्यादि महत पथ-प्रदर्शकों के जीवन में व्यावहारिक कर्म के रूप में दिखाया गया है।

(३) प्रत्याहरण एवं प्रत्यावर्तन सृजनशील अल्पमत

प्रत्याहरण तथा उसके बाद प्रत्यावर्तन उन उप समाजों (सब सोसायटीज) की भी विशिष्टता है जो समुचित अर्थ में समाजों के घटक होते हैं। जिस युग में ऐसे उप समाज समाज की वृद्धि के प्रति अपना अंशदान करते हैं उसके पूर्व एक ऐसा काल आता है जिसमें वे अपने समाज के सामान्य जीवन में स्पष्टतः प्रत्याहरण कर लेते हैं हेलेनी समाज के अभ्युदय के द्वितीय अध्याय में एथेंस पाश्चात्य समाज के उदय के द्वितीय अध्याय में इटली, तथा उसी के तृतीय अध्याय में इंगलैंड के उदाहरण दिये गये हैं। इस पर भी विचार किया गया है कि क्या चतुर्थ अध्याय में रूस भी ऐसी ही भूमिका अभिनीत कर सकता है।

१२ अभ्युदय के द्वारा विभेदीकरण

पिछले अध्याय म जिस प्रकार अभ्युदय की चर्चा की गयी है उसमे एक उदीय मान समाज के अगो के बीच विभेदीकरण (डिफरेंसियेशन) की बात आ ही जाती है। विकास की प्रत्यक अवस्था म कुछ अग मौलिक एव सफल उत्तर देगे, दूसरे कुछ अनुकरण-द्वारा उनके नेतृत्व का अनुसरण करन मे सफल होगे कुछ ऐसे भी होग जो न तो कोई मौलिक उत्तर ही दे सकेंगे न अनुकरण ही कर सकेंगे और इस प्रकार समाप्त हो जायगे। विभिन्न समाजो क इतिहासो के बीच विभेदीकरण बढता जायगा। यह स्पष्ट हो जाता है कि विभिन्न समाजो म विभिन्न प्रकार की विशेषताए पायी जायगी—कुछ कला मे कुछ धर्म म, और दूसरे कुछ औद्योगिक आविष्कारशीलता म बढ़े चढ़े होगे। किन्तु सभी सभ्यताओ के हेतुओ मे जो मौलिक समानता है उसे भूलना नही चाहिए। प्रत्येक बीज की अपनी नियति है किन्तु सभी बीज एक ही प्रकार के होते है सभी एक ही वपनकर्ता द्वारा एक ही प्रकार की फसल की आशा स बोये जाते है।

[४]

सभ्यताओ का विघटन

१३ समस्या की प्रकृति

हमने जिन अट्ठाईस (इस सूची म रुद्ध सभ्यताए भी शामिल हैं) सभ्यताओ की पहिचान की है उनमे स अठारह तो मर चुकी हैं। शेष दस म स नौ (अर्थात हमारी अपनी को छोड और सब) विघटित हो चुकी हैं। विघटन की प्रकृति को तीन बातो म सक्षिप्त किया जा सकता है सजनशील अल्पमत की सजनात्मक शक्ति का लोप, अब वह सजनशील अल्पमत केवल प्रभविष्णु' अल्पमत रह जाता है, बहुमत अनुकरण द्वारा निष्ठा के प्रत्याहरण के रूप मे उत्तर देता है जिसके फलस्वरूप सब मिलाकर समाज मे सामाजिक एक्य का लोप हो जाता है। अब हमारा अगला प्रयास इस प्रकार के विघटन के कारणो का पता लगाना है।

१४ नियतिवादी समाधान

कतिपय विचार धाराए कहती हैं कि सभ्यताओ के विघटन ऐसे कारणों से होते है जो मानवीय नियन्त्रण के परे हैं।

(१) हलनी सभ्यता क ह्रासकाल म, काफिर (पगन) एव ईसाई दोनो प्रकार के लखको का मत था कि उनक समाज का ह्रास 'ब्रह्माण्डीय जरिमा या बुढ़ापा' (cosmic senescence) क कारण हुआ है किन्तु आधुनिक भौतिक वैज्ञानिकों ने ब्रह्माण्डीय जरिमा' क सिद्धान्त को एक अविश्वसनीय दूरी वाल भविष्य की ओर फेंक

दया है जिसका अर्थ यह है कि अतीत अथवा वर्तमान सभ्यताओं पर उसका कोई प्रभाव पड़ने की सम्भावना नहीं की जा सकती ।

(२) स्पेंगलर का दूसरा का कथन है कि समाज अंगी हैं जव हैं और उनमें भी यौवन आता है प्रौढ़ावस्था आती है और फिर जीवधारियों की भांति उनमें भी ह्रास आता है। किन्तु समाज अंगी या जव नहीं है।

(३) दूसरों का कहना है कि मानव-स्वभाव पर सभ्यता का जो प्रभाव पड़ता है उसमें अनिवार्यत कुछ पतनकारक (dysgenic) तत्त्व निहित होते हैं और सभ्यता के एक युग के बाद उसमें बर्बरीय नवीन रक्त का निषेचन (infusion) करके जाति को स्वस्थ एवं शक्तिमान किया जा सकता है। यहां इस विचार की परीक्षा की गयी है और फिर उसका परित्याग कर दिया गया है।

(४) अब इतिहास का चाक्रिक सिद्धान्त रह जाता है जो प्लेटो के टाइमइयस, वर्जिल के चतुर्थ ग्रामीण काव्य-संवाद (Fourth Ecologue) तथा दूसरे स्थानों में मिलता है। हमारी ही सौर प्रणाली के विषय में चैल्डिया ने जो खोजें की थीं शायद उन्हीं से इसका जन्म हुआ है। किन्तु आधुनिक खगोलविद्या की अत्यधिक विशद दृष्टि ने इस सिद्धान्त के ज्योतिषिक आधार को नष्ट कर दिया है। इस सिद्धान्त के पक्ष में कोई प्रमाण नहीं है यद्यपि उसके विरुद्ध बहुतेरे प्रमाण एवं साक्ष्य प्राप्त है।

१५ पर्यावरण के नियन्त्रण की क्षति

इस अध्याय का संक्षेप अध्याय १० (१) के विपरीत है जिसमें कहा गया है कि कौशल या प्रविधि के सुधार की दृष्टि से भौतिक पर्यावरण के नियन्त्रण में जो वृद्धि होती है वह या मानवीय पर्यावरण की जिस वृद्धि की माप भौगोलिक प्रसार एवं सैनिक विजयों द्वारा होती है वह अभ्युदय की कसौटी या कारण नहीं है। यहां यह दिखाया गया है कि कौशल के ह्रास एवं बाहर से होने वाले सैनिक आक्रमण के फल-स्वरूप जो भौगोलिक संकुचन होता है वह विघटन की कसौटी या कारण नहीं है।

(१) भौतिक पर्यावरण

यह दिखाने के लिए कतिपय उदाहरण दिये गये हैं कि प्राविधिक सफलता का ह्रास विभग का परिणाम है कारण नहीं। रोमन मार्गों एवं मेसोपोटामियाई नहर प्रणाली का परित्याग उन सभ्यताओं के विघटन का कारण नहीं बल्कि परिणाम था जो पहिले उनका संचालन रक्षण करती थीं। यहां यह सिद्ध किया गया है कि जिस मलेरियागम को सभ्यताओं के विघटन का कारण बताया जाता है वह वस्तुत उनके विघटन का परिणाम था।

(२) मानवीय पर्यावरण

गिबन ने प्रतिपादित किया है कि रोम साम्राज्य के ह्रास एवं पतन का कारण बर्बरता एवं धर्म (मतलब ख्रीष्टीय धर्म) था। यहां इस सिद्धान्त की परीक्षा की गयी है और उसे अस्वीकार किया गया है। हेलेनी समाज के बाह्य एवं आन्तरिक श्रमिक वर्ग की ये अभिव्यक्तियां हेलेनी समाज के उस विघटन का परिणाम थीं जो उसके पूर्व

ही, घटित हो चुका था। गिबन काफी पहिले से अपनी कथा आरम्भ नहा करता, वह 'एतोनाइन काल' को 'स्वणयुग' समझने की गलती करता है जब कि वह भारतीय ग्रीष्म' तुल्य था। यहा सभ्यताओ के विरुद्ध सफल आक्रमण के विविध उदाहरणो का सिंहावलोकन किया गया है और यह प्रदर्शित किया गया है कि प्रत्यक मामले म सफल आक्रमण विघटन के बाद ही घटित हुआ है।

(३) निषेधात्मक निणय

जब कोई समाज विकास के उपक्रम मे होता है तब यदि उसके विरुद्ध कोई आक्रमण होता है तो वह उसे और अधिक प्रयास के लिए उत्साहित करता है। यहा तक कि जब समाज ह्रासोन्मुख होता है तब भी उसके विरुद्ध किया गया आक्रमण उसे कमठता मे सुदृढ कर कुछ दिन और जीवित रहने का कारण हो सकता है। (इस अध्ययन म प्रयुक्त विघटन को एक प्राविधिक या तकनीकी शब्द मानकर सम्पादक उस पर एक टिप्पणी देता है।)

१६ आत्म-निणय की असफलता

(१) अनुकरण की यान्त्रिकता

असजनशील बहुमत एक ही रूप से सजनशील नताओ के नेतत्व का अनुसरण कर सकता है—अनुकरण द्वारा। यह अनुकरण 'क्वायद' की जाति की चीज है—महत एव प्रेरणाप्राप्त मूल की यान्त्रिक एव ऊपरी नकल मात्र। प्रगति के अपरिहाय नजदीकी रास्ते मे खतरे भी हैं। नेता को भी अपने अनुयायियो की यान्त्रिकता की छूत लग सकती है, जिसका परिणाम यह होगा कि सभ्यता रुद्ध हो जायगी, या फिर वह बाध्यता के कोडे को अधारतापूवक विचित्र वेणुवादक के वेणु से बदल सकता है। ऐसी अवस्था म सजनशील अल्पमत 'प्रभविष्णु अल्पमत' मे बदल जाता है और 'शिष्यगण' अनिच्छुक एव परिवर्तित श्रमजीवीवग का रूप ग्रहण कर लेते हैं। जब ऐसा होता है तब समाज विघटन के पथ पर प्रवेश करता है। वह आत्म निणय की क्षमता खो देता है। यह सब कसे होता है इसे अगले प्रकरणा म बताया गया है।

(२) पुरानी बोतलों मे नूतन मदिरा

सजनशील अल्पमत जो सामाजिक शक्तिया प्रवाहित करते हैं उनम स प्रत्येक शक्ति को आदश की दृष्टि से ऐसा नयी सस्थाओ का निर्माण करना चाहिए जिनके द्वारा वह अपन को क्रियान्वित कर सके। किन्तु होता प्राय यह है कि वह उन पुरानी सस्थाओ के द्वारा अपने को क्रियान्वित करती है जो दूसरे अभिप्रायो एव हेतुओ की पूर्ति के लिए बनायी गया थी। किन्तु पुरातन सस्थाए प्राय अनुपयुक्त एव अव्यवहाय सिद्ध होती हैं। इसका दो मे से एक न एक परिणाम होता है —या तो सस्थाए विघटित हो जाती हैं (क्रान्ति) या फिर वे जीवित रहती हैं और फलत उनके द्वारा कार्यान्वित होन वाली नवीन शक्तियो मे विकार उत्पन्न हो जाता है (महापराध) अनुकरण की विलम्बित एव फलत विस्फोटक क्रिया ही क्रान्ति है। यदि शक्तियो के प्रति *सस्थाओ का सम्बन्ध सामञ्जस्यपूण होता है तो विकास की गति जारी रहती है*

किन्तु यदि वह क्रान्ति के रूप में बदल जाता है तो वृद्धि दुरूह हो जाती है, यदि वह अपराध का रूप ग्रहण करता है तो विघटन का निदान किया जा सकता है। इसके बाद इस अध्याय में ऐसे अनेक उदाहरण दिये गये हैं जिनमें पुरातन संस्थाओं या प्रथाओं पर नवीन शक्तियों के संघात का प्रदर्शन है। उदाहरणों के प्रथम वर्ग के अन्तर्गत आधुनिक पाश्चात्य समाज में उदित दो महती नवशक्तियों का उल्लेख किया गया है —

दास प्रथा पर उद्योगवाद का संघात (संयुक्त राज्य अमरिका के दक्षिणी राज्यों में)

युद्ध पर लोकतन्त्र एवं उद्योगवाद का संघात (जैसा कि फरासीसी राजक्रान्ति के बाद युद्ध के प्रचण्ड होते जाने में दिखायी पड़ता है)

ग्राम्यराज्य पर लोकतन्त्र एवं उद्योगवाद का संघात जैसा कि वह राष्ट्रीयता की अनिवृद्धि एवं आधुनिक पाश्चात्य जगत में निर्बाध व्यापार की असफलता में व्यक्त होता है

व्यक्तिगत सम्पत्ति पर उद्योगवाद का संघात जैसा कि वह पूंजीवाद एवं साम्यवाद के उदय में परिलक्षित है

शिक्षा पर लोकतन्त्र का संघात जैसा कि वह येलो प्रेस एवं फासिस्त तानाशाही में प्रकट है

आल्पसोत्तर सरकारों पर इतालवी कुशलता का संघात जैसा कि वह (इंगलैण्ड के अतिरिक्त अन्यत्र) निरंकुश राजतन्त्रों के उदय में परिलक्षित है

हेलेनी नगर राज्यों पर सोलोनियन क्रान्ति का संघात जैसा कि वह निरंकुशता (tyrannis) अवरोध (stasis) एवं नायकत्व (hegemony) की घटनाओं के प्रकाश में दिखायी पड़ता है,

पाश्चात्य ख्रीष्टीय चर्च पर ग्राम्यवादिता (परोकियलिज्म) का संघात जैसा कि वह प्रोटेस्टंट क्रान्ति सम्राटों के दैवी अधिकार तथा राष्ट्रपति द्वारा ख्रीष्टीय धर्म के आच्छन्न हो जाने के रूप में प्राप्त है

धर्म पर ऐक्य भावना (सेंस आफ यूनिटी) का संघात जैसा कि वह धर्मान्धता एवं उत्पीड़न में परिदर्शित है

जाति पर धर्म का संघात जैसा कि वह हिन्दू सभ्यता में दिखायी पड़ता है

श्रम विभागीकरण पर सभ्यता का संघात जैसा कि वह स्वयं नेताओं में गुह्यता (esotericism) तथा अनुयायियों के एक ओर भुकाव के रूप में प्रकट होता है। अभिशप्त अल्पमतों, जैसे यहूदियों से उदाहरण देकर तथा आधुनिक मल्लवाद की विपथगामिता के उदाहरण-द्वारा इसे समझाया गया है।

अनुकरण कला पर सभ्यता का संघात। जब अनुकरण आदिमकालिक समुदायों की भांति कबीलाई परम्पराओं की ओर उन्मुख नहीं है बल्कि अग्रगामियों की ओर उन्मुख है। प्राय ऐसा होता है कि जिन अग्रगामियों को अनुकरण के लिए चुना जाता है वे सृजनशील नेता नहीं होते वरं व्यावसायिक शोषणकर्त्ता या राजनीतिक अवसरवादी होते हैं।

(३) सजनात्मकता का प्रतिशोध पार्थिव जीव का मूर्तिकरण

इतिहास से प्रकट होता है कि जो वर्ग एक चुनौती का सफल उत्तर देता है वह कदाचित ही दूसरी चुनौती का सफल उत्तरदाता होता है। यहा अनेक उदाहरण दिये गये है और यह प्रदर्शित किया गया है कि यह बात हिब्रू (यहूदी) और यूनानी विचारधारा के कुछ आधारभूत तत्त्वो से मिलती जुलती है। जो एक बार सफल हो चुके हैं वे ही प्राय दूसरे अवसर पर बिना हाथ पर मारे, अपनी नाव पर विश्राम करते देखे जाते है। यहूदिया न पुरानी बाइबिल की चुनौतियो का उत्तर दिया किन्तु वे ही नयी बाइबिल (न्यू टेस्टामेंट) की चुनौती के आगे खत्म हो गये। पेरीक्लीज का एथेंस सत पाल के एथेंस मे पतित हो जाता है। इतालवी पुनरुत्थान (Risorgimento) मे हम देखते है कि जिन केन्द्रो ने रिनसा मे चुनौतियो का समुचित उत्तर दिया था वही प्रभावहीन हो गये और नेतृत्व पीडमौट न ले लिया जिसका पूर्व इतालवी सफलताओ मे कोई हाथ नही था। उन्नीसवी शती के प्रथम एव द्वितीय चतुर्थांश मे साउथ करोलिना एव वर्जीनिया सयुक्त राज्य अमरीका के प्रमुख राज्य थे किन्तु गृहयुद्ध के प्रभावो से उठने म वे उतनी दूर तक सफल नही हुए जितनी दूर तक पहिले का मामूली उत्तरी करोलिना सफल हुआ।

(४) सजनात्मकता का प्रतिशोध पार्थिव सस्था या प्रथा का मूर्तिकरण

हलेनी इतिहास के उत्तर युग म नगर राज्य का मूर्तिकरण एक ऐसा जाल सिद्ध हुआ जिसम यूनानी तो जा फसे किन्तु रोमन बच गये। रोमन साम्राज्य का प्रेत परम्परानिष्ठ ख्रीष्टीय समाज के विघटन का कारण हुआ। सम्राटो पालमेंटो एव अविनाशी वर्गों फिर चाहे वे नौकरशाहियो म से हो या पौरोहित्य से के मूर्तिकरण—दवीकरण के दूषित प्रभावो के उदाहरण दिये गये हैं।

(५) सजनात्मकता का प्रतिशोध पार्थिव तकनीक या प्रविधि का मूर्तिकरण

जविकीय विकास के उदाहरणो से प्रकट होता है कि किसी पर्यावरण के प्रति पूर्ण प्रविधि या तकनीक या पूर्ण अनुकूलन प्राय एक विकासमान 'बन्द गली' (cul de sac) के रूप मे प्रकट होता है और जिन जीवो मे कम विशेषज्ञता होती है और जो ज्यादा अस्थायी होते है उनमे अधिक जीवनशक्ति होती है। जलस्थलीय जीवो की मीन वर्ग से एव मनुष्य के मूषक-सम पूर्वजो का उनके समकालिक विशाल सरीसृपो (reptiles) से तुलना करके इस विरोध को भलीभाति समझा जा सकता है। औद्योगिक क्षेत्र में नयी तकनीक अर्थात पदचालित स्टीमर (पडिल स्टीमर) के आविष्कार की प्रथमावस्था मे एक विशेष समुदाय को जो सफलता प्राप्त हुई उसने उस समुदाय को पेंच द्वारा घूर्णित अधिक अच्छे जलयान का ग्रहण करने म दूसरे समुदायो की अपेक्षा सुस्त कर दिया। डेविड एव गोलियथ से आज तक की युद्धकला के इतिहास के सक्षिप्त सिंहावलोकन स मालूम पडता है कि प्रत्येक अवस्था मे यही होता रहा है कि एक नवीनता के आविष्कारकर्ता एव लाभानुभोगी चुप बैठ रहे और अगला आविष्कार करने का भार अपने शत्रुओ पर छोड दिया।

(६) सनिकवाद की आत्मघाती वत्ति

पिछले तीन प्रकरणो म हाथ पर रामटवर ग्म मारा क उदाहरण न्यि गय है और यह सजनशीलता के प्रतिशाध क प्रति म्धा डाल देन का निष्क्रिय माग है। अब हम विपथगामिता के क्रियात्मक रूप पर आते हैं जिसे 'अजीण बबर दुराचरण एव विनाश (Surfeit, Outrageous Behaviour and Destruction) के यूनानी सूत्र म सन्निप्त किया गया है। सनिकवाद एक स्पष्ट उदाहरण है। जिस कारण स असीरियान्या न अपना विनाश कर लिया वह यह नही था कि पूव अध्याय के अन्त म उल्लिखित विजेताओ की भाँति उन्हाने अपन कवच म जग लग जान दिया था। सनिक दृष्टिकाण से व निरन्तर अधिकाधिक कुशल हात गय थ। उनका नाश ता इसलिए हुआ कि उनकी आक्रामकता न ही उन्ह रिक्त कर दिया—थका न्यिा और इसक साथ ही उन्ह अपन पडोसियो के लिए असह्य बना डाला। असीरियाई एक ऐसा उदाहरण प्रस्तुत करत हैं जिसमे एक सनिक सीमाप्रान्त अपने ही समाज के अन्तरग प्रान्तो के विरद्ध अपने शस्त्रो का प्रयोग कर रहा हो। यहा आस्ट्रेशियन फ्रैको तथा तैमूर लग क समान मामला का भी परीक्षण किया गया है तथा और भी दूसरे उदाहरण न्यि गय हैं।

(७) विजय एक नशा

पूववर्ती अनुच्छेद-जसा ही एक विषय असनिक क्षेत्र म हिल्डब्रडाइन पोपतन्त्र का उदाहरण देते हुए उपस्थित किया गया है। यह पोपतन्त्र पहिले ता अपने का एव ईसाई धम-जगत को पृथिवी गभ की गहराइयो से उठाकर आकाश की ऊचाइयो पर ले गया परन्तु बाद मे असफल हा गया। वह असफल इसलिए हो गया कि वह अपनी ही सफलता क नशे म अचेत हाकर अपने अमिताचारी लक्ष्या के लिए राजनीतिक अस्त्रो का अवध प्रयोग करने के लोभ म पड गया था। इस दृष्टिकोण म मानाभिषेक (Investiture) विषयक विवाद की परीक्षा की गयी है।

[५]

सभ्यताओ का विघटन

१७ विघटन की प्रकृति

(१) एक सामान्य सर्वेक्षण

क्या विघटन विभग का आवश्यक एव अटल परिणाम है? मिस्री एव सुदूरपूर्वीय इतिहास से प्रकट हाता है कि इसका एक विकल्प भी है। इस विकल्प का अश्मीकरण (Petrifaction) नाम स पुकारा जा सकता है। हेलनी सभ्यता के भाग्य म प्राय यही चीज लिखी थी और शायद हमारी सभ्यता की नियति भी वही है। समाज निकाय का तीन खण्डा म विच्छेद विघटन की प्रधान कसौटी नही है। य तीन खण्ड हैं—प्रभविष्णु अल्पमत आन्तरिक श्रमजीवी वग एव बाह्य श्रमजीवी वग। इन खण्डो क विषय म पहिले जा कुछ कहा जा चुका है उस यहा सक्षेप म

दोहरा दिया गया है और आगामी अध्यायों की योजना के प्रति संकेत किया गया है।

(२) विच्छेद एवं पुनरुत्थान (Palingenesia)

कार्ल मार्क्स के इलहामी दर्शन की घोषणा है कि पूजीहीन या श्रमजीवी वर्ग के अधिनायकत्व के पश्चात वर्ग युद्ध का अन्त एक नयी समाज व्यवस्था में जाकर होगा। मार्क्स ने इस विचार का जो एक विशेष आरोपण किया है उसे छोड भी दें तो समाज जब पूर्वोल्लिखित त्रिविध विच्छेद में पतित हो जाता है तब वस्तुतः यही होता है। प्रत्येक खण्ड सर्जन के एक विशिष्ट कार्य में सफलता प्राप्त करता है प्रभविष्णु अल्पमत एक सार्वभौम राज्य आन्तरिक श्रमजीवी वर्ग एक सार्वभौम चर्च और बाह्य श्रमजीवी वर्ग बर्बर युद्ध दलों की सृष्टि करता है।

१८ समाज-निकाय में विच्छेद

(१) प्रभविष्णु अल्पमत

यद्यपि प्रभविष्णु अल्पमतों के स्वाभाविक प्रकारों में सैनिकवादी एवं उत्पीडक प्रमुख स्थान रखते हैं, परन्तु उनमें उदात्त प्रकार के लोग भी होते हैं विधिवेत्ता तथा प्रशासकगण जो सार्वभौम राज्यों का बनाये रखते हैं तथा दार्शनिक जिज्ञासु जो ह्रासमान समाजों को अपने विशिष्ट तत्त्वज्ञानों का उपहार देते हैं। सुकरात से प्लाटिनस तक हेलेनी दार्शनिकों की जो लम्बी शृंखला है वह इसी कोटि की है। *विविध दूसरी सभ्यताओं से भी उदाहरण दिये गये हैं।*

(२) आन्तरिक श्रमजीवी वर्ग

हेलेनी समाज के इतिहास से प्रकट होता है कि उसके आन्तरिक श्रमजीवी वर्ग में तीन स्रोतों से आदमी भरती किये गये थे हेलेनी राज्यों के राजनीतिक एवं आर्थिक उथल पुथल से नष्ट एवं रिक्थहीन नागरिक पराजित लोग दास-व्यवसाय के शिकार। ये सभी श्रमजीवी इस अर्थ में हैं कि वे अपने को समाज के 'अन्दर' तो समझते हैं किन्तु समाज 'का' नहीं समझते। उनकी पहिली प्रतिक्रिया बडी उग्र होती है किन्तु बाद में उसका स्थान मृदुल प्रतिक्रियाएं ले लेती हैं जिनका अन्त खीष्टमत-जैसे महत्तर धर्मों के आविष्कार में होता है। मिथवाद और हेलेनी जगत् के उसके अन्य प्रतियोगी धर्मों की भाति, खीष्टमत भी हेलेनी शस्त्रों द्वारा पराजित अन्य सभ्य समाजों में से एक के अन्दर अंकुरित हुआ। यहा अन्य समाजों के आन्तरिक श्रमजीवी वर्गों का परीक्षण किया गया है और उनकी समान दृश्य-घटनाओं का पर्यवेक्षण करके हम इस नतीजे पर पहुचते हैं कि बबिलोनियाई समाज के आन्तरिक श्रमजीवी वर्ग में जूडाई धर्म एवं जरथुस्त्री मत का अंकुरण ठीक उसी प्रकार से हुआ था जैसे हेलेनी समाज में खीष्टमत एवं मिथवाद का हुआ था यद्यपि कुछ उल्लिखित कारणों से उनके उत्तर *कालिक विकास में भिन्नता आ गयी थी। आदिमकालिक बौद्ध दर्शन का जब महायान* में रूपान्तरण हो गया तो सिनाई आन्तरिक श्रमजीवीवर्ग को एक 'महत्तर धर्म' का उपलब्धि हो गयी।

(३) पाश्चात्य जगत का आतरिक श्रमजीवीवग

यहा एक आतरिक श्रमजीवीवग के अस्तित्व के अत्यधिक प्रमाण उपस्थित किये जा सकते है जिनम और बातो के अलावा, एक ऐसा बुद्धिजीवीवग भी है जो प्रभविष्णु अल्पमत के एजट के रूप म श्रमजीविया म से ही भरती किया गया है। यहा बुद्धिजीवी वग की विशिष्टताओ पर विचार किया गया है। आधुनिक पाश्चात्य समाज के आतरिक श्रमजीवीवग ने नवीन महत्तर धर्मों की सृष्टि म अपने को बहुत ही अनुपजाऊ सिद्ध किया है और लेखक ने सुझाया है कि इसका कारण ख्रीष्टीय चच की बराबर चलती जा रही वह जीवनशक्ति है जिससे पाश्चात्य ईसाई धमजगत् की उत्पत्ति हुई थी।

(४) बाह्य श्रमजीवीवग

जबतक कोई सभ्यता विकसित होती रहती है तबतक उसके सास्कृतिक प्रभाव का विकिरण अनिश्चित दूरी तक आदिमकालीन पडोसियो के अदर प्रवेश करके उन्हे आच्छादित कर लेता है। वे उस असजनात्मक बहुमत के अग बन जाते हैं जो सजनशील अल्पमत के नतत्व का अनुसरण करता है। किन्तु जब सभ्यता विघटित हो जाती है तब उसका जादू बेकार हो जाता है बबर शत्रु हो जाते हैं और एक सनिक सीमान्त स्वय अपने को स्थापित कर लेता है। शुरू म यह सीमान्त दूर धकेला जाता रहता है किन्तु अन्ततोगत्वा वह कही स्थिर हो जाता है। जब यह स्थिति आती है तब काल बबरो के पक्ष मे सक्रिय होता है। ये तथ्य हेलेनी इतिहास से उदाहरणाथ दिये गये हैं और बाह्य श्रमजीवीवग द्वारा मिले तीक्ष्ण एव मृदुल उत्तरो की ओर सकेत किया गया है। विरोधी सभ्यता का दबाव बाह्य श्रमजीवीवग के आदिमकालीन उत्पादक धर्मों को ऐसे धर्मों मे रूपान्तरित कर देता है जो ओलिम्पियाई देवी युद्धदल (ओलिम्पियन डिवाइन वार बड) जसे होते हैं। इस विजयी बाह्य श्रमजीवीवग का विशिष्ट उत्पादन महाकाव्य (एपिक पोएटी) है।

(५) पाश्चात्य जगत के बाह्य श्रमजीवीवग

उनके इतिहास का सिंहावलोकन किया गया है और बाह्य श्रमजीवीवग के उग्र एव मृदुल उत्तरो के उदाहरण दिये गये है। आधुनिक पाश्चात्य समाज की अत्यधिक भौतिक कुशलता के कारण ऐतिहासिक प्रकार वाला बबरवाद लुप्त हो गया है। किन्तु इसके दो गढ अफगानिस्तान एव सऊदी अरबिस्तान अब भी बच गये है। यहा के देशज शासक भी अपनी रक्षा के लिए पाश्चात्य सस्कृति की बनावटी चीजो को ग्रहण कर रहे हैं। किन्तु यह सब होते हुए भी खुद पुरातन ईसाई धमजगत के पुरातन केन्द्रो म एक नवीन और अधिक नशस बबरता फल गयी है।

(६) विजातीय एव देशज प्रेरणाए

प्रभविष्णु अल्पमत एव बाह्य श्रमजीवीवग जब विजातीय प्रेरणा ग्रहण करते हैं तब अवरुद्ध हो जाते हैं। उदाहरणाथ विजातीय प्रभविष्णु अल्पमतो द्वारा स्थापित सावभौम राज्य (जसे ब्रिटिश भारत) अपने को स्वीकाय बनाने म रोमन साम्राज्य जसे देशज सावभौम राज्यो की अपेक्षा कम सफल होते है। परन्तु जसा कि हम मिस्र

के हाइक्सा लोगो तथा चीन के मगोला मे देखते है, जब बबर युद्ध दलो की बनरला किमी विजातीय सभ्यता के प्रभाव मे रजित हो जाती है तो उनके द्वारा कही अधिक दुदम एव आवशाकुल विराध सामने आता ह । इसके विपरीन आन्तरिक श्रमजीवीवग जिन महत्तर धर्मो को जम देते हैं उनके आवषण का कारण विजातीय प्ररणा होनी है । प्राय सभी महत्तर धम इस तथ्य को प्रकट करते है ।

यह एक तथ्य है कि किसी महत्तर धम का इतिहास तबतक समझ म नही आ सकता जबतक कि दो सभ्यताओ पर एक साथ विचार न किया जाय—वह सभ्यता जिससे उसने अपनी प्ररणा प्राप्त की है तथा वह सभ्यता जिसम उसने अपनी जड जमा दी है । इस तथ्य से यह भी प्रकट होता है कि जिस मान्यता या परिकल्पना पर अभी तक यह अध्ययन आश्रित रहा है—यह मान्यता कि सभ्यताए एकाकी रूप मे अध्ययन का सुबोध क्षेत्र प्रस्तुत करती है—वह इस बिन्दु पर पहुचकर भग होने लगती है ।

१९ आत्मिक विच्छेद

(१) आचरण, भावना एव जीवन की वकल्पिक विधिया

जब कोई समाज विघटित होने लगता है तब विकास काल म जो आचरण भावना एव जीवन व्यक्तिया का वशिष्ट्य प्रकट करत थे उनका स्थान दूसरे दो वकल्पिक प्रतिस्थानीय (अल्टरनेटिव सब्स्टिट्यूटस) ले लेते है—एक (प्रत्येक जोडे का प्रथम) निष्क्रिय, और दूसरा (बाद वाला) सक्रिय ।

मरतमौलापन (abandon) एव आत्म नियत्रण सजनात्मकता के वकल्पिक प्रतिस्थानीय हैं, अनुकरणशीलता की शिष्यता के लिए क्रम पलायन एव शहादत की आवश्यकता होती है ।

विचलन की वत्ति एव पाप वत्ति उस जीवनस्फूर्ति (elan) के वकल्पिक प्रतिस्थानीय हैं जो विकास के साथ चलती है सकीर्णता की भावना एव ऐक्य की भावना उस रीति भावना (सेंस आफ स्टाइल) क वकल्पिक प्रतिस्थानीय हैं जो विकास क्रिया के साथ चलन वाले असहशीकरण या विभेदीकरण (डिफरेंशियशन) के वस्तुनिष्ठ प्रक्रम का आत्मनिष्ठ प्रतिरूप सब्जेक्टिव काउण्टरपाट आफ दि आब्जेक्टिव प्रोसेस) है ।

जिस प्रक्रम (प्रासस) का पहिले अलौकिकीकरण वा वायवीकरण (ईथेरियलाइजेशन) के नाम मे वणन किया जा चुका है उसके अन्दर अखिल ब्रह्माण्ड वा विराट (Macrocosm) म से मानव वा सूक्ष्म (Microcosm) की ओर क्रमश के हस्तान्तरण की जो गति है उसम जीवन क स्तर पर वकल्पिक विभेद की दो जोडियाँ होती हैं । विकल्पो की पहिली जोडी—पुरावाद एव भविष्यवाद या आर्केइज्म और फ्यूचरिज्म—इस हस्तान्तरण का चरिताथ करने म असमथ रहती है और हिंसा का जन्म देती है । दूसरी जोडी—अनासक्ति एव रूपान्तरण अथवा डिटचमेण्ट एव ट्रासफीगरेशन—हस्तान्तरण करने म असफल होता है और उसकी

(३) पाश्चात्य जगत का आतरिक श्रमजीवीवग

यहा एक आतरिक श्रमजीवीवग के अस्तित्व के अत्यधिक प्रमाण उपस्थित किये जा सकते है जिनम और बातो के अलावा, एक ऐसा बुद्धिजीवीवग भी है जो प्रभविष्णु अल्पमत के एजेंट के रूप म श्रमजीवियो म से ही भरती किया गया है। यहा बुद्धिजीवी वग की विशिष्टताओ पर विचार किया गया है। आधुनिक पाश्चात्य समाज के आतरिक श्रमजीवीवग ने नवीन महत्तर धर्मों की सृष्टि म अपने को बहुत ही अनुपजाऊ सिद्ध किया है और लेखक ने सुझाया है कि इसका कारण क्रीष्टीय चच की बराबर चलती जा रही वह जीवनशक्ति है जिसमे पाश्चात्य ईसाई धमजगत् की उत्पत्ति हुई थी।

(४) बाह्य श्रमजीवीवग

जबतक कोई सभ्यता विकसित होती रहती है तबतक उसके सास्कृतिक प्रभाव का विकिरण अनिश्चित दूरी तक आदिमकालीन पडोसियो के अन्दर प्रवेश करके उन्ह आच्छादित कर लेता है। वे उस असजनात्मक बहुमत के अग बन जाते हैं जो सजनशील अल्पमत के नतत्व का अनुसरण करता है। किन्तु जब सभ्यता विघटित हो जाती है तब उसका जादू बेकार हो जाता है बबर शत्रु हो जाते है और एक सनिक सीमान्त स्वय अपने को स्थापित कर लेता है। शुरू म यह सीमान्त दूर धकेला जाता रहता है किन्तु अन्ततोगत्वा वह कही स्थिर हो जाता है। जब यह स्थिति आती है तब काल बबरो के पक्ष म सक्रिय होता है। ये तथ्य हेलेनी इतिहास से उदाहरणाथ दिये गये है और बाह्य श्रमजीवीवग द्वारा मिल तीक्ष्ण एव मृदुल उत्तरो की ओर सकेत किया गया है। विरोधी सभ्यता का दबाव बाह्य श्रमजीवीवग के आदिमकालीन उत्पादक धर्मों को ऐसे धर्मों मे रूपान्तरित कर देता है जो ओलिम्पियाई दवी युद्धदल (ओलिम्पियन डिवाइन वार बड) जसे होते हैं। इस विजयी बाह्य श्रमजीवीवग का विशिष्ट उत्पादन महाकाव्य (एपिक पोएट्री) है।

(५) पाश्चात्य जगत के बाह्य श्रमजीवीवग

उनके इतिहास का सिंहावलोकन किया गया है और बाह्य श्रमजीवीवग के उग्र एव मृदुल उत्तरो के उदाहरण दिये गये हैं। आधुनिक पाश्चात्य समाज की अत्यधिक भौतिक कुशलता के कारण ऐतिहासिक प्रकार वाला बबरवाद लुप्त हो गया है। किन्तु इसके दो गढ अफगानिस्तान एव सऊदी अरबिस्तान अब भी बच गये हैं। यहा के देशज शासक भी अपनी रक्षा के लिए पाश्चात्य सस्कृति की बनावटी चीजो को ग्रहण कर रहे हैं। किन्तु यह सब होते हुए भी खुद पुरातन ईसाई धमजगत के पुरातन केन्द्रो म एक नवीन और अधिक नगन बबरता फैल गयी है।

(६) विजातीय एव देशज प्रेरणाए

प्रभविष्णु अल्पमत एव बाह्य श्रमजीवीवग जब विजातीय प्रेरणा ग्रहण करते हैं तब अवरुद्ध हो जाते हैं। उदाहरणाथ विजातीय प्रभविष्णु अल्पमतो द्वारा स्थापित सावभौम राज्य (जसे ब्रिटिश भारत) अपने को स्वीकाय बनाने म रोमन साम्राज्य जसे देशज सावभौम राज्यो की अपेक्षा कम सफल होते है। परन्तु जसा कि हम मिस्र

प्रकृति मे मादव होता है। पुरावाद घडी की सुई पीछे की ओर घुमाने का प्रयत्न है, भविष्यवाद धरित्री पर एक असम्भव स्वर्ण युग को जल्दी ले आने का चेष्टा है। अना सक्ति, जो इस पुरावाद का अध्यात्मीकरण है आत्मा के किले म प्रत्यावर्त्तन है 'ससार का परित्याग है। रूपान्तरण जो भविष्यवाद का अध्यात्मीकरण है, आत्मा की ऐसी क्रिया है जो महत्तर धर्मों को जन्म देती है। इन चारो जीवन प्रणालियो तथा उनके पारस्परिक सम्बन्धो के उदाहरण दिये गये हैं। अन्त म यह दिखाया गया है कि इनम से भावना एव जीवन के कुछ प्रकार प्रभविष्णु अल्पमता के और दूसरे श्रमजीवीवर्गों की आत्माओ के वर्णिभ्य को प्रकट करते हैं।

(२) 'मस्तमौलापन' एव आत्म नियन्त्रण की परिभाषाएं उदाहरण सहित दी गयी हैं।

(३) कमपलायन एव शहादत की परिभाषाएँ उदाहरण सहित दी गयी हैं।

(४) विचलन वृत्ति एव पाप वृत्ति

विचलन की वृत्ति इस भावना से उत्पन्न होता है कि समस्त ससार सयोग (चास) या आवश्यकता (नेसेसिटी) से शासित है। यहा यह दिखाया गया है कि सयोग एव आवश्यकता एक ही चीज है। निष्ठा के बहुसख्यक भेद प्रदर्शित हैं। कालिवन मत जैसे कतिपय नियतिवादी धर्मों ने उल्लेखनीय ऊर्जा एव विश्वास का उत्पादन किया। पहिली नजर मे विचित्र से दीखने वाले इस तथ्य पर विचार किया गया है।

जहाँ विचलन-वृत्ति सामान्यत मूर्च्छनाकारी का काम करती है पाप वृत्ति प्रेरणा या प्रोत्तजना देती है। कम एव मूल पाप (ओरिजिनल सिन) के सिद्धान्त (जिनमे पाप की धारणा एव नियतिवाद दोना का समावेश है) पर विचार किया गया है। पाप का राष्ट्रीय दुर्भाग्य के सच्चे यद्यपि अस्पष्ट कारण के रूप मे मान्यता देकर हिब्रू नबियो न इसका एक महत् उदाहरण उपस्थित किया है। इन नबियो की शिक्षा को खीष्टीय चर्च ने भी ग्रहण कर लिया। इस प्रकार हेलेनी जगत् मे उसका प्रवेश हुआ जो कई शतियो से बिना जाने ही उसे प्राप्त करने के लिए अपने को तयार कर रहा था। यद्यपि पाश्चात्य समाज ने भी खीष्टीय परम्परा विरासत मे पायी है किन्तु ऐसा जान पडता है कि उसने पाप की भावना का, जो परम्परा का आवश्यक अग है परित्याग कर दिया है।

(५) सकीर्णता की भावना

विकास की प्रक्रिया म जो सभ्यताएँ होती है उनम अपनी श्रेष्ठता की भावना का वर्णिभ्य होता है। यह सकीर्णता की भावना उसी का निष्क्रिय प्रतिस्थानीय (सब्स्टिट्यूट) है और अपने को विविध रूपो म प्रकट करती है—(क) आचरण की अभद्रता एव बर्बरता प्रभविष्णु अल्पमत श्रमजीवीकरण की ओर उन्मुख होता है वह आतरिक श्रमजीवीवर्ग की अभद्रता एव बाह्य श्रमजीवीवर्ग की बर्बरता को ग्रहण करता है—यहाँ तक कि विघटन की अन्तिम अवस्था म जीवन शैली दोनो प्रकार के श्रमजीवीवर्गों की जीवन शैलिया से अभिन्न हो जाती है। (ख) कला मे अभद्रता एव बर्बरता वह मूल्य है जो किसी विघटित होती हुई सभ्यता की कला के

असामान्य रूप से विशद प्रसार के लिए देना पडता है। (ग) राष्ट्रभाषा अनेक जातियो के समागम से भ्रान्ति एव भाषाओं की प्रतियोगिता का जन्म होना है। तव कुछ भाषाए 'राष्ट्रभाषा' के रूप फलती है और उनके विस्तार मे, सदा, उतना ही अपकर्ष भी होता है। इस प्रदर्शित कम्न के लिए अनेक उदाहरणो की परीक्षा की गयी है। (घ) धर्म मे सहतिवाद (Syncretism)—इसमे तीन प्रकार की गतिया पहिचानी जाती है भिन्न दार्शनिक विचारधाराओ का विलयन, विभिन्न धर्मों का मिश्रण अर्थात् पडोसी सम्प्रदायो को मिलाकर इसराइल के धर्म को मद कर देना—जिसका हिब्रू नवियों ने विरोध किया और यह विरोध अत मे सफल भी हुआ दार्शनिक विचार धाराओ एव धर्मो का एक दूसरे मे मिश्रण या सहतिवाद। चूकि दर्शन प्रभविष्णु अल्पमत की तथा 'महत्तर धर्म' आतरिक श्रमजीवीवर्ग की उपज होते है इसलिए उनकी भी एक दूसरे पर जो प्रतिक्रिया होती है वह प्राय वैसी ही होती है जैसी कि ऊपर (क) मे बतायी गयी है। यहाँ भी और वहाँ भी श्रमजीवीवर्ग कुछ दूर तक प्रभविष्णु अल्पमत की दिशा मे अग्रसर होते हैं किन्तु प्रभविष्णु अल्पमत उसकी अपेक्षा कही अधिक दूरी आन्तरिक श्रमजीवीवर्ग की स्थिति की दिशा मे तय कर लेता है। उदाहरणार्थ, ईसाई मत अपनी धर्म व्याख्या के लिए हेलेनी दर्शन के उपकरण का उपयोग करता है किन्तु प्लेटो एव जूलियन के युगो के बीच यूनानी दर्शन का जो रूपान्तरण हुआ उसकी तुलना मे यह सुविधा बडी छोटी मालूम पडती है। (च) क्या शासक धर्म का निश्चय करता है? (Cuius Regio Eius Religio?) यह प्रकरण एक विषयातर है जो पिछले प्रकरण के अत मे दार्शनिक-सम्राट जूलियन के मामले को लेकर उठा है। क्या प्रभविष्णु अल्पमत अपनी रुचि का धर्म या दर्शन लागू करने की राजनीतिक शक्ति का उपयोग करके अपनी आध्यात्मिक दुर्बलता की पूर्ति कर सकता है? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि कतिपय अपवादो को छोड वे अपने प्रयत्न मे असफल ही रहेगे और जो धर्म हिंसाबल की सहायता लेगा वह इस विधि से अपने को ही बुरी तरह क्षतिग्रस्त कर लेगा। एक बाह्य आश्चर्यजनक अपवाद इस्लाम का विस्तार है। यहा इसकी परीक्षा की गयी है और यह सिद्ध किया गया है कि पहिली नजर मे वह जैसा अपवाद मालूम पडता है वैसा वस्तुत है नहीं। इसके विपरीत प्रजा का धर्म ही राजा का धर्म है (Religio regionis religio regis) वाला सूत्र सत्य के अधिक निकट है जो शासक अपनी उदासीन वृत्ति या विश्वास के कारण अपनी प्रजा का धर्म अंगीकार करता है वह इस कार्य के कारण समृद्ध होता है।

(६) ऐक्य की भावना

यह सकीर्णता की निष्क्रिय भावना की सक्रिय प्रतिस्थापना (एँटीथामिस) है। भौतिक रूप से यह अपने को सार्वभौम राज्यो के सृजन मे व्यक्त करती है और वही भावना एक सर्वशक्तिमान विधि (कानून) का जगत मे व्याप्त और उसका नियमन करने वाले सर्वव्यापी ईश्वर की धारणाओ को प्रोत्तेजित करती है। दोनो धारणाओ का परीक्षण किया गया है और उनके दृष्टान्त दिये गये हैं। पिछले के सम्बन्ध में हिब्रुओ के ईर्ष्यालु देवता यहोवा की जीवन-यात्रा का वर्णन किया गया है और

सिनाइटिक ज्वालामुखी के 'जि न के रूप म उसके आरम्भ से लेकर एक साय ईश्वर' की पवित्र एव भव्य कल्पना के लिए ऐतिहासिक वाहन के रूप म उसके अतिम उन्नीकरण तक का उल्लेख हुआ है—ऐसे सत्य ईश्वर की कल्पना के लिए जिसकी खीष्टीय चच द्वारा पूजा उपासना होती है। यहा अपने सम्पूर्ण प्रतियोगियो पर ईश्वर की विजय का स्पष्टीकरण किया गया है।

(७) पुरावाद

यह एक विघटित होते हुए समाज के जीवन म पूववर्ती स्थिति के निर्माण द्वारा असहनीय वत्तमान स पलायन का प्रयत्न है। पुरातन एव आधुनिक उदाहरण दिये गय हैं। राष्ट्रवादी कारणो स न्यूनाधिक विलुप्त अनक भाषाओ के आधुनिक पुनरुत्थान (जिसम गाथिक पुनरुत्थान सम्मिलित है) तथा कृत्रिम पुनरुत्थान के उदाहरण। प्राचीनतावादी आदोलन सामान्यत या तो अनुवर निकल जात है या फिर अपन का विपरीत प्रकार म रूपा तरित कर लत हैं। जसे —

(८) भविष्यवाद

यह किसी अनात भविष्य के अधकार म कूदकर वत्तमान स पलायन करने का प्रयत्न है। अतीत के साथ जो परम्परागत कडिया होती हैं उनको इसम तोड दिया जाता है। यह वस्तुत एक प्रकार का क्रान्तिवाद है। कला मे यह अपने को मूर्तिभजन के रूप म व्यक्त करता है।

(९) भविष्यवाद का आत्म उत्कृष्टीकरण (सेल्फ ट्रांसेंडेंस)

जसे पुरावाद भविष्यवाद के गह्वर म पतित हो सकता है वैसे ही भविष्यवाद रूपा तरण के नवशरीरग्रहण (ट्रासफीगरेशन) की ऊचाइया तक उठ भी सकता है। दूसरे शब्दो म उस या कह सकते हैं कि वह पार्थिव स्तर पर अपना काल्पनिक स्वग पाने के न्यनीय प्रयत्न का त्याग कर सकता है और काल तथा दूरी से अबाधित हुए बिना उस आत्मा के जीवन म खोज सकता है। इस सम्बध मे बधनोत्तर (Post Captivity) यहूदियो के इतिहास की परीक्षा की गयी है। जेरुब्बेल से बार कोकावा तक धरती पर यहूदी साम्राज्य स्थापित करने के जो अनेक आत्मघाती प्रयत्न हुए उनम भविष्यवाद न अपन का व्यक्त किया। इसी प्रकार नवशरीरग्रहण या रूपान्तरण खीष्टीय धम की स्थापना म प्रकट हुआ।

(१०) अनासक्ति एव रूपान्तरण

अनासक्ति एक वृत्ति है जो बुद्ध की शिक्षाओ के प्रतिपादन का दावा करने वाले तत्त्वनान म अपनी अन्त्य एव भव्य अभिव्यक्ति प्राप्त करती है। इसका तार्किक निष्पष है। आत्मघात किन्तु सच्ची अनासक्ति केवल किसी देवता के प्रति ही सम्भव हो सकती है। इसके विपरीत खीष्टीय धम एक ऐसे ईश्वर की घोषणा करता है जिसने स्वेच्छा स उस अनासक्ति का त्याग कर दिया है जिसका उपभोग करना स्पष्टत उसकी क्षमता के अन्तगत था। 'ईश्वर जगत् का ऐसा प्यार करता था ।

(११) नवजीवन

जीवन की जिन चार प्रणालियो की परीक्षा यहा की गयी है उनम स केवल

रूपान्तर या नवशरीरग्रहण ही हमारे सामने एक राजपथ उपस्थित करता है और वह विराट से जीव या मानव के प्रति अपने कर्मक्षेत्र के स्थानान्तरण द्वारा ऐसा करता है। अनासक्ति के लिए भी यही बात सत्य है किन्तु जहा अनासक्ति केवल एक प्रत्यावर्तन है, वहा स्थानान्तरण प्रत्यावर्तन एव प्रत्यागमन (विदड्राल ऐंड रिटर्न) दोनो है। किसी पुरानी प्रजाति के दूसरे उदाहरण के पुनर्जन्म के अर्थ में नवजीवन नही वर समाज की एक नयी प्रजाति (स्पीशी) के जन्म के अर्थ में।

२० विघटनशील समाजो एव व्यक्तियो के बीच सम्बन्ध

(१) सर्जनात्मक प्रतिभा, उद्धारक के रूप में

उदयावस्था में सर्जनशील व्यक्ति एक के बाद एक आने वाली चुनौतियो में सफल उत्तरो का नेतृत्व करते हैं। विघटनावस्था में वे विघटनशील समाज के या से उद्धारक रूप में प्रकट होते हैं।

(२) असिधारी उद्धारक

ये सार्वभौम राज्यो के संस्थापक एव रक्षक होते हैं किन्तु तलवार का सब कार्य क्षणभगुर ही सिद्ध होता है।

(३) कालयन्त्र युक्त उद्धारक

इनमे पुरावादी एव भविष्यवादी आते है। ये भी तलवार ग्रहण करते हैं और तलवारिये की नियति भोगते हैं।

(४) सम्राट के रूप में प्रच्छन्न दार्शनिक

यह प्लेटो का प्रसिद्ध समाधान है। तत्त्वज्ञानी में अनासक्ति होती है जब कि राजनीतिक अधिनायकों में बलात दबाकर काम कराने का तरीका चलता है। इन दोनो में जो विपरीतता है उसी के कारण यह समाधान निष्फल हो जाता है।

(५) मानव में ईश्वर का अवतरण

ईश्वरावतरण की अपूर्ण आसन्नताए (एप्राक्सिमेशन्स) मार्ग में चलते हुए गिर पडती हैं, केवल नजरथ का जीसस ही मृत्यु पर विजय प्राप्त करता है।

२१ विघटन की लय

विघटन सदा एक ही ढग पर नही होता वर पराभव एव-समाहरण (रूट ऐंड रैली) के एकान्तरण द्वारा होता है। उदाहरणार्थ सार्वभौम राज्य का स्थापन सकट काल के पराभव के बाद का समाहरण है जबकि सार्वभौम राज्य का विघटन अन्तिम पराभव है। सामान्यत सकट-काल के मध्य एक ही समाहरण होता है और उसका अनुसरण एक पराभव द्वारा होता है इसलिए सामान्य लय पराभव-समाहरण-पराभव समाहरण-पराभव-समाहरण-पराभव की हानी है अर्थात साढे तीन स्वराघात की। कतिपय लुप्त समाजो के इतिहासो में इस साचे के उदाहरण दिये गये हैं और फिर उनको हमारे अपने पाश्चात्य ईसाई धर्म जगत के इतिहास पर भी लागू किया गया है—यह पता लगाने के लिए कि हमारा समाज अपने विकास की किस अवस्था में है।

२२ विघटन के द्वारा मानकीकरण

जैसे विशिष्टीकरण, विभेदीकरण विकास का लक्षण है वैसे ही मानकीक विघटन का चिह्न है। यह अध्याय कल्प उन समस्याओं के उल्लेख के साथ सम होता है जिनका परीक्षण पुस्तक के आगामी भागों के लिए स्थगित कर दिया गया

[६]

सावभौम राज्य

२३ साध्य या साधन ?

अभी तक हम अध्ययन म जो काम हुआ है उसका सार सक्षेप दिया गया तथा इस बात के कारण भी बतलाये गये हैं कि सावभौम राज्य सावभौम चच बबर युद्धदल के लिए अलग-अलग पुस्तक-खण्डों म परीक्षण की आवश्यकता क्यो क्या सावभौम राज्यो को केवल सभ्यताओं की अन्तिम स्थितियो के रूप म ग्रहण कि जायगा या उन्हें आगे के विकास का प्राक्कथन समझा जायगा ?

२४ अमरता की मृग-मरीचिका

अधिकाश मामलों म सावभौम राज्यो के नागरिक न केवल उनकी स्था का स्वागत करते हैं बल्कि उनको अमर भी मानते हैं और जब सावभौम र स्पष्टत विघटन के कगार पर खडा होता है तब तो अपने इस विश्वास को उ रखते ही है बल्कि तब भी उसे बनाये रखते हैं जब वह लुप्त हो चुका होता है। इ परिणाम यह होता है कि वह सस्था अपने पूर्व अस्तित्व के प्रेत के रूप म पुन स आ जाती है—जैसे यूनानी रोमी जगत का रोमन साम्राज्य पाश्चात्य ईसाई धमज के सम्बद्ध समाज म पवित्र रोमन साम्राज्य के रूप म दिखायी पडा था। इ स्पष्टीकरण इस तथ्य म मिलता है कि सावभौम राज्य सकट-काल के बाद समाह का दृश्य उपस्थित करता है।

२५ परोपकाराय सता विभूतय

अन्त म सावभौम राज्य का सस्थाएं अपने अस्तित्व की रक्षा करने म अस हो जाती हैं किन्तु उसी के साथ वे दूसरी सस्थाओं, विशेषत आन्तरिक श्रमजीव के महत्तर धर्मों, के प्रयोजन की पूर्ति करती हैं।

(१) सावभौम राज्य की सवाहकता

सावभौम राज्य व्यवस्था एव एकरूपता थोपकर हमारे सामने उच्च व का सवाहकता का साधन उपस्थित करता है। यह सवाहकता न केवल पूववर्ती प्राम्पराओं के बीच भौगोलिक रूप म बल्कि समाज के विभिन्न वर्गों के सामाजिक दृष्टि से भी कामशील दिखायी पडती है।

कुछ ऐसी भाषाए मिलती हैं जैसे अरमाई एव ...रित, जिनका प्रसार काल एव दूरी की सीमा लाघकर उन साम्राज्यो के बाहर चला गया था जिनमे मूलत व प्रचलित थीं।

विधि (कानून)—अपनी प्रजाओ पर अपनी प्रणाली लागू करने की सीमा के बारे म सार्वभौम राज्यो के शासको म एक दूसरे से बड़ा भिन्नता दिखायी पड़ती है। सार्वभौम राज्य की विधि प्रणाली का उपयोग ऐसे समुदायो ने भी किया है जिनके लिए वे बनायी नहीं गयी थी—उदाहरणार्थ मुसलमानो एव ख्रीष्टीय चर्च द्वारा रोमी विधि (रोमन ला) का प्रयोग अथवा मूसाई कानून के निर्माताओ द्वारा हम्मूरबी की सहिता का उपयोग।

पचाग, वजन एव माप, मुद्रा—पचाग निर्माण की समस्याए तथा धर्म के साथ पचागो का गहरा सम्बन्ध। काल मापन की हमारी प्रणाली अभी तक अशात सीमा और अशात सुमरी है। फरासीसी राजक्रान्ति तक उसमे शान्ति लाने म असफल रही। वजन एव माप दाशमिक एव द्वादशिक प्रणालियो का सघर्ष। मुद्रा इसका महत्त्व एव यूनानी नगरो म जन्म इन नगरो से होते हुए लीडियाई एव एकेमीनियाई साम्राज्यो मे प्रसार। मिनाई जगत् म कागदी मुद्रा।

स्थायी सेनाए—ख्रीष्टीय चर्च के लिए रोमी सेना प्रेरणा के स्रोत के रूप म।

नागरिक सेनाए—आगस्टस पीटर महान तथा भारत के ब्रिटिश राज्य की नीतियो की तुलना करते हुए सिविल सर्विस की समस्याओ का निदर्शन। मिनाई एव ब्रिटिश भारतीय सेवाओ मे सिविल सर्विस की आचार-नीति। पाश्चात्य ईसाई धर्मक्षेत्र के सस्थापक तीन महान पादरियो का रोमी सिविल सर्विस म प्रशिक्षण।

नागरिकता—नागरिकता की सीमा-वृद्धि सार्वभौम राज्यो के शासको द्वारा प्रदत्त एक सुविधा। इसके कारण ऐसी समस्थिति के उत्पादन म सहायता मिलती है जिसमे महत्तर धर्म फूलते फलते हैं।

[७]

सार्वभौम चर्च

२६ सार्वभौम चर्चो एव सभ्यताओ के बीच के सम्बन्धो की वैकल्पिक धारणाए

(१) कैसर के रूप मे चर्च

चूकि चर्च सार्वभौम राज्यो के ह्रासमान समाज निकायो मे से उदित होते हैं, स्वभावत उन्हें कैसर समझा जाता है। उनके अस्थायी विरोधी तथा आधुनिक विचारधारा विशेष के इतिहासकार दोनो ही, उन्हे ऐसा समझते है। कारण देकर दिखाया गया है कि उनके विचार गलत हैं। धर्म अपने अनुयायियो मे सामाजिक कर्तव्य भावना को नष्ट नहीं करते, उलटे गतिमान करते हैं।

(२) चच कोशकीट के रूप मे

आज तीसरी पीढी की जितनी भी सम्यताए जीवित है उनमे से प्रत्यक की पाश्वभूमि म एक चच है। और इसी चच के द्वारा वह सम्यता दूसरी पीढी की किसी न किसी सम्यता से सम्बद्ध है। आधुनिक पाश्चात्य सम्यता पर खीष्टीय चच का जो ऋण है उसका यहा विश्लेषण किया गया है। इस सिद्धान्त के विपरीत, दूसरी पीढी की सम्यताए अपनी पूववर्तिनी सम्यताओ से दूसरे ही सूत्रा द्वारा सम्बद्ध हुई थी और इस तथ्य के कारण हमे इतिहास की धारा के विषय म अभी तक स्वीकृत योजना क सुधार की प्रेरणा मिलती है।

(३) चच, समाज की महत्तर प्रजाति क रूप मे

(क) एक नूतन वर्गीकरण

यहा सम्यताओ क उत्थान पतन की तुलना ऐसे चत्र के आवत्तन से की गयी है जिसका उद्देश्य धम क रथ को आग बढाना है। अब्राहम मूसा हिब्रू नबियो तथा ईसा के नामो म धार्मिक प्रगति के जिन पगो का परिचय मिलता है उन्ह क्रमश सुमेरी मिस्री, बबिलोनियाई तथा हेलेनी समाजो के विघटन की उपज क रूप म उपस्थित किया गया है। क्या विश्व म जो ऐक्य आने वाला है वह आगे और प्रगति की सम्भावना को चित्रित करता है ? यदि ऐसा है तो इस समय जो महत्तर धम वत्तमान हैं उन्ह कठोर पाठ पढना बाकी है।

(ख) चर्चों के अतीत का महत्त्व

यह स्वीकार किया गया है कि अभी तक चर्चों के काय का जो अभिलेख है वह भविष्य म उनको सौंपे गये काय क लिए उन्हे अयोग्य प्रमाणित करता है।

(ग) हृदय एव मस्तिष्क के बीच सघष

धम पर आधुनिक विज्ञान का जो सघात पडा है वह अपन ढग का पहिला ही सघष नही है। प्रारम्भिक खीष्टीय चच एव हलनी दशन क बीच जो सघष था उसका अन्त एक ऐसे समझौते म जाकर हुआ जिसम यूनानी दार्शनिको न खीष्टीय रेवेलेशन (इलहाम) के सत्य को इस शत पर स्वीकार कर लिया कि वह इलहाम दार्शनिको की भाषा के वस्त्र विन्यास म सज्जित हो। ये जीण हेलनी वस्त्र अब बहुत दिनो स उलझन का कारण बन हुए हैं और उनके कारण खीष्टीय चच को ऐसे अनेक धर्मेतर नष्ट वत यो म लिप्त होना पडा है जिनक साथ खीष्टीय धम का कोई सम्बन्ध नही था। बौद्धिक ज्ञान क जिन प्रान्तो पर विज्ञान का अधिकार स्थापित होता जाता है उन्ह धम को विज्ञान क हाथो सौंप ही देना चाहिए। धम एव विज्ञान सत्य के विभिन्न रूपो से सम्बन्धित है और अवचेतन मानस वाला आधुनिक मनोविज्ञान दोनो के बीच क अन्तर पर गहरा प्रकाश डालता है।

(घ) चर्चों के भविष्य की सम्भावनाएँ

चर्चों का विशिष्ट लक्षण यह है कि वे सब एक सत्य ईश्वर को अपना अग मानते हैं। यह चीज उन्ह समाज के अन्य प्रकारो स अलग करती है। यहाँ इस विभेद क परिणामो पर प्रकाश डाला गया है।

२७ चर्चों के जीवन म सभ्यताओं की भूमिका

(१) सभ्यताए पूवरग रूप मे

हेलनी सभ्यता ने खीष्टीय चच को जो पारिभाषिक शब्द ग्रहण किये और रूपान्तरण करके नवीन रूपो म उनका उपयोग किया वह यामाथारण का एक उदाहरण प्रस्तुत करता है और इसम यह सकेत प्राप्त होता है कि हेलनी सभ्यता ने खीष्टीय धम के पूवरग रूप म भी अपनी भूमिका का अभिनय किया था।

(२) सभ्यताए परावत्तन के रूप मे

बाद म य पारिभाषिक शब्द जब उस पाश्चात्य समाज द्वारा लौकिक प्रयोग के लिए ग्रहण कर लिय गय जिसने खीष्टीय चच से नि सृत होकर भी उसस अपना पल्ला छुडा लिया था तो फिर व अपनी कान्ति म गिर गय।

२८ धरित्री पर युयुत्सा की चुनौती

सम्बद्ध सभ्यताओ का चच स जो विच्छेद हुआ उसका कारण चच द्वारा उठाय गये गलत पग हैं और य पग भी धरित्री पर युयुत्सा के प्रयोजनाथ एक पौरोहित्यिक सस्था म धम की प्ररणा को मूत करन के अनिवाय परिणाम हैं। तीन प्रकार के गलत पगो का उल्लख किया गया है (१) लौकिक या धम निरपक्ष अधिकारियो के समुचित कर्त्तव्याचरण म हस्तक्षप करके राजनीतिक साम्राज्यवाद उनके प्रति अपमानजनक व्यवहार करता है, (२) आर्थिक मत या का सम्पादन करते हुए जो आर्थिक सफलता प्राप्त होती है वह प्रभु न कि मनुष्य की ओर प्रभावित होती है (३) चच द्वारा अपने ही साधिक रूप का प्रतिमाकरण एव पूजन।

क्या धम यात्रा के अत म किसी स्वण युग के आगमन का आश्वासन दे सकता है ? सम्भवत किसी दूसरी दुनिया म किन्तु इस दुनिया म नहीं। मूल पाप एक अलघ्य अवरोध उपस्थित करता है। यह जगत ईश्वर के राज्य का एक प्रान्त है किन्तु यह एक विद्रोही प्रान्त है और वस्तुओ की प्रकृति को देखते हुए जान पडता है *कि यह सदा ऐसा ही रहेगा।*

[८]

वीर युग

२९ दु खान्तिका (ट्रेजेडी) की धारा

(१) एक सामाजिक बाध

वीर युग एक विघटित होती सभ्यता के सावभौम राज्य एव सीमापार के बबरो के बीच मोर्चे (लाइन) या सनिक सीमान्त के स्थायीकरण का सामाजिक

एव मनावनानिक परिणाम है। इसकी उपमा घाटी क पार क ऐसे बाध से दी जा सकती है जिसम ऊपर एक सरोवर का निमाण हुआ है। इस उपमा के फलितार्थो का इस एव अगन प्रकरणा म समभाया गया है।

(२) दबाव का सघनीकरण

ज्या ज्या सीमा पार क बबर सभ्यता की सनिक कलाआ म निपुण हाल जात हैं त्या त्यो मोर्चे वा बाध पर दबाव बन्ता जाता है। यहा तक कि सभ्यता के अभिभावको का विवश हाकर स्वय बबरो की सहायता लनी पडती है और उन्ह अपनी सवा म नियुक्त करना पडता है। यही भतिभागी अपने मालिका के विरुद्ध उठ खडे होते है और साम्राज्य के हृदय पर आघात करते हैं।

(३) जल प्रलय एव उसके परिणाम

विजयशाला बबर अपनी सफलता क कारण ही अनिवायत ध्वस्त हा जात है क्योकि व अपने ही द्वारा पदा किय हुए सकट का सामना करन म बिलकुल अक्षम होते हैं। इतना सब होते हुए भी वे अपनी यन्त्रणा मे वीरोपाख्याना को जन्म देते हैं व आचरण क उन आदर्शों की रचना करते हैं जा होमरी लज्जा एव आक्रोश तथा उन्मायनी कृत्रिम आत्मसयम (हिब्रिस) म अभिव्यक्त होते हैं। विप्लव वा अव्यवस्था वा या वीर युग आश्चयजनक तेजी के साथ समाप्त हो जाता है उसके बाद अधकार युग का आगमन होता है जिसम विधि एव व्यवस्था की वृत्तिया धीरे धीरे अपना प्रभाव पुन जमा लता है। राज्यान्तरकाल समाप्त हो जाता है और एक नयी सभ्यता आरम्भ होती है।

(४) कल्पना एव तथ्य

हेसियाड वाली युगा (स्वण रजत कास्य एव लौह युगो) की विचित्र योजना म हम देखत है कि कास्य एव लौह युगा के बीच वीरो का एक युग सन्निविष्ट कर दिया जाता है। वीरा का युग वस्तुत कास्य युग ही है जिसका एतिहासिक तथ्य क रूप म नही वरन् हामरी कल्पना क रूप म पुन वणन किया गया है। विनयशील बबरता द्वारा प्रसूत महाकाव्य क जादू न, बाद म आन वाल अधकार युग क कवि हेसियोड का धारे म डाल से दिया। उसन 'तृतीय (षड) रीख के उन नताआ को भा धावे म डाल दिया जो गौर पशुआ (ब्लोन्ड बीस्टस) की कीर्ति का बखान करत थ। फिर भी बबरा न एक एसा बडी का काम किया जिसक द्वारा महत्तर धर्मो का उद्भव करन वाली दूसरी पीढी की सभ्यताए पहिली पीढी की सभ्यताआ स सम्बद्ध हो गयी था।

टिप्पणी 'स्त्रिया की भयानकी रेजीमेंट'

यहा इसका स्पष्टीकरण किया गया है कि किस प्रकार न केवल पौराणिक उपाख्यानों मे बल्कि वास्तविक जीवन म भी रागणी स्त्रियाँ वीर युगा की दुखान्तक घटनाआ म एसा महत्वपूर्ण भूमिका का अभिनय कर सकी थी।

[६]

दिगन्तरीय सभ्यताओं के बीच सम्पर्क

३० अध्ययन क्षेत्र का विस्तार

इसी सभ्यताएँ जिनका पर्याप्त अध्ययन उनकी उत्पत्ति, विकास एवं विभग की अवस्थाओं में एक दूसरे से अलग करके करना सम्भव होता है अपनी विघटन वाली अंतिम अवस्था में अध्ययन का बोधगम्य क्षेत्र नहीं रह जाती। तब उस अवस्था में उनके सम्पर्कों का अध्ययन करना आवश्यक हो जाता है। सम्पर्कों के इस इतिहास में कतिपय भौगोलिक क्षेत्रों—जैसे सीरिया एवं आक्सस जक्सार्तीज जलद्रोणी—का बड़ा महत्त्व रहा है और यह कोई आकस्मिक घटना नहीं है कि उन्हीं तथा उनके सन्निकटवर्ती क्षेत्रों में महत्तर धर्मों के जन्मस्थान पाये जाते हैं।

३३ समकालिक सभ्यताओं के बीच के सघातों का सर्वेक्षण

(१) परिचालन योजना

आधुनिक पश्चिम तथा अन्य सब समकालीन सभ्यताओं के बीच होने वाले सघातों के परीक्षण से हम अपना काम शुरू करना चाहते हैं। पाश्चात्य समाज के इतिहास के आधुनिक युग का आरम्भ दो घटनाओं से माना जा सकता है—पहिली घटना हमारे (खीष्टीय) सवत की पन्द्रहवीं शती की समाप्ति के कुछ पहिले हुई और दूसरी सोलहवीं शती का आरम्भ होने के बाद। पहिली थी सामुद्रिक नौका-नयन की प्रविधियों में निपुणता की प्राप्ति दूसरी थी उस मध्यकालीन पाश्चात्य खीष्टीय राष्ट्रमण्डल (क्रिश्चियन कामनवेल्थ) का विच्छेद जो पोपतन्त्र द्वारा एक दूसरे से सम्बद्ध कर दिया गया था और उसी के द्वारा एक दूसरे से गथित होकर चलाया जा रहा था। रिफार्मेशन (धर्मक्रान्ति) निश्चय ही विकास की उस लम्बी प्रक्रिया में एक स्थिति विशेष का द्योतक था जो तेरहवीं शती में ही शुरू हो गयी थी और सत्रहवीं शती के पहिले पूरी नहीं हुई। किन्तु खुद रिफार्मेशन ने कोलम्बस एवं डी गामा की समुद्र यात्राओं का दर्शन करने वाली पीढ़ी को जा पकड़ा। इसके बाद हम काल के मार्ग पथ पर जरा पीछे की ओर लौटते हैं तथा मध्यकालीन अवस्था वाले पश्चिम के उन ससर्गों का परीक्षण करते है जो उसके साथ टकराने वाले दो प्रतिस्पर्धी समाजो के साथ हुए। इसके बाद हेलेनी समाज के साथ उसके सम्पर्कों की परीक्षा करते हुए उसी अवस्था के कतिपय पूर्ववर्ती सम्पर्कों से अपना कार्य समाप्त करते हैं।

आधुनिक पश्चिम के सम्पर्कों का विचार करते समय हम पता चलता है कि यद्यपि हम इतिहास के इन अध्यायों की यौरेवार अद्यतन जानकारी है किन्तु अधिकांश बल्कि शायद सभी अभी तक असमाप्त है और हमारे समाने एक प्रश्न चिह्न छोड गये हैं।

(२) योजनानुसार परिचालन

(क) आधुनिक पाश्चात्य सभ्यता के साथ सघात

(१) आधुनिक पश्चिम एव रूस—रूसी परम्परानिष्ठ खीष्टीय धर्मजगत के

जो प्राकृतिक सम्पदा है उसके साथ ही अब तेल भाण्डार के आविष्कार से उनका महत्त्व और बढ़ गया है। इसके परिणामस्वरूप उन्होंने बीसवीं शती के विश्व के 'नाबोथी द्राक्षोद्यान' (Naboths Vineyard) का रूप धारण कर लिया है जिसमें पश्चिम एवं रूस एक दूसरे के प्रतिद्वन्द्वी रूप में खड़े हैं।

(५) आधुनिक पश्चिम और यहूदी—सजातीय प्रादेशिक राज्यों (होमोजीनस टेरीटोरियल स्टेट्स) की पाश्चात्य प्रणाली में यहूदी डायसपोरा नहीं होता। जब हम पाश्चात्य इतिहास के आधुनिक युग के आरम्भ में नहीं बल्कि स्वयं पाश्चात्य खीष्टीय समाज के आरम्भ से ऐतिहासिक सर्वेक्षण करते हैं तब उसमें तीन अवस्थाएं (फेज) दिखायी पड़ती हैं। प्रथमावस्था (अर्थात विजीगाथियों के इतिहास) में यहूदी यद्यपि जनता में अप्रिय थे और उनके साथ बुरा व्यवहार किया जाता था फिर भी वे उपयोगी पाये गये क्योंकि उस युग में पाश्चात्य ईसाई (जैसा कि आक्सफोर्ड के साहबों के लिए सेसिल राडस ने कहा था) वित्तीय मामलों में बच्चे थे। दूसरी अवस्था में पाश्चात्य ईसाई सीख पढ़कर खुद अपने यहूदी बन गये और यहूदियों को (१२९१ ई० में इंगलैंड से) निकाल दिया गया। तीसरी अवस्था में पाश्चात्य समाज इतना कुशल हो गया कि उसने यहूदियों को (१६५५ ई० में इंगलैंड में) पुनः लौट आने की सुविधा देकर और व्यवसाय में उनकी विशेषता का स्वागत किया। इसके बाद जो उदार युग शुरू हुआ दुर्भाग्यवश उसी के साथ कथा का अन्त नहीं हो सका। यह प्रकरण समस्टिज्म विरोधी विचारों एवं जायानिज्म के परीक्षणों के साथ समाप्त होता है।

(६) आधुनिक पश्चिम एवं सुदूरपूर्वीय तथा देशज अमरीकी सभ्यताएं—अपने को आधुनिक अवस्था में उपस्थित करने के पूर्व इन सभ्यताओं का पश्चिम से कोई पूर्व सम्पर्क नहीं था। (यद्यपि यह भ्रामक हो सकता है किन्तु) ऊपर से देखने पर अमरीकी सभ्यताएं पूर्णतः विलुप्त हो गयी थीं। चीन एवं जापान पर आधुनिक पश्चिम के संघात की कथाएं अद्भुत रूप से समानान्तर चलती हैं। दोनों ही मामलों में पाश्चात्य संस्कृति का उसके प्रारम्भिक अधुनातन धार्मिक रूप में स्वागत होता है फिर उसका परित्याग कर दिया जाता है। फिर बाद में उनका उत्तरकालिक अधुनातन पाश्चात्य प्रौद्योगिकी से टक्कर होता है। दोनों इतिहासों में जो अन्तर दिखायी पड़ता है उसका प्रमुख कारण यह तथ्य है कि चीन एक विशाल एवं बहुत ढंग से फैला हुआ साम्राज्य है और जापान एक सुसम्बद्ध द्वीपीय समाज है। हमारे ग्रन्थलेखन के समय दोनों ही समाजों पर प्रश्न लगा हुआ है। चीन का साम्यवाद ग्रस्त हुए हैं और जापान अमरीकी नियन्त्रण में पड़ा हुआ है। भारत की भाँति चीन के हाथ सामने जनसंख्या की समस्या मुँह बाये खड़ी है।

(७) आधुनिक पश्चिम एवं उसके समकालीनों के मध्य संघातों की प्रकृति **घनिष्ठत्व**—आधुनिक पाश्चात्य सभ्यता मध्यवर्गीय सभ्यता है। जिन पाश्चात्य समाजों ने एक मध्यवर्ग का निर्माण कर लिया था उन्होंने आधुनिक पाश्चात्य आचरण का स्वागत किया। जिस अपाश्चात्य सभ्यता में कोई देशज मध्यवर्ग नहीं था उसके सदस्य ने यदि पाश्चात्यीकरण करना चाहा तो उस अपने उद्देश्य-साधन के लिए बुद्धि

जीवी वर्ग के रूप में एक कृत्रिम मध्यमवर्ग की सृष्टि करनी पड़ी। ये बुद्धिजीवी वर्ग ही अन्त में, अपने स्वामियों के विरुद्ध उठ खड़े होते हैं।

(ख) मध्यकालीन पाश्चात्य ईसाई धर्मजगत् के साथ संघात

(१) क्रूसेड (जिहाद) का ज्वार भाटा—ग्यारहवीं शती में मध्यकालीन पाश्चात्य ईसाई धर्मजगत ने प्रसार विस्तार के युग में प्रवेश किया जो तीन वाले कतिपय सीमान्तों पर उसके पतन एव प्रत्यावर्तन का युग आया—यद्यपि अन्य सीमान्तों पर यह बात नहीं हुई। यहाँ इस विस्तार एव उसके अनुवर्ती प्रत्यागमन के कारणों का विश्लेषण किया गया है।

(२) मध्यकालीन पश्चिम एव सीरियाई जगत्—पश्चिमी (फिरंगी) लोग एव उनके मुस्लिम शत्रु दोनों में बहुत सी बातों में समानता थी। नार्मन फ्रैंक एव मनजूर तुर्क, दोनों एक समान पहिले बर्बर थे और हाल ही में समाज के महत्तर धर्म में दीक्षित किये गये थे। उन्होंने उसमें प्रवेश ही नहीं किया बल्कि उनके दोनों में उस पर प्रभुता भी स्थापित कर ली। सीरियाई सभ्यता में जो सांस्कृतिक प्रकाश विकास हुआ उसने अपेक्षाकृत कम प्रगतिशील पाश्चात्य ख्रीष्टीय समाज में प्रवेश किया और काव्य स्थापत्य दर्शन एवं विज्ञान को प्रभावित किया।

(३) मध्यकालीन पश्चिम एव यूनानी परम्परानिष्ठ ईसाई धर्मजगत—इन दोनों समाजों के मध्य उससे कहीं ज्यादा विरोध भावना थी जितनी कि इनमें से प्रत्येक की अपने मुस्लिम पड़ोसियों के प्रति थी। इस पारस्परिक कटुता का दिग्दर्शन उन उद्धरणों में होता है जो एक ओर कुस्तुनतुनिया में दौत्य के लिए भेजे गये लोम्बार्ड बिशप ल्यूतप्रंद के विवरणों से लिये गये हैं और दूसरी ओर वह जिहादियों के उस चित्र में दिखायी पड़ती है जिसे अन्ना कामनेना ने अपने इतिहास में दिया है।

(ग) प्रथम दो पीढ़ियों की सभ्यताओं के मध्य टक्करें

(१) सिकन्दरोत्तर हेलेनी सभ्यता के साथ टक्कर—इस अवस्था में पुरानी दुनिया की प्रत्येक समकालीन सभ्यता के साथ हेलेनी सभ्यता की टक्करें हुई हैं और इन टक्करों के फल-स्वरूप जो हेलेनी प्रकाश विकीर्ण हुआ उसकी मियाद का तब तक नहीं लगाया जा सका और तबतक उसमें पूर्णता नहीं आयी जब तक कि कई शताब्दियों बाद खुद हेलेनी समाज का विघटन नहीं हो गया। हेलेनी सेनाओं ने जहाँ तक के क्षेत्र पर विजय प्राप्त की थी उससे कहीं आगे दूर तक, अर्थात् सिनाई (चीनी) जगत् में भी हेलेनी संस्कृति फैल गयी थी।

हेलेनी इतिहास के प्रसार में सिकन्दर के जीवन-कार्य की तुलना पाश्चात्य ईसाई धर्म-जगत के इतिहास की सागर विजय के साथ की जा सकती है, किन्तु जब पश्चिम अपनी आधुनिक स्थिति में, अपने कोनक्रीट वाले धर्म खाष्टीय मत से अपने को मुक्त कर रहा था तब इस प्रकार का कोई कांक्रीट धर्म अपने पास न होने के कारण हेलेनी सभ्यता में धर्म के लिए भूख निरन्तर बनी जा रही थी।

(२) प्राक् सिकन्दरी हेलेनी सभ्यता के साथ टक्करें—भूमध्य जलद्रोणी (मेडीटेरेनियम बेसिन) पर अधिकार करने के लिए तीन प्रतियोगियों में संघर्ष चल

जो प्राकृतिक सम्पदा है उसके साथ ही अब तेल भाण्डार के आविष्कार से उनका महत्त्व और बढ़ गया है। इसके परिणाम स्वरूप उन्होंने बीसवीं शती में विश्व के 'नाबोथ के द्राक्षोद्यान (Naboths Vineyard) का रूप धारण कर लिया है जिसमें पश्चिम एवं रूस एक दूसरे के प्रतिद्वन्द्वी रूप में खड़े हैं।

(५) आधुनिक पश्चिम और यहूदी—सजातीय प्रादेशिक राज्यों (होमोजीनस टेरीटोरियल स्टेट्स) की पाश्चात्य प्रणाली में यहूदी डायसपोरा नहीं होता। जब हम पाश्चात्य इतिहास के आधुनिक युग के आरम्भ से नहीं बल्कि स्वयं पाश्चात्य खीष्टीय समाज के आरम्भ से ऐतिहासिक सर्वेक्षण करते हैं तब उसमें तीन अवस्थाएं (फेज) दिखायी पड़ती हैं। प्रथमावस्था (अर्थात् विजीगॉथिया के इतिहास) में यहूदी यद्यपि जनता में अप्रिय थे और उनके साथ बुरा व्यवहार किया जाता था फिर भी वे उपयोगी पाये गये क्योंकि उस युग में पाश्चात्य ईसाई (जैसा कि ऑक्सफोर्ड के साहूकारों के लिए सेसिल रोड्स ने कहा था) वित्तीय मामलों में बच्चे थे। दूसरी अवस्था में पाश्चात्य ईसाई सीख पढ़कर खुद अपने यहूदी बन गये और यहूदियों को (१२६१ ई० में इंगलैंड से) निकाल दिया गया। तीसरी अवस्था में पाश्चात्य समाज इतना कुशल हो गया कि उसने यहूदियों को (१६५५ ई० में इंगलैंड में) पुनः लौट आने की सुविधा दी और व्यवसाय में उनकी विशेषता का स्वागत किया। इसके बाद जो उदार युग शुरू हुआ दुर्भाग्यवश उसी के साथ कथा का अन्त नहीं हो सका। यह प्रकरण सेमेटिज्म विरोधी विचारों एवं जायोनिज्म के परीक्षणों के साथ समाप्त होता है।

(६) आधुनिक पश्चिम एवं सुदूरपूर्वीय तथा देशज अमरीकी सभ्यताएं—उनको आधुनिक अवस्था में उपस्थित करने के पूर्व इन सभ्यताओं का पश्चिम से कोई पूर्व सम्पर्क नहीं था। (यद्यपि यह सामान्य हो सकता है किन्तु) ऊपर से देखने पर अमरीकी सभ्यताएं पूर्णतः विलुप्त हो गयी थीं। चीन एवं जापान पर आधुनिक पश्चिम के संघात का प्रभाव अद्भुत रूप से समानान्तर चलता है। दोनों ही मामलों में पाश्चात्य संस्कृति का उसके प्रारम्भिक अधुनातन धार्मिक रूप में स्वागत होता है फिर उसका परित्याग कर दिया जाता है। फिर बाद में उसका उत्तरकालिक अधुनातन पाश्चात्य प्रौद्योगिकी से टक्कर होता है। दोनों इतिहासों में जो अन्तर दिखायी पड़ता है उसका प्रमुख कारण यह तथ्य है कि चीन एक विशाल एवं बेतुके ढंग से फैला हुआ साम्राज्य है और जापान एक सुसम्बद्ध द्वीपीय समाज है। हमारे पुस्तक-लेखन के समय दोनों ही समाजों पर प्रश्न लगा हुआ है चीन तो साम्यवाद ग्रस्त हुआ है और जापान अमरीकी नियन्त्रण में पड़ा हुआ है। भारत की भांति दोनों के ही सामने जनसंख्या की समस्या मुँह बाये खड़ी है।

(७) आधुनिक पश्चिम एवं उसके समकालीनों के मध्य संघातों की प्रकृति [illegible]—आधुनिक पाश्चात्य सभ्यता मध्यवर्गीय सभ्यता है। जिन पाश्चात्य समाजों ने इस सभ्यता का निर्माण कर दिया था उन्होंने आधुनिक पाश्चात्य वातावरण का सृजन किया। जिन अपाश्चात्य सभ्यताओं में कोई देशज मध्यवर्ग नहीं था उनके शासक ने यदि पाश्चात्यीकरण करना चाहा तो उसे अपने उद्देश्य-साधन के लिए बुद्धि

जीवी वग के रूप म एक कृत्रिम मध्यमवग की सृष्टि करनी पडी। ये बुद्धिजीवी वग ही अन्त म, अपने स्वामियों के विरुद्ध उठ खडे होते हैं।

(ख) मध्यकालीन पाश्चात्य ईसाई धमजगत् के साथ संघात

(१) क्रूसेड (जिहाद) का ज्वार भाटा—ग्यारहवी शती म मध्यकालीन पाश्चात्य ईसाई धमजगत ने प्रसार विस्तार के युग म प्रवेश किया दो शती बाद कतिपय सीमान्तो पर उसके पतन एव प्रत्यावतन का युग आया—यद्यपि अन्य सीमान्तो पर यह बात नही हुई। यहा इस विस्तार एव उसके अनुवर्ती प्रत्यागमन के कारणो का विश्लेषण किया गया है।

(२) मध्यकालीन पश्चिम एव सीरियाई जगत्—उसकी (जिहादी) आग एव उनके मुस्लिम शत्रु दोनो म बहुत सी बातो म समानता थी। नामन फ्रैंक एव सलजूक तुक, दोनो एक समान पहिले बबर थे और हाल ही मे समाज के महत्तर धम म दीक्षित किये गये थे। उन्होने उसम प्रवेश ही नही किया बल्कि अनेक बातो म उस पर प्रभुता भी स्थापित कर ली। सीरियाई सभ्यता से जो सांस्कृतिक प्रकाश विकीण हुआ उसने अपराकृत कम प्रगतिशील पाश्चात्य ख्रीष्टीय समाज म प्रवेश किया और काव्य, स्थापत्य दशन एव विज्ञान को प्रभावित किया।

(३) मध्यकालीन पश्चिम एव यूनानी परम्परानिष्ठ ईसाई धमजगत—इन दोनो समाजो के मध्य उसम कही ज्यादा विरोध भावना थी जितना कि इनम से प्रत्येक की अपने मुस्लिम पडोसियो के प्रति थी। इस पारस्परिक कटुता का दिग्दशन उन उद्धरणो से होता है जो एक ओर कुस्तुनतुनिया म शौय के लिए भेजे गये लोम्बाड बिशप ल्यूतप्रद के विवरणो मे लिये गये हैं और दूसरी ओर वह जिहादियो के उस चित्र म दिखायी पडती है जिसे अन्ना कामनेना ने अपने इतिहास म दिया है।

(ग) प्रथम दो पीढियो की सभ्यताओ के मध्य टक्करें

(१) सिकन्दरोत्तर हेलेनी सभ्यता के साथ टक्कर—इस अवस्था मे पुरानी दुनिया की प्रत्येक समकालीन सभ्यता के साथ हेलेनी सभ्यता की टक्करें हुई हैं और इन टक्करो के फल स्वरूप जो हेलेनी प्रकाश विकीण हुआ उसका हिसाब किताब तब तक नही लगाया जा सका और तबतक उसम पूणता नही आयी जब तक कि कई शताब्दियो बाद खुद हेलनी समाज का विघटन नही हो गया। हेलनी सेनाओ ने जहा तक के क्षेत्र पर विजय प्राप्त की थी उसस कही आगे दूर तक अर्थात् सिनाई (चीनी) जगत् मे भी, हेलनी संस्कृति फैल गयी था।

हेलनी इतिहास के प्रसार मे सिकन्दर के जीवन-काय की तुलना पाश्चात्य ईसाई धम जगत के इतिहास की सागर विजय के साथ की जा सकती है, किन्तु जब पश्चिम, अपनी आधुनिक स्थिति म अपने कीटकीट वाले धम ख्रीष्टीय मत से अपने को मुक्त कर रहा था तब इस प्रकार का कोई काठकीट धम अपने पास न होने के कारण हेलेनी सभ्यता म धम के लिए भूख निरन्तर बढती जा रही था।

(२) प्राक् सिकन्दरी हेलेनी सभ्यता के साथ टक्करें—भूमध्य जलद्रोणी (मेडाटेरेनियम बेसिन) पर अधिकार करने के लिए तीन प्रतियोगियो म संघष चल

। था । प्राकसिकन्दरी हलेनी समाज के साथ सीरियाई समाज एव हित्ताई समाज एक अस्मीकृत अवशेष अथात इब्रसना की प्रतियोगिता चल रही था । सीरियाई ाज न फोनीशियाई समुद्री शक्ति तथा आगे चलकर एकमीनियाई साम्राज्य के रूप अपने को व्यक्त किया । इस काल म यूनानिया ने जो सबस बडी सास्कृतिक विजय त की वह थी रोम के हेलनीकरण—यूनानीकरण—के रूप म । इसके लिए पहिले स्कनो का यूनानीकरण किया गया और तब उनके द्वारा यह काय अप्रत्यक्ष रूप सम्भव हो सका ।

(३) घास और गेहूँ—सभ्यताओ के बीच जो सघात होते हैं उनके उपयोगी रणाम शान्ति की कृतियाँ मात्र होती हैं । पहिली पीढी की सभ्यताओ—इण्डिक, मिनार्ई सी एव सुमरी—के बीच होने वाले सम्पर्कों की एक झलक इसके बाद दी जाती है ।

३२ समकालिको के बीच होने वाले सघातो का नाटक

) सघात शृखला

सनिक स्तर पर एक पक्ष की चुनौती से दूसरे पक्ष की चुनौती जन्म लती है र वह एक प्रत्याक्रमण मे बदल जाती है । इस प्रत्याक्रमण का भी जवाब दिया ाता है । इस प्रकार सघातो—टक्करो की एक शृखला बन जाती है । यूनान पर केमीनियाई साम्राज्य के आक्रमण से लेकर पाश्चात्य साम्राज्यवाद के विरुद्ध ाश्चात्य जातियो म होने वाली बीसवी शती की प्रतिक्रियाओ तक पूर्व एव पश्चिम इन सघातो की एक श्रृखला का वणन इस प्रकरण म किया गया है ।

२) उत्तरों की विविधता

केवल सनिक उत्तर ही एक मात्र सम्भव उत्तर नही है । साम्यवादी रूस अपन स्त्रबल को सद्धातिक युद्धकला से पुष्ट करता है । जहा सैनिक उत्तर असम्भव हो ता है अथवा जहा एक बार उसका प्रयोग किया गया और वह असफल हो गया हाँ कुछ पराजित जातिया ने समाज के रूप म अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए पने धम का गहरा परिशीलन आरम्भ किया । इस प्रकार के उत्तर का एक हत्वपूण उदाहरण यहूदियो का है । महत् उत्तर एक ऐस महत्तर धम की सृष्टि है जो मय पाकर विजेताओ को ही बन्दी कर लता है ।

३३ समकालिको के मध्य सघातो के परिणाम

१) असफल आक्रमणों का परिणाम

किसी आक्रमण को सफलतापूवक खदेड देने का परिणाम विजेता का सनकी रण हो सकता है और इस सनकीकरण का अन्तिम परिणाम बडा ही भयावह हो कता है । एसा ही हुआ । एकमीनियाई आक्रमणकारी के ऊपर विजय पाने का ही रिणाम यह हुआ कि पचास वर्षों के अन्दर ही हलेनी सभ्यता का विघटन हो गया ।

(२) सफल आक्रमणों का परिणाम

(क) समाज निकाय पर प्रभाव—एक सफल आक्रामक सभ्यता को जा साम ा

जिक मूल्य चुकाना पडता है वह है अपनी जीवन धारा म विजातीय विजित की संस्कृति का क्षरण। जिस पर आक्रमण होता है उस भी इसी प्रकार का किन्तु अधिक जटिल मूल्य चुकाना पडता है। पाश्चात्येतर समाजो म पाश्चात्य आदर्शों एव संस्थाओ क आरम्भ करने क प्राय चिन्ताजनक परिणाम होत है क्योकि एक मनुष्य का भोजन दूसर का विष है। किसी विजातीय संस्कृति स एक तत्त्व लने और दूसरे का बहिष्कार करने का प्रयत्न असफल होता ही है।

(ख) आत्मा की अनुक्रियाए, [१] अमानवीकरण—सफल आक्रमणकारी भयकर अहकार म फूल जाता है और पराजित को नीच तथा घृणास्पद (अण्डरडाग) समझता है। इस प्रकार मानव भ्रातृत्व का त्याग कर दिया जाता है। जब पराजित को 'विधर्मी' (हीदेन) या काफिर माना जाता है तब तो वह धर्म-परिवर्तन करके मानवीय मर्यादा प्राप्त कर सकता है, जब उसे 'बर्बर' समझा जाता है तो वह कोई परीक्षा पास करके मानव की मर्यादा प्राप्त कर सकता है, किन्तु जब उसे देशज (नेटिव) मान लिया जाता है तब उसके लिए कोई आशा नहीं—सिवाय इसके कि वह मालिक को उखाड फेंके या उसक धर्म का बदल दे।

[२] धर्मोन्माद (जीलाटिज्म) एव सुखेच्छावाद (हीरोडियनिज्म)—इस शब्द के फलितार्थ मे विजेता क लोकाचरण के स्पष्ट परित्याग या स्वीकार का स्पष्ट भेद निहित है किन्तु अधिक गहरे परीक्षण स जान पडता है कि यह भेद वसा स्पष्ट नही है जसा पहिली दृष्टि म दिखायी पडता है। आधुनिक जपान तथा गाधी एव लेनिन के कार्यों से उदाहरण देकर इस समझाया गया है।

[३] इजीलवाद—सत पाल की सफलता के विरुद्ध मूल जीलाटो एव हीरो दियाइयो की आत्म-पराजय का वणन किया गया है।

टिप्पणी—एशिया एव यूरोप तथ्य तथा कल्पनाए—

हेलेनी समुद्री नाविको ने जब एजियन सागर से कृष्णसागर की यात्रा की तो उन्होने एक दूसरे के आमने सामने पडने वाले भूमि तटो का एशिया और यूरोप के नाम दे दिये। इन शब्दो का राजनीतिक एव सांस्कृतिक महत्त्व दे देने का परिणाम भ्रमोत्पादन के सिवाय और कुछ नही हुआ है। यूरोप यूरेशिया महाद्वीप का दुष्परिभाषित सीमान्तयुक्त एक उपमहाद्वीप मात्र है।

[१०]

कालान्तगत सभ्यताओ के बीच सम्पर्क

३८ रिनैसाओ का सर्वेक्षण

(१) प्रस्तावना—रिनैसा'

यहाँ 'रिनैसा' शब्द के उद्गम का वणन है और इस अध्ययन मे जिस आशय के साथ उसका प्रयोग हुआ है उसकी व्याख्या कर दी गयी है।

(२) राजनीतिक धारणा तो एव संस्थाओं का रिनेसां

उत्तर मध्ययुगीन इटालवी रिनेसा का आरम्भ पश्चिम म हो हो गया था और उसने साहित्यिक या सनातन स्तर की अपेक्षा राजनीतिक स्तर पर अधिक स्थायी प्रभाव डाला—नगरराज्य धर्म निरपेक्ष राजतन्त्र, पवित्र रोमन साम्राज्य। धर्मसंघीय राज्याभिषेक (एक्लेजियास्टिकल कोरोनेशन) भी पुरातन बाइबिली प्रथा का एक रिनेसा हो था।

(३) विधि प्रणालियों के रिनेसां

प्राच्य परम्परानिष्ठ ईसाई जगत एव पाश्चात्य ईसाई जगत् म रोमी कानून का पुनरावर्तन तथा चर्च एव राज्य के लिए उसके परिणाम।

(४) दार्शनिक विचारधाराओ के रिनेसा

चीन के सुदूरपूर्वीय समाज म सिनाई कनफ्यूशियाई दर्शन और मध्यकालीन पाश्चात्य ईसाई जगत म अरस्तू के हेलनी दर्शन के रिनेसा कई दृष्टियों से समानान्तर घटनाएं है। प्रथम दर्शन तबतक जीवित रहा जबतक कि बीसवी शती के आरम्भ म वह आक्रामक पाश्चात्य लोकाचरण द्वारा ध्वस्त नहीं कर दिया गया। रहा दूसरा, वह पन्द्रहवी शती के हेलेनी साहित्यिक रिनेसा के आघात से दुर्बल हो गया और अन्त म सत्रहवी शती के बेकनी (बकोनियन) वैज्ञानिक आन्दोलन द्वारा नष्ट कर दिया गया।

(५) भाषाओ और साहित्यो सम्बन्धी रिनेसा

इस क्षेत्र म वंशगत शासको ने रिनेसाओ का आरम्भ करने म बड़ा महत्वपूर्ण भाग लिया। कतिपय चीनी सम्राटो ने विशाल पुस्तकालयो का निर्माण किया। हेलनी भाषाओ एव साहित्यो के इतालवी रिनेसा के पूर्व एक निष्फल कैरोलिंजियाई रिनेसा हो चुका था। किन्तु इस करोलिंजियाई रिनेसा की जडें भी नार्थम्ब्रिया के रिनेसा तक पहुचती है। जबतक मृत सभ्यता के 'प्रेत' का आवाहन करने वाला समाज प्रेतसिद्धि करने योग्य विकासावस्था म नहीं पहुच जाता तबतक रिनेसा सफल नहीं हो सकते।

(६) चाक्षुष कलाओ के रिनेसा

उस पाश्चात्य उदाहरण के साथ ही जिसे रिनेसा के लोकप्रिय नाम से पुकारा जाता है, अन्य उदाहरण दिये गये है। स्थापत्य, तक्षण कला एव चित्रकला से पाश्चात्य रिनेसा की धारा का दर्शन कराया गया है। इन तीनो ही विभागो मे अंतिम परिणाम यह हुआ कि मौलिकता निष्प्राण हो गयी।

(७) धार्मिक आदर्शों एव रीतियो के रिनेसा

अपनी सफल सतति ईसाई धर्म के प्रति यहूदाई मत का अपमानजनक आचरण तथा एकेश्वरवाद एव मानवरूपेतर मूर्तिपूजा (एनीकोनिज्म) के यहूदी आदर्शों के प्रति खीष्टीय चर्च के उद्वेगजनक एव अस्पष्ट व्यवहार पर चर्चा की गयी है। सोलहवी शती के बाद प्रोटेस्टेंट आन्दोलन म जो रविवासरीय पूजा (स बेटेरियनिज्म) तथा बाइबिल-पूजा चल गयी वही पाश्चात्य खीष्टीय सम्प्रदाय के अन्तर्गत यहूदाई मत के एक प्रबल एव लोकप्रिय रिनेसा का उदाहरण उपस्थित करती है।

[११]

इतिहास मे विधि और स्वतन्त्रता

३५ समस्या

(१) विधि (कानून) का अर्थ

'प्रकृति के कानून' का 'ईश्वर के कानून' से भेद दिखाया गया है।

(२) आधुनिक पाश्चात्य इतिहासकारो की स्वेच्छाचारिता (एँटीनोमियनिज्म)

बोसुए के समय तक यह विचार चलता रहा कि इतिहास दैवी शक्ति की क्रिया को व्यक्त करता है। किन्तु अब यह विचार त्याग दिया गया है। परन्तु जिन विज्ञान विदो के 'प्रकृति का कानून' ने खोज के अधिकाश क्षेत्रो म 'ईश्वर के कानून' का स्थान ले लिया है उन्होन खुद इतिहास को ऐसी अराजकता की स्थिति म छोड दिय जाने पर चिन्ता और घबराहट प्रकट की है जहा किसी भी और वस्तु से किसी भी वस्तु के उद्भव की आशा की जा सकती है। एच ए एल फिशर ने ऐसा ही विचार प्रकट किया है।

३६ 'प्रकृति के कानूनो' के प्रति मानवीय कार्य-व्यापार की वश्यता

(१) साक्ष्य का सर्वेक्षण

(क) **व्यक्तियों के निजी मामले**—बीमा कम्पनिया मानवीय मामलो का एक माप्य नियमितता पर विश्वास करती हैं।

(ख) **आधुनिक पाश्चात्य समाज के औद्योगिक मामले**—अर्थशास्त्री व्यापार चक्र की तरग लम्बाइया की माप लगाने म अपने को समर्थ पाते हैं।

(ग) **ग्राम्य राज्यों की प्रतिद्वद्विताए शक्ति सन्तुलन**—कतिपय सभ्यताओ के इतिहासो म युद्ध एव शान्ति चक्रो के नियमित आवर्तन।

(घ) **सभ्यताओ का विघटन**—पराभव एव समाहरण के विकल्पो की नियमितता, कुछ स्पष्टीकरण।

(च) **सभ्यताओं की अभिवृद्धि**—विभग एव विघटन की अवस्थाओ म जो नियमितता मिलती है वह यहा अनुपस्थित है।

(छ) **नियति के विरुद्ध कोई कवच नहीं'**—जिस अभिनिवेश या स्थिरता के साथ एक प्रवृत्ति एक-से बिन्दुओ पर पराजित होकर भी अन्त मे विजयिनी हो जाती है, उसके कुछ और उदाहरण।

(२) इतिहास में प्रकृति के कानूनो के प्रचलन के सम्भव स्पष्टीकरण

जिन एकरूपताओ का पता हमने लगाया है वे या तो मनुष्य के अमानवीय पर्यावरण म प्रचलित नियमो या फिर स्वय मानव की मानसिक सरचना म अन्तर्हित नियमो के कारण घटित होती हैं। यहा इन विकल्पो की परीक्षा की गयी है। इस परीक्षा से पता लगता है कि ज्यो-ज्यो मानव प्रौद्योगिकी म प्रगति करता जाता है अमानवी प्रकृति के नियमो पर मनुष्य की निर्भरता कम होती जाती है। इससे मानव

ीढ़ियो के उत्तराधिकार के महत्व का भी पता लगता है। मनुष्य के मानसिक स्वभाव न कतिपय परिवर्तनो के लिए तीन पीढ़ियो की कालावधि की आवश्यकता पड़ती है। इसके बाद इतिहास की धारा पर पड़ने वाले प्रभाव के रूप में अवचेतन मन के उन ियमो पर विचार किया गया है जिनका ग्रन्थ-लेखन के समय मनोवैज्ञानिकों का पता लगना शुरू ही हुआ है।

(३) इतिहास मे प्रचलित प्रकृति नियम अलंघ्य हैं या नियन्त्रणीय ?

जहा तक अमानवीय प्रकृति के नियमो का सवाल है मनुष्य उन्हें बदल नही सकता किन्तु अपने प्रयोजनो के लिए उनका उपयोग कर सकता है। पर जहा स्वय मानव प्रकृति को प्रभावित करने वाले नियमो कानूनो का सवाल है उसका उत्तर अपेक्षाकृत अधिक सावधानी के साथ देना पड़ेगा। मनुष्य के अपने साथ तथा अपने सगी मानवो के साथ जो सम्बन्ध है केवल उन्ही पर इसका परिणाम निर्भर नही वरन इन सबसे अधिक मुक्तिदाता ईश्वर के साथ उसका जो सम्बन्ध है उस पर निर्भर करता है।

३७ प्रकृति के नियमो के प्रति मानव-प्रकृति की उदासीनता

यह उदासीनता चुनौती एव उत्तर के बहुसख्यक उदाहरणो मे प्रदर्शित की गयी है। चुनौती सामने आ जाने पर एक सीमा के अन्दर मनुष्य परिवर्तन के वेग को बदलने म स्वतन्त्र है।

३८ ईश्वरीय विधि

मनुष्य केवल प्रकृति के कानून के नीचे नही रहता वह ईश्वर के कानून के नीचे भी रहता है। यही ईश्वरीय विधि या कानून पूर्ण स्वातन्त्र्य है। ईश्वर की प्रकृति एव उसके कानून के विषय म परस्पर विपरीत विचारो का परीक्षण किया गया है।

[१२]

पाश्चात्य सभ्यता की सम्भावनाएँ

३८ इस अनुसन्धान की आवश्यकता

आगे की जाच म उस दृष्टिबिन्दु का त्याग किया गया है जिसका इस अध्ययन म ग्रहण और अबतक निर्वाह किया गया है—अर्थात इतिहास की ज्ञात सम्पूर्ण सभ्यताओ पर सक्षिप्त विचार। यह परिवर्तन इन तथ्यो द्वारा उचित प्रमाणित होता है कि पाश्चात्य समाज ही एक ऐसा जीवित समाज है जो प्रस्तर या विघटनशील नही है बल्कि वर्तमान काल म विश्वव्यापी हो गया है और इसकी सम्भावनाएँ वस्तुत पाश्चात्य रग म रगी सारी दुनिया की सम्भावनाए है।

४० पूर्वानुमानित उत्तरों की सन्दिग्धता

नियम-वनानिक आधार पर यह कल्पना करने का कोई कारण नही है कि चूंकि अन्य सब सभ्यताएँ विलुप्त हो गयी या विलुप्त हो रही है इसलिए पश्चिम को भी उसी राह पर जाना है। विक्टोरियाई आशावाद एव स्पेंगलरीय निराशावाद जैसी सवेगात्मक प्रतिक्रियाएँ भी साक्ष्य या प्रमाण के रूप म विश्वसनीयता से रहित थी।

४१ सभ्यताओ के इतिहासो का साक्ष्य

(१) पाश्चात्येतर दृष्टान्त सहित पाश्चात्य अनुभव

विभग एव विघटनो के हमारे पिछले अध्ययन हमारी वतमान समस्या पर क्या प्रकाश डालते है? हमने देखा है कि युद्ध एव सनिकवाद किसी समाज के विभग का विच्छेद के सबसे प्रबल कारण हैं। अभी तक पश्चिम इस रोग से असफलतापूवक लडता रहा है जब कि उसने अन्य दिशाओ—जसे दासप्रथा के उन्मूलन लोकतन्त्र के विकास एव निर्माण—म अभूतपूव सफलता प्राप्त की है। अब पश्चिम भी प्रभविष्णु अल्पमत तथा आन्तरिक एव बाह्य श्रमजीवीवग म अशुभ विभाजना का प्रदशन करने लगा है। दूसरी ओर पाश्चात्य रग मे रजित दुनिया के अन्तगत आन्तरिक श्रमजीवी वर्गों की विविधता की समस्याओ का सामना करने मे कुछ उल्लेखनीय सफलताए प्राप्त हुई हैं।

(२) अदृष्टपूव पाश्चात्य अनुभव

अमानवीय प्रकृति पर मानव के प्रभुत्व तथा सामाजिक परिवतन की वृद्धिमती गतिशीलता दोनो के उदाहरण पूववर्ती सभ्यताओ के इतिहासो म प्राप्त नही हैं। आगामी अध्यायो की योजना की ओर सकेत किया गया है।

४२ प्रौद्योगिकी, युद्ध तथा सरकार

(१) तृतीय विश्व युद्ध की सम्भावनाएँ

सयुक्त राज्य अमेरिका एव सोवियत यूनियन का स्वभाव वभिन्न्य तथा मानव जाति के शेष भाग की इनमे से प्रत्येक के प्रति वृत्ति।

(२) भावी विश्व व्यवस्था की ओर

मानव जाति की सम्भावनाओ की जलश्रृंग की ओर बहती हुई हेयर ड्हल की कौन तिकी नौका के साथ तुलना। भावी विश्व व्यवस्था वतमान सयुक्त राष्ट्र सघटन के बहुत भिन्न होगी। विश्व के नेतृत्व के लिए अमरीकी राष्ट्र की योग्यता पर विचार किया गया है।

४३ प्रौद्योगिकी, वग-सघष तथा रोजगार

(१) समस्या की प्रकृति

आधुनिक प्रौद्योगिकी की विजयो के कारण अभाव से मुक्ति की अभूतपूव माँग होने लगी है, किन्तु इस माग की पूर्ति के लिए जो मूल्य चुकाना है उसे चुकाने के लिए मानव जाति तयार होगी?

(२) यन्त्रीकरण और निजी उद्योग

आधुनिक प्रौद्योगिकी ने न केवल नागर श्रमिकों का बल्कि मालिकों (राष्ट्रीयकरण के बाद) सिविल सर्विस (नौकरशाही) तथा राजनीतिज्ञों (दलगत अनुशासन) का भी यन्त्रीकरण या एकमार्गीकरण कर दिया है। प्रतिरोध में श्रमिकवर्गीय संघों (श्रमिक संघों) के कारण और एकमार्गीकरण (रेजीमेन्टेशन) हुआ। इसके विपरीत औद्योगिक क्रान्ति के रचयिता एक ऐसे समाज में जन्मे थे जिसका एकमार्गीकरण नहीं हुआ था।

(३) सामाजिक सामंजस्य के वैकल्पिक मार्ग

यहाँ अमरीकी रूसी पाश्चात्य यूरोपियन विकल्प आदि, मार्गों का विश्लेषण तथा तुलना की गयी है।

(४) सामाजिक न्याय की सम्भव लागत

व्यक्तिगत स्वतन्त्रता एवं सामाजिक न्याय दोनों की कुछ न कुछ व्यवस्था किये बिना सामाजिक जीवन असम्भव है। प्रौद्योगिकी पलड़े को सामाजिक न्याय की ओर झुका देती है। जिस युग में निवारक (प्रिवेंटिव) औषधियों के कारण मृत्यु का औसत कम होता जा रहा है उसमें मानवीय प्रजाति का प्रसार करने की अनियन्त्रित व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का परिणाम क्या होगा? आगे आने वाले एक महादुष्काल पर तथा उसके कारण होने वाले संघर्ष पर विचार किया गया है।

(५) क्या हम इसके बाद सदा सुखी रहेंगे?

मान लीजिए कि विश्व समाज को इन सब समस्याओं का सफल समाधान प्राप्त हो जाता है तब क्या उसके बाद मानव समाज सदा सुखी रहेगा? नहीं क्योंकि संसार में आने वाले प्रत्येक शिशु के साथ मूल पाप पुनः जन्म लेता है।

[१३]

निष्कर्ष

४४ यह ग्रन्थ लिखा कैसे गया?

लेखक विक्टोरियाई आशावाद के युग में जन्मा था, जब वह किशोर था तभी उसने प्रथम विश्वयुद्ध देखा। वह यह देखकर हैरत में आ गया कि उसके जीवन काल में उसके अपने समाज के जो अनुभव हैं वे हेलेनी समाज के अनुभवों के प्राय समानान्तर हैं। चूँकि हेलेनी इतिहास एवं साहित्य उसकी शिक्षा के मुख्य अंग थे उसके मन में यह प्रश्न उठ खड़ा हुआ सभ्यताएँ मरती क्यों हैं? क्या आधुनिक पश्चिम की भी वही नियति है जो हेलेनी सभ्यता की थी? बाद में उसकी जाँच के क्षेत्र में अन्य ज्ञात सभ्यताओं के विभंग एवं विघटन के विषय भी आ गये क्योंकि इससे उसके प्रश्नों पर कुछ और प्रकाश पड़ता था। अन्त में उसने सभ्यताओं के उद्गम एवं ——— —अन्वेषण आरम्भ कर दिया। इस प्रकार यह इतिहास का अध्ययन लिखा